श्रीमद् लघुराज स्वामी (प्रभुश्री)

उपदेशामृत

(मूल गुजरातीका हिंदी अनुवाद)

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम
अगास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ

श्रीमद् लघुराज स्वामी (प्रभुश्री)

उपदेशामृत

(हिंदी अनुवाद)

श्रीमद् लघुराज शताब्दी स्मारक ग्रन्थ

–जन्मजयन्ति–

(सं.२०१०, आश्विन वदी १)

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम
अगास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :
विनोदराय मणिलाल सेठ, अध्यक्ष
श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम
स्टे. अगास, वाया-आणंद
पोस्ट बोरीआ ३८८ १३० (गुजरात)

हिंदी प्रथम आवृत्ति
प्रतियाँ १०००
ईस्वी सन् २००४
विक्रम संवत् २०६०
वीर संवत् २५३०

मुद्रक :
इंडिया बाईंडिंग हाउस
दिल्ली

टाईप सेटिंग
डिस्केन कॉम्प्यु आर्ट
आणंद-३८८१२०
✆ (०२६९२) २५५२२१

एक आत्माको जाना उसने सब जाना।
—निर्ग्रन्थ प्रवचन

ॐ

अहो! सर्वोत्कृष्ट शांतरसमय सन्मार्ग—
अहो! उस सर्वोत्कृष्ट शान्तरसप्रधान मार्गके मूल सर्वज्ञदेव—
अहो! उस सर्वोत्कृष्ट शान्तरसको जिन्होंने सुप्रतीत कराया
ऐसे परमकृपालु सद्गुरुदेव—
इस विश्वमें सर्वकाल आप जयवन्त रहें, जयवन्त रहें।
— श्रीमद् राजचंद्र

"आत्मा होकर आत्मा बोला, आराधा तो बस।"
— प्रभुश्री

लागत मूल्य रू. ११५/-
बिक्री मूल्य रू. १०/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम,
स्टेशन अगास; वाया आणंद,
पोस्ट बोरिया—३८८१३०
(गुजरात)

श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल,
हाथी बिल्डींग, 'ए' ब्लॉक,
दूसरी मंजिल, रूम नं० १८, भांगवाडी,
४४८, कालबादेवी रोड,
बंबई—४००००२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जिस जिस प्रकारसे आत्मा आत्मभावको प्राप्त हो, वह प्रकार धर्मका है। आत्मा जिस प्रकारसे अन्य भावको प्राप्त हो वह प्रकार अन्य रूप है, धर्मरूप नहीं है।

जीवको धर्म अपनी कल्पनासे अथवा कल्पनाप्राप्त अन्य पुरुषसे श्रवण करने योग्य, मनन करने योग्य या आराधने योग्य नहीं है। मात्र आत्मस्थिति है जिनकी ऐसे सत्पुरुषसे ही आत्मा अथवा आत्मधर्म श्रवण करने योग्य है, यावत् आराधने योग्य है।"

—पत्रांक ४०३, 'श्रीमद् राजचंद्र'

☆

"आत्माको विभावसे अवकाशित करनेके लिये और स्वभावमें अनवकाशरूपसे रहनेके लिए कोई भी मुख्य उपाय हो तो आत्माराम ऐसे ज्ञानीपुरुषका निष्कामबुद्धिसे भक्तियोगरूप संग है।"

—पत्रांक ४३२, 'श्रीमद् राजचंद्र'

☆

"परमात्मा और आत्माका एकरूप हो जाना (!) यह पराभक्तिकी आखिरी हद है। एक यही लय रहना सो पराभक्ति है। परम महात्म्या गोपांगनाएँ महात्मा वासुदेवकी भक्तिमें इसी प्रकारसे रही थीं। परमात्माको निरंजन और निर्देहरूपसे चिन्तन करनेपर जीवको यह लय आना विकट है, इसलिए जिसे परमात्माका साक्षात्कार हुआ है, ऐसा देहधारी परमात्मा उस पराभक्तिका परम कारण है। उस ज्ञानी पुरुषके सर्व चरित्रमें ऐक्यभावका लक्ष्य होनेसे उसके हृदयमें बिराजमान परमात्माका ऐक्यभाव होता है, और यही पराभक्ति है।

ज्ञानी पुरुष और परमात्मामें अन्तर ही नहीं है, और जो कोई अन्तर मानता है, उसे मार्गकी प्राप्ति परम विकट है। ज्ञानी तो परमात्मा ही हैं, और उसकी पहचानके बिना परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई है, इसलिये सर्वथा भक्ति करने योग्य ऐसी देहधारी दिव्यमूर्ति—ज्ञानीरूप परमात्माकी—का नमस्कारादि भक्तिसे लेकर पराभक्तिके अन्त तक एक लयसे आराधन करना, ऐसा शास्त्रका आशय है। परमात्मा ही इस देहधारीरूपसे उत्पन्न हुआ है ऐसी ही ज्ञानीपुरुषके प्रति जीवको बुद्धि होनेपर भक्ति उदित होती है, और वह भक्ति क्रमशः पराभक्तिरूप हो जाती है.....

पहले ज्ञानी पुरुषकी भक्ति; और यही परमात्माकी प्राप्ति और भक्तिका निदान है।"

—पत्रांक २२३, 'श्रीमद् राजचंद'

☆

[1]"सन्त-चरण आश्रय विना, साधन कर्या अनेक;
पार न तेथी पामियो, ऊग्यो न अंश विवेक."

— श्रीमद् राजचंद्र

☆

१. संतके चरणके आश्रयके बिना अनेक साधन किये, किंतु उससे संसार का अंत न आया, और अंशमात्र भी विवेक उदित नहीं हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिवंदना

(वसंततिलका)

अध्यात्ममूर्ति, सहजात्मपदे निमग्न, बोधि समाधि सुख शाश्वत शांतिमग्न;
योगीन्द्र वन्द्य गुरु राज कृपाळुदेव, चाहुं अखंड सहजात्मस्वरूप सेव. १

ज्ञानावतार गुरु आप कृपा-प्रसादे, स्वात्मानुभूति-रसपीयूषना सुस्वादे;
जेणे स्वश्रेय परश्रेय अनंत साध्युं, ते शांतमूर्ति लघुराजपदे हुं वंदुं. २

(मालिनी)

बहु बहु बहु सेव्यां साधनो मुक्ति काजे, स्व-स्वरूप न पिछाण्युं बंध तो केम भांजे?
तुज परम कृपाथी मुक्तिनो मार्ग आजे, सहज सुलभ भासे, धन्य आ योग छाजे. ३

अद्‌भुत निधि आत्मा आप पोते छतांये, स्वपद प्रति वळे ना दृष्टि स्वच्छंदताये!
उपकृति अभिवंदुं सद्‌गुरु धन्य धन्य, नयन अजब आंजी दृष्टि दे जे अनन्य. ४

अद्‌भुत तुज मुद्रा ध्यानमां मग्न भाळुं, प्रशम-रस-सुधानो सिंधु जाणे निहाळुं!
'चतुरगति प्रवेशुं ना कदी' अेम धारी, स्वरमण-वर-ध्याने शुं प्रभो वृत्ति ठारी! ५

शमनिधि लघुराजे राजचंद्र-प्रभा शी! जळहळ उलसंती स्वानुभूति दशा शी!
स्मरीं स्मरीं स्मरीं स्वामी, वीतरागी अवस्था, नमुं नमुं नमुं भक्ति-भाव आणी प्रशस्ता. ६

(शार्दूलविक्रीडित)

जे संसार अपार दुःखदरियो उल्लंघवा इच्छता,
आत्मानंद-प्रपूर्ण सिद्धिसुखना आह्लादने झंखता;
ते सद्‌भागी शिवार्थीने शरण जे साचुं दई तारता,
वंदुं श्रीमद् राजचंद्र, भवथी संतप्तने ठारता. ७

— श्री रावजीभाई देसाई

अर्थ—(१) अध्यात्ममूर्ति, सहजात्मपदमें निमग्न, बोधि-समाधिसुख युक्त और शाश्वत शांतिमग्न, योगींद्रवंद्य ऐसे कृपालुदेव गुरु राजचंद्र! आपकी अखंड सहजात्मस्वरूप सेवा मैं चाहता हूँ। (२) आप ज्ञानावतार गुरुकी कृपासे, स्वात्मानुभूति-रसामृतके रसास्वादसे जिसने अनंत स्वश्रेय प्राप्त किया और दूसरोंका कल्याण किया ऐसे शांतमूर्ति लघुराजस्वामीके चरणोंमें मैं वंदना करता हूँ। (३) मुक्तिके लिये मैंने बहुत-बहुत-बहुत साधन किये, किन्तु स्वस्वरूपको न पिछाना, तो बंध कैसे छूटे? तेरी परमकृपासे आज मुझे मुक्तिमार्ग सहज सुलभ दीख रहा है ऐसा आपका योग धन्य है। (४) आत्मा स्वयं अद्‌भुत निधि होने पर भी स्वच्छंदताके कारण दृष्टि आत्मस्वरूपकी ओर नहीं मुड़ती। सद्‌गुरुने अद्‌भुत नयनांजन करके अनन्य आत्मदृष्टि करायी ऐसे उनके उपकारको धन्य है! धन्य है!(५) तेरी अद्‌भुत ध्यानमग्न मुद्राको देखकर लगता है मानो प्रशमरससुधाका सिंधु ही हो। आपके आत्मरमणतारूप ध्यानको देखकर मेरी वृत्ति भी शांत हो जाती है और ऐसा निर्णय होता है कि अब मैं चतुर्गतिमें भ्रमण नहीं करूँगा। (६) शमनिधि लघुराजस्वामीने राजचंद्रकी कृपासे स्वानुभूति दशा जलहल ज्योतिस्वरूप प्राप्त की, उस वीतरागी अवस्थाको बारबार स्मरणकर प्रशस्त भक्तिभावपूर्वक वारंवार नमन करता हूँ। (७) जो अपार संसाररूप दुखसमुद्रको लाँघना चाहते हैं और आत्मानंद पूर्ण सिद्धिसुखके आह्लादकी जो झंखना करते हैं उन सद्‌भागी मोक्षेच्छुकको जो सच्ची शरण देकर तारते हैं और भवसे संतप्तको शीतल करते हैं ऐसे श्रीमद् राजचंद्रको मैं वंदना करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

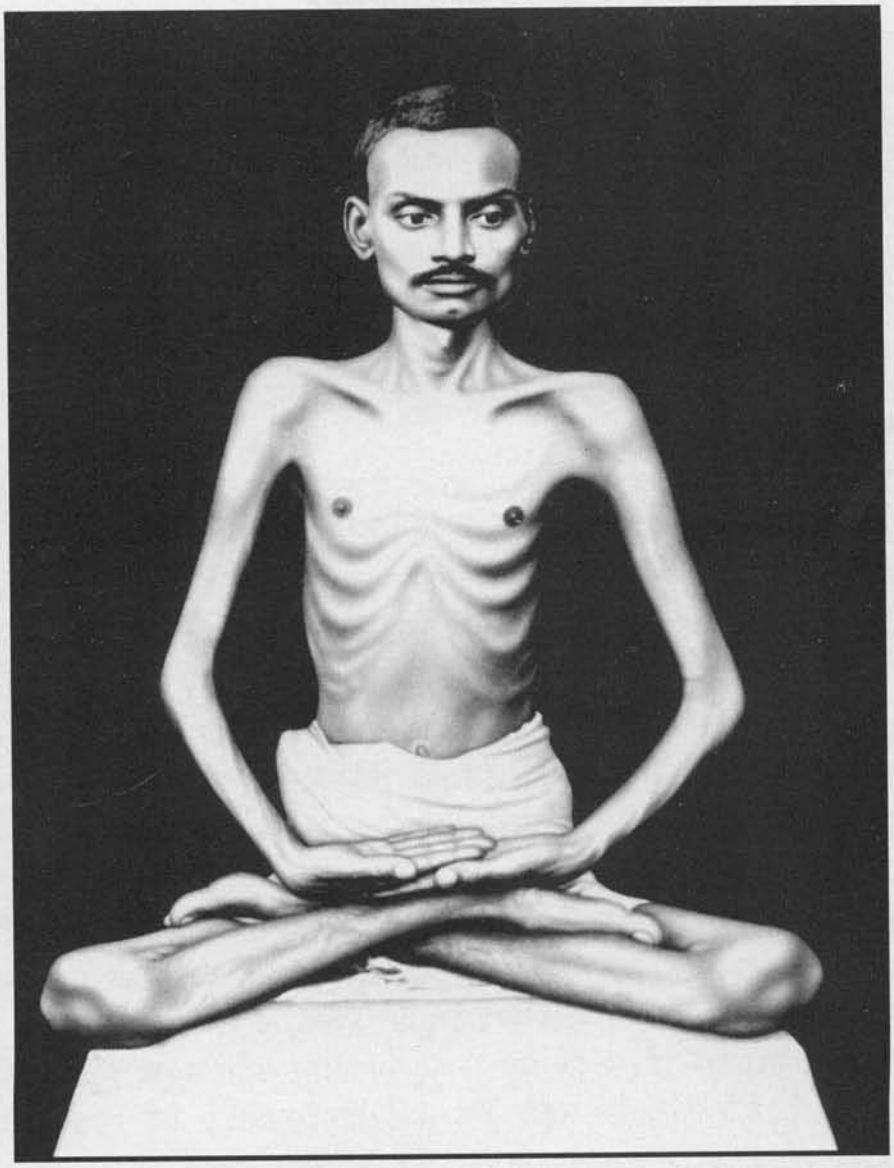

श्रीमद् राजचंद्र

जन्म : ववाणिया
वि.सं.१९२४ कार्तिक पूर्णिमा, रविवार

देहविलय : राजकोट
वि.सं.१९५७ चैत्र वद ५ मंगलवार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निवेदन

(गुजराती प्रथमावृत्ति)

"प्रभु-प्रभुता संभारता, गातां करतां गुणग्राम रे;
सेवक साधनता वरे, निज संवर परिणति पाम रे. मुनि०
प्रगट तत्त्वता ध्यावतां, निज तत्त्वनो ध्याता थाय रे;
तत्त्वरमण-एकाग्रता, पूरण तत्त्वे एह समाय रे. मुनि०"

"लोहधातु कंचन हुवे रे लाल, पारस-फरसन पामी रे व्हालेसर;
प्रगटे अध्यातम दशा रे लाल, व्यक्तगुणी गुणग्राम रे व्हालेसर;
तुज दरिसण मुज वालहुं रे लाल, दरिसण शुद्ध पवित्त रे व्हालेसर."

—श्रीमद् देवचन्द्र

परमकृपालु परम तत्त्वज्ञ अध्यात्ममूर्ति श्रीमद् राजचंद्रसे आत्मप्रतीति प्राप्त कर परमात्म-दर्शनको प्राप्त करनेवाले तथा मोक्षार्थी भव्य जीवोंको अपनी सहज करुणा द्वारा सद्बोधवृष्टिसे आत्महितके प्रति मोड़कर इस दुर्लभ मनुष्यभवको सफल बनानेमें सर्वोत्कृष्ट उपकारी श्रीमद् लघुराज स्वामी (प्रभुश्रीजी) का उपदेश संग्रह 'श्रीमद् लघुराज शताब्दी स्मारक ग्रन्थ' के रूपमें प्रकाशित हो ऐसी अनेक आत्मबन्धुओंकी इच्छा थी।

तदनुसार यह ग्रन्थ यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित हो और इस आश्विन वदी १ के दिन श्रीमद् लघुराज स्वामी (प्रभुश्रीजी) के जन्मजयन्ति शताब्दी महोत्सवके प्रसंगपर मुमुक्षु बन्धुओंको इस ग्रन्थका प्रसाद अमूल्य भेंटके रूपमें प्राप्त हो ऐसी इच्छासे इसके सम्पादनका कार्य प्रारम्भ किया गया था।

सन्तशिरोमणि प्रभुश्रीजीकी सेवामें सर्वार्पणभावसे जीवन समर्पण कर परम कृपालुदेवकी आज्ञाका आराधन करनेवाले तथा मुमुक्षुओंको परमकृपालुदेवकी आज्ञा-आराधनके प्रति मोड़नेमें प्रयत्नशील रहकर सेवा अर्पण करनेवाले अध्यात्मप्रेमी सद्गत पू. श्री ब्रह्मचारीजीने इस ग्रन्थके सम्पादन-कार्यमें बहुत उल्लास और तन्मयतासे अपनी सर्व शक्ति और समयका भोग देकर परिश्रम किया है, अतः वे ही इस ग्रन्थ-प्रकाशनके लिए सर्व यशके अधिकारी हैं।

उनके मार्गदर्शनके अनुसार इस ग्रन्थका सम्पादन हुआ है। फलस्वरूप आज यह ग्रन्थ मुमुक्षुओंको सादर अर्पण करते हुए आनन्द होता है; परन्तु साथ ही बहुत दुःखकी बात है कि यह ग्रन्थ तैयार होकर मुमुक्षुओंके हाथमें आये उसके पूर्व ही उन पवित्र आत्माका देहोत्सर्ग हो गया।

वीतरागश्रुत-प्रकाशक इस आश्रमके साहित्य-प्रकाशनमें उन्होंने जीवनपर्यन्त जो सर्वोत्तम सेवा प्रदान की है उसके लिए उन्हें यहाँ धन्यवादपूर्वक स्मरणांजलि अर्पण करना उपयुक्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस उपदेशामृत ग्रन्थमें–

'पत्रावलि-१' नामक विभागमें प्रभुश्रीजी द्वारा स्वयं लिखे गये अथवा लिखाये गये पत्रोंमेंसे लिये गये पत्र हैं। 'पत्रावलि-२' में प्रभुश्रीजीने श्री ब्रह्मचारीजीको जिस प्रकार लिखनेको कहा उस प्रकार अपनी भाषामें लिखकर लाये और उन्हें पढ़वाये गये पत्रोंका मुख्यतः संग्रह है। 'विचारणा' विभागमें प्रभुश्रीजीके स्वयंके विचार हैं। उसके बाद 'उपदेशसंग्रह-१' में प्रसंगानुसार चल रहे प्रभुश्रीजीके उपदेशको वहीं बैठकर एक मुमुक्षुभाईने कभी-कभी यथाशक्ति और यथास्मृति जो लिखा उसे संकलित किया गया है। शेष 'उपदेशसंग्रह' भाग २ से ६ तक मुमुक्षुओं द्वारा यथास्मृति, यथाशक्ति और यथावकाश किसी-किसी दिन किये टिप्पणका संग्रह है।

मघाकी वर्षाके समान प्रभुश्रीजीका उपदेश तो अखण्ड अमृतवृष्टिकी भाँति निरन्तर बरसता था। उसमेंसे यत्किंचित् जो कुछ यह संग्रह हो पाया है वह मुमुक्षुओंके लिये परम श्रेयस्कर, परम आधाररूप होने योग्य है। साथ ही उस उपदेशका संग्रह करनेवाले भव्य मुमुक्षुओंके स्वयंके आत्मलाभका भी कारण है। जैसे अल्प मात्रामें भी अमृत जीवको अमर बनानेमें समर्थ है, वैसे ही आत्मानुभवी सच्चे पुरुषके अचिंत्य माहात्म्यवाला यह बोध, अल्प भी आराधना करनेवालेको अजरामर पद प्राप्त करानेमें समर्थ हो ऐसा शक्तिशाली है। आत्मज्ञ महापुरुषकी आत्मा प्राप्त करने तथा प्राप्त करवानेकी उत्कण्ठा, इच्छा और उत्साह इस बोधमें स्थान-स्थानपर कुछ अपूर्व और अद्‌भुत दृष्टिगोचर होते हैं, तथा आत्मप्राप्त पुरुषको आत्माका रंग कैसा आश्चर्यजनक होता है यह प्रकट भास्यमान होता है, जो आत्मार्थीके लिये अत्यन्त आत्महितप्रद और आह्लादकारी प्रतीत होने योग्य है।

जिसने प्रभुश्रीजीका प्रत्यक्ष बोध सुना है उसे तो यह बोध तादृश उन-उन प्रसंगोंकी स्मृतिको ताजा कर उस परम शान्तरसमय अद्‌भुत सत्संगके रंग-तरंगका अवर्णनीय आस्वादन कराकर अपूर्व आनन्द और श्रेयमें प्रेरित करेगा। अन्य भी तत्त्वजिज्ञासु सज्जनोंको, सरल शैली और भाषामय ऐसे ये अनुभवी महापुरुषके प्रगट योगबलवाले वचन हृदयमें अचूक प्रभाव दिखाकर आत्महित और आत्मानन्दमें प्रेरित करनेमें समर्थ हो सकते हैं।

इस पत्रावलि और उपदेशसंग्रहके अतिरिक्त प्रभुश्रीजीका संक्षिप्त जीवनचरित्र भी इसमें दिया जाय तो अच्छा, ऐसी कुछ मुमुक्षु भाइयोंकी इच्छा होनेसे पूज्य श्री ब्रह्मचारीजीने, प. पू. श्री प्रभुश्रीजीके देहोत्सर्गके कुछ समय बाद लिखे गये जीवनवृत्तान्तमेंसे संक्षिप्तरूपमें यहाँ दिया गया है। सं. १९७६ तकके प्रसंग १५ खण्डोंमें उन्होंने वर्णित किये हैं। उसके बादका जीवनचरित्र अपूर्ण–अधूरा ही रहा है, जिसे उन्होंने पूरा नहीं किया है। अतः शेष प्रसंग खण्ड १६ से २१ के छह खण्डोंमें समाकर शेष जीवनचरित्र संक्षेपमें समाप्त किया है जो आत्मार्थियोंको आत्मार्थप्रेरक होओ!

अनादिसे अपने घरको भूली हुई, निरन्तर परमें ही परिणमित होनेवाली चैतन्यपरिणति निज गृहके प्रति मुड़े अर्थात् स्वभावपरिणमनके सन्मुख हो और आत्मा चिदानन्दमय निजमंदिरमें नित्य निवास करके सहज आत्मस्वरूपमय शाश्वत सुख और शांतिमय निज अद्‌भुत अनुपम ऐश्वर्यको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राप्त हो, उसके लिए यदि कुछ भी प्रबल अवलम्बन है तो वह सद्बोध या स्वभावपरिणामी ज्ञानीपुरुषके शान्त सुधारसमय बोधवचन–उपदेशामृत ही हैं।

आशा है कि इस ग्रन्थमेंसे तत्त्वजिज्ञासु मोक्षार्थी गुणग्राही सज्जन हंसके समान सारको ग्रहण कर कृतार्थ बनेंगे और आत्मानन्दका आस्वादन करेंगे तथा दोषदृष्टिका परिहार कर स्वश्रेयके सन्मुख होंगे।

फिर भी, अगम्य ज्ञानी पुरुषोंके अति गहन चरित्र आदिका कथन होनेसे और हमारी बुद्धि अल्प होनेसे इस ग्रन्थमें सुज्ञ पाठकोंको कोई भी त्रुटि दिखायी दे तो उसके लिए उदारभावसे क्षमा प्रदान कर वह त्रुटि बतानेका उपकार करनेकी नम्र प्रार्थना है।

इस ग्रन्थके प्रकाशनमें भेंट देनेवाले मुमुक्षुजनोंका हम आभार व्यक्त करते हैं, तथा उस भेंटकी सूचि इसी ग्रन्थमें अन्यत्र दी गई है।

इस ग्रन्थमें 'श्रीमद् राजचन्द्र' ग्रन्थके पत्रोंकी जो जो संख्या निर्दिष्ट की गयी है, वह इस आश्रम द्वारा प्रकाशित आवृत्तिकी संख्या है।

श्री वसंत प्रिन्टिंग प्रेसके व्यवस्थापक श्री जयंति दलालने इस ग्रन्थके प्रकाशनमें स्वयं उत्साह और रस लिया है जिससे यह ग्रन्थ इतने सुन्दर ढंगसे प्रकाशित हो सका है।

सत्पदाभिलाषी सज्जनोंको सत्पदकी आराधनामें इस ग्रन्थका विनय और विवेकपूर्वक सदुपयोग आत्मश्रेयकी सिद्धिमें प्रबल सहायक बनो, इत्यलम्।

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम
स्टेशन अगास, वाया आणंद
गुरुपूर्णिमा, गुरुवार सं. २०१०
ता.१५-७-५४

सत्सेवक
रावजीभाई छ. देसाई

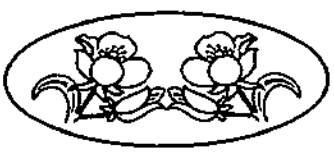

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रासंगिक निवेदन

(हिन्दी अनुवादके बारेमें)

प्रस्तुत ग्रन्थ परमकृपालु श्रीमद् राजचंद्र देवके परम भक्त आत्मज्ञ श्रीमद् लघुराजस्वामीके बोधका हिंदी अनुवाद है।

इस ग्रंथका सामान्य परिचय गुजराती आवृत्तिके निवेदन (हिन्दी अनुवाद) से हो ही जायगा, अतः इसके बारेमें यहाँ कुछ नहीं लिखा है।

प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद कई वर्ष पूर्व जोधपुर निवासी स्वातंत्र्यसेनानी श्री लालचंद्र जैनके पास करवाया गया था मगर वे आश्रमकी प्रणालिका तथा श्रीमद्की भक्तिसे अपरिचित होनेसे काफी जगह चूक गये थे। पश्चात् आश्रममें कई वर्ष तक पंडितके रूपमें रहे हुए श्री बाबुलाल सिद्धसेन जैनने इस अनुवादको शुद्ध करनेका प्रयत्न किया, मगर समयके अभावसे वे भी अनुवादको पूरा न्याय न दे सके। फिर अशोककुमार जैनने इस अनुवादको फिरसे मूलसे मिलान किया है और अर्थ-स्खलनाको सुधारनेका प्रयत्न किया है। चाहे जितना प्रयत्न करने पर भी अनुवाद अनुवाद ही होता है, वह मूलकी समानता कभी नहीं कर सकता। जो मीठाश मूलमें है, वह अनुवादमें कभी नहीं आ सकती। उसमें भी श्री लघुराज स्वामीकी भाषा विशेष ग्रामीण (जिसमें देशी और स्थानीय शब्दप्रयोग ज्यादा है) और सांकेतिक एवं मार्मिक भाषा होनेसे उसके समानार्थी शब्द मिलने भी कठिन है और मर्म समझना तो बूतेके बाहरकी बात है। ऐसी जगह शब्दशः अनुवादके बदले भाव ही लेना पड़ा है। यद्यपि भाव पूरी तरह पकड़ पाना मुश्किल है फिर भी यथाबुद्धि वैसा प्रयत्न किया गया है। फिर भी कहीं पर अर्थस्खलना हुई हो तो पाठकगण हमारे ध्यानमें लावे ताकि पुनरावृत्तिमें संशोधन किया जा सके।

एक मुख्य बात पाठकोंके ध्यानमें लानी है और वह यह है कि श्रीमद् लघुराज स्वामीने जो भी काव्य उद्धृत किये हैं वे काव्य प्रस्तुत अनुवादमें मूल भाषामें ही लिये हैं, अर्थात् काव्योंका अनुवाद नहीं किया गया है। मूल अनुवादक श्री लालचंद्र जैनने काव्योंका हिन्दीकरण करनेका प्रयास किया था, मगर सैद्धांतिक रीतिसे हमने उसे स्वीकार न करते हुए काव्य मूल भाषामें ही दिये हैं, क्योंकि काव्योंका हिन्दी पद्यानुवाद करनेमें अर्थ काफी बदल जाता है और उसकी गेयता खत्म हो जाती है। हाँ, वाचकोंकी सुगमताके लिये गुजराती काव्योंका भावार्थ पादटिप्पणमें दे दिया है। जो गुजराती काव्य श्रीमद् राजचंद्र रचित है उनका अर्थ आश्रम प्रकाशित 'श्रीमद् राजचंद्र' हिन्दी अनुवादमें आ चुका है और कई पद जो आश्रमके दैनिक भक्तिक्रममें बोले जाते हैं उनका अर्थ आश्रम प्रकाशित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'नित्यनियमादि पाठ' हिन्दी अनुवादमें छप चुका है। अतः ऐसे काव्योंका अर्थ प्रस्तुत ग्रंथमें पृष्ठवृद्धिके भयसे नहीं दिया गया है। उन काव्योंके तथा अन्य काव्योंके अर्थ खोजनेमें सुगमता हो उसके लिये ग्रंथके अन्तमें अवतरण-अर्थ-सूची नामका परिशिष्ट दिया गया है जिसमें किस काव्यका अर्थ कहाँ पर है उसका पृष्ठनिर्देश किया हुआ है।

परिशिष्टमें संक्षिप्त विषय-सूची, दृष्टांतसूची तथा पत्रोंके बारेमें विशेष जानकारी (कौनसा पत्र किस पर है आदि) भी दी गई है ताकि अभ्यासियोंको अभ्यासमें सहायता मिल सके।

पाठकगण इस आत्मोद्धारक ग्रंथका सावधानीपूर्वक, विनय और विवेकसहित सदुपयोग करें।

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
ता. ११-१०-०३

—प्रकाशक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद् लघुराज स्वामी (प्रभुश्री)

उपदेशामृत

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
श्रीमद् लघुराज स्वामीका जीवनचरित्र	(१३) से (८८)
उपदेशामृत–	
पत्रावलि-१	३
पत्रावलि-२	११५
विचारणा	१४२
उपदेशसंग्रह-१	१५३
उपदेशसंग्रह-२	२५४
उपदेशसंग्रह-३	३३५
उपदेशसंग्रह-४	३९५
उपदेशसंग्रह-५	४३१
उपदेशसंग्रह-६	४६८
कुछ स्फुट वचन	४७९
परिशिष्ट १ – पत्रोंके बारेमें विशेष जानकारी–पत्रावलि १	४८१
परिशिष्ट २ – पत्रोंके बारेमें विशेष जानकारी–पत्रावलि २	४८६
परिशिष्ट ३ – अवतरण-अर्थ-सूची	४८८
परिशिष्ट ४ – दृष्टांत तथा प्रसंगसूची	४९१
परिशिष्ट ५ – वचनामृत विवेचन	४९३
परिशिष्ट ६ – विषयसूची	४९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मरणांजलि

+अंगूठे सौ तीरथ वसतां संतशिरोमणिरूपेजी;
रणद्वीप सम दिपाव्यो आश्रम, आप अलिप्त स्वरूपेजी.
समजी अत्यंत शमाया स्वामी कदीये नहि छलकायाजी,
अबळा, बाळ, गोपाळ बधाने शिर छत्रनी छायाजी. १
समजे सर्वे मनमां अेवुं मुज पर प्रेम प्रभुनोजी;
परमकृपाळु सर्वोपरी छे हुं तो सौथी नानोजी.
परमप्रेममूर्ति प्रभुजीनी सहुं स्वप्ने न वियोगजी,
काळ कराळ दयाळ नहीं जरी, जडने शो उपयोगजी? २
ऋतु पर्व सौ पाछां आवे यादी प्रभुनी आपेजी,
प्रेममूर्तिनुं दर्शन क्यांथी? शोक सहु जे कापेजी.
प्रभुनां सन्मुख दर्शन विण तो, क्यांथी उमळको आवेजी?
स्मृतिसरोवर निर्मळ जेनुं तेने विरह सतावेजी. ३
त्रिविध तापथी बळता जीवो वचनसुधारस पीताजी,
संत समागम दर्शन पामी प्रारब्धे नहि बीताजी.
सत्ययुग सम काळ गयो अे सौने उरमां सालेजी,
दूर रह्या पण दयादृष्टिथी प्रभु अमने निहाळेजी. ४

—श्री ब्रह्मचारीजी

प्रशस्ति (शिखरिणी)

*अहो! आत्मारामी, मुनिवर लघुराज प्रभुश्री, कृपाळुनी आज्ञा उर धरी करी व्यक्त शिवश्री;
तमे उद्धार्या आ दुषम कळिकाळे जन बहु, कृपासिंधु वंदुं, स्वरूप-अनुभूति-स्थिति चहुं. १
कृपाळुनी आज्ञा मुज उर विषे निश्चळ रहो, गुरु ज्ञानीयोगे भवजळ तणो अंत झट हो;
सदा सेवी अेना विमल वचनामृत ऋतने; सदानंदे मग्न भजुं हुं सहजात्मस्वरूपने. २

(वसंततिलका)

*श्री राजचंद्र गुरुवर्यतणा प्रतापे, अध्यात्मज्ञान प्रगटावी प्रभुश्री आपे;
वर्षावी बोधतणी अमृतवृष्टि आ जे, थाओ मुमुक्षु जनने शिवसौख्य काजे. ३
जे भव्य आ जीवन ज्ञानीतणुं सुणीने, संभाळशे सहज-आत्मस्वरूप-श्रीने;
संसार-सागर अपार तरी जशे ते, शांति समाधि सुख शाश्वत पामशे ते. ४

—श्री रावजीभाई देसाई

+ (१) संतशिरोमणि ऐसे श्री लघुराजस्वामीके अंगूठेमें सब तीर्थ निवास करते हैं अर्थात् उनके चरणकमल जंगम तीर्थरूप हैं। स्वयं अलिप्त रहकर उन्होंने रणद्वीपकी तरह आश्रमकी शोभा बढाई है। वे समझकर समा गये, मगर कभी छलके नहीं। अबला, बाल, गोपाल सभीके लिये वे शिरछत्ररूप हैं। (२) उनकी प्रेमदृष्टि देखकर सभीको ऐसा ही लगता है कि प्रभु मुझ पर प्रेमभाव रखते हैं। उन्होंने परमकृपालुदेवको सर्वोपरि मानकर स्वयंको सबसे छोटा माननेकी लघुता धारण की है। ऐसे परम प्रेममूर्तिरूप प्रभुश्रीका मैं स्वप्नमें भी वियोग सहन नहीं कर सकता, मगर कराल (दुष्ट) कालको जरा भी दया नहीं आई और उन्हें पृथ्वी परसे उठा लिया। सच, जड़ ऐसे कालको दयाका भाव कैसे होगा? (३) ऋतुपर्व सब प्रभुकी यादी दिलाते हैं, प्रसंग प्रसंगपर उनकी कमी महसूस होती है, मगर अब सब शोक दूर करनेवाली प्रेममूर्तिका दर्शन कहाँसे होगा? प्रभुके प्रत्यक्ष दर्शनके बिना तो हुलास कैसे आयेगा? निर्मल स्मृतिवालेको विरह ज्यादा सताता है। (४) आपकी हयातिमें त्रिविध तापसे दग्ध जीव आपके वचनामृतको पीते थे और आपके समागम दर्शनके प्रभावसे दुःखरूप प्रारब्धसे भी नहीं डरते थे; ऐसा सत्ययुग जैसा काल चला गया यह सबके दिलमें चुभता है परन्तु प्रभु दूर रहते हुए भी दयादृष्टिसे हमें देख रहे हैं, यह संतोषकी बात है।

* अर्थके लिये देखिये पृष्ठ (८७-८८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

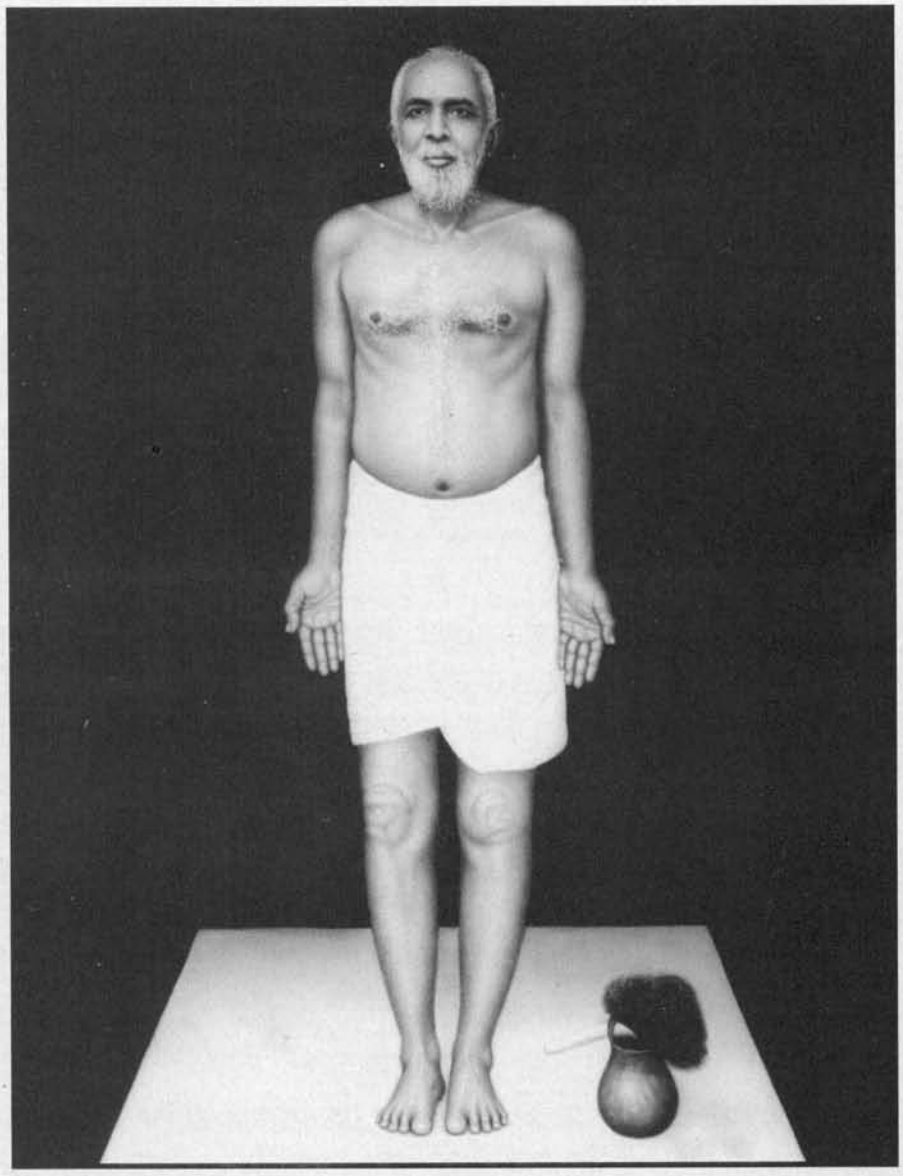

श्रीमद् लघुराज स्वामी

जन्म : वटामण
वि.सं.१९१० आश्विन वद १

देहोत्सर्ग : अगास आश्रम
वि.सं.१९९२, वैशाख सुद ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद् लघुराज स्वामी (प्रभुश्रीजी) का जीवनचरित्र

ॐ

[१]मन वचन शरीरे पुण्य सुधा प्रकाशे,
त्रिभुवन पण जेना उपकारे विकाशे,
परगुण-परमाणु गिरि जेवा गणीजे,
निज उर विकसावे संत ते केटला छे?

जिन्होंने सम्यक्प्रकारसे आत्मस्वरूपका अनुभव किया है, जिनकी सर्वत्र आत्मदृष्टि है, उन संत महात्माकी मन-वचन-कायाकी प्रत्येक चेष्टाके अद्भुत माहात्म्यसे यह संपूर्ण विश्व शोभायमान है। उनके लिये शत्रु भी मित्रके समान हैं, वे अपने अद्भुत प्रभावसे अवगुणीको भी उत्तमताकी ओर प्रेरित करते हैं और प्रत्येक प्राणीको अपने आत्मानन्दसे उज्वल कर आत्मशक्तिका विकास करते हैं, ऐसे अनन्त उपकारी महात्माको अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार!

★★★

१

बहुत वर्षों पहले वैष्णव सम्प्रदायका एक भावसार कुटुम्ब दुष्कालके कारण मध्य गुजरातमेंसे पश्चिमकी ओर भाल प्रदेशके एक गाँवमें जाकर बस गया था। उस गाँवका नाम वटामण है। मात्र दाँतिये और टोकरे ही उसकी पूँजी थी। *मजदूरी करके गुजर करते थे, मजदूरीमें मिलनेवाले गेहूँ आदि अनाजकी बचत थोड़े वर्षोंमें हुई, इतनेमें फिर दुष्काल पड़ गया। उस समय रेलकी सुविधा नहीं थी। मात्र स्थानीय अनाजसे सबको निभाना पड़ता था, जिससे अनाज बहुत महँगा हो गया। उस समय इस भावसार कुटुम्बको अपने अनाजके संग्रहसे अच्छी रकम प्राप्त हुई और गाँवमें धनवान माने जानेवाले कुटुम्बोंमें उनकी गिनती होने लगी। अब मजदूरीका धंधा छोड़कर वे लेनदेनका धंधा करने लगे और धीरे धीरे जमीन-जायदाद भी प्राप्त कर ली।

खंभातके स्थानकवासी सम्प्रदायके साधु उस गाँवमें बार बार आते-जाते थे। उनके समागमसे उस कुटुम्ब-परम्परामें स्थानकवासी जैनधर्मकी कुलश्रद्धा हुई।

विक्रमकी बीसवीं सदीके प्रारंभमें उस कुटुंबमें कृष्णदास गोपालजी नामक व्यवहारकुशल और गाँवमें अग्रगण्य पुरुष हुए। उन्होंने चार ब्याह किये फिर भी एक भी संतान नहीं हुई। उनकी आयुके अंतिम वर्षमें कुशला (कसली) बाईको गर्भ रहा। उसी अरसेमें कॉलेराके रोगका प्रारंभ हुआ था। कृष्णदास घोड़ीपर बैठकर उगाही करने गये थे। रास्तेमें कॉलेरासे उल्टी हुई और उन्हें घर लाया गया, पर उस बीमारीसे वे बच न पाये।

---

१. अर्थ—जिसके मन, वचन और कायामें पुण्यरूपी अमृत भरा हुआ है; जो तीनों लोकको उपकारकी परंपरासे भर देता है; दूसरोंके परमाणु जैसे गुण भी जो पर्वत समान गिनकर सदा अपने हृदयमें विकसित करते हैं ऐसे संत दुनियामें कितने हैं?

* इनके उत्तराधिकारियोंका कहना है कि इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी और सम्पन्न थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२

सूर्यका उदय केवल पूर्व दिशामें होता है, परंतु चारों दिशाएँ प्रफुल्लित, प्रकाशित होती हैं, उसी प्रकार सं.१९१०में पिताकी मृत्युके बाद एक महाभाग्यशाली अतिप्रतापी पुरुषके जन्मसे चारों माताओंका वैधव्य दुःख विस्मृत होता गया। और निर्वंशके कलंकको दूर करनेवाले इस पुत्रके प्रति चारों माताओंका और पूरे गाँवका प्रेम बढ़ता गया। उनका नाम लल्लुभाई रखा गया। उस समय ग्राम्यस्तरकी पाठशालाएँ थीं, वहाँ लल्लुभाई पढ़ने जाते थे किन्तु अन्य बालकोंकी अपेक्षा उन्हें याद कम रहता और गणित या अंकोंमें उनकी बुद्धिका प्रवेश कठिनाईसे होता। पाठशालाके शिक्षक उनसे कंकड़ मँगवाते और दो-दो या तीन-तीनकी ढेरियाँ लगवाकर अंक सिखाते तब समझमें आता।

जब थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना और गिनना आया तब दुकानपर बैठने लगे। पढ़ाई बंद कर दी। लेनदेन और नामेका काम मुनीम करता था। स्वयं तो मात्र देखरेख रखते। सभी प्रसन्न रहें इस प्रकार व्यवहार करते।

स्वयं उनके द्वारा अपने बचपनकी कही गयी दो घटनाओंसे उनका संस्कारी स्वभाव प्रगट होता है। उस समयमें छोटे बच्चोंके हाथोंमें चाँदीके कड़े पहनाये जाते थे। वैसे ही कड़े उन्हें भी पहनाये गये थे और उनके संबंधियोंके बच्चोंके हाथोंमें भी वैसे ही कड़े थे। एक दिन वे अन्य गाँवमें गये थे तब अन्य बच्चोंके साथ वे भी मंदिरमें गये थे। कई पीढ़ियोंसे स्थानकवासी होनेसे प्रतिमाको नहीं मानते थे, किन्तु कौतुकवृत्तिसे देखनेके लिए सभी बच्चे मंदिरमें गये थे। वहाँ अन्य बच्चोंने जिन-प्रतिमाको कड़ोंकी ठेस मारकर तिरस्कार किया, किन्तु लल्लुभाईको यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने स्वयं वैसा कुछ नहीं किया। किन्तु अब उसका स्मरण होनेपर भी कँपकँपी छूटती है कि अज्ञान-दशामें जीव कैसे कर्म बाँध लेता है! ऐसा वृद्धावस्थाके समय अपने उपदेशमें वे कहते थे। पूर्वके शुभ संस्कारसे पापकृत्योंके प्रति विपरीत प्रसंगोंमें भी सहज अनिच्छा रहती है, उसका यह एक उदाहरण है।

एक बार उनके कोई संबंधी जो स्वामीनारायण सम्प्रदायके अनुयायी थे, किसी कामसे मेहमान बनकर लल्लुभाईके यहाँ आये थे। इस सम्प्रदायवाले जल्दी उठकर स्नान करते हैं, अतः उनकी मदद करनेके लिए लल्लुभाई कुए पर गये। बच्चोंको मेहमान या नवागंतुकोंके प्रति सन्मान होता है और उनका कुछ काम कर देना उस उम्रमें अच्छा लगता है। बातचीतके दौरान उन मेहमानने कहा कि 'स्वामीनारायण स्वामीनारायण' कहकर एक घड़ेसे स्नान करनेपर मोक्ष प्राप्त होता है। यह सुनकर लल्लुभाईकी वृत्ति मोक्षकी ओर तत्पर हुई और सर्दियोंकी ठण्डमें उन्होंने भी ठण्डे पानीका एक घड़ा अपने सिरपर डाल दिया। मोक्ष कोई उत्तम वस्तु है और उसे प्राप्त करनेका कोई साधन हो तो उसे करना चाहिए, ऐसी पूर्वसेवित भावनाके ये संस्कार बचपनमें भी दृष्टिगोचर होते हैं।

गाँवके लोगोंमें उनकी प्रतिष्ठा अच्छी थी, जिससे अनेक गरासिया[1], पटलिया[2], अहीर तथा ब्राह्मण, बनिये आदि सबके साथ काम पड़ता था। उचित व्यवहारपूर्वक प्रवृत्ति करते हुए सबकी प्रसन्नता प्राप्त करनेकी कुशलता छोटी उम्रसे ही उन्होंने प्राप्त कर ली थी।

युवावस्थामें उनका विवाह हुआ। गर्भावस्थामें अधिक अमरूद खानेसे उनकी पत्नीका शरीर

---

१. गरासिया=गुजरातमें राजपूतोंकी एक जाति २. पटेल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फूल गया और उसकी मृत्यु हो गयी। वरतेज गाँवके भावसारकी पुत्री नाथीबाईके साथ उनका दूसरा विवाह हुआ। यों सांसारिक सुखमें सत्ताईस वर्ष तककी उम्र व्यतीत हुई। उदारवृत्ति होनेसे उनसे उधार पैसे लेने अनेक लोग आते। और उस समयके गाँवके लोगोंकी प्रामाणिकता और सरलताके अनुसार अधिकांश लोग स्वतः ही ब्याजसहित रुपये वापस लौटा जाते या अनाज, गुड़ आदि वस्तुएँ देकर ऋण उतार देते। किन्तु उगाही कर, लोगोंको कटु शब्दोंसे सताकर पैसेके लिए किसीसे वैर बाँधना या सरकारमें फरियाद करना, जब्ती लाकर पैसा वसूल करना इत्यादि उग्र उपायोंसे इस युवकका हृदय काँप जाता था। कुछ ग्राहक जो ऐसे उपायोंके बिना वशमें नहीं होते थे, उन्हें गाँवके अन्य गृहस्थोंके द्वारा शर्ममें डालकर, समझाकर वे अपना काम निकाल लेते थे। फिर भी उधारी बहुत बढ़ जानेसे और दिनोंदिन लोगोंकी वृत्तियोंमें परिवर्तन होनेके कारण पैसा देकर वैर बाँधने जैसे इस ऋण देनेके व्यापारसे वे उकता गये थे।

सं.१९३७ में उन्हें पाण्डु रोग हुआ। अनेक प्रकारके उपचार करनेपर भी उनकी व्याधि बढ़ती गयी। एक वर्षमें तो शरीर बहुत क्षीण हो गया। एक वैद्यने पर्पटीकी मात्रा खिलायी और कहा कि आयुष्य होगा और बच गये तो शरीरका गठन सुदृढ़ हो जायेगा। परंतु उससे भी यह बीमारी दूर नहीं हुई। धोलकामें एक प्रसिद्ध वैद्य था। उसके विषयमें यह कहावत प्रसिद्ध थी कि जिसका बचना निश्चित हो उसीका वह इलाज करता है। अतः उस वैद्यको दिखानेके लिये स्वयं धोलका गये। वैद्यने परीक्षा कर इलाज करनेसे इन्कार कर दिया। इसलिये उनके मनमें यह निश्चित हो गया कि अब यह शरीर नहीं रहेगा। अतः धोलकासे बतासे लेकर वटामण आये। गाँवमें जो भी खबर पूछने आता उसे पाँच-पाँच बतासे देकर उनके प्रति स्वयं द्वारा हुए दोषोंकी अंतिम क्षमायाचना कर खमतखामणा* करने लगे। गाँव तथा अन्य गाँवके सभी पहचानके लोगोंसे, सगे-संबंधियोंसे क्षमायाचना करनेके बाद उन्हें विचार आया कि जैसे गरीब लोग मजदूरी करके दिन व्यतीत करते हैं, उसी प्रकारका हमारा कुटुंब भी है। पूर्व भवमें कुछ धर्मकी आराधना की होगी जिसके फलस्वरूप धन, वैभव, प्रतिष्ठा इस कुटुम्बकी विशेष दिखायी देती है। किन्तु पूर्वकी कमाई तो खर्च हो जायेगी। भविष्यमें सुखकी इच्छा हो तो इस भवमें धर्मकी आराधना कर लेनी चाहिए। इस विचारने अंतमें ऐसा स्वरूप लिया कि यदि मेरी यह बीमारी मिट गई तो मैं संसारका त्याग कर साधु बन जाऊँगा। उनकी व्यवहारकुशल बुद्धिने सुझाया कि साधु बनना हो तो साथमें कोई उपदेश-व्याख्यान देनेमें प्रवीण साधु भी होना चाहिए। अतः अपने गाँवके और घरके पड़ौसी मित्र जैसे देवकरणजी नामक भावसार जो तीक्ष्ण बुद्धिवाले थे, वे भी साथमें साधु हो जायें तो बहुत अच्छा रहे, यों विचार कर, उपाश्रयमें दोनों नित्य सामायिक करने जाते थे उस समय उन्होंने देवकरणजीसे पूछा कि मैं साधु बनूँ तो तुम मेरे शिष्य बनोगे? देवकरणजीको लगा कि ऐसे सुखी कुटुम्बका और इकलौता पुत्र संसार-त्याग करे यह तो असम्भव ही है, यह सोचकर उन्होंने कह दिया कि 'हाँ, यदि तुम संसार-त्याग करोगे तो मैं भी तुम्हारे साथ त्यागी बनकर तुम्हारा शिष्य बन जाऊँगा।' देवकरणजीके सिर पर कर्ज था उसे चुका देना स्वयं स्वीकार किया, अतः देवकरणजीको सच्चा लगा और साथमें आनन्द भी हुआ।

---

* क्षमापना (क्षमा करना-कराना)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वटामण गाँवमें एक ठाकुर दवाईकी पुड़ियाँ बेचता था। कसलीबाई उसके यहाँसे थोड़ी पुड़ियाँ लायीं और पुत्रको खिलायीं। उससे दस्त हो गये और रोग शांत हुआ। सबको प्रसन्नता हुई। पर लल्लुभाई और देवकरणजीने जो गुप्त विचार कर रखा था उसे अब पूरा करनेके लिये खंभातवाले गुरु हरखचन्दजीके पास जानेका उन्होंने निश्चय किया। उस समय वे सूरतमें थे। वहाँ जाना तो है पर चुपचाप जाना है यों विचारकर सम्बन्धियोंके यहाँ जानेके बहानेसे सायला (काठियावाड) गये। वहाँ दो-चार दिन रहकर वढवाण केम्पसे गाड़ीमें बैठकर सूरत गये। गुरुजीको वन्दना करके दोनोंने दीक्षा लेनेके भाव प्रदर्शित किये। माता-पिताकी अनुमति बिना दीक्षा देनेसे उन्होंने इन्कार कर दिया। दीक्षा लेनेकी बात माँके कानमें पड़ी कि वह शंकर मुनीमको साथ लेकर रोती-धोती सूरत आयी और गुरुजीकी साक्षीसे यह स्वीकार किया कि दो वर्ष तक संसारमें रहनेके बाद यदि वैराग्य उत्पन्न हो तो वह दीक्षा लेनेसे नहीं रोकेगी। दूसरा कोई उपाय नहीं रहनेसे लल्लुभाई माताजी आदिके साथ वापस घर लौटे और अधिकांश समय धर्मध्यानमें बिताने लगे। संसार छोड़ना ही है ऐसा दृढ़ निश्चय होनेके बाद परवशतासे दो वर्ष तक घरमें रहना पड़ा।

सं.१९४० में नाथीबाईने एक पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम मोहन रखा गया। सर्वत्र आनन्द हुआ। किन्तु उस समय लल्लुभाई और देवकरणजीको पुनः दीक्षा संबंधी विचार-तरंगें उठीं। पुत्र सवा माहका हुआ तब दोनों गुरुको वंदन करने गोधरा गये और दीक्षा देनेकी विनति की। गुरुने वैराग्य बढ़े वैसा उपदेश दिया किन्तु माताकी आज्ञा बिना दीक्षा देनेसे इन्कार किया। तब लल्लुजीने गुरुजीसे वटामण पधारनेकी प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार किया और विहार कर थोड़े दिन बाद वटामण आकर एक माह वहाँ रहे। माताजीको भी वैराग्यका बोध सुनने और गुरुसेवाका लाभ मिला और उनकी सम्मतिसे सं.१९४० के ज्येष्ठ कृष्ण ३ मंगलवारके दिन खंभातमें दोनोंको दीक्षा देनेका निश्चित हुआ। फिर गुरु हरखचंदजी खंभात पधारे और शुभ मुहूर्तमें माताजी आदि संघके समक्ष दोनोंको दीक्षा दी तथा देवकरणजी स्वामीको श्री लल्लुजी स्वामीका शिष्य बनाया।

३

श्री लल्लुजीके दीक्षा लेनेके पहले खंभात स्थानकवासी सम्प्रदायमें बहुत थोड़े साधु रह गये थे। किन्तु उनके साथ तथा बादमें दीक्षा लेनेवालोंकी संख्या बढ़नेसे थोड़े समयमें १४ साधु हो गये, जिससे सबको और विशेषकर हरखचंदजी गुरुको श्री लल्लुजीके मंगल पदार्पणका प्रभाव समझमें आने लगा। श्री देवकरणजी और श्री लल्लुजी साधु समाचारी, शास्त्र, स्तवन, सज्झाय आदि पढ़कर कुशल हो गये। इनमें भी श्री देवकरणजी व्याख्यानमें बहुत कुशल होनेसे विशेष लोकप्रिय हो गये। परंतु सरलता, गुरुभक्ति और पुण्यप्रभावके कारण श्री लल्लुजीने गुरुजीसे लेकर सभी साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओंके हृदयमें अभीष्ट पद प्राप्त कर लिया था। सभीके हृदयमें ऐसा लग रहा था कि भविष्यमें गुरुजीकी गद्दीको सुशोभित करनेवाले श्री लल्लुजी स्वामी हैं। दीक्षा लेनेके बाद उन्होंने पाँच वर्ष तक एकान्तर उपवास किये थे, अर्थात् एक दिन आहार लेते और दूसरे दिन उपवास करते। कठोरमें चातुर्मास था तब एक साथ १७ उपवास किये थे। यों बाह्य तपके साथ-साथ कायोत्सर्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान आदि भी गुरुके साथ करते। रात्रिमें हरखचंदजी गुरु एक-दो घण्टे 'नमोत्थुणं' का कायोत्सर्ग करते तब उनके साथ श्री लल्लुजी भी कायोत्सर्ग करते। किन्तु कामवासना निर्मूल नहीं हुई, जिससे गुरुको बार-बार पूछते। तब गुरु जप तप आदि क्रिया बताते और उसे वे करते रहते। किन्तु जब तक अपनी विकारवृत्ति दूर न हो तब तक उन्हें उस क्रियासे संतोष न होता। स्वयं अनेक बार कहते थे कि उपाश्रयके चबूतरे पर बैठकर स्तवन सज्झाय गाते और मनमें लोगोंको सुनानेका भाव रहता, परंतु उस समय अन्तर्वृत्तिकी समझ नहीं थी।

सं.१९४६ में खंभात स्थानकवासी संघके संघवी लालचंद वखतचंद वकीलके दत्तक पुत्र अंबालालभाई तथा माणेकचंद फतेहचंदके पुत्र त्रिभोवनभाई अहमदाबादमें छगनलाल बेचरदासके कुटुम्बके विवाह प्रसंगमें गये थे। वहाँ उनका श्री जूठाभाई उजमशीभाईसे समागम हुआ। उनके संगसे उन्हें इस बातकी जानकारी हुई कि श्रीमद् राजचंद्र आत्मज्ञानी पुरुष हैं और उनके उपदेशसे कल्याण हो सकता है। श्रीमद् राजचंद्रने श्री जूठाभाईको जो पत्र लिखे थे उन पत्रोंकी नकल उन्होंने कर ली और खंभात पधारनेके लिए श्रीमद् राजचंद्रको अनेक पत्र लिखे; पर जब कोई उत्तर नहीं मिला तो स्वयं उनके वहाँ जानेकी इच्छा प्रदर्शित करता हुआ अंतिम पत्र लिखा। तब उसका उत्तर मिला कि थोड़े दिनोंमें वे स्वयं खंभात पधारेंगे।

एक दिन श्री लल्लुजी, दामोदरभाई नामक पाटीदारके साथ श्री भगवतीसूत्रके पन्ने नीचे पढ़ रहे थे। उपाश्रयके ऊपरके खण्डपर श्री हरखचंदजी महाराज उसी सूत्रपर व्याख्यान दे रहे थे। श्री भगवतीसूत्रमें ऐसा अधिकार आया कि भवस्थिति परिपक्व हुए बिना किसीका मोक्ष नहीं हो सकता। इस विषय पर श्री लल्लुजी, दामोदरभाईसे पूछ रहे थे कि भवस्थिति परिपक्व होनेपर ही मोक्ष होता है तो फिर साधु बनने और कायक्लेश आदि क्रियाएँ करनेकी क्या आवश्यकता है? इतनेमें अंबालालभाई दो-तीन युवकोंके साथ दूर कुछ वाचन करते दिखायी दिये। श्री लल्लुजीने उनसे कहा, "व्याख्यानमें क्यों नहीं जाते? ऊपर जाओ या यहाँ आकर बैठो।" तब वे ऊपर जानेके बजाय वहाँ आकर बैठे और उपरोक्त विषयपर थोड़ी चर्चा हुई, किन्तु संतोषकारक उत्तर न मिला। फिर हरखचंदजी महाराजसे पूछनेका निश्चित किया गया। इस पर अंबालालभाईने कहा कि "यह प्रश्न तो क्या, पर अनेक आगम जिन्हें हस्तामलकवत् हैं ऐसे पुरुष श्रीमद् राजचंद्र हैं। उनके पत्र हम पढ़ रहे थे। वे यहाँ खंभातमें पधारनेवाले हैं।" यह बात सुनकर तथा पत्र पढ़कर श्री लल्लुजीको श्रीमद् राजचंद्रसे मिलनेकी तीव्र भावना जागृत हुई। वे पधारें तब उन्हें अवश्य उपाश्रयमें लेकर आनेकी विनती भी की।

सं.१९४६ के चातुर्मासमें दिवालीके दिनोंमें श्रीमद् राजचंद्र खंभात पधारे और अंबालालभाई आदिके आग्रहसे उपाश्रयमें भी गये। हरखचंदजी महाराजने सुना था कि श्रीमद् राजचंद्र शतावधानी हैं, अतः उसे कर दिखानेके लिए विनती की। किन्तु उन्होंने सबके समक्ष ऐसे प्रयोग करने बंद कर दिये थे, फिर भी सभीके आग्रहसे तथा हितका कारण जानकर उपाश्रयमें थोड़े प्रयोग कर दिखाये। फिर हरखचंदजी महाराजके साथ थोड़ी शास्त्रसंबंधी ज्ञानवार्ता हुई, जिससे प्रभावित हो उन्होंने सबके समक्ष श्रीमद्की बहुत प्रशंसा की। अतः श्री लल्लुजीने अपने गुरुजीसे उनके पास शास्त्रका मर्म समझनेकी आज्ञा माँगी, और गुरुजीने अनुमति दी। फिर श्री लल्लुजीने श्रीमद्से उपाश्रयके ऊपरके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खण्ड पर पधारनेकी विनती की। श्रीमद् ऊपर गये। श्रीमद्का गृहस्थ वेश और अपना मुनिवेश होनेपर भी स्वयंको उनसे छोटा मानकर श्री लल्लुजीने तीन साष्टांग दण्डवत् नमस्कार किये। फिर श्रीमद्ने श्री लल्लुजीसे पूछा, "आपकी क्या इच्छा है?" श्री लल्लुजीने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा, "समकित (आत्माकी पहचान) और ब्रह्मचर्यकी दृढ़ताकी मेरी माँग है।" श्रीमद् थोड़ी देर मौन रहे, फिर कहा, "ठीक है।" पश्चात् श्री लल्लुजी स्वामीके दाँये पाँवके अंगूठेको पकड़कर श्रीमद्ने ध्यानसे देखा। फिर नीचे उतरे और रास्तेमें श्री अंबालालभाईको बताया कि श्री लल्लुजी पूर्वके संस्कारी पुरुष हैं।

दूसरे दिन श्री लल्लुजी, श्रीमद्के समागमके लिए श्री अंबालालभाईके घर गये। वहाँ एकान्तमें श्रीमद्ने उनसे पूछा, "आप हमें सन्मान क्यों देते हैं?" श्री लल्लुजी स्वामीने कहा, "आपको देखकर अत्यंत हर्ष और प्रेम उत्पन्न होता है, मानो आप हमारे पूर्व भवके पिता हों इतना अधिक भाव पैदा होता है, किसी प्रकारका भय नहीं रहता। आपको देखते ही आत्मामें ऐसी निर्भयता आ जाती है।"

श्रीमद्ने पूछा, "आपने हमें कैसे पहचाना?"

श्री लल्लुजीने कहा, "अंबालालभाईके कहनेसे आपके संबंधमें जाननेमें आया। हम अनादि कालसे भटक रहे हैं अतः हमारी संभाल लीजिये।" श्रीमद्ने 'सूयगडांग' सूत्रमेंसे थोड़ा विवेचन किया। सत्यभाषा, असत्यभाषा, मिश्रभाषा आदिके विषयमें उपदेश दिया। श्री लल्लुजी स्वामी प्रतिदिन श्रीमद्के पास सत्संगके लिये आते। जब तक श्रीमद् खंभातमें रहे तब तक सातों ही दिन वे उनके पास गये।

एक दिन श्री लल्लुजीस्वामीने श्रीमद्से कहा, "मैं ब्रह्मचर्यकी दृढ़ताके लिए पाँच वर्षसे एकांतर उपवास करता हूँ और कायोत्सर्ग ध्यान भी करता हूँ, फिर भी मानसिक पालन बराबर नहीं हो पाता।"

श्रीमद्ने कहा, "लोकदृष्टिसे नहीं करना चाहिए, लोगोंको दिखानेके लिए तपश्चर्या नहीं करनी चाहिए। किन्तु स्वादका त्याग हो तथा ऊनोदरी तप (पूरा पेट भरकर न खाना) हो इस प्रकार आहार करें। स्वादिष्ट भोजन अन्यको दे देवें।"

श्री लल्लुजी स्वामीने फिर कहा, "मैं जो कुछ देखता हूँ वह भ्रम है, झूठा है ऐसे देखता हूँ, ऐसा अभ्यास करता हूँ।"

श्रीमद्ने कहा, "आत्मा है, ऐसा देखा करें।"

फिर श्रीमद्का मुंबई जाना हुआ उसके बाद श्री लल्लुजी स्वामी, भाईश्री अंबालालके द्वारा श्रीमद्के साथ पत्रव्यवहारसे ज्ञानवार्ताका लाभ प्राप्त करते।

सं.१९४७में वटामणमें चातुर्मास किया और सं.१९४८ में साणंदमें चातुर्मास पूरा करके लल्लुजी, श्री देवकरणजीके साथ सूरत पधारे। तब सूरतके निवासी किन्तु मुंबईमें व्यापार करनेवाले व्यापारी भाइयोंने, श्री देवकरणजी स्वामीके व्याख्यानसे आकर्षित होकर उन्हें मुंबईमें चातुर्मास करनेकी विनती की, जिससे सं.१९४९का चातुर्मास मुंबईमें निश्चित हुआ।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४

श्री लल्लुजी स्वामीके भाव तो श्रीमद् राजचंद्रके समागमके लिए रहते थे और सं.१९४९का चातुर्मास मुंबईमें करनेका नक्की हुआ, अतः मुंबई पहुँचनेके बाद श्रीमद्के समागमके लिए वे उनकी दुकानपर गये। श्रीमद्ने पूछा, "आपको इस अनार्य जैसे देशमें चातुर्मास क्यों करना पड़ा? मुनिको अनार्य जैसे देशमें विचरण करनेकी आज्ञा थोड़े ही होती है?"

श्री लल्लुजीने कहा, "आपके दर्शन-समागमकी भावनासे यहाँ चातुर्मास किया है।"

श्रीमद्ने पूछा, "यहाँ आनेमें आपको कोई अड़चन करता है?

श्री लल्लुजी स्वामीने कहा, "नहीं, हमेशा यहाँ आऊँ तो घण्टे भरका समागम मिलेगा?"

श्रीमद्ने कहा, "मिलेगा।"

श्री लल्लुजी यथावसर श्रीमद्के समागमके लिए उनकी दुकानपर जाते। उन्हें देखकर श्रीमद् दुकानसे उठकर पासके एक अलग कमरेमें जाकर 'सूयगडांग' सूत्र आदिमेंसे उन्हें सुनाते, समझाते।

एक बार श्री लल्लुजीने श्रीमद्से उनके चित्रपटकी माँग की, किन्तु उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। पुनः पुनः आग्रह किया तब निम्न गाथा एक कागजपर लिखकर दी—

"संबुज्झहा जंतवो माणुसत्तं दट्ठुं भयं बालिसेणं अलंभो ।
एगंतदुक्खे जरिएव लोए सक्कम्मणा विप्परियासुवेइ ।।"

भावार्थ—हे जीवो! तुम बोध प्राप्त करो, बोध प्राप्त करो। मनुष्य भव मिलना बहुत ही दुर्लभ है, ऐसा समझो। अज्ञानसे सद्विवेककी प्राप्ति दुर्लभ है, ऐसा समझो। सारा लोक केवल दुःखसे जल रहा है, ऐसा जानो और अपने-अपने उपार्जित कर्मों द्वारा इच्छा नहीं होनेपर भी जन्ममरणादि दुःखोंका अनुभव करते रहते हैं, उसका विचार करो।"

थोड़े दिनोंके बाद 'समाधिशतक'में से १७ गाथा तक श्रीमद्ने श्री लल्लुजीको पढ़कर सुनाया तथा वह पुस्तक पढ़ने-विचारनेके लिए दी। पुस्तक लेकर सीढ़ी तक गये ही थे कि श्री लल्लुजीको वापस बुलाकर 'समाधिशतक' के पहले पृष्ठ पर निम्न अपूर्व पंक्ति लिख दी—

"ॐ आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।"

एक दिन श्रीमद्ने पूछा, " 'समाधिशतक'का वाचन चल रहा है?"

श्री लल्लुजी स्वामीने कहा, "अभी तो मुंबईके कोलाहलमें ठीक नहीं रहेगा, ऐसा मानकर सँभालकर बाँध रखा है। यहाँसे विहार करके जायेंगे तब उसके अभ्यासमें लग जायेंगे।"

चातुर्मास पूरा होने आया तब एक दिन श्री लल्लुजीने श्रीमद्से पूछा, "यह सब मुझे रुचिकर नहीं लगता, एकमात्र आत्मभावनामें निरतंर रहूँ ऐसा कब होगा?"

श्रीमद्ने कहा, "बोधकी आवश्यकता है।"

श्री लल्लुजीने कहा, "बोध दीजिए।"

श्रीमद् मौन रहे। यों बारंबार श्रीमद् मौन रहनेका बोध देते, और इसीमें विशेष लाभ है ऐसा बताते। इस परसे श्री लल्लुजीने मुंबई चातुर्मास पूरा कर सूरतकी ओर विहार किया तबसे तीन वर्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्यंत मौन धारण किया। मात्र साधुओंके साथ आवश्यकतानुसार बोलनेकी तथा श्रीमद्के साथ परमार्थ हेतु प्रश्नादि करनेकी छूट रखी थी। 'समाधिशतक'का वाचन भी अब प्रारंभ किया। इससे स्वयंको अपूर्व शांतिका वेदन होता था, यों उन्होंने उस समयका वर्णन करते हुए कई बार कहा था।

सं.१९५० और १९५१के दोनों चातुर्मास सूरतमें हुए थे। सूरतमें वेदांत ग्रंथों तथा कुछ वेदान्तियोंका परिचय हुआ। जिससे देवकरणजी स्वामी अपनेको परमात्मा मानते और वैसा ही कहते। श्री लल्लुजीने श्रीमद्को यह बात लिखकर बतायी थी। उसके उत्तरमें उन्होंने लिखा था कि "ज्ञानीपुरुषके समागमकी उपासनाके बिना जीव स्वच्छंदसे जो निश्चय करता है, वह छूटनेका मार्ग नहीं है। सभी जीव परमात्मस्वरूप हैं इसमें संशय नहीं है, तो फिर श्री देवकरणजी अपनेको परमात्मस्वरूप मानें तो यह बात असत्य नहीं है, किन्तु जब तक वह स्वरूप यथातथ्य प्रगट न हो तब तक मुमुक्षु–जिज्ञासु रहना अधिक अच्छा है और इसी मार्गसे यथार्थ परमात्मस्वरूप प्रगट होता है। इस मार्गको छोड़कर प्रवृत्ति करनेसे उस पदका भान नहीं होता, तथा श्री जिन वीतराग सर्वज्ञ पुरुषोंकी असातना करनेरूप प्रवृत्ति होती है। अन्य कुछ मतभेद नहीं है। मृत्यु अवश्य आनेवाली है।" यह पढ़कर वे सावधान हुए।

एक दिन श्रीमद् सूरत पधारे तब मुनियोंके पास आये। उस समय श्री देवकरणजीने प्रश्न पूछा, "मैं व्याख्यान देकर आता हूँ तब श्री लल्लुजी महाराज मुझे कहते हैं कि मैंने अभिमान किया, जब ध्यान करता हूँ तब उसे तरंग कहते हैं, तो क्या वीतराग प्रभु ऐसे पक्षपातवाले होंगे कि इनकी क्रियाको स्वीकारें और मेरी क्रियाको स्वीकार न करें?"

श्रीमद्ने शांतिसे उत्तर दिया, "स्वच्छंदसे जो कुछ भी किया जाता है वह सब अभिमान ही है, असत्साधन है और सद्गुरुकी आज्ञासे जो किया जाता है वह कल्याणकारी धर्मरूप सत्साधन है।"

सूरतमें श्री लल्लुजी स्वामीको दस-बारह माहसे बुखार आता था। इसी समय सूरतके एक लल्लुभाई झवेरी दस-बारह माहकी बीमारी भोगकर मर गये थे। तबसे श्री लल्लुजी स्वामीको चिन्ता होने लगी कि शायद यह शरीर छूट जायेगा। अतः परमकृपालु श्रीमद्जीको मुंबई पत्र-पर-पत्र लिखकर विनती की कि "हे नाथ! अब यह शरीर नहीं बचेगा और मैं समकितके बिना जाऊँगा तो मेरा मनुष्यभव व्यर्थ चला जायेगा। कृपा करके अब मुझे समकित दीजिये।" इसके उत्तरमें श्रीमद्ने अनन्त कृपा करके 'छह पद' का पत्र लिखा और साथ ही बताया कि शरीर छूटनेका भय कर्तव्य नहीं है। श्रीमद् स्वयं दुबारा सूरत पधारे तब उस 'छह पद'के पत्रका विशेष विवेचन कर उसका परमार्थ श्री लल्लुजी स्वामीको समझाया और उस पत्रको कण्ठस्थ करके उसपर बारंबार विचार करनेका अनुरोध किया।

'छह पद'के पत्रके सम्बन्धमें श्री लल्लुजी स्वामी अपने अन्तिम वर्षोंके उपदेशमें बारंबार कहते थे कि "यह पत्र हमारी अनेक प्रकारकी विपरीत मान्यताओंको दूर करनेवाला है। न स्थानकवासीमें रहने दिया, न तप गच्छमें रखा, न ही वेदान्तमें पैठने दिया। किसी भी मतमतान्तरमें प्रवेश न करवाकर, मात्र एक आत्मापर लाकर खड़ा कर दिया। यह चमत्कारी पत्र है। जीवकी योग्यता हो तो सम्यक्त्व प्राप्त हो जाय ऐसे विचार उत्पन्न करानेवाला यह अद्भुत पत्र है। इसे कण्ठस्थ करके इसपर बारंबार विचार करते रहना चाहिए।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री लल्लुजीने सं.१९५२का चातुर्मास खंभातमें किया। श्री लल्लुजी सं.१९४९में मुंबई पधारे उसके पहले ही हरखचंदजी महाराजका देहावसान हो गया था। परंतु श्रीमद् राजचंद्रके समागमसे श्री लल्लुजीकी श्रद्धा बदल गयी है, वे गृहस्थको गुरु मानते हैं और पहले एकान्तर उपवास करते थे वह भी बंद कर दिया है, ऐसी बात साधुओंमें और श्रावकोंमें फैल गई थी जिससे जनसमूहका प्रेम उनके प्रति कम हो गया था। उसकी चिन्ता किये बिना श्री लल्लुजी तो गुरुभक्तिमें तल्लीन रहते थे।

श्री अंबालाल आदि खंभातके मुमुक्षु प्रत्येक पूर्णिमाको निवृत्ति लेकर रातदिन भक्तिमें बिताते। एक पूर्णिमाके दिन श्री लल्लुजी भी उनके साथ रातमें रहे। चातुर्मासका समय था और किसीको बिना कहे रातमें बाहर रहे जिससे संघमें बड़ा विक्षेप हुआ। श्रावक-श्राविकासमूहको भी यह बात बहुत अप्रिय लगी और लोगोंका श्री लल्लुजीके प्रति जो प्रेम था वह विशेष उतर गया।

सं.१९५२में पर्युषण पर श्रीमद् राजचंद्र निवृत्ति लेकर चरोतरमें पधारे थे। मुनिश्री लल्लुजीको समाचार मिले कि श्रीमद् काविठा होकर रालज पधारे हैं। उन्हें विचार आया कि मैं चातुर्मासमें प्रतिदिन निवृत्तिके लिये बाहर वनमें जाता हूँ और दोपहरमें आकर आहार लेता हूँ तो आज दर्शनके लिये रालज तक जा आऊँ तो क्या आपत्ति है? ऐसा सोचकर वे रालजकी ओर चलने लगे। गाँव थोड़ा दूर रहा तब एक व्यक्तिके साथ संदेशा भेजा कि खंभातके अंबालालभाईसे जाकर कहो कि एक मुनि आये हैं और आपको बुलाते हैं। अंबालालभाईने आकर कहा कि "आपको आज्ञा नहीं है, तो क्यों आये हैं?" श्री लल्लुजीने कहा कि "आज्ञा मँगवानेके लिए ही मैं इतनी दूर रुका हूँ। यदि आज्ञाका भंग लगता हो तो मैं यहींसे वापस चला जाता हूँ। सभी मुमुक्षुओंको समागम होता है और मुझे अकेलेको विरह सहन करना पड़ता है, वह सहन नहीं होनेसे मैं आया हूँ।"

श्री अंबालालने कहा, "ऐसे तो आपको जाने नहीं दूँगा, मुझे उलाहना मिलेगा। अतः कृपालुदेव (श्रीमद्जी) आज्ञा करें वैसा कीजिये। मैं पूछकर आता हूँ।"

फिर श्री अंबालालने जाकर श्रीमद्से बात की, तब उन्होंने कहा कि "मुनिश्रीके चित्तमें असंतोष रहता हो तो मैं उस ओर आकर समागम कराऊँ, और उनके चित्तमें शान्ति रहती हो तो भले ही वापस लौट जायें।" अंबालालभाईने तदनुसार मुनिश्रीको निवेदन किया, अतः "आज्ञाका पालन हो वैसा मुझे करना चाहिए, अतः मैं वापस लौट जाता हूँ," ऐसा कहकर वे खंभात लौट गये। विरहवेदना और आशाभंगसे आँखमेंसे आँसू बहने लगे। किन्तु आज्ञापालनमें ही आत्मकल्याण है और परमकृपालु अवश्य कृपा करेंगे ऐसी श्रद्धासे वह रात बितायी कि प्रभातमें समाचार मिले कि श्री सौभाग्यभाई, श्री अंबालाल और श्री डुंगरशी खंभातमें पधारे हैं। श्री सौभाग्यभाई उपाश्रयमें आये और परमकृपालुदेवने उन्हें मुनिश्रीको एकान्तमें बात करनेको कहा था इसलिये श्री अंबालालके यहाँ उन्हें ले जाकर ऊपरी मंजिलपर एकान्तमें परमकृपालु देव द्वारा बताया गया स्मरणमंत्र बताया और प्रतिदिन पाँच माला फेरनेकी आज्ञा दी है ऐसा भी बताया, एवं थोड़े दिन बाद खंभात पधारकर उनको समागम करायेंगे ऐसे समाचार कहे। यह सुनकर मुनिश्रीकी आँखमें हर्षके आँसू छलछला आये और भाव प्रफुल्लित हुए। श्री लल्लुजीने श्री सौभाग्यभाईसे विनती की कि "दूसरे मुनियोंको भी आप यह मंत्रप्रसादी देनेकी कृपा करें।" उन्होंने कहा कि "मुझे आज्ञा नहीं है। आप उन्हें बतायेंगे ऐसा परमकृपालुदेवने कहा है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थोड़े समय बाद श्रीमद् राजचंद्र रालजसे वडवा (खंभातके निकट) पधारे। श्री लल्लुजीके साथ अन्य पाँच मुनि भी दर्शन-समागमके लिए वहाँ आये थे। छहों मुनियोंको श्रीमद्ने एकान्तमें बुलाया। सभी मुनि श्रीमद्को नमस्कार कर बैठे। श्री लल्लुजीको विरहवेदना असह्य हो गयी थी, और उसका कारण उन्हें मुनिवेश लग रहा था, अतः आवेशमें आकर उन्होंने कहा, "हे नाथ! मुझे अपने चरणकमलमें निशदिन रखें, यह मुहपत्ती मुझे नहीं चाहिए।" ऐसा कहकर मुहपत्ती कृपालुदेवके आगे डाल दी। "मुझसे समागमका वियोग सहन नहीं हो सकता," यों कहते हुए उनकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी। यह देखकर परमकृपालुदेवकी आँखोंसे भी अश्रुधारा बहती रही। थोड़ी देर मौन रहकर श्रीमद्ने देवकरणजीसे कहा, "मुनिश्रीको यह मुहपत्ती दे दो, और अभी इसे रखो।"

श्रीमद्जी छह दिन वडवा रुके तब तक सभी मुमुक्षु भाईबहिनोंको साथ ही समागम-बोधका लाभ मिलता तथा मुनिसमुदायको एकान्तमें भी उनके समागमका लाभ मिलता। सम्प्रदायके लोग तथा साधुवर्ग इन छह मुनियोंकी निन्दा करते, किन्तु इससे इन छहोंकी यथार्थ धर्मके प्रति विशेष दृढ़ता हुई। फिर श्री लल्लुजीका पुण्यप्रभाव इतना था कि कोई उन्हें मुँह पर नहीं कह सकता था।

वडवासे श्रीमद्जी नडियाद पधारे। वहाँ श्री आत्मसिद्धि-शास्त्रकी रचना की। उसकी चार प्रतिलिपियाँ पहले करवाकर एक श्री लल्लुजी स्वामीको स्वाध्यायके लिए भेजी और साथमें पत्र लिखकर बताया कि आपको एकान्तमें स्वाध्यायके लिए यह भेजी है। श्री देवकरणजीको भी भविष्यमें यह हितकारी होगी, फिर भी उनकी विशेष आकांक्षा रहती हो तो सत्पुरुषके परम उपकारका इस भवमें कभी विस्मरण नहीं करेंगे ऐसी दृढ़ श्रद्धा करवाकर आपके समागममें अवगाहन करनेमें आपत्ति नहीं है, आदि सूचनाएँ लिखकर आत्मार्थमें दृढ़ता करायी थी।

श्री लल्लुजी अकेले वनमें जाकर श्री आत्मसिद्धिशास्त्रका स्वाध्याय करते। उस समयकी बात करते हुए स्वयं उन्होंने बताया था कि "उसे पढ़ते हुए और किसी-किसी गाथाको बोलते हुए मेरे आत्मामें आनन्दकी हिलोरें आतीं। एक-एक पदमें अपूर्व माहात्म्य है ऐसा मुझे लगता था। 'आत्मसिद्धि'का मनन, स्वाध्याय निरंतर रहनेसे आत्मोल्लास होता। किसीके साथ बात या अन्य क्रिया करते हुए 'आत्मसिद्धि'की स्मृति रहती। परमकृपालुदेवकी शांत मुखमुद्रा या 'आत्मसिद्धि'की आनंदप्रद गाथाका स्मरण सहज रहा करता। अन्य कुछ अच्छा न लगता। अन्य बातोंपर तुच्छभाव रहा करता। माहात्म्य मात्र सद्गुरु और उनके भावका आत्मामें भास्यमान होता था।"

सं.१९५३में श्री लल्लुजीने खेडामें चातुर्मास किया था। उनके स्वाध्यायके लिए श्रीमद्ने 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रंथ खेडा भेजा था। उसमें स्थानकवासी पंथके विषयमें टीका है जिसे पढ़कर श्री देवकरणजीको अच्छा नहीं लगा और ग्रंथ पढ़ना बंद कर दिया। किन्तु फिर श्रीमद्जीका पत्र आया कि ग्रंथ पढ़ते हुए किसी बातके लिये अटकना योग्य नहीं है। दोषदृष्टिको छोड़कर गुणग्राही बननेकी प्रेरणा की थी जिससे पूर्ण स्वाध्याय होनेपर उसकी महत्ता समझमें आयी थी।

★
★★

५

सं.१९५४के चातुर्मासमें श्रीमद् राजचंद्र निवृत्ति लेकर पुनः चरोतरमें पधारे थे। उस वर्ष श्री लल्लुजीने वसोमें चातुर्मास किया था और श्री देवकरणजीने खेडामें किया था। श्रावण माहके प्रारंभमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद् कविठा पधारे थे। वहाँसे नडियाद होकर वसो पधारे थे। श्रीमद्ने श्री लल्लुजीसे पूछा, "कहिये मुनि! यहाँ कितने दिन रहें?" श्री लल्लुजीको मुंबईके अतिरिक्त अन्य कहीं भी एक सप्ताहसे अधिक समागमका अवसर नहीं मिला था, अतः उन्होंने कहा, "यहाँ एक माह रहे तो अच्छा।" श्रीमद् मौन रहे। श्री देवकरणजीको यह समाचार मिले तब वे भी श्रीमद्जीको पत्र द्वारा खेडा पधारनेकी विनती करने लगे, किन्तु भाई अंबालालकी सूचनासे श्री लल्लुजीने श्री देवकरणजीको पत्र द्वारा सूचित किया कि चातुर्मासके बाद समागम करानेके लिए श्रीमद्जीको पत्र लिखो तो हम सबको लाभ मिलेगा जो विशेष हितकारी होगा। श्री देवकरणजीका ऐसे भावार्थका पत्र आया, तब श्रीमद्जीने श्री लल्लुजीसे पूछा, "मुनिश्री देवकरणजीको पत्र किसने लिखा था?" श्री लल्लुजीने अंबालालका नाम न लेकर कहा, "मैंने पत्र लिखा था।" श्रीमद्ने कहा, "यह सब काम अंबालालका है, आपका नहीं।"

श्री लल्लुजी आहार-पानीके लिए गाँवमें जाते तब गाँवके अमीन आदि बड़े बड़े लोगोंको कहते कि मुंबईसे एक महात्मा पधारे हैं, वे बहुत विद्वान हैं। उनका व्याख्यान सुनोगे तो बहुत लाभ होगा। अतः अनेक लोग श्रीमद्के पास आते और ज्ञानवार्ताका लाभ लेते। श्रीमद्ने श्री लल्लुजीसे कहा, "सब लोग आवें तब आप सब मुनि न आयें।" इससे उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ कि एक माहके समागमकी माँग की थी, किन्तु उसमें भी यों अंतराय आ पड़ा। इससे बोधकी पिपासा बहुत बढ़ गयी। श्रीमद्जी जब वनमें बाहर जाते मात्र तभी सब मुनियोंको ज्ञानवार्ताका लाभ मिलता।

एक दिन वनमें बावड़ीके पास श्रीमद् मुनियोंके साथ वार्ता करते हुए बैठे थे। चतुरलालजी मुनिकी ओर देखकर श्रीमद्ने पूछा, "आपने संयम ग्रहण किया तबसे आज तक क्या किया?" चतुरलालजीने कहा, "सुबह चायका पात्र भर लाते हैं वह पीते हैं, बादमें नस्य ले आते हैं, उसे सूँघते हैं, फिर आहारके समय आहार-पानी गोचरी करके ले आते हैं। वह आहार-पानी करनेके बाद सो जाते हैं। शामको प्रतिक्रमण करते हैं और रातको सो जाते हैं।"

श्रीमद्ने विनोदमें कहा, "चाय और नस्य ले आना और आहारपानी करके सो जाना इसका नाम ज्ञान, दर्शन, चारित्र?"

फिर आत्मजागृति हेतु उपदेश देकर श्री लल्लुजीको निर्देश देते हुए श्रीमद्ने कहा कि "अन्य मुनियोंका प्रमाद छुड़वाकर उन्हें पढ़नेमें, अध्ययनमें, स्वाध्याय-ध्यानमें समय व्यतीत करवायें और आप सब दिनमें एक बार भोजन करें। चाय तथा नस्य बिना कारण हमेशा न लावें। आप संस्कृतका अभ्यास करें।"

मुनिश्री मोहनलालजीने पूछा, "महाराजश्री और देवकरणजीकी उम्र हो गयी है तब पढ़नेका योग कैसे संभव है ?"

उत्तरमें श्रीमद्ने कहा, "योग मिलनेपर अभ्यास करना चाहिए और यह संभव है। क्योंकि विक्टोरिया रानीकी वृद्धावस्था है फिर भी अन्य देशकी भाषाका अभ्यास करती हैं।"

एक बार मुनिश्री मोहनलालजीने श्रीमद्से पूछा, "मैं ध्यान किस प्रकार करूँ?"

श्रीमद्ने उत्तर दिया, "श्री लल्लुजी महाराज भक्ति करें तब आप कायोत्सर्ग कर सुनते रहें और उसके अर्थका चिंतन करें।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद्ने श्री लल्लुजी स्वामीको बताया, "जो कोई मुमुक्षुभाई तथा बहिनें आपसे आत्मार्थ साधन माँगे उन्हें इस प्रकार आत्महितके साधन बतायें–

१. सात व्यसनके त्यागका नियम करावें।

२. हरी वनस्पतिका त्याग करावें।

३. कंदमूलका त्याग करावें।

४. अभक्ष्य पदार्थोंका त्याग करावें।

५. रात्रिभोजनका त्याग करावें।

६. पाँच माला फेरनेका नियम करावें।

७. स्मरण-मंत्र बतावें।

८. क्षमापनाका पाठ और बीस दोहेका पठन, मनन नित्य करनेको कहें।

९. सत्समागम और सत्शास्त्र-सेवनके लिए कहें।"

श्रीमद् द्वारा लिखित आभ्यन्तर संस्मरणपोथीमेंसे अमुक भाग जो श्री लल्लुजीके लिए लाभदायक था, उसकी प्रतिलिपि करनेके लिये श्रीमद्ने वह पोथी श्री लल्लुजीको एक दिन दी। उस भागकी प्रतिलिपि करनेके अतिरिक्त, पढ़नेपर अन्य जो आकर्षक लगा उसकी भी प्रतिलिपि अलग कागज पर कर ली और प्रातः दर्शनके लिए जाऊँगा तब उनसे आज्ञा ले लूँगा, ऐसा सोचा; क्योंकि रातको मुनिके लिए बाहर जाना मना है। प्रातः श्रीमद्के पास जाकर उनकी आज्ञानुसार उतारी गयी और अधिक उतारी गयी प्रतिलिपिके कागज उनके समक्ष रखकर श्री लल्लुजीने कहा, "रात हो गयी थी इसलिये आज्ञा लेने नहीं आ सका। और महीना भी पूरा हो रहा था, फिर समय नहीं मिलेगा जानकर बिना आज्ञाके भी पोथीमेंसे कुछ टिप्पण उतार लिये हैं।"

यह सुनकर श्रीमद्ने सारे पन्ने और टिप्पणपोथी अपने पास रख लिये। उन्हें कुछ नहीं दिया। इससे उन्हें बहुत पछतावा हुआ और श्री अंबालालभाईको यह बात कही। उन्होंने भी श्री लल्लुजीको आज्ञाके बिना प्रतिलिपि करनेके लिये उलाहना दिया। अब श्री अंबालालभाईके द्वारा, आज्ञासे की गयी प्रतिलिपिके पन्ने वापस लौटानेकी श्रीमद्से विनती की। श्रीमद्ने थोड़े पन्ने श्री अंबालालको दिये और अच्छे अक्षरोंमें लिखकर श्री लल्लुजीको देनेको कहा। तदनुसार उन्होंने लिखकर दे दिये। उसमें आज्ञा दी थी वे, तथा कुछ अन्य टिप्पण भी सम्मिलित थे। श्रीमद्ने उसका ध्यान करनेके लिए श्री लल्लुजीको आज्ञा दी। अत्यंत तीव्र पिपासाके बाद प्राप्त इस साधनसे श्री लल्लुजीको परम शांति प्राप्त हुई थी।

अंतिम दिन एकांतमें श्रीमद्जीने श्री लल्लुजीको एक घण्टे तक उपदेश दिया और दृष्टिराग बदलकर आत्मदृष्टि करवायी। जब श्री लल्लुजीको वह आशय समझमें आ गया तब श्रीमद्जीने बोलना बंद कर दिया।

वसोमें एक माह पूरा हुआ तब श्रीमद्ने श्री लल्लुजीसे कहा, "क्यों मुनि, आपकी माँग पूर्ण हुई न? आपकी माँगके अनुसार पूरा एक माह यहाँ रहे।" श्री लल्लुजीको मनमें लगा कि विशेष माँग की होती तो अच्छा रहता। फिर सर्व मुनियोंको जागृतिका उपदेश देते हुए श्रीमद्ने कहा, "हे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनियो! इस समय ज्ञानी पुरुषके प्रत्यक्ष समागममें प्रमाद करते हो, किन्तु जब ज्ञानी पुरुष नहीं होंगे तब पश्चात्ताप करोगे। पाँच-पाँचसौ कोस तक घूमने पर भी कहीं ज्ञानीका समागम नहीं मिलेगा।"

श्रीमद् वसोसे उत्तरसंडा वनक्षेत्रमें एक माह रहकर खेडा पधारे और श्री देवकरणजी मुनिको तेइस दिन तक समागम कराया, जिसका वर्णन करते हुए एक पत्रमें वे श्री लल्लुजीको लिखते हैं—

" 'उत्तराध्ययन'के बत्तीसवें अध्ययनका बोध होनेपर असद्गुरुकी भ्रांति मिटी, सद्गुरुकी परिपूर्ण प्रतीति हुई। अत्यंत निश्चय हुआ, रोमांच उल्लसित हुए। सत्पुरुषकी प्रतीतिका दृढ़ निश्चय रोम-रोममें उतर गया। वृत्ति आज्ञावश हुई...

आपने कहा वैसा ही हुआ—फल पका, रस चखा, शांत हुए। आज्ञा द्वारा सदैव शांत रहेंगे। ऐसी वृत्ति चल रही है मानो सत्पुरुषके चरणमें मोक्ष प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। परमकृपालुदेवने पूर्ण कृपा की है...

हम केवल आहारका समय व्यर्थ गँवाते हैं। शेषकाल तो सद्गुरुसेवामें व्यतीत होता है, अतः यह बस है। वहीका वही वाक्य उसी श्रीमुखसे जब श्रवण करते हैं तब नवीन ही लगता है...

सर्वोपरि उपदेशमें यही आता है कि शरीरको कृश कर, भीतरके तत्त्वको ढूँढकर, कलेवरको फेंककर चले जाओ। विषय-कषायरूपी चोरको अंदरसे बाहर निकालकर, जला-फूँककर उसका स्नानसूतक कर, क्रियाकर्म निबटाकर शांत हो जाओ, छूट जाओ, प्रशांत हो जाओ; शांति शांति शांति होओ। शीघ्र शीघ्र उद्यम करो। ज्ञानी सद्गुरुके उपदेश-वचन सुनकर एक वचन भी पूर्ण प्रेमसे ग्रहण करें, एक भी सद्गुरु-वचनका पूर्ण प्रेमसे आराधन करें तो वह आराधन ही मोक्ष है, मोक्ष बतानेवाला है।"

चातुर्मास पूरा होनेपर सभी सातों मुनि नडियादमें एकत्रित हुए। वहाँ लगभग डेढ़ माह तक अल्प आहार, अल्प निद्रा आदि नियमोंका पालन कर दिनका अधिकांश समय पुस्तक-वाचन, मनन, भक्ति, ध्यान आदिमें बिताते। खेडा तथा वसोमें श्रीमद्जीका समागम-बोध हुआ था उसका विवेचन स्मरण करके परस्पर विनिमय (विचारोंका आदान-प्रदान) करते थे।

★★★

६

नडियादसे श्री देवकरणजी आदि अहमदाबादकी ओर विहार करनेवाले थे और श्री लल्लुजी आदि खंभातकी ओर पधारनेवाले थे। इतनेमें समाचार मिले कि श्रीमद्जी निवृत्तिके लिये आज मुंबईसे ईडर पधारे हैं। अतः श्री लल्लुजीने खंभातकी ओर जाना छोड़कर ईडरकी ओर विहार किया, क्योंकि वसोमें बहुत लोगोंसे परिचय होनेसे उपदेशका बराबर लाभ नहीं मिल सका था, जिससे उनके मनमें खेद रहता था।

श्री देवकरणजीने श्री लल्लुजीसे कहा, "हमें भी उपदेशका लाभ लेना है। बहुत दिन उपदेश दिया है। आपको आत्महित करना है तो क्या हमें नहीं करना है?" ऐसा कहकर, उनका स्वास्थ्य नरम होनेपर भी धीरे-धीरे वे भी ईडरकी ओर विहार करने लगे।

श्री लल्लुजी, श्री मोहनलालजी और श्री नरसिंहरख ये तीनों शीघ्रतासे विहार कर जल्दी ईडर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहुँच गये। श्री लल्लुजी, श्रीमद्जीके निवासस्थानका पता लगाने डॉ. प्राणजीवनके अस्पतालकी ओर गये। श्रीमद्जीने दूरसे ही मुनिश्रीको देखकर अपनी सेवामें रहनेवाले भाई ठाकरशीको कहा कि उन्हें वनमें ले जाओ। पीछे स्वयं भी वहाँ गये। एक आम्रवृक्षके नीचे मुनिश्रीको बुलाकर पूछा और जान लिया कि तीन मुनि पहले आ पहुँचे हैं और चार पीछे आ रहे हैं। यह जानकर श्रीमद् सहज झुँझलाकर बोले, "आप लोग क्यों हमारे पीछे पड़े हैं? अब क्या है? आपको जो समझना था वह सब बता दिया है। अब आप लोग कल यहाँसे विहार कर चले जाइये। देवकरणजीको हम समाचार भिजवा देते हैं जिससे वे यहाँ न आकर अन्य स्थानपर विहार कर वापस चले जायेंगे। हम यहाँ गुप्तरूपसे रहते हैं, किसीके परिचयमें हम आना नहीं चाहते, अप्रसिद्ध रहते हैं। डॉक्टरकी ओर आहार लेने न आयें, अन्य स्थानसे लेवें। कल यहाँसे विहार कर जायें।"

श्री लल्लुजीने विनती की, "आपकी आज्ञानुसार चले जायेंगे, परंतु मोहनलालजी और नरसिंह-रखको यहाँ आपके दर्शन नहीं हुए हैं, अतः आप आज्ञा दें तो एक दिन रुककर फिर विहार करेंगे।"

श्रीमद् बोले, "ठीक है, ऐसा करें।"

दूसरे दिन उसी आम्रवृक्षके नीचे दोनों मुनि गये। श्रीमद्जी भी वहाँ पधारे। उस समय 'द्रव्यसंग्रह' की निम्न गाथाएँ वे उच्च स्वरसे बोलते हुए आ रहे थे। नीचे बैठनेके बाद भी बहुत देर तक उसीका उच्चारण होता रहा–

*"मा मुज्झह मा रज्झह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तज्झाणप्पसिद्धीए ॥
जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्चयं ज्झाणं ॥
मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि जेण होई थिरो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥"

लगभग आधे घण्टे तक उपरोक्त गाथाकी धुन चलती रही फिर स्वयं समाधिस्थ हो गये। सर्वत्र शांति प्रसर गयी। एक घण्टे बाद, "विचारियेगा" इतना कहकर वहाँसे चले गये। कदाचित् लघुशंकादिके लिये गये होंगे, यह सोचकर मुनि थोड़ी देर रुके, किन्तु वे लौटे नहीं। अतः मुनि वापस उपाश्रयमें आ गये। आहार-पानी लाकर, आहारसे निवृत्त होकर बैठे थे, उस समय भाई ठाकरशी उपाश्रयमें आये। उनसे श्री लल्लुजी स्वामीने पूछा, "देवकरणजीको पत्र लिखनेके संबंधमें क्या हुआ?" ठाकरशीने कहा, "पत्र तो लिख दिया है पर अभी भेजा नहीं है।"

उसी दिन शामको श्री देवकरणजी आदि ईडर आ पहुँचे। श्रीमद्ने सातों मुनियोंको पर्वतपरके श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों मंदिर खुलवाकर दर्शन करवानेके लिये ठाकरशीको भेजा। इन सातों

---

* **अर्थ**–विचित्त=अनेक प्रकारके निर्विकल्प ध्यानकी सिद्धिकी इच्छा हो तो इष्ट-अनिष्ट पदार्थोंमें राग-द्वेष-मोह न करो। (४८) किसी भी प्रकारका चिंतन करते हुए जब मुनि एकाग्रता प्राप्त कर निस्पृहवृत्तिवाला होता है तब उसे निश्चय ध्यानकी प्राप्ति कही जाती है। (५५) किसी भी प्रकारकी (शारीरिक) चेष्टा न करो, किसी भी प्रकारके (वचनका) उच्चारण न करो, किसी भी प्रकारका (मनसे) विचार न करो, तब तुम स्थिर बनोगे। यों आत्मा आत्मामें रमण करे वह परम ध्यानका प्रकार है। (५६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानकवासी मुनियोंने सद्गुरुकी आज्ञासे सर्वप्रथम ईडरमें जिनप्रतिमाओंके दर्शन किये, जिससे उनको अपूर्व उल्लासभाव आया। श्रीमद् द्वारा बताये गये पहाड़के ऊपरके सभी स्थान ठाकरशीने सभी मुनियोंको बताये। एक पहाड़ीपर दिगम्बर मुनियोंके समाधि-स्थान तथा स्मरणस्तूप हैं तथा पासमें ही स्मशान, कुण्ड, गुफा हैं उन्हें देखनेके लिए भी मुनियोंको भेजा था।

तीसरे दिन उसी आम्रवृक्षके नीचे आनेकी आज्ञा हुई थी तदनुसार सातों मुनि वहाँ प्रतीक्षा कर रहे थे, इतनेमें श्रीमद्जी वहाँ पधारे। सर्दियोंकी ठण्ड भी थी और श्री देवकरणजीका शरीर अशक्त था, इसलिये वे काँपते दिखायी दिये अतः लक्ष्मीचंदजी मुनिने अपना ओढा हुआ वस्त्र श्री देवकरणजीको ओढाया। यह देखकर श्रीमद्जी बोले, "ठण्ड लग रही है? ठण्ड भगानी है?" यह कहकर वे एकदम शीघ्रतासे चलने लगे। सभी उनके पीछे-पीछे वेगपूर्वक चले। काँटे, कंकर, झाड़-झंखाड़ पार कर श्रीमद्जी, थोड़ी दूर एक ऊँची शिला थी उसपर पूर्वकी ओर मुँह करके बिराजमान हुये। सभी मुनि उनके सन्मुख आकर बैठ गये।

अनेक वर्षोंसे ईडरके पुस्तक भण्डार पर श्वेताम्बर-दिगम्बरके स्वामित्वको लेकर झगड़ोंके कारण ताले लगे हुए थे। ईडरके महाराजाकी पहचानसे वह भण्डार देखनेका अवसर श्रीमद्जीको मिला था। उसमेंसे हस्तलिखित 'द्रव्यसंग्रह' ग्रंथ श्रीमद्जी यहाँ लाये थे। वह आधा ग्रंथ यहाँ सबको पढ़ सुनाया। इतनेमें श्री देवकरणजी बोल उठे, "अब हमें गाँवमें जानेकी क्या आवश्यकता है?"

श्रीमद्ने कहा, "कौन कहता है कि जाओ?"

श्री देवकरणजी बोले, "क्या करें? पेट लगा है।"

श्रीमद्ने कहा, "मुनियोंका पेट तो जगतके कल्याणके लिए है। मुनिको पेट न होता तो वे गाँवमें न जाकर पहाड़की गुफामें रहकर केवल वीतराग-भावसे जंगलमें ही विचरते, जिससे जगतके लिए कल्याणरूप न हो पाते। अतः मुनियोंका पेट जगतके हितके लिए है।"

ध्यानके विषयकी चर्चा करते हुए श्रीमद्जीने कहा, "ध्यानमें जैसा चिंतन करे वैसा योगाभ्यासीको दिखायी देता है। उदाहरणस्वरूप, ध्यानमें आत्माको भैंसे जैसा सोचकर इस पहाड़के समान उसकी पूँछ होनेका सोचे तो उसे आत्मा उसी रूपमें भासित होगा। पर वास्तवमें वह आत्मा नहीं है, किंतु उसे जाननेवाला जो है, वह आत्मा है।"

एक दिन उसी सांकेतिक आम्रवृक्षके नीचे सातों मुनियोंके साथ श्रीमद्जी बिराजे हुए थे तब मुनि मोहनलालजीने श्रीमद्से शिकायत की कि "आहार करनेके बाद मुझे मुहपत्ती बाँधनेमें समय लगता है इसलिये महाराज (श्री लल्लुजी) मुझे दण्ड देते हैं।"

श्रीमद्जीने कहा, "सभी मुहपत्ती निकाल दें और ईडरके आसपास बीस कोस तक न बाँधें। कोई आकर पूछे तो शांतिसे बातचीत करके उसके मनका समाधान करें।"

कल्पवृक्षके समान उस आम्रवृक्षके नीचे अंतिम दिन सातों मुनि जल्दी आकर श्रीमद्जीकी प्रतीक्षा कर रहे थे, इतनेमें श्रीमद्जी पधारे और सबको विकट मार्गसे ले जाते हुए चलने लगे। वेलसीरख नामक एक वृद्ध मुनिने कहा, "आज मण्डलमेंसे एकाध मुनिको यहीं छोड़ जायेंगे क्या?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह ऊपर जानेका मार्ग तो बहुत विकट है, और अभीसे हम तो पीछे रहने लग गये हैं। वे तो बहुत तेजीसे ऊपर चढ़ रहे हैं।"

श्रीमद्जी शीघ्र ऊपर पहुँचकर एक विशाल शिलापर बिराजमान हो गये, फिर सातों मुनि आकर सन्मुख बैठे। श्रीमद् बोले, "यहाँ निकट ही एक बाघ रहता है, किंतु आप सब निर्भय रहें।" सिद्धशिला और सिद्ध-स्वरूपकी चर्चा होनेके बाद श्रीमद्ने पूछा, "हम इतने ऊँचे बैठे हैं, यह कोई नीचेका मनुष्य तलहटीपरसे देख सकता है?"

श्री लल्लुजीने कहा, "ना, नहीं देख सकता।"

श्रीमद्जीने कहा, "इसी प्रकार नीचेकी दशावाला जीव ऊँची दशावाले ज्ञानीके स्वरूपको नहीं जान सकता। परंतु योग्यता प्राप्त हो, और उच्च दशामें आ जाय तो देख सकता है। हम पहाड़ पर उच्च स्थानपर होनेसे पूरा नगर और दूर तक देख सकते हैं, किन्तु नीचे भूमिपर खड़ा व्यक्ति मात्र उतनी भूमिको ही देख सकता है। इसीलिये ज्ञानी उच्च दशापर रहकर नीचेवालेको कहते हैं कि 'तू थोड़ा ऊपर आ, फिर देख; तुझे पता चलेगा।' "

फिर श्रीमद्जीने सब मुनियोंसे कहा, "आप पद्मासन लगाकर बैठ जायें और जिनमुद्रावत् बनकर 'द्रव्यसंग्रह'की गाथाओंका अर्थ उपयोगमें लें।" तदनुसार सब बैठ गये। पश्चात् श्रीमद्जी 'द्रव्यसंग्रह'की गाथाएँ उच्च स्वरसे बोलने लगे और उसका अर्थ भी करते, फिर परमार्थ बताते। यों संपूर्ण 'द्रव्यसंग्रह' ग्रंथ पूरा सुनाया, समझाया तब तक सभी मुनि उसी आसनमें अचल बैठे रहे।

श्री देवकरणजी उल्लासमें आकर बोल उठे "अब तकका परमगुरुका जो जो समागम हुआ उसमें यह समागम, अहा! सर्वोपरि हुआ! जैसे मंदिरके शिखरपर कलश चढ़ाया जाता है वैसा इस प्रसंगसे हुआ है।"

फिर श्रीमद्जीने कहा, " 'आत्मानुशासन' ग्रंथके कर्ता श्री गुणभद्राचार्य उस ग्रंथके अंतिम भागमें अति अद्भुत ज्ञानमें प्रवाहित हुए हैं; आत्माके स्वरूपका विशेष वर्णन स्पष्ट बताते हैं।" यों कहकर वह भाग भी पढ़ सुनाया।

उस सांकेतिक आम्रवृक्षके नीचे श्रीमद्जीने मुनियोंसे कहा, "मुनियो! जीवकी वृत्ति तीव्रतासे भी गिर सकती है। अंबालालकी वृत्ति और दशा प्रथम भक्ति और वैराग्यादिके कारणसे उच्च होनेपर उन्हें ऐसी लब्धि प्रगट हुई थी कि हमने तीन-चार घण्टे बोध किया हो, उसे दूसरे दिन या तीसरे दिन लिखकर लानेको कहें तो वे संपूर्ण और हमारे शब्दोंमें लिखकर ले आते थे। वर्तमानमें प्रमाद और लोभ आदिके कारण वृत्ति शिथिल हुई है। यह दोष उनमें प्रगट होगा यह हम बारह मास पहलेसे ही जानते थे।"

यह सुनकर श्री लल्लुजीको खेद हुआ, अतः श्रीमद्जीसे पूछा, "क्या यह ऐसा ही रहेगा?" श्रीमद्जीने कहा, "मुनि, खेद न कीजियेगा। जैसे नदीके प्रवाहमें बहता पत्ता एक जालेमें अटक जाय, किंतु फिर नदीमें बाढ़ आनेपर उसके प्रवाहमें जालेसे निकलकर महासमुद्रमें जा मिलता है, वैसे ही उनका प्रमाद भी हमारे द्वारा दूर होगा और वे परमपदको प्राप्त करेंगे।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री लल्लुजी दो-ढाई माह तक ईडरके आसपासके प्रदेशमें विचरे। फिर खेरालु होकर नडियाद आये और सं.१९५५ का चातुर्मास वहीं किया।

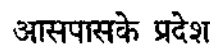

७

श्री लल्लुजी स्वामीका चातुर्मास मुंबईमें होनेके बाद श्रीमद्जीसे परिचय और पत्रव्यवहार बढ़ गया और सद्गुरुके प्रति प्रेममें हुई वृद्धि छिपायी छिप नहीं सकती थी। श्री यशोविजयजीने सुमतिनाथ प्रभुके स्तवनमें जैसा कहा है वैसा हुआ था—

[१]"सज्जनशुं जे प्रीतडीजी, छानी ते न रखाय,
परिमल कस्तूरी तणोजी, महीमांहे महकाय;
सोभागी जिनशुं लाग्यो अविहड रंग.
ढांकी इक्षु परालशुंजी, न रहे लही विस्तार,
वाचक यश कहे प्रभुतणोजी, तिम मुज प्रेम-प्रकार; सोभागी०"

श्री लल्लुजीने सूरत, कठोर होकर सं.१९५२में खंभातमें चातुर्मास किया उससे पहले भी सं.१९५०में खंभात संघाडे (साधुसमुदाय)में पत्रव्यवहारसंबंधी चर्चा चली थी इसलिये श्रीमद्जीने श्री लल्लुजीको निम्नलिखित आशयका एक पत्र लिखा था—

"लोकसमागम बढ़े, प्रीति-अप्रीतिके कारण बढ़े, स्त्री आदिके परिचयमें आनेका हेतु हो, संयम ढ़ीला हो, उस उस प्रकारका परिग्रह बिना कारण अंगीकृत हो, ऐसे सान्निपातिक अनंत कारण देखकर पत्रादिका निषेध किया है, तथापि वह भी अपवादसहित है..... किन्हीं ज्ञानीपुरुषका दूर रहता होता हो, उनका समागम होना मुश्किल हो, और पत्र-समाचारके सिवाय दूसरा कोई उपाय न हो, तो फिर आत्महितके सिवायकी दूसरी सर्व प्रकारकी बुद्धिका त्याग करके, वैसे ज्ञानीपुरुषकी आज्ञासे अथवा किसी मुमुक्षु सत्संगीकी सामान्य आज्ञासे वैसा करनेका जिनागमसे निषेध नहीं होता ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि जहाँ पत्र-समाचार लिखनेसे आत्महितका नाश होता हो, वहीं उसका निषेध किया गया है। जहाँ पत्र-समाचार न होनेसे आत्महितका नाश होता हो, वहाँ पत्र-समाचारका निषेध किया हो, यह जिनागमसे कैसे हो सकता है ? यह अब विचारणीय है।

इस प्रकार विचार करनेसे जिनागममें ज्ञान, दर्शन और संयमके संरक्षणके लिये पत्र-समाचारादिके व्यवहारका भी स्वीकार करनेका समावेश होता है, तथापि वह किसी कालके लिये, किसी महान प्रयोजनके लिये, महात्मा पुरुषोंकी आज्ञासे अथवा केवल जीवके कल्याणके ही कारणमें उसका उपयोग किसी पात्रके लिये है, ऐसा समझना योग्य है। नित्यप्रति और साधारण प्रसंगमें पत्र-समाचारादिका व्यवहार संगत नहीं है, ज्ञानीपुरुषके प्रति उनकी आज्ञासे नित्यप्रति पत्रादि व्यवहार संगत है.....

---

१. अर्थ—सज्जनके साथ जो प्रीति होती है वह छिपायी छिप नहीं सकती—जैसे कि कस्तूरीकी सुगंध पृथ्वीपर चारों ओर फैल जाती है। जैसे कि विस्तारको प्राप्त हुई इक्षु घाससे ढँकने पर वह गुप्त नहीं रह सकती। श्री यशोविजयजी कहते हैं, कि मुझे प्रभुसे अविचल प्रेमका रंग लगा है वह भी इसी प्रकारका है यानि कि छिपाया छिप नहीं सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपको सर्व पच्चक्खान हो तो फिर पत्र न लिखनेका साधुने जो पच्चक्खान दिया है, वह नहीं दिया जा सकता। तथापि दिया हो तो भी इसमें आपत्ति न माने; वह पच्चक्खान भी ज्ञानीपुरुषकी वाणीसे रूपांतर हुआ होता तो हानि न थी; परंतु साधारणरूपसे रूपांतर हुआ है, वह योग्य नहीं हुआ। यहाँ मूल स्वाभाविक पच्चक्खानकी व्याख्या करनेका अवसर नहीं है, लोकपच्चक्खानकी बातका अवसर है; तथापि वह भी साधारणतया अपनी इच्छासे तोड़ना ठीक नहीं; अभी तो ऐसा दृढ़ विचार ही रखे। गुण प्रगट होनेके साधनमें जब रोध होता हो, तब उस पच्चक्खानको ज्ञानीपुरुषकी वाणीसे या मुमुक्षुजीवके सत्संगसे सहज आकारफेर होने देकर रास्तेपर लाये क्योंकि बिना कारण लोगोंमें शंका उत्पन्न होने देनेकी बात योग्य नहीं है.....

आपके अंबालालको पत्र लिखनेके विषयमें चर्चा हुई, वह यद्यपि योग्य नहीं हुआ। आपको कुछ प्रायश्चित्त दें तो उसे स्वीकारे परंतु किसी ज्ञानवार्ताको लिखनेके बदले लिखवानेमें आपको कोई रुकावट नहीं करनी चाहिये, ऐसा साथमें यथायोग्य निर्मल अन्तःकरणसे बताना योग्य है कि जो बात मात्र जीवका हित करनेके लिये है..."

इसी अरसेमें श्रीमद्जीने श्री अंबालालको पत्र लिखा है उसमें इसी बातके संबंधमें लिखा है—".....किसी भी प्रकारसे सहन करना ही अच्छा है; ऐसा न करनेपर थोड़े कारणसे बड़ा विपरीत क्लेशरूप परिणाम आ सकता है....कदाचित् वे बिना प्रायश्चित्तके भी इस बातको छोड़ दें तब भी आपको अर्थात् साधु लल्लुजीको चित्तमें इस बातका इतना पश्चात्ताप तो करना ही चाहिए कि ऐसा करना भी उचित नहीं था। आगेसे देवकरणजी जैसे साधुके समक्ष वहाँसे अमुक श्रावक लिखनेवाला हो और पत्र लिखावें तो बाधा नहीं है, इतनी व्यवस्था उस संप्रदायमें चलती आ रही है, अतः बहुधा लोग विरोध नहीं करेंगे। और यदि उसमें भी विरोध जैसा कुछ लगता हो तो अभी इस बातके लिए भी धैर्य धारण करना हितकारी है। लोक समुदायमें क्लेश उत्पन्न न हो, यह लक्ष्य चूकने जैसा अभी नहीं है..."

सं.१९५१का चातुर्मास श्री लल्लुजीने सूरतमें किया तब उनके बड़े साधुने मालवासे पत्र लिखकर सं.१९५२में उन्हें खंभात बुलाया था। श्री लल्लुजीने सं.१९५२का चातुर्मास खंभातमें किया था। तब श्रीमद्जी रालज होकर खंभात पधारे थे और सप्ताहभर रुके थे। उस समय मुनि उनके समागममें जाते थे, जिससे लोगोंमें और साधुओंमें चर्चा होती थी तथा बड़े साधु भाणजीरखके कानमें भी यह बात बढ़ा-चढ़ाकर पहुँची थी इससे सं.१९५३ के फाल्गुन मासमें खंभातमें बीस साधु एकत्र हुए थे। इस विषयमें श्री अंबालालभाईने श्रीमद्जीको संक्षेपमें पत्र लिखा था, उसमें वे लिखते हैं—

"मुनिश्री भाणजीरखजीके बुलानेसे बीस साधु इकट्ठे हुए हैं। मुनिश्री लल्लुजी आदि ठाणा छह आज्ञानुसार प्रवृत्ति कर रहे हैं। वे लोग तो विशेष चेष्टामें, निंदा पर उतर आये हैं। यहाँके सभी मुमुक्षु आज्ञानुसार प्रवृत्ति कर रहे हैं। अब तो वे लोग मर्यादारहित प्ररूपणा और निन्दा करनेमें लगे हैं। इस विषयमें यदि थोड़ा भी सहज भावसे कहते हैं, कि मुनिका मार्ग कैसा होना चाहिए? तो वह भी उन लोगोंको उल्टा लगता है...अनेक प्रकारसे अन्यायपूर्ण प्ररूपणा करते हैं, तब भी सभी मुनि आदि अभी तो समभावसे रह रहे हैं। कोई कुछ नहीं बोलता। जरासी बात करने जाते हैं तो वे अन्यायपूर्ण ही बोलते हैं, वहाँ इस जीवका क्या सहारा? अब तो हे प्रभु! आपकी शरण ही एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधारभूत है। जो साधु सन्मार्गकी इच्छावाले हैं उनमेंसे एक-एकको बुलाकर विशेष प्रकारसे दबाते हैं, मार्गसे गिरानेका प्रयत्न करते हैं और लोकसमुदायके सामने विविध प्रकारसे हास्यादिक चेष्टा करते हैं। वे छह मुनि तो समभावसे रह रहे हैं। मुनि देवकरणजीको सच्ची बातमें शूरवीरता आ जाती है, किन्तु मन दबाकर बैठे हुए हैं। अब तो उन लोगोंको विशेष आग्रह हो गया है। यदि पूछे बिना इन साधुओंको एकाएक संघाडासे बहिष्कृत कर दें तब इन छह मुनियोंको कैसा व्यवहार करना चाहिए? कदाचित् संघाडासे बाहर न करें और एक एकको अलग अलग करके अपने साथ रखकर विषम दबाव डालें या मार्गसे गिरानेका प्रयत्न करें तो इन मुनियोंको कैसा व्यवहार करना चाहिए? कुछ प्रारंभिक जिज्ञासावाले मुनियोंको तो यह प्रसंग विशेष दृढ़ताका कारण हुआ है और हो रहा है, फिर भी अब तो डरते हैं कि यह संग बुरा है और इसमें रहना पड़ेगा तो कैसे करेंगे? इस विषयमें स्पष्टीकरण चाहते हैं। पत्रसे विशेष लिखना संभव नहीं हुआ है। किन्तु अद्वेषपरिणामसे ही रहनेका निश्चय किया है। फिर भी अग्निज्वालाके समक्ष रहनेसे उष्णता आये बिना नहीं रहती, तो भी दबा-दबाकर रख रहे हैं। अब तो आप परमकृपालुदेवकी परम कृपासे जगतका कल्याण होओ। इस संसर्गसे चाहे जितना रोकनेपर भी चित्तमें विक्षेप हो ही जाता है। अब वे मुनियोंको उठने देंगे ऐसा नहीं लगता और हमारे साथ तो वे लोग कोई बात ही नहीं करते...अत्यंत दृढ़ परिणामसे रह सकने योग्य मेरी स्थिति नहीं है इसलिये सत्य बात पर जोश आ जाता है। और, जो सच्ची बात कहते हैं उसे हास्यमें अन्यायपूर्ण ढंगसे उड़ा देते हैं। परंतु फिर वही अनुकंपा आ जाती है।"

श्रीमद्जीकी मिलजुलकर एकतासे रहनेकी सूचनाके कारण ऐसे सतानेवाले वातावरणमें भी, बड़े माने जानेवाले साधुके कथनानुसार रहने-जितनी नम्रता और लघुता धारणकर श्री लल्लुजी स्वाध्यायादिमें समय व्यतीत करते जिसका प्रभाव सभी साधुओंपर पड़े बिना नहीं रहता। लोगोंको भी उनकी शांत प्राभाविक मुखमुद्रा तथा भक्ति-वैराग्यादि गुणोंसे उनकी महत्ता समझमें आती। और फिर, श्री देवकरणजीके व्याख्यानसे तो निंदक लोग भी प्रायः बदल जाते।

सं.१९५४की मगसिर वदी दूजको श्री लल्लुजीने श्रीमद्जीको पत्र लिखा उसमें वे लिखते हैं, "हे नाथ! श्री खंभातसे मुनि छगनजीने एक पत्र लिखाया और उसे अंबालालभाईको देकर कहा कि मुनि लल्लुजी आदि मुनियोंको भेज देवें। वे लिखते हैं कि अहमदाबाद क्षेत्रमें नहीं गये जिसका हमें बहुत खेद है...हे प्रभु! विचार करनेपर हमें लगा कि हमें श्री अहमदाबाद क्षेत्रमें जाना ही नहीं है ऐसा तो कुछ है नहीं और फिर स्वपक्षके साधुओंको खेद होता है। वहाँका बहुत आग्रह रहता है, तो हमें सद्गुरुकी शरण लेकर जाना चाहिए ऐसा सोचकर इसका उत्तर आज श्री अहमदाबाद तथा खंभात लिखा है।"

इस पत्रके उत्तरमें श्रीमद्जीने लिखा है—

"...विहार करके अहमदाबाद स्थिति करनेमें मनमें भय, उद्वेग या क्षोभ नहीं है, किन्तु हितबुद्धिसे विचारनेपर हमारी दृष्टिमें यों आता है कि इस समय उस क्षेत्रमें स्थिति करना उचित नहीं है...समागम होनेपर बतायें कि पहलेकी अपेक्षा संयममें मन्दता आयी है ऐसा आपको लगता हो तो सूचित करें, ताकि उससे निवृत्त होनेका संभव हो सके; और यदि आपको वैसा न लगता हो तो फिर कुछ जीव विषमभावके आधीन होकर ऐसा कहते हों तो उस बातको लक्ष्यमें न लेकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मभावका लक्ष्य रखकर रहना योग्य है...क्वचित् आप ऐसा मानते हों कि जो लोग असंभव बात कहते हैं उन लोगोंके मनमें अपनी भूल दिखायी देगी और धर्मकी हानि होनेसे रुकेगी, तो यह एक हेतु ठीक है...पर एक बार तो अविषमभावसे वह बात सहनकर अनुक्रमसे स्वाभाविक विहार करते करते ऐसे क्षेत्रमें जाना हो और कुछ लोगोंको संदेह हो वह निवृत्त हो सके वैसा करना चाहिए, किन्तु रागदृष्टिवालोंके वचनोंकी प्रेरणासे तथा मानकी रक्षाके लिए अथवा अविषमता न रहनेसे लोगोंकी भूल मिटानेका निमित्त मानना आत्महितकारी नहीं है।"

श्री लल्लुजी सं.१९५४ के पौष मासमें लिखते हैं–"श्री वसो क्षेत्रमें मुनिश्री भाणजीस्वामीका समागम हुआ, उनके साथ अविषमभावसे–समाधिपूर्वक बातचीत हुई अतः उन्होंने भी कहा कि, आप सुखपूर्वक इस क्षेत्रमें विचरण करें और हम भी इस समय श्री अहमदाबाद क्षेत्रमें नहीं जायेंगे, ऐसा कहकर समतासे कषायरहित समागम कर, श्री खेडा पधारे हैं।"

सं.१९५५ चैत्र सुदी ५के पत्रमें श्री लल्लुजी श्रीमद्को लिखते हैं–"ऐसा लगता है कि मुनि छगनजीका चातुर्मास खंभात होगा, पर मुनि देवकरणजी (कच्छसे) आयें और परिवर्तन करना पड़े तो वह सुविधा भी संभव है। कुछ विषम नहीं होगा...आज मुनि भाणजीरखका पत्र आयेगा।" फिर श्री लल्लुजीने नडियाद चातुर्मास किया और श्री देवकरणजीने वसोमें चातुर्मास किया।

सं.१९५५के चातुर्मासके बाद श्री लल्लुजी आदि मुनियोंको खंभातके संघाडेसे बाहर कर दिया था फिर भी प्रतिपक्षके साथका संबंध बिलकुल छूट गया हो और एक दूसरेके प्रति द्वेषभाव न रहा हो ऐसा उपरोक्त पत्रोंके अवतरणसे स्पष्ट होता है। संघाडेमें समान दो भाग होनेपर भी पुस्तक पन्ने आदिके लिए किसी भी प्रकारकी माँग या तकरार श्री लल्लुजी आदि मुनियोंकी ओरसे नहीं हुई, उनकी इस उदारता और निःस्पृहताकी छाप सभी साधुओंपर पड़ी। कषायकी वृद्धि हो ऐसे निमित्तोंमें भी श्रीमद्जीके उपदेशसे और श्री लल्लुजी आदि मुनियोंकी आज्ञाकारी वृत्तिसे मानो कुछ हुआ ही न हो ऐसा मानकर उनके संबंधसे अलग होकर वे आत्महितमें ही तल्लीन रहने लगे।

इसी अरसेमें भाईश्री अंबालाल एक पत्रमें सुंदर विचार प्रदर्शित करते हैं–

"ऐसे लौकिक उदयसे मनको संकुचित नहीं करते हुए महामुनि आनंदमें रहते हैं और निम्नानुसार परमार्थका विचार करते हैं–

असत्संग दूर होगा, सारे संसारका ममत्व छोड़ा था, किन्तु उसमें इस उपाधिवाले संघाडेके कारण कुछ चिपक गया था वह सहज ही छूट गया, यह परम कृपा श्रीसद्गुरुकी है। अब तो हे जीव! तेरा गच्छ, तेरा मत, तेरा संघाडा बहुत बड़ा हो गया है–चौदह राजलोक जितना हो गया है। षड्दर्शन पर समभाव और मैत्री रखकर निर्ममत्वभावसे, वीतरागभावसे आत्मसाधनाका अधिक अवकाश प्राप्त हुआ है।

जिसकी वृत्ति अंदर आत्मभावमें उतरती जाती है उसे क्षेत्र, काल, द्रव्य, भाव कुछ भी विघ्नकारक नहीं होते...निर्मल जल खारे समुद्रमें मिलकर शांत रहना नहीं चाहता पर सूर्यकी गर्मीके योगसे बाष्प बनकर, बादलरूप होकर संसारको अमृतमय बनानेके लिए सर्व स्थानोंपर गिरता है। इसी प्रकार आप जैसे महामुनि सत् ऐसे परम स्वरूपको जाननेसे निर्मल जलरूप बनकर सारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसारके हितके लिए ममत्वका त्याग कर गच्छ-मतादि कल्पनासे रहित होकर संपूर्ण लोकको अमृतमय बनानेके लिए वीतराग भावका सेवन कर रहे हैं!

...जीव जब तक अज्ञानमें, मिथ्यात्वभावमें है तब तक ज्ञानी उसे मिथ्यात्वमें और गच्छमें मानते हैं। मिथ्यात्व जानेके बाद समकित प्राप्त होनेपर उसे उस न्यात, जात, टोली, मत, गच्छमें गिना और तेरहवें गुणस्थानमें पहुँचा या चौदहवेंमें है फिर भी देहधारीके गच्छमें गिना गया; किन्तु शुद्ध, निर्मल, शुद्ध सच्चिदानन्द सिद्ध-स्वरूप प्रगट हुआ तब वह कृतार्थ हुआ, सबसे भिन्न, निर्मल हुआ..."

उनके दूसरे पत्रमें भी साहस बढ़ानेवाला प्रेरक लेख है–

"विचारवान जीवोंने ऐसा निश्चय किया है कि इस जीवको किसी क्षयोपशमादि कारणसे या पूर्वोपार्जित कर्मोदयसे...मान-अपमानादि कारण प्राप्त होते हैं, अर्थात् शुद्ध आचरणसे, तपोबलसे, शास्त्रज्ञानसे, विचारशक्तिसे, वैराग्यादि कारणोंसे जो कुछ पूज्यता प्राप्त होती है, सत्कारादि मिलते हैं वे सब पूर्वोपार्जित प्रारब्धके उदयसे प्राप्त होते हैं। और जो कुछ असमाधि, क्षुधा, तृषा, अपमान, असत्कार इत्यादि प्राप्त होते हैं वे भी प्रारब्धके उदयसे प्राप्त होते हैं। इसमें इस जीवका कर्तृत्व कुछ भी नहीं है, मात्र पूर्वबद्ध शुभाशुभ कर्मका ही वह फल है, ऐसा समझकर विचारवान जीव मान-अपमानादि कारणोंमें समदृष्टिसे रहकर आत्मसमाधिमें प्रवृत्ति करते हैं...

भाईश्री वेलसीभाई, मुनिश्रीकी सेवामें पर्युषण पर्व बितानेके लिए कल यहाँसे उस ओर पधारे हैं।"

दो-चार माहमें मुनिसमागम करते रहनेका श्रीमद्जीका मुमुक्षुवर्गको निर्देश होनेसे, अनुकूलताके अनुसार मुनियोंके दर्शन-समागमके लिए मुमुक्षु उनके पास जाते रहते थे और पत्रव्यवहारसे भी लाभ लेते थे।

८

नडियादका चातुर्मास पूर्ण होनेपर श्री लल्लुजी आदि वीरमगाम जानेके लिए निकले। श्री देवकरणजी आदि भी वीरमगाम आ गये थे। छहों साधु वीरमगाममें रहकर भक्ति, ज्ञान, विचार आदिमें समय व्यतीत करते थे। शेष काल पूरा होनेपर श्री मोहनलालजी आदि साणंदकी ओर गये। उसी रात श्रीमद्जी वीरमगाम पधारे; और उपाश्रयमें समागम हुआ। श्री आनंदघनजी और श्री देवचंद्रजीके स्तवन बोलनेके बाद श्रीमद्जीने–'वीरजीने चरणे लागुं, वीरपणुं ते मागुं रे' इस महावीर भगवानके स्तवनका अर्थ किया। प्रातःकाल वनमें फिर समागम हुआ। पश्चात् श्रीमद्जी ववाणियाकी ओर पधारे, और श्री लल्लुजी आदि अहमदाबादकी ओर आये।

थोड़े ही समयमें श्रीमद्जी ववाणियासे अहमदाबाद पधारे और बाहरकी वाडीके पास नगरसेठ प्रेमाभाईके बंगलेपर ठहरे। श्रीमद्जी राजपुरके मंदिरमें जानेवाले थे अतः लल्लुजी आदि मुनियोंको भी समाचार भेज दिये थे। मंदिरमें छठे पद्मप्रभुजीका स्तवन स्वयं बोले और मूलनायक पार्श्वनाथ प्रभुकी बगलमें जो भव्य श्वेत प्रतिमा है उसके समीप जाकर श्रीमद्जी बोले, "देवकरणजी देखो, देखो आत्मा!" अतः लल्लुजी आदि प्रतिमाके पास आगे आये। श्रीमद्जी बोले, "दिगम्बर आचार्य नग्न रहे इसलिये भगवानको भी दिगम्बर रखा और श्वेताम्बर आचार्योंने वस्त्र धारण किये अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवानको आंगी, मुकुट आदि पहनाया।" फिर मंदिरके बाहर आकर मुनियोंसे कहा, "मुनियो! बाहर दृष्टि करोगे तो विक्षेपकी कोई सीमा नहीं है, अतः अन्तर्दृष्टि करें।"

अहमदाबादसे श्रीमद्जी ईडरकी ओर पधारे और श्री लल्लुजी आदिने थोड़े दिन बाद नरोडाकी ओर विहार किया। ईडरसे श्रीमद्जी पत्र नरोडा आया कि वे कल नरोडा पहुँच रहे हैं। अहमदाबादसे मुमुक्षुभाई भी नरोडा आये थे। बारह बजे श्री लल्लुजी आदि मुनियोंको निवृत्तिस्थान जंगलमें आनेके लिए श्रीमद्जीने समाचार भिजवाया। मुनि उपाश्रयसे गाँवकी सीमा तक पहुँचे तब श्रीमद्जी आदि भी वहाँ प्रतीक्षा करते खड़े थे। ग्रीष्मऋतुकी गर्मीसे जमीन बहुत तप गयी थी। परंतु 'साधुओंके पाँव जलते होंगे' ऐसा कहकर श्रीमदजीने अपने जूते (स्लीपर) निकाल दिये और दूर वटवृक्ष तक गज-गतिसे नंगे पैर चले। साधु छायामें पहुँचनेके लिए त्वरित गतिसे चल रहे थे जबकि वे स्वयं बिना घबराये, गर्मीकी कुछ भी चिंता किये बिना, शांतिसे चल रहे थे। गाँवके लोग भी बातें करने लगे कि श्री देवकरणजी महाराज कहते थे कि ये ज्ञानी पुरुष हैं, यह बात सत्य है।

वटवृक्षके नीचे श्रीमद्जी बैठे और उनके सामने छहों मुनि नमस्कार कर बैठ गये। श्रीमद्जीके पैरोंके तलवे लालसूर्ख हो गये थे पर उन्होंने पाँवपर हाथ तक नहीं फेरा। श्री देवकरणजीकी ओर देखकर उन्होंने कहा, "अब हम बिलकुल असंग होना चाहते हैं। किसीके परिचयमें आना अच्छा नहीं लगता। ऐसी संयमश्रेणीमें आत्मा रहना चाहता है।" श्री देवकरणजीने प्रश्न किया, "ज्ञानीपुरुषकी जो अनन्त दया है वह कहाँ जायेगी?" उत्तरमें श्रीमद्जीने कहा, "अंतमें इसे भी छोड़ना है।" फिर श्रीमद्जीने पूछा, "स्थानकवासी लोग आपको विक्षेप करते हैं इसका क्या कारण है?" श्री देवकरणजीने कहा, "आपका चित्रपट हमारे पास रहता है वह उन्हें अखरता है।" श्रीमद्जीने कहा, "इसी कारण हमने आपको चित्रपट रखनेकी आज्ञा नहीं दी थी। ज्ञानीकी आज्ञा पूर्वापर अविरोध होती है। आपने अपनी इच्छासे चित्रपट अपने पास रखे थे अब उसका त्याग कर दो। दिगम्बर पुस्तक 'योगप्रदीप' नामक है वह आपको भेजेंगे, उसपर बारंबार विचार करना।"

सं.१९५६का चातुर्मास श्री लल्लुजीस्वामीने सोजित्रा सोनीकी धर्मशालामें किया था। वहाँ दिगंबर भट्टाचार्यके साथ उनका समागम हुआ। स्थानकवासी वेश होनेपर भी संघाडेसे अलग होनेके बाद स्थानकवासियोंसे अधिक परिचय न करना पड़े ऐसे स्थानमें चातुर्मास करनेका विचार रखा था।

सोजित्रामें चातुर्मास पूरा होनेपर श्री लल्लुजी आदिको पत्रसे समाचार मिला कि श्रीमद्जी अहमदाबाद पधारे हैं। श्री देवकरणजीको भी ये समाचार मिल गये थे अतः सभी मुनि विहार कर अहमदाबाद आ गये। श्री लल्लुजीको मार्गमें बुखार आता था जिससे उनके उपकरण श्री मोहनलालजीने उठा लिये; एक पुस्तक उनके पास थी उसे उनके साथके मुनि नरसीरखको उठा लेनी चाहिए थी ऐसा श्री मोहनलालजीको लगा अतः उन्होंने यह बात अहमदाबादमें श्री देवकरणजीसे कही। इसपरसे श्री देवकरणजीने नरसीरखको उलाहना दिया, पर उनका पक्ष लेकर नरसीरखके साथी दूसरे मुनिने श्री देवकरणजीकी अवज्ञा की। श्रीमद्से यह बात किसीने नहीं कही। परंतु सभी मुनि जब श्रीमद्जीके दर्शन करने आगाखानके बंगलेपर गये तब बातचीतके प्रसंगमें श्रीमद्जीने कहा, "मुनियों! इस जीवने स्त्री-पुत्रादिके भार सहे हैं, किन्तु सत्पुरुषोंकी या धर्मात्माकी सेवाभक्ति प्रमादरहित होकर नहीं की है।" यों कहकर लक्ष्मीचंदजी मुनिको आज्ञा दी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि, "यह 'ज्ञानार्णव' ग्रंथ जब तक श्री देवकरणजी परिपूर्ण पढ़ न लें तब तक विहारमें तुम उठाओगे।" फिर मुनि देवकरणजीको 'ज्ञानार्णव' पढ़नेकी प्रेरणा की और वह ग्रंथ उन्हें बहोराया (प्रदान किया)। 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' नामक ग्रंथ श्री लल्लुजीको बहोराया और उसे परिपूर्ण पढ़ने, स्वाध्याय करनेका निर्देश दिया तथा श्री मोहनलालजीको वह ग्रंथ उठानेकी आज्ञा दी।

श्रीमद्जीने श्री लल्लुजीसे कहा, "मुनि, 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा'के रचयिता कुमार ब्रह्मचारी हैं। उन्होंने इस ग्रंथमें अपूर्व वैराग्यका जो निरूपण किया है वैसी अन्तरदशा और वैसी उत्कृष्ट भावना उन महात्माकी रहती थी। निवृत्तिस्थानपर इसपर बहुत विचार कीजियेगा।" श्री देवकरणजी स्वामीको भी कहा, "आप भी यह ग्रंथ बहुत पढ़ियेगा, विचारियेगा। दोनों ग्रंथ परस्पर अदल-बदलकर पढ़ियेगा और विचारियेगा।" श्री देवकरणजीने श्रीमद्जीसे पूछा, "आपका शरीर एकदम इतना कृश कैसे हो गया?" श्रीमद्जीने उत्तर दिया, "हम शरीरके विरुद्ध पड़े हैं।"

श्रीमद्जी अहमदाबादसे वढवाण जानेवाले थे उसकी अगली रातको स्वयं भावसारकी वाडीमें पधारे जहाँ मुनिगण ठहरे हुए थे। स्वयं वढवाण जानेवाले हैं यह बताकर श्री लल्लुजीको उलाहना देते हुए बोले, "आप ही हमारे पीछे पड़े हैं, हम जहाँ जाते हैं वहाँ दौड़े चले आते हैं, हमारा पीछा नहीं छोड़ते।"

श्री लल्लुजी स्वामीको भी ऐसा लगा कि अब जब वे स्वयं बुलायेंगे तभी उनके चरणोंमें जाऊँगा, बिना बुलाये अब नहीं जाऊँगा; तब तक उनकी भक्ति करता रहूँगा।

दूसरे दिन श्री लल्लुजी और श्री देवकरणजीको आगाखानके बंगले पर बुलाकर श्रीमद्जीने अपनी दशाके बारेमें बताया, "अब एकमात्र वीतरागताके सिवाय हमें अन्य कोई वेदन नहीं है। हममें और वीतरागमें भेद न मानियेगा।।"

श्री लल्लुजी और श्री देवकरणजीको वैसी ही श्रद्धा थी किन्तु श्रीमुखसे वह दशा सुनकर परम उल्लास हुआ और जानेसे पहले हमारे समक्ष अपना हृदय खोलकर बात कर दी, ऐसा दोनोंके हृदयमें होनेसे परम संतोष हुआ।

श्रीमद्जी अहमदाबादसे वढवाण कॅम्प पधारे। वहाँ कुछ समय रहकर राजकोट पधारे और सं.१९५७की चैत्र वदी ५ मंगलवारको श्रीमद्जीका देहोत्सर्ग हुआ। श्री लल्लुजी मुनि कविठा थे वहाँ ये समाचार सेठ झवेरचंद भगवानदासके पतेपर भिजवाये गये। श्री लल्लुजी मुनिको पाँचमका उपवास था, और रात्रि जंगलमें बिताकर दूसरे दिन गाँवमें आये तब सेठ झवेरचंदभाई और उनके भाई रतनचंद दोनों बातें कर रहे थे कि मुनिश्रीका पारणा होनेके बाद समाचार देंगे। यह बात मुनिश्रीने स्पष्ट पूछी और उनके आग्रहसे परमकृपालु श्रीमद् राजचंद्रके देहोत्सर्गके समाचार उन्होंने कहे, सुनते ही मुनिश्री वापस जंगलमें चले गये और एकान्तमें कायोत्सर्ग, भक्ति आदिमें वह दिन बिताया। चैत्र मासकी उस गर्मीमें पानी तक लिये बिना विरहवेदनामें वह दिन जंगलमें व्यतीत किया। वहाँसे श्री लल्लुजी आदि मुनिगण वसोकी ओर पधारे।

अब श्री अंबालालभाईका सत्संग-समागम आश्वासक और उत्साहप्रेरक रहा था। सं.१९५७का चातुर्मास श्री लल्लुजी आदिने वसो क्षेत्रमें किया था। श्री मुनिवरोंको खंभात पधारनेके लिए आमंत्रणका पत्र श्री अंबालालभाईने लिखा था वह बहुत विचारणीय है। वे लिखते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ

"विषम संसार छोड़ चले उन परम वीतरागी पुरुषोंको नमस्कार!

वीतरागी मुनियोंके चरणारविन्दमें हमारे सविनय भक्तिभावसे नमस्कार प्राप्त हों। परम वीतरागी पुरुषोंकी कृपासे ज्ञान(ज्ञानी)की उपासना करते हुए देहकी ममताका त्याग होनेके कारण आत्मानन्दमें झूलनेवाले और पारमार्थिक दृष्टिसे भविकजीवोंपर निःस्पृह करुणा करनेवाले आप आनन्दपूर्वक बिराजमान हैं यह जाननेकी जीवकी निरन्तर इच्छा है।

सद्गुरुदेवके अमृतमय वचनका पान कर जिनका वचन वीतरागी भावको प्राप्त हुआ है, भक्ति करके जिनकी काया वीतरागी भावको प्राप्त हुई है, निरन्तर स्मरणसे जिनका मन वीतरागी भावको प्राप्त हुआ है और सद्गुरु मुखसे लोकका स्वरूप समझकर जो आत्मभावमें रमण कर रहे हैं, वैसे महामुनियोंका स्वरूप हमारे हृदयमें सदैव विद्यमान रहे। संसारके प्रवाहमें बहते, भवाटवीमें भटकते इस रंक जीवके उद्धारके लिए महामुनियोंका इस ओर पदार्पण हो ऐसी इस जीवकी निरन्तर विनती है। परम सत्पुरुषकी कृपासे यहाँ शान्ति है। उन सत्पुरुषको हमारा परम परम भक्तिभावसे नमस्कार हो! उन महान वीतरागी गुरुदेवके चरण हमारे हृदयके हृदयमें सदैव स्थापित रहें! उन परम पुरुष महावीरकी चरणशरण और स्मरण ही सदैव आपको और हमें प्राप्त हो!

चारों गतिमें नहीं जानेका मानो दृढ़ संकल्प कर लिया हो ऐसी प्रगाढ ध्यानमुद्राको धारण करते हुए, आत्मस्वरूपमें वृत्तिको लीन करते हुए, आत्मस्थ हुए महान मुनियोंको बारंबार नमस्कार हो!

प्रचण्ड वीतरागता धारण करते, क्षमारूपी खड्गको धारण कर कषायरूपी जगतमें उथलपुथल करके मानो जगतमेंसे कषायको निर्मूल करनेके लिए ही मौन ग्रहण कर ज्ञानीकी चरणशरण ले रहे हैं। मोक्षनगरीको प्राप्त करनेके लिए महावीर पुरुषके समान संयमके सर्व शस्त्रोंसे सज्ज होते हुए, आत्मज्योतिको प्रकाशित करते, सर्व विभावको प्रज्वलित कर, इन्द्रियोंको संकोच कर पद्मासनसे दृढ़ वृत्ति-अंतर्दृष्टि कर चैतन्य-आनंदमें निमग्न होनेवाले मुनियोंको बारंबार नमस्कार हो! नमस्कार हो!"

श्रीमद्जीके देहोत्सर्गके पश्चात् 'मुंबई समाचार'में प्रकाशित करवानेके लिए तैयार की गयी या प्रकाशित हो चुकी श्री लल्लुजी तथा श्री देवकरणजी आदि मुनियोंके द्वारा या उनके नामसे किसी मुमुक्षु द्वारा की गयी विनती विज्ञप्तिके रूपमें लिखी गयी थी, वह श्री लल्लुजीके संग्रहीत पत्रोंमेंसे मिली है जो निम्नलिखित है। उस परसे, श्रीमद्का देहोत्सर्ग हुआ उसी अरसेमें ज्ञानमन्दिर या आश्रमकी योजना अमुक भक्तवर्गमें स्फुरित थी ऐसा प्रतीत होता है। सं.१९५८में श्री देवकरणजीके देहावसानके पूर्व यह लिखी गयी लगती है–

"श्रीमद् राजचंद्र ज्ञानमंदिर स्थापन करनेकी जैन मुनियों द्वारा की गयी विनती

माननीय मुंबई समाचारके अधिपति जोग,

श्रीमान्,

मुनिश्री लल्लुजी, मुनिश्री देवकरणजी आदि जैन मुनियोंने निम्न विचार प्रदर्शित किया है उसे आपके प्रसिद्ध पत्रमें प्रकाशित करनेकी कृपा करेंगे।

भगवान महावीर-प्रतिपादित वीतरागमार्गकी स्थायी स्थितिमें उनके निर्वाणके पश्चात् क्रमशः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थित्यान्तर होकर श्वेताम्बर और दिगम्बर दो भेद हुए। यह सच है कि अमुक विचारोंमें परिवर्तन हुआ था, किन्तु दोनों पक्षोंमें इतना अधिक भेदभाव हो जानेका कारण यों लगता है कि दोनों पक्षोंकी स्थिति भिन्न-भिन्न प्रकारके राज्यतंत्र और स्थानमें हुई थी और उसके कारण दोनों पक्ष जिन संयोगोंमें आ गये थे उन संयोगोंके अनुसार रहनेके नियमादिमें परिवर्तन किया। बहुत समय बीतनेके बाद तो ऐसी दशा, कालस्थिति हो गयी कि श्वेताम्बर और दिगम्बर मतानुयायी लम्बे समयतक एक-दूसरेसे मिल भी न सके। बीच-बीचमें दोनों पक्षोंके अन्दर महातत्त्वज्ञ पुरुष हो गये। यद्यपि उन्हें दोनों पक्षोंके कुछ भिन्न विचारोंका निर्णय करनेका योग ही नहीं मिला था क्योंकि दोनों पक्षके तत्त्ववेत्ताओंपर गम्भीर सेवा करनेकी जिम्मेवारी थी और वह यह कि ज्ञानके अभावके कारण अपने-अपने पक्षकी जो अधम स्थिति हो गयी थी उसे सुधारकर योग्य स्थितिमें प्रस्थापित करनेका काम उन्हें करना पड़ता था। उदाहरणस्वरूप हरिभद्रसूरिका समय लें। जिस समय ये महान् आचार्य हुए उस समय लोगोंकी ऐसी अव्यवस्थित स्थिति हो गयी थी कि उसे सुधारनेका काम उन्हें हाथमें लेना पड़ा; और उस कामको सम्पूर्ण करनेमें जो श्रम और समय उन्हें लगाना पड़ा वह इतना अधिक विस्तीर्ण था कि श्वेताम्बर और दिगम्बर पक्षके विचारोंमें जो अन्तर दिखायी देता था उसपर दोनोंको साथ मिलकर, विचारकर, उसका निर्णय कर पुनः परिवर्तन करनेका समय ही उनके पास नहीं बचा था। इसलिए श्वेताम्बर पक्षकी ही स्थितिको सुधारते हुए जो महालाभका कारण था वही उन्होंने किया। इसी प्रकार दिगम्बर तत्त्वज्ञ पुरुषोंको भी करना पड़ा। इन्हीं कारणोंसे दोनों पक्षके विचारोंमें जो अन्तर था वह ज्योंका त्यों रह गया। उसके बाद हेमचन्द्राचार्यका समय लें। उनके लिए भी अपने पक्षकी अव्यवस्थित स्थितिको सुधारनेका काम तैयार था। अतः दिगम्बर पक्षके साथ निर्णय करनेका काम उनसे भी नहीं हो सका। इसी प्रकारकी अन्य महापुरुषोंकी भी स्थिति हुई लगती है। छोटे भिन्न-भिन्न मतमतान्तर इतने अधिक बढ़ गये कि कितने ही बड़े आचार्यके लिए भी मतमतान्तर दूर करनेका काम बहुत कठिन था। फिर भी उन्होंने यथासम्भव प्रयास किया। हेमचंद्राचार्यके बादका समय इतना अधिक अव्यवस्थित हो गया कि उस अव्यवस्थाने मात्र मतमतान्तर उत्पन्न करनेका ही काम किया। इस प्रकार इन दो मुख्य पक्षोंके विचारान्तरका समाधान करनेका काम बाकी ही रह गया। वर्तमान राज्यतंत्र स्थायी होनेसे, इस समय यदि कोई महात्मा हों तो उनके लिए यह कठिनाई कम हुई थी, यद्यपि दूसरी ओर बहुत छोटे-छोटे मतमतान्तर बढ़ गये थे जिससे मताग्रहके कारण जमी उस बहुत गहरी जड़को उखाड़नेका काम उतना ही कठिन हो गया था, फिर भी इस कठिनाईको सरल करनेके लिए अभी जिनका देहावसान हुआ है वे एक महात्मा उत्पन्न हुए थे। ऐसा लगता था कि उन पवित्रात्माका जिनमार्गके सूर्यके रूपमें उदय हुआ है। उन्होंने स्वयं सर्व दर्शनका सूक्ष्म अभ्यास कर आत्मतत्त्वके सम्बन्धमें विचारोंका सत्त्व निकाला था। उनके मनमें न जिनमार्ग अपना था और न वेदान्तमार्ग अपना था। जो मार्ग वीतरागदशाका भान कराता हो वही मार्ग आत्माका कल्याण करनेवाला है, ऐसा उनका उपदेश था। महान आक्षेप सहन करनेके बाद लोग यह जानने लगे थे कि वे एक निष्पक्षपाती मतमतान्तररहित निर्मल आत्ममार्गके उपदेष्टा हैं। शुद्ध वीतराग आत्ममार्गकी दशाका भान करानेवाले वे ही पुरुष हैं ऐसी प्रतीति लोगोंको होने लगी थी, परंतु खेद! वह उदयमान सूर्य अस्त हो गया। उनका वर्तमान आयुष्यकर्म पूर्ण हुआ। परिणाम, वीतरागमार्गका उद्योत होता रुक गया!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम भी दूसरोंकी भाँति मताग्रहमें फँसे हुए हैं। मन, वचन और कायासे ममत्वके त्यागकी प्रतिज्ञा करनेपर भी अपने मतका मिथ्या आग्रह इतनी अधिक जड़ डाल चुका था कि एक शुद्ध गृहस्थी जो धर्मज्ञानकी आवश्यकतासे अनजान हो वह भी अपने परिग्रहमें इतना अधिक ममत्व नहीं रखता होगा। जहाँ धर्मगुरुओंकी ऐसी स्थिति हो वहाँ लोक-कल्याणकी क्या आशा की जा सकती है? ऐसी अज्ञानदशामें आत्मकल्याणका मार्ग निःस्पृहता है, ऐसा हमें भान करानेवाली वह पवित्र मूर्ति थी। हम मताग्रहसे अपने आत्माके अहितका कार्य करते जा रहे हैं ऐसा उस महात्माने हमें समझाया था। और इसीलिए हम दूसरोंकी भाँति जहाँ अपनापन मान बैठे थे वहाँ अपने आत्माका अहित कर रहे थे, ऐसा हमें कुछ समझमें आया हो ऐसा लगता है। हमें उस महान पवित्र आत्माके सत्समागमका जो अपूर्व लाभ मिला था उससे हमें यह निःसंदेह लगता था कि श्री महावीर द्वारा प्रतिपादित मार्गका उद्धार करनेवाला पुरुष यदि कोई है तो वह यही है। यह निःसंशय है कि यदि उस महात्माका आयुष्य विशेष होता तो छोटे-छोटे मतमतान्तर तो अवश्य दूर होते। इतना ही नहीं, श्वेताम्बर और दिगम्बर मार्गके सूक्ष्म विचारान्तर भी दूर हो जाते और श्री महावीरने जिस प्रकार वीतराग मार्गका प्रचार किया था वैसा ही इस महात्मासे होनेवाला था। परंतु अब वे सभी आशाएँ व्यर्थ हो गयी है। और कितना अज्ञान बढ़ेगा इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। उन महात्माके अनुयायियोंको, अन्य कुछ नहीं तो इतना तो अवश्य करना चाहिये कि उनके उपदेशका अनुसरण किया जा सके उसके लिए एक ज्ञानमंदिरकी स्थापना करें। उस ज्ञानमंदिरकी ऐसी योजना होनी चाहिए कि उनके अनुयायियोंका सद्व्यवहार जनसमूहको दृष्टांतरूप हो सके।"

उपरोक्त लेखके पीछे जो सूझ काम कर रही थी उसे समझनेके लिए श्रीमद्जीका नीचेका लेख उपयोगी सिद्ध होगा–

"यदि मूलमार्गको प्रकाशमें लाना हो तो प्रकाशमें लानेवालेको सर्वसंगपरित्याग करना योग्य है, क्योंकि उससे यथार्थ समर्थ उपकार होनेका समय आता है...यदि सचमुच उपदेशक पुरुषका योग बने तो बहुतसे जीव मूलमार्ग प्राप्त कर सकते हैं...किन्तु नजर दौड़ानेसे वैसा पुरुष ध्यानमें नहीं आता, इसलिये लिखनेवालेकी ओर ही कुछ नजर जाती है...सर्वसंगपरित्यागादि हो तो हजारों मनुष्य मूलमार्गको प्राप्त करें, और हजारों मनुष्य उस सन्मार्गका आराधन करके सद्गतिको प्राप्त करें, ऐसा हमारे द्वारा होना सम्भव है...धर्म स्थापित करनेका मान बड़ा है; उसकी स्पृहासे भी कदाचित् ऐसी वृत्ति रहती हो, परंतु आत्माको बहुत बार कसकर देखनेसे उसकी सम्भावना वर्तमान दशामें कम ही दीखती है; और किंचित् सत्तामें रही होगी तो वह क्षीण हो जायेगी ऐसा अवश्य भासित होता है, क्योंकि यथायोग्यताके बिना, देह छूट जानेकी दृढ़ कल्पना हो तो भी, मार्गका उपदेश नहीं करना, ऐसा आत्मनिश्चय नित्य रहता है...मेरे मनमें ऐसा रहता है कि वेदोक्त धर्म प्रकाशित या स्थापित करना हो तो मेरी दशा यथायोग्य है, परंतु जिनोक्त धर्म स्थापित करना हो तो अभी तक उतनी योग्यता नहीं है, फिर भी विशेष योग्यता है, ऐसा लगता है।"

['श्रीमद् राजचंद्र' अंक ७०८ सम्पूर्ण विचारणीय]

"उन्नतिके साधनोंकी स्मृति करता हूँ–

बोधबीजके स्वरूपका निरूपण मूलमार्गके अनुसार स्थान स्थान पर हो!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान-स्थानपर मतभेदसे कुछ भी कल्याण नहीं है यह बात फैले।
प्रत्यक्ष सद्गुरुकी आज्ञासे धर्म है यह बात ध्यानमें आये।
द्रव्यानुयोग—आत्मविद्याका प्रकाश हो।
त्यागवैराग्यकी विशेषतापूर्वक साधुगण विचरें।
नवतत्त्वप्रकाश
साधुधर्मप्रकाश
श्रावकधर्मप्रकाश
विचार।
अनेक जीवोंको प्राप्ति।" (अंक ७०९)

श्रीमद्जीकी विद्यमानतामें उनके दर्शन-समागमकी भावनासे श्री लल्लुजी स्वामी नडियाद, आणंद, अहमदाबाद, नरोडा आदि स्थानोंमें विहार करते थे और समाचार मिलनेपर स्टेशनके गाँवमें जा पहुँचते थे, और श्रीमद्जी मुंबई या काठियावाड जाते होते तो दर्शन, समागमका लाभ लेना नहीं चूकते थे; परंतु अब वैसा बलवान कारण रहा नहीं था और स्वयंको पहाड़ और जंगल प्रिय होनेसे एकान्तमें आत्मसाधना विशेष हो सकेगी यह सोचकर धर्मपुरके जंगलोंको पार कर उन्होंने दक्षिण देशकी ओर विहार किया। साधुओंमेंसे मात्र मोहनलालजीको साथ रखा था। वे जहाँ जाते वहाँ उपाश्रयमें कोई आता तो उसके साथ धर्मकी बात करते और स्वयं अधिकांश समय जंगलमें ही बिताते, आहारके समय ही गाँवमें आते।

एक दिन जंगलमें बहुत दूर चले गये। इतनेमें सौ-दोसौ भील उनके आसपास दूर दूर हथियार तीर-कमान आदिसे सज्ज होकर उनको घेरकर खड़े हो गये। सब उनको घेरकर क्यों खड़े हैं यह उनकी समझमें नहीं आया। अतः वे निर्भयतासे उनके पास गये और पूछा, "भाई, सब इकट्ठे क्यों हुए हो?" एकने कहा, "तुम सरकारी आदमी हो और लड़ाईमें भरती करनेके लिए हमें पकड़ने आये हो, अतः हम तुम्हें पकड़ लेंगे।" उन्होंने पासके गाँवका नाम और जिनके यहाँ ठहरे हुए थे उस बनियेका नाम बताया और कहा, "हम तो संत-साधु हैं। तुम्हें विश्वास न हो तो हमारे साथ आओ। हम तो भगवानकी भक्तिके लिए जंगलमें आते हैं, आज कुछ दूर आ गये हैं। तुम्हें हमसे भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं। हम सरकारी आदमी नहीं हैं।" इस सरल स्पष्टीकरणसे सब समझ गये और वापस चले गये।

फिर लम्बा-लम्बा विहार करके दक्षिणके करमाला गाँवमें गये और सं.१९५८का चातुर्मास वहीं किया। उस देशमें जो गुजराती और मारवाडी लोग थे वे उनके समागममें आते थे। उनसे वे निष्पक्षतासे धर्मकी बात करते, जो उन्हें बहुत रुचिकर लगी। बादमें बहुत बार श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगासमें वे उस प्रदेशकी बात करते और कहते कि वहाँके लोग बहुत भाविक और उत्साहवाले थे और वहाँ अधिक समय हमारा विचरना हुआ होता तो श्रीमद् राजचंद्र आश्रम अगासमें बना है वैसा वहीं बन जाता।

श्री देवकरणजी आदि चरोतरमें विचरण कर रहे थे। उस अरसेमें भादरणमें श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवकरणजीके पाँवमें काँटा चुभ गया। सं.१९५८का चातुर्मास उन्हें बोरसदमें करना था, किन्तु काँटा चुभनेसे पाँव पक गया और हड्डी सड़ने लगी इसलिए चातुर्मास अहमदाबाद करनेका निश्चित किया और मुमुक्षुभाइयोंने डोलीमें बिठाकर उन्हें अहमदाबाद भेजा। वहाँके परिचित स्थानकवासी तथा अन्य मुमुक्षुवर्गने उनकी बहुत सेवा की। क्लोरोफोर्म सुँघाकर उनके पाँवका ऑपरेशन करनेका डॉक्टरका अभिप्राय था, परंतु श्री देवकरणजी बेभान रहना नहीं चाहते थे अतः क्लोरोफोर्मके बिना ही ऑपरेशन करना पड़ा। सात बार पुनः पुनः ऑपरेशन करना पड़ा परंतु क्लोरोफोर्म न सूँघा सो न ही सूँघा। अन्ततः इस चातुर्मासमें ही अहमदाबादमें श्री देवकरणजीका देहावसान हो गया। श्री चतुरलालजी उनके साथ अहमदाबादमें थे। उनकी उत्कण्ठा श्री लल्लुजी स्वामीके पास जानेकी थी अतः करमाला पत्र लिखवाकर उनकी आज्ञा माँगी। आज्ञा मिलनेपर चातुर्मास पूर्ण होनेके बाद वे करमालाकी ओर गये।

श्री लक्ष्मीचंदजी आदि मुनि जो श्री देवकरणजीके साथ अहमदाबाद चातुर्मासमें थे, उन्हें श्री लल्लुजी स्वामीने करमालासे आश्वासनका पत्र लिखा था। उसमें लिखा कि—

"उनको आत्मस्वरूपका लक्ष्य लेनेकी इच्छा थी, वह गुरुगमसे प्राप्त हुई थी...वे शुद्ध आत्मा आत्मपरिणामी होकर रहते थे। ऐसे आत्माके प्रति हमारा नमस्कार हो! नमस्कार हो!

'सम्यक् प्रकारसे वेदना सहन करनेरूप परम धर्म परम पुरुषोंने कहा है। तीक्ष्ण वेदनाका अनुभव करते हुए स्वरूपभ्रंश (भ्रष्ट) वृत्ति न हो यही शुद्ध चारित्रका मार्ग है। उपशम ही जिस ज्ञानका मूल है उस ज्ञानमें तीक्ष्ण वेदना परम निर्जरारूप भासने योग्य है।'—मुनि देवकरणजीको प्रबल वेदनी वेदते हुए तथा मरण-उपसर्गके अवसरपर भी समभाव रहा, वह निर्जरा है। अब जैसे भी हो सके अप्रतिबद्धता और असंगता प्राप्त करना ही योग्य है।

...मुनिवरोंको उन मुनिश्रीका समागम संयममें सहायक था, वैराग्य, त्यागकी वृद्धिमें कारणभूत था। हमें भी उसी कारणसे खेद रहता है। किन्तु अब हमें खेद नहीं करना चाहिए। हमें और आपको एक सद्गुरुका आधार है, वही शरण है...सब भूलने जैसा है...जो नाशवान है उसे देर-अबेर छोड़ना ही पड़ेगा...परभावकी विस्मृति हो वैसा कर्तव्य है।.....पाँचवें सुमतिनाथके स्तवनमें बाह्यात्मा, अन्तरात्मा और परमात्माके स्वरूपका संकेत कर दिया है, उसे याद कर चित्तवृत्तिको स्वरूपमें संलग्न करियेगा...गौतम स्वामीने भी महावीरपरसे राग उतारा था। एक सद्गुरुके स्वरूपमें चित्तको जोड़ें.....जो मंत्र दिया है उसे बहुत बार स्मरण कीजियेगा। घबरानेकी कोई बात नहीं है, घबराइयेगा नहीं।"

श्री देवकरणजीका स्वभाव सिंहके समान शूरवीर था। कालने काँटा चुभाकर संकेत दिया और मरजिया होकर मृत्युवेदनाकी चुनौती उन्होंने स्वीकार कर ली। उनकी व्याख्यानकी प्रभावकता ऐसी तो खुमारी-भरी थी कि एक बार भी उनके व्याख्यानको सुननेवाला छह-छह महीने तक उनके उपदेशको नहीं भूलता था। श्रीमद्जी उन्हें प्रमोदभावसे 'देवकीर्ण' नामसे सम्बोधित करते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९

श्री लल्लुजी स्वामी आदिका विहार सुदूर करमालाकी ओर हुआ तो भी अंबालालभाईके साथ पत्रव्यवहार चालू था। भाईश्री अंबालालभाईने पत्र द्वारा विनती की कि आप क्षायकलब्धि (क्षायक सम्यक्त्व) प्राप्तकर शीघ्र ही आचार्यगुणसम्पन्न बनें और अवलम्बनरूप बनें। इसका उत्तर श्री लल्लुजी स्वामीने ऐसे भावार्थमें दिया कि उन्हें असंग, अप्रतिबद्ध बननेके अतिरिक्त आचार्यादि बननेकी अब कोई इच्छा नहीं है। उस बोधपत्रके उत्तरमें श्री अंबालालभाईने श्री लल्लुजी स्वामीको दो पत्र लिखे जो विचारणीय होनेसे उनके अत्यावश्यक उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

".....असंग, अप्रतिबद्ध होनेकी इच्छाका पत्र सविस्तार पढ़कर मुझे परम आनन्द हुआ। पर आपसे प्रत्यक्ष मिलना आवश्यक है। वह होनेके बाद आपको जैसे योग्य लगे वैसे विचरण करें। आप असंग बनें इसमें मुझे प्रसन्नता है और मैं यही चाहता हूँ।

अब सामान्य मुमुक्षु भाइयों और बहिनोंको कोई आधार नहीं है। चातुर्मास पूरा होनेपर आपको इस ओर बुलाना यह मुझे भी ठीक लगता है। चारित्रधर्ममें सर्व मुमुक्षुभाई प्रमादके आधीन हो गये हैं, उन्हें जागृत रखनेवाला कोई नहीं है। बहिनोंको सम्प्रदायका आश्रय टूट जानेसे वे बेचारी बिलकुल निराधार हो गयी हैं। उनको तो एक भी आधार नहीं है।

फिर भी हमें अब अपने विषयमें विचार करना है। संपर्कमें आये हुए व्यक्तियोंकी दया आती है, वैसे तो जगतमें अनन्त जीव हैं। यदि उनकी दया करेंगे और उन्हींके लिए देह बिता देंगे तो हमारा सार्थक कार्य रह जायेगा, अर्थात् होगा ही नहीं। अतः यदि हम अपने ही सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्रको शुद्ध करेंगे तभी अपना आत्महित होगा। फिर उस दशा द्वारा संसारका चाहे जो हो, उसके लिए हमें कुछ नहीं सोचना है। हमें तो सब जीवोंके प्रति अनुकम्पाबुद्धि रखनी है।

आपकी वृत्तिको प्रोत्साहन मिले वैसा सत्संग आपके पास नहीं है। अथवा ईडरमें आपकी जो दशा थी वैसी दशा पहाड़ों या एकान्तमें रहनेसे हो सकेगी ऐसा आपको लगता है?...प्रथम सत्संगमें वह दशा स्वाभाविक ही उत्पन्न हुई दिखायी देती थी कि आत्मविचारके अतिरिक्त अन्य बात एकदम उदासीन जैसी परभावरूप लगती थी। यह सहज ही होता था, और होता था वह परम सत्संगका फल था, सत्संगका अंश था। यदि अब हम गुफामें जाकर वैसी दशाको बलपूर्वक प्राप्त करें तो हो सकती है, किन्तु वह सत्संगके प्रत्यक्ष फल बिना अधिक समय तक टिक सके यह मुझे तो कठिन लगता है। मेरे कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि निवृत्तिमें जाना ही नहीं। जाना है तो थोड़े समय सत्संगमें रहनेकी आवश्यकता है, उसके बाद जाना। ऐसा किया जाय तो विशेष दशा प्राप्त होगी और वह दशा अधिक समय तक रह सकेगी। यह बात मैंने अपने स्वतः अनुभवके आधारपर अपनी समझके अनुसार लिखी है। आप तो गुणज्ञ हैं, आपको जैसा भी लगता हो वैसा आप बताइयेगा।

आत्मदशा जागृत करनेका मुख्य साधन मेरे अनुभवके अनुसार मैं बताता हूँ : कोई भी पद, काव्य या वचन, चाहे जिसका उच्चारण हो रहा हो और मन उसीमें प्रेरित होकर विचार करता हो तो काया शांत रहती है; जिससे वचनसे उच्चारण और मनसे विचार यह काम एक साथ एकलयसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ करे तो काया स्थिर होकर आत्मविचारको जागृत करती है। इसके लिए अल्प परिचय, अल्प परिग्रह, आहारका नियम, नीरस भाव ये सब कर्तव्य हैं...जैसे-जैसे लय विशेष होती है, वैसे-वैसे आत्मजागृति वर्धमान होती है और वैसे-वैसे कर्मका अभाव होता है...इन सबमें विचारजागृति मुख्यतः आवश्यक है। इस विचारजागृतिकी बहुत ही न्यूनता दिखायी देती है, जिससे दशा वर्धमान नहीं होती; बलपूर्वक करनेसे अधिक समय नहीं टिकती, और कृत्रिम होकर वह दशा चली जाती है...यदि विचारजागृति हो तो सहज ही अल्प प्रयत्न या बिना परिश्रमके वह दशा वर्धमान होती है।

...यह विचारजागृति किसे कहते हैं?...किसी भी शब्द, वाक्य, पद या काव्यपर विचारपूर्वक उसके विशेष अर्थको प्रगट करना, वह यहाँ तक कि—ज्यों-ज्यों उसका अर्थ विशेष होने पर मन निराश न होता हो पर प्रफुल्लित रहता हो, उमंग बढ़ती हो, आनन्द आता हो, लीनता होती हो, मन-वचन-काया मानो एकरसरूप होकर उसी विचारमें प्रवृत्ति करते हों, तब कैसा आनन्द आये! ऐसी जो एकरसरूप रसलीनता है, वह विचारजागृति प्रदान करती है। उसी विचारजागृतिकी बहुत ही न्यूनता है। अतः ज्ञानियोंने ऐसे पुरुषोंको सत्संगमें रहनेकी आज्ञा दी है, क्योंकि विचारशक्तिके अल्प बलके कारण सत्संग उन जीवोंको बलरूप हो जाता है।

उस विचारशक्तिके लिए विद्याभ्यास, न्याय, तर्क, व्याकरण और शास्त्राभ्यासकी मुख्य आवश्यकता है कि जो विचारशक्तिको उपकारभूत होते हैं।

...जगतका कल्याण करने जैसी दशा नहीं है, वैसा दम्भ रखना नहीं है। जगतके प्रति अनुकम्पा रहती है। वह षट्पद—यथार्थ स्वरूप जब तक यथार्थ आत्मविचारसे समझमें नहीं आया, तब तक किसी भी मतका मण्डन या खण्डन नहीं किया जा सकता। उस छह पदका स्वरूप जैसे-जैसे विचारज्ञानकी प्रधानता और चारित्रधर्मकी शुद्धता होती है, वैसे-वैसे अनुभवरूपमें विशेष प्रकारसे समझमें आता है।..."

"...ऐसी लब्धि प्रगट करें कि सहजात्मस्वरूप बन जावें, आपका अवलम्बन लेकर हम भी भवपार हो सकें।"

उस चातुर्मासमें श्री अंबालालभाईका करमाला जाना हुआ था और करमालामें श्वेताम्बर, स्थानकवासी और दिगम्बर तीनों ही जैन पक्षोंमें तीस वर्षसे चल रही अनबन और विरोधका समाधान श्री लल्लुजीकी सहायतासे, एकता बनी रहे ऐसे ढंगसे किया था।

चातुर्मास पूर्ण करके श्री लल्लुजी दक्षिणमें विचरते-विचरते घोरनदी नामक गाँवमें थोड़े समय रहे। उसी गाँवकी एक बाई और उसकी पुत्रीने स्थानकवासी सम्प्रदायमें दीक्षा ली थी। वे अन्य आर्याओंके(साध्वियोंके)साथ चातुर्मासमें वहाँ रही थीं; परंतु उस बाईको बीमारी अधिक होनेसे चातुर्मासके बाद भी वहाँ रुकना पड़ा। उनके संघाडाके साधुओंको उन आर्याओंने पत्र लिखकर बताया कि एक आर्या बीमार है उसे संथारा (मृत्युके पूर्वका प्रत्याख्यान) करवानेके लिए क्या किया जाय? उन साधुओंने यह सुन रखा था कि श्री लल्लुजी घोरनदी गये हुए हैं और खंभात संघाडाके प्रति उनके मनमें मान होनेसे उन्होंने आर्याओंको सूचित किया कि श्री लल्लुजीकी आज्ञानुसार करें। आर्याओंको समाचार मिले उसी रात उस आर्याकी बीमारी बढ़ जानेसे वह बेसुध हो गयी। अब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी देह छूट जायेगी ऐसा जानकर गुरुआनी (बड़ी साध्वी)ने उसे जीवनपर्यंत चारों प्रकारके आहारके त्यागका प्रत्याख्यान देकर सूत्रपाठ पढ़कर संथारा करवा दिया, क्योंकि इस सम्प्रदायमें कोई संथारेके बिना मर जाय तो उसका और उसको सँभालनेवालेका अपयश होता था। जैसे-जैसे रात बीतती गयी और प्रभात होने लगा वैसे-वैसे उस साध्वीको चेतना आने लगी और प्रातः होने पर पीनेके लिये पानी माँगा। गुरुआनी (मुख्य साध्वी) तो घबरायीं—चारों प्रकारके आहारका प्रत्याख्यान करवाया है और यह पानी माँगती है वह कैसे दिया जाय? घबराती-घबराती गुरुआनी जहाँ श्री लल्लुजी ठहरे हुए थे वहाँ गयीं और सारी बात उन्हें बतायीं; उनके साधुओंसे जो समाचार आया था वह भी बताया। 'रातमें पूछने नहीं आ सकते और देह छूट जायेगी ऐसा लगनेसे प्रत्याख्यान करवा दिया है, अब क्या किया जाय? सरोतेके बीच सुपारी जैसी स्थिति हो गयी है, कृपा कर कोई मार्ग बताइये।' ऐसी विनती गुरुआनीने की। उन्हें शान्त कर वापस भेजा और स्वयं साध्वियोंके उपाश्रयमें पधारे। सबने विनय की। फिर श्री लल्लुजी उस बीमार साध्वीको देखकर बोले, "बाई, कुछ घबरानेका कारण नहीं है। जिस आहार-पानीकी आवश्यकता हो उसे खुशीसे लेना।"

वह साध्वी बोली, "नहीं महाराज! मुझे प्रत्याख्यान करवाये हैं ऐसा कहते हैं, किन्तु पानी बिना नहीं चलेगा ऐसा मुझे लगता है।"

श्री लल्लुजीने साध्वीजीको हिंमत देते हुए कहा, "देखो बाई, तुम्हारे माँगे बिना जो प्रत्याख्यान कराये गये हैं वे दुष्प्रत्याख्यान हैं, सुप्रत्याख्यान नहीं। यदि तुम्हें इन प्रत्याख्यानोंको तोड़नेसे पाप लगेगा ऐसा लगता हो तो वह मैं अपने सिरपर लेता हूँ। तुम्हारी इच्छा हो वैसे शुद्ध आहार-पानीका उपयोग करनेमें अब आपत्ति नहीं है।"

सब सुननेवालोंको बहुत आश्चर्य हुआ, किन्तु उस बीमार साध्वीने कहा, "मुझे पानीके अतिरिक्त तीनों प्रकारके आहारका त्याग करना है। मेरा मरण सुधारनेकी कृपा करें।"

उस साध्वीकी समाधिमरणकी भावना और विनतीको देखकर श्री लल्लुजी नित्य उसके उपाश्रय जाते और उसको समझमें आ सके वैसे सत्पुरुषके वचनोंका विवेचन करते, उपदेश देते। दूसरे सुननेवालोंको उनके वचन बहुत कठिन लगते किन्तु महापुरुषके योगबलके सामने कोई कुछ बोल नहीं सकता था। इस प्रसंगका वर्णन स्वयं उन्होंने कई बार श्रोताओंको रसप्रद और वैराग्यवर्धक वाणीमें सुनाया है। उस साध्वीको वे उपदेश देते कि, "आत्मा भिन्न है, देह भिन्न है, तुम यह देह नहीं हो, तुम रोगरूप नहीं हो, तुम वृद्ध नहीं हो, युवती नहीं हो, बालक नहीं हो, स्त्री नहीं हो, साध्वी नहीं हो, गुरुआनी नहीं हो, शिष्या नहीं हो, तुम शुद्ध बुद्ध चैतन्यमय आत्मा हो। ये वस्त्र तुम्हारे नहीं हैं, पुस्तकें तुम्हारी नहीं है, उपकरण तुम्हारे नहीं हैं, पाट तुम्हारा नहीं है, पुत्री तुम्हारी नहीं है, गुरुआनी तुम्हारी नहीं है, यह शरीर भी तुम्हारा नहीं है, सबका त्याग कर दो। जहाँ-जहाँ यह जीव बँधा हुआ है, वहाँ-वहाँसे विचार, वैराग्य द्वारा छूटना है, तीनों लोकोंमें किसी भी पदार्थके प्रति आसक्ति, प्रीति करने योग्य नहीं है। निरन्तर उदासीनताकी उपासना करनी चाहिए। चलते, फिरते, बैठते, उठते, खाते, पीते, बोलते, सोते, जागते सर्व अवस्थाओंमें भान हो तब तक एक आत्माको स्थान-स्थानपर देखनेका पुरुषार्थ करना चाहिए। आत्माके बिना हिल नहीं सकते, चल नहीं सकते, बोल नहीं सकते, विचार नहीं हो सकता, सुख-दुःखका ज्ञान नहीं हो सकता; आत्माकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपस्थितिमें ही सब पता चलता है। अतः आत्माके सिवाय अन्यमें लक्ष्य नहीं रखना चाहिए, किसीमें ममत्वभाव नहीं करना चाहिए, हुआ हो तो छोड़ देना चाहिए। जीव अकेला आया है और अकेला जायेगा। कोई किसीका दुःख नहीं ले सकता, कोई किसीको सुखी भी नहीं कर सकता। अपने द्वारा बाँधे हुए कर्म अन्य कोई भोगनेवाला नहीं है। अपने ही किये हुए कर्मका फल स्वयंको भोगना पड़ता है, तो फिर उसमें हर्ष-शोक क्या करना? समभाव, सहनशीलता और धैर्य धारणकर ज्ञानीपुरुषों द्वारा जाना गया आत्मा ही मुझे मान्य है ऐसे शरणभावसे उदयमें आये हुए कर्मोंको भोग लिया जाय तो नये कर्म नहीं बँधते और पुराने बाँधे हुए कर्म छूटते जाते हैं। देहको रखना हो तो भी आयुष्य पूर्ण होनेपर वह नहीं रहेगी, तो फिर ऐसी नाशवान देहमें मोह रखकर आत्माका अहित कौन करेगा? जो होना हो सो हो, पर अब तो एक आत्माके अतिरिक्त अन्यत्र चित्त नहीं लगाना है। अन्य-अन्यमें चित्त रखकर यह जीव अनन्त काल तक इस संसारमें भटका है। पर अब सत्पुरुषके समागमसे जो बोध सुना है, आत्माका माहात्म्य सुना है, 'आत्मसिद्धि' समझायी है उसमें मेरी रुचि रहे, वही स्वरूप मुझे प्राप्त हो, उसीका निरन्तर भान रहे, यही भावना कर्तव्य है। इतनी बातको पकड़ लोगी तो तुम्हारा काम हो जायेगा, समाधिमरण होगा।"

उस साध्वीको भी यह विश्वास हो गया कि ये महात्मा पुरुष कहते हैं वही सच है, वही कर्तव्य है, वे बता रहे हैं वही छूटनेका मार्ग है। और, उनकी अनुपस्थितिमें भी वह उनके द्वारा उपदिष्ट बोधपर विचार करती, भावना करती और बारंबार कहती भी थी कि "यह मेरा पाट नहीं, ये मेरे वस्त्र नहीं, यह शरीर मेरा नहीं, कुछ भी मेरा होनेवाला नहीं है। सब यहीं पड़ा रहनेवाला है। ज्ञानी पुरुष द्वारा जाना हुआ और अनुभव किया हुआ आत्मा ही सत्य है, नित्य है, सुखस्वरूप है, शरण करने योग्य है।" यों इक्कीस दिन तक मात्र पानीके आधारपर उसके प्राण टिके रहे। प्रतिदिन श्री लल्लुजी स्वामी दर्शन-समागमका लाभ देते और सद्उपदेशसे धैर्य, सहनशीलता तथा आत्मभावनाका पोषण करते —छह पदका पत्र, आत्मसिद्धिशास्त्र, अपूर्व अवसर आदि उसे सुनाते और सत्पुरुषके प्रति शरणभाव और आत्मभाव टिकाकर रखनेके लिए कहते रहते। उसका मरण शान्ति-समाधिपूर्वक हुआ था और उसकी गति सुधर गयी थी, ऐसा स्वयं कई बार कहते थे।

इक्कीस दिन संथारा चला जिससे गाँवमें भी यह बात फैल गयी। किसी विद्वेषीने सरकारमें समाचार दे दिये कि घोरनदीमें एक बाईको भूखी रखकर मार दिया गया है। उसकी जाँच करनेके लिए जिलाधीश आया था। गाँवके लोगोंने उसे समझाया कि धर्मविधिके अनुसार अन्त समयमें मरनेवालेको आहारत्यागकी भावना होनेसे, उसे धर्मके नियमानुसार व्रत दिया जाता है और उसकी मृत्यु सुधरे तथा अच्छी भावना रहे ऐसा उपदेश देनेके लिए ही श्री लल्लुजी स्वामी उसके पास जाते थे। इसमें किसी प्रकारका कोई बलप्रयोग नहीं होता। इत्यादि प्रकारसे जिलाधीशके मनका समाधान कर लोगोंने आदरपूर्वक उसे विदा किया था।

जिस मार्गसे वे गये थे उसी पहाड़ और जंगलके रास्तेसे उन्होंने गुजरातकी ओर विहार किया। जाते समय भीलोंने जैसा उपसर्ग किया था वैसा ही उपद्रव लौटते समय भी भीलोंके भयंकर स्थानोंको पार करते हुए उन्हें कुछ अंशमें हुआ। उनके साथ श्री मोहनलालजी और श्री चतुर-लालजी ये दो साधु थे। श्री चतुरलालजी पात्र आदि उपकरण लेकर आगे चल रहे थे। पीछे दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि आ रहे थे। कसुंबा गाँव आनेके पहले जंगलमें श्री चतुरलालजी जो आगे चल रहे थे उन्हें, श्री लल्लुजी तथा श्री मोहनलालजीसे काफी अन्तर पड़ गया था। इतनेमें दो भील झाड़ीमेंसे निकले। श्री चतुरलालजीको पीछेसे कन्धे परसे पकड़कर एक भीलने नीचे चित गिरा दिया। पोटलेमें जो पात्र थे वे टूट गये। एक उनके पाँवपर बैठ गया और एक छातीपर चढ़ बैठा। श्री चतुरलालजी आवेशमें आ गये, दोनोंको उछालकर खड़े हो गये, दोनोंकी कलाई पकड़कर धकेल रहे थे कि श्री मोहनलालजी आ पहुँचे, पीछेसे श्री लल्लुजी भी आ रहे थे। उन्हें देखकर दोनों भीलोंके शरीर ढीले हो गये और गिड़गिड़ाने लगे। श्री लल्लुजी आ पहुँचे तब दोनों भीलोंको शिक्षा देकर छुड़ा दिया।

★★★

१०

विहार करते-करते मुनिगण नरोडा आये और सं.१९५९का चातुर्मास वहीं किया। चातुर्मासमें अहमदाबाद आदि स्थानोंसे मुमुक्षु मुनिसमागमके लिए समय-समयपर आते थे। वहाँसे तीर्थयात्राके लिए मुनिवर छोटे मारवाडकी ओर पधारे।

सादडीके पासका राणकपुर, पंचतीर्थमें एक तीर्थस्थान माना जाता है। वहाँ श्री लल्लुजी आदि मुनि जानेवाले हैं ऐसा किसी विद्वेषी साधुको पता लगनेसे वह पहले ही सादडी चला गया और सब श्रावकोंको समझा दिया कि स्थानकवासी साधु यहाँ आनेवाले हैं, उन्हें कोई आहार-पानी न देवे। वे उन्मार्गी हैं, उनकी सहायता करनेसे मिथ्यात्व लगता है आदि बातें श्रावकोंके मनमें ठूँसठूँसकर भर दी। जब वे मुनिवर राणकपुर पधारे, मंदिरमें दर्शन-भक्ति कर आहार-पानीके लिए गये तब आहारकी तो बात दूर रही किन्तु उन्हें पानी भी नहीं मिला। कोई गरम पानीसे स्नान कर रहा था, उसके पास एक मुनिने पानी माँगा तो भी उसने नहीं दिया। दूसरे दिन भिक्षाके लिए गये तब भी ऐसा ही हुआ। साथके मुनियोंको ऐसा लगा कि हमें विहार कर दूसरे गाँव चला जाना चाहिए, किन्तु श्री लल्लुजी स्वामीने तो निश्चय किया कि प्राप्त परिषहको जीतना ही निर्ग्रन्थमार्ग है। कठिनाईसे डर जाना या भागते फिरना कायरका काम है। तीसरे दिन भी पानी तक नहीं मिला। यों निर्जल अट्ठम (तेला-तीन उपवास) पूरा हुआ।

इतनेमें खंभातका संघ जो यात्राके लिए निकला था उसी दिन राणकपुर आ पहुँचा। कोई मुनि हों तो उन्हें आहारदान करें ऐसी भावनासे उन्होंने तलाश की तो पता चला कि श्री लल्लुजी आदि मुनिवर यहाँ हैं। अतः उन्हें आमंत्रित कर भक्तिभावपूर्वक आहार-पानी बहोराया।

वहाँसे विहार करते हुए मुनिगण पालनपुर पधारे। वहाँके स्थानकवासी संघके अग्रणी पीतांबरदास महेता माने जाते हैं। वे मुनियोंसे मिले। बातचीतसे पता चला कि सभी मुनि पंचतीर्थकी यात्रा करके आ रहे हैं, इससे उन्हें लगा कि इनकी श्रद्धा बदल गयी है। स्थानकवासी तो प्रतिमाको नहीं मानते, मंदिरोंमें नहीं जाते। अतः उन्हें उलाहना देनेके हेतुसे कहा, "तीर्थ तो साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप चार ही हैं, पाँचवाँ तीर्थ कहाँसे लाये? यदि मुनि भी यों सब जगह जाने लगेंगे तो श्रावकोंकी श्रद्धा धर्मपर कैसे रहेगी? यदि मुनि, भगवानके वचनके विरुद्ध व्यवहार करेंगे तो मुनिपना कहाँ रहेगा?" आदि आवेशमें आकर वे बहुत बोल गये, पर मुनिवर शान्त रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रातमें पीतांबरदासभाईको विचार आया कि, "आज मैंने मुनियोंको कठोर वचन कहे फिर भी कोई कुछ बोला नहीं, उन्होंने तो उल्टी क्षमा धारण की। शास्त्रमें श्री नमिराजर्षिकी इन्द्रने प्रशंसा की है कि 'हे महायशस्वी! बड़ा आश्चर्य है कि आपने क्रोधको जीता, आपने अहंकारको पराजित किया!' ये शास्त्रवचन आज मैंने प्रत्यक्ष सत्य रूपमें देखे। क्रोधको जीतनेवाले क्षमामूर्ति ये ही हैं। मैं क्रोधसे धधक उठा और कुवचनोंकी वर्षा की किन्तु इनका रोम भी नहीं फड़का, अतः मुझे प्रातः उनके पास जाकर क्षमा माँगनी चाहिए।" ऐसा सोचकर प्रातः मुनियोंके पास आये और भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उनकी स्तुति की और क्षमा याचना की।

श्री लल्लुजी आदि पालीताणा होकर जूनागढ पधारे तब कुछ मुमुक्षु गिरनार पर्वतकी पाँचवीं टोंक तक साथमें थे। अत्यन्त विकट मार्गमें मुमुक्षुओंको साहस बँधाते हुए श्री लल्लुजी सबसे आगे चल रहे थे। ऊपर एक गुफा देखने गये। उसके बारेमें ऐसी बात सुननेमें आई थी कि यहाँ एक योगी रहते थे, पर अब कोई इस गुफामें रात नहीं बिता सकता। एक साधुको लोगोंने मना किया फिर भी वे रात्रिमें वहाँ रहे, पर घबराकर सुबह बीमार हो गये और उनकी मृत्यु हो गई। यह बात सुनकर श्री लल्लुजीको विचार आया कि हमें यहाँ रहना चाहिए। अन्य मुमुक्षु मना करने लगे, फिर भी वे श्री मोहनलालजी सहित उस गुफामें रहे और अन्य मुमुक्षु पर्वत उतरकर जूनागढ गये।

रातमें दोनों मुनि भक्ति करने लगे। उस समय गुफाके ऊपर मानो शिलाएँ लुढ़क रहीं हो ऐसी आवाज होने लगी। दोनोंने उच्च स्वरसे भक्तिमें चित्त लगाया। थोड़ी देर बाद वहाँ बिजली कड़कने जैसी भयंकर आवाज होने लगी, किन्तु मुनिवरोंने उस ओर ध्यान नहीं दिया। मात्र इष्ट सद्गुरुकी भक्ति उल्लासभावसे करते रहे। थोड़ी देरमें शान्ति फैल गयी। फिर श्री मोहनलालजी प्रश्न पूछते और श्री लल्लुजी उसका उत्तर देते, यों चर्चामें कुछ समय बिताया और पिछली रातका समय श्री लल्लुजीने ध्यानमें बिताया, तब श्री मोहनलालजी स्मरणमंत्रकी माला फेरते रहे। प्रातः गुफाके बाहर आये और जाँच की परंतु आवाज होनेका कोई कारण समझमें नहीं आया। दूसरी और तीसरी रात भी उन्होंने इसी प्रकार वहीं बितायी, किन्तु पहली रात जैसा उत्पात फिर नहीं हुआ।

श्री लल्लुजी जूनागढसे विहार कर धंधुका पधारे और वहीं सं.१९६०का चातुर्मास भी किया। खंभातसे श्री अंबालालभाई तथा वीरमगाम, अहमदाबाद और वटामणकी ओरके मुमुक्षुजन सन्तसमागमके लिए आये और पर्युषणपर्वके निमित्तसे लगभग पंद्रह दिन वहाँ बिताये। इस चातुर्मासमें कुछ भाई-बहनोंको ऐसा भक्तिका रंग लगा था कि वह मृत्युपर्यंत टिका रहा।

एक बार धंधुकाके स्थानकवासी भावसारोंके विचारवान अग्रणी श्री लल्लुजी स्वामीके पास आये और पूछा कि, "आप पर हमें विश्वास है इसलिए पूछते हैं कि प्रतिमाको मानना चाहिए या नहीं? शास्त्रमें प्रतिमापूजन आदिका विधान है या नहीं? हमें कुछ पता नहीं है, और मंदिरमें भी हम नहीं जाते। आप जैसा कहेंगे वैसा मानेंगे।" श्री लल्लुजी स्वामीने उन्हें बताया कि, "शास्त्रमें प्रतिमा-संबंधी उल्लेख है। प्रतिमाका अवलम्बन हितकारी है। मंदिरमें नहीं जाना ऐसे आग्रहको छोड़ देना चाहिए। हम भी दर्शन करने, भक्ति करने मंदिरमें जाते हैं। इस बारेमें सत्संग-समागममें बहुत सुननेकी आवश्यकता है।"

धंधुकाके तीस भावसार कुटुम्ब स्थानकवासी मान्यताको बदलकर मंदिरमार्गी मान्यतावाले बन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गये। किन्तु बादमें विशेष सत्समागमके अभावमें वापस श्वेताम्बरके आग्रही हो गये। जैसे व्यक्ति नींदमें करवट बदलता है पर नींद नहीं छोड़ता, वैसे एक पक्षको छोड़कर दूसरे पक्षमें जानेपर भी आत्मजागृति करनी थी वह नहीं हुई।

श्री धारशीभाई कर्मग्रंथके अभ्यासी थे। वे भी धंधुकामें श्री लल्लुजी स्वामीके दर्शन-समागमके लिए आये थे। उन्होंने श्री लल्लुजीको एक दिन स्थानकके ऊपरी खण्डमें पधारनेकी विनती की। दोनों ऊपर गये और द्वार बन्द कर श्री धारशीभाईने विनयभक्तिपूर्वक साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर श्री लल्लुजी स्वामीसे विनती की कि, "सं.१९५७में श्रीमद्के देहविलयके पूर्व पाँच-छह दिन पहले मैं राजकोट दर्शन करने गया था। उस समय उन्होंने कहा था कि श्री अंबालाल, श्री सौभाग्यभाई और आपको उनकी विद्यमानतामें अपूर्व स्वरूपज्ञान प्राप्त हुआ है। उस समय मुझे वे शब्द सामान्य समाचार जैसे लगे, पर इन तीन वर्षोंके विरहके बाद अब मुझे यह समझमें आया कि वे शब्द मेरे आत्महितके लिए ही थे। उन प्रभुके वियोगके बाद अब आप ही मेरे अवलम्बनरूप हैं। तो उनके द्वारा प्रदत्त आज्ञा आप कृपा कर मुझे दीजिए। अब मेरी अंतिम वय है और मैं खाली हाथ चला जाऊँ उसके जैसा अन्य क्या शोचनीय होगा? आज अवश्य कृपा करें ऐसी मेरी विनती है।" यों कहकर आँखमें आँसूसहित श्री लल्लुजीके चरणोंमें उन्होंने अपना मस्तक टेक दिया। श्री लल्लुजीने उन्हें उठाकर शांतिपूर्वक बताया कि 'पत्रोंमें कृपालुदेवने जो आराधना बतायी है, बोध बताया है, वह आपको ज्ञात ही है।' इसपरसे वे समझ गये कि योग्यता लानेका पुरुषार्थ करना है। परंतु धैर्य न रहनेसे विशेष आग्रहकर कुछ प्रसादी देनेकी बारंबार विनती की। तब श्री लल्लुजीने, जो स्मरणमंत्र कृपालुदेवने मुमुक्षुओंको बतानेके लिये आज्ञा दी थी, वह उन्हें बताया। जिससे उनका आभार मानकर स्वयं उसका आराधन करने लगे।

श्री लल्लुजी स्वामी चातुर्मास पूरा करके भावनगरकी ओर विहार कर खंभातकी ओर पधारे। श्री अंबालालभाईका समागम वहाँ हुआ, किन्तु खंभातमें प्लेग चल रहा था अतः दोनोंने विचार किया कि थोड़े दिन वटामणमें जमकर रहना और परमकृपालुदेवके समागममें हुए बोध पर वहाँ विचार करना।

श्री लल्लुजी आदि वटामण गये। श्री अंबालालभाईकी ओरसे भी अमुक दिन वहाँ पहुँचनेके समाचार आ गये। परंतु श्री अंबालालको प्लेग हो गया और तीन मुमुक्षुओंका देहावसान हो गया। खंभातको छोड़े मुनियोंको पंद्रह दिन भी नहीं हुए थे कि इतनेमें श्री अंबालालभाईके देहावसानके समाचार मिले।

'श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथ छपकर लगभग तैयार हो गया था, किन्तु अभी तक लोगोंको प्राप्य नहीं हुआ था। थोड़े समय बाद उसी वर्ष सं.१९६१में परमश्रुत प्रभावक-मण्डलकी ओरसे यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ तब श्री लल्लुजीको भी मिला। फिर तो परमकृपालुके वचनामृतका वह संग्रह वे साथमें ही रखते। पहले श्री अंबालालभाई द्वारा उतारकर दिये गये हस्तलिखित वचनामृतका पठन-मनन करते थे, परंतु अब तो लगभग सभी पत्रोंका संग्रह प्रकाशित हो जानेसे उन्हें बहुत आनंद हुआ था।

ईडरकी ओर विहार करते-करते श्री लल्लुजी स्वामीने सं.१९६१में वडालीमें चातुर्मास किया। स्थानकवासीका वेश होनेसे कई श्वेताम्बर श्रावक कटाक्षदृष्टिसे देखते, किन्तु वे प्रतिदिन मंदिरमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन करने जाते, वहाँ भक्ति करते, इसलिए कोई-कोई उनके पास आते और निष्पक्षपाती बातचीतसे प्रसन्न होते। श्री माधवजी रेवाजी सेठको श्री लल्लुजी स्वामीका विशेष परिचय हुआ था और उनका पूरा कुटुम्ब भक्तिरागी बन गया था। भाई अखेचंद आदि पहले विरोधी पक्षमें थे, पर धीरे-धीरे उन्हें सत्संगका रंग लगा और मृत्युपर्यंत वह बढ़ता ही गया।

चातुर्मास पूरा करनेके बाद भी ईडरके आसपासकी पवित्र भूमिमें विहार कर शेष काल पूरा होनेपर सं.१९६२का चातुर्मास खेरालुमें किया।

सं.१९५७में श्री रत्नराज नामक एक साधु मारवाडसे विहार कर गुजरातकी ओर आ रहे थे। उन्होंने सुन रखा था कि श्रीमद् राजचंद्र नामक कोई आत्मज्ञानी पुरुष हैं, अतः उनसे समागम कर उनकी कृपासे आत्मज्ञान प्राप्त करनेकी उनकी अभिलाषा थी, परंतु मार्गमें उन्हें समाचार मिले कि उन आत्मज्ञानी महात्माका देहावसान हो गया है। इसलिए वे वापस मारवाडकी ओर चले गये। वहाँ अनेक दिगम्बर विद्वानोंका उन्हें समागम हुआ और दिगम्बर ग्रंथोंका भी उन्होंने स्वाध्याय किया। उनका क्षयोपशम और व्याख्यानशक्ति भी मनोहर थी। जिससे अनेक बुद्धिमान और आत्मार्थी जीव उनके समागममें आते। श्रीमद् राजचंद्रके कोई अनुयायी हों तो उनसे मिलनेकी भी उनकी इच्छा थी। सं.१९६२का चातुर्मास उन्होंने पालनपुरमें किया। उसी समय एक मुमुक्षु खेरालुमें श्री लल्लुजी स्वामीके समागमके बाद श्री रत्नराज स्वामीके दर्शनार्थ पालनपुर आये। उन्होंने श्री रत्नराज स्वामीको श्रीमद् राजचंद्र और श्री लल्लुजी स्वामीके बारेमें प्रशंसापूर्वक विस्तारसे बात की कि हमें धर्ममार्गपर ले जानेवाले श्री लल्लुजी स्वामी चौथे कालके महामुनि समान अलौकिक, दर्शनीय, माननीय, पूजनीय मंगलमूर्ति हैं। इसपरसे श्री रत्नराज स्वामीको भी श्रीमद् हरिभद्रसूरिकी भाँति चमत्कार लगा और चातुर्मास पूर्ण होनेके बाद उनका समागम करनेकी उन्हें भावना जगी।

खेरालुमें बहुत समयसे श्वेताम्बर और स्थानकवासियोंके बीच खटपट चल रही थी पर श्री लल्लुजीने वहाँ चातुर्मास किया तब उनके निष्पक्षपाती बोधसे दोनों पक्षके समझदार व्यक्तियोंका आपसमें मिलनेका मौका मिलता। वीरमगाम, धंधुका, वटामण, अहमदाबाद आदि गाँवोंके मुमुक्षु वहाँ मुनिसमागमके लिए आते और प्रभावना करते तो स्थानकवासी और श्वेताम्बर दोनोंको करते। दोनों ही वर्गके लोग प्रभावना लेते और स्वामीवात्सल्य भी दोनों साथमें मिलकर करते। इस प्रकार कषायभाव दूर हो और एकता बढ़े ऐसी प्रवृत्ति श्री लल्लुजी स्वामीके उपदेशसे होती थी।

खेरालुका चातुर्मास पूरा कर श्री लल्लुजी और श्री मोहनलालजी तारंगा तीर्थकी ओर विहार करने लगे। मार्गमें धाणधारमें 'धुंधलीमल्लनो भोंखरो' नामक एक पहाड़ आता है, उसे 'गुरुनो भोंखरो' (गुरुकी चोटी) भी कहते हैं। पहाड़ पर एक पत्थरकी बड़ी शिला चोटीकी भाँति ऊँची बढ़ी हुई है। उस पर अन्य किसी प्रकारसे चढ़ना सम्भव नहीं होनेसे बाँसपर बाँस बाँधकर एक लम्बी सीढ़ी बना दी थी। सीढ़ीके कई सोपान टूटे हुए थे, बाँस भी फटे हुए थे, और ऊँचाई देखकर घबराहट हो, ऐसा होनेपर भी श्री लल्लुजी तो धैर्यपूर्वक सँभलकर ऊपर चढ़ गये। ऊपर समतल जमीन और ठण्डी हवा होनेसे दो घड़ी भक्ति हो सकेगी ऐसा सोचकर श्री मोहनलालजीको ऊपर बुलाया, पर उनकी हिम्मत नहीं चलती थी। श्री लल्लुजीने ऊपरसे हिम्मत दिलाते हुए कहा, "ऊपर आनेके बाद बहुत आनन्द आयेगा। बाँस टूटनेवाले नहीं है। नीचे देखे बिना हिम्मत करके ऊपर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चढ़ जाओ।" तब काँपते हुए वे भी चढ़ गये। निकट पहुँचते ही उन्हें पकड़कर ऊपर खींच लिया। श्री मोहनलालजीको तो ऊपर पहुँचे तब शान्ति मिली। वहाँ बैठकर दो घड़ी भक्ति की। सब जगह घूमकर देख लिया। एक पत्थरके पास ध्वजा बँधी हुई थी। उसे ही गुरुका स्थान मानकर भील लोग पूजते हैं। वहाँ एक गुफा है। वर्षमें कभी-कभी वहाँ मेला लगता है।

यात्रा कर विहार करते हुए श्री लल्लुजी वसोकी ओर पधारे और सं. १९६३में वसोमें चातुर्मास किया।

★★★

११

श्री लल्लुजी स्वामी वसोका चातुर्मास पूरा कर विहार करते हुए खंभातके पास फेणाव गाँव पहुँचे। वहाँ खंभातसे दर्शनके लिए आये कुछ मुमुक्षु और उस गाँवके भी मुमुक्षु मुनियोंके साथ गाँवके बाहर निवृत्ति क्षेत्रमें विचारार्थ एकत्रित हुए थे।

फेणावमें व्यापारके लिए भाई रणछोड़भाई नामक एक युवक आये थे। वे भी वेदान्तके ग्रंथ पढ़कर उसमें कुशल हो गये थे। उन्होंने जब सुना कि श्री लल्लुजी गाँवके बाहर पधारे हैं तब वे भी उनके दर्शन-समागमके लिए वहाँ आये। भाई रणछोड़भाईके पिता श्री लक्ष्मीचंदजी संघाडासे अलग हो कर श्री लल्लुजी स्वामीके साथ रहे थे जिससे उस साधुवर्गको पहचानते हुए भी उनका विशेष परिचय नहीं हुआ था। और वेदान्त शास्त्रोंका परिचय होनेसे उनका जैनोंके प्रति प्रेमभाव भी कम था। अतः जब सभी सिद्धांतकी चर्चा कर रहे थे तब रणछोड़भाईने प्रश्न किया कि, "आप तो वीतराग भगवानको मानते हैं, वे वीतराग होनेसे कुछ फल नहीं दे सकते, तब उनकी भक्ति करनेसे आपको क्या मिलनेवाला है?"

श्री लल्लुजी उस समय कुछ नहीं बोले। यह कोई अनजान व्यक्ति है, ऐसा समझकर किसीने उस ओर ध्यान भी नहीं दिया। सबके उठकर चले जानेके बाद श्री लल्लुजीने रणछोड़भाईको प्रेमपूर्वक एक ओर बुलाकर कहा, "सबके बीचमें ऐसा प्रश्न किया जाता है?" तबसे श्री रणछोड़भाईके मनमें बस गया कि ये कोई हमारे यथार्थ हितेच्छु हैं। यों अव्यक्त प्रेमका बीजारोपण हुआ।

फेणावसे विहार करते हुए श्री लल्लुजी बोरसद पधारे। श्री देवकरणजीका सं.१९५८का चातुर्मास बोरसद करवानेकी वहाँके मुमुक्षुओंकी तीव्र इच्छा थी, पर वह नहीं हो पाया था। अतः सबके आग्रहसे इस वर्ष सं.१९६४का चातुर्मास बोरसद होना निश्चित हुआ। यह क्षेत्र खंभात संघाडेका नहीं है फिर भी बरवाला संघाडा वाले क्वचित् चातुर्मास करने आ जाय यह सोचकर श्री लल्लुजी दिगम्बर धर्मशालामें ठहरे। श्री लक्ष्मीचंदजी भी साथमें थे। गाँवके बहार जेठाभाई परमानंद सेठका बंगला भक्ति-भजन, वाचन-विचारके लिए रखा गया था। अनेक भाई-बहिनोंको भक्तिका रंग लगा था, वह स्थायीरूपसे टिका रहे इसके लिए बोरसदमें 'श्रीमद् राजचंद्र पाठशाला' स्थापित करनेका विचार भी उस चातुर्मासमें हुआ।

भाई रणछोड़भाई नारसे बोरसद मुनिश्रीके दर्शन-समागमके लिए आये हुए थे। उन्होंने श्री लल्लुजी महाराजसे प्रार्थना की कि मोक्षमार्ग बताइये। उस समय वे 'श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथ पढ़ रहे थे उसमेंसे बीचके 'आत्मसिद्धि शास्त्र'के पृष्ठ पकड़कर कहा, "इसीमें मोक्षमार्ग है।" रणछोड़भाईने वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ मँगाया। उसमेंसे 'उपदेशछाया'के पृष्ठ बताये होंगे ऐसा समझकर बारंबार पढ़कर उसका अभ्यास किया। वह उन्हें बहुत पसंद आया। और इस कालमें मोक्ष है और सद्गुरुके योगसे वह अवश्य प्राप्त किया जा सकता है, ऐसी उन्हें दृढ़ श्रद्धा हो गयी। किन्तु दो-तीन वर्ष उन्हें सत्संगका वियोग रहा क्योंकि श्री लल्लुजी स्वामी वडाली, पालीताणा आदि क्षेत्रमें विचरे थे।

श्री लल्लुजी स्वामीने वसो और बोरसदमें सं.१९६३-६४के दो चातुर्मास किये तब तक वे चरोतर क्षेत्रमें विचरते थे। अतः उत्तर गुजरातमें विहार करते श्री रत्नराज स्वामीको उनका समागम करनेकी इच्छा होनेपर भी मिलाप नहीं हो सका था। फिर स्वयं विहार करते-करते[1] वडाली, ईडरकी ओर पधारे उस समय श्री रत्नराजका समागम हुआ होगा, ऐसा श्री रत्नराजके एक पत्रसे ज्ञात होता है। उसमें वे लिखते हैं, "इस लेखकका लक्ष्यबिंदु तो, जब पहली बार आप प्रभुश्रीके सत्समागममें आया और जिन विचारोंका आदानप्रदान अहमदाबाद एवं सिद्धपुरके मार्गमें हुआ, वही है।"

श्री लल्लुजी स्वामीके समागममें बारबार विशेष आनेवाले भाई पोपटलाल महोकमचंदके समागमसे श्री रत्नराज स्वामीको श्रीमद् राजचंद्रके प्रति विशेष प्रेम-भक्तिकी वृद्धि हुई थी। उसी दौरान श्रीमद् राजचंद्र संबंधी हस्तलिखित साहित्य जो दामजीभाईके पास था उसे श्री रत्नराज स्वामीने भी पढ़ा, जिससे उन्हें विशेष भक्तिभाव जागृत हुआ तथा श्री लल्लुजी स्वामीके समागम, सेवामें रहना चाहिए ऐसा लगनेसे सं.१९६६का चातुर्मास पालीताणामें सब मुनियोंके साथ करनेका निश्चय किया। पालीताणा जानेके पहले श्री रत्नराज स्वामी आदि तीर्थयात्राके लिए महेतराणा गये थे। वहाँ उन्होंने स्थानकवासी वेश बदलकर ओघाके स्थान पर मोरपींछी रखी और मुहपत्तीको मुँहपर बाँधना बन्द किया। मोरपींछी कम उपाधि और विशेष यत्नाका कारण होनेसे सर्व मुनियोंने उसे ग्रहण कर लिया। श्री रत्नराज स्वामीकी वक्तृत्वशक्ति आकर्षक होनेसे सबके मनका समाधान भी हो जाता। लोगोंकी टीका-टिप्पणीका प्रत्युत्तर देनेवाले उस चातुर्मासमें साथ ही होनेसे उन्हें कुछ भी विकल्पका कारण नहीं रहा। महेतराणामें श्री रत्नराज स्वामीने पाँच अभिग्रह (नियम) धारण किये थे। उनकी महत्ताके विषयमें मुनिमण्डलमें बारंबार विचार होता था जिससे ये विचार भी सर्वमान्य जैसे हो गये थे। वे पाँचों अभिग्रह निम्न प्रकारसे थे--

(१) गुण न हो वैसा नाम धारण नहीं करना।

(२) गुण प्राप्त करनेके पुरुषार्थमें मन्दता नहीं करना।

(३) आत्मनिर्णयके लिए अन्य कथित वेशधारियोंके साथ वादविवाद नहीं करना।

(४) अपने सम्प्रदायके अनुसार कोई सेवाभक्ति करे तो उसमें अन्तरायरूप नहीं होना।

(५) किसीपर उपकार किया हो तो उसके बदलेकी भावना नहीं रखना। जिसमें सेवाबुद्धि मंद पड़ गई हो उसकी स्पृहा नहीं करना। सेवाभावसे सेवा करना और सेवाभावके अतिरिक्त कुछ भी किया गया नहीं चाहना, स्वीकार नहीं करना।

---

१. वि.सं.१९६५का चातुर्मास श्री लल्लुजी स्वामीने वडालीमें किया था। मुनिश्री मोहनलालजी साथमें थे।
—पूज्यश्री ब्रह्मचारीजी द्वारा की गई नोंधके आधार पर (नोंधपोथी नं. १)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौथे नियमके अनुसार यदि कोई चंदन-पुष्पादिसे अपनी पूजा करे तो भी करने देना चाहिए। इसलिये श्री लल्लुजी स्वामी वैसा करने देते। पुजवानेकी इच्छा न होनेपर भी किसीको अंतरायरूप न होनेकी इच्छासे विषके घूँटके समान नीचे उतार देते। ऐसे अनुकूल उपसर्ग अभ्यंतर तपःशक्तिकी कसौटी हैं। इस प्रकारके उपसर्गरूप प्रसंग विराधकवृद्धिके दोषदृष्टि जीवोंको विराधना और उपसर्गके लिए बहाना बन जाते, इससे तो मुनियोंकी स्थिति विरोधी जनसमूहमें विशेष विकट हो जाती और उग्र तपस्याका निमित्त बन जाती।

सं.१९६६ का चातुर्मास श्री लल्लुजी आदिने पालीताणामें किया। किसी साधुके साथ वादविवादमें नहीं पड़ना ऐसा मुनियोंने निश्चय किया था। जिससे पींछी आदि वेश-विचित्रता देखकर अनेक साधु और श्रावक टीका करते, परंतु वे इस विषयमें कोई चर्चा नहीं करते, सुना-अनसुना कर उस पर ध्यान न देते।

पालीताणामें भाई शिवजी नामक कच्छी श्रावकने जैन छात्रावासकी स्थापना की थी। वहाँ 'वीर अट्ठाई महोत्सव' किया गया था। वहाँ ये मुनि जाते और भाई शिवजीके साथ परिचय हो गया था परंतु गाढ़ परिचय होकर उन्हें जो माहात्म्य भासित होना चाहिए वैसा प्रसंग उस चातुर्मासमें नहीं आया। मात्र सरलस्वभावी, भक्तिवन्त, श्रीमद्के शिष्य हैं ऐसा भाव रहा। श्री रत्नराजके वाक्चातुर्यसे उनपर अच्छा प्रभाव पड़ा और उनका माहात्म्य लगा। पिछले वर्षोंमें भाई शिवजीभाई सिद्धपुर आश्रममें दो-तीन मास रहे, पर इससे उनके मनको संतोष नहीं हुआ। वे श्री लल्लुजी स्वामीके दर्शनके लिए वर्षमें एक-दो बार कभी कभी आ जाते, परंतु सं.१९९२में छब्बीस वर्षके लम्बे अन्तरालके बाद स्वामीजीके साथ एक माह रहनेकी अनुकूलता श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगासमें मिली थी। उस समय प्रभुश्री—लघुराजस्वामी (श्री लल्लुजी मुनि ऐसे नामोंसे पहचाने जाते, कुछ भोले पाटीदार लोग उन्हें 'बापा' भी कहते) के अन्तःकरणकी विशालता, प्रभुप्रेम और प्रभाव श्री शिवजीकी समझमें आया और धामणकी ओरके भक्तोंका समागम होनेपर उन्हें पौराणिक श्रीकृष्ण-कथाकी याद आ गयी। जैसे श्रीकृष्णने उद्धवजीको गोकुल भेजा था और वे गोपियोंकी भक्तिके रंगमें रंगकर लौटे थे, वैसा ही श्री शिवजीके साथ भी हुआ। श्री शिवजी द्वारा पालीताणामें की गयी सेवाको श्री लल्लुजी स्वामी अनेक बार याद करते। उस ऋणको उतारनेके लिए ही मानो अंतिम वर्षमें उनको आकर्षित करके उनपर कृपा की हो ऐसा अचानक यह एक मासका प्रसंग बन गया था। एक बार श्री शिवजी भक्तिके आवेगमें आ गये, उस समय 'अगासना संत' और 'मने मळ्या गुरुवर ज्ञानी रे' आदि गीत स्वयं लिखे थे। ये स्वरचित गीत आश्रमके मुमुक्षुओंसे वे बारबार गवाते थे।

श्री लल्लुजी आदि विहार करते-करते खंभातकी ओर पधारे और श्री रत्नराज पालनपुर, डीसा आदिकी ओर विहार करने लगे। श्री रत्नराजको फिर श्री लल्लुजी आदिका दो-तीन वर्ष वियोग रहा, किन्तु जो भक्तिका रंग लगा था वह मिट जाये वैसा नहीं था। 'रत्नसंचय काव्य', 'भक्तिरत्न चिंतामणि' आदि काव्यग्रंथोंमें उनकी श्रीमद् राजचंद्रके प्रति गुरुभक्ति स्पष्ट झलकती है। श्री लल्लुजी स्वामीको श्री लघुराजजीके नामसे श्री रत्नराजने गाया है और उनके प्रति उनका भक्तिभाव उपकारीके रूपमें भी उनके काव्योंमें स्थान-स्थानपर प्रदर्शित हुआ है। इस वियोग-कालमें दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनियोंके बीच पत्रव्यवहार हुआ हो ऐसा लगता है, पर वह सुरक्षित नहीं रहा। केवल श्री रत्नराज स्वामीके काव्य साक्षी देते हैं कि उनका प्रेम वर्धमान हुआ था।

★★★

१२

श्री पालीताणासे श्री लल्लुजी आदि मुनिवर चरोतरकी ओर विहार कर खंभात आये और श्री रत्नराज स्वामीने ववाणिया होकर उमरदशीमें चातुर्मास किया। श्री लल्लुजी आदिने पन्द्रह वर्षोंके बाद पाँचवीं बार खंभातमें सं.१९६७का चातुर्मास किया।

श्री लल्लुजी स्वामीने श्री रत्नराज स्वामीपर समागम और बोधकी इच्छा प्रदर्शित करते हुए एक पत्र लिखा था जिसका उत्तर हिन्दी भाषामें उन्होंने दिया है। उससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि चाहे जहाँसे, शिष्यसे भी हितशिक्षा ग्रहण करने जितनी लघुता उन्होंने प्राप्त कर ली थी—

"आपश्री रस्सी खींचेंगे तो यह लिखनेवाला तो सत्पुरुषोंका बिना दामका दास है, सो लोहचुंबककी भांति स्वतः खिंचा चला आयेगा...श्री सत्योपदेशवार्ताके विषयमें तो आपश्रीसे हमारी अत्यंत नम्र भावसे यही सूचना है कि हम सरीखे दयापात्रोंसे आप उपदेशादिकी इच्छा न रखा करें..."—सं.१९६७, आश्विन प्रतिपदा।

इसी मासके दूसरे पत्रमें श्री रत्नराज स्वामी द्वारा माँगी गयी सलाहके उत्तरमें उन्होंने संक्षेपमें बताया था, जिसके उत्तरमें श्री रत्नराज स्वामी लिखते हैं—

"आपश्री लिखवाते हैं कि 'आपको सलाह दे सकूँ ऐसी हमारी प्रज्ञा नहीं है' इस विषयमें इतना ही बहुत है कि शुद्धात्मा—शुद्ध ब्रह्मको प्रज्ञाविशेषका अवकाश ही कहाँ है?...थोड़ी बहुत प्रज्ञासे आत्मदशाका कुछ अनुमान किया जा सके ऐसा कुछ नियम नहीं है। अर्थात्.....अल्पज्ञ हों या विशेषज्ञ हों, जिन जीवात्माओंने वृत्ति उपशम या क्षीण कर क्षय कर दी हो, वे जीवात्मा ही आत्मदशा प्राप्त करनेके अधिकारी हैं, उन्हें ही आत्मदशा आविर्भूत होने योग्य है और वे ही अत्युत्कट आत्मदशावान साक्षात् भगवान हैं।..."

चातुर्मास पूरा होने आया उस समय नारवाले रणछोड़भाईके मनमें ऐसा हुआ कि श्री लल्लुजी स्वामी खंभातमें हैं, तो उनके पाससे मोक्षप्राप्तिके सिवाय अब अन्य कोई कर्तव्य नहीं है। ऐसा सोचकर वे नारसे खंभात आये। 'श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथमेंसे 'उपदेशछाया'को बारबार पढ़नेसे उनके मनमें ऐसा दृढ़ विश्वास हो गया था कि सत्पुरुष ही मोक्षदाता हैं यही पूरे ग्रंथका सार है। उनके मनमें यह भी जम गया था कि वे उस ग्रंथको बराबर समझते हैं; परंतु जब खंभातमें बड़े बड़े मुमुक्षुओंको श्री लल्लुजी आदिके समक्ष श्री सुबोध पुस्तकालयमें उस ग्रंथके वचनामृतोंकी चर्चा सूक्ष्म भेदसे करते देखा तब उनका पहलेका अभिमान गल गया और मैं तो अभी कुछ भी नहीं समझता ऐसा उन्हें भासित होने लगा।

चातुर्मास पूरा होनेपर श्री लल्लुजी आदि खंभातके पास वडवा क्षेत्रमें पधारे। भाई रणछोड़भाई भी उनके साथ ही वहाँ रहे। वडवामें दिनके समय खंभातसे सभी मुमुक्षु आते और सुस्वरसे पूजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढ़ायी जाती जिसमें दिनका अधिकांश समय बीतता। दोपहरमें एक बार सभी आहार करते। पूरा दिन पूजा-भक्तिमें व्यतीत होता।

शामको आवश्यक क्रिया होनेके बाद श्री लल्लुजी आदि भक्तमण्डल, कोई पद बोलते हुए या एक दो पंक्तिकी धुन लगाते हुए अथवा मंत्रकी धुनके साथ समुद्रके किनारे जाता। वहाँ श्री लल्लुजी हाथमें पींछी और कमरपर मात्र लंगोटी धारण कर "दृष्टि थिरामांहे दर्शन नित्ये रत्नप्रभासम जाणो रे...ए गुण राजतणो न विसारुं वहाला, संभारुं दिनरात रे" आदि अनेक पद बदल-बदलकर उल्लासभावसे दौड़ते-कूदते, पहाड़ी रागमें गाते-गाते उस समुद्रकी रेतीमें सारी रात बिता देते। कुछ लोग घण्टे-दो घण्टे भक्ति करनेके बाद थक जाते, कुछ वापस अपने घर चले जाते, कुछ वहीं रेतमें सो जाते। प्रातः सब शहरकी ओर आते तब त्रिभोवनभाई आदि भक्तात्मा दूध, पानीके देग तैयार रखकर मार्गमें बैठे होते। उस भक्त मण्डलीमेंसे जिसे जितनी रुचि हो उतना उपयोग करते। वहाँसे वडवा आकर नित्यकर्मसे निवृत्त हो फिर सभी पूजाभक्तिमें लग जाते। दिनमें भी नींद लेनेका समय न मिलता। यों अखण्ड १९ दिनतक आँख मीचे बिना श्री लल्लुजी स्वामीने रात-दिन भक्तिमें बिताये। इस भक्तिके अपूर्व वेगके उदयसे अनेक आत्माओंमें भक्तिरंग दृढ़ हुआ।

भाई रणछोड़भाई, श्री लल्लुजी स्वामीके साथ ही रातदिन रहते, इससे उन्हें भक्तिका ऐसा तो रंग चढ़ा कि वे अपने व्यापार तथा कुटुम्बादि भावोंको भूल गये। व्यापारके लिए जानेपर भी उस अपूर्व भक्तिका ही गुंजारव उनके चित्तमें होता, उसीकी झंकारसे उनका हृदय झंकृत होता रहता। उन्होंने तो निश्चय किया था उसके अनुसार श्री लल्लुजी स्वामीको 'नहीं जाना है' ऐसा कहकर जाना टाल देते थे। परंतु 'अवसर देखना चाहिए, स्याद्वाद मार्ग है, फिर आर्त्तध्यान हो वैसी प्रवृत्ति करना योग्य नहीं है' आदि उपदेश वचन सुनकर खिन्नभावसे वे नार गये, किन्तु उनका चित्त व्यवहारमें लगता ही नहीं था।

श्री लल्लुजी स्वामी सं.१९६८में चरोतरमें ही विहार करते रहे और ग्यारह वर्षके बाद वापस वसोमें तीसरा चातुर्मास किया। श्री मोहनलालजी तथा श्री चतुरलालजी भी उनके साथ ही थे।

इस चातुर्मासमें श्री रत्नराजने श्री लल्लुजी स्वामीको वसो पत्र लिखा था वह अनेक दृष्टिसे विचारणीय होनेसे नीचे उद्धृत करता हूँ—

तत् ॐ सत्

श्री सहजात्मस्वरूप—प्रगट पुरुषोत्तमाय नमः

दोहा

लह्यो लक्ष जिनमार्गको, लूखा तिनका भाव।
धन्य जीवन तिनका सदा, स्वानुभव प्रस्ताव ॥१॥

मिथ्या माने जगतसुख, जीते जग अपमान।
राजमार्गरत रातदिन, सो सत्पुरुष समान ॥२॥

ऐसा श्री लघुराजजी, तिन सत् करत निहोर।
रत्न नाम कंकर समो, सब सज्जनको चोर ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री परमकृपालुदेवके परम कृपापात्रकी कृपा चाहता हूँ साष्टांग नमस्कारपूर्वक।

हे स्वामी! आप तो सदैव सत्समाधिस्वरूप हैं, तातें आपको सदैव निजानंदकी लहर है। लेकिन इस लेखकको भी तिनही लहरकी महेर होनी चाहिए। कारण कि बहुत काल हुआ आपके आश्रय वर्तता हूँ। इसमें रहस्य यह है कि स्थूल देहापेक्षासे तो जिन साक्षात् प्रत्यक्ष पुरुष द्वारा सत्प्रतीति भई होवे ताका मुख्योपकार गिननेसे मुख्यपने तिनहीके आश्रय वर्तता हूँ। लेकिन स्वरूपकी अपेक्षासे सर्वकालके सर्व सत्पुरुष एक ही हैं, और एक ही भासे हैं, तैसे ही एक ही गिनना योग्य लागे है।

...एक अपेक्षासे यह लेखक जीवात्मा आपके आश्रय वर्ते है। वास्ते आपसे अर्ज है कि आश्रितकी आशा आपके योगबलके द्वारा अवश्य सफल करनेकी सत्कृपा करोगेजी अर्थात् ऐसा आंदोलन भेजेंगे कि जिनसे इस लेखकका हृदयबल स्व-इच्छित साध्यकी सिद्धि संप्राप्त करे। हे देव! दया करो, दया करो, दया करो। त्राहि (३) क्या लिखूँ? आपके ज्ञानमें सब विद्यमान है..."

सं.१९६९ में श्री रत्नराज चरोतरमें स्वामीजीके साथ विहार कर रहे थे पर श्री रत्नराजके व्यवहारकी चर्चा अनेक मुमुक्षु करते और उनकी निंदा करते। जिससे स्वामीजीका चातुर्मास खंभातमें होना लगभग निश्चित जैसा हो गया था किन्तु रत्नराजके कारण खंभातसे दूर रहना ही ठीक समझा और पाँच वर्षके बाद दूसरा चातुर्मास उन्होंने फिर बोरसदमें किया। इस बार भी निवास तो मेवाडाकी (दिगम्बर) धर्मशालामें था; परंतु भाई जेठालाल परमानंदके बंगलेमें भक्तिभजनमें दिनका अधिकांश भाग बीतता था। इस बार दोनों पाँवोंके घुटनोंमें गठियाका दर्द शुरू हुआ। रेतीली खारी जमीनमें बारंबार नमस्कारादि करनेसे भी घुटनोंमें सूजन जैसा हो गया था, जिससे विहार बड़ी कठिनाईसे हो ऐसी प्रतिकूलता हो गयी। इसका अनेक प्रकारसे उपचार होनेपर भी दर्द बढ़ता ही गया और यह गठियाका दर्द आयुष्यपर्यंत रहा। किसी समय उस चातुर्मासमें ही मुमुक्षुजनोंसे कहा था कि अब तो जंगलमें कोई झोंपड़ी जैसी मिल जाये तो वहाँ पड़े पड़े यह वचनामृत (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथ) पढ़ते रहेंगे। इसमें उनकी एक ओर जनसमूहसे एकान्त सेवनकी भावना है तो दूसरी ओर श्री रत्नराज मार्गप्रभावनाकी उत्तम भावना प्रगट करते हैं। जिनके योगसे ऐसी भावनाका जन्म हुआ है उनके हृदयमें वह कितनी प्रबल होगी (फिर भी उन्होंने उसे कैसी स्ववश रखी है) इसका ख्याल उस पत्रके निम्नलिखित अवतरणसे आयेगा—

"हे प्रभु! आप तो कृतयोगी हैं...

[1]प्रसूतानी पीडा रे के वंध्या ते शुं जाणे?
जाण्युं केम आवे रे के माण्याने परमाणे?

अब तो मात्र यही भावना रहती है कि परमकृपालुदेवके यथाजातलिंगधारी निर्ग्रंथ मुनि, साधक ब्रह्मचारी, साध्वियाँ, ब्रह्मचारिणियाँ और उपासक-उपासिकाएँ इस भूमण्डलपर स्वपरका हित करते, फिरते, विचरते दृष्टिगोचर हों तभी इस सृष्टिमें रहकर उनके साथ आनन्दका अनुभव कर अंतमें स्वस्वरूपमें लीन हो जाऊँ। अन्यथा अन्तमें स्वस्वरूपमें समाना है वह शीघ्रतासे असंगतासे अज्ञात

---

१. **भावार्थ**—प्रसूतिनी पीड़ाको वंध्या स्त्री कैसे जान सकती है? पुस्तक-ज्ञान अनुभवज्ञानकी तुलना कैसे कर सकता है? अर्थात् कभी नहीं कर सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिमें भ्रमणकर समा जाऊँ...आपश्रीके दिव्य दर्शन कब किस क्षेत्रमें हो सकेंगे और दर्शनलाभ मिलनेके बाद चरणमूलमें निवास करनेका स्थान मिलेगा या नहीं?

आप परमकृपालुदेवका मार्ग जयवंत हो इसी इच्छाके साथ पत्र समाप्त करता हूँ।"

★★★

१३

[1]पूजक परिषह दई रह्या, आप रह्या समभाव;
धन्य संत लघुराजजी, लघुमां लघु बनी साव.
ग्रीष्म तणी गरमी घणी, गणी हितकारी इष्ट,
केरी अमृत फळ बने, तेम महात्मा मिष्ट.

श्री लल्लुजी स्वामीके पाँवमें गठियाका दर्द बढ़ जानेसे किसी एकान्त स्थानमें असंग भावनासे रहनेकी इच्छा थी और यह बात अपने साधुमण्डलको भी बतायी थी, तथा किसीको साथमें नहीं रखा था। श्री रत्नराज, विरोधी बलोंको जानते थे इसलिए उनसे श्री लल्लुजी स्वामीकी आधाररहित एकाकी स्थिति देखी नहीं जाती थी। अतः सं.१९७० के पौष मासके पत्रमें वे विनती करते हैं–

"हे नाथ! इस क्षुल्लक दासकी प्रार्थना है कि प्रथम तो निकट ही कोई वर्तमान जैन देशी विक्षेपी वर्गका अभाव हो ऐसे क्षेत्रमें स्वतंत्र स्थिति हो तो अच्छा..." सप्ताह बाद लिखते हैं कि "आप अकेले, गम्य क्षेत्रमें अर्थात् परिचित क्षेत्रमें कष्ट उठाकर विचरें, यह हम सुनते रहें, इसमें हमारा कल्याण है क्या? अतः आप कृतयोगी सत्पुरुषको विशेष क्या लिखें? संयमियोंकी सहायता मुख्यरूपसे संयमी ही कर सकते हैं..."

श्री लघुराज स्वामी नडियादमें 'नाना कुंभनाथ'में ठहरे हुए थे। उनकी सेवामें एक भाई रहते थे। स्वामीजीको पाँवमें गठियाके दर्दके कारण चलना कठिन हो गया था अतः श्री रत्नराज आदि भक्तिभाववाले मुमुक्षुओंके मनमें ऐसी योजना इस अरसेमें बनी थी कि कोई स्थान आश्रम जैसा छोटा-सा भी कामचलाऊ बनाकर स्वामीजीके लिए अनुकूल व्यवस्था करनी चाहिये। सं.१९७०के पौष कृष्ण १२ के पत्रमें श्री रत्नराज, श्री स्वामीजीको लिखते हैं–

"पवित्र मुनिश्री मोहनलालजी...को नरोडाकी ओर पधारनेकी सामान्य प्रेरणा की है...आश्रम निर्माणकी संभावना हुई है वह सिद्ध होनी ही चाहिए और इस शुभ काममें जो विघ्न-विकल्प उठते हैं उनकी शान्तिके लिए श्री मोहनलालजी...आदिमेंसे किसीकी भी वहाँ उपस्थिति होनी चाहिए..." चैत्र मासके अन्य पत्रमें दूसरे पत्र संलग्न करते हुए लिखते हैं–"यथाशक्ति जैसे भी हो कामचलाऊ कार्य करना है। ऊँची-ऊँची अभिलाषा भविष्यमें पूर्ण होती रहेंगी। फिर भी अभी तक वे बहानेपर बहाना बनाते जा रहे हैं...।" इसी मासमें तीसरे पत्रमें लिखते हैं–"नरोडा क्षेत्रमें साधुसमाधिके लिए 'सनातन जैन आश्रम' बनानेके...संबंधमें कालीदास काकाका पत्र अभी आया है कि पू०...तथा

---

१. भावार्थ–पूजक ही परिषह दे रहे हैं किन्तु आप समभावसे सहन करते हैं और सबसे लघुभाव धारणकर रह रहे हैं ऐसे संत लघुराजजी धन्य है। जैसे ग्रीष्म ऋतुमें गर्मी बहुत पड़ती है किन्तु उसीसे आम पककर अमृतफल बनता है, उसी तरह परिषह-उपसर्गसे तपने पर महात्माकी दशा वृद्धिंगत होती है, उनके लिये परिषह-उपसर्ग इष्ट (प्रिय) ही होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पू०...भाई आदि वहाँ आश्रम बनानेका तथा उनके द्वारा कही गयी रकम देनेका भी बिलकुल इन्कार कर रहे हैं।...आप सरल स्वभावी, भद्रिक परिणामी हैं जिससे जिस किसीके साथ आप दाक्षिण्यतामें सहजभावसे जो बोल जाते हैं उसका स्वार्थी लोग दुरुपयोग कर कहते हैं कि स्वामीजीको तो आश्रमकी कुछ आवश्यकता नहीं है, तब हमें उपाधि खड़ी करके क्या करना है? यों कहकर वे बातको उड़ा देते हैं, और अपना आंतरिक आशय आपके नामसे प्रसिद्ध करते हैं...अंतमें एक विचारपर स्थिर होना आपके आधीन है। बाकी सब आप सद्गुरुके पुण्य प्रतापसे तैयार है।"

इस पत्रके उत्तरमें स्वामीजीने वैशाख सुदी ७, सं.१९७०के पत्रमें अपने हाथसे लिखा है—"पर हे प्रभु! हमारा हृदय कोमल है यह आप जानते हैं। आपसे कुछ अंतर नहीं है।...आप जो करेंगे उसमें मेरी सम्मति है, कुछ ना नहीं है। फिर कोई आपको हमारा नाम लेकर कहें उसमें मेरा क्या दोष है?...यहाँके मुमुक्षुभाइयोंकी विषम दृष्टिको देखकर बहुत विचार होता है कि क्या किया जाय?...हम, हमारे विचारके अनुसार जो प्रारब्ध उदयमें आता है, उस प्रकारसे यहाँ सब आ मिलता है—द्रष्टा बनकर देखते रहेंगे...इच्छानुसार कुछ होता नहीं है। हरिइच्छासे जो हो वह अच्छा है...यहाँ तो कोई सत्संग चाहिए, और तो सब जगह फूट...आपके समागमकी बहुत आवश्यकता है। पर किसी अन्तरायके कारण हरिइच्छा ऐसी ही होगी...आप तो सब जानते हैं।"

श्री लघुराज स्वामी बाह्य विकट संयोगोंमें कैसी अदीनतासे, निःस्पृहतासे रहे हैं यह बतानेके लिए ही यह नरोडा आश्रमका इतिहास लिखा है। परमकृपालु श्रीमद् राजचंद्रने एक पत्रमें लिखा है, "...दीनता नहीं आने देना, 'क्या होगा' ऐसा विचार नहीं करना...थोड़ा भी भय नहीं रखना। उपाधिके लिए भविष्यकी एक क्षणकी भी चिन्ता नहीं करना...तभी परमभक्ति पानेका फल है, तभी हमारा आपका संग हुआ योग्य है।" यह और ऐसे ही अन्य विचारोंसे श्री स्वामीजीको दीनता या पराधीनता अच्छी नहीं लगती थी।

श्री मोहनलालजी लोच आदि कारणसे उमरदशी गये थे। वहाँसे श्री स्वामीजीको पत्र लिखते हैं—"मैं सिद्धपुरसे...आया था उसी दिन पालनपुरसे दरबार साहब महाराज श्री रत्नराजस्वामीजीके दर्शनार्थ पधारे थे और पालनपुर ले जानेके लिए पगड़ी उतारकर बहुत अन्तःकरणके प्रेमसे नम्र और मृदु विनती कर गये हैं। दरबारका मन रखनेके लिए उनका एक बार वहाँ पधारना सम्भव है..."

फिर श्री रत्नराज कुछ महीने पालनपुर रहे थे। नवाबने उनसे चातुर्मासकी विनती भी की, किन्तु जलवायु अनुकूल नहीं होनेसे वहाँ नहीं रहे। कुछ सेवाका अवसर देनेकी दरबारने विनती की थी, तब नरोडामें महात्मा श्री लघुराज आदि संतोंके लिए आश्रमकी व्यवस्था हो रही है उसमें कुछ अच्छी रकम देनेकी सूचना श्री रत्नराजने की थी। अतः एक गिन्नियोंकी थैली देकर लालभाई साहबको नडियाद श्री लघुराज स्वामीके पास नवाबश्रीने भेजा था। स्वामीजीने उसे स्वीकार नहीं किया। तब वह थैली श्री रत्नराजको सौंपी गयी थी। उस रकमसे श्री सिद्धपुरमें 'राजमंदिर' नामक संस्थाका आरंभ हुआ।

लगभग बीस वर्ष बाद एक संन्यासी श्रीमद् राजचंद्र आश्रम (अगास) में श्री स्वामीजीके पास आये। वे श्री रत्नराजके समीप रहकर आये थे। वे कहते थे कि "पालनपुरके नवाबने लड़ाईके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय वॉर लोनमें जो रकम रोकी थी उसके ब्याजके पैसे नडियादमें आपके पास भेजे थे, क्योंकि मुसलमान ब्याजको हराम मानते हैं और ब्याजके पैसोंका उपयोग स्वयं नहीं करते। आपने उसे अस्वीकार किया सो बहुत ही अच्छा किया।" श्री स्वामीजीको इसका कुछ ध्यान नहीं था, किन्तु एक अच्छाईमें सब अच्छाइयाँ समायी रहती हैं त्यों सब अच्छा ही होता।

उनका मुख्य हेतु यह था कि 'किसीके पुरुषार्थसे जो रकम मिली हो उसे लेना दीनता दिखाने जैसा और पराधीनता स्वीकार करने जैसा होनेसे वह अयोग्य ही है। पापके उदयके बाद पुण्यका उदय, धूपके बाद छायाके समान आता ही है। जो भाग्यमें होगा वह तो पीछे-पीछे खिंचा चला आयेगा। उस ओर दृष्टि करना भी उचित नहीं है।' स्वयं विनयपूर्वक श्री रत्नराजको वह रकम सौंपकर साथमें पत्र भी लिखा था। इससे श्री रत्नराजको भी संतोष हुआ था और अच्छा लगा था।

सं.१९७० के आषाढ़ सुदी ६ के पत्रमें श्री लघुराज स्वामी लघुतापूर्वक श्री रत्नराजसे विनती करते हैं—"आप दयालु हैं। इसलिए भव्य जीवोंको सन्मार्गकी ओर मोड़नेके लिए 'महागोप'के रूपमें परमार्थ धर्म प्राप्त हो वैसा करियेगा।" उसके उत्तरमें श्री रत्नराज लिखते हैं—"हे प्रभु! आप स्वयं परमार्थस्वरूप ही हैं। आपश्रीकी स्थितप्रज्ञ दशा इस बालकने साक्षात् अनुभव की है। अतः आपको परमार्थरूप सन्मार्गकी ओर भव्यजीवोंको मोड़नेके वात्सल्यपूर्ण परिणाम रहते हैं, जिससे परम पुरुषार्थकी जागृतिके लिये जो प्रेरणा दें वह आज्ञा हमें शिरोधार्य है। परंतु हे योगेन्द्र सद्गुरुदेव! तथारूप परमकृपालुदेव द्वारा उपदिष्ट परमार्थ मार्ग प्रकाशित करनेकी भी परम योग्यता चाहिए तो उसे प्रवर्तित करनेके लिए तो कितनी अधिक योग्यता चाहिये?.....अब तो जीवन्मुक्त होकर विचरते हुए प्रारब्धकर्मके क्षयपूर्वक स्वरूपस्थ होनेकी ही प्रतिज्ञा करना प्रशंसनीय है।"

श्री लल्लुजी स्वामीने सं.१९७०में 'नाना कुंभनाथ'का स्थान जो नडियादमें है, वहीं चातुर्मास किया। वहाँ मुमुक्षु भाई-बहन दर्शन, समागम और अभ्यासके लिए आते, उनकी व्यवस्थाके बारेमें श्री रत्नराजको लिखते हैं—"इस समय यहाँ सुबह, दोपहर 'भगवती आराधना'का वाचन शुरू किया है वह भाइयोंके वर्गमें होता है और बहनोंके वर्गमें 'भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति भाषान्तर कथांग' पढ़ा जाता है। श्री चतुरलालजीने बहनोंके वर्गमें 'आत्मसिद्धि शास्त्र'के वाचन आदिका क्रम रखा है... परमकृपालुने इसे दुषमकाल कहा है उसका यथार्थ अनुभव हो रहा है, यह भी खेद जैसा है...अपना करके चले जाने जैसा है।"

कर्मकी गति विचित्र है। दुःखके प्रसंग भी एकके बाद एक आ पड़ते हैं। परमकृपालुदेव जैसे शिरच्छत्रका वियोग होनेके बाद श्री देवकरणजी जैसे आजन्म साथीका वियोग हुआ। फिर श्री अंबालालभाईका आधार था वह भी गया। जैसे-जैसे वृद्धावस्था बढ़ रही थी वैसे-वैसे शरीरबल भी क्षीण होता जा रहा था। साथ ही सारणगाँठका रोग, अर्शका रोग, शौचके समय आँत पीछे खिसक जानेसे प्रसूति जैसी पीड़ा प्रतिदिन होती थी उसमें वृद्धि होनेसे बाह्य चारित्र-पालनमें विघ्नपर विघ्न आते थे और असंगवृत्ति हो जानेसे कहीं मन नहीं लगता था, जिससे दूर पहाड़ों, जंगलों, एकान्तमें श्री चिदानन्दजीकी भाँति रूढिचुस्त जैनसमुदायसे दूर चले जानेकी वृत्ति थी। तभी गठिया रोगसे दोनों पाँव रह गये अतः नडियादमें स्थिरता की। वहाँ जैनोंका उपद्रव नहीं था पर जैनेतर लोग कल्याणके विशेष अभिलाषी होनेसे उपरोक्त प्रवृत्ति एक धर्मकार्य मानकर आरंभ की। वहाँ विघ्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ पड़ा। कुंभनाथ महादेवमें श्रावण सुदी पूर्णिमाको ब्राह्मण लोग जनेऊ बदलने आये, उन्होंने जैन मुनियोंको वहाँ चातुर्मास करते देखा तो स्वाभाविक धर्मद्वेषसे प्रेरित होकर जिसके आधिपत्यमें महादेवकी कंसाराकी धर्मशाला थी उसके कान भर दिये, जिससे मकान बदलना अनिवार्य हो गया। उस समय शक्तिसम्पन्न मुमुक्षु उपस्थित थे अतः उन्होंने ढेंढाका बंगला नानासाहबसे किरायेपर लिया और कुंभनाथमें जैसा कार्यक्रम चलता था वैसा ही वहाँ आरंभ हो गया।

एक पत्रमें श्री रत्नराज लिखते हैं—"पूज्य रणछोड़भाई पवित्र जीवात्मा हैं और व्यवहारकुशल, दत्तवाचक तथा न्यायसंयत पुरुष हैं; अतः उनकी विनतीपर आपको विशेष ध्यान देने जैसा है। आसपासके संयोग तो सदा एक समान नहीं रहते..." दूसरे पत्रमें लिखते हैं—"प्रभु! आप सत्पुरुषोंका भाग्य महान है! इस ओर उमरदशीके महन्त आदि आपकी सेवा करनेको तत्पर हैं...यद्यपि आप क्षमाशूर निःस्पृह महात्मा हैं...आपका वात्सल्यभाव आपको स्वतंत्र व्यवहार करनेसे विलम्बमें डाल देता है...अर्थात्...यों कहना...पड़ता है कि दयाको छोड़े बिना भी छुटकारा कहाँ है? अभी अभी, खंभातकी पाठशालाको प्रोत्साहन मिले ऐसे उपाय आरंभ किये गये हैं, ऐसा लगता है।...आपश्रीको भी वे वहाँ...खंभातकी पाठशालामें रुकनेको विनतीके रूपमें विवश करें, अर्थात् आपको अनुकूलता बताकर उस ओर रोक रखनेका कदाचित् प्रयत्न करें। फिर हमें आपके इस ओर बिराजनेकी सुविधा...करनी है वह कार्यकारी होगी या नहीं ऐसा संदेह होता है...

सं.१९७०, आश्विन वदी १"

चातुर्मास पूरा होने पर कोई निवृत्तिक्षेत्र ढूँढकर असंगभावसे रहा जा सके ऐसी श्री लघुराज स्वामीकी भावना थी। श्री रत्नराजको भी यात्रामें या ऐसे प्रसंगमें श्री लघुराज स्वामीके साथ विहार करनेकी भावना थी। फिर भी नडियादकी ओर विहार हो सके ऐसी शारीरिक स्वस्थता न होनेसे उस विचारको स्थगित रखनेका रत्नराजने सूचित किया। श्री लघुराज स्वामीने चातुर्मास पूरा होने पर उमरेठकी ओर विहार किया। वहाँसे वे रत्नराजको लिखते हैं "मुझे विहार करना सम्भव नहीं लगता। घुटनोंमें वायुका प्रकोप स्थायी है। अर्शके दर्दके साथ पीड़ा होती है। इसलिए अब तो धीरे-धीरे उत्तरसंडा होकर नडियाद क्षेत्र जानेका विचार मनमें आता है..."

इसी बीच श्री रत्नराजकी कुछ सद्गृहस्थोंके साथ धर्मचर्चा हुई थी। वह उन्होंने सं.१९७१के मार्गशीर्ष कृष्ण ६ के पत्रमें बतायी है, "उस वार्तालापसे इस अनुमानपर आना सम्भव है कि—अब किसी एक व्यक्तिको अगुवा बनाये बिना वर्तमान समुदायका सद्व्यवहार नहीं निभ सकेगा। किन्तु प्रश्न यह है कि ऐसा उत्तरदायित्व उठानेका मुख्य अधिकारी कौन बने? और दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि किसे बनाया जाय? तीसरा प्रश्न यह भी हो सकता है कि आजतक समुदाय, निर्नायक सैन्यकी भाँति चलता रहा है, वह ऐसे मुख्य अधिकारीकी आज्ञाका आत्मार्थके लिए आराधन करेगा क्या?...ऐसे मुख्य अधिकारीकी स्थापनाकी इच्छा अनुमोदनीय है, तथापि वह कैसे भावसे, कैसे आशय या उद्देश्यसे उत्पन्न हुई होगी यह भी विचारणीय है...वैसे हमें तो श्री परमकृपालुदेवकी परोक्ष आज्ञानुसार अपना आत्मार्थ सिद्ध करके चले जाना है, इस विचारको गौण नहीं करते हुए तथारूप सत्पुरुषकी सद्भाग्यसे संप्राप्ति हो जाय और उनकी प्रत्यक्ष आज्ञाका आराधन करें अथवा उपासना करें इसमें त्रिकालमें भी कोई बंधन नहीं है, क्योंकि भूत, भविष्यत्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान यों कालभेदसे ज्ञानी संतपुरुषोंमें भेदकी कल्पना भले ही की जाय, परंतु वास्तवमें तो सत्पुरुष एक स्वरूप ही हैं..."

श्री लघुराज स्वामी चकलासीसे, रत्नराजको हुए उपसर्गके प्रसंगपर आश्वासनपत्रमें लिखते हैं कि "अभी यहाँ उमरेठसे विहार कर पणसोरा होकर वणसोल आये। वहाँसे चकलासी...पाँच-छह दिनसे स्थिति है...आप परिषह-उपसर्ग जो सहन करते हैं उसके लिए धन्यवादके पात्र हैं। आपको तो सहज कर्म क्षय हों ऐसे जीवोंका कारण प्राप्त हुआ है...धैर्यसे गुरुप्रतापसे सर्व समाधि होगी।"

उस वर्षके श्री रत्नराजके कुछ पत्रोंकी लिखावटसे, श्री लघुराज स्वामी आदिकी कैसी विकट परिस्थिति थी इसे समझनेके लिए नीचे कुछ आवश्यक अवतरण संक्षेपमें दिये हैं।

श्री रणछोड़भाईको वे लिखते हैं, "आप बंधुको भी प्रसंग मिलनेसे, प्रतिबोधके रूपमें नहीं परंतु प्रेम-प्रीतिभावके रूपमें बता रहे हैं, उसपर विशेष ध्यान देकर पहलेसे ही सावधान होते हुए, प्रत्यक्ष सत्पुरुषकी आज्ञा-आराधनरूप महान कार्य कर्तव्य है। आप भाई स्वयं व्यवहारकुशल एवं विचक्षण हैं, परंतु आपकी जाति सरलस्वभावी है अतः ऐसे कठिनाईके समयमें सावधान रहकर मनको दृढ़ रखें, क्योंकि कथित मुमुक्षुओंका विशेषकर, बिना लिये ही माप निकल आया है अतः हमें जो उचित लगे वह करना है...भाई, अभी तो महाप्रभुको सँभालनेका आपका सद्भाग्य है।"

सं.१९७१, पौष सुदी ७

फिर भी श्री रत्नराजको धीरज नहीं रहनेसे विहार करके डीसासे आते हुए पानसर तीर्थके पास पाँवमें दर्द होनेसे वहीं रुक जाना पड़ा। उनका स्वास्थ्य भी बहुत शिथिल रहता था। पानसरसे पौष वदी १३के पत्रमें भक्तिभावपूर्वक लिखते हैं," साक्षात् प्रत्यक्ष सजीवनमूर्ति सद्गुरु भगवान श्री परमकृपालु महर्षिदेव स्वामीजी महाप्रभु श्री लघुराज स्वामीश्रीके पवित्र चरणकमलोंमें विधिवत् साष्टांग दण्डवत् नमस्कार हो! नमस्कार हो!!

...हमें तो आप सत्पुरुषके दर्शन-समागमकी सद्इच्छाके अतिरिक्त अन्य कोई भी कार्य कल्याणकारी नहीं लगता। 'जहाँ राम वहाँ अयोध्या'...जहाँ आप बिराजित हों वहाँ हमारे लिए तो चौथा काल ही है। यद्यपि मनकी धारणा निवृत्तिक्षेत्रमें अज्ञातरूपसे विचरनेकी थी—है, परंतु एक तो आप वृद्ध रत्नाधिक प्रत्यक्ष उपकारी सत्पुरुषके दिव्य दर्शनका लाभ तथा हमारे युगप्रतिक्रमणका अवसर भी आसन्न ही है वह यदि प्रतिभाशाली महान् पुरुषके चरणमूलमें हो सके तो विशेष अच्छा...आपश्रीके चरणोंमें शीघ्र उपस्थित होऊँगा, परंतु शरीरसे विवश हूँ अतः यदि विलम्ब जैसा हो जाय तो चिंता न कीजियेगा। हमारा इस ओर आना गुप्त ही रखा जाय तो अच्छा रहेगा...मात्र आश्रित जीवात्माओंको हमारे निमित्तसे अन्याय होता जानकर उनकी यत्ना करनेकी सहज वृत्ति हो जाया करती है।"

अडालजसे श्री रत्नराज एक पत्रमें स्वामीजीको लिखते हैं—

"आपकी सेवामें उपस्थित हो जाऊँगा जी, तब सर्व समाचार विस्तारसे सविनय प्रगट करूँगा जी...किसीका विश्वास करनेका समय नहीं रहा..." सं.१९७१, माघ सुदी ६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री रत्नराज स्वास्थ्य ठीक होनेपर नडियाद आकर कुछ दिनोंमें ही वहाँसे चले गये थे, क्योंकि उनकी अज्ञात विहार करनेकी भावना थी। वे भरुचसे वैशाख वदी ३० के पत्रमें लिखते हैं, "आपश्रीको किसी भी प्रकारसे परिषह-उपसर्ग उत्पन्न न हो इस संबंधमें चित्तमें विचार आ जाते हैं कि अरेरे! यह क्या कलियुगका प्रभाव है कि ऐसी वृद्धावस्थामें वैयावृत्य करना तो दूर रहा, परंतु उल्टी असातना, उपसर्ग उत्पन्न कर सताना चाहते हैं! वाह! इसीको मुमुक्षुता कहते हैं! प्रभो! अब तो आपने मुमुक्षुओंकी मुमुक्षुताको पहचान लिया होगा या अब भी कुछ शेष रहता है?..."

श्री रत्नराज वडोदरासे ज्येष्ठ सुदी ९ के पत्रमें लिखते हैं–

"अभी चातुर्मासको शुरू होनेमें देर है। विमुखदृष्टिवाले वहाँसे निकलवानेके लिए कमर कसकर खड़े हैं। अतः प्रभु! संयोगोंको जाँचकर कार्य करना योग्य है, क्योंकि 'दुष्ट करे नहिं कौन बुराई?'...मैंने बारबार आपकी सेवामें उपस्थित होनेकी विनती की है। वैसे मेरी विशेष इच्छा तो अज्ञात रहनेकी है, फिर भी संयोगोंमें परिवर्तन हो तब मनुष्यको भी बदलना चाहिए...यदि हम अनुपस्थित हैं वैसेके वैसे रहें, और इतनेमें कोई असम्भव अघटित घटना हो जाय तो हमारी निवृत्तिकी भावना निर्मूल हो जाय।"

श्री रत्नराज मुनिश्री चतुरलालजीको लिखते हैं, "……आप सत्य कसौटीकी घड़ीमें परम प्रभुश्रीके चरणमूलमें रहे हैं, सेवाकर जन्म सफल कर रहे हैं...हमारी उपस्थितिकी आवश्यकता हो तो बिना हिचकके तुरत लीखियेगा...यथाशीघ्र उपस्थित हो जाऊँगा। घबरायें नहीं कि मुझे ठीक लगेगा या नहीं...हे मुनि! सुखपूर्वक समाधिकी बात होती तो मुझे सूचित करनेकी आवश्यकता नहीं थी, किन्तु यह अवसर सुननेके अनुसार ऐसा आ पड़ा है कि मेरे अंतरंगमें यही हो रहा है कि हे प्रभु! सहाय करना! हे परमकृपालु! कृपा करना! भरुचमें रहनेकी इच्छा थी। फिर भी... वार्तालाप...सुनकर मेरा चित्त उठ गया। उन्होंने बहुत मनुहार की, पर हम तो एकाएक चल पड़े...भरुचसे पाँच दिनमें ऐसी शरीरस्थिति और भयंकर गर्मीमें यहाँ (वडोदरा) आया हूँ। अब तो मात्र आपके अभिप्रायकी प्रतीक्षा है।"

सं.१९७१के श्रावण मासमें लिखते हैं, "जिन मनुष्योंका मीठा बोलनेका स्वभाव होता है उनके वचनप्रयोगकी खूबीसे तो सचमुच सावधान रहने जैसा है पर उसमें भी यदि दत्तवाचकता द्वारा विश्वासके तत्त्व हों तो उसका विचार तो आपश्री जैसे क्षमाशूर सत्पुरुष ही कर सकते हैं...असंगत्व ही अनुकूल है।"

भाद्रपद वदीके अन्य पत्रमें लिखते हैं, "……लोगोंकी भावनाको उत्तेजित करके विपरीत वेग धारण करे ऐसा कार्य वे लोग कर रहे हैं, वह यह कि स्वामीजी तो भोले स्वभावके हैं। उन्हें रत्नराजने बहकाकर बदल दिया है, इत्यादि...ऐसे दोष हमपर मँढे गये हैं, इसमें उनका गहरा आशय ऐसा लगता है कि 'रत्नराजने स्वामीजीको बिगाड़ा है' ऐसा कहनेसे, हमारी पित्तकी प्रकृति है जिससे मिथ्या आरोपको सहन नहीं कर सकनेसे हम स्वामीजीसे विमुख हो जायेंगे कि 'लो यह तुम्हारे स्वामीजी, हम उनके पास नहीं जायेंगे, और नहीं रहेंगे।' इस प्रकारसे हमें अलग करना...।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्विन सुदी ५ के पत्रमें लिखते हैं, "आपका कृपापत्र...पढ़कर, विचारकर आनन्दमें अभिवृद्धि हुई है। पू. मनसुखभाई रवजीभाई तथा पू.पूजाभाई मोटाने यहाँ लगभग दो रात रहकर समागमका लाभ लिया है...। वे दोनों भाई प्रशस्त भाव दिखाते थे। वर्तमानमें आपश्रीपर पूर्ण श्रद्धाभक्ति दरसाते थे। हमसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना की कि आपको जैसा उचित लगे वैसे चातुर्मास पूरा होने पर स्वामीजीकी व्यवस्था करें। जो खर्च होगा वह हम दोनों भाई मिलकर उठायेंगे। तब हमने...'आत्मज्ञान, समदर्शिता विचरे उदयप्रयोग' इस गाथाकी व्याख्या कर उन्हें समझाया था कि केवल सेवाकी ही बुद्धि हो तो कहना और किसी प्रकारकी 'आप ऐसा करो तो हम ऐसा करेंगे' ऐसी व्यवसायी बनियाबुद्धि हो तो वह पहले बता देना...इत्यादि वार्तालाप हुआ है।"

स्वामीजी इसके प्रत्युत्तरमें लिखते हैं, "धैर्यसे जैसा होना होगा वैसा हो जायेगा। देखते रहेंगे, द्रष्टा बनकर।" फिर आश्विन वदी ५ को लिखते हैं, "इन सब मुमुक्षुओंकी झंझटमें नहीं पड़ना है, हरिइच्छासे द्रष्टा बनकर देखते रहेंगे।"

इस लम्बे पत्रव्यवहारके संक्षिप्त अवतरण देनेका प्रयोजन यही है कि स्वामी श्री लघुराजजी दो वर्ष श्री नडियाद क्षेत्रमें रहे उस समय जो उत्पात हुए उसका अनुमान श्री रत्नराजके उद्‌गार प्रदर्शित करते हैं, जिससे उन प्रसंगोंकी उत्कट विकटताका कुछ ख्याल आ सके। अधिकांश पत्र अमुक अपने खास व्यक्तियोंके साथ भेजे गये थे ऐसा मूल पत्रों परसे ज्ञात होता है और पत्रवाहकसे पत्रमें नहीं लिखी गयीं बातें सुननेका अनेक पत्रोंमें निर्देश है, अर्थात् किसीके भी दोष प्रसिद्ध हों ऐसा उनका अन्तःकरण चाहता नहीं था। कुछ उद्‌गार जो पत्रोंमें निकल गये हैं वे उन प्रसंगोंकी प्रबलता ही सूचित करते हैं। अतः ये प्रसंग, पत्र लानेवालोंके नाम आते हैं उनसे सुने हैं, फिर भी महापुरुषके साधुचरितका अवलोकन करनेपर उनका विस्तार करनेको चित्त प्रेरित नहीं होता। फिर भी यदि उसका कुछ भी दिग्दर्शन न हो तो जो चरित्र लिखनेका कार्य हाथमें लिया है उसके प्रति अन्याय ही होगा, अतः कठिन परीक्षा-समयके व्यवहारका, सहनशीलताका, सद्‌गुरुकी अनन्य दृढ़ भक्तिका, एक आश्रयको टिकाये रखनेका सिंह-स्वभाव जो स्वामी लघुराजजीमें था वह इन पत्रोंके अवतरणोंमें भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

किसीको कलंकरूप लगे ऐसी बातका विस्तार न कर संक्षेपमें बताने योग्य सामान्य बात इतनी है कि त्यागबल, धनबल और वाक्‌बल, इन तीनोंका सुयोग हो तबतक धर्मप्रवृत्ति भी व्यवस्थित दिखायी देती है। तदनुसार श्रीमद् राजचंद्रके अवसानसे लेकर श्री लघुराज स्वामीके नडियाद निवास तक बारह-तेरह वर्ष मुमुक्षुमण्डलकी बाह्य धर्मप्रवृत्ति सुसंगठित दशामें दिखायी दी। फिर जिस भाईके उदार आश्रयसे धनकी प्रवृत्ति होती थी उस प्रवाहकी दिशा बदल जानेसे अथवा इतने वर्षोंमें खर्च की गयी रकमका हिसाब उन्होंने अग्रणी मुमुक्षुके समक्ष रखा और उस रकमको किसी धनसम्पन्न भाईने चुका दिया, उस प्रसंगसे मुमुक्षुवर्गमें दो भेद पड़ गये। ये भेद मुनिमण्डलको धर्मशासनमें हानिकारक लगनेसे श्री लघुराज स्वामीने उद्‌गार प्रगट किये कि सयाना तो वो है जो दोनों वर्गोंको एक कर सके। ये वचन अग्रणी मुमुक्षुको खुचनेसे उन्होंने श्री लघुराज स्वामीको स्पष्ट बता दिया था कि आप चाहे जिस एक पक्षमें रहें, नहीं तो निराधार बन जायेंगे—कहनेका तात्पर्य यह कि आप हमारे पक्षमें रहें, अन्यथा हमें आपके विरुद्ध भी होना पड़ेगा। उसी दिन (सं.१९७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के मार्गशीर्ष मासके प्रारंभमें) उन्होंने नडियादमें भाड़ेका बंगला ले रखा था वहाँसे श्री लघुराज स्वामी गाँवमें पधारे और जिन मुमुक्षुओंका सहारा माना जाता था उनसे भी स्वतंत्र रहने लगे। उसके बाद उस पक्षने मुनि-निन्दाका काम हाथमें लिया। जहाँ भक्ति आदिके निमित्तसे मुमुक्षु इकट्ठे होते वहाँ, मुनिधर्म कैसा होना चाहिए, आजकल मुनि कैसी चर्यासे प्रवृत्ति कर रहे हैं, अब मुनि बिगड़ गये हैं, परमकृपालुदेवके मार्गकी बदनामी हो, निन्दा हो ऐसी प्रवृत्ति कर रहे हैं—इत्यादि अनेक प्रकारसे अनेक स्थानोंपर मुनियोंके प्रति लोगोंको आदरभाव कम हो, कुछ तिरस्कारवृत्ति उत्पन्न हो ऐसी चर्चाओंमें अपना महत्त्व माना जाने लगा। बोधि-समाधिके प्रेरक मुनियोंके सहायक बननेके बदले वे ही बोधि-समाधिके निधि समान मुनियोंके नियंता बननेमें अपना तन-मन-धन लगाने लगे। कृपालुदेवने मुनिश्री लघुराजजीको बताया था कि 'बनिये तुम्हारे गुरु बनने आयेंगे' उस चेतावनीरूप भविष्यवाणीको धर्मसुधारके काममें लगे मुमुक्षुओंने चरितार्थ की! चरोतरके प्रदेशमें जहाँ जैन या श्रीमद् राजचंद्रको माननेवाले मुमुक्षु रहते थे वैसे क्षेत्रोंमें उन मुनियोंके विहारकी सम्भावना नहीं रही थी। नडियादमें भी श्री लघुराजजीके पास कौन आता है, क्या बात होती है, कहाँ विहार करनेवाले हैं आदि बातें जाननेके लिये एक भाईको अपना बनाकर जानकारी प्राप्त करना और यथाशक्य हैरान कर मुनियोंको थका देना जिससे वे अपने कहेमें रहकर प्रवृत्ति करें ऐसा प्रयत्न वह पक्ष कर रहा था। लोकव्यवहारकी भाँति किसी-किसी दिन वे अग्रणी भी महाराजके पास खबर लेनेके लिए आते और अच्छा लगानेका दिखावा करते।

सं. १९७२ के कार्तिक कृष्ण पक्षमें श्री रत्नराज, नडियाद पहुँचनेका सूचित करके दवाई आदिकी थैली भी किसी मुमुक्षुके साथ भिजवा देते हैं। श्री रत्नराजके नडियाद पधारनेके बाद, काणीसा गाँवके बाहर जंगलमें कामनाथ महादेवका एकान्त स्थान जो दोनोंने पहले देखा हुआ था वहाँ स्थिर होकर अकेले रहनेका विचार दोनोंने निश्चित किया। वहाँके पुजारी बाबरभाईके दो पत्र श्री रत्नराजके पास वडोदरा निमंत्रणके रूपमें पहुँच चुके थे। श्री रत्नराज मुख्यरूपसे व्यवहारकुशल हैं ऐसा समझकर, वे जैसा करें वैसा करने देना और स्वयंको अनुकूल हो या न हो पर कठिनाई उठाकर भी अन्यकी प्रकृतिको निभा लेना श्री लघुराज स्वामीका स्वभाव था। अतः वे उनके साथ काणीसा कामनाथ महादेवके क्षेत्रमें पधारे। श्री रत्नराजका अभिप्राय पहलेसे ही ऐसा था कि एक अलग स्वतंत्र मकान हो तो ठीक, अतः वहाँके लोगोंकी सहमति और सहयोगसे एक कोठड़ी भी अलग श्री लघुराज स्वामी आदिके लिए बनवा दी। नारवाले रणछोड़भाई यद्यपि साधारण स्थितिके व्यक्ति थे फिर भी काणीसामें महात्माओंको किसी प्रकारकी असुविधा न हो ऐसा ध्यान रखकर खर्च भी उठाते थे, परंतु श्री लघुराज स्वामी व्यवहारकुशल और बहुत दयालु थे। वे जानते थे कि एक ही मुमुक्षुपर सारा बोझ पड़ रहा है, तथा श्री रत्नराजकी स्वतंत्र प्रकृति बदल नहीं सकती ऐसा लगनेसे स्वयं किसी दूर क्षेत्रमें अकेले चले जानेका मनमें निश्चय कर रखा था। चैत्र वदि ५ की भक्तिके पश्चात् श्री रत्नराज पूजाभाई, गांधीजी आदिसे मिलने अहमदाबादकी ओर गये और श्री लघुराज स्वामी नार पधारे। वहाँ श्री लक्ष्मीचंदजी मुनिसे मिले और श्री रणछोड़भाईको भी सूचित किया कि 'अब हम किसी जंगलमें चले जायेंगे और कायोत्सर्गपूर्वक देहत्याग कर देंगे, पर किसी पर बोझरूप नहीं बनना चाहते। हमारी आज्ञाके बिना कोई हमारे पास न आये।' श्री रणछोड़भाईने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह प्रसंग आँखमें आँसू भरकर बताया था। वहाँसे नडियाद होकर अहमदाबाद आये, धर्मशालामें ठहरे। श्री रत्नराज स्वामी अहमदाबादसे विहार कर पालनपुरकी ओर चले गये थे। अहमदाबादमें स्वयं पूजाभाई, गांधीजी आदिसे मिलकर काठियावाडकी ओर पधारे। सुणावके भाई काभई मुनदास उनके साथ थे। कुंकावावकी ओर जानेवाले थे। जूनागढ़में स्थिरता होनेके बाद नहिवत् पत्रव्यवहार विशेष परिचितोंके प्रति हुआ है। श्री रणछोड़भाईको भी थोड़े समय तक नहीं जानने दिया। सं.१९७२का चातुर्मास भी वहीं जूनागढ़में हुआ।

वहाँके वातावरणके बारेमें लिखते हैं, "...वनक्षेत्रमें राजेश्री स्थान, निवृत्तिपूर्ण योगियोंके ध्यान-रमण करनेका स्थान, सहज ही वृत्तिमें आनंद उत्पन्न हो, चित्तकी शान्तिका निमित्त कारण, एकान्त निवासका धाम, पानी भी अच्छा, यह सब यहाँ अनुकूल है। उपाधि भी कम है।"

"यह क्षेत्र त्यागी, वैरागी, योगी, ध्यानीको सहज अनुकूल निमित्तवाला है।"

"हे प्रभु, सहज ही हल्के फूल हो गये हैं, सद्गुरुके प्रतापसे कोई चूँ चाँ नहीं करता। उल्टे सामने भावपूर्वक आते हैं जी।...ऐसे निवृत्तिवाले स्थानमें कुछ विक्षेप या विकल्प हों तो टल जाते हैं।...एकान्त आनन्द-ज्ञानके प्रतापसे, गुरुशरणसे शान्ति रहती है।"

"पहले गाँवमें महामारी रोग दिखायी दिया था, पर अब ठीक है। यहाँ गाँवके बाहर 'प्रकाशपुरी'में तो कोई उपद्रव नहीं है, सब ठीक है। अतः उन्हें (श्री कल्याणजीभाईको, बगसरा) पत्रसे ना (वहाँ जानेकी) लिख दी है। अभी तो यहीं रहनेका विचार है। फिर हरिइच्छा, आगे जो हो सो ठीक।"

एक अन्य पत्रमें लिखते हैं, "मात्र अन्तर्वृत्तियाँ जिस प्रकार सहज, सद्गुरुशरणसे शांत हो वैसा पुरुषार्थ होता है जी। आनन्द आता है। व्यवहारसे जैसे योग-साधन हो, वह सहज-सहज करते हैं, उसके द्रष्टा रहनेसे शान्ति है जी। एक आत्माके अतिरिक्त सब मिथ्या है वहाँ विकल्प क्या?"

संवत्सरी क्षमापना संबंधी, सं.१९७२ में स्वामीजी श्री रत्नराजको एक पत्रमें लिखते हैं, "आपश्रीकी देह-शरीरप्रकृति अस्वस्थ और मूर्छा आनेके साथ वाचाबन्दके समाचार मिलनेसे अत्यंत खेद हुआ है जी। यह व्याधि प्रत्यक्ष देखी हुई थी...मनमें ऐसा होता है कि किसी जीवात्माको वह व्याधि-पीड़ा-दुःख न हो...यह पत्र पढ़कर सुखशांति-आराम होनेका प्रत्युत्तर देनेकी कृपा करेंगे जी।"

चातुर्मास पूर्ण होनेपर सं.१९७३ कार्तिक वदिमें श्री लघुराज स्वामी, राजकोट निवासी भाई रतिलाल मोतीचंदके साथ जूनागढसे बगसरा पधारे। उन्होंने अपने रूईके कारखानेमें उन्हें एक मास तक भक्तिभावसे रखा। भाई मणिभाई कल्याणजी, श्री लघुराज स्वामीका समागम कभी-कभार नडियाद, काणीसा और जूनागढ़में दर्शनके निमित्तसे कर चुके थे। महामारीके उपद्रवके समय भी उनका विचार स्वामीजीको बगसरा ले जानेका था। अतः अब रूईके कारखानेसे स्वामीजी भाई मणिभाईके यहाँ पधारे। फिर पूरे वर्ष वहीं रहना हुआ। भाई मणिभाईको व्यापारके कारण मुंबई रहना होता था, परंतु उनके पिताजी, माताजी आदि श्री लघुराज स्वामीकी सेवामें ही रहते थे। वे स्वयं भी तीन-चार बार दर्शनके लिए बगसरा आये थे। उस समयकी स्वामीजीकी दिनचर्याके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंधमें वे लिखते हैं, "नित्य शामको प्रभुश्रीजी उपदेश देते। प्रातः निवृत्त होकर जंगलमें जाते। दो-तीन घण्टे बाद वापस गाँवमें आते। चातुर्मासमें समय-समय-पर चरोतर आदिसे कोई-कोई मुमुक्षु दर्शन-समागमके लिए आते रहते।"

श्री रत्नराज द्वारा लिखित पत्रसे श्री लघुराज स्वामीकी वहाँकी शरीरस्थितिके संबंधमें जानकारी मिलती है, "महाप्रभुजीके शरीरमें दूनी-तिगुनी वेदना हो रही जानकर खेद हुआ है...खंभातसे पत्र है, उसमें उनकी दर्शनकी इच्छा है।"

सं.१९७३ के मार्गशीर्ष वदि ६ के पत्रमें श्री रत्नराजजी, स्वामीजीको लिखते हैं, "जिह्वा अभी बन्द है, प्रभु! वह आपश्रीके शुभाशीर्वादसे मूल स्थितिमें आनेकी आशा है जी...आप महाप्रभुजीकी करतलरूप छत्रछाया इस देहधारीको...शीतल विश्रान्तिस्थान है जी।'

परमकृपालु प्रभुश्री (लघुराज स्वामी) के प्रणके विषयमें रत्नराज लिखते हैं—

[१]"संसारीनुं सगपण छोडी भक्ति मारी भावे रे;
तेनो दास थईने दोडुं, जरी शरम नव आवे रे."

[२]"अमे सदा तमारा छईअे श्री स्वामीजी;
जेम तमे राखो तेम रहीअे."

... ...

[३]सत्संग, सद्गुरु छो तमे श्री स्वामीजी.

फाल्गुन सुदी १२के पत्रमें श्री लघुराज स्वामी लिखते हैं—

"अन्य पुरुषकी दृष्टिमें जग व्यवहार लखाय।
वृंदावन जब जग नहीं कौन व्यवहार बताय॥"

"दूसरे, सिद्धपुरसे आपकी वाचा खुल जानेके बधाई-समाचार मिले हैं जिससे परम उल्लास हुआ है जी।...जैसे परमकृपालुका मार्ग रोशन हो वैसे करिये जी।...मैं अलगाव नहीं समझूँगा। भले ही पू. पोपटलालभाई आपश्रीसे मिलें, मैं प्रसन्न हूँ। प्रभु, जयविजयजी तथा मोहनलालजी सभी एकता-परामर्शसे रहें इसमें मुझे आनंद है।...मुझे अब निवृत्ति, जैसे भी हो मुमुक्षु भाई-बहनोंकी ओरसे परिचय कम हो ऐसा विचार है जी...अब तो पत्रव्यवहार भी जैसे बने वैसे कम करना है।" इसके बाद मात्र एक वर्ष पूरा होनेपर एक पत्रमें क्षमापनापूर्वक लिखते हैं, "गठियाके कारण उठते-बैठते लड़खड़ा जाता हूँ जी...अविषमभावसे देखते रहेंगे। अन्य किसी प्रकारकी असुविधा नहीं है...यहाँसे कोई पत्र लिखना नहीं बनता। चित्तवृत्ति संकुचित होनेसे वैसा व्यवहार हो गया है जी। पत्र बहुत...अनेक स्थानोंसे आते हैं, उन्हें लिखना नहीं होता। उन सबकी प्रवृत्ति कैसी चलती है इसका भी पता नहीं है, तथा मुमुक्षुभाई जो विचार करते हों उसकी ओर लक्ष्य नहीं है। हे प्रभु, शान्ति है। 'तेरा तेरे पास है, वहाँ दूजेका क्या काम?"

★★★

१. **भावार्थ**—संसारीकी सगाई छोड़ दूँ और जो भगवानके भक्त हैं उनकी सेवामें रत रहूँ, उसमें मुझे किंचित् भी शर्म नहीं आती। २. **भावार्थ**—हे स्वामीजी! हम तो सदा आपके दास हैं। जैसे आप रखेंगे वैसे रहेंगे। ३. **भावार्थ**—हे स्वामीजी! आप ही सत्संग और सद्गुरु हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४

सं.१९७४ कार्तिक सुदी १५ के बाद श्री लघुराज स्वामी श्री बगसरासे चारणिया गाँव पधारे। वहाँ एक माह रहकर राजकोट पधारे, श्रीमद्की देहोत्सर्ग भूमि है वहाँ भक्तिभाव किया। फिर श्री रत्नराजस्वामीको उमरदशीमें मिलकर चरोतरकी ओर पधारे। चरोतरके भाइयोंको लम्बे समय तक विरह रहा, अतः नार, काविठा आदिके मुमुक्षु चरोतरमें पधारनेकी विनती चातुर्मासके पूर्वसे ही सतत आग्रहपूर्वक कर रहे थे, इसलिए नार पधारनेके विचारसे अगास तक आये, वहाँ तो काविठाके मुमुक्षु अगास सामने आये थे वे उन्हें काविठा ले गये। भाई कल्याणजीभाई आदि मुमुक्षु काविठा तक आये थे। पाँच-सात दिन काविठा रुककर आपश्री नार पधारे। अन्य गाँवोंसे मुमुक्षुगण दर्शन-समागमके लिए नार आते थे। रात बीतनेपर जैसे प्रभात होता है वैसे ही श्री लघुराज स्वामीके संबंधमें भी हुआ। चार वर्ष पहले चरोतर छोड़कर दूर निकल जानेके संयोग खड़े हुए थे, उसके स्थानपर अब चरोतरमें मानो भक्तिका युग आनेवाला हो वैसे अनेक नये मुमुक्षु एकत्रित होने लगे। भाई रणछोड़भाईको भी, उनके व्यापारमें भागीदारोंकी सहमतिसे भक्तिमें समय बितानेका अच्छा अवसर मिला। इससे वे अधिकांश समय लघुराज स्वामीके साथ ही रहते। नये मुमुक्षुमण्डलको भक्तिमार्गमें जोड़नेके लिए उन्होंने अगाध प्रयत्न प्रारंभ किया। सत्पुरुषके योगबलके विस्तारमें निमित्तभूत बुद्धिबल, वचनबल, कायबल, धनबल आदिकी आवश्यकता होती है। वैसी वैसी अनुकूलता अब धीरे-धीरे स्वाभाविकरूपसे प्राप्त होने लगी थी।

एक भाईके अत्यंत आग्रहसे श्री लघुराज स्वामी नारसे सीमरडा पधारे। वहाँ थोड़े दिन रहकर काविठा दस-पंद्रह दिन रुके। वहाँ रात-दिन भक्ति होती थी। फिर वर्षाऋतु आरंभ होनेपर वापस नार पधारे और वहाँ श्रीमद् राजचंद्र मंदिरमें चातुर्मास किया। नारके बहुतसे मुमुक्षु उत्साही थे, तथा मुंबईसे भाई मणिभाई भी अनेक बार आते थे और रहते थे। भाई रणछोड़भाई, भाई भाईलालभाई वल्लभभाई, भाई मणिभाई आदिका ऐसा विचार हुआ कि प्रभुश्री (लघुराज स्वामी)की वृद्धावस्था तथा व्याधिग्रस्त स्थिति होनेसे एक पर्णकुटी जैसे स्थायी मकानकी आवश्यकता है। इसके लिए साधु-समाधि खाता खोलकर उसमें जिसे रकम देनी हो वह देवे ऐसा निर्णय किया गया। उसी चातुर्मासमें नारमें पाँच हजार रुपयेकी रकम इकट्ठी हो गयी तथा किसी अनुकूल स्थानपर मकान बनवानेका भी भाई रणछोड़भाईके साथ निश्चित हो गया।

धर्मका उद्योत हो ऐसी अनुकूलता बढ़नेके साथ ही प्रभुश्रीजीका शरीर व्याधियोंसे घिरने लगा। फिर भी वे उसकी चिंता किये बिना यथाशक्ति मुमुक्षुओंमें धर्मप्रेमकी वृद्धि कैसे हो उसके लिए विशेष श्रम करते थे। नारमें चार बार चूहेने काटा, जिसका विष रक्तमें फैल गया और वे विषाक्त कीटाणु अन्त तक—सं.१९९२में अहमदाबादके मुमुक्षुभाई डॉ. रतिलाल और वडोदराके मुमुक्षु डॉ. प्राणलालने रक्तकी अनेक बार जाँच की तब भी—रक्तमें पाये गये। अनेक उपचार करनेपर भी ज्वरने शरीरमें घर ही कर लिया।

चातुर्मास पूर्ण होनेपर पूर्णिमाकी भक्ति नारमें करके वहाँसे प्रभुश्रीजी सं.१९७५में तारापुर पधारे। वहाँ रूईके कारखानेमें एक खण्डहर जैसी कोठरी मिल गयी वहाँ ठहरे। नारवाले भाई शनाभाई सेवामें रहते। वहाँका पानी अच्छा नहीं होनेसे नारके मुमुक्षुभाई सदैव पानी लेकर समागम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेवाके लिए तारापुर आते। वहाँ रोज 'श्रीमद् राजचंद्र' वचनामृतका वाचन होता। भाई मणिभाई भी सहकुटुंब मास-डेढ़ मास समागमके लिए तारापुरमें रहे। आणंद स्टेशनपर तार-मास्टर भाई मगनभाई लल्लुभाई थे वे भी प्रतिदिन गाड़ीमें आते। फाल्गुन सुदी पूर्णिमाको आसपासके गाँवोंसे तथा वटामणकी ओरसे तीनसौ भाई एकत्रित हुए थे और बहुत उल्लाससे भक्ति हुई थी।

जलवायुके कारणसे अन्य क्षेत्रमें जानेका विचार था, इसी बीच भाई मोतीभाई भगत तथा बांधणीवाले भाई भगवानजीभाईकी आग्रहभरी विनती सीमरडा गाँवमें पधारनेकी होनेसे श्री लघुराज स्वामी सीमरडा पधारे और वहाँ अनाडी उपचार हो जानेसे उनकी शरीरस्थिति भयंकर हो गयी थी ऐसा श्री रणछोड़भाईके श्री रत्नराजको लिखे गये पत्रसे विदित होता है—"चूहेके काटनेका उपचार अंकोल वृक्षकी जड़को बताया गया। उसका तारापुरमें छह दिन प्रयोग किया...यहाँ सीमरडा आकर भी यह औषधि शुरू की...चवन्नीभर नित्य लेते...यहाँ प्रतिदिन एक तोला शुरू किया। पाँच दिन तो प्रतिदिन दस्त उल्टी हुई, वह सहन हो सके ऐसा दिखायी दिया। छट्ठे दिन, पुराने वृक्षकी जड़ होनेसे अत्यधिक विषैली थी, जिससे दस्त उल्टी हुई किन्तु पेटमें एकदम ठण्डक होनेसे वायु तीव्र हो गयी और सारी गर्मी रक्तमें आ जानेसे आग-आग हो गयी तथा तीव्र वेदनाके कारण ज्वर जो कम था वह तेज हो गया। देह छूट जायेगी ऐसी वेदना होने लगी। हम सब घबरा गये। छोटा गाँव, कोई दवा, वैद्य या कोई सलाहकार चतुर व्यक्ति भी नहीं। इससे बहुत चिंता हुई, परंतु हरिइच्छासे...परमात्मा परमकृपालु प्रभुश्रीने ही कहा कि मुझे घी खिलाओ। हमने डरते-डरते घी खिलाया, क्योंकि ज्वर था। औषधिकी गर्मी कुछ शान्त हुई है, ऐसा लगा तो फिर थोड़ा घी पिलाया, परंतु वह दिन तो भयंकर स्थितिमें बीता। दूसरे दिन गलेमें, पीठमें तथा मूत्रमें बहुत ही तीव्र गर्मी होनेसे अत्यंत वेदना हुई, पर सहज आराम दिखायी दिया...जड़ पिलाना बंद किया। मेरा आना और परमात्मा परमकृपालु प्रभुश्रीका भी उस ओर पधारना स्थगित हो गया है..."

इसके प्रत्युत्तरमें श्री रत्नराज भाई रणछोड़भाई आदिको संतसेवा संबंधी सूचना निम्न पत्रमें लिखते हैं—"वे तो निःस्पृह पुरुष हैं इसलिये उन्हें देहका भान नहीं है। वे तो मात्र उदयाधीन चेष्टाओंकी क्रीडा देखनेमें ही रमण करते हैं, परंतु ऐसे अवसरपर समीपवर्ती शिष्योंका धर्म है कि उनके शरीरधर्मको सँभालें। इसीलिए तो श्री सत् सनातन मार्गमें गुरु-शिष्यका नियोग अवस्थित है, वह योग्य ही है...। आप जो साक्षात् प्रत्यक्ष संजीवन मूर्तिकी सेवाबुद्धिसे सेवा कर रहे हैं वह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय और अनुकरणीय है जी...

[1]जे सद्गुरु-स्वरूपना रागी, ते कहिये खरा वैरागी;
जे सद्गुरु-स्वरूपना भोगी, ते कहिये साचा योगी;
जे सद्गुरु-चरण-अनुरागी, ते कहिये महद् बडभागी;
जे सद्गुरु-चरणथी अळगा, ते थड छोडी डाळे वळग्या."

---

१ **अर्थ**—जो सद्गुरुस्वरूपके रागी हैं वे ही सच्चे वैरागी कहे जाते हैं। जो सद्गुरुस्वरूपके भोगी—आत्मानंदके भोक्ता है वे ही सच्चे योगी हैं। जिन्हें सद्गुरुके चरणसे—आज्ञासे अनुराग है वे ही महद् भाग्यशाली गिने जाते हैं और जो सद्गुरुके चरणसे दूर हैं—विमुख हैं, वे मूलको छोड़कर शाखाको पकड़ने जैसा करते हैं, अर्थात् उनका सर्व प्रयत्न व्यर्थ है। मूलं नास्ति कुतो शाखा?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काविठामें पूरे गाँवका आग्रह होनेसे वे सीमरडासे काविठा पधारे। परमकृपालु श्रीमद् राजचंद्र प्रभुके देहोत्सर्गकी तिथिके निमित्त सं.१९७५ चैत्र वदी ५ का महोत्सव काविठामें हुआ था उसका वर्णन श्री रणछोड़भाईने नारसे श्री रत्नराजको चैत्र वदी ७ को लिखा है, "चैत्र वदी ५को बड़ा मण्डप बाँधा गया, जिसके अंदर मंदिरके समान चौमुखी माँडवी बनायी, उसमें परमकृपालु-देवश्रीजीकी स्थापना कर भक्ति की गयी। नार, बोरसद, सुणाव, भादरण आदि स्थानोंसे मुमुक्षु भाई-बहन दो सौ लगभग पधारे थे। और, मुंबईसे श्री दामजीभाई तथा पू.मणिलालभाई तथा अहमदाबादसे पवित्र पू.भाईश्री पूजाभाई एवं पू.कल्याणजीभाई आदि पधारे थे। इसी प्रकार आसपासके गाँवोंके तथा काविठा गाँवके भाई-बहन मिलकर लगभग दो हजार लोग इकट्ठे हुए थे और बहुत ही उत्कृष्ट भक्ति हुई थी, जिसका चित्रण हे प्रभु! मैं क्या कर सकता हूँ?"

इसका प्रत्युत्तर श्री रत्नराजने खूब ही प्रेरक और मार्मिक दिया है—

[१]"भक्तिभाव भाद्रव नदी, सबहि रही सीराय।
सरिता सोई जानिये, जेठ नीर ठहराय॥"

प्रभुश्रीका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन बिगड़ रहा था। अतः ग्रीष्मऋतुमें गर्मी न लगे और निवृत्ति मिले इस हेतुसे खेतमें एकान्त मकानमें रहनेकी व्यवस्था की गयी। आसपासमें ज्वार आदिकी फसलके कारण ठण्डक रहती, जिससे गर्मीमें नर्मदाके किनारे जानेकी आवश्यकता नहीं थी। पानी अनुकूल आ रहा है ऐसा श्री रणछोड़भाईने श्री रत्नराजको पहले पत्रमें लिखा था। दूसरे पत्रमें लिखते हैं, "दो व्यक्ति उठाकर खड़ा करें तब खड़े हो सकते हैं। फिर जठराग्नि बिलकुल मंद हो जानेसे भोजन पचता नहीं है। ज्वर आता रहता है। शरीरप्रकृति दिनोंदिन शिथिल होती जा रही है।"

भाद्रपद सुदी ६ के पत्रमें लिखते हैं, "यहाँ पर्युषण पर्वपर चारसौ मुमुक्षुभाई-बहन मुंबई, सुरत, बगसरा, सनावद, मियांगाम, डभोई, मंडाला, नार, काविठा, संदेशर, सीमरडा आदि गाँवोंसे आये। सबने मिलकर आठ दिनतक परमकृपालु स्वामीश्रीजीकी छत्रछायामें भक्ति और आनंद-उल्लासपूर्ण भावसे एवं परमप्रेमसे पर्व मनाया है।...इस बार परमात्मा परमोपकारी स्वामीश्रीजीकी प्रकृति बहुत ही अस्वस्थ थी अतः बिलकुल बोले बिना पधारते थे। परंतु हे प्रभु! उनकी छाया ही मोक्ष है तो फिर उपदेश-वचनामृत न हो तो भी कितना उल्लास आया होगा..."

पर्युषणके संबंधमें अन्य पत्रमें लिखा है, "आठ दिन तो श्री श्वेताम्बर पर्युषण पर्व श्री सीमरडा गाँवमें अत्यंत भक्तिभावसे, सुंदर रीतिसे, कभी नहीं मनाया गया वैसा, श्री परमकृपालु सद्गुरु परमात्मा प्रभुश्रीजीके परम उल्लाससे किसी अपूर्व प्रकारसे, जो वाणीमें नहीं आ सके वैसे, मनाया गया है जी। परमात्मा प्रभुश्रीजीने लम्बे समयसे जो गुप्त रीतिसे-जड़भरतकी भाँति संग्रहीत माधवके परम परम परम उल्लासको प्रगट किया, उससे अनेक जीवोंको सत्पुरुषके मार्गकी सन्मुखदृष्टिमें दृढ़त्व आनेसे परम आनंद प्राप्त हुआ है जी।...अनेक जीवोंको भक्तिके समय मूर्छा आ गयी थी और अनेक जीवोंको उसकी खुमारी अभी तक है।"

---

१. भक्तिभाव भादों महीनेकी नदीके समान है जो सब जगह बह रही है। परंतु सच्ची सरिता उसे ही कहेंगे जो जेठ महीनेमें भी पानीका संग्रह रखें अर्थात् ग्रीष्म ऋतुमें भी पानी सूख न जाये। अर्थात् सत्पुरुषकी विद्यमानतामें तो भक्तिभाव होता ही है, उनके वियोगमें भक्तिभाव टिकना ही सच्चा भक्तिभाव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्विन वदी १ आत्मसिद्धि-दिन और प्रभुश्रीजीके जन्मदिनपर भी उस वर्ष पर्युषण पर्वकी ही भाँति उल्लासपूर्वक बाहर गाँवसे आये लगभग चारसौ मुमुक्षुओंने भाग लिया, भक्ति महोत्सव चतुर्दशीसे दूज तक चार दिन चला।

★★★

१५

परमकृपालु श्रीमद् राजचंद्र-जयंतीका महोत्सव सं.१९७६ कार्तिक सुदी पूर्णिमासे आठ दिन तक संदेसर गाँवमें मनानेका निश्चित हुआ। उस अवसरपर श्री लघुराज स्वामी भी चातुर्मास पूरा कर सीमरडासे संदेसर पधारे थे। जिस परम उल्लासभावसे उनकी उपस्थितिमें भक्ति हुई थी उसका वर्णन भाईश्री रणछोड़भाईके नामसे श्री रत्नराजको पत्रमें लिखा है, वह निम्न प्रकार है–

"...विशाल मण्डप बनाया गया था, जिसमें लगभग चार हजार लोग बैठ सकें ऐसी व्यवस्था थी। बीचमें चौक बनाकर चारों ओर प्रदक्षिणाके लिए खुला भाग रखा गया था। उसके चारों ओर आनेवाले मनुष्योंके बैठनेका स्थान था। पटेल जीजीभाईके खेतके बीच जो मंडपकी रचना की गयी थी उसे देखकर अनेक जीव आश्चर्यचकित होते थे। काँग्रेसके और वैसे ही प्रकारके मण्डप अन्य स्थानोंपर बने होंगे उन्हें जिन्होंने देखा था, वे भी इस मण्डपको देखकर चकित होते थे और कहते थे कि लाख रुपये खर्च करनेपर भी ऐसा मण्डप बनना संभव नहीं। ऐसा सरस मण्डप सत्पुरुषकी भक्ति-आत्मकल्याणके लिए, अपने आत्माके अंतरकी लगनसे भावपूर्वक काम करनेपर तैयार हुआ है जो हजारों लोगोंसे नित्य काम करवानेपर भी नहीं बन सकता जैसा कि चित्रकारका रंगभवन। लगभग पचास मुमुक्षु भाइयोंने पहलेसे आकर रातदिन अखण्ड परिश्रम कर और पू. छोटाभाई आदिने भक्तिभावसे परिश्रम कर तैयार किया था...रचना ऐसी हुई थी कि पूर्व कालमें देवता भगवानके समवसरणकी रचना करते थे ऐसा शास्त्रसे जाना था किन्तु वैसी रचना प्रत्यक्ष देखनेका अवसर सहज ही परमकृपालु स्वामीश्रीजीके योगबलसे नैसर्गिकरूपमें प्राप्त हुआ था। आत्मा, आत्मा और आत्मा ही झलक रहा था। ज्ञानीपुरुषकी दृष्टिसे देखा गया है जी।

अधिक क्या कहें, प्रभु? उत्सवके समूहभोजमें लगभग एक हजार लोग होंगे। (सभी बाहर गाँवके ही थे)। मुमुक्षुमण्डलके लगभग पाँच-पाँचसौ व्यक्ति आठ दिन तक निरंतर भक्तिमें रहे थे। उसमें मुख्यतः मुंबई, डभोई, सूरत, मंडाला, मांगरोल, वडाली, खंभात, बोरसद, नडियाद, सोजित्रा, वसो, भादरण, ओड, सुणाव, बांधणी, वटामण, काविठा, गोधावी, अहमदाबाद, नरोडा, सीमरडा, नार आदि तथा आसपासके अनेक गाँवोंके भाई-बहनोंने भक्तिका लाभ लिया है। भक्तिके समय करीब पाँच हजार लोग इकट्ठे होते थे और आसपासके गाँवोंकी भक्तमण्डलियाँ तथा संदेशरमेंसे महाराजश्री प्रीतमदासकी मण्डली रातमें आती थी। प्रतिदिन पंचकल्याणक, नवपदकी तथा चौसठ प्रकारी पूजामेंसे तथा श्री आत्मसिद्धिकी पूजा पढ़ाई जाती थी। और, भक्तिभावके पद भी बोले जाते थे जिससे परम आनन्द होता था। रातमें महिलाएँ पूरे उल्लाससे सिरपर दीपकवाली मटकियाँ लेकर मण्डपमें गरबे गातीं। मण्डपमें गेसकी किट्सनलाइट थी जिससे पूरे प्रकाशमें बहुत ही–परम उल्लाससे भक्ति महोत्सव मनाया गया था।...

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे, तीर्थक्षेत्र संदेसरके पूज्य भाईश्री जीजीभाई कुबेरदासने, परम उल्लास आनेसे बारह बीघाका एक खेत मात्र स्वामीश्रीजीके उपयोगके लिए आश्रम बनवाने हेतु अनायास ही, किसीकी प्रेरणाके बिना नैसर्गिक भावसे श्री 'स्वामीजी श्री लघुराज आश्रम'के नामसे अर्पण किया। उसी समय उनके निकट संबंधी श्रीमंत गृहस्थ भाइयोंने हजार-हजारकी रकम लिखायी तथा मुंबई, नार, काविठा, मंडाला आदि स्थानोंके भाइयोंने मिलकर लगभग सत्रह हजार रुपयेका चंदा उसी समय आधे घण्टेमें स्वाभाविकरूपसे लिखा दिया था। तत्संबंधी कार्य अभी चालू है।

यह जो उपरोक्त वृत्तांत आपको लिखा इस संबंधमें परमोपकारी स्वामीश्रीजीकी कोई दृष्टि नहीं है, किन्तु मुंबई तथा संदेसरवालोंकी दृष्टिमें विचार होनेसे उनकी इच्छापूर्वक भक्तिभावसे काम हुआ है वह आपश्रीको विदित किया है जी..."

संदेसरमें हुई इस भक्तिका प्रभाव मुमुक्षुओंपर कैसा हुआ उसका वर्णन शब्दों द्वारा होना संभव नहीं है, किन्तु बगसराके एक मुमुक्षुभाई कल्याणजी कुंवरजी उस भक्तिमें उपस्थित थे, उन्हें इससे कैसा लाभ हुआ उसका वर्णन—अमाप उपकारकी स्मृति और दीक्षाके लिए विनतीके रूपमें विस्तारपूर्वक लिखा था उसमेंसे कुछ ही भाग यहाँ दिया है। एक मुमुक्षुके इतिहासमेंसे उन सत्पुरुष श्री लघुराज स्वामीके प्रति अनेक मुमुक्षुओंके हृदयमें तन्मय शरणभाव उस समय कैसा होगा वह स्पष्ट प्रदर्शित होता है—

"यह हुंडावसर्पिणी काल दुषम कहा गया है जो पूर्ण दुःखसे भरपूर कहा जाता है। ऐसे कालमें चौथे कालके समान सत्पुरुषका योग आदि अनुकूलता महान पुण्यानुबंधी पुण्यसे प्राप्त होती है। ऐसे कालमें इस मनुष्य देहमें परमकृपालुदेवके मार्गकी प्राप्ति और आप कृपालु, परमकृपालु, दयालु प्रभुश्रीजीका सत्समागम, इसपर विचार करनेसे अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है। आप प्रभु तो कृपाके सागर हैं। आपश्रीकी कृपासे जिस प्रकार आत्मस्वभाव समझमें आया है, समझमें आ रहा है और समझमें आयेगा, उस आत्मस्वभावका वर्णन करनेकी हे प्रभु, इस बालकमें अभी शक्ति नहीं है। हे प्रभु, उसके चित्रकार तो आप स्वयं ही हैं।...समस्त दुःखोंसे मुक्त करने और आत्मा अर्पण करनेमें हे प्रभु, आप स्वयं ही समर्थ हैं। मुझे आपश्रीके साथके संयोगमें जो जो अनुभव प्राप्त हुआ है उस अनुभवके अनुसार आपश्रीमें जो आत्मशक्ति प्रकाशित हुई दिखायी दी है, वैसी अन्य किसी स्थानपर मेरे देखनेमें या जाननेमें नहीं आयी। और इसीलिए मैं अपनेको महा भाग्यशाली मानता हूँ...अनन्त सुखका धाम बने ऐसी शक्ति हे प्रभुश्री! आपमें ही दिखायी देती है, अतः इस दीन बालककी वैसा होनेकी आप कृपालुश्रीके पास शुद्ध अन्तःकरणसे और शुद्ध भावसे याचना है। जिस प्रकारकी याचना है उसी प्रकारका दान देनेमें आपश्री समर्थ हैं। अतः वह...इस बालकको प्रदान करनेके लिए हे प्रभु! प्रसन्न हों, प्रसन्न हों, यही याचना...मेरे सद्गुरुदेव श्री शुभ मुनि महाराजके स्वमुखसे, आपश्रीसे अत्यंत लाभका कारण होगा ऐसा जाना था...

यह बालक अपनी समझके अनुसार ऐसा मानता था कि मैं सन्मुख प्रवृत्ति कर रहा हूँ, परंतु वह सब समझका फेर था, और मेरी विमुख प्रवृत्तिको सन्मुख बनानेके लिए आपश्रीने अगाध परिश्रम उठाया है जी। कभी नरमाईसे, कभी धीरजसे, कभी सरलतासे, कभी शांतिसे, कभी जोरसे—यों जिस जिस समय आपश्रीको जैसा जैसा योग्य लगा, उस-उस अवसर पर उस प्रकारका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीर्यबल स्फुरित कर इस बालकको ठिकाने लानेकी अनुकंपा करके...इस बालकका श्रेय करनेमें आपने कुछ कसर नहीं रखी..."

उनके जितने अथवा उससे अधिक या कम समागममें आये मुमुक्षुओंके अन्तरंगकी उन्नति कुछ इसी प्रकारसे उस पुरुषके प्रभावसे होती रहती, इसकी साक्षी समागममें आये मुमुक्षुओंके अन्तःकरण दे रहे हैं। मात्र यह एक दृष्टांतके रूपमें उन्होंने सहज निमित्तवशात् जो भावना सत्पुरुषके समक्ष प्रगट की है वह वाचकको सत्पुरुषके प्रभावका कछ अंश समझानेके लिए लिखी है। वैसे "गुप्त चमत्कार सृष्टिके लक्ष्यमें नहीं है", "सत्पुरुषोंका योगबल जगतका कल्याण करे" ऐसे वाक्य श्रीमद् राजचंद्रने लिखे हैं वे श्रीमद् लघुराज स्वामीके समागममें आनेवाले अधिकांश मुमुक्षुओंको सहज हृदयंगत होते थे। प्रबल पुण्यके स्वाभाविक उदयसे अनेक जीवोंको अनेक प्रकारसे उनका माहात्म्य भास्यमान होनेके निमित्त बन आते थे।

★★★

*१६

श्रीमद् लघुराज स्वामीका परमार्थ पुण्योदय अब कुछ अधिक प्रकाशित होने लगा। परमकृपालुदेवने उनसे कहा था कि "मुनि! दुषमकाल है, अतः जड़भरत जैसे होकर विचरण करना। ऋद्धि-सिद्धि प्रगट होगी उसे लांघ जाना। इस कालके जीव पके चीभडे (एक फल) जैसे हैं, कठोरता सहन कर सकें वैसे नहीं हैं। अतः लघुता धारण कर कल्याणमूर्ति बनेंगे तो अनेक जीवोंका कल्याण आपके द्वारा होगा।"

इस शिक्षाको अंतरंगमें एक लक्ष्यपूर्वक रखते हुए, अंतरंगमें प्रगट ज्ञानदशा होनेपर भी वह दशा किसीको ज्ञात न हो इस प्रकार जड़भरत बनकर आज तक वे विचरते थे। परंतु अब नार, तारापुर, सीमरडा, काविठा आदि अनेक स्थानोंपर अपूर्व भक्तिरसका प्रवाह फैलाते, विहार करते-करते ज्ञान-वैराग्यादि अद्भुत आत्मदशासे अनेकानेक भव्यजनोंको सद्धर्मका रंग चढ़ाते हुए वे, जो प्रीतमदासका कक्काका पद हृदयमें धारण करनेके लिए उन्हें श्रीमद्जीने लगभग पच्चीस वर्ष पहले कहा था, उन्हीं प्रीतमदासकी निवासभूमि संदेशरके निकट अगास स्टेशनके पास मानो किसी दैवी संकेतसे श्रीमद्जीके एक परम ज्ञानभक्तके रूपमें स्वयं अल्पकालमें ही पूरे वेगसे प्रसिद्ध हुए।

"महात्माकी देह दो कारणोंसे विद्यमान रहती है—प्रारब्धकर्म भोगनेके लिए और जीवोंके कल्याणके लिए; तथापि वे इन दोनोंमें उदासीनतासे उदयानुसार प्रवृत्ति करते हैं।" तदनुसार अब मुमुक्षुओंकी परमार्थपिपासा प्रगट हुई देखकर उन्हें वे अद्भुत ज्ञान और भक्तिरसका पान कराने लगे, और सदैव स्वपरहितमें तत्पर रहते हुए परमकृपालुदेव-प्रतिबोधित श्री सनातन जैन वीतरागमार्गकी प्रभावनामें प्रकटरूपसे प्रवृत्ति करने लगे। अपूर्व आत्मानन्दका आस्वादन करते, आत्मज्ञानदशासे अवधूतके समान विचरण करते, वैराग्य और भक्तिकी साक्षात् मूर्तिके समान भव्यजनोंके उद्धारके

---

* पंद्रह खण्ड तकका लेख पू. श्री ब्रह्मचारीजी द्वारा लिखित परमोपकारी प.पू. प्रभुश्रीजीके जीवनचरित्रका यत्किंचित् संक्षिप्त आलेखन है। उनका अधूरा रहा यह कार्य इस सोलहवें खण्डसे श्री रावजीभाई देसाईने आदरपूर्वक आरंभ कर पूर्ण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए निरंतर निष्काम करुणा बरसाते इन परोपकारशील संतशिरोमणि महात्माके दर्शन, समागम, बोधके इच्छुक अनेकानेक भव्यजन उनके सामीप्यको प्राप्त कर आत्मश्रेय साधनेकी उत्कण्ठावाले दिखायी देने लगे।

इस संसारके दुःखदावानलमें निरंतर जलते जीवोंको एक शांत रसमय आत्म-उपदेशरूप अमृतवृष्टिसे शांत शीतल कर दे ऐसे इन महात्माकी अद्भुत ज्ञानदशा और प्रतिभाशाली व्यक्तिप्रभावसे आकर्षित होकर उनके सान्निध्यमें आत्मश्रेय साधनेमें तत्पर अनेक मुमुक्षुओंकी यह इच्छा थी कि अब ये महात्मा किसी एक स्थानपर स्थिर रहें और उनके लिये आश्रम जैसा कोई सत्संगधाम बने तो हजारों धर्मेच्छुक जीवोंको इच्छित श्रेयकी प्राप्ति होगी।

सभीकी ऐसी उत्कट इच्छामेंसे अगास स्टेशनके पास इस आश्रमका उद्भव हुआ। परिषह-उपसर्गके कालमें श्रीमद्का बोध समश्रेणीसे हृदयंगम करनेके लिए मुख्यतः जंगलोंमें विहार करनेके कारण उन्हें वनवासी मुनिका बिरुद मिला हुआ था। अब वे आश्रमके अधिष्ठाताके रूपमें सामने आये और चरोतरमें जंगल जैसा असंग आध्यात्मिक वातावरण निर्माण कर उसमें प्राण पूरे। दूध पर आनेवाली मलाईके समान चरोतरका यह प्राणवान आश्रम उनके उत्तर जीवनमें मधुर मिष्ट आम्रफल जैसा बना।

श्री लघुराज स्वामीकी छत्रछायामें इस आश्रमकी उत्पत्ति हुई जिससे भक्तजनोंने प्रारंभमें आश्रमका नाम श्री लघुराज आश्रम रखा। किन्तु अपना नाम, स्थापना या चित्रपट भी नहीं रखनेकी इच्छावाले केवल निःस्पृह और परमगुरुभक्त महर्षि श्री लघुराज स्वामीने सूचित किया कि "अपना सहज परमात्मस्वरूप भजते हुए श्रीमद् राजचंद्र द्वारा परमार्थसे जिस किसी मुमुक्षुका या जनसमुदायका कल्याण हुआ है उसका ऋण किसी प्रकार नहीं चुकाया जा सकता। उस कल्याणका स्वरूप सहजमें लक्ष्यमें भी नहीं आ सकता। गुरुगमसे उस क्षेत्रमें प्रवेश करनेसे समय आनेपर समझमें आता है, ऐसे कल्याणका यत्किंचित् स्मरण प्रत्युपकार दिखानेके लिए श्रीमद्जीके इस स्थूल कीर्तिस्तम्भका नाम 'श्री सनातन जैन धर्म श्रीमद् राजचंद्र आश्रम' रखा जाय।" इसलिये उनकी इच्छानुसार इस आश्रमका नाम रखा गया। यह आश्रम धीरे-धीरे बढ़ते हुए एक छोटे गोकुल गाँव जैसा बन गया।

छोटे-बड़े, रंक-राजा, अच्छे-बुरे, स्त्री-पुरुष, वृद्ध-युवान इत्यादि पर्यायदृष्टिसे न देखकर श्री लघुराज स्वामी एक आत्मदृष्टिसे सबमें आत्मा, प्रभु देखते, एवं सभीको 'प्रभु' कहकर ही बुलाते। और उनमें आत्म-ऐश्वर्यरूप प्रभुता अद्भुतरूपसे प्रकाशमान हो रही थी इसलिये सब कोई उन्हें 'प्रभुश्री' कहकर सम्बोधन करने लगे।

★★★

१७

सं.१९७६का चातुर्मास प्रभुश्रीने सनावद श्री सोमचंद कल्याणजीके यहाँ किया। उसके बाद सं.१९७७, १९७८ और १९७९के तीनों चातुर्मास आश्रममें किये। सं.१९८० में यात्राके लिए समेतशिखर गये। वहाँसे वापस लौटकर वह चातुर्मास पूनामें सेठ श्री माणेकजी वर्धमानके यहाँ किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्रीके परमप्रेमी, तन-मन-धनसे सर्वप्रकारसे सेवा करनेवाले और आश्रमकी स्थापनामें मुख्य कार्यकर्ता तथा आश्रमके उत्कर्ष एवं व्यवस्थामें अपनी सर्व शक्तिका भोग देनेवाले, परमकृपालुदेवके उपासक तथा अनेक मुमुक्षुओंको प्रभुश्रीका माहात्म्य बताकर उन्हें प्रभुश्रीके प्रति मोड़नेवाले नारके श्री रणछोड़भाईका पुरुषार्थ प्रबल था। संतकृपासे उनका क्षयोपशम, समझानेकी शक्ति तथा प्रभाव ऐसे अद्भुत थे कि सब कोई उनके वचनोंसे आकर्षित होकर मुग्ध हो प्रभुश्रीके चरणोंमें ढल पड़ते थे। परंतु इसका परिणाम यह आया कि परमार्थमार्गके अनजान भोलेभाले जीव अपने-अपने कुल-सम्प्रदायको छोड़कर यह मार्ग सच्चा लगनेसे उसकी ओर आकृष्ट तो हुए किन्तु ज्ञानीकी पहचान नहीं होनेसे अपने सम्प्रदायके रहे सहे कुछ संस्कारवश अथवा देखादेखी सब श्री रणछोड़भाईको भी प्रभुश्री जैसे ही उपकारी ज्ञानी मानकर उनकी भी ज्ञानीके समान ही विनय करने लगे।

महापुरुषोंकी उदात्तताकी झाँकी करानेवाली कुछ घटनाएँ उनके जीवनमें घटित होती हैं तब साधारण जनसमुदायको उनके निःस्पृह व्यक्तित्वकी कुछ पहचान होती है। सं.१९८० के पर्युषण पर्वमें पूनामें कुछ भाइयोंने श्री मोहनभाईको (प्रभुश्रीके पुत्रको) बुलाकर प्रभुश्रीजीकी अनुपस्थितिमें उनकी गद्दीपर बैठनेको कहा, पर उन्होंने मना कर दिया। तब उन लोगोंने उन्हें बलपूर्वक खींचकर बिठा दिया और मंगलाचरण करके भक्ति की। प्रभुश्रीजीको जब इस बातका पता चला तब दूसरे दिन उनका पुण्यप्रकोप यों जाग उठा—

"इसे क्या कहा जाय? क्या स्वामीनारायणकी भाँति संसारीको गद्दीपर बिठाकर संन्यासी उसे नमस्कार करे ऐसा मार्ग चलाना है? क्या मार्ग ऐसा होगा? अनन्त संसारमें भटकनेका कारण ऐसा काम कैसे सूझा? तुममेंसे भी कोई नहीं बोला? इस गद्दीपर पाँव कैसे रखा जाये? हम भी नमस्कार कर उसकी आज्ञासे बैठते हैं, वहाँ यों स्वच्छंदपूर्वक ऐसा करना क्या उचित है?...उसे बलपूर्वक दबाकर बिठाया इसमें उसका क्या दोष? पर किसीको नहीं सूझा कि ऐसा कैसे हो सकता है?"

दूसरे दिन स्तवनमें जब—

[1]"धन्य ते नगरी, धन्य वेला घडी,
मातपिता कुलवंश जिनेसर।"

यों गाया गया तब फिरसे उस घटनाको लेकर कहा—

"इसमें क्या मर्म समाया है? इन पंक्तियोंको लौकिक बातमें समझना है या अलौकिक रीतिसे? कुलवंश और संबंध ये सब क्या इस शरीरके? ऐसा तो सब संसार कर ही रहा है। यह तो समकितके साथ संबंधकी बात है, और सम्यक्त्वसे प्रगट हुए गुण सो वंश है। देखो, पीढ़ी ढूँढ निकाली! प्रभु, यह तो इनका योगबल है सो इस स्थानका देव जागेगा तब होगा...

हम तो अज्ञातरूपसे (गुप्त) जड़भरतकी भाँति विचरते थे। वहाँ इसने (रणछोड़भाईने) भण्डा फोड़ा (प्रसिद्धिमें लाये)। ऐसे कालमें इसकी सेवा-भक्तिके कारण सन्तके मनको शांति मिली उसकी दुआसे यह जो कुछ है सो है। परंतु इस कालमें पचाना कठिन है...

ज्ञान तो अपूर्व वस्तु है। (परमकृपालुदेवके चित्रपटकी ओर अंगुलिनिर्देश कर) हम तो इनकी शरणमें बैठे हैं...

---

१. उस नगरीको, उस समयको, उन माता-पिताको, उस कुल और वंशको धन्य है जहाँ भगवानने जन्म लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निष्पक्षपातसे एकमात्र आत्महितके लिए हम एक बात बताना चाहते हैं। इसमें न कोई हमारा स्वार्थ है, न किसीको उल्टे मार्गपर चढ़ाना है और न ही पूजा-सत्कार स्वीकारनेकी बात है। सकल संघकी साक्षीसे हम यह बात कह रहे हैं। जो भरी सभामें संघके समक्ष असत्य या ठगनेके लिए बोलता है उसको शास्त्रमें महापाप कहा गया है। ऐसे जीव गूँगे पैदा होते हैं, वाणी बंद हो जाती है, मूढ़ भी होते हैं। हम जो कहते हैं उसपर जिसे विश्वास हो वे ही खड़े हो जायें, अन्य भले अपने स्थानपर बैठे रहें। किन्तु जैसा हम कहते हैं, वैसा करना हो वे खड़े होकर कृपालुदेवके चित्रपटके आगे हाथ रखकर कहें कि संतके कहनेसे मुझे कृपालुदेवकी आज्ञा मान्य है।

हमारे मनमें तो ऐसा हुआ कि जो वचन हमें आत्महितका कारण हुआ वह वचन दूसरे भी सुनें, श्रद्धा करें तो कल्याण हो। अतः उनकी आज्ञा 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' जो हमारे पास आये उन सबको कृपालुकी दृष्टिसे कह सुनायी।

परंतु नासमझीसे कोई पोपटलालको, कोई रत्नराजको, कोई रणछोड़भाईको और कोई हमको देहदृष्टिसे पकड़ बैठे। यह विष पी रहे हो, विष! मर जाओगे। यह मार्ग नहीं है। ज्ञानी तो जो है सो है। उसकी दृष्टिसे खड़े रहोगे तो तिरनेका कुछ उपाय है। हमें मानना हो तो मानो, न मानना हो तो न मानो, परंतु जैसा है वैसा कहे देते हैं। हमने तो सोचा था कि अभी जो चलता है वैसा भले चलता रहे, समय आनेपर सब बदल देंगे। क्या हमें पुष्पहार, पूजा-सत्कार ये सब अच्छे लगते होंगे? किंतु कड़वे घूँट जानबूझकर उतार जाते। अब तो छिपाये बिना स्पष्ट कहे देते हैं कि पूजा-भक्ति करने योग्य ये कृपालुदेव हैं। हाँ, भले ही उपकारीका उपकार न भूलें। किसी परिचित मित्रकी भाँति उसकी छबि हो तो आपत्ति नहीं, परंतु पूजा तो इस (कृपालुदेवके) चित्रपटकी ही होनी चाहिए। अच्छा हुआ, अन्यथा कृपालुदेवके साथ इस देहकी मूर्ति भी, मंदिर बनता तब स्थापित कर देते। ऐसा नहीं करना है। बारहवें गुणस्थान तक साधक, साधक और साधक ही रहना कहा है। इधर-उधर देखा तो मर गये समझना। अब एक-एक यहाँ आकर कृपालुदेवके चित्रपटके पाट पर हाथ रखकर कहें कि 'संतके कहनेसे कृपालुदेवकी आज्ञा मुझे मान्य है।' जिसकी इच्छा हो वह आकर ऐसा कह जाय।

फिर सभी क्रमशः उठकर चित्रपटके समक्ष प्रभुश्रीके कथनानुसार कहकर प्रभुश्रीको नमस्कार कर वापस बैठ गये। कुछ नये लोग भी वहाँ थे। उन्हें देखकर प्रभुश्री प्रसन्नमुख बोले--

"ये भद्रिक नये लोग भी साथ-साथ लाभ ले गये। कौन जानता था? कहाँसे आ चढ़े! टिके रहें तो काम बन जाय। हमने जो कहा है वह मार्ग यदि खोटा हो तो उसके हम जामिनदार हैं। परंतु जो स्वच्छंदसे प्रवृत्ति करेंगे और 'यों नहीं, यों' कहकर दृष्टिफेर करेंगे उसके हम जिम्मेदार नहीं है। जिम्मेदारी लेना सरल नहीं है, किन्तु इस मार्गमें भूल नहीं है। जो कोई कृपालुदेवको मानेंगे उन्हें कुछ नहीं तो देवगति तो मिलेगी ही।"

यों पर्युषण पर्वमें आठों दिन तक प्रभुश्रीने सतत एकधारा प्रवाहसे प्रबल बोध द्वारा मुमुक्षुओंकी श्रद्धा, पकड़ एक परमकृपालुदेव पर दृढ़ करवानेका अगाध परिश्रम किया और उसके बाद भी एक यही श्रद्धा दृढ़ करवानेके लिए निरंतर सतत बोध देते हुए जीवनपर्यंत अथक परिश्रम किया। जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव इस बोधको अपने आत्मामें स्थिर करेंगे वे निकटभवी उनकी आज्ञाके आराधक बनकर भवका अंत करेंगे इसमें संदेह नहीं है। परंतु अपनी मतिसे इससे अन्यथा करेंगे तो अनादिसे परमार्थ मार्गके विराधक तो हैं ही। किसी महा भाग्योदयसे सत्य बात कहनेवाले ज्ञानीपुरुषका योग मिला वहाँ भी उनके बोधरहस्यको गौण कर, अपनी बुद्धिको प्रधान करके चलेंगे तो ज्ञानीकी आज्ञाके विराधक बनकर अनन्त संसार बढ़ा देंगे, वे तो ज्ञानीकी दृष्टिमें दयापात्र ही मानने योग्य हैं।

★★★

१८

दक्षिणमें श्री बाहुबलिजी आदि स्थानोंकी यात्रा कर वहाँसे श्री हीरालाल झवेरीकी भावनासे उनके साथ, उनके यहाँ पेथापुरमें दो मास रहकर वहाँसे सं.१९८१ के फाल्गुन वदीमें प्रभुश्री अहमदाबाद आये।

नडियादके मुमुक्षुओंमेंसे किसीको उस समय पता नहीं था कि प्रभुश्री अभी कहाँ हैं? परंतु प्रभुश्रीका अंतरज्ञानप्रकाश कुछ अद्भुत था। उसके द्वारा उन्होंने देखा कि नडियादके एक मुमुक्षुभाई डाह्याभाई देसाईका अंतसमय निकट है। उन मुमुक्षुभाईने पहले आश्रममें प्रभुश्रीसे प्रार्थना की थी कि "हे प्रभु, मेरे अंतसमयमें मेरी सुध लेवें। मुझे आपका ही आसरा है।"

इस वक्त उनका अंतसमय निकट जानकर प्रभुश्री सेठश्री जेसंगभाईके साथ एकाएक सुबहमें नडियाद श्री नाथाभाई अविचलभाई देसाईके यहाँ पधारे। उन्होंने प्रभुश्रीकी बहुत उल्लासभावसे भक्तिभावना की। वहाँ अन्य मुमुक्षु भी एकत्र हो गये। उनको धर्मबोध देकर वहाँसे प्रभुश्री डाह्याभाईके घरकी ओर चले। सभी मुमुक्षु भी उनके पीछे-पीछे चले। प्रभुश्री जब श्री डाह्याभाईके यहाँ पहुँच गये तभी सबको पता चला कि इस महाभाग्य मुमुक्षुको अंतसमयमें समाधिमरण-सन्मुख करानेके लिए ही वे एकाएक यहाँ पधारे हैं।

जब प्रभुश्री श्री डाह्याभाईकी मृत्युशय्याके निकट पधारे तब श्री डाह्याभाई बाहरसे कुछ बेभान जैसे दीखते थे, परंतु उनके हृदयमें परमकृपालुदेवकी ही रटन थी। प्रभुश्रीने पास जाकर 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' यों दो-तीन बार उच्च स्वरसे मंत्र सुनाया और अमृतमयी दृष्टि डाली। वे तुरत भानमें आकर पलंगमें उठ बैठे, और प्रभुश्रीको देखते ही आनन्द-उल्लासमें रोगकी वेदनाको भूल गये। दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर अंतसमयमें दर्शन देनेके लिए आभारकी भावना प्रदर्शित की और वापस लेटकर प्रभुश्रीके बोधवचन सुननेमें उल्लाससे एकाग्रतापूर्वक लीन हो गये।

वहाँ प्रभुश्रीने, देहाध्यास छूटकर वृत्ति आत्मस्वरूपमें लीन हो ऐसा सुंदर बोध एकाध घण्टेतक इतने असरकारक ढंगसे दिया कि वह पावन आत्मा उत्तरोत्तर शांत दशाको प्राप्त कर आनंद और उल्लाससहित अंतरमग्न होता गया। इस प्रकार उन्हें अपूर्व जागृति देकर समाधिमरणरूप अपूर्व आत्मश्रेयके सन्मुख कर प्रभुश्री बाहर निकले।

सेठश्री जेसंगभाईके साथ वे वहाँसे तुरत ही नरोडा जानेके लिए विदा हो गये। उसके बाद तुरत ही श्री डाह्याभाई समाधिपूर्वक देहत्याग कर गये। 'परोपकाराय सतां विभूतयः' मानो इस सूक्तिको चरितार्थ करनेके लिए ही ये संतपुरुष आहारपानीकी चिंता किये बिना नडियादसे रवाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होकर दोपहर लगभग एक बजे नरोडा आ पहुँचे। उनके दिव्य ज्ञानमें अभी और किसीका मरण सुधारना है ऐसा स्पष्ट दीख रहा था। इसलिये वे नरोडा आकर तुरत ही एक मुमुक्षुबहन जो मृत्युशय्या पर थी, उसके पास गये। उसे भी देह और आत्माकी भिन्नताके विषयमें अद्भुत बोध देकर समता, धैर्य, सहनशीलतापूर्वक शांत भावसे अंतरमग्न होनेके उत्साहमें प्रेरित कर अपूर्व जागृतिमें लाकर समाधिमरण-सन्मुख कर स्वयं वहाँसे बाहर निकले। थोड़ी देर बाद उस बहनने देहत्याग कर दिया।

यों दोनों आत्माओंका मरण सुधारकर प्रभुश्री उस दिन नरोडामें रुके और दूसरे दिन अहमदाबाद पधारे। थोड़े दिन वहाँ रहकर चैत्र मासमें वे आश्रम पधारे।

१९

सं.१९८१ का यह चातुर्मास और उसके बाद सं.१९९१ तकके प्रभुश्रीके सभी ग्यारह चातुर्मास आश्रममें ही हुए। इसके पहले सं. १९७७, ७८, ७९ के तीन, कुल मिलाकर आपश्रीके चौदह चातुर्मास आश्रममें हुए।

अब ज्यों-ज्यों प्रभुश्रीका आश्रममें अधिक रहना होता गया, त्यों त्यों उनके दर्शन, समागम, सद्बोधका लाभ अधिकाधिक प्राप्त करनेकी इच्छासे आनेवाले जिज्ञासुओंकी संख्या भी बढ़ती गयी। और हजारों मुमुक्षु उनके बोधसे प्रभावित होकर श्रीमद्जीके बोधवचनोंमें रस लेनेवाले श्रीमद्जीके अनुयायी बने। प्रभुश्रीके ज्वलंत बोधके प्रतापसे उनमें अपूर्व उत्साह आया और सनातन सद्धर्मभावना जागृत हुई।

महापुरुषके जीवनकी, महानदकी भाँति ऐसी तो विशालता और भव्यता होती है कि उसमें अनेक पुण्यात्माओंकी जीवनसरिता ओतप्रोत होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की विशाल भावना, तथा आत्मस्थ द्रष्टाभावका गाम्भीर्य और सामर्थ्य प्राप्तकर विशाल जनसमुदायके आत्मोन्नतिकारक बनकर महासागरके समान परमात्मपदमें आत्मविलीनता करके कृतार्थ होते हैं। ऐसा योग और ऐसा प्रसंग प्राप्त होना एक विरल घटना है। सं.१९७७ की कृष्ण चतुर्दशीको बांधणी गाँवके श्री गोवर्धनदास कालीदास पटेल (श्री ब्रह्मचारीजी) के जीवनमें भी एक ऐसी मंगल घटना घटित हुई।

ग्रेज्युएट होनेके बाद लगभग दस वर्षसे वे चरोतर एज्युकेशन सोसायटीमें स्वयंसेवकके रूपमें जुड़कर आणंदके दा.न.विनयमंदिरके आचार्यपद तक पहुँचे। परंतु उनका जीवन आत्मलक्षी होनेसे उन्हें अपने आचरणको आदर्शरूप बनानेकी तीव्र भावना जागृत हुई और जब तक वह सिद्ध न हो तब तक आचार्य माना जाना उन्हें आत्मवंचना जैसा लगा, जिससे उन्हें आचार्यपद खूब खटकने लगा। दीवालीकी छुट्टियोंमें वे अपने गाँव बांधणी आये थे। वहाँ उनके स्नेही श्री भगवानजीभाई द्वारा उन्हें परमकृपालुदेव तथा प्रभुश्रीके संबंधमें जानकारी मिली, अतः अगास आश्रममें आनेकी उत्कण्ठा जागृत हुई। कृष्ण चतुर्दशीको सबेरे जल्दी वे दोनों आश्रममें आये। तब प्रभुश्री खिरनीके वृक्षके नीचे बिराजित थे और 'मूलमार्ग'का पद बोला जा रहा था। प्रभुश्रीके दर्शनसे ही उन्हें अपूर्व अंतरशांति प्राप्त हुई और स्वाभाविक भावना उठी कि ऐसे पुरुषकी सेवामें रहा जाय तो जीवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतार्थ हो जाय। प्रभुश्रीजीने 'मूलमार्ग'का गूढ़ रहस्य उन्हें समझाया, और 'टाळी स्वच्छंद ने प्रतिबंध'का अर्थ उनसे पूछा, फिर स्वयं स्पष्ट समझाया; एवं अपूर्व वात्सल्यसे उन्हें मंत्रदीक्षा दी। उनके जानेके बाद प्रभुश्रीजीने अपनी सेवामें रहनेवाले एक भाईको कहा कि 'ऐसा स्मरणमंत्र आज तक हमने किसीको भी नहीं दिया।' कृष्ण चतुर्दशी जैसे सिद्धियोगके दिन ऐसे महापुरुषके हाथों मंत्रदीक्षा मिले यह कैसी अपूर्व घटना!

ज्ञानीपुरुषोंकी प्रेरणाशक्ति अति गहनरूपसे काम करती है। उनकी वाणी ऐसी प्रबल होती है कि वह सत्पात्र व्यक्तिके जीवनको एकाध शब्द या वाक्यसे बदल देती है। तदनुसार श्री ब्रह्मचारीजीको 'टाळी स्वच्छंद ने प्रतिबंध'*के विषयमें प्रभुश्रीने जो उपदेश दिया था उसकी उनपर ऐसी छाप पड़ी कि तभीसे उनमें स्वजन आदिके प्रतिबंधको टालकर प्रभुश्रीजीकी सेवामें रहकर उनकी आज्ञामें जीवन बितानेकी तीव्र भावना जाग्रत हो गयी। इस विषयमें उन्होंने अपने बड़े भाईको जो पत्र लिखा है उसमें आज्ञाकी कैसी तीव्र पिपासा जागृत हुई थी और प्रतिबंधको हटानेकी कैसी अदम्य इच्छा उनके अंतरंगमें विद्यमान थी वह निम्न अवतरणोंपरसे स्पष्ट होता है—

"मैं...परमार्थकी शोधमें और उसे प्राप्त करनेके प्रयत्नमें जीता हूँ। उसके लिए सर्वस्व अर्पण करके भी संपूर्ण उन्नतिकी साधना हो सके तो तैयार रहनेके लिए मेरा चित्त तड़प रहा है...कुटुंबको सदाके लिए छोड़कर पूरे संसारको कुटुंब मानकर अपने प्रारब्ध पर भरोसा रखकर इस भवके शेष वर्षोंको परमकृपालुदेवके चरणकमलमें अर्पण करनेको तत्पर हुआ हूँ...संसार छोड़कर आश्रममें रहनेकी आज्ञा न मिले तो मुझे कुछ कथित साधु बनकर नहीं घूमना है। पर उस योग्यताको प्राप्त करनेके लिए जो-जो उपाय दीर्घदृष्टिसे बतायें वे मुझे मान्य होनेसे, पहले मैं अन्य जिम्मेवारियोंसे मुक्त होकर, स्वच्छ होकर फिर उनसे (प्रभुश्रीसे) बात करनेकी सोचता हूँ।...चाहे मुझे काशी जाकर शास्त्राभ्यास करनेकी आज्ञा मिले या आश्रममें झाड़ू लगाने या घण्टा बजाने जैसा हलका काम सौंपें तब भी मुझे तो पूर्ण संतोष होगा; क्योंकि मेरा कल्याण उस पुरुषके आज्ञापालनके लिए ही जीनेमें है...जो वर्ष बचे हैं वे मेरे आत्माकी कहो, आश्रमकी कहो या संसारकी कहो, पर जिसमें सबकी सच्ची सेवा निहित हो वैसी फर्ज अदा करनेके लिए मैं घरबार छोड़कर अणगार बनना चाहता हूँ...संत, महंत या गद्दीपति बननेकी गंध भी मेरी इच्छामें नहीं है। किन्तु सबका सेवक और आत्मार्थी बननेकी इच्छा लम्बे समयसे निश्चित कर रखी है, वैसा बनना है।"

फिर अपने बड़े भाईकी सहमति मिलते ही वे प्रभुश्रीकी आज्ञा प्राप्त कर, उस सोसायटीसे मुक्त होकर सं.१९८१ में प्रभुश्रीकी सेवामें संलग्न हो गये। प्रभुश्रीने उन्हें ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कराया। प्रभुश्रीकी सेवामें निरंतर रहकर उनकी सन्निधिमें सूत्र-शास्त्रोंका अध्ययन, मनन और उनके बोधका ग्रहण, आज्ञाधीन व्यवहार आदि उनके श्वासोच्छ्वास बन गये। प्रभुश्रीकी सूचनाके अनुसार मुमुक्षुओंके पत्रोंके उत्तर, तथा नवीन मुमुक्षुओंको नित्यनियम एवं स्मरण आदि प्रभुश्रीकी आज्ञासे देते। तदुपरांत वार्तालाप और उपदेशकी नोंध करना, आवश्यक पुस्तकोंमेंसे टिप्पणी करना, अनुवाद, श्रीमद् राजचंद्र जीवनकला जैसी पुस्तकोंकी रचना इत्यादि प्रवृत्तियोंमें सतत उल्लास और निष्ठासे उन्होंने अविरत परिश्रमपूर्वक सेवाका आरंभ किया।

---

* स्वच्छन्द और प्रतिबंधको टालकर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राय: सभीको धर्मकी पकड़ बहुत दृढ़ होती है, जिससे अपने माने हुए धर्मकी पकड़को छोड़कर ज्ञानियों द्वारा उपदिष्ट सनातन सत्धर्मके प्रति श्रद्धान होना, पकड़ होना अत्यंत विकट है। ऐसा होते हुए भी ज्ञानीपुरुषका माहात्म्य, उनका योगबल भी ऐसा अचिन्त्य प्रभावशाली होता है कि अनेकोंको सत्धर्मका रंग चढ़ा देता है। पू. प्रभुश्रीका भी ऐसा ही अद्भुत सामर्थ्य दृष्टिगोचर होने लगा। हजारों जैन-जैनेतरोंको उन्होंने सच्चा जैन बनाया। उनको मंत्रदीक्षा दी, सात व्यसन और सात अभक्ष्यका त्याग करवाया, व्रत-प्रत्याख्यान देकर सत्श्रद्धासहित भक्तिमार्गके रसिक बनाया।

अनेक कुमारिकाओंको सत्का ऐसा अद्भुत रंग लगा कि उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार किया। इसी प्रकार अनेक युवा दम्पतियोंने भी भोगसे अनासक्त होकर ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार कर सत्साधनामें जीवन अर्पण करना स्वीकार किया। यों अनेकानेक आत्मार्थी ब्रह्मचर्यव्रतविभूषित हुए।

अब आश्रममें जीवन अर्पण करनेवाले ब्रह्मचारियोंके लिए अलग व्यवस्था की गयी। इसी प्रकार ब्रह्मचारिणी बहनोंके लिए भी आश्रममें अलग निवासस्थानकी व्यवस्था हुई। कुछ भावुक जिज्ञासु भी व्रतनियम धारण कर आश्रममें स्थायी रहने लगे। कोई कोई विरक्त मुमुक्षु गृहस्थ होने पर भी व्रतनियम धारण करके आश्रममें सहकुटुंब रहने लगे। यों पचास-सौ व्यक्ति स्थायी निवास करने लगे और सत्साधनामें तत्पर हुए, जिससे आश्रम सत्संग और भक्तिका जीता-जागता नमूना हो गया।

जैसे-जैसे अनुयायियोंकी संख्या बढ़ती गयी वैसे-वैसे आश्रम भी बढ़ता गया। सबकी इच्छासे आश्रममें एक शिखरबंध भव्य जिनालयका निर्माण हुआ। उसमें श्रीमद्जीके बोधवचनोंके अनुसार श्वेताम्बर-दिगम्बर प्रतिमाएँ स्थापित की गयीं। इस जिनालयकी प्रतिष्ठा सं.१९८४ के ज्येष्ठ सुदी ५ के दिन प्रभुश्रीकी छत्रछायामें हुई।

इस जिनालयके भूमिगृहमें एक गुरुमंदिर बनाया गया, जिसमें श्रीमद्जीकी प्रतिमा तथा एक ओर 'प्रणवमंत्र ॐकार'की स्थापना उपरोक्त दिन ही की गयी। पासमें पादुकाकी स्थापना सं.१९८२के आश्विन सुदी १५ के दिन हो गयी थी। मुमुक्षुभाइयोंकी संख्या और उनकी आवश्यकतानुसार एक भव्य सभामण्डप और व्याख्यानमंदिर बनाया गया, एवं पुस्तकालयकी स्थापना भी की गयी। मुख्यद्वारके ऊपरकी देवकुलिकामें सं.१९८८के माघ सुदी १० के दिन परमकृपालुदेवकी पंचधातुकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की गयी।

शरीरप्रकृति बहुत अस्वस्थ रहनेपर भी परोपकार-परायण प्रभुश्रीजीने मुमुक्षुओंके आग्रहसे सं.१९८५के मार्गशीर्ष मासमें अठारह दिन भादरण, तीन-चार दिन धर्मज तथा ग्रीष्ममें दो मास भरुच, निकोरा, झघडिया, कबीरवड आदि स्थानोंमें विचरण किया। सं.१९८६में करमसद, सुणाव, वेरा, बोरसद, दाओल आदि स्थानोंमें विचरे। सं.१९८७में काविठा, सीमरडा, नडियाद, नार, अंधेरी और सं.१९८८में पेटलाद, दंताली, काविठा, सीमरडा आदि स्थानोंमें विचरण किया था। इसी बीच श्री नार मंदिरकी प्रतिष्ठा सं.१९८७के वैशाख सुदी ३ के दिन हुई थी। प्रभुश्री जहाँ-जहाँ विचरण करते वहाँ-वहाँ अनेकानेक भद्रिक जनोंको धर्मका रंग चढ़ाकर सन्मार्गके सन्मुख करते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं.१९८६ के पौष सुदी १५ के दिन श्री माणेकजी सेठ आश्रममें आये थे। इन्दौर जाते समय वे प्रभुश्रीके पास दर्शनके लिए गये और कहा कि मैं इन्दौर जा रहा हूँ, तब उनके पूर्वके किसी महान पुण्ययोगसे प्रभुश्रीने उन्हें अपूर्व बोध दिया। वे भी बोधमें ऐसे तल्लीन हो गये कि गाड़ीका समय भी भूल गये। फिर प्रभुश्रीने कहा कि गाड़ी तो गयी! तब उनके मुँहसे सहज ही निकल गया कि यह गाड़ी गयी वह तो वापस आ जायेगी, परंतु यह गाड़ी (शरीर) क्या वापस आयेगी? उसके बाद मानो अंतिम शिक्षा दी जा रही हो वैसा अद्भुत बोध दिया, फिर वे दूसरी गाड़ीसे इन्दौर गये।

माघ वदीमें उनका स्वास्थ्य नरम हुआ। एक मुमुक्षु उनके पास गये थे उनसे उन्होंने कहा कि इस वर्षमें मेरी घात है, अतः देहका भरोसा नहीं है। इसलिये तुम यहीं रहो और मुझे निरंतर मंत्रस्मरण कराते रहो। मुझे भान न हो तब भी मेरे पास बैठकर तुम स्मरण बोलते ही रहो, अन्य किसी काममें न जाओ परंतु स्मरणका जाप करते ही रहो।

माघ वदी ७को सगे-संबंधी तथा गाँव-परगाँवके मुमुक्षुओंको बुलाकर क्षमायाचना कर ली।

माघ वदी ८ के दिन उनका स्वास्थ्य अधिक बिगड़ा। दोपहर १२ बजेके बाद उन्होंने अपने हाथसे लिखकर आश्रममें एक तार भेजा। उसमें उन्होंने लिखा कि यह मेरी अंतिम प्रार्थना है : आपश्रीका आशीर्वाद और शरण मुझे अखण्ड रहे।

आश्रममें तार मिलते ही प्रभुश्रीजीने तारसे उत्तर दिया कि "आत्माका मरण है ही नहीं, मंत्रमें सब कुछ निहित है अतः मंत्रमें ध्यान रखें। ब्रह्मचारीजी आ रहे हैं।" तार पहुँचा, स्वयं पढ़ा, जिससे विशेष जागृति आयी, उल्लासभाव बढ़ गया।

उनके पास निरंतर मंत्रका जाप करनेके लिए रहे हुए मुमुक्षुभाईने मंत्रकी अखण्ड धुन लगायी और श्री माणेकजी सेठका पवित्रात्मा परम जागृतिपूर्वक उसीमें एकाग्र और समाधिभावके सन्मुख होकर रातके ११ बजे अपना अपूर्व हित करके देह त्यागकर चला गया।

पूनामें प्रभुश्रीजीने श्री माणेकजी सेठके यहाँ ही चातुर्मास किया था। तभी उन्हें सत्धर्मका रंग चढ़ाया था। वह दिन-प्रतिदिन बढ़ता गया था। तन-मन-धन-सर्वस्वसे उन्होंने संतकी सेवा करनेमें कमी नहीं रखी थी। उनकी सरलता, सद्गुरु परमकृपालुकी आज्ञामें एकनिष्ठता, उदारता, लघुता, अनुकंपा, वात्सल्य और आश्रमकी उन्नतिके लिए सर्वस्व अर्पण करनेकी तत्परता आदि गुण प्रशंसनीय है।

सं. १९८७ के मार्गशीर्ष वदी ३० के दिन सायं चार बजे आश्रममें श्री रवजीभाई कोठारीका समाधिमरण हुआ, वह आश्रमकी एक अपूर्व घटना थी। ऐसा संयोग किसी विरले जीवको ही मिलता है। जिस जीवके महा पुण्यानुबंधी पुण्यका उदय हो उसे ही ऐसी अनुकूलता सर्व प्रकारसे आ मिलती है। निवृत्ति क्षेत्र और प्रभुश्रीकी आत्मजागृति एवं आश्रमवासी मुमुक्षुभाई बहनोंका उस मुमुक्षु-जीवके प्रति भक्तिभाव, यह सब योग्य अनुकूलताएँ थीं।

मृत्युके तीन-चार दिन पहले उनके समीप 'क्षमापना' प्रार्थना और प्रतिक्रमण आदि, पापकी क्षमा माँगनेके लिए दीनताके 'बीस दोहे' तथा आत्मजागृतिके लिए 'आत्मसिद्धि', 'अपूर्व अवसर'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिका निरंतर स्वाध्याय होता था। शेष समयमें पत्र-वाचन तथा स्मरण-जाप रातदिन अखण्ड चलता रहता था। अन्त तक जागृति अच्छी रही। परमपूज्य प्रभुश्रीजीका समागम भी दिनमें दो-तीन बार नियमित होता रहता था। जब-जब परमपूज्य प्रभुश्रीजी वहाँ पधारते तब-तब उनका आत्मा बहुत उल्लसित होता और कहते कि "मैंने वेदनाके साथ युद्ध प्रारंभ किया है, एक ओर वेदनाकी तीव्रता और दूसरी ओर उपयोगकी धारा। ऐसी वेदनामें भी उपयोगकी धारा न छूट जाय इसके लिए श्री गजसुकुमार आदि महापुरुषोंके चरणोंका अवलम्बन लेता हूँ....." जिस दिन देहत्याग होनेवाला था उस दिन सायं लगभग ३ बजे पू. मुनिदेव श्री मोहनलालजीका वहाँ आगमन हुआ। उस समय उनकी आँखें बंद थीं। थोड़ी देर बाद आखें खुलीं तब उठकर दर्शन किये। सामने ताक पर परमकृपालुदेवका चित्रपट था, उसपर लगे परदेको निकलवा दिया और परमकृपालुदेवको नमस्कार किया। फिर पू.मुनिदेवने कहा कि एकमात्र इन्हीं पुरुषकी सच्ची शरण ग्रहण कर रखने योग्य है। इसी पुरुषके प्रति सच्ची श्रद्धा रहनेसे ही इस जीवका कल्याण है। यों कहकर संथारेके संबंधमें गाथाएँ बोलकर चार शरण दिये। फिर पू. श्री सौभाग्यभाई पर परमकृपालुदेव द्वारा अंतसमयमें लिखे पत्रका वाचन किया। उस समय उनकी जागृति बराबर थी। मृत्युका कोई चिह्न दिखायी नहीं दिया। उस पत्रमें उन्होंने बराबर उपयोग रखा था। वह पत्र (कीचसौ कनक जाके, नीचसौ नरेसपद) पूर्ण होनेपर भावदयासागर परम पूज्य प्रभुश्री पधारे। इससे उनका आत्मा एकदम उल्लसित हुआ और परमकृपालुदेवके सामने अंगुली की और परमपूज्य प्रभुश्रीके सामने अंगुली कर संकेतसे बताया कि मेरा लक्ष्य आपके कथनानुसार ही है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई ध्यान नहीं है। अर्थात् मेरे हृदयमें एकमात्र कृपालुदेवका ध्यान है। परम पूज्य प्रभुश्रीने कहा कि वही रखने योग्य है। फिर अधूरा पत्र पूरा पढ़े जानेके बाद परम पूज्य प्रभुश्रीजीने 'समाधिशतक'की गाथापरसे अंतसमयके योग्य देह और आत्माकी भिन्नताके विषयमें तथा सहनशीलता रखकर हिंमत नहीं हारनेका पुरुषार्थ और धैर्य-प्रेरक अपूर्व बोध बरसाया। यों आत्माको अपूर्व जागृति देकर उठे कि श्री रवजीभाईने अपनी धर्मपत्नीसे कहा कि कुछ अजब-गजब हुआ है! अंतमें इतना बोलकर पाँच मिनिटमें देहत्याग कर दिया।

ऐसा समाधिमरण होना उसे महान् पुण्यका उदय समझना चाहिए। उसे देखनेवाले तथा उस समागममें रहनेवाले जीव भी महाभाग्यशाली हैं। उनके समाधिमरणकी आश्रमवासी सर्व मुमुक्षु भाई-बहनोंपर कोई अपूर्व छाप पड़ी थी। सभी कह रहे थे कि ऐसा अपूर्व दृश्य तो हमने पहली बार ही देखा। यहाँ विशेष क्या लिखा जाय? जिनके हृदयमें इस समाधिमरणके दृश्यकी छाप पड़ी थी वह छाप दीर्घकाल तक रहेगी। इस संबंधमें यहाँ जो कुछ लिखा गया है वह तो उसका अंशमात्र है। क्योंकि वे अपूर्व भाव लिखे नहीं जा सकते। गूँगेके द्वारा खाये गये गुडके समान उसका अनुभव समीपवासी भाग्यवान जीवोंको हुआ और उनके हृदयमें वह अपूर्व भावसे रहा।

सं.१९८८ के भाद्रपद मासमें मुनिदेव श्री मोहनलालजीको मरणांतिक व्याधिका उदय हुआ। प.पू. प्रभुश्री समय-समयपर उनके पास जाते और अपूर्व जागृतिका उपदेश देते। उनको अत्यंत वेदना थी फिर भी बोधके अन्तरपरिणमनसे हृदयमें शान्तिका वेदन था। प.पू. प्रभुश्रीने एक दिन उन्हें जागृति देकर बाहर आकर कहा कि आज मुनिकी अन्तरदशा कुछ और ही हुई है। अब यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनका जीवन बच जाय तो उनसे अनेक जीवोंको अद्भुत लाभ होगा। इसके आठ दिन बाद भाद्रपद सुदी ६को वे समाधिस्थ हुए।

मुनिश्री मोहनलालजी महाराजके इस देहावसानसे सबको बहुत वैराग्ययुक्त खेद हुआ। आश्रममें ट्रस्टियोंकी मीटिंगमें उनके अवसानके प्रसंगपर इस प्रकार खेद प्रदर्शित किया गया—

"श्री सनातन जैन वीतराग मार्गके उद्धारक श्रीमद् राजचंद्र देवाधिदेवके उपासक तथा श्रीमद् राजचंद्र आश्रमके मुमुक्षुमण्डलके उपकारी परम पूज्य बालब्रह्मचारी मुनिदेव श्री मोहनलालजी महाराजके ता.६-९-३२ के दिन हुए देहोत्सर्गके लिए आश्रमके ट्रस्टियोंकी यह सभा खेदका प्रस्ताव पारित करती है। उनकी परमकृपालुदेवके प्रति दृढ़ श्रद्धा, प्रेम, भक्ति, आज्ञाकारिता, *सप्रज्ञ सरलता तथा निर्विकारता आदि सद्गुण स्मरणमें रहने योग्य हैं। आत्महितप्रद उपदेश तथा परम कृपालुदेवके प्रत्यक्ष समागमके सुन्दर कथन आदिसे जीवको सन्मार्गमें लानेमें प्रबल निमित्तरूप उनका

---

* मुनिदेव श्री मोहनलालजीकी सरलतासहित प्रज्ञा प्रशस्त थी। मुमुक्षुओंको आत्मश्रेयके सन्मुख करनेके लिए उनके द्वारा लिखे गये पत्रोंमेंसे निम्नलिखित एक पत्र प्रभुश्रीजीने कुछ एक मुमुक्षुओंको कण्ठस्थ कर विचार करनेका अनुरोध किया था—

तत् ॐ सत्

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे. अगास

अनन्य शरणप्रदाता श्री सद्गुरुदेवको अत्यंत भक्तिसे नमस्कार हो! नमस्कार हो! नमस्कार हो!

"तीन भुवन चूडारतन सम श्री जिनके पाय।
नमत पाइये आप पद सब विधि बंध नशाय॥"

"ज्ञानी के अज्ञानी जन सुखदुःखरहित न कोय।
ज्ञानी वेदे धैर्यथी अज्ञानी वेदे रोय॥"

पवित्र आत्मा भाई श्री...

अनन्तकालसे यह आत्मा चार गतिमें परिभ्रमण कर रहा है। उसमें इस जीवने मुख्यतः असाता ही भोगी है। उसे भोगते हुए देहात्मबुद्धिके कारण उसे विशेष क्लेश होता है या उस दुःखके प्रति द्वेष भाव उत्पन्न होता है। जिसके कारण अभी वह जो असाता भोग रहा है उससे अनंतगुनी नयी असाता उत्पन्न करे ऐसे परिणाम यह जीव अज्ञानवश किया करता है। अनंतकालसे महा मोहनीय कर्मके उदयसे यह जीव सुखशाताका भिखारी है। वह इच्छा तो सुखसाताकी करता है किन्तु परिणाम बुरे करता है। अर्थात् पाँच इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्ति, धनादिमें लोभ और ममत्वबुद्धि कर यह जीव अनन्त अनन्त दुःखद कर्मवर्गणाओंको उत्पन्न करता है। पर उसे कभी सच्चे सद्गुरुका योग नहीं हुआ अथवा कभी हुआ भी होगा तो उनकी आज्ञाका भली प्रकारसे निःशंकतासे आराधन नहीं किया। यदि आराधन किया होता तो ऐसी असाताका कारण न होता। अभी भी यदि यह जीव समझे और उदयप्राप्त कर्मोंमें समभाव रखकर निरंतर सत्पुरुष प्रदत्त स्मरण 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' का उत्कृष्ट प्रेमसे ध्यान करे या स्मरण करे तो उसके सर्वकर्मका अभाव होकर परम शांत होनेका अवसर है। इस जीवको जिन जिन कर्मोंका बंध होता है वे उसके अपने परिणामोंका फल है। पूर्वमें जो जो निमित्त प्राप्त कर जैसे जैसे परिणाम किये हैं, उन परिणामोंका फल काल आनेपर उदयमें आता है। वे कर्म अपने ही द्वारा किये गये हैं ऐसा समझकर विचारवान या मुमुक्षु जीव उदयप्राप्त कर्मोंमें समता रखता है। यह समता ही परम शांतिका कारण है अथवा सर्वकर्मके नाशका कारण है। अतः अब संक्षेपमें लिखता हूँ क्योंकि आप विचारवान हैं इसलिये आपको विशेष लिखना उचित नहीं लगता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस आश्रम तथा मुमुक्षुवर्गपरका परम उपकार बारंबार स्मृतिमें आने योग्य है। उस पावन आत्माकी कमी आश्रमको सदाके लिए रहेगी। परम उपकारी श्री लघुराज स्वामीकी वृद्धावस्थामें परमकृपालुदेवके समागमीके रूपमें वे सहायक थे, यह याद करने पर विशेष खेद होता है। परमकृपालुदेव उस पवित्र आत्माको परम शान्ति प्रदान करें यही प्रार्थना है।"

★★★

जैसे भी हो अशरीरीरूपसे आत्मभावना करते हुए उदयमें आयी हुई दुःखस्थिति भोगकर, शरीरका भान भूलकर, जगत है ही नहीं ऐसा दृढ़ निश्चय कर सगे, कुटुंबी, स्त्री, मित्र सब स्वार्थी संबंध है ऐसा निश्चय कर, संपूर्ण जगत स्त्रीरूप, पुत्ररूप या भाईरूपसे अनन्तबार हो चुका है; किसपर स्त्रीभाव, पुत्रभाव या भ्रातृभाव करूँ? ऐसा विशेष विशेष दृढ़त्व कर सर्व जीवोंके प्रति प्रतिसमय वृत्ति इसी उपयोगमें रखकर प्रभु—सहजात्मस्वरूप प्रभु—का ध्यान अहोरात्रि करते रहें तो आपका आत्महित होगा और सर्व कर्मका उपशम होकर अथवा क्षय होकर परम शांतिका अनुभव करेंगे ऐसा मेरी समझमें आता है और सर्वज्ञानी, सद्गुरु आदिको भी वैसा ही भासित हुआ है। और इसीसे वे इस अपार संसारसे पार हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे।

सब ज्ञानी पुरुष इसी मार्गसे तिरे हैं और हमें इसी मार्गसे तिरना है। जिसे पवित्र ज्ञानी पुरुषका दर्शन हुआ हो अथवा तो उनका बोध प्राप्त हुआ हो उन जीवोंको तो सर्व मोहभावका अभाव कर, सर्व संयोगी भावमें उदासीन हो, मानो जगत है ही नहीं ऐसे भावसे प्रवृत्ति करनी चाहिये। किसी व्यावहारिक प्रसंगमें बोलना पड़े तो सभीके मनका एक ही बार समाधान करके हमें अपने मूल शुद्ध चैतन्यस्वरूपके ध्यानमें लग जाना चाहिए। सर्व जगत स्वप्नके समान है ऐसा मानें और देखा करें। ऐसी देह पूर्वमें अनन्तबार धारण की है। उस समय भ्रान्तिसे परको अपना मानकर, संयोग भावमें तन्मय होकर मैंने अनन्त संसार उत्पन्न किया है ऐसा जानकर, सर्व अन्य भावसे रहित आत्मस्वरूप है ऐसा चिंतन करें। आत्मा असंग, शुद्ध चैतन्यस्वरूप, सर्व अन्य भावका ज्ञाता-द्रष्टा-साक्षी है। किसी कालमें परद्रव्य अपने नहीं हुए हैं। भ्रान्तिसे मैंने अपने माने थे। अब सद्गुरुके आश्रयसे परको पर और मेरा स्वरूप सर्व परद्रव्यसे भिन्न और अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तचारित्र और अनन्तवीर्यस्वरूप है—यों अनन्तचतुष्टयमय शुद्ध चैतन्यस्वरूपका अखण्ड ध्यान रखें। परवृत्तिमें न पड़ें या अन्य संकल्प-विकल्प न करें। यदि संकल्प-विकल्प उठें तो उन्हें तुरंत ही शांत कर दें और उपरोक्त सहजात्मस्वरूपके ध्यानमें लग जावें।

संसार भ्रान्तिस्वरूप है। मृगजलके समान दिखावा मात्र है। इस जीवने अनन्त अनन्त भव चार गति और चौरासी लाख जीवयोनिमें परिभ्रमण किया है। इसने जो-जो देह धारण किये उन सबमें तदाकार होकर अपनापन मान तीव्र राग किया है। परंतु वे शरीर अपने नहीं हो सके। वैसे ही यह शरीर भी अपना है ही नहीं। यह जीव अनादिकालसे कर्मवशात् अकेला आया है, अकेला जायेगा और अपने किये हुए कर्मोंका फल स्वयं अकेला भोगेगा। फिर भी अन्य संयोगोंमें अर्थात् स्त्री पुत्रादिकमें अपनापन मानकर तीव्र राग करके अनन्त संसार उत्पन्न किया है तथा भविष्यमें भोगने पड़ें ऐसे अशुभ कर्म उस निमित्तसे उत्पन्न किये हैं। अब इस देह द्वारा निरंतर आत्मभावना करनी चाहिये। अनित्यादि बारह भावनाओंका चिन्तवन विशेष रखना चाहिए। यदि आप स्वयं पढ़ सके तो अच्छी बात है, अन्यथा दूसरेसे वैसी पुस्तक पढ़वावें कि जिसमें बारह भावनाका स्वरूप हो। फिर भी किसी पढ़नेवालेका संयोग प्राप्त न हो सके और स्वयंसे भी पढ़े जानेकी स्थिति न हो तो अन्य कहीं भी वृत्तिको न रोककर मंत्रका जाप रातदिन करते रहना चाहिये। और, वृत्तिको मंत्रमें—जापमें स्थिर करके सब बात भूलकर, सब कुछ स्वप्नवत् समझकर उस मंत्रमें ही निरतंर रहना चाहिए।

सर्व जीव बोधबीजको प्राप्त हो यही आशिष। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०

सं.१९८९ के वैशाख सुदी ३ को सूरत जिलेके धामण गाँवमें एक मुमुक्षुभाईके यहाँ परम कृपालुदेवके चित्रपटकी स्थापना करने प. पू. प्रभुश्रीजी अनेक मुमुक्षुओंके साथ पधारे थे। वहाँ भक्ति, समागम, बोध आदिसे अनेक नये जीवोंको लाभ हुआ था। स्थापनाके बाद लगभग डेढ मास प्रभुश्री नवसारी गाँवके बाहर एक एकान्त बंगलेमें निवृत्तिसे रहे थे। वहाँ भी अनेक जीवोंको सत्संगसे लाभ हुआ था।

सं.१९९० के ग्रीष्ममें प्रभुश्री सूरतमें अठवा लाइन्सके एक बंगलेमें लगभग डेढ़ माह रहे। वहाँसे पाँच-छह दिन चाणोद रुककर व्यासके टापूमें एकाध दिन जाकर आश्रम वापस लौटे।

अहमदाबादमें एलिसब्रिज विस्तारमें श्रीयुत् हीरालाल शाहने एक बंगला बनवाया था। उसमें सभी मुमुक्षुओंके साथ पधारकर भक्ति करने तथा परमकृपालुदेवके चित्रपटकी स्थापना करनेके लिए वे पूज्य प्रभुश्रीजीको कभी-कभी विनती करते तब प्रभुश्री कहते कि अवसर आनेपर देखेंगे।

सं.१९९१के मार्गशीर्षमें एक अपूर्व घटना घटी। अहमदाबादसे डॉक्टर शारदाबहन पंडित कई बार आश्रममें सत्संगके लिए आती थीं। प्रभुश्रीके सत्संग-सद्बोधसे उनको सद्धर्मका रंग चढ़ा देखकर तथा उन्हें बार-बार आश्रममें सत्संगका लाभ लेनेके लिए आते देखकर और प्रभुश्रीके प्रभावसे उनके जीवनमें जागृत पवित्र धर्मभावनाको देखकर उनके एक भाई श्री पंडित, जो धर्मके प्रति विशेष रुचिवाले तो नहीं थे, फिर भी किसी पूर्व पुण्यके उदयसे एकाएक धर्मभावनाके सन्मुख होकर जिज्ञासुवृत्तिसे श्री शारदाबहनको पूछने लगे कि 'तुम जिस महात्माके सत्संगके लिए अगास आश्रममें जाती हो, उनके दर्शनके लिए इस शुक्रवारको मुझे भी चलनेकी भावना हुई है।' श्री शारदाबहन यह सुनकर हर्षित हुई और शुक्रवारको उनके साथ आश्रममें जाना स्वीकार किया।

परन्तु, विधिको कुछ और ही मंजूर था। भाई श्री पंडित अचानक न्यूमोनियासे शय्याग्रस्त हो गये, और आश्रममें जानेकी भावना अब सफल नहीं होगी तो महात्माके दर्शन कैसे होंगे? इसी चिंतामें खाटपर पड़े वे एकमात्र उन्हींका रटन करने लगे।

इस बीच आश्रममें भी प्रभुश्रीने श्री हीरालालभाईको बुलाकर कहा, "प्रभु, इस शनिवारको आपके यहाँ परमकृपालुदेवके चित्रपटकी स्थापनाके लिए जायें तो कैसा रहेगा?"

श्री हीरालालभाई हर्षित होकर सबको शनिवारको अपने यहाँ आनेका निमंत्रण देकर स्वयं तुरत ही अहमदाबाद गये, और शनिवारको आश्रमसे लगभग सौ मुमुक्षुभाइयोंके साथ प्रभुश्रीजी अहमदाबाद पधारे। वहाँ बड़ी धूमधाम और भक्तिभावपूर्वक चित्रपटकी स्थापना हुई। फिर आहार आदिसे निवृत्त होकर दोपहरको थोड़े मुमुक्षुभाइयोंके साथ प्रभुश्री तुरन्त उन भाई श्री पंडितके यहाँ गये। तभी सबको पता चला कि इस भाग्यवान भव्यके उद्धारके लिए ही ये महापुरुष एकाएक यहाँ आये हैं।

श्री पंडितके पलंगके पास प्रभुश्री आये तब वे ज्वरके कारण कुछ अस्वस्थ थे। परंतु श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शारदाबहनने कहा, 'भाई, अगास आश्रमसे प्रभुश्री आये हैं।"

यह सुनकर वे भाई तो बहुत ही आनन्दित हो उठे और प्रभुश्रीके प्रति अत्यंत आभार प्रदर्शित करते हुए हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

फिर प्रभुश्रीने धारावाही अद्भुत उपदेश दिया। श्रेणिक राजाके पूर्वभवका दृष्टांत दिया। फिर कहा—"श्रेणिक राजाने भीलके भवमें मात्र कौएके मांसका त्याग ज्ञानी मुनिके समक्ष किया था जिससे वह मरकर देव हुआ और फिर श्रेणिक हुए, एवं अनन्त संसारको छेदकर एक भवमें मोक्ष जायेंगे।"

ज्ञानीपुरुषकी आज्ञाका आराधन करनेका ऐसा अचिन्त्य माहात्म्य सुनकर श्री पंडित बहुत उल्लसित हुए और उन्हें अपने आत्महितकी भावना जाग्रत हुई। अतः प्रभुश्रीने उन्हें सातों व्यसनोंका त्याग करवाया तथा मंत्रस्मरण देकर देह और आत्माकी भिन्नताके विषयमें उपदेश दिया। इससे वे अत्यधिक उल्लासमें आ गये। यों धारावाहिक सतत बोधवृष्टि कर अपूर्व जागृति देकर, समाधिमरणके सन्मुख कर, अपूर्व आत्महितमें प्रेरित कर प्रभुश्री वापस लौटे। कुछ मुमुक्षुओंको उनके पास आत्मसिद्धि आदिका स्वाध्याय करनेके लिए वहाँ रखा। वे ज्ञानीपुरुषके वचन सतत उन्हें सुनाते रहें। इससे वे भाई व्याधि या मरणके दुःखको भूलकर उन बोधवचनोंमें ही तल्लीन होते गये और रोग, मरणादि तो शरीरमें ही हैं, मैं तो उनसे भिन्न 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम' यों आत्मसिद्धिकी गाथामें बताया वैसा हूँ। ऐसा मानकर आत्मभावनामें लीन होने लगे। ऐसी उत्तम भावनामें उसी रात्रिमें उनका देहत्याग हो गया और उन्होंने अपना अपूर्व हित साध लिया।

फिर प्रभुश्री अहमदाबादसे थोड़े मुमुक्षुओंके साथ वढवाण केम्प आये। वहाँ सेठ श्री जेसंगभाई उजमसीभाईके बंगलेमें थोड़े दिन रहकर, वहाँ सबको सत्संगका लाभ देकर वांकानेरके नगरसेठ श्री वनेचंद देवजीभाईके आग्रहसे वांकानेर गये। वहाँसे सभी मोरबी होकर परमकृपालु देवकी जन्मभूमि ववाणिया गये। वहाँ भक्तिभावना की। वहाँसे वापस वांकानेर होकर आश्रममें आये।

सं.१९९१ के फाल्गुन वदी ५ के दिन प्रभुश्री आबू पधारे। वहाँ श्री हीरालाल शाहने पहलेसे ही पहुँचकर 'श्रबरी बंगला' तैयार रखा था वहाँ लगभग तीन मास रहना हुआ।

इसी बीच आहोरके मुमुक्षुभाइयोंकी अत्यंत आग्रहभरी विनतीके कारण प्रभुश्री, श्री हीरालाल, श्री नाहटाजी आदि सभी मुमुक्षुओंके साथ आहोर आये और वहाँ ग्यारह दिन रुके। वहाँ अनेक जीवोंको धर्मका रंग चढ़ाकर सन्मार्ग-सन्मुख किया। फिर चैत्र वदी २ के दिन आहोरसे वापस आबू आ गये।

आबू निवास दरम्यान अनेक बार देलवाडाके मंदिरोंमें जाकर भक्तिचैत्यवंदन आदि करते। अचलगढ़के मंदिरमें भी श्री आत्मसिद्धिजीकी पूजा पढ़ायी गयी। प्रभुश्री वहाँ आठ दिन रहे थे।

आबू-निवासके समय लीमडी, जसदण, साणंद आदिके राजा तथा भावनगरके दीवान श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पट्टणी आदि, श्री हीरालालसे प्रभुश्रीका माहात्म्य सुनकर प्रभुश्रीके पास बारंबार आते और घण्टों तक बैठकर बोध सुनते। उनके निमित्तसे अद्‌भुत बोधकी वृष्टि होती। लीमडीके ठाकुरकी इच्छासे प्रभुश्री 'श्री आत्मसिद्धि'का अर्थ भी समझाते। यों सबको संतोष और आत्मलाभ मिलता।

आबू-निवासके अंतिम दस दिनोंमें प्रभुश्री आबूके पहाड़पर भिन्न-भिन्न दिशाओंमें टीलाओं पर, गुफाओंमें, जंगलोंमें निकल पड़ते। उनके पीछे-पीछे मुमुक्षुसमुदाय भी निकल पड़ता। फिर वहाँ भक्तिका अपूर्व रंग जमता। इसी प्रकार एक बार सभी 'अनादरा पॉइन्ट' गये थे। वहाँ भक्तिके पद बोलनेके बाद गोल गोल घूमते हुए 'मूल मारग सांभळो जिननो रे' यह पद प्रभुश्री स्वयं बुलवाते और सभी पीछे बोलते थे। यों भक्तिका रंग जमा था। भक्ति पूरी होनेपर सबको मंत्र-स्मरण या 'शुद्धता विचारे ध्यावे०'का रटन करते-करते वापस लौटनेकी आज्ञा हुई थी।

इसी प्रकार अर्बुदादेवी, सनसेट पॉइन्ट, रामकुण्डपर देडकीशिला, क्रॉस पॉइन्ट, पाण्डव गुफा, ट्रेवर सरोवर और वसिष्ठ आश्रम आदि स्थानोंपर घण्टोंतक भक्तिका रंग जमता और सबको अद्‌भुत धर्मका रंग चढ़ता।

वसिष्ठ आश्रममें आत्मसिद्धिकी पूजा चल रही थी तब प्रभुश्री अत्यंत उल्लासमें आकर—

+"कोई माधव लो, हांरे कोई माधव लो।
माधवने मटुकीमां घाली, गोपीजन लटके चाली।
हांरे कोई माधव लो, अचल प्रेमे माधव लो॥"

इस प्रकार स्वयं बोल उठे। फिर उपदेश दिया, "भक्ति तो अच्छी हुई। निर्जरा हुई, पर प्रेम नहीं आया, प्रीति नहीं हुई। किसपर? एक आत्मा पर प्रेम प्रीति करनी है।"

जब सभी वापस निवासपर लौट आये तब सबसे पूछा, "वहाँ क्या देखा? किसकी इच्छा की? आत्मा देखा? किसीने आत्मा देखा?"

इस प्रकार लगभग तीन मास आबू रहकर ज्येष्ठ वदी ८के दिन प्रभुश्री वहाँसे सिद्धपुर श्री रत्नराज स्वामीके आश्रममें आये और वहाँ एक-दो दिन रुककर अहमदाबाद होते हुए आश्रममें लौटे।

★★★

२१

सं.१९९२ के माघ सुदी १५ से प्रभुश्रीका स्वास्थ्य नरम हुआ। डॉक्टरोंने संपूर्ण आराम करनेको कहा। दर्शन, बोध, समागम सर्व लाभ बंद हुए। बादमें मात्र दिनमें एक बार दर्शन करनेका खुला रखा।

+ गोपियाँ माधव अर्थात् कृष्णरूपी दहींको मटकीमें डालकर बेचने चली है। माधवको लेकर नखरे करती हुई अदापूर्वक गलियोंमें घूम रही है और चिल्ला रही है कि कोई माधव लो, अचल प्रेम रूपी किंमत देकर माधव ले लो। भावार्थ यह है कि भगवान ऊपर अचल प्रेम करनेसे भगवानकी प्राप्ति होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार सेठ श्री जेसंगभाईने कहा, "प्रभु! बालकोंको प्रसाद मिलता है और हमारी प्रसादी बंद हो गयी।"

प्रभुश्रीने हाथके संकेतसे कहा कि 'बंद नहीं हुई'। फिर वे बोले--

"छोटे बड़े सब आत्मा हैं। स्थान-स्थानपर एक आत्मा ही देखना है। अंजन होना चाहिए, पर कौन सुनता है? कौन ध्यान देता है? किसे कहें? किसीको ही कहा जा सकता है।"

स्वास्थ्य इतना नरम होनेपर भी और सबके मना करनेपर भी क्षेत्रस्पर्शना या उदयवशात् प्रभुश्री चैत्रमें एक सप्ताहके लिए नासिक पधारे थे। वहाँसे चैत्र सुदी ९ को वापस आश्रममें लौटे।

प्रभुश्रीने सहज करुणाशील स्वभावसे परमकृपालुदेव द्वारा उद्धरित मार्गको आश्रमकी स्थापना कर मूर्त स्थायी स्वरूप दे दिया था। अपना वह कार्य पूरा कर मानो जीवनलीलाको समेट लेना चाहते हों इस प्रकार वे सं.१९९२ के चैत्र वदी ५ के पवित्र दिन मार्गको सौंपते हैं--

"यह सब आश्रमखाता है, सेठ चुनीभाई, मणिभाई--दालके साथ ढोकली। कहा नहीं जा सकता। मणिभाई, सेठ, ब्रह्मचारी बहुत समय बाद, यद्यपि शरीर है तब तक कुछ कहा नहीं जा सकता, पर मुख्य ब्रह्मचारीको सौंपना है। (ब्रह्मचारीजीसे) कृपालुदेवके समक्ष जाना। प्रदक्षिणा कर, स्मरण लेने आये तो गंभीरतासे ध्यान रखकर लक्ष्य रखना, पूछना। कृपालुदेवकी आज्ञासे और शरणसे आज्ञा मान्य कराना।"

प्रभुश्रीने श्री ब्रह्मचारीजीको पुनः व्यक्तिगतरूपसे भी इस 'सौंपने'के संबंधमें बताया उस समय "प्रभुश्रीकी वीतरागता, असंगता, उनकी मुखमुद्रा, आँख आदिके फेरफारसे स्पष्ट झलक रही थी मानो वे बोल नहीं रहे हैं, पर दिव्यध्वनिके वर्णनके समान हम सुन रहे हैं ऐसा लगता था : 'मंत्र देना; बीस दोहे, यमनियम, क्षमापनाका पाठ, सात व्यसन, सात अभक्ष्य बताना। तुम्हें धर्म सौंपता हूँ।" (श्री ब्रह्मचारीजीकी संस्मरणपोथी)

फिर चैत्र वदी ६ के दिन प्रभुश्रीजी फरमाते हैं--

"आत्माका मृत्युमहोत्सव है, एक मृत्युमहोत्सव है ।

विश्वभाव व्यापी तदपि, एक विमल चिद्रूप ।
ज्ञानानंद महेश्वरा, जयवंता जिनभूप ॥

एक आत्मा। अन्य कुछ नहीं। उसका महोत्सव। मृत्यु महोत्सव।

सेठ, चुनीभाई, मणिभाई, सोभागभाई, परीख, (काठियावाडवाले) वनेचंद, मण्डल स्थापित किया है कृपालुदेवका। आत्मा धर्म--आज्ञामें धर्म। कृपालुदेवकी आज्ञा। ब्रह्मचारीको भी लिया। सबकी दृष्टिमें आवे वैसी प्रवृत्ति करें। आज्ञा, कृपालुदेवकी जो आज्ञा है सो। आणाए धम्मो आणाए तवो। मूलमार्ग सेठ, चुनीभाई, मणिभाई, परीख, वनेचंदको पकड़नेवाले मानता हूँ। बड़ोंको अच्छा लगे तो अन्यको लेनेका उनका अधिकार है। किसीको लेना न लेना, उसके अनुसार लेवें।

परम कृपालुदेवकी शरण ही मान्य है...सब एकतासे मिलकर रहें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृपालुदेवने मुझे कहा उसके अतिरिक्त बात नहीं। गुरुदेव सहजात्मस्वरूप राजचंद्रजी कृपालु देव हैं। आत्मा है। जैसा है वैसा है...एक मृत्युमहोत्सव। *'धिंग धणी माथे किया रे कुण गंजे नर खेट।' दूसरा अब नहीं...उसीकी श्रद्धा और प्रतीति। बस, आणाए धम्मो आणाए तवो, मुद्दा यही, बात यही है। दूसरी नहीं ली। दृष्टिकी भूल नहीं है। जो है सो है। एक परमकृपालुदेव—[1]'थावुं होय तेम थाजो रूडा राजने भजीए।'

यह पुद्गल है, आत्मा नहीं। संयोग है, संयोगका नाश है। हीराभाई झवेरीको भी लेना है, लगन है। परमकृपालुदेवको पकड़ रखा है। जिसका विश्वास इन्हें मान्य है।

विराम लेता हूँ। विराम लेता हूँ। क्षमा चाहता हूँ। एक आत्माके सिवाय अन्य बात नहीं है। परमकृपालुदेवने कहा था 'मुनियों, इस जीवको (प्रभुश्रीको) समाधिमरण सोभागभाईकी भाँति होगा।' सोभागभाईको जो ध्यान था वही है। अन्य कुछ मान्य नहीं। अन्य कुछ समझते नहीं। परमकृपालुदेव मान्य हैं। पुद्गलका टकराना, राखकी पुडियाँ। फेंक देने योग्य है।

परमकृपालुदेवकी दृष्टिवाले सभीका कल्याण है। भावना ही बड़ी बात है। फूल नहीं तो फूलकी पंखुडी। कृपालुदेवकी दृष्टिपर सब आते हैं। सबका काम हो जायेगा। अन्य लाखों हों तो भी क्या?"

सं. १९९२ की वैशाख सुदी ८ के दिन नित्यनियमानुसार देववंदनकर अन्तेवासियोंको 'अपूर्व अवसर' का पद बोलनेको कहा।

कृपालुदेवका यह भावनासिद्ध पद पूर्ण होनेपर रात्रिको आठ बजकर दस मिनिटपर बयासी वर्षकी आयुमें इस महापुरुषका पवित्र आत्मा परम समाधिमें स्थित होकर, नाशवान देहका त्याग कर परमपदके प्रति प्रयाण कर गया। अनन्तबार अभिवंदन हों इन कल्याणमूर्ति प्रभुश्रीके परम पुनित पदारविन्दको! और उनके द्वारा दरशाये गये दिव्य शाश्वत मोक्षमार्गको!

यों प्रभुश्रीने सं. १९७६ से १९९२ तक आश्रमके जीवनप्राण बनकर उसे सत्संग, भक्ति और मोक्षमार्गसाधनाका अनुपम जीवित धर्मस्थान बनाया और हजारों मोक्षाभिलाषी भव्यात्माओंको सन्मार्ग-सन्मुख किया।

उन्होंने संसारतापसे संतप्त भव्योंको शीतल करने हेतु निष्कारण करुणासे प्रसंगानुसार जो-जो बोधवृष्टि की, उस बोधामृतवर्षामेंसे समीपवर्ती मुमुक्षुओंने कभी-कभी यत्किंचित् यथाशक्ति ग्रहण कर जो संग्रह किया वही इस उपदेशामृतमें प्रगट हुआ है।

अध्यात्ममूर्ति, परमज्ञानावतार, सनातन वीतरागमार्गोद्धारक अपने सद्गुरु श्रीमद् राजचंद्रसे आत्मज्ञानदशा प्राप्त कर प्रगट अन्तरात्मा होकर विचरते हुए परम पूज्य श्री प्रभुश्रीजीकी उत्तरावस्थाका जीवन, इस आश्रममें उनके स्वरूपजीवन संबंधी अविरत चले आ रहे बोध (यह

---

* **भावार्थ**—समर्थ पुरुषको सिरपर रखा है फिर जगतकी क्या चिंता?

१. **अर्थ**—जो होना हो सो हो—हम तो उत्तम राजको भजते रहेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशामृत), तथा अपने सद्गुरु श्रीमद् राजचंद्रजीके प्रति एकनिष्ठता--एक आश्रितता--अनन्य श्रद्धापूर्वक अधीन रहकर उनकी परमात्मभक्तिमें प्रतिबिम्बित होता है। उनकी संगतिमें आनेवाले प्रत्येक मुमुक्षु जीवको तथा उनके देहावसानके बाद आश्रममें आनेवाले प्रत्येक मुमुक्षुजीवको इसी प्रकार उत्तम रीतिसे सत्धर्म (आत्मधर्म)की आराधना करने, प्राप्त करनेका पुनः पुनः जीवनपर्यंत उन्होंने निर्देश दिया है, उसे प्रत्येक मुमुक्षुको बहुत बहुत प्रकारसे विचारकर आचरणमें लाना चाहिए।

मानवजीवनके आध्यात्मिक विकास और उद्धारके लिए बृहत् गुजरातने एक नहीं किन्तु अनेक ज्योतिर्धरोंको उत्पन्न कर गुजरात और आर्यावर्तको पावन किया है। श्री नेमिनाथ, श्री राजेमति, श्री कृष्ण, श्री हेमचंद्र, आनन्दघनजी, यशोविजयजी, देवचंद्रजी, चिदानन्दजी आदि गुजरातके घर-घरमें सुप्रसिद्ध हैं। इनके मीठे झरनोंका पानी पीकर अनेक भव्यात्मा इस पृथ्वीपर अमरपंथकी ओर बढ़ रहे हैं।

+ आशा ओरनकी क्या कीजे?
ज्ञान सुधारस पीजे. आशा०
भटके द्वार द्वार लोकनके,
कुक्कर आशाधारी;
आतम-अनुभवरसके रसिया,
ऊतरे न कबहु खुमारी. आशा०

आदि सबने अपनी-अपनी आत्मदशाकी लाक्षणिक शैली और जीवित समस्या द्वारा मुक्तिका और उसके पथका--शान्तिका और उसके सुखका--इस जगतको संदेश पहुँचाया है।

इस शताब्दीमें परमकृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्र और मुनिश्री लघुराज स्वामीने परमपदकी प्राप्तिके लिए अपना जीवन अर्पण कर गुजरातके धुरंधर ज्योतिर्धरोंकी शृंखलामें अपना अद्वितीय स्थान प्राप्त कर मानवजीवनको सदैवके लिए अपनी अमूल्य विरासत प्रदान की है। ऐसे निष्काम महात्माओंको अति विनम्रभावसे पुनः पुनः अभिवंदन हो! और उनके अचिन्त्य योगबलसे जगतका कल्याण हो!

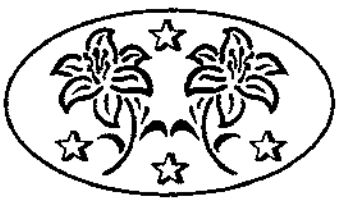

+ दूसरोंकी आशा करनेकी क्या आवश्यकता है? हम ज्ञानसुधारसके स्वामी है, तो उसीका पान करना चाहिये। अपने पास ज्ञानरूपी धन होने पर भी यह अज्ञानी जीव कुत्तेकी तरह आशावश लोगोंके द्वार-द्वार पर भटकता है। जो आत्माके अनुभवके रसके रसिक हैं वे तो अपनी मस्तीमें ही रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्ति

(शिखरिणी)

[१]अहो! आत्मारामी, मुनिवर लघुराज प्रभुश्री,
कृपाळुनी आज्ञा, उर धरी करी व्यक्त शिवश्री;
तमे उद्धार्या आ दुषम कलिकाले जन बहु,
कृपासिंधु वंदुं, स्वरूप-अनुभूति-स्थिति चहुं. १

[२]कृपालुनी आज्ञा, मुज उर विषे निश्चल रहो,
गुरु ज्ञानी योगे, भवजल तणो अंत झट हो,
सदा सेवी एना विमल वचनामृत ऋतने,
सदानंदे मग्न भजुं हुं सहजात्मस्वरूपने. २

(वसंततिलका)

[३]श्री राजचंद्र गुरुवर्यतणा प्रतापे,
अध्यात्मज्ञान प्रगटावी प्रभुश्री आपे;
वर्षावी बोधतणी अमृतवृष्टि आ जे,
थाओ मुमुक्षुजनने शिवसौख्य काजे. ३

[४]जे भव्य आ जीवन ज्ञानीतणुं सुणीने,
संभाळशे सहज-आत्मस्वरूप-श्रीने;
संसार-सागर अपार तरी जशे ते,
शांति समाधि सुख शाश्वत पामशे ते. ४

---

१. अहो! आत्मामें रमण करनेवाले मुनिवर लघुराज प्रभुश्री! आपने कृपालुदेवकी आज्ञा हृदयमें धारण कर शिवश्रीको प्रकट किया, इस दुषम कलिकालमें बहुत जीवोंका उद्धार किया। ऐसे आप कृपासिंधुको नमस्कार कर मैं स्वरूपानुभूतिमें स्थिति चाहता हूँ।

२. कृपालुदेवकी आज्ञा मेरे हृदयमें निश्चल रहो, ज्ञानी गुरुके योगसे मेरे भवसमुद्रका शीघ्र ही अंत हो तथा इनके विमल वचनामृतको आत्मसात् कर सदानंदमें मग्न होकर अपने सहजात्मस्वरूपको भजूँ ऐसी मैं भावना करता हूँ।

३. श्री राजचंद्र गुरुवरके प्रतापसे आप प्रभुश्रीने अध्यात्मज्ञानको प्रकट कर बोधकी जो अमृतवृष्टि की है वह मुमुक्षुजनोंको शिवसौख्यकी प्राप्तिमें कारणभूत होओ।

४. जो भव्य जीव यह ज्ञानीका जीवनवृत्त सुनकर अपने सहजात्मस्वरूप-लक्ष्मीको सँभालेगा वह अपार संसारसागरको तिर जायेगा और शाश्वत शांति—समाधिसुखको संप्राप्त होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

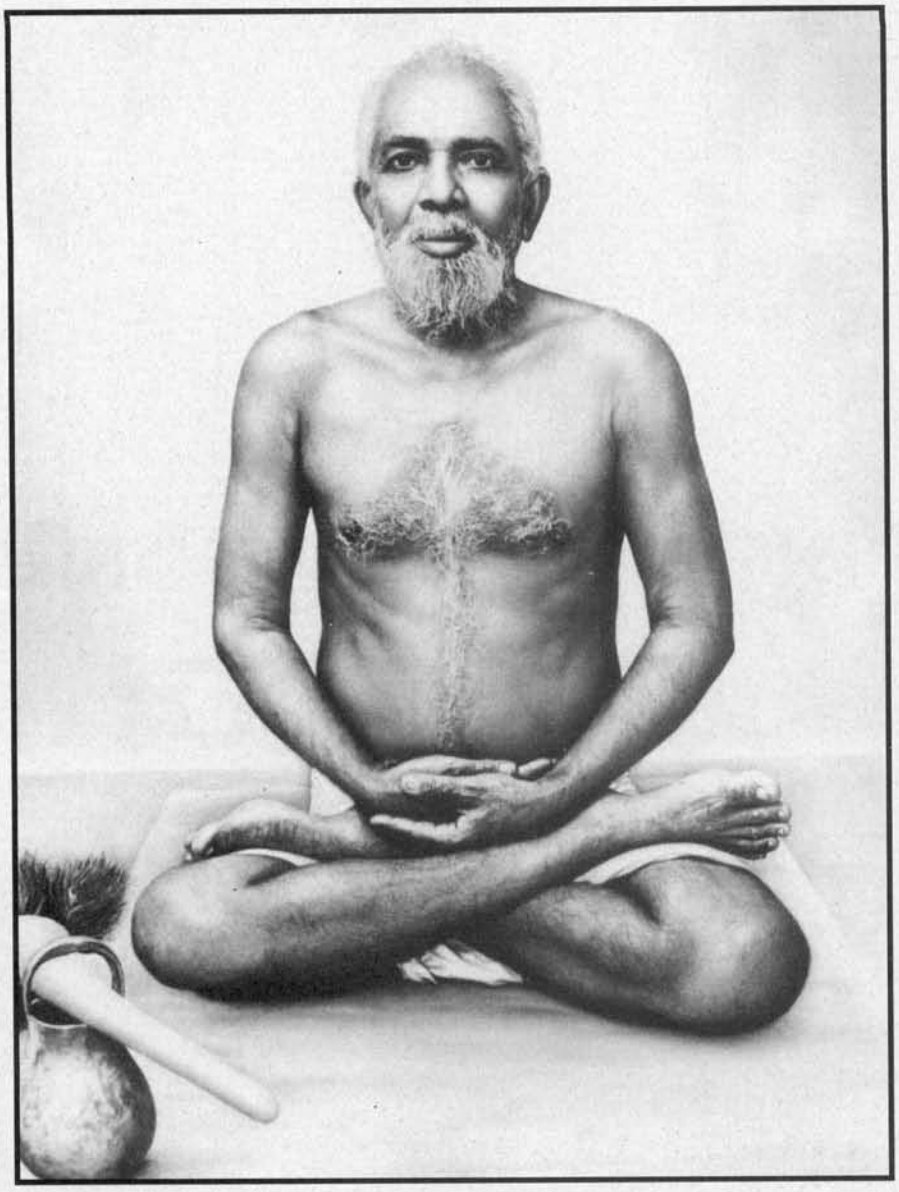

श्रीमद् लघुराज स्वामी

जन्म : वटामण
वि.सं.१९१० आश्विन वद १

प्रव्रज्या : खंभात
वि.सं. १९४०

देहोत्सर्ग : अगास आश्रम
वि.सं.१९९२, वैशाख सुद ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद् लघुराजस्वामी (प्रभुश्री)

उपदेशामृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद् लघुराजस्वामी (प्रभुश्री)

उपदेशामृत

☆

पत्रावलि–१

☆

१* चैत्र सुदी ६, सोम, १९५१

ॐ

उन पूर्णानन्दी महात्माको त्रिकाल नमस्कार!

हे भगवान! इस दास पर अत्यंत दया कर अपूर्व मंत्र बताकर सारे जगतको भ्रम बताया, वह ऐसा तो असर कर गया है कि मेरे उन प्रभुने-गुरुने जो कहा है वही सत् है। इसलिए मुझे अन्य किसीपर श्रद्धा होती ही नहीं है। एक प्रभु–सच्चे हरि प्रभु–में भिन्नभाव नहीं है, गुरु-परमात्मामें भिन्नभाव नहीं है। उनके बिना सारा दृश्य जगत भ्रम है, अतः हे प्रभु, यदि इस बालकको कहने योग्य कोई बात हो तो आप उसे लिखकर बतानेकी कृपा करेंगे, क्यों कि अन्य किसीका कहा हुआ या अन्य किसीसे सुना हुआ मेरे अन्तःकरणमें नहीं उतरता। आप जो लिखेंगे और कहेंगे वह बात सत् है, वह कथन सही है। इससे मुझे विश्रान्ति मिलती है। मुझे अनुभवसे यदि खरा लगे तो भी यों रहा करता है कि प्रभु स्वीकारें और कहें कि यह इस प्रकार है, तब शान्ति होती है अन्यथा चित्त विकल्पमें रहता है।

हे प्रभु! इस समय तो मुझे आपके वचनामृतका ही सच्चा आसरा है। आपका उपदिष्ट बोध स्मृतिमें आता है और आपकी ही शरण है। वैसे हे प्रभु, यदि मुझे आपके बोध और मार्गका भान न होता तो इस संसारसमुद्रमें भटक मरता, गोते लगाता रहता। धन्य है हे प्रभु! आपकी पवित्रताको कि इस रंक किंकरका उद्धार किया। आपकी शरणसे ही मुझे विश्रान्ति प्राप्त होगी।

★★★

२ कार्तिक सुदी ५, बुध, १९५२

श्री कृपालुनाथको त्रिकाल नमस्कार!

हे प्रभु! 'छह पद'की देशना दी वह मैंने कण्ठस्थ कर ली है, और प्रतिदिन उसके लिए यथासम्भव पुरुषार्थ करूँगा। पर हे नाथ! मैं ज्यों ही पुरुषार्थ करना प्रारम्भ करता हूँ त्यों ही वहाँ बखेड़ा खड़ा हो जाता है। कुछ-कुछ संकल्प-विकल्प आते हैं उन्हें निकालता हूँ। रात-दिन हमेशा संग्राम चलता है। फिर दोष देखता हूँ। प्रभु, मैं झगड़ा मचा रहा हूँ। इधरसे उधर और उधरसे इधर परिणामोंको कुरेद रहा हूँ; परंतु फिर उधरसे नये प्रविष्ट हो जाते हैं। पुनः उनका सामना करके तिरस्कार करता हूँ तब वे भाग जाते हैं।

---

* ये प्रथम तीन पत्र श्रीमद् लघुराज स्वामी द्वारा श्रीमद् राजचंद्रको लिखे गये पत्रोंमेंसे लिये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे प्रभु! आपके वचनोंको धन्य है! हे माई-बाप! आपका आधार है। हे प्रभु! आपके अमृततुल्य वचनोंका इस रंकको योग मिला, जिससे हे प्रभु! थोड़ी शान्ति हुई। अन्यथा हे नाथ! मेरी कोई गति नहीं थी। हे प्रभु! आपकी शरण भव-भवमें प्राप्त हो। हे नाथ! निराधारके आधार, हे प्रभु! जब एक आपकी शरण ग्रहण करता हूँ तब संकल्प-विकल्प बंद होते हैं, और उससे परम शांति मिलती है। जिससे वैरी मात्रका नाश होता है और तब मुझे अच्छा लगता है। जब द्वन्द्वपूर्ण वृत्तियोंमें मुझे कुछ चैन नहीं पड़ती तब एक ध्यानसे प्रभुकी शरण ग्रहण करता हूँ, तो सुख प्राप्त होता है। फिर जब चित्त भी भटकता होता है तब भी एक प्रभुकी शरण जितनी देर स्मृतिमें रहती है उतनी देर आनन्द रहता है। फिर कषायादि जो विषाद किसी वचनके सुननेसे उठता हो और भुलाया न जाता हो तथा खेद होता हो, उसका उपाय भी हे प्रभु! जब एकाग्रतासे प्रभुमें चित्त लगाता हूँ तब शान्ति होती है। हे नाथ! ऐसी अपूर्व वस्तु आपने मुझे दी है। हे नाथ! उसके बिना मेरी किसी प्रकार रक्षा नहीं होती। भव-भवमें आपकी शरण हो, प्रभु आपकी। यही विनती है।

★★★

३ श्रावण वदी ५, बुध, १९५३

श्री प्रगट सद्गुरु देव सहजात्मस्वरूप, त्रिकाल नमस्कार!

इस संसारके प्रसंगमें मोहममत्व द्वारा व्यवहारमें आसक्त वृत्तिको अटकानेवाला, पाँच इन्द्रियोंके विषयोंको रोकनेवाला, कषायोंके मन्द होनेका हेतु, एक मात्र सत्पुरुषके उपदेशसे प्राप्त बोध परम कल्याणकारी है। जब तक यह जीव उस सद्बोध और सद्गुरु-कथित सत्शास्त्रोंका अवगाहन नहीं करता तब तक उसको बाह्य वृत्ति रहती है।

★★★

४ करमाला, जि.सोलापुर

ॐ (चातुर्मास) सं.१९५८

तत् सत्

श्रीमद् परम वीतराग सद्गुरुदेवको नमोनमः

मुनिश्री लक्ष्मीचंदजी आदि मुनिवरोंके प्रति,

अत्र स्थित मुनिश्री आदिके यथायोग्य नमस्कार प्राप्त हों। मुनिश्री देवकीर्णजीके देहत्याग होनेके समाचार तारसे जानकर खेद हुआ है। और आपको भी खेद होना संभव है।

मुनिवर श्री देवकीर्णजी आत्मार्थी, मोक्षाभिलाषी थे। उन्हें आत्मस्वरूपका लक्ष्य करनेकी इच्छा थी, वह गुरुगमसे प्राप्त हुई थी। और अशुभ वृत्तिका अभाव करके शुभ वृत्ति रखनेमें पुरुषार्थ करनेकी इच्छाको वे लक्ष्यमें रखते थे। धन्य है ऐसे आत्माको! आत्मपरिणामी होकर विचरण करनेवाले उस आत्माके प्रति नमस्कार हो! नमस्कार हो!

दूसरे, परम सत् वीतराग गुरुदेवकी तो यह आज्ञा है कि हे आर्य! अन्तर्मुख होनेका अभ्यास करो, अन्तर्वृत्ति करो। "देहके प्रति जैसा वस्त्रका संबंध है वैसा आत्माके प्रति देहका संबंध जिसने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथातथ्य देखा है, म्यानके प्रति तलवारका जैसा संबंध है, वैसा ही जिसने देहके प्रति आत्माका संबंध देखा है, अबद्ध स्पष्ट आत्माका जिसने अनुभव किया है, उन महापुरुषोंको जीवन और मरण दोनों समान हैं।" उन सत्पुरुषोंको नमस्कार हो! नमस्कार हो! "सम्यक् प्रकारसे वेदना सहन करनेरूप परम धर्म परम पुरुषोंने कहा है। तीक्ष्ण वेदनाका अनुभव करते हुए स्वरूपभ्रंश वृत्ति न हो यही शुद्ध चारित्रका मार्ग है। उपशम ही जिस ज्ञानका मूल है उस ज्ञानमें तीक्ष्ण वेदना परम निर्जरारूप भासने योग्य है।"

मुनि देवकीर्णजीको प्रबल वेदनी कर्म भोगते हुए, मरणांतिक उपसर्ग जैसे अवसर पर भी समताभाव रखनेसे कर्मनिर्जरा हुई है। क्या वे उस अवसरपर या अन्तिम समयमें कुछ बोले थे? सूचित करें। मुनि लक्ष्मीचंदजी आदि मुनिवरोंको उन मुनिश्रीका समागम संयममें सहायकारी था, वैराग्य-त्यागकी वृद्धिमें कारणभूत था। हमें भी उसी कारणसे खेद होता है, पर अब वह खेद करना योग्य नहीं है। हमें और आपको एक सद्गुरुका आधार है, उन्हींकी शरण है। उस परम सत्संग, परम सत्की शरणसे आत्माको देहसे भिन्न जानकर स्वरूपस्थित होना योग्य है। इसीलिए इस मनुष्यदेहमें जन्म सफल करनेका, अपना उद्धार करनेका अवसर आया है।

भगवानने ऐसा योग मिलना दुर्लभमें दुर्लभ कहा है, सो भूलने जैसा नहीं है। हम इस देशमें आये तब बहुत सोच-समझकर ही मुनि देवकीर्णजीको आपके समागममें छोड़कर आये थे, जिससे कि आपको किसी प्रकारका खेद न हो, और हमें थोड़े समय निवृत्ति क्षेत्रमें विचरना था, उसमें उदय बलवान कि हमारी भी कल्पनासे बाहर इस देशमें आना हुआ है। यह भवितव्यतानुसार हुआ। इतनेमें आप और हमसे उन मुनिश्रीका वियोग हुआ। यह सोचकर अब खेद नहीं करना चाहिए, क्योंकि मरण तो प्रत्येक प्राणीको आता है। हमें भी ऐसा दिन आनेसे पहले सावधान होने जैसा है। प्राणीमात्र सभी अपने-अपने शुभाशुभ कर्मानुसार गति-आगति करते हैं। ऐसा जानकर हमें देहका भरोसा करने योग्य नहीं है। नाशवंत देहका विश्वास रखने जैसा नहीं है। यह देह किसी कामकी नहीं है। किसी संतपुरुषके योगसे एक सेवाभक्ति हो सके तो कल्याणकारी है। इस जीवने देहके कारण, देहके लिए अनन्तकाल तक आत्माको बिताया है, परंतु आत्माके लिए इस देहको बिताये तो परम कल्याण हो, सहज ही आत्मज्ञान सुलभ हो। अनादिका जो अज्ञान है उसके नाश होनेका अवसर आया है। किन्तु इस जीवकी मूढ़ताको धिक्कार है! अत्यंत खेदजनक है। सब भूल जाने जैसा है। उस धर्मका नाश नहीं हुआ है, अतीत, अनागत और वर्तमानमें वैसा नहीं हुआ है। जो नाशवंत है उसे देर-सबेर छोड़ना ही है। हमें भी बैठे नहीं रहना है। एक दिन आगे-पीछे चले जाना है ऐसा जानकर, खेद करना उचित नहीं है। हे मुनिवरों! आपको जो खेद मुनि देवकीर्णजीके वियोगका है उस खेदको त्याग-वैराग्यमें लगाना योग्य है। तथा मरणको सदा स्मृतिमें रखकर क्षणभर भी भूलने जैसा नहीं है ऐसा ज्ञानी सत्पुरुषका कथन है यों समझकर प्रमादको छोड़, भक्ति वैराग्य और शास्त्रका पठन, विचार एवं अवलोकन कर ध्यानमें लेना उचित है। जिसके द्वारा परभाव विस्मृत हो वह कर्तव्य है। साथ ही रसादिका त्याग करना योग्य है। हे मुनिवरों! महात्मा पुरुषोंने कहा है वह याद करने जैसा है कि—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]"प्रीति अनंती परथकी, जे तोडे ते जोडे एह;
परम पुरुषथी रागता, एकत्वता दाखी गुण-गेह."

ऐसा सद्गुरुदेवका भी कहना है उसे याद कर, पाँचवें सुमतिनाथका श्री आनंदघनजीकृत स्तवन कण्ठस्थ करके विचारणीय है एवं तदनुसार आचरणीय है।

★★★

५ भाद्रपद वदी ७, शनि, १९५८

यथातथ्य स्वरूपको प्राप्त उस पुरुषकी श्रद्धा, सन्मुख दृष्टि, उस सद्गुरुकी आज्ञाको त्रिकरणयोगसे साधते हुए, प्रतिसमय जो उस धर्ममें परिणमन कर रहे हैं उन्हें नमस्कार हो! नमस्कार हो!

दूसरा कुछ मत खोज। एक सत्पुरुषके प्रति एकनिष्ठतासे, उनके वियोगमें भी सर्व योग अर्पण कर जो आत्मजागृतिमें अखण्ड रहे हैं, उनकी आज्ञासे यथार्थ स्वरूपको जाना है, श्रद्धा की है, अनुभव किया है, अनुभव करते हैं, जो त्रिकालमें वही है उस यथातथ्य स्वरूपको जाननेवालेकी प्रतीति कर्तव्य है। जिसने उस स्वरूपको नहीं जाना है उसे, देवाधिदेव परमकृपालुदेवने जिस आत्मस्वरूपको जाना है, उसी स्वरूपकी भावनासे, सच्चे आत्मभावसे वही मुझे हो, वही मुझे मान्य है, ऐसा विचार कर 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' के प्रति ध्यान क्षण क्षण स्मृतिमें रखनेकी भावनासे रहना योग्य है जी।

ज्ञानीपुरुष उदयमें आये हुए कर्मोंको समभावसे सहन करते हैं। नरकादिककी अनन्त वेदना उदयमें आनेपर जीवने भोगी है। साता-असाता दोनोंका अनुभव सत्पुरुषके बोधसे विचारने योग्य है। कुछ भी विकल्प करने जैसा नहीं है, मात्र एक स्मरण कर्तव्य है। द्रष्टा रहकर प्रवृत्ति करनी चाहिए। जो दिखायी दे रहा है वह तो जानेवाला है, ऐसा विचारकर जूठाभाईको लिखा गया जो पत्र है, जिसमें मैं तुम्हारे समीप ही हूँ यों समझकर जागृतिमें रहनेका अनुरोध ज्ञानीपुरुषने किया है वह पत्र, एवं--

"भीसण नरयगइए, तिरियगइए कुदेवमणुयगइए ।
पत्तोसि तिव्व दुक्खं, भावहि जिणभावणा जीव ।।"

पूज्य वनमालीभाईके नाम लिखा* पत्र है उसे विचारियेगा।

★★★

६ नाना कुंभनाथ, नडियाद
अषाढ़ सुदी ६, १९७०

तत् ॐ सत्

शरीर-प्रकृति दिन-प्रतिदिन अपना धर्म निभा रही है। उसमें अन्तर्वृत्ति तो असंग रहनेके विचारवाली है। और फिर, जैसे जनसमूहका परिचय कम हो वैसे ठीक रहता है। उपाधि अच्छी

१. पर पदार्थोंकी अनन्त प्रीतिको जो तोड़ता है वही (उस अनन्त प्रीतिको) आत्मामें जोड़ता है और वही जीव परम पुरुषके गुण-गेह (गुणोंके घर) में एकत्व कर उनमें अनुराग-परम प्रेम करता है।

* पत्रांक ९१३ 'श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं लगती। उसमें प्रारब्ध, संचय-अनुसार आ मिलता है। उसे हरि-इच्छासे सुखदायक मानते हैं। उदयाधीन वर्तन करते हुए समभावी रहा जा सके ऐसे पुरुषार्थका विचार रहता है।

★★★

७ नडियाद, अषाढ़ वदी ११, रवि, १९७०

ॐ ता.१९-७-१४

तत् सत्

परमकृपालुने इसे दुषमकाल कहा है ऐसा यथार्थ अनुभव हो रहा है। इस कालको देखते हुए खिन्न होने जैसा है। आपने लिखा कि अपना करके चले जाना सो ऐसा ही है। अब अन्यत्र दृष्टि करना योग्य नहीं। आकाश फटनेपर थिगली कहाँ लगाना? ऐसा आपने लिखा था सो भी बराबर है।

★★★

८ उमरेठ, मार्गशीर्ष, १९७१

तत् ॐ सत्

महात्मा पुरुषोंके देहकी रक्षा आत्मार्थी भाविक मुमुक्षु पुरुषको अवश्य करनी चाहिए। परंतु कालकी कठिनताके कारण क्या लिखूँ? लिखा नहीं जा सकता। *'पर्याय दृष्टि न दीजीए, एक ज कनक अभंग रे।' हे प्रभु! धूप वहाँ छाया। जैसे गाड़ीका पहिया गोल घूमता है तब ऊपरका नीचे और नीचेका ऊपर होता रहता है, वैसे ही साता-असाता उदयरूप कर्मको भाविक आत्मा देखता रहता है, उसमें हर्षविषाद या खेद नहीं करता। समभावपूर्वक भोगते हुए शांतिसे साक्षीरूपसे रहता है। आप तो एकाकी भावसे द्रष्टारूप आत्मा होकर रहते हैं, शांत, दांत गुणी हैं। धन्य है आप प्रभुको! ऐसे सत्पुरुषकी पहचान इस जगतके जीवोंको होना बहुत कठिन है। किसी महान पुरुषके योगसे उसका पता लगता है। हे प्रभु! सत्पुरुषकी भक्ति, उनके गुणोंका चिंतन, उनकी श्रद्धा, उनके वचनामृतका पान-भक्ति करता है इसलिये वह हमें मान्य है। ऐसे भाविक आत्माओंको नमस्कार! वे कृतकृत्य! धन्य हैं! धन्य हैं!

हे प्रभु! सनत्कुमार चक्रवर्तीको सोलह महारोगोंका उदय था। उन महात्माने समभावसे सहन कर अपना कल्याण कर लिया। वैसे आप भी शांतभावसे वेदनाको भोगकर, परीषह-उपसर्गको धीरजसे सहन कर आत्मकल्याण करते हैं अतः आपको धन्य! धन्य! कहकर वंदन करता हूँ।

हे प्रभु! अब तो हम दोनों एक क्षेत्र पर सन्तसमागममें साता-असाता, सुख या दुःख समपरिणामसे भोगकर काल व्यतीत करेंगे, ऐसा मनमें आ जाता है।

★★★

९ चकलासी, मार्गशीर्ष वदी २, शनि, १९७१

आपको जो सूचित करना था वह पहले पत्रमें लिखा था, अब इस पत्रसे फिर ध्यानमें लीजियेगा। लिखना यह है कि कृपालुदेव प्रभुकी आज्ञा आपको है। उसे ध्यानमें रखकर द्रव्य, क्षेत्र,

* स्वर्णकी पर्यायोंपर (सोनेकी नाना प्रकारकी, कुंडल, मुद्रिका, कंकण आदि अवस्थाओं पर) दृष्टि न करें; सर्व अवस्थाओंमें स्वर्ण तो वही है, उसका भंग (नाश) नहीं है। इसी प्रकार जीवकी नर, पशु आदि अनेक पर्यायें होती हैं परंतु सर्वत्र आत्मा वैसाका वैसा वही है, उसका नाश नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल, भावके अनुसार जिस क्षेत्रमें विचरनेसे आत्महित होता हो उस प्रकार अप्रतिबद्धता, असंगता, जगतके सर्व भावोंके प्रति उदासीनता रखकर, हृदयको निर्मल कर, सम्पूर्ण विश्वको चैतन्यवत् देखनेके विचारमें मनको जोड़ें। और श्री सद्गुरुकी मुद्राका वीतराग भावसे ध्यानमें अवलोकन करते रहें। सुख-समाधि शांतिसे विचरें।

मुनि...को, मेरे आत्मभावपूर्वक यथायोग्य नमस्कार प्राप्त हों, ऐसा कहकर कहियेगा : "आप तो महा गुणी हैं! परम आत्मार्थी हैं! आपश्रीने कृपालुदेव प्रभुकी श्रद्धा, रुचि, आस्था ग्रहण की, अतः आप कृतकृत्य! धन्य धन्य हैं! धन्यवादपूर्वक परम उल्लासभावसे आप आत्माके प्रति नमस्कार हो! नमस्कार हो! आप तो अवसरको पहचानते हैं। वहाँ मुनिश्री मोहनलालजीके पास रहकर यथासम्भव आत्महित, कल्याण हो वैसा करें। आत्माका कल्याण करें यही मेरी आशिष है, आपकी जय हो!"

★★★

१० नडियाद, सं.१९७१ ई.स.१९१५

तत् ॐ सत्

आपश्री सदा आनन्दमें रहें। कृपालुदेव सबकी सँभाल लेते हैं। द्रष्टा बनकर देखते रहें। जगतके सर्व भावोंको भूल जानेका प्रयत्न करें। सर्व भावोंके प्रति उदासीनता अर्थात् समभाव रखकर, हृदयको निर्मल करके, सारे जगतको चैतन्यवत् देखनेके विचारमें मनको लगायें। इन प्रभु अर्थात् कृपालुदेव श्रीसद्गुरु प्रभुकी मुद्राछविको हृदयमंदिरमें स्थापन कर, खड़ी कर, मनको वहाँ पिरो देवें। परमशुद्ध चैतन्यके निवासधामरूप श्रीसद्गुरुकी पवित्र देह, उसका वीतरागभावपूर्वक ध्यान करनेसे भी जीव शांतदशाको प्राप्त होता है, यह भूलने योग्य नहीं है। गुरु कृपासे सब आ मिलेगा।

★★★

११ नडियाद, सं.१९७१ ता.१०-३-१५, शनि

यह देह आत्मार्थमें, आत्मकल्याणमें बिताना है यह मुमुक्षुओंको भूलने जैसा नहीं है। जीवने अनन्त देह धारण किये हैं। जो जो देह धारण किये उन उन देहोंमें उसने ममत्वबुद्धि की है, और उसके साथ देहके संबंधी—स्त्री, पुत्र, पिता, माता, भाई, कुटुम्बादिमें गाढ़ स्नेहसे ममत्वबुद्धि कर अनन्तकालसे आत्माको भटकना पड़ा है। परंतु इतनी देह यदि सर्व ममत्व छोड़कर आत्मार्थमें लगाये तो नवीन देह धारण करना नहीं पड़ेगा। इस ममत्वको छोड़नेका निमित्त सत्संग, सत्शास्त्र है। निवृत्तिके समय उसका योग मिलावें। यहाँ सत्समागममें जंगलमें निवृत्तिके समय हुई बातें विशेष विचारणीय है। परमात्मा भक्तोंको मोक्ष देनेकी अपेक्षा भक्ति देनेमें कृपण है, और भक्तको तो परमात्माकी भक्ति ही उसका जीवन है। बस यही।

"शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम ।
बीजुं कहीए केटलुं? कर विचार तो पाम ॥"

जीवको बोधकी आवश्यकता है जी।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२ नडियाद, ज्येष्ठ वदी १२, शुक्र, १९७१

"आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे"[२]

द्रष्टा सम भेदज्ञानके, संयमी बनो, संयमी बनो।

हे आर्य! शांतभावसे रहें। शांतिः शांतिः

★★★

१३ नडियाद, अषाढ़ वदी ९, बुध, १९७१

आत्मसमाधि, आत्मभावका विचार और उसमें वृत्ति करनेके लिए पुरुषार्थ है। मुख्य तो वृत्तिको परभावमें जानेसे रोकना, आत्मभावमें रखना।

दोहा– "जनम-मरणका दुख सकल, मेटण समरथ सोय;
ज्ञानी सो ही समरिये, ता सम ओर न कोय. १
ज्ञानी सद्गुरु बिन मिला, माया मारे कोड;
चोरासी लख जीवडा, सकल रह्या कर जोड. २

★★★

१४ नडियाद, आश्विन सुदी ८, १९७१

हे प्रभु! हरीच्छासे शांत रहेंगे। धीरजसे, जैसा होने योग्य होगा सो हो जाय, उसे देखते रहेंगे- द्रष्टाके रूपमें।

★★★

१५ नडियाद, ता.९-८-१५, सं.१९७१

आपको जो सत्मार्गकी इच्छा है, जिसे आपने अन्तःकरणसे दर्शायी है, वह भावना कर्तव्य है। भविष्यमें आपको उस भावनासे लाभ होगा ऐसा लगता है। सत्संग बड़ी वस्तु है यह आपके लिए विचारणीय है। प्राणीमात्रको सुखकी इच्छा है, और दुःखोंसे मुक्त होना है ऐसा विचारकर अनेक प्रयत्न करते हैं, अथवा अनेक दर्शनसे जीव दुःखसे मुक्त होते हैं ऐसा समझकर अपने मतका आग्रह कर धर्म करते हैं, परंतु 'धर्म' क्या वस्तु है इसका उन जीवोंको भान नहीं है। इस विषयमें *वचनामृतमें श्री कृपालुदेवने फरमाया है।

यह पत्र पढ़कर आपको जो समझमें आये वह बताइयेगा।

'आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे'

★★★

१६ काणीसा, चैत्र सुदी ४, गुरु, १९७२

इसके सिवा, अब आपको स्मृतिमें रहनेके लिए सूचना लिख भेजता हूँ। हे प्रभु! आपका हृदय कोमल है, सरल, बहुत भावनाशील है, अतः लिखता हूँ–

हम ऐसी विशेष आज्ञा नहीं देते कि जो आत्माको बाधक हो। साक्षात् अपने आत्माके समान जानकर, अन्यको बाधक हो ऐसी आज्ञा हम नहीं देते, इसी तरह हमें भी बाधक हो वैसा नहीं

* पत्रांक ७५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते। अतः इसे ध्यानमें—लक्ष्यमें रखकर सुख-समाधिमें आत्मभावसे-भावनासे रहियेगा। कोई चिंता न कीजियेगा। 'फिकरका फाँका भरा ताका नाम फकीर।'

*डगमग ठाली शाने करे, तारुं धार्युं न थाय;
गमतुं थाशे गोविंदनुं, कोनुं जाण्युं न जाय. १
ऋण संबंधे आवी मळ्यां, सुत, वित, दारा, देह;
लेवा-देवा ज्यारे मिटे, मार्ग लागशे तेह. २
निश्चे जाणो रे'वुं नथी, जूठो जग-विश्वास;
अेहथी रहेजे तुं अलगो, आठे पहोर उदास. ३
फोगट फंद संसारनो, स्वारथनो छे स्नेह;
अंते कोई कोईनुं नथी, तुं तो तेहनो तेह. ४
खोळ्ये खोटुं सर्वे पडे, न जडे नाम ने रूप;
बांधी रूंधी ऊभुं कर्युं, जेवुं काष्ठस्वरूप. ५
संशय तेने शानो रह्यो, जेने ब्रह्मविचार;
अग्नि उधेई अडे नहीं, रवि नहि अंधकार. ६

★★★

१७　　नार, ता.७-५-१६, रवि, सं.१९७२

आप हमारे संबंधमें चिंता न करें। जिसे सद्गुरु परमकृपालु योगीन्द्र प्रभुकी शरण है उसे किसी बातकी कमी नहीं है। उसे सर्व वस्तु मिल गई है। सद्गुरुकी कृपादृष्टि ही कल्याण है, सत्पुरुषकी सर्व इच्छाकी प्रशंसामें ही कल्याण है, यही हमें आनन्द है! अत्यानन्द है!

पुनश्च—नीचेके दोहे अपनी किसी व्यक्तिगत पोथीमें उतारकर विचारियेगा।

"आतम ओर परमातमा, अलग रहे बहु काल;
सुंदर मेला कर दिया, सद्गुरु मिला दलाल. १
भेदी लीया साथमें, वस्तु दिया बताय;
कोटि जनमका पंथ था, पलमां दिया छुडाय. २
चार खाणमें भटकतां, कबहु न लागत पार;
सो तो फेरा मिट गया, सद्गुरुका उपकार. ३

---

* **अर्थ**— तू व्यर्थमें संकल्प-विकल्प क्यों करता है? तेरी धारणाके अनुसार कुछ होनेवाला नहीं है। गोविन्दकी इच्छानुसार (आत्मा द्वारा निबद्ध कर्मोंके उदय अनुसार) सब होता है इसे कोई नहीं जान सकता ॥१॥ ऋणानुबंधसे पुत्र, धन, नारी, देह आदि सब संबंध आ मिले हैं। तत्संबंधी सारा लेन-देनका व्यवहार जब मिटेगा तब सब अपने अपने कर्मानुसार चले जायेंगे ॥२॥ निश्चयसे जानो कि यहाँ रहना नहीं है, जगतका विश्वास झूठा है, तू इन सबसे आठों प्रहर विरक्त होकर अलग रहना ॥३॥ यह संसारका फंदा व्यर्थ है, यहाँ सब स्वार्थकी प्रीति है, अन्तिम समयमें कोई किसीका नहीं। परंतु तू स्वयं तो अविनाशी पदार्थ, जो है सो है ॥४॥ खोज करने पर सब खोटा साबित होता है जिसका न कोई नाम है और न रूप है। सब कुछ काष्ठके समान भ्रान्तिसे जबरदस्ती खड़ा किया है ॥५॥ (इस बातमें) उसे संशय कैसे रह सकता है कि जिसे ब्रह्म(आत्मा)का विचार है? जैसे अग्निको दीमक नहीं छूती और सूर्यको अन्धकार नहीं छू पाता ॥६॥

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

मन मारनकी औषधी, सद्गुरु देत दिखाय;
इच्छत परमानंदको, सो सद्गुरुशरणे जाय. ४

गुरु बिन ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिले न भेद;
गुरु बिन संशय ना मिटे, जय! जय! जय! गुरुदेव. ५

तुलसी जगमें आयके, कर लीजे दो काम;
देनेको टुकडा भला, लेनेको हरिनाम. ६

कहे कबीर कमालकूं, दो बातें लिख लेय;
कर साहबकी बंदगी, भूखेको कुछ देय. ७

लेनेको हरिनाम है, देनेको अन्नदान;
तिरनेको आधीनता, बूडनेको अभिमान. ८

मुफत मनुषतन पायके, जो न भजत गुरुराज;
सो पीछे पछतायेंगे, बहुत घसेंगे हाथ. ९

सतिया, सत नव छोडिये, सत छोड्ये पत जाय;
सतकी बांधी लक्षमी, फिर मिलेगी आय. १०

★★★

१८ जूनागढ़, ज्येष्ठ सुदी ७, बुध, १९७२

+सद्गुरु-सम संसारमां, हितकारी को नांहि;
कहे प्रीतम भवपाशतैं, छोड़ावे पलमांहि. १

गुरुको माने मानवी, देखी देह-वे'वार;
कहे प्रीतम संशय नहीं, पडे (ते) नरक मोझार. २

*कक्का कर सद्गुरुनो संग, हृदयकमळमां लागे रंग,
अंतरमां अजवाळुं थाय, माया मनथी दूर पलाय;
लिंगवासना होये भंग, कक्का कर सद्गुरुनो संग. ३

यय्या ओळखाण नहि जेहने, संशय शोक सदा तेहने,
आतमबुद्धि न ऊपजे कदा, आशा तृष्णा बहु आपदा,
देहदृष्टि देखे देहने, यय्या ओळखाण नहि जेहने. ४

आत्माको लक्ष्यमें रखना योग्य है, कर्तव्य है। स्मृतिमें लाकर याद करियेगा।

★★★

+ **अर्थ**—प्रीतमदास कहते हैं कि सद्गुरुके समान संसारमें अन्य कोई हितकारी नहीं है। क्योंकि वे एक पलमें जीवको भवबंधनसे मुक्त करा लेते हैं॥१॥ जो गुरुको उनका बाह्य दैहिक व्यवहार देखकर सामान्य मनुष्य मानता है वह निःसंशय नरकमें जायेगा॥२॥

* **अर्थ**—प्रीतमदास कहते हैं कि हे जीव! तू सद्गुरुका संग कर जिससे हृदयकमल आत्मार्थसे रंजित हो जाय, हृदयमें आत्मज्ञानका प्रकाश हो, माया मनसे दूर भागे और लिंगवासनाका नाश हो जाय॥३॥ जिसे सद्गुरुकी पहचान नहीं है वह सदा संशय-शोकमें डूबा रहता है, उसे आत्मबुद्धि कभी उत्पन्न नहीं हो सकती, वह आशातृष्णासे हमेशा दुःखी रहता है और देहदृष्टि होनेसे उसे सभीकी देह ही दिखाई देती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९ जूनागढ़, अषाढ़ सुदी ५, बुध, १९७२

श्री प्रगट पुरुषोत्तमस्वरूप सहजानन्दी शुद्ध चैतन्यप्रभुको नमोनमः

इस पत्रके साथ पद भेजे हैं। हो सके तो उन्हें कण्ठस्थ करियेगा।

तीर्थका स्थान, वन-उपवन, उद्यान, एकान्त ज्ञान-ध्यान एवं योगियोंके लिये वैराग्यके स्थान यहाँ उत्तम हैं। ऐसे निमित्तोंके कारण शांति है जी। उपाधि नहीं है, किंचित् भी प्रतिबंध यहाँ नहीं है।

***पहला पद**

(राग-काफी)

योगी एकिला रे! नहि जेने संग कोई;
शिष्य ते साचा रे! तेनी सोई नव जोई. योगी०१ (टेक)

एकलो वास वसे जंगलमां, अखंड आठे जाम;
भेगा थाय के सळगी ऊठे छे, वेंचवुं छे कशुं दाम?
सिद्धांत ए जाणे रे, वसे जोगी सहु खोई. योगी०२

घूघरो एक हशे बांधेलो, अवाज तेनो नव थाय;
दस-वीस जो मळी बेसे तो, घोंघाटथी मार खाय;
सुख न शमणे रे! कर्युं-कार्युं नांखे धोई. योगी०३

ए सिद्धांत समजीने साचो, एकलो रहे योगीराज;
कर्मयोगे वसतिमां वसवुं, तोपण एकलो राजे राज;
सुख सौ एके रे! झाझे मूआ छे रोई. योगी०४

परिचय ने धनसंग्रह नहि जो, तो एकलो रे'वाय;
नहि तो वगर बोलावी वळगशे, अहींथी तहीं बलाय;
बापु एकिला रे! शाणा सुखी होय. योगी०५

+दूसरा पद

हां रे! दिलडुं डोले नहि, रे! डोले नहि।
बीजी वृत्ति अंतरनी ना खोले रे! दिलडुं० (टेक)

---

* **अर्थ**—अहो! धन्य हैं वे अकेले साधु जिनके पास किसी प्रकारका कोई संग नहीं है, और धन्य हैं वे सच्चे शिष्य जिन्हें अपनी बाह्य सुख-सुविधाकी कोई चिंता नहीं है॥१॥ जंगलमें बाँस अखण्ड आठों प्रहर अकेला खड़ा है तो अच्छा है। यदि अनेक बाँस आपसमें इकट्ठे मिल गये तो सुलग उठते हैं। फिर उन्हें बाजारमें बाँटने या बेचने जायें तो क्या कुछ दाम मिलनेवाले हैं? इस सिद्धांतको समझते हुए योगी सर्वस्वका त्याग कर अकेला रहता है॥२॥ यदि पैरमें एक घूँघरू बँधा हो तो उसका शब्द नहीं होता, और यदि दस-बीस मिलाकर बाँध दिये जायें तो कोलाहल होता है और परस्पर मार खाते हैं। वहाँ शान्तिका काम नहीं। इसी दृष्टांतसे अनेकोंके संगसे योगीका किया-कराया त्याग-वैराग्य नष्ट हो जाता है, स्वप्नमें भी सुखशांतिकी प्राप्ति नहीं होती॥३॥ इसी सत्य सिद्धांतको समझते हुए योगी अकेला रहता है। कदाचित् कर्मयोगसे वसतिमें रहना पड़े तो भी एकत्वका चिंतन करते हुए अकेला ही रहता है, क्योंकि संपूर्ण सुख एकत्व, अर्थात् एकाकी स्थितिमें ही है। अनेकोंका समागम दुःखका कारण है। रो-रोकर मरनेके समान है॥४॥ बहुतोंका परिचय और धनसंग्रह न हो तभी निश्चिन्त अकेला रहा जा सकता है, वरना जहाँ-तहाँसे नाना प्रकारके झंझट, आकुलताके कारण आ लगेंगे। चिंतक कविका कहना है कि, यह आत्मा अकेला है ऐसा माननेवाला समझदार जीव सुखी होता है॥५॥

\+ **अर्थ**—यहाँ साधककी मनोवृत्ति उल्लासपूर्वक कह रही है कि वह अब चलित नहीं होगी और गुरुकृपासे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हां रे! घणा शूरा तो जगतमां गणाये।
हां रे! ते तो काळना चक्रमां तणाये।
हां रे! शूरा पूरा तो संत जणाये रे! दिलडुं०१
हां रे! त्रिगुणरूपी शब्दबाण छूटे।
हां रे! दुर्जन दुःख दई तन लूटे।
त्यारे तार परब्रह्मशुं न तूटे रे। दिलडुं०२
हां रे! सर्व जातां ते शोक नव थाये।
हां रे! घणा लाभे ते नव हरखाये।
हां रे! संतचित्त प्रभुथी ना पलाये रे! दिलडुं०३
हां रे! संत भक्तिने मोरचे मळ्या।
हां रे! शब्द गोळाथी जरा नव चळ्या।
हां रे! ए तो ब्रह्मदशामां भळ्या रे! दिलडुं०४
हां रे! कायर हता ते कंपवा लाग्या।
हां रे! काचा मनवाला पाछा भाग्या।
हां रे! शूरा संतो तो रहे छे जाग्या रे! दिलडुं०५
हां रे! ए तो कोईनी नव राखे आश।
हां रे! दुर्जनथी एकांते रहे वास।
हां रे! बापालाल प्रभुनो छे दास रे! दिलडुं०६

★★★

२० जूनागढ़, अषाढ़ वदी ८, शनि, १९७२

हे प्रभु! सहज हल्का-फूल होनेके बाद उन सद्गुरुके प्रतापसे अब कोई कुछ चूँ या चीं नहीं करता। उल्टे, सामने भावपूर्वक आते हैं जी। यद्यपि ज्ञानीको तो सर्व भूमिकामें समभाव रहता है, परंतु आत्मार्थीको तो ऐसी निवृत्तिवाली भूमिमें विक्षेप या विकल्प टल जाते हैं। कुछ शब्द सुननेके निमित्तकारण नहीं मिलनेसे एकान्तमें आनन्द है, ज्ञानीके प्रतापसे--गुरुकी शरणसे शान्ति रहती है।

★★★

प्राप्त अंतरके अनुभवरूप परिणामोंको प्रगट नहीं करेगी।—जगतमें अनेक शूरवीर गिने जानेवाले लोग कालके चक्रमें बह जाते हैं, परंतु सच्चे शूरवीर तो संत ही हैं जिन्होंने कालको वशमें कर लिया है ॥१॥--कोई योगके, कोई भोगके और कोई कषायोंकी उत्तेजनाके शब्दबाण छोड़ेंगे। कोई दुर्जन शरीरको छेद-भेदकर अनेक प्रकारके कष्ट देंगे, फिर भी शुद्ध चैतन्यस्वरूप परब्रह्मकी लगनीमें कोई बाधा नहीं आयेगी ॥२॥ सांसारिक सब कुछ लुट जानेपर भी शोक नहीं होता, भारी लाभ मिलनेपर जहाँ हर्षका कारण नहीं, ऐसे संतोंका चित्त तो प्रभुमें ही लगा रहता है, वहाँसे पलायमान नहीं होता ॥३॥ हमने देखा तो संत भक्तिके मोरचेपर डटे हुए थे। उन्हें किसीके मान-अपमानके शब्दोंकी जरा भी चिंता नहीं। अरे! वे तो ब्रह्मदशामें लीन हो गये हैं, ऐसी उनकी स्थिति है (और वही हमारे अंतरमें है किन्तु उसे प्रगट नहीं करेंगे) ॥४॥ जो कायर (संसारके प्रलोभनोंमें लिप्त) थे उनको साहस नहीं हुआ कि इस ओर आगे बढ़ें। संतोंकी प्रबल दशा देखकर ढीले मनवाले वापस भाग गये, परंतु शूरवीर संत जो जाग्रत थे वे मोरचेपर डटे रहे और जीत गये (आत्मकल्याण किया) ॥५॥ निस्पृही पुरुष किसीकी आशा नहीं रखते। दुर्जनसे दूर, एकान्तमें निवास करते हैं। कवि बापालाल कहते हैं कि हम तो ऐसे संत और प्रभुके दास हैं। (उनकी दशाको हम जानते हैं, हमें वैसा अनुभव है पर कहेंगे नहीं, अंतरकी वृत्तिको नहीं खोलेंगे) ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१ जूनागढ़, अषाढ़ वदी १०, सोम, १९७२

सहजात्मस्वरूपाय नमोनमः

"देखण सरिखी बात है, कहना सरिखी नांहि;
ऐसे अवधूत देखके, समझ रहो मनमांहि. १"
"गुरु सम दाता को नहीं, जाचक शिष्य समान;
तीन लोककी सम्पदा, सो गुरु दीनी दान. २"

साक्षात् हमारे आत्मा हो! हृदयमें कुछ विकल्प नहीं करें। आपके विचारके लिए कोई कुछ मर्म इन दोहोंमें है जी। परंतु 'धर्म' है वह अद्भुत है। अजर, अमर, अव्याबाध, शुद्ध चैतन्यस्वरूप प्रकाश, घट-घट-अन्तर्यामी, ब्रह्मस्वरूप प्रत्यक्ष पुरुषको नमस्कार हो!

क्या कहें?

"कह्या बिना बने न कछु, जो कहिये तो लज्जइये।"

सत् साधुजी कुछ वार्ता करते हों वह सर्वथा मिथ्या दिखायी दे तो भी उसे सत्--सत्य मानना, यह आपको कैसा लगता है? किसी पुस्तकमें हमने पढ़ा है। **"सद्धा परम दुल्लहा।"**

★★★

२२ जूनागढ़, श्रावण सुदी ९, मंगलवार, १९७२

हे प्रभु! आपने पूर्वपक्षवालोंकी जो इच्छा बतायी है वह गुरुप्रतापसे हमारे भी ध्यानमें है। हे प्रभु! 'पीठबल बादशाहका है' ऐसा कहा जाता है। कुछ विकल्प होने जैसा नहीं है। क्योंकि दूर हैं, इसलिए उनकी बात कानमें नहीं पड़ती। वे अपना कल्याण करें। हमें तो सब अच्छा ही है तब, कुछ कहना नहीं है, सुनना नहीं है, किसीके साथ पत्रव्यवहार नहीं है, समभाव है जी। अब तो जैसे हरि रखे वैसे रहनेकी इच्छा है। देखते रहेंगे कि क्या होता है? हे प्रभु! आप कुछ विकल्प न करें।

बाहरसे किसी पुद्गलको सुननेका निमित्त नहीं है, जिससे शांति है। मात्र अंतर्वृत्तियाँ सद्गुरु शरणसे जैसे सहज शांत हो सकें वैसा पुरुषार्थ हो रहा है जी। जिससे आनन्द होता है। व्यवहारसे जो योगसाधन हो सके वह सहज सहज करते हैं, उसके द्रष्टा रहनेसे शान्ति है जी। एक आत्माके सिवाय सब मिथ्या है, फिर विकल्प कैसा? शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

२३ जूनागढ़, श्रावण वदी २, सोम, १९७२

आपको यहाँसे कोई पत्र नहीं लिखनेका कारण यही है कि यहाँसे पत्र लिखनेकी चित्तवृत्ति संकुचित कर ली है। यहाँ सत्संग-समागम, वचनामृत-श्रवण, विचार, अनुभव चलता है जी।

वृद्धावस्थाके कारण दिन-प्रतिदिन देहमें शिथिलता, अशक्ति दिखायी देती है। शुभाशुभ उदयको समभावसे द्रष्टा-साक्षी बनकर देख रहे हैं।

यहाँ गुरुप्रतापसे शांति है। निवृत्तिक्षेत्र, और योगियोंके ज्ञान-ध्यानके स्थान आदि यहाँ तीर्थक्षेत्रमें हैं। परंतु आत्मार्थीको तो अनुभव है कि जो ज्ञानी वृत्तिमें निवृत्तिको प्राप्त हुए हैं, समझे हैं, उन्हें सर्वत्र निवृत्ति है जी।

व्यवहारकी चिंताका त्याग करना। जो जानते हो उसका विस्मरण करना जी। चित्तको शुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर चैतन्यका अवलोकन—धर्मध्यान—करें। आत्मसाधनकी श्रेणिपर आरूढ होवे। अनादिकालके दृष्टिक्रमको भूलकर स्थिरता प्राप्त करें।

★
★★

२४ जूनागढ़, सं.१९७२

पुस्तकका वांचन-चिंतन करेंगेजी। सब मिलकर सत्समागमादि करेंगेजी, वांचन, चिंतन करेंगेजी। भक्ति कर्तव्य हैजी। स्मरण भी भक्ति ही है जी।

यह जीव अनन्तकालसे मायामें गोते खा रहा है। वह भ्रान्तिमें भटक रहा है। समझे तो सरल है और न समझे तो हरि दूर हैं। पर जीवको प्रतीति नहीं हुई, इसीसे भटक रहा है। कुछ न हो सके तो उसकी (सत्पुरुषकी) प्रतीति, पहचान होने पर स्वतः ही समझमें आयेगा, आयेगा जी।

"[१]गुरु समो दाता नहीं, जाचक शिष्य समान;
तीन लोककी संपदा, सो गुरु दीनी दान,
कहना जेसी बात नहि, कहे प्रतीत न आई;
ज्यां लागे त्यां लग रहे, फिर पूछेगो आई."

"आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे,"
जीव लहे केवलज्ञान रे।

[२]"जीवता नर भद्र पामशे."

शांतिः शांतिः शांतिः

★
★★

२५ जूनागढ़, सं.१९७२

[३]"गुणीना गुण ग्रहण करो, गुण ग्रहतां गुण थाय;
अवगुण ग्रहण अवगुण है, एम कहत जिनराय."

"हे करुणासागर! अपना दासत्व दिखाकर तेरी प्रार्थना करना, ऐसे गुण हमारे आत्माके कल्याणके लिये हमारे आत्मामें स्वाभाविकरूपसे तूने दिये हैं, ऐसा होने पर भी यदि तेरी प्रार्थना न करें तो हम ठग और धर्मभ्रष्ट कहलायेंगे, अतः प्रेमपूर्वक तेरी भक्ति और प्रार्थना करना भूल न जायें ऐसी चेतावनी हमारे अन्तःकरणमें देते रहना।

हे महाप्रतापी कृपालु परमेश्वर! हम सच्चे और पवित्र अन्तःकरणसे तेरा ध्यान कर, श्रद्धारूपी चंदन और भक्तिरूपी अक्षत तेरे मंगल चरणोंमें अर्पित करके तुझे प्रेमपुष्पका हार चढ़ाकर हम अपनी प्रार्थना समाप्त करते हैं। तू प्रसन्नचित्तसे हमारा कल्याण कर।" ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

---

१. गुरुके समान कोई दाता नहीं और शिष्य जैसा कोई याचक नहीं है। गुरुने तो तीन लोककी सम्पदा दानमें दे दी है। कहने जैसी बात नहीं है और कहनेसे प्रतीति भी नहीं आयेगी! इस समय तो जीव जहाँ लगा हुआ है वहीं लगा हुआ है, परंतु बादमें (संसारका स्वरूप देखेगा और दुःखोंकी निवृत्ति चाहेगा तब) आकर पूछेगा।

२. जाग्रत जीव कल्याणको प्राप्त होगा।

३. गुणीके गुण ग्रहण करो। गुणोंको ग्रहण करनेसे गुणकी प्राप्ति होती है। किसीके अवगुणोंको देखना दोष है, ऐसा जिनेश्वर भगवंत कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

+"लोभी गुरु तारे नहीं, तारे सो तारणहार;
जो तुं तरियो चाह तो, निर्लोभी गुरु धार. १
अदेखो अवगुण करे, भोगवे दुःख भरपूर;
मन साथे मोटाई गणे : 'हुं जेवो नहि शूर.' २
परमेश्वर परमातमा, पावनकर परमीठ;
जय! गुरुदेव, देवाधिदेव, नयणे में दीठ. ३
गुण अनंत प्रभु, ताहरा ए, किमहि कथ्या नव जाय;
राज प्रभुना ध्यानथी, चिदानंद सुख पाय. ४

★★★

२६ जूनागढ़, श्रावण वदी ३०, सोम, १९७२

आप सर्व मुमुक्षुभाई (मण्डल) भगवानके समक्ष भक्ति-दोहा आदिका पाठ कर आनंद लेंगे जी। निवृत्तिके समय सब भाई इकट्ठे होकर वाचन-चिंतन करेंगेजी। धर्मभक्ति कर्तव्य है जी। परमकृपालुदेवका चित्रपट है वहाँ पर्युषण पर्वमें निवृत्तिमें मुमुक्षुभाईबहिनोंको दर्शन करानेका बने वैसा आपको याद दिलाया है जी। आप तो वैसा करते ही होंगे। किंतु आठ दिन धर्मके हैं, यह विशेष निमित्त आया है जी, कारणसे कार्य सम्पन्न होता है जी।

वचनामृतमें जो कहा है, उसका वाचन, चिंतन कर्तव्य है। योग्यता प्राप्त करनेकी आवश्यकता है जी। त्याग, वैराग्य, उपशम और भक्ति बढ़े वैसा करना उचित है। जब तक जीव इसे सहज स्वभावरूप नहीं करेगा, तब तक आत्मदशा कैसे प्राप्त होगी? स्वार्थसे, प्रमादसे जीवका पुरुषार्थबल नहीं चलता।* आप सब विचार करियेगा।

★★★

२७ जूनागढ़, भाद्रपद वदी ७, सोम, १९७२

जितना समय परमार्थमें व्यतीत होगा उतना ही आयुष्य सफल है। अतः परमार्थ क्या है? इसे ढूँढ़कर उसीमें समय व्यतीत करें। "समयं गोयम मा पमाए।" शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

२८ जूनागढ़, भाद्रपद वदी ८, मंगल, १९७२

यहाँ गुरुप्रतापसे सुखशांति है जी। "जब जागेंगे आतमा, तब लागेंगे रंग।" बहुत दिनोंसे वृत्ति थी कि एकांतमें निवृत्ति लेनी, गुरुप्रतापसे वह योग मिल गया है। यद्यपि सत्संग तो ठीक है, किन्तु जब अपना आत्मा आत्मविचारमें आयेगा तभी कल्याण होगा। अन्यथा हजार-लाख सत्संग करे, प्रत्यक्ष सद्गुरुके पास पड़ा रहे, तब भी कल्याण नहीं होगा। यहाँ कुछ अद्भुत विचार और

+ १. लोभी गुरु शिष्यको तार नहीं सकते। जो तारते हैं उसे तारणहार कहते हैं। यदि तू तरना चाहता है तो निर्लोभी गुरुकी शरण स्वीकार कर। २. ईर्ष्यालु दूसरोंकी निंदा करता है, स्वयंको मनसे बड़ा मानता है कि मेरे जैसा शूरवीर कोई नहीं है। वह अनन्त दुःख भोगता है। ३. गुरुदेव ही परमेश्वर, परमात्मा, पावन करनेवाले, परमेष्ठी और देवाधिदेव है। उनकी जय हो! पुण्योदयसे आज मुझे उनके दर्शन हुए। ४. हे राजप्रभु! आपके अनन्त गुण हैं, उनका किसी तरह वर्णन नहीं किया जा सकता। आपके ध्यानसे चिदानंद सुखकी प्राप्ति होती है।

* पत्रांक ६४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मिक सुख अनुभवमें आ रहे हैं, जिनका वर्णन किया नहीं जा सकता। अनंत शक्ति है, सिद्धियाँ हैं, पूर्व भव भी ज्ञात होते हैं, आनंद आनंद आ रहा है, एकमात्र श्रद्धासे! कहा या लिखा नहीं जाता। आपके चित्तको शांतिका हेतु जानकर बता रहा हूँ। किसीको बतानेकी जरूरत नहीं है।

शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

२९ जूनागढ़, आश्विन वदी ८, रवि, १९७२

आप तो भक्तिभावसे आनंदमें रहें। जो आपके लिये सर्जित है, उदयकालमें है उसमें अविषमभावसे अर्थात् समभावसे प्रवृत्ति करेंगेजी। 'पूर्ण आनंद है, पूर्ण है', ऐसा ही समझकर, आत्मा है, पुराणपुरुषकी शरण है, अतः फिकरका फाँका मारकर, सब कुछ भूलकर, सदा स्वस्वभावमें मग्न रहकर "आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे!" यहीं चिंतन कर्तव्य हैजी।

दूसरे, प्रभु! लक्ष्मीचंदजी मुनि द्वारा लिखाया गया पत्र यहाँ आया है जी। उसमें वे लिखते हैं कि 'मुझे दर्शन करनेकी इच्छा है।' आप उनको पत्रसे या किसी कार्यवश वहाँ जाना हो तो बतायें कि दर्शन तो सदा हृदयमें लाते रहियेगा, और वह दूर नहीं है, पास ही है ऐसा समझे बिना छुटकारा नहीं है। क्षेत्र तो जहाँ जाओ वहाँ पानी, मिट्टी और पत्थर हैं। 'पहाड़ दूरसे सुन्दर लगते हैं।' यह दुःषमकाल, हलाहल वर्तमान संयोग देखकर ज्ञानीपुरुष उदासीन हुए हैं जी। अतः यथाशक्य साता-असाता जो उदयमें आवे उसे समभावसे, समपरिणामपूर्वक सहनकर शांतिसे रहना योग्य है जी। सर्व देशकाल देखकर, जैसा संयोग हो वैसा वेदन कर सदा आनंदमें रहें। हृदयमें भक्तिभाव लाकर स्मरणमें काल व्यतीत करेंगेजी। जैसे भी हो सके आत्मभावमें, प्रभु पास ही है ऐसा मानकर भावदर्शन कर्तव्य है जी; दूर है ही नहीं, ऐसा समझना उचित है।

★★★

३० जूनागढ़, आश्विन वदी ११, शनि, १९७२

शुद्ध चैतन्यभाव–स्वउपयोग–विचारमें परिणमन, वहाँ सम्यक्त्व, वहाँ मोक्ष।

अशुद्ध चैतन्यभाव–उपयोग–विचारमें परिणमन, वहाँ बंध, वहाँ मिथ्यात्व, वहाँ मोह, वहाँ रागद्वेष, वहाँ विष; यही अज्ञान है।

"मनोज्ञता भावसे विचार, भावध्यानतें आत्मिक भावोंमें शुद्ध उपयोगकी प्रवृत्ति होना सो स्वसमय है।"

"परद्रव्यमें अशुद्ध उपयोगकी प्रवृत्ति होना सो परसमय है।"

साध्य-साधन { (स्वरूप) सो, स्वसमय सो, परसमय सो, उपयोग, विचार, शुद्ध चेतना, अशुद्ध चेतना }

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपादान–आत्मा–निश्चय–परमार्थ–शुद्धचेतना।
निमित्त–आत्मा–व्यवहार–अशुद्ध चेतना।
अविद्या–वासना–मिथ्यात्व–मोहादि अज्ञान है।

व्यवहारकाल–निश्चयकाल।

"व्यवहारकाल सबसे सूक्ष्म 'समय' नामवाला है, सो उपजे भी है, विनसे भी है, और निश्चयकालका पर्याय उत्पाद-व्ययरूप सिद्धांतमें कहा गया है। उसमें अतीत, अनागत, वर्तमानरूप अनेक भाव हैं।

निश्चयकाल अविनाशी है।"

"काळलब्धि लही पंथ निहाळशुं।"

पुरुषार्थ, वह स्वसमय उपयोग, वह कर्तव्य है; परसमय उपयोग कर्तव्य नहीं–रागद्वेष जैसे भी हो कर्तव्य नहीं।

उदयको देखकर उदासीन (खिन्न) होना भूल है। उदासीनता अर्थात् समभाव, वही वीतरागता, वही चारित्र है। यही कर्तव्य है। अमृतका समूल नारियल वृक्ष–द्रष्टाभाव, भेदज्ञान अंतरवृत्तिसे कर्तव्य है; मूल आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव; उपयोग ही आत्मा है; उस भावपरिणाममें आना ही कर्तव्य है। शेष सब भूल जाना है। "आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।" जीव केवलज्ञान प्राप्त करता है। अंतरवृत्ति पर उपयोग रखकर बाह्य व्यवहारमें प्रवृत्ति करनेपर आत्मा सम्मुख है। 'जगत आत्मवत् देखें।' अधिक क्या लिखें? कुछ नहीं आता। वृत्ति संकुचित होनेसे लिखनेकी वृत्ति नहीं होती। पत्र २१२ विचारियेगा।

"सद्गुरुना उपदेशथी, समजे जिननुं रूप;
तो ते पामे निजदशा, जिन छे आत्मस्वरूप."

+"कम्मदव्वेहिं सम्मं संजोगो होइ जो उ जीवस्स।
सो बंधो नायव्वो, तस्स वियोगो भवे मुक्खो॥"

★★★

३१ जूनागढ़, आश्विन वदी ११, शनि, १९७२

धैर्य रखें। समभावसे वेदन करें। अविषम होना तथा रहना योग्य है। विषम भाव होगा तो आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान होगा जिससे कर्म बंधेंगे। अतः समभाव रखें। समता, क्षमा, दया भावसे सद्गुरु-स्मरण 'सहजात्मस्वरूप' कर्तव्य है जी।

हे प्रभु! उस स्वरूपकी पहचान सत्संगसे होती है जी। सद्गुरुकी पहचान नहीं होनेसे ही जीव भटकता है जी। यह जीव तो किसीके बदले किसीको चिपट जाता है। अतः सत्शास्त्र, वचनामृत तथा सत्समागमसे समझमें आयेगा। भावना रखनेसे हरिगुरु ऐसा अवसर प्राप्त करायेंगे जी। धैर्य कर्तव्य है। क्षण-क्षण सहजात्मस्वरूपका स्मरण करियेगा। भूलने योग्य नहीं है। काललब्धि आ मिलेगी जी। समय समय उपयोग कर्तव्य है जी।

★★★

+ जीवका कर्मद्रव्यके साथ जो संयोग है उसे बंध जानना, और उसका वियोग ही मोक्ष है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२ जूनागढ़, कार्तिक सुदी ७, शुक्र, १९७३

"श्री भरतेश्वरजीकी भावना हो! श्री गौतमस्वामीजीकी विनय हो!
श्री धन्ना-शालिभद्रका वैराग्य हो! श्री स्थूलिभद्रजीका शील हो!
श्री भरत-चक्रवर्तीकी पदवी हो! श्री गौतमस्वामीजीकी लब्धि हो!
श्री धन्ना-शालिभद्रजीकी ऋद्धि हो! श्री कयवन्नाजीका सुख-सौभाग्य हो!"

जो असाता-वेदनी उदयमें आई थी, अब उससे आराम होगा, अच्छा होगा जी। शांति-समभावसे सहजात्मस्वरूपका स्मरण—इस विशिष्ट औषधिसे अच्छा हो जायेगा जी, वैसा ही करेंगे जी।

तथा, आपने आत्मभावसे उद्‌गार प्रदर्शित किये कि सदैव उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्व त्रिकालमें प्रवर्तित हैं, वे आदि वस्तुस्वरूपसे यथातथ्य वैसे ही हैं, ऐसा ही समझकर सदैव समभावसे स्वभाव-आनंदमें रहना चाहिये जी।

अनादिकालसे सद्‌गुरुकी यथातथ्य पहचान नहीं हुई है। वह होनेसे, श्रद्धा करनेसे, प्रतीति आनेसे, पहचान होनेसे कल्याण है जी।

★★★

३३ बगसरा, फाल्गुन सुदी ८, सं.१९७३

हमने कभी भी किसी भी प्रकारसे आपके चित्तको दुःखाया हो तो उसकी क्षमायाचना करते हैं जी, आपश्रीको क्षमाते हैं जी। यद्यपि जीव अनादिकालसे स्वच्छंदसे प्रवृत्ति कर रहा है। सत्पुरुषकी आज्ञा भली प्रकार यथातथ्य नहीं आराधी, उसका हमें अंतरंगसे खेद है जी। वह हरि-गुरुकृपासे अब पूर्ण होगा जी। फिर दोष तो इस जीवमें अनंत हैं जी। यद्यपि देह भी अनंत दोषका पात्र है जी। अतः जिन सत्पुरुषको पहचाना, उनकी वाणी हृदयमें उतरी, अंतर परिणाममें परिणत हुई, जो भाव त्रिकाल उपयोगरूप हुआ वह मिटनेवाला नहीं। अब क्षण-क्षण वृत्ति उदयाधीन प्रवर्तित हो रही है, उसमें उदासीनभावसे द्रष्टाके रूपमें प्रवृत्ति करना यही वारंवार विचारते हैं। प्रकृतिके अधीन नहीं होना, यही पुरुषार्थ कर्तव्य है। चाहे जैसे निमित्तोंमें भी प्रारब्ध, साता-असाता भोगते हुए समतासे सहन करनेका पुरुषार्थ करते रहना, ऐसा विचारमें है जी। दूसरे, विभाव-परिणमनरूप आत्माका नाश होता हो वहाँ मृत्यु हो तो भले ही हो, परंतु मन-वचन-कायासे आत्माका नाश होने देनेका संकल्प या इच्छा नहीं होती। अन्य इच्छा नहीं है। त्रिकालमें यही है। अंतरवृत्ति अन्य कुछ मान्य नहीं करती, वहाँ क्या करें? अतः खेदका शमन कर समभावसे रहनेका विचार है जी।

लौकिक दृष्टि पर ध्यान नहीं देना है। एक सत्पुरुषके वचनामृत प्रत्यक्ष श्रवण हुए हैं, उनके बोधके पत्रोंकी [1]पुस्तकमें सभी शास्त्र समा गये हैं। अब जो-जो अन्य ग्रंथ पढ़ने या चिंतनमें आते हैं उन सबमें वही बात आती है। अतः मुख्यरूपसे एक इसी पुस्तकका पढ़ना-विचारना होता है जी।

"प्रारब्ध पहले बना, पीछे बना शरीर" फिर "तारुं तारी पास छे, त्यां बीजानुं शुं काम?" इस प्रकार आपको गुरुप्रतापसे कोई अड़चन आनेवाली नहीं है। अतः अब अपना-अपना विचार करना है। "नहि दे तुं उपदेशकुं" "जब जागेंगे आतमा, तब लागेंगे रंग।" फिर परमार्थ सर्व कर्तव्य है जी। स्व-परहित करना चाहिये, पर जहाँ योग्यताकी कमी हो वहाँ क्या किया जाय?

१. 'श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतकालसे जीव स्वच्छंदके उदयसे भ्रमण कर रहा है, वहाँ दयाके सिवाय अन्य क्या किया जा सकता है? सत्पुरुषने तो बहुत कहा है, पर सर्व जीव कर्माधीन हैं जी।

जो समय बीत रहा है वह फिर आनेवाला नहीं है। यथाशक्य उपाधि कम हो, आरंभ परिग्रह संकुचित हो, अल्पारंभ हो वैसा कर्तव्य हैजी। "प्रत्येक-प्रत्येक पदार्थका अत्यंत विवेक करके इस जीवको उससे भिन्न-व्यावृत्त करें—ऐसा निर्ग्रंथ कहते हैं।" जिसकी आजीविका सुखपूर्वक चलती हो, उसे उपाधि कर कमानेकी जरूरत नहीं है। इस मनुष्यभवमें किसी पूर्वपुण्यके योगसे सत्मार्ग-आराधनका संयोग मिला है। सावधान होने जैसा है जी। सर्व मुमुक्षुभाइयोंको भी ऐसा ही विचार करना उचित है जी। सत्पुरुषका यही अनुरोध है जी।

"लक्ष्मी अने अधिकार वधतां, शुं वध्युं? ते तो कहो।"

★★

३४ बगसरा, फाल्गुन सुदी १३, मंगल, १९७३

परम इष्ट, सत्संग, गुरु, उपकारी गुरुदेव;
त्रिविध एकरूपे सदा, प्रणमुं पद नित्यमेव. १

जेती मनमें ऊपजे, तेती लखी न जाय;
तातें वृत्ति लखनकी, सहज रही संकुचाय. २

कागजकुं काला किया, काला मनके काज;
जिसका मन है उजला, उसको क्या कागजका साज? ३

क्या कहें? "कह्या बिना बने न कछु, कहीए तो लज्जइये।"

आप इस समय सत्संगमें 'श्रीमद् राजचंद्र' पुस्तककी द्वितीय आवृत्तिका वाचन-चिंतन करेंगेजी।

हे प्रभु! लिखना अच्छा नहीं लगता। यहाँ दशा और ही बरत रही है जी। आपके चित्तको शांति हो इसलिये आज यह पत्र लिखा है जी। किसीको कहनेकी आवश्यकता नहीं है यह ध्यानमें रखें। सर्व सत्पुरुषोंका मार्ग एक ही है जी। समझकर समाना है जी, अन्य कुछ नहीं।

यहाँ सद्गुरुकृपासे शरीरप्रकृति सुखशांतिमें है। पूज्य प्रेमी भक्त कल्याणजीभाई महा पूर्ण पुण्य-भाग्यशाली हैं जी।

★★

३५ बगसरा, फाल्गुन सुदी १३, मंगल, १९७३

हे प्रभु! यहाँसे पत्र लिखनेकी चित्तवृत्ति संकुचित हो जानेसे आपके चित्तको खेद न हो इसलिये इस पत्रसे आपको सूचित किया है जी: आपश्री सद्गुरुके चरण-उपासक हैं। 'सहजात्मस्वरूप' स्मरणको हर घड़ी क्षण-क्षण ध्यानमें रखेंगे जी। विशेष कुछ लिखनेकी वृत्ति बंद होती है जी। अंतरंगमें सदैव आनंद रहता है जी। सद्गुरु-चरणसे सदा सुखसाता है जी। उदयाधीन साता-असाताको समभावसे शांतिसे देखकर, परिणाम समाधिमें लय होते हैं जी। उसमें किसी प्रकारका खेद नहीं होता है जी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व प्रारब्धसे जो जो उदयमें आता है उसमें पुरुषार्थ करना योग्य है। छूटनेके भावकी वृत्तिसे वहाँ जागृत रहना चाहिये, वैसा न हो सके तो खेद करना चाहिये। जैसे भी चित्तको समाधि हो वैसा कर्तव्य है जी।

सत्बोध है जी : "हे आर्य! चित्तकी प्रसन्नता ही सबसे उत्तम सेवा है जी। द्रव्यसेवा, भावसेवा, आज्ञासेवा यों सेवा अनेक प्रकारसे होती है जी। सर्वोत्कृष्ट सेवा तो चित्त-प्रसन्नता अर्थात् प्रभु-भगवानमें चैतन्यवृत्ति परम हर्षसे एकत्वको प्राप्त हो वह है जी। इसमें सर्व साधन समाहित हैं।"

'श्रीमद् राजचंद्र' द्वितीय आवृत्तिमेंसे बाँचना-विचारना करेंगेजी। "आत्मपरिणामसे जितना अन्य पदार्थका तादात्म्यअध्यास निवृत्त हो उसे श्री जिन 'त्याग' कहते हैं।" सत्संग करेंगे जी। सत्पुरुषके पत्र भी सत्संग हैं, अतः उसका वाचन-चिंतन करें। इसमें सब कुछ समाया है जी। विचार कर्तव्य है जी।

★★★

३६ नार, ता.३०-६-१९१८

आपने पूछा है कि 'तत्त्वज्ञान'मेंसे क्या कण्ठस्थ करें? इस विषयमें लिखना है कि 'आत्मसिद्धि-शास्त्र' तत्त्वज्ञानमें है वह कण्ठस्थ करने योग्य है सो करें। दूसरा, आपको अवसर मिलनेपर निवृत्ति लेकर समागम करनेसे विशेष लाभ होगा। अतः अवसर निकालें। रातमें प्रार्थनाके समय बोले जानेवाले दोहे आपने मँगाये सो नीचे उतारकर भेजे हैं वे भी कण्ठस्थ करने योग्य हैं—

"अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार. १

शुं प्रभु चरण कने धरुं? आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तुं चरणाधीन. २

आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु-आधीन;
दास, दास हुं दास छुं, आप प्रभुनो दीन. ३

षट् स्थानक समजावीने, भिन्न बताव्यो आप;
म्यानथकी तरवारवत्, ए उपकार अमाप. ४"

"जिन शुद्धात्म निमित्तसे, पामीजे निजज्ञान;
तिन संजीवन मूर्तिकूँ, मानूँ गुरु भगवान. ५

जंगम मूर्ति मुख्य है, स्थावर गौण, प्रधान—
स्वानुभवी सत्पुरुषके, वचन प्रवचन जान. ६

शासन रहे जिन-आणशुं, आज्ञाए वे'वार;
निजमत कल्पित जे कहे, ते न लहे भवपार. ७

भेखधारीको गुरु कहे, पुण्यवंतकूँ देव;
धर्म कहे कुलरीतकूँ, ए मिथ्यामति टेव. ८

सहजातम सद्गुरु कहे, निर्दूषण सत् देव;
धर्म कहे आत्मस्वभावकूँ, ए सत् मतकी टेव. ९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु नमीए गुरुता भणी, गुरु विण गुरुता न होय;
गुरु जनने परगट करे, लोक त्रिलोकनी मांय. १०

गुरु दीवो गुरु देवता, गुरु रवि शशी किरण हजार;
जे गुरु वाणी वेगला, रडवडिया संसार. ११

तनकर मनकर वचनकर, देत न काहू दुःख;
कर्मरोग पातिक झरे, निरखत सद्गुरु मुख. १२

दरखतसें फल गिर पड़ा, बूझी न मनकी प्यास;
गुरु मेली गोविंद भजे, मिटे न गर्भावास. १३

गुरु-गोविंद दोनुं खड़े, किसकूँ लागूँ पाय!
बलिहारी गुरुदेवकी, जिने गोविंद दिया बतलाय. १४"

"जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत. १५

परम पुरुष प्रभु सद्गुरु, परम ज्ञान सुखधाम;
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम. १६

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीना चरणमां, हो वंदन अगणित. १७

पडी पडी तुज पदपंकजे, फरी फरी मागुं ए ज;
सद्गुरु संत स्वरूप तुज, ए दृढता करी दे ज. १८"

विश्वभावव्यापी तदपि, एक विमल चिद्रूप;
ज्ञानानंद महेश्वरा, जयवंता जिनभूप. १९

★★★

३७ सीमरडा, ता.२१-९-१९, सं.१९७५

आपके पत्रमें लिखे अनुसार आपकी पत्नीके देहावसानके समाचार मिले। कलिकालकी यह शरारत लगती है। यह कलिकालकी कुटिल वर्तना है। मनुष्यभव पाकर आत्मज्ञान हो ऐसी श्रद्धा इस मनुष्यभवमें ही होती है। वह जीवात्मा, छोटी उम्रमें देहत्याग होनेसे क्या साथ ले गया? यह खेद करनेकी बात है। परमकृपालु प्रभु उनको शांति समाधि प्रदान करें, उन्हें आत्मज्ञान प्राप्त हो यही प्रार्थना है।

★★★

३८ सीमरडा, ता.१-१०-१९, सं.१९७५

हे प्रभु! धैर्य, शांति, समाधि यह जीवको आराधन करने योग्य है जी।

[1]"जेम निर्मलता रे रत्न स्फटिक तणी, तेमज जीव-स्वभाव रे;
ते जिनवीरे रे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव रे."

---

१. जिस तरह स्फटिक रत्नकी निर्मलता होती है, उसी तरह जीवका स्वभाव है। जिनवीरने प्रबलकषायके अभावरूप धर्मका निरूपण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]"पंडित सरखी गोठडी, मुज मन खरी सोहाय;
आवे जे बोलावतां, माणेक आपी जाय.
बलिहारी पंडित तणी, जस मुख अमीय झरंत;
तास वचन श्रवणे सुणी, मन रति अति करंत.
मन-मंजूसमें गुण-रत्न, चूप करी दीनो ताल;
घराक विण नहि खोलिये, कूंची बचन रसाल.
सज्जन सज्जन सौ कहे, सज्जन कैसा होय–
जो तनमनसे मिल रह्या, अंतर लखे न कोय."

★★★

३९ सनावद, वैशाख वदी १४, सोम, १९७६

ज्ञानी पूर्वकर्मके संबंधमें समभावसे ऋण चुकानेके कार्यमें रुके हैं जी, यह सत्य है।

"जा विध राखे राम, ता विध रहिये।"

"सुनो भरत, भावि प्रबल, विलखत कहे रघुनाथ;
हानि-वृद्धि, जन्म-मृत्यु, जश-अपजश विधिहाथ."

हे प्रभु! सोचा हुआ कुछ होता नहीं। क्षेत्र-स्पर्शनानुसार जो-जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव पूर्वसर्जित होते हैं, उन्हें समाधिभावसे, समतासे, गुरुकृपासे भोगना पड़ता है जी। यहाँ शरीर प्रकृति बहुत क्षीण हो गई है जी।

हे प्रभु! कालका भरोसा नहीं है। क्षण-क्षण, समय-समय आयुष्य व्यय हो रही है जी। हे प्रभु! सद्गुरुचरणके प्रसादके एक सद्विचारसे अंतरंगमें भेदज्ञान स्फुरित होकर परम आनंद रहता है जी। सबका भला हो, सबके साथ मित्रभाव हो! यही हृदयमें है। पर किसीके साथ टकरानेका विचार नहीं है। जिसके साथ संस्कार होगा उस जीवात्माके साथ मिलजुलकर चलेंगे। अन्य कुछ जरूरत नहीं है। हरीच्छासे जैसा होगा, देखते रहेंगे। हमें अब कुछ विघ्न, बाधा नहीं है।

★★★

४० सनावद, ई.स. १९२०, सं. १९७६

इस जीवात्माको सत्संग-सत्समागमका योग बनाना चाहिये। उसके अंतरायमें जीवको प्रमादसे बहुत हानि होती है। कारणके योगसे कार्य सम्पन्न होता है, ऐसा जानकर, उस सत्संगके कारणसे

---

१. पंडितों जैसी गोष्ठी (चर्चा-विचारणा) वास्तवमें मेरे मनको सुहाती है। यहाँ जो भी समागममें आता है वही माणिक दे जाता है (उत्तम बात कह जाता है।)

उन पंडितोंकी (विद्वानोंकी) बलिहारी है कि जिनके मुखसे अमृतकी वर्षा होती है। उनके वचन कानमें पड़नेसे मन अत्यंत आनंदित हो उठता है।

(ज्ञानीने) मनरूपी मंजूषा (पेटी) में गुणरूपी रत्नोंको छुपाकर ताला लगा दिया है। अमृतरसका पान करनेवाले ग्राहक आयेंगे तभी रसाल वचनोंरूपी कूँचीसे ज्ञानी ताला खोलेंगे।

सभी 'सज्जन, सज्जन' कहते हैं परन्तु सज्जनका रूप वे नहीं जानते। जो तनसे और मनसे एक हैं अर्थात् बहुत ही सरल हैं वे सज्जन हैं, उनके अंतरको कौन पहचान सकता है!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवात्माकी जागृति होती है जी। संसारमें सब अपना मानकर व्यवहार-व्यवसायमें जीव समय गँवाता है। उसकी अपेक्षा यदि थोड़ा समय भी परमार्थ-आत्मार्थके लिये सत्संगमें व्यतीत किया जाय तो उसका अनंत भवभ्रमण मिट जाय। आप तो समझदार हैं। इस मनुष्यभवमें एक आत्माके लिये व्यवसाय हुआ हो तो जीवका कल्याण हो जाय। इसमें जीव प्रमाद करता है वहाँ वृत्ति ठग रही है, अतः समझमें नहीं आता। बाटीके लिये खेत खोया[1] और कौड़ीके लिये रत्न खोया[2], उसी तरह इस स्वप्नवत् संसारमें लुब्ध होकर तन्मयतासे जीव प्रवृत्ति करता है, किन्तु यह नहीं जानता कि देहसे लेकर सर्व संयोगोंसे मैं भिन्न हूँ। मेरी वस्तु शुद्ध ज्ञान-दर्शन-चारित्र है। अंतमें सर्व संयोग छोड़-छोड़कर अनेक भवोंमें परिभ्रमण करते हुए घांचीके बैलकी भाँति भटकता फिरा है। इस भवमें एक यथातथ्य जो जानने जैसा है, उसके लिये जीवने कुछ भी ध्यान नहीं रखा—यह कितनी भूलभरी बात है जी! इस जीवका आत्महित होता हो और अनंत भूलोंमेंसे एक भूल निकालनेसे सभी भूलें निकलती हो— ऐसा योग आत्मार्थीको बनाना उचित है जी! अरेरे! स्वार्थके सगे-संबंधीकी अथवा इस देहकी तो चिंता करता है, परंतु प्रारब्धके अनुसार ही मिलता है वह सुख भी मिथ्या है, खोटा है, आत्मिक सुख नहीं है। जिसके लिये चिंता रखनी चाहिये, उसके लिये यदि इस भवमें सावचेत हो जाय तो बहुत अच्छा है जी। आप तो समझदार हैं, पूर्वसंस्कारवश सन्मुखदृष्टि हुई है, अतः उसका विचार करना चाहिये जी। 'श्रीमद् राजचंद्र' वचनामृतमें पत्र ३७ में लिखा है कि "जगतके सभी दर्शनों-मतोंकी श्रद्धाको भूल जाइये; जैन संबंधी सब विचार भूल जाइये।" "आत्माको इतना ही पूछनेकी जरूरत है कि यदि तू मुक्तिको चाहता है तो संकल्प-विकल्प, रागद्वेषको छोड़ दे और उसे छोड़नेमें तुझे कुछ बाधा हो तो उसे कह। वह अपने-आप मान जायेगा और वह अपने-आप छोड़ देगा। जहाँ-तहाँसे रागद्वेषरहित होना यही मेरा धर्म है; और वह अभी आपको बताये देता हूँ...मैं किसी गच्छमें नहीं हूँ, परंतु आत्मामें हूँ, इसे न भूलियेगा।" यह पत्र पूरा पढ़कर उस पर विचार करेंगे जी।

"गच्छमतनी जे कल्पना, ते नहि सद्व्यवहार;
भान नहीं निज रूपनुं, ते निश्चय नहि सार. १
जाति वेषनो भेद नहि, कह्यो मार्ग जो होय;
साधे ते मुक्ति लहे, एमां भेद न कोय." २

---

१. एक किसान अपने खेतमें हल जोत रहा था। वहाँ कोई एक परदेशी ब्राह्मण आया। भीख माँगकर आटा आदि लाया था उसकी कुएके पास बैठकर रसोई बनाई। बाटी और दाल बनाई। दालके बघारकी सुगंधसे किसानको दालबाटी खानेकी लालसा जागृत हुई। अतः उसने ब्राह्मणके पास जाकर याचना की। ब्राह्मणने मौका देखकर कहा कि हजारकी उपजवाला खेत मेरे नाम लिख दो तो बदलेमें दालबाटी खिलाऊँ। किसानने यह स्वीकार कर लिया और बाटीके लिये खेत खोया।

२. किसी एक मनुष्यने बहुत परिश्रमसे परदेशमें पैसा कमाकर उसका एक रत्न खरीदा। साथमें मार्गव्ययके लिये थोड़ी कौड़ियाँ भी रखीं और अपने देशकी ओर लौटने लगा। रास्तेमें किसी स्थान पर पानी पीने बैठा, वहाँ एक कौड़ी गिर गई। एक-दो कोस आगे जाकर उसने कौड़ियोंको गिना तो देखा कि एक कौड़ी कम है। पानी पीते गिर गई होगी, यह सोचकर अपने पासका अमूल्य रत्न वहीं कहीं छिपा दिया और कौड़ी लेने वापस गया। रत्न छिपाते हुए उसे किसीने दूरसे देख लिया था, अतः उसके जानेके बाद वह रत्न लेकर चंपत हो गया। यों कौड़ीके लिये उसने रत्न खोया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]"जेने सद्गुरु-पदशुं राग, तेनां जाणो पूर्विक भाग्य;
जेने सद्गुरु-स्वरूपशुं प्यार, तेने जाणो अल्प संसार. ३
[२]प्रभुपद दृढ मन राखीने, करवो सौ वे'वार;
विरति, विवेक वधारीने, तरवो आ संसार. ४
[३]प्रभु सर्व व्यापी रह्या, छे तुम हृदय मोझार;
ते प्रत्यक्ष अनुभवी, पामे भवनो पार. ५
[४]साचे मन सेवा करे, याचे नहीं लगार;
राचे नहि संसारमां, माचे निज पद सार. ६
[५]सेवाबुद्धिथी सेवना, करो सदा शुद्ध भाव;
सत्सेवा संसारथी – छे, तरवाने नाव. ७
[६]सद्गुरु चरण धरे जहां, जंगम तीरथ तेह;
ते रज मम मस्तक चडो, बालक मागे एह. ८
[७]लेणा-देणा जगतमें, प्रारब्धके अनुसार;
सोहि पतावा कारणे, रत्नत्रय अवतार. ९
[८]चिंतवियो धरियो रहे, ओर अचिंतित हेय;
प्रबल जोर भावी तणुं, जाणी शके न कोय. १०
[९]बंदाके मन ओर है, कर्ताके मन ओर;
ओधवसें माधव कहे, जूठी मनकी दोड." ११
"शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहीए केटलुं? कर विचार तो पाम." १२

संसारमें धन आदि स्वार्थके लिये लंबी यात्रा अथवा लौकिकभावसे तीर्थयात्रा अनेक जीवात्मा करते हैं, किन्तु अलौकिक भावसे करनेमें जीव प्रमाद करता है यह वृत्तिकी ठगाई है जी। जाग्रत होनेमें, सत्संगमें अनेक विघ्न आड़े आते हैं, उन्हें धकेलकर इस मनुष्यभवमें आत्माके लिये सत्संग करे, ऐसे जीवात्मा विरले ही होते हैं।

★★★

१. जिसे सद्गुरुके चरणकमलसे प्रेम है उसे भाग्यशाली (पूर्वके पुण्यके उदयवाला) मानें। जिसे सद्गुरुके स्वरूपसे प्यार है, वह अल्पसंसारी है। २. प्रभुके शरणमें दृढ़ मन रखकर संसारका सर्व व्यवहार करे और विरति-विवेक बढ़ाकर इस संसारको तिर जाये। ३. प्रभु सर्वव्यापी है, वे तुम्हारे हृदयमें भी है, उसका प्रत्यक्ष अनुभवकर भवपार हो जाये। ४. जो सच्चे मनसे सेवा करते हैं, किंचित् भी याचना नहीं करते, संसारमें आसक्त नहीं होते, वे साररूप अपने आत्मस्वरूपका वेदन करते हैं। ५. सेवाबुद्धिसे शुद्ध भावसहित सद्गुरुकी सेवा करो, क्योंकि सत्सेवा संसारसे तिरनेके लिये नौका समान है। ६. जहाँ सद्गुरु विचरते हैं वही जंगम तीर्थ है। वो चरणरज मुझ मस्तकपर रहो यही मेरी इच्छा है। ७. संसारमें सब लेन-देन प्रारब्धानुसार होती है, उसको (पूर्वकर्मको) भोगनेके लिये रत्नत्रयरूप सद्गुरुका संसारमें जन्म होता है। ८. मनचिंतित एक ओर पड़ा रह जाता है और अचिंतित होता है, क्योंकि भावि (प्रारब्ध) प्रबल है उसे कोई जान नहीं सकता। ९. बंदा (इस जीव) के मनमें और है और कर्त्ता (ईश्वर) के मनमें कुछ और है। माधव (कृष्ण) उद्धवजीसे कहते है कि यह जीव फोगट ही कल्पनाके घोड़े दौड़ाया करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१ सनावद, ता.१-६-२०

इस दुषमकालमें जिससे अंतर्वृत्ति सिद्ध हो, भावसे एकांत निवृत्तियोगसे आत्महित हो, वैसा करना चाहिये जी। अनंत कालचक्रसे बाह्य प्रवृत्तिमें परिभ्रमण करते इस जीवको महान पुण्ययोगसे किसी सत्पुरुषके मार्गका आराधन करनेका योग मिलने पर, उसकी भावना कर उसमें रुचि कर जो पुरुष आत्महितकी आराधना करते हैं, उन पुरुषोंको धन्यवाद! पुनः पुनः नमस्कार है जी। सद्गुरुकी यही आज्ञा है जी। वृत्तिको रोकें; संकल्प-विकल्पको मिथ्या जानकर सद्वृत्तिसे 'एगं जाणई से सव्वं जाणई' यही कर्तव्य है। देवचंद्र-चौबीसीका तेरहवाँ स्तवन इन महात्मा पुरुषने गाया है वह विचारणीय है जी। मनकी कल्पनासे संसार खड़ा हुआ है, उस पर विचार करनेसे समझमें आता है कि 'बेर बेर न आवे अवसर, बेर बेर न आवे।' यही कर्तव्य है जी। जीवने यह विचार ही नहीं किया है कि सत्संग क्या है? इसी विचारसे अंतरंगमें भावकी खुमारी, उल्लास, शांति कुछ और ही अनुभवमें आते हैं जी।

★★★

४२ सनावद, सं. १९७६, ता. २६-७-२०

गुरुभक्तिमें गुरुके गुणगानसे ढेरों कर्म क्षय होते हैं जी। यही कर्तव्य है जी। हे प्रभु! आपसे एक अनुरोध है जो पहले भी कर चुके हैं, उसे अब भी ध्यानमें लीजियेगा। हे प्रभु! हम तो इन यथातथ्य सद्गुरुके भक्तके दासानुदास हैं और उन यथातथ्य सद्गुरुकी जो भक्ति करते हैं, उन्हें नमस्कार है जी। हे प्रभु! आप सभी जानते हैं कि श्रीमद् सद्गुरु राजचंद्र प्रभुका यह एक दीन शिष्य है जी। तो अब वह यथातथ्य स्वरूप कहाँ है? इसका विचार कर भक्ति करनी चाहिये जी।

"ऐसी कहाँसे मति भई, आप आप है नाहि;
आपनकूँ जब भूल गये, अवर कहाँसे लाई?
आप आप ए शोधसें, आप आप मिल जाय."

(गुरुगम)

दूसरे, महात्मा देवचंद्रजीकी चौबीसीके स्तवन हैं उनमेंसे तीसरा, चौथा, पाँचवाँ, छट्ठा, सातवाँ तथा आठवाँ स्तवन पढ़कर, विचारकर ध्यानमें लेंगेजी। तथा परम प्रकट प्रभु 'श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथमें जो-जो पत्र हैं उन्हें पढ़नेमें 'जितनी शीघ्रता उतना ही धीमा कार्य' 'जितना कच्चापन, उतना खट्टापन' मानकर धैर्य कर्तव्य है जी। समता-समाधिमें रहेंगे जी। समभाव, क्षमा धारण करें। 'जल्दबाजीसे आम नहीं पकते' यह कहावत है। हे प्रभु! आप समझदार हैं। क्या लिखूँ? कुछ समझमें नहीं आता।

योग्यताकी आवश्यकता है। किसको कहें? सन्मुखदृष्टिवान जीवोंका कल्याण अवश्य होगा जी। जीवनपर्यंत वैसा ही रहना चाहिये। यों आत्माको विशेष चित्र जैसा बनाकर रखनेकी जिस जीवात्माने भावना भायी होगी उसका आत्महित अवश्य होगा जी। यह सबको स्वयं विचारकर देखना है जी। "ज्यां शंका त्यां गण संताप."

दूसरे, हे प्रभु! जीवात्माको जो उदयमें आये उसे समभावसे भोगना चाहिये। ऐसे पत्र परम कृपालु देवकी अमृतवाणीसे दैदीप्यमान हैं उन्हें पढ़कर, चिंतनकर ध्यानमें लेंगे जी। आपके वाचन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिंतनके लिये नीचे मुताबिक नोंध करता हूँ जी। पत्र १२५, ४१४, ४८७, ४९४ आदि से ध्यान-समाधि हो सकती है जी। सत्संगका वियोग हो तब सत्पुरुषकी यह आधारभूत वाणी पढ़ें। उसीमें काल व्यतीत करें। संभव हो तो सब मिलकर भक्तिभावकर पत्र २२६ आदिका वाचन कर सत्पुरुषके वचन ध्यानमें लेवें। जीवको ढीला नहीं छोड़ना चाहिये, अन्यथा आर्तध्यान आदिसे सत्यानाश कर डालेगा। यथासंभव वृत्तिको वाचन अथवा चिंतनमें रोककर समय व्यतीत करना चाहिये।

"उच्च भूमिकाको प्राप्त मुमुक्षुओंको भी सत्पुरुषोंका योग या समागम आधारभूत है, इसमें संशय नहीं है। निवृत्तिवान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका योग होनेसे जीव उत्तरोत्तर उच्च भूमिकाको प्राप्त करता है।" किन्तु अंतरायका उदय होने पर तो यथाशक्य समभाव रखनेसे, काल परिपक्व होनेपर जीव अवश्य समाधिको प्राप्त होगा ऐसा सोचकर, प्रमाद छोड़कर पुरुषार्थ करना चाहिये।

कुछ अच्छा नहीं लगता। वैसा स्थान और वैसी योग्यतावाले जीवात्मा कहाँ हैं कि उस स्थान पर शांति प्राप्ति करें? कलिकाल ऐसा आया है कि एक उदासीनताके बिना अन्य कोई उपाय नहीं है। पत्र लिखना अच्छा नहीं लगता, किन्तु तुम्हारी चित्तशांतिके लिये यह लिखना आवश्यक था, अतः विश्राम लेते लेते बलपूर्वक पूरा किया है। शांतिः शांतिः शांतिः।

पूर्व संस्कारसे संयोग मिले हैं जी। जीवको प्रमाद कर्तव्य नहीं है जी। सत्संग, सत्समागम सहज ही प्राप्त हो, उसका विचार करें, ध्यानमें रखें, इसीमें विशेष लाभ है जी।

हे प्रभु! देवचंद्र-चौबीसीके ग्यारहवें श्री श्रेयांस प्रभुके स्तवनको पढ़कर, विचारकर ध्यानमें लेवें। जीव जानबूझकर उल्टा-सीधा बोले, उसे क्या कहें? जीवने सामान्य कर दिया है। विचार नहीं करता। जो-जो जीवात्मा सन्मार्गके सम्मुख हैं, उनका तो वियोगमें कल्याण है जी। समागमकी अपेक्षा विरहमें विशेष लाभ है, ऐसा भी ज्ञानीपुरुषोंने देखा है और हमने भी सद्गुरुके समीप यही सुना है। वैसे ही मार्ग भी अलौकिक है। उसे लौकिकमें, सामान्यमें नहीं जाने देना चाहिये। घबराना नहीं चाहिये।

[1]उत्कृष्टे वीर्य निवेशे, योग क्रिया नवि पेसे रे,
योगतणी ध्रुवताने लेशे, आतमशक्ति न खेसे रे, वीर०

....

शूरपणे आतम उपयोगी, थाय तेणे अयोगी रे, वीर०

धैर्यपूर्वक सर्व जीवात्माको भक्तिमें संलग्न करें। सत्समागम करें। ध्यानमें, चिंतनमें लक्ष्य रखें। "वचनसे उच्चार, मनसे विचार।"

थोड़ा थोड़ा लिखते हुए आज पत्र पूर्ण किया है जी। पत्रमें अधिक क्या लिखें? यथावसर समागममें विचार करनेपर समझमें आयेगा जी।

★
★★

---

१. जब उत्कृष्ट वीर्य हो तब मन-वचन-कायारूपी योगक्रिया प्रवेश नहीं कर सकती, अर्थात् योगक्रिया नहीं रहती। इस प्रकार योगकी निश्चलतासे आत्मशक्ति जरा भी चलायमान नहीं होती।.....उसी तरह आत्मा जब शूरवीर होता है तब अपने आत्मगुणोंका उपभोग करता है और योगरहित—अयोगी हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३ सनावद, अषाढ़ सुदी १०, १९७६

प्रमादको छोड़कर यथाशक्ति जो कुछ कण्ठस्थ या अध्ययन हो सके वह करना चाहिये जी। अथवा निवृत्ति लेकर भक्ति-भजन करना चाहिये जी। आलस्य शत्रु है जी। संसारसमुद्र इंद्रजाल जैसा, स्वप्न समान नाशवान है। कालचक्र सिरपर घूम रहा है। प्राण लिये या लेगा ऐसा हो रहा है। वहाँ इस क्लेशित जीवात्माको एक धर्मकी शरण है जी। फिर भी यह जीव किस योग और कालकी प्रतीक्षा करता है इसपर विचारकर आत्मा पर दया करनेका अवसर इस मनुष्यभवको मानकर पुरुषार्थ कर्तव्य है जी। कोई किसीका नहीं है, फिर भी जीव परभावमें आसक्त हो रहा है। "मैं" और "मेरा" देहादिसे लेकर सबमें 'मेरा मेरा' कर रहा है, किन्तु जो वास्तवमें अपना है उसे जीवने अनादि कालसे जाना नहीं है यों सोचकर, जबसे समझा तबसे सबेरा, जहाँसे भूले वहींसे फिर गिनकर एकमात्र आत्महित—कल्याण हो वह कर्तव्य है; जीवको उसकी सँभाल अवश्य करनी चाहिये जी। जो होनहार है वह बदलेगा नहीं और जो बदलनेवाला है वह होगा नहीं। अतः सावधान रहना चाहिये। सहजात्मस्वरूपका स्मरण, ध्यान, विचार कर्तव्य है जी। जो समय बीत रहा है, वह वापस आनेवाला नहीं है। परभावका चिंतन, कल्पना कर जीव भ्रममें पड़कर कर्मबंध करता है। वह व्यर्थ छिलके कूटने जैसा है। जो-जो संयोग मिलनेवाला है, वह मिलकर अंतमें छूटनेवाला है। अपना हुआ नहीं है, फिर भी जीव कल्पना कर भूलता है, यह सोचकर मन या वृत्तिको परभावमें जाते रोककर बारबार स्मृतिमें, आत्मोपयोगमें लाना उचित है जी। सर्वव्यापक सत्-चित्-आनंद ऐसा मैं एक हूँ। ऐसा विचार करें, ध्यान करें, वचनसे सहजात्मस्वरूपका उच्चारण करें-बोलें, मनसे विचार करें। उपरोक्त कथनानुसार ध्यानमें रखकर लक्ष्य रखना योग्य है जी— सहजात्मस्वरूप। बँधे हुएको छुड़वाना है जी। पुराना छोड़े बिना छुटकारा नहीं है। किसी न किसी दिन उसे छोड़ना ही पड़ेगा। जबसे यह वचन सुना तबसे अंतरमें त्याग-वैराग्य लाकर, सुखदुःखमें समभाव रखकर, चित्तमें शांतिसे विचारकर, समाधिभाव प्राप्त हो वैसे कर्तव्य है जी। सब भूल जायें। आत्मा है। अतः एक आत्मोपयोगमें रातदिन रहें। जहाँ दृष्टि द्रष्टामें पड़ती है, वहाँ कर्म आते हैं तो जानेकी शर्त पर। बँधा हुआ छूटता है, उसमें हर्ष-शोक करने जैसा है ही नहीं जी।

शांतिः शांतिः शांतिः।

पुनश्च—उपरोक्त वचनपर विचारकर ध्यानमें रखने योग्य है जी।

"मात्र दृष्टिकी भूल है, भूल गये गत एह।"

★★★

४४ सनावद, प्र. श्रावण सुदी १३, शुक्र, १९७६

वृद्धावस्थाके कारण शरीर क्षीण होता जा रहा है। शुभ-अशुभ, साता-असाता वेदनीय कर्मके उदयमें आत्मामें समभाव रखकर वीतराग भावनासे प्रवृत्ति करें, ऐसी आज्ञा श्रीमद् सद्गुरु भगवानकी है, उसका यथाशक्ति आराधन करना चाहिये जी। इस विचारसे शांति रहती है जी।

आपके पत्रसे गोरजी लाधाभाईका देहोत्सर्ग हुआ जानकर उसे खेदजनक विचारकर भी आत्महित हो वैसा करना चाहिये। वर्तमानमें कलिकाल चल रहा है जी। प्राण लिये या लेगा ऐसा हो रहा है, फिर भी जीव किस कालकी प्रतीक्षा कर रहा है, इसपर विचारकर आत्मकल्याण हो ऐसे कालकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। अनादिसे परभाव, प्रमाद, स्वच्छंदमें काल गँवाया है, उसपर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचारकर, अब ऐसा न होने देनेके लिये सत्संग-समागममें समय बीते ऐसी वृत्ति रखनी चाहिये।

फिर आपकी वृत्ति सत्समागम दर्शनार्थ है वह कर्तव्य है जी। क्योंकि संसारव्यवसायके कार्य तो किसीके पूरे हुए नहीं है। परमकृपालुदेवने कहा है—"जिंदगी छोटी है और जंजाल लंबा है; इसलिये जंजाल कम कर, तो सुखरूपसे जिंदगी लंबी लगेगी।" इस पर विचारकर हमें जिससे आत्महित हो वैसा करना चाहिये।

हम तो तीनों पर्युषण पर्व मनाना कर्तव्य समझते हैं, क्योंकि हमारे श्रीमद् सद्गुरु भगवानकी समभाव, वीतरागताकी उपासना करनेकी शिक्षा शिरोधार्य करके, मतांतरसे उत्पन्न पर्युषण पर्वके दिन भले ही पृथक् पृथक् माने जाते हों, पर हमें तो अहोनिश श्वासोच्छ्वासमें वीतरागताका, वीतराग भावनाका अभ्यास करना है—उपासना करनी है। उसके निमित्तभूत ये पर्व यथाशक्ति आराधन करने हैं।

★★★

४५ सनावद, प्र. श्रावण सुदी १४, १९७६

सत्समागमसे सत्पर्वमें—महोत्सवमें, निमित्त मिल जानेसे धर्मवृत्ति वर्धमान होती है; स्वामिवात्सल्य आदि महिमासे अनेक जीवात्माको श्रद्धा—सम्यक्त्वका लाभ मिले ऐसे निमित्त कारण करने, कराने और अनुमोदन करनेवालेको बड़ा पुण्यानुबंधी पुण्यका बंध होकर मुक्ति प्राप्त होती है जी। पुष्ट अवलंबनसे श्रद्धान—सम्यक्त्वको पोषण मिलता हैजी। विशेष समागमसे समझमें आयेगा। पत्रसे नहीं लिखा जा सकता। "जिंदगी छोटी है और जंजाल लंबा है; इसलिये जंजाल कम कर, तो सुखरूपसे जिंदगी लंबी लगेगी।" बोधसे यह समझ अंतरंगमें होती है, यह सत्य है जी।

[+]"खामेमि सव्व जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणइ॥"

---

[१]वीतरागता सूचक आ, वीतराग महा पर्व;
वीतरागता कारणे, आराधो निर्गर्व.
[२]क्षमाशूर अर्हत् प्रभु, क्षमा आदि अवधार;
क्षमा धर्म आराधवा, क्षमा करो सुखकार.

चित्तको चैन न होनेसे तथा शरीरप्रकृति नरम होनेसे पत्र नहीं लिखा गया और अन्य किन्हीं मुमुक्षुभाइयोंके पत्र आये, उनका भी उत्तर नहीं लिखा गया। अतः इस पत्रसे जैसे आत्महित हो वैसे वाचन-चिंतन द्वारा लक्ष्य रखेंगे जी।

[३]"धर्मरंग जीरण नहीं, साहेलडिया, देह ते जीरण थाय रे गुणवेलडिया;
सोनुं ते विणसे नहीं, साहेलडिया, घाट घडामण जाय रे गुणवेलडिया.

+ अर्थ—मैं सब जीवोंसे क्षमा माँगता हूँ। सब जीव मुझे क्षमा करें। मुझे सब जीवोंसे मैत्रीभाव हो, किसीसे मुझे वैरभाव न हो। १. इस वीतरागतासूचक वीतराग महापर्वकी वीतरागताकी प्राप्तिके लिए गर्वरहित होकर उपासना करो। २. अर्हत् प्रभु क्षमाशूर है—क्षमा करनेमें शूरवीर है। दशलक्षण धर्ममें क्षमाधर्म आदि (प्रथम) है। क्षमाधर्मकी आराधनाके लिए सबसे क्षमायाचना करनी चाहिए जो सुखका मूल है, कारण है।

३. अर्थ—धर्मका रंग कभी जीर्ण नहीं होता, देह जरूर जीर्ण होता है। जैसे कि स्वर्णके आभूषणके आकारमें परिवर्तन होता है परंतु स्वर्णका नाश नहीं होता। जिस प्रकार ताँबेको स्वर्णरसका स्पर्श होनेसे वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तांबुं जे रसवेधियुं, साहेलडिया, ते होय जाचुं हेम रे गुणवेलडिया,
फरी तांबुं ते नवि हुये, साहेलडिया, एहवो जगगुरु प्रेम रे गुणवेलडिया."

[१]"प्रगटे अध्यातम दशा रे लाल, व्यक्त गुणी गुणग्राम रे व्हालेसर;
आत्मसिद्धि कारज भणी रे लाल, सहज नियामक हेतु रे व्हालेसर.
नामादिक जिनराजनां रे लाल, भवसागरमांहे सेतु रे व्हालेसर."

झूठा खाता, स्वप्न समान संसार, कलिकाल, दुषम-दुषम, जहर जहर और जहर, इसमें महान पुण्यवान जीवात्मा तो स्वयं अपना करनेके लिये आत्मासे आत्माको पहचानकर समभाव-भावनाका तथा निज स्वरूप-समाधिका अनुभवलाभ विचारकर, विचारमें आकर, पुद्गलानंदीपनेसे अनादिकालसे होनेवाली भूलको सत्समागमसे भ्रम समझकर, आत्मानंदकी पहचान होनेके लिये तथा विश्रांति प्राप्त होनेके लिये कुछ बोधका योग प्राप्त करके यह चिंतामणि जैसा मनुष्यभव सफल करने योग्य है जी।

'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ' यह बहुत ही विचार करने पर प्राप्त होता है। अन्य अनंत साधन अनंत बार किये किन्तु मोक्ष नहीं हुआ, ऐसा सर्व ज्ञानीपुरुषोंने कहा है, हमें तो यह यथातथ्य समझमें आ गया है। आपका भी यह समझनेसे ही छुटकारा है जी। जिससे राग, द्वेष, क्रोध, मोह आदिसे सहज ही छूटा जा सकता है। जप तप आदि सर्व साधन कर चुका है और अंतर्मुहूर्तमें मोक्ष प्राप्त होता है, यह भी विचारणीय है जी। क्या इस कथन पर ध्यान नहीं देंगे? सर्वथा गफलतमें जाने देंगे? लिखना तो था पर अवसर नहीं मिला। शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

४६ सनावद, प्र. श्रावण वदी ३, बुध, १९७६

"इच्छा और द्वेषसे रहित, सर्वत्र समदृष्टिसे देखनेवाले पुरुष, भगवानकी भक्तिसे युक्त होकर भागवती गतिको प्राप्त हुए, अर्थात् निर्वाणको प्राप्त हुए।"

यह संसार तालपुट विष जैसा है, विष, विष और विष। [२]'पवनसे भटकी कोयल' जैसा यह मनुष्यभव है। अनंत भवोंमें परिभ्रमण तो हुआ, पर जीव इस देहको केवल आत्माके लिये बिताये तो अनंत भवोंकी कसर निकल जाये, ऐसी श्रीमद् सद्गुरु भगवानकी शिक्षा है। इसका विशेष रूपसे आराधन करने जैसा है। अनंत जन्म-मरण कर चुका है। प्राण लिये या लेगा यों हो रहा है, तब यह जीव किस कालकी प्रतीक्षामें है? यह विचारणीय है।

शुद्ध स्वर्ण हो जाता है, वह फिर ताँबा नहीं हो सकता; उसी प्रकार जगगुरु भगवानसे यथार्थ प्रीति होनेसे यह जीव उन्हींकी दशाको प्राप्त हो जाता है—वह फिर संसारी नहीं हो सकता।

१. भावार्थ—व्यक्तगुणी (जिसके आत्मगुण प्रगट हुए हैं ऐसे) भगवानके गुणगानसे इस जीवकी अध्यात्मदशा प्रगट होती है। अपनी आत्मसिद्धिके लिये भगवान अचूक कारण है। संसारसमुद्रसे पार पानेके लिये जिनभगवानके नाम आदि सेतुके समान अवलंबनरूप हैं।

२. 'वानी मारी कोयल' मूल गुजराती पाठ है। उसका अर्थ ऐसा है कि वा=हवाके धक्केसे (मारी=मारसे) कोयल जंगलसे शहरमें आ गई हो उसी तरह कोई प्रबल पुण्यके योगसे अचानक ही मनुष्यभव मिल गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पक्षपातरहित प्रत्यक्ष श्रीमद् सद्गुरुके वचनामृतोंका विचारकर, श्रद्धा रुचि सहित अंतरवृत्ति-प्रधान होकर हमें जो पुरुषार्थ करना है उसका स्वरूप सत्संग–सत्समागममें यथातथ्य समझना चाहिये। उसमें प्रमाद और स्वच्छंदको शत्रु समझना चाहिये।

शेष तो, जगतमें अन्य प्राणीमात्र मित्र हैं। यदि कोई दुःख देता है तो उतना ऋण उतरता है। सम्यक्दृष्टिवानको तो असाता आदि वेदनीय कर्मका उदय भी ऋणसे मुक्त होनेका कारण होता है जी। सम्यक्दृष्टि जीव मृत्युको भी महोत्सव मानकर, जगतके जीवों द्वारा उपद्रव करने पर भी उल्टेसे सुल्टा करते हुए आत्मानंदको यथातथ्य समझकर आत्मानंदी हुए हैं, हो रहे हैं और होंगे।

अहोहो! यह मार्ग कैसा सुलभ है, सरल है, सुगम है, स्वाभाविक है! उसे अपनी तराजूपर तौलकर कैसी भूल करता है, यह जीवकी समझमें नहीं आता। यह जीव धोखे ही धोखेमें रहकर, धर्मके निमित्त तीर्थयात्रामें धन खर्च करता है, पर जहाँ आत्माका पोषण हो ऐसे निमित्तोंपर जीव कल्पनासे संकुचित वृत्तिवाला होता है, यह वृत्तिकी ठगाई है यह ध्यानमें नहीं आता। इस जीवको एक काम करना है, वह भी न हो सका तो फिर क्या कहें?

ये वचन सहज भावसे, निःस्पृहतासे, निःस्वार्थभावसे, आत्मवृत्तिसे, एक आत्मार्थका विचारकर, जाँचकर कहे हैं यह आपको विदित हो।

★★★

४७ सनावद, प्र. श्रावण सुदी १०, मंगल, १९७६

इस स्वप्नवत् संसारमें जगतको नाशवान जानकर कुछ भी इच्छा न रखते हुए एक आत्माके लिये देहको बिताना है। आत्मभावकी इच्छा रखकर, पूर्व प्रारब्ध–शुभ-अशुभ, साता-असाता–को समभावसे क्षमासहित भोग लेना चाहिये। सब जीवोंके प्रति समभाव–धैर्य रखकर, कोई क्या कहता है उस ओर न देखकर, जो-जो काम करना हो वे समभावसे सबको समझाकर करें। यह जगत प्रकृतिके अधीन है, राग, द्वेष और अज्ञानसे बंध ही करता है। पर आत्माके हितके लिये हमें वैसा नहीं बनना है। विनय वशीकरणसे देवगति होती है। अतः परमार्थ अर्थात् आत्माके लिये करता हूँ, पर मुझे मेरा करना है ऐसा नहीं होना चाहिये। 'मैं, मेरा' तो करना ही नहीं चाहिये। इतनी बात मानोगे तो संगका फल मिलेगा। फिर यथावसर सब अच्छा होगा जी।

★★★

४८ सनावद, ता.३-९-२०

जितनी शीघ्रता उतना ही धीमा कार्य। धैर्य रखना चाहिये। जो करना है उसे यथातथ्य समझने पर ही कल्याण है, ऐसा समझमें आया है जी। वह सत्संग सद्बोधसे समझमें आता है जी। वैसी भावनामें वृत्ति रखकर प्रवृत्ति करना योग्य है जी। जीवको पहले श्रद्धा–सद्गुरुधर्मकी श्रद्धा, समझकर उनकी आज्ञासे चलना चाहिये। आज्ञा ही धर्म और आज्ञा ही तप है जी। स्वच्छंद और प्रमाद जीवके विशेष शत्रु हैं। इससे जीव भूल करता है जी। अपनी मतिकल्पनासे, अपने तराजू पर, अपने बाटोंसे तोलता है जी। किन्तु यह मिथ्या है यह समझमें नहीं आया है।

कोई शत्रु सिर काट ले या दुःख दे तो वहाँ कर्मऋणसे मुक्ति होती है जी। मृत्यु भी महोत्सव है! सम्यक्दृष्टि तो उल्टेको सुल्टा कर आत्मानंदमें मग्न रहता है जी। पुद्गलानंदी जीव उल्टा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझता है जी। समझना यही है कि बँधा हुआ छूटता है जी—स्वयंको घबराहट हो यही भय है जी। इस भयसे मुक्त हुआ जा सकता है।

कलियुग, कलिकाल! तालपुट विष, विष और विष यह संसार है जी। उसमें चिंतामणिके समान मनुष्यभव है, अनंत जन्ममरण करने पर यह भव मिला है। इसमें सद्गुरुकी पहचान होनेसे, उनकी आज्ञाका आराधन करनेसे मुक्त हुआ जा सकता है। जीव सब कुछ कर चुका है। क्या नहीं किया? यह सोचें।

[1]"प्रभुपणे प्रभु ओळखी रे, अमल विमल गुणगेह, जिनवर पूजो;
साध्यदृष्टि साधकपणे रे, वंदे धन्य नर तेह. जिनवर पूजो;
एक वार प्रभु वंदना रे, आगम रीते थाय, जिनवर पूजो;
कारण सत्ये कार्यनी रे, सिद्धि प्रतीत कराय. जिनवर पूजो;
जन्म कृतारथ तेहनो रे, दिवस सफळ पण तास; जिनवर पूजो;
जगत शरण जिनचरणने रे, वंदे धरीय उल्लास. जिनवर पूजो."

[2]"धर्म रंग जीरण नहीं, साहेलडिया, देह ते जीरण थाय रे गुणवेलडिया;
सोनुं ते विणसे नहीं, साहेलडिया, घाट घडामण जाय रे गुणवेलडिया;
तांबुं जे रसवेधियुं, साहेलडिया, ते होय जाचुं हेम रे गुणवेलडिया;
फरी तांबुं ते नवि हुये, साहेलडिया, एहवो जगगुरु प्रेम रे गुणवेलडिया."

★★

४९ सनावद, सं.१९७६

जीवको शोक नहीं करना चाहिये। प्रमादको छोड़कर जो कुछ हो सके वह कण्ठस्थ करना चाहिये। आलस्य शत्रु है। निवृत्ति निकालकर भक्तिभजन करना चाहिये। संसारसमुद्र इंद्रजाल जैसा है, स्वप्नवत् नाशवान है। कालचक्र सिर पर घूम रहा है। प्राण लिये या लेगा ऐसा हो रहा है। इसमें इस क्लेशित जीवात्माको एक धर्मकी शरण है, गति है। यह जीव कैसे योग-कालकी प्रतीक्षा कर रहा है? यह देखकर आत्माकी दया आती है। इस मनुष्यभवमें पुरुषार्थ कर्तव्य है।

कोई किसीका नहीं है, फिर भी जीव परभावमें आसक्त हो रहा है। मैं और मेरा, देहादिसे लेकर सबमें मेरा मेरा कर रहा है। जो अपना है उसे जीवने अनादिकालसे जाना नहीं है, ऐसा समझकर, समझा तभीसे सबेरा, भूले वहींसे वापस गिनते हुए एक आत्महित—कल्याण हो वैसा करना चाहिये। जीवको इस विषयमें अवश्य ध्यान रखना चाहिये। होनहार मिटनेवाला नहीं है और जो नहीं होनेवाला है वह होगा नहीं, अतः सावधान रहना चाहिये। सहजात्मस्वरूपका स्मरण, ध्यान, विचार करना चाहिये जी। जो समय बीत रहा है वह वापस आनेवाला नहीं है। परभावका चिंतन, कल्पनासे जीव भ्रममें पड़कर कर्मबंध करता है, यह व्यर्थ छिलके कूटने जैसा है। जो-जो संयोग

---

१. **भावार्थ**—अमल विमल और गुणधामरूप प्रभुके स्वरूपको मूल स्वरूपसे पहचानकर साध्यदृष्टिसे साधकके रूपमें प्रभुकी वंदना करे उस जीवको धन्य है। आगमोक्त (शास्त्रोक्त) रीतिसे अगर एक बार भी प्रभुकी वंदना की जाय तो वह जीव अवश्य सिद्धिको प्राप्त होगा, क्योंकि सत्य कारणको ग्रहण करनेसे उत्तम कार्यकी सिद्धि अवश्य होगी। उसी व्यक्तिका जन्म कृतार्थ है, दिन भी सफल है जो जगतके शरणरूप जिनचरणको उल्लास धारण कर वंदना करता है। २. भावार्थके लिये देखे पृष्ठ २९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलनेवाला है, वह मिलकर अंतमें छूटनेवाला है। वह कुछ अपना हुआ नहीं, फिर भी कल्पनाकर जीव भूलता है, यों सोचकर मन या वृत्तिको परभावमें जाते हुए रोककर, बारबार स्मृतिमें, आत्मोपयोगमें लाना योग्य है जी।

"सर्वव्यापक सच्चिदानंदके समान मैं एक आत्मा हूँ ऐसा सोचें, ध्यान करें।" 'सहजात्मस्वरूप'का वचनसे उच्चार, मनसे विचार ऊपर लिखे अनुसार ध्यानमें रखकर लक्ष्यमें लेना योग्य है जी। 'सहजात्मस्वरूप'

बंधे हुएको छुड़ाना है जी। पुराना छोड़े बिना छुटकारा नहीं है। किसी-न-किसी दिन छोड़ना ही पड़ेगा। जबसे यह वचन सुना है तबसे अंतरंगमें त्याग-वैराग्य लाकर, सुखदुःखमें समभाव रखकर, चित्तमें शांतिसे विचारकर, समाधिभाव हो वैसे करना चाहिये जी। सब भूल जायें। एक आत्म-उपयोगमें रात दिन रहें। अर्थात् 'आत्मा' है। जब द्रष्टामें दृष्टि पड़ती है तब बंधा हुआ छूटता है। उसमें हर्ष शोक करने जैसा नहीं है जी। शांतिः शांतिः शांतिः

पुनश्च—उपरोक्त वचन पर विचारकर ध्यानमें लेनेका लक्ष्य रखना योग्य है जी।

"मात्र दृष्टिकी भूल है, भूल गये गत एह।"

★★★

५० ता.६-१०-२०, सं.१९७६

आत्मभावनापूर्वक जागृति रखनी चाहिये। देहादि संबंध, रागद्वेष, व्याधि, उपाधि, संकल्प-विकल्प, पूर्वोपार्जित-संचित प्रारब्ध, अध्यवसाय, जो-जो जाननेमें आता है, उसका द्रष्टा, देहसे भिन्न आत्मा असंग है, सबसे भिन्न है। बंधे हुए संयोग छूटते हैं जी। साक्षी है उसे यथातथ्य भिन्न आत्मा जानें। समभाव, समाधि, शांतिमें आत्मा है जी। वह परभाव-विभावके संयोगसे जुड़ा हुआ है। उससे मुक्त होना है अर्थात् छूटना है। अपना मूल स्वरूप कभी नहीं छूटता, यह सोचकर समभाव रखियेगा। जो होनहार है वह बदलेगा नहीं और जो बदलनेवाला है वह होगा नहीं।

ज्ञानीपुरुष देहादि संयोगसे लेकर साता-असाता जो उदयमें आता है, उसे देखकर उससे भिन्न अविषमभावसे, अर्थात् उस दृश्यसे उल्टे, अपनेको द्रष्टा मानकर आनंद शांतिमें संतोष मानकर धैर्य रखकर अपने स्वरूपमें लीन होते हैं जी। जीवने अनादिकालसे जिसे सुख मान रखा था वह मिथ्या है, ऐसा सोचकर समभावसे भोगकर मृत्यु आनेपर भी महोत्सव मानते हैं।

अब चिंता करने जैसा कुछ नहीं है। जो जा रहा है उसे जाने दें, सदैव आनंदमें रहें जी। यद्यपि ऐसा ही होता आ रहा है, पर समझमें फेर है। इस समझको बदल देना पड़ेगा। जो मानना चाहिये वह तो माना नहीं और जिसे नहीं मानना चाहिये उसे माना है। गिनना चाहिये उसे गिना नहीं और जिसे नहीं गिनना चाहिये उसे गिन लिया है। यही भूल है। अब तो इतना भव जो सर्वथा मेरा माना है उसे छोड़कर, सत्पुरुषने जिस आत्माको यथातथ्य देखा है, जाना है, अनुभव किया है वही आत्मा मेरा है, उसीके लिये इस देहको बिताना है। उसे ढूँढनेसे, उसीको माननेसे, उसीके व्यापारसे, उसी पर श्रद्धा करनेसे, उसी पर रुचि करनेसे आत्मकल्याण है। ऐसा समझकर उसी भावना—पुरुषार्थ भावना-से प्रवृत्ति करना सो आत्मकल्याण है जी। इसके लिये जो जो उदयमें आकर जाता है, उसे देखते रहना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबका आत्महित हो, आत्मभावना हो, वैसे हमें स्वपरहित करना चाहिये। परमार्थके लिये देह बिताना है, आत्मार्थके लिये; अन्य किसी इच्छासे नहीं, ऐसा सोचकर शांतिसे रहियेगा। यह सबसे अनुरोध है जी।

वेदनी आने पर, विशेष विशेष सत्पुरुषके वचनामृत पर विचार करें, याद करें; शरीरकी भिन्नता स्मृतिमें रखने योग्य है जी। सम्यक्दृष्टि जीवात्मा असातावेदनीके आनेपर विशेष जागृतिमें रहता है; ऐसा करना उचित है। उसके प्रति हर्षशोक न कर, बँधे हुए कर्म क्षय होनेपर फिरसे नया कर्मबंध न हो ऐसे भावसे आत्मा आत्मदृष्टिसे उपयोग-भावमें स्थिरता धारण करता है जी। अकंप, अडोल, शाश्वत, ज्ञानदर्शनचारित्रमय धर्म पर विचारकर, हमसे हमारा निजभाव कभी छूटा नहीं इसी भावनासे रहता है।

"आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे."

★★★

५१ सनावद, ता. २०-१०-२०, बुध, सं. १९७६

मात्र भावना करें; और स्मरण कर्तव्य है।

सत्पुरुषकी आसातना हो तो दोष लगता है। आत्मभावसे आत्माका कल्याण है। वह आत्मा अर्थात् अपना अंतरात्मा। उस अंतरात्मासे परमात्माकी भक्ति करनी चाहिये। 'मन चंगा तो कथरोटमें गंगा' इस कहावतकी भावना करते हुए 'सहजात्म स्वरूप'का स्मरण करना चाहिये। बाहरसे मोह करे और विचार न करे तो अनंत कर्मोंका उपार्जन होता है।

[१]"मने घडी नथी वीसरता राज, सद्गुरु संकटहर्ता."

[२]"मारी नाड तमारे हाथे हरि, संभाळजो रे,
मुजने पोतानो जाणीने प्रभुपद पाळजो रे. (ध्रु०)
पथ्यापथ्य नथी समजातुं, दुःख सदैव रहे ऊभरातुं;
मने हशे शुं थातुं, नाथ निहाळजो रे! मारी०१
अनादि आप वैद्य छो साचा, कोई उपाय विषे नहि काचा;
दिवस रह्या छे टांचा, वेळा वाळजो रे! मारी०२
विश्वेश्वर, शुं हजी विसारो, बाजी हाथ छतां कां हारो?
महा मूंझारो मारो नटवर, टाळजो रे! मारी०३

---

१. संकटहर्ता सद्गुरु मुझे एक घड़ी (क्षण)के लिये भी विस्मृत नहीं होते, सदा याद आते हैं।

२. हे हरि, मेरी नाड़ी आपके हाथमें है तो आप मेरा ध्यान रखना, मुझे अपना जानकर अपना प्रभुपद निभाना। मुझे पथ्यापथ्यका कुछ भान नहीं है जिससे मेरा रोग (दुःख) बढ़ता जा रहा है, मेरा क्या होगा—सो हे प्रभु! आप देखते रहना। मेरे उस अनादि रोगके आप ही सच्चे वैद्य हो, और रोग-निदानमें आप कच्चे नहीं हो अर्थात् सही औषधके ज्ञाता हो। अब समय भी कम बचा है अतः आप जल्दी उपाय करना। हे विश्वेश्वर! आप अभी तक मुझे भूल क्यों रहे हो? ध्यानमें क्यों नहीं लेते? उपाय आपके हाथमें है फिर भी क्यों नहीं करते? हे नटवर! जल्दी उपाय करके मेरी आकुलताको दूर करो। भूधरदास कहते हैं कि हे केशवहरि! अब मेरा क्या होगा? सब कर्मरूपी शत्रुओंने मुझे घेर लिया है तो मेरा सत्यानाश हो जायेगा। तो आपकी ही इज्जत जायेगी क्योंकि मैं तो आपकी शरणमें हूँ इसलिये आप ध्यान रखना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केशव हरि, मारुं शुं थाशे? घाण वळ्यो शुं गढ़ घेराशे?
लाज तमारी जाशे, भूधर भाळजो रे! मारी०४

★★★

५२ सनावद, सं.१९७६

इस जीवको अनंतकाल परिभ्रमण करते हुए अनेक बार मनुष्यभव प्राप्त हुए, फिर भी स्वच्छंद और प्रमाद इन दो शत्रुओंका नाश करनेके लिये एक प्रत्यक्ष प्रगट पुरुषकी आज्ञाका पालन जीव न करे तो वह सर्व बंधनसे मुक्त नहीं हो सकता।

इस कलिकालमें सत्संग, सत्पुरुषका मिलना बहुत दुर्लभ है। इस जीवात्माको वैसा जोग मिलने पर, श्रद्धा-रुचि-प्रतीति आनेपर यदि जीव पुरुषार्थ (समभाव) न करे तो जीवका परिभ्रमण मिटना दुर्लभ हो जायेगा जी।

सभी दर्शन धर्म, धर्मकी पुकार कर रहे हैं, पर आत्मसुखको उपादेय मानकर जो जीव पुद्गलसुखसे उपेक्षित हैं, वे राजमार्गके योग्य हैं। किंतु जो पुद्गलसुखके अभिलाषी, अभिनिवेशी, आलसी, असुर, दुराचारी, क्लेशित, कुसंस्कारी, कदाग्रही हैं, उन्हें राजमार्गसे दूर समझना चाहिये।

जिसके हृदयमें गुरु निवास करते हैं वह धन्य है जी। इस संसारमें जो एक कार्य करनेका है वह बाकी रह जाता है। और संसार-व्यवहार जो स्वप्न समान माया है, उसमें दौड़भाग कर यह जीव 'मेरा मेरा' कर मिथ्याग्रह कर रहा है जी। मुमुक्षु जीवको इस पर विचार अवश्य करना चाहिये और जागृत रहनेका पुरुषार्थ करना चाहिये जी। एकमात्र आत्माकी चिंतामें ही शेष भव बिताये तो अनंत भव टल सकते हैं जी। संसारका बोलना, चलना या प्रवर्तन कुछ भी देखना नहीं है जी। सारा जगत कर्माधीन प्रवृत्ति करता है जी। उसमें दृष्टि नहीं डालकर, द्रष्टा बनकर मनन, ध्यानसे वृत्तिको मनमें लाकर समभावको साध्यकर, समतोल रखकर रहना उसका नाम समाधि है जी। इस समाधिको प्राप्त करनेकी परम कृपालुदेवकी आज्ञा है, इसे भूलना नहीं चाहिये। इस बातको लक्ष्यमें रखकर हमें हमारा काम करना चाहिये। विभावके निमित्तकी ओर न देखकर मात्र अपने एक शुद्ध आत्मस्वरूपमें ही दृष्टि रखकर रहनेका कृपालुदेवका अनुरोध है जी। इस निशानको न चूकें। उपयोग ही आत्मा है, वही धर्म है, उसमें दृष्टि प्रेरित करें। अधिक क्या लिखूँ? कुछ समझमें नहीं आता। इस जगतका दूसरा नाम दुनिया अर्थात् दो न्याय है; अधिकांशतः यह पागल है और अल्पांशमें ही समझदार है, यों दो न्याय हैं जी। उसमें भी अंगुलिके पोरे पर गिने जा सकें ऐसे विरले ही जीव समझदार हैं जी। जो जीवात्मा अपने ही दोष देखकर दूसरेकी ओर दृष्टि न करते हुए अपना काम कर लेंगे, वैसे ही भावमें विचार करते हुए अधिक समय व्यतीत करेंगे, उन्हें आत्मभाव होगा जी। अन्य देखनेसे अन्य होता है जी।

"ज्ञान ध्यान वैराग्यमय, उत्तम जहां विचार;
ए भावे शुभ भावना, ते ऊतरे भव पार."
[1]"गई वस्तु शोचे नहीं, आगम वांछा नांही;
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जगमांही."

---

१. **अर्थ**—जो हो गया उसकी चिंता नहीं करता और भविष्यकी इच्छा नहीं करता, केवल वर्तमानका ही विचार करता है उसे संसारमें ज्ञानी कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(गझल)

[१]"भले दुश्मन बने दुनिया, तमे ना कोपशो, बापु,
अमीमय आंख-क्यारीमां, अमल ना रोपशो, बापु.
तमारी ज्यां दयादृष्टि, सदा त्यां छे अमीवृष्टि;
बने स्नेही सकल सृष्टि, सदा हृदये वसो, बापु.
अमारा दोष ना जोशो, दयाळु दुर्गुणो धोशो;
अमे तो आपनां छोरु, सुबुद्धि आपशो, बापु.

---

*"खपी जवुं प्रेममां तारा, समर्पण ए अमे कहिये;
दफन थवुं शेरीमां तारी, अमारुं स्वर्ग ए कहिये. १
दरश तारुं श्रवण तारुं अने तुंमां ज गुम थावुं;
परम प्रज्ञान ने मुक्ति, धरम एने अमे कहिये. २
सफर तारी गळीमां ते, शहनशाही अमे कहिये;
रहेवुं चिंत्वने तारा, पराभक्ति अमे कहिये. ३
तुंमां छे जे, तुं छे जेमां, पछी शुं शोधवुं तेने?
खबर नहि ते ज गफलत छे, अगर अज्ञान ते कहिये. ४
चरण चूंमतां कपाव्युं शिर, सनमना प्रेमने खातर;
समर्पण ए अमे कहिये, पराभक्ति ज ए कहिये. ५
दिवानुं घेलुं तुज प्रेमी, त्वदर्पित प्राण तन मन धन;
गुलामी कायमी तारी, सनमनो राह ए कहिये. ६

★★★

५३ मंडाला, सं.१९७६

१. +प्रभु प्रभुता संभारतां, गातां करतां गुणग्राम रे;
सेवक साधनता वरे, निज संवर परिणति पाम रे. मुनि०७

---

१. अर्थ—हे प्रभु! दुनिया भले मेरी दुश्मन हो जाय, किन्तु आप मुझ पर क्रोध मत करना और अपनी अमृतमय आँखोंमें अफीमको मत बसाना। जहाँ आपकी दयादृष्टि है वहाँ हमेशा अमृतकी वर्षा होती है। अगर आप मेरे हृदयमें बसेंगे तो सारा जगत मेरा स्नेही बन जायेगा। हे प्रभु! आप हमारे दोष मत देखना, मगर आप दया करके हमारे दुर्गुण दूर करना, क्योंकि हम तो आपकी सन्तान है इसलिये हमें सद्बुद्धि देना।

* अर्थ—तेरे प्रेममें हमारा बलिदान हो जाये यही समर्पण है। तेरी गलीमें दफन होना यही हमारा स्वर्ग है। तेरे दर्शन करूँ, तेरे वचनोंका श्रवण करूँ, तुझीमें लीन हो जाऊँ यही हमारी उत्कृष्ट प्रज्ञा, मुक्ति और धर्म है। तेरी गलीमें सफर (घूमना) करना यही हमारी शहेनशाही (राज्यसम्पत्ति) है। तेरे चिंतनमें रहना ही हमारे लिये पराभक्ति है। तेरेमें जो हैं, तू जिसमें है इसका जिसे पता नहीं है तो वह क्या खोजेगा? यही गफलत या अज्ञान है। सनमके प्रेमके लिये चरणोंमें लोटते हुए जिसने अपना शीश कटा दिया उसे ही हम समर्पण कहते हैं—पराभक्ति कहते हैं। सनम (प्रेमी)का सही मार्ग यही है कि वह तेरा दीवाना हो जाय, प्राण-तन-मन-धन सब तुझे अर्पण कर दे और हमेशाके लिये तेरी गुलामी स्वीकार करें।

+ प्रभुकी प्रभुताको याद करते हुए और उनके गुणगान करते हुए सेवक (प्रभुका उपासक) अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रगट तत्त्वता ध्यावतां, निज तत्त्वनो ध्याता थाय रे;
तत्त्वरमण एकाग्रता, पूरण तत्त्वे एह समाय रे. मुनि०८
(श्रेयांसजिन स्तवन, देवचंद्रजी)

२. +ताहरा शुद्ध स्वभावने जी, आदरे धरी बहुमान;
तेहने तेहि ज नीपजे जी, ए कोई अद्‌भुत तान. विमल जिन०५
तुम प्रभु, तुम तारक विभुजी, तुम समो अवर न कोय;
तुम दरिसण थकी हुं तर्यो जी, शुद्ध आलंबन होय. विमल जिन०६
(विमलजिनस्तवन, देवचंद्रजी)

★★★

५४ सनावद, सं. १९७६

सब जीव वेदनीय आदि कर्मके संयोगसे साता-असाता भोगते हैं और उसमें हर्षशोक कर फिरसे कर्म उपार्जन करते हैं, किन्तु जो ज्ञानीपुरुष हैं वे हर्ष शोक नहीं करते, समभावपूर्वक भोगते हैं। क्योंकि अनंत कालचक्रसे यह जीव उदयाधीन संयोग-वियोग आदि कर्मविपाकको भोगते हुए काल व्यतीत करता आया है और परद्रव्यको अपना मानकर उसीमें परिणत हो भ्रांत होकर मोहाधीन होकर, शराबीकी भाँति निजभाव भूलकर, परभावमें मुझे दुःख है, सुख है आदि अनेक प्रकारके ममत्व, अहंकार, आशा-तृष्णा, इच्छा-वांछा, संकल्प-विकल्प करता हुआ बंधनयुक्त होकर अनादिकालसे मुक्त नहीं हुआ है। वह इस मनुष्यभवको प्राप्त कर यथार्थ स्वरूपको प्राप्त सत्पुरुषकी वाणीसे, वचनामृतसे सत्श्रद्धापूर्वक सत्स्वरूपको यथातथ्य समझे तो परको अन्य जानकर बंधनसे छूटता है। जो द्रष्टा बनकर उसको समभावसे भोगता है, वह बंधनसे छूटता है जी।

अनादिकालसे इस जीवको सत्पुरुषकी अर्थात् सत्स्वरूपकी असातना-अभक्तिसे परिभ्रमण करना पड़ा है। निंदा कर, दूसरोंके दोष देख कर अनंत कर्म उपार्जन करता है, इसकी अपेक्षा यदि यह जीव पराये दोष न देखे और गुण देखे तो उसे कर्मबंध नहीं होगा। जीवको मान और बड़प्पन ये दो ही परिभ्रमण करवाते हैं, इसे आत्मार्थी भाविक आत्माओंको ध्यानमें रखकर अपने दोषोंको देखना चाहिये। दूसरोंकी ओर दृष्टिको न दौड़ाकर, अपने निजभावमें सन्मुखदृष्टिसे विचार करते हुए, देखते हुए राग-द्वेष-मोहका नाश होता है, क्योंकि 'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ' इस महावाक्यका जीवने विचार नहीं किया है। एक समयमें दो क्रियाएँ नहीं होतीं। उपयोग ही धर्म है। वह साध्य हो वैसी क्रिया करनी चाहिये, अन्य सब बाधक हैं। सम्यक्‌दृष्टिवान सब उल्टेको सुल्टा कर लेता है, यह विचारणीय है। "जगत आत्मारूप माननेमें आये, जो हो वह योग्य ही माननेमें आये, पराये दोष देखनेमें न आये, अपने गुणोंकी उत्कृष्टता सहन करनेमें आये; तो ही इस संसारमें रहना योग्य है।" (३०१) सत्पुरुषके उपरोक्त वचन विचारणीय हैं। समकितदृष्टिको सब सुल्टा है जी।

कर्मोंका संवर करते हुए साधनता (सिद्धि)को प्राप्त होता है। जिन्हें आत्मतत्त्व प्रगट हुआ है ऐसे प्रभुको ध्याते हुए जीव निजतत्त्वका ध्याता होता है और एकाग्रतापूर्वक तत्त्वरमण करते हुए पूर्ण तत्त्व (निजआत्मपद) में लीन हो जाता है।

+ **अर्थ**— तेरे शुद्ध स्वभावको जो बहुमानपूर्वक भजता है, उपासना करता है उसे उसीकी प्राप्ति होती है यह कोई अद्‌भुत बात है। हे प्रभु! आप ही मेरे तारक है, आपके जैसा और कोई नहीं है, आपके दर्शनसे ही मैं संसारसे तिर गया हूँ, आप ही मेरे लिये शुद्ध आलंबनरूप है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]"निज पण जे भूले नहीं, फूले न बनी सिरदार;
ते मूल्ये नहि पामीए, जे अमूल्य आधार. १
[२] सेवाथी सद्गुरुकृपा, (सद्)गुरु-कृपाथी ज्ञान;
ज्ञान हिमालय सब गळे, शेषे स्वरूप निर्वाण. २
[३]ए संकलना सिद्धिनी, कही संक्षेपे साव;
विस्तारे सुविचारतां, प्रगटे परम प्रभाव. ३"
[४]"जिन स्वरूप थई जिन आराधे, ते सही जिनवर होवे रे;
भृंगी इलिकाने चटकावे, ते भृंगी जग जोवे रे."
[५]"जेम निर्मलता रे रत्न स्फटिक तणी, तेमज जीवस्वभाव;
ते जिन वीरे रे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव."
[६]"इणविध परखी मन विसरामी, जिनवर गुण जे गावे रे;
दीनबंधुनी महेर नजरथी, आनंदघन पद पावे रे."

★★★

५५ सनावद, सं.१९७६

तत् ॐ सत्

'सहजात्मस्वरूप'

चिंतवियो धरियो रहे, और अचिंतित होय;
प्रबल जोर भावी तणो, जाणी शके नहि कोय. १

बंदाके मन ओर है, कर्ताके मन ओर;
ओधवसे माधव कहे, जूठी मनकी दोड. २

प्रभुपद दृढ़ मन राखीने, करवो सौ व्यवहार;
विरति विवेक वधारीने, तरवो आ संसार. ३

जेने सद्गुरुपदशुं राग, तेनां जाणो पूर्विक भाग्य;
जेने सद्गुरुस्वरूपशुं प्यार, तेने जाणो अल्प संसार. ४

---

१. जो अपनी प्रतिज्ञाको भूलते नहीं है और महत्ता पाकर गर्वसे नहीं इतराते, ऐसे व्यक्ति पैसा खर्चनेसे नहीं मिलते। वे अमूल्य आधाररूप हैं। २. ऐसे सद्गुरुकी सेवा (उपासना) करनेसे सद्गुरुकी कृपा प्राप्त होती है, सद्गुरुकृपासे ज्ञान मिलता है, ज्ञानरूपी हिमालयसे सब कर्म पिघलकर अवशेष केवल आत्मस्वरूप प्रगट होकर निर्वाणकी प्राप्ति होती है। ३. यह सिद्धिकी संकलना एकदम संक्षेपमें कही है। इसका विस्तारपूर्वक सुविचार करनेसे परम प्रभाव प्रगट होता है।

४. जो प्राणी जिनेश्वरके स्वरूपको लक्ष्यमें रखकर तदाकार वृत्तिसे जिनेश्वरकी आराधना करता है—ध्यान करता है वह निश्चयसे जिनवर-केवलदर्शनी हो जाता है। जैसे भौंरी कीड़ेको मिट्टीके घरमें बंद कर देती है, फिर उसे चटकाने-डंक मारनेसे वह कीड़ा भौंरी होकर बाहर आता है जिसे जगत देखता है। तात्पर्य यह है कि श्रद्धा, निष्ठा एवं भावनासे जीव इष्टसिद्धि प्राप्त कर लेता है। ५. अर्थ देखे पृष्ठ २२

६. इस प्रकार परीक्षा करके अठारह दोषोंसे रहित देख करके मनको विश्राम देनेवाले जिनवरका जो गुणगान करता है, वह दीनबंधुकी कृपादृष्टिसे आनंदघनपद—मोक्ष पाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्य शरण प्रदाता सद्गुरुदेव भगवानको अनन्य भक्तिसे त्रिकाल नमस्कार हो! नमस्कार हो!
शुद्ध चैतन्यस्वामी प्रकट पुरुषोत्तमको त्रिकाल नमस्कार हो! नमस्कार हो!

आप भाइयोंसे विनती है कि जैसे भी हो सके वैसे त्याग, वैराग्य, भक्ति, भजन सब भाईबहन एकत्रित होकर करियेगा।

जन्म, जरा, मरण, व्याधि, पीड़ा त्रिविध तापसे संपूर्ण लोक जल रहा है। संसार स्वप्नके समान है जी, उसमें कुछ सार नहीं है। मात्र यह जीव पूर्वबद्ध कर्मोंको भोगता है जी। उसमें फिर रागद्वेष कर वापस कर्मबंध न हो वैसा करना चाहिये जी। जीवको तृष्णा है वह दुःखदायक है जी। उससे कम-अधिक नहीं हो सकता। पूर्व पुण्यके उदयसे जो साता-असाता, लाभ-हानि दिखाई देती है, वे अपने नहीं होते। जीव कल्पना कर बंधन करता है। अतः जीवको समभाव रखकर समतासे शांतभाव हो वैसा करना चाहिये जी। खेद करने जैसा कुछ नहीं है जी। मुमुक्षु जीजीभाई आदि सबसे यही अनुरोध है जी। जैसे भी आत्महित हो वैसे करना चाहिये जी। खेद करने जैसा कुछ नहीं है जी। अमूल्य मनुष्यभव फिर मिलना दुर्लभ है, इसमें एक धर्म ही सार है, शेष सब मिथ्या है। होनहार बदलता नहीं और जो बदलता है वह होनहार नहीं। धैर्य रखकर समता भावसे समाधिमरण हो वैसे दिन-प्रतिदिन चिंतन रखियेगा।

दोहा– [१]धीरे धीरे रावतां, धीरे सब कुछ होय;
माली सींचे सो गणा, ऋतु विण फल नव होय.
गई वस्तु शोचे नहीं, आगम वांछा नो'य;
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जगमांय.
[२]क्षमासूर अरिहंत प्रभु, क्षमा आदि अवधार,
क्षमा धर्म आराधवा, क्षमा करो सुखकार.
[३]साचे मन सेवा करे, जाचे नहीं लगार;
राचे नहि संसारमां, माचे निजपद सार.
[४]प्रभु सर्व व्यापी रह्या, छे तुम हृदय मोझार;
ते प्रत्यक्ष अनुभवी, पामो भवनो पार.
"पूर्व पुण्यना उदयथी, मळ्यो सद्गुरुयोग;
वचनसुधा श्रवणे जतां, थयुं हृदय गतशोग.
निश्चय एथी आवियो, टळशे अहीं उताप;
नित्य कर्यो सत्संग में, एक लक्षथी आप."

सहजात्मस्वरूप

१. कोई भी कार्य धीरजसे–यथाकाल होता है–उतावल करनेसे नहीं होता। माली सौ गुना पानी सींच ले–पौधेको बहुत पानी पिला दे, तो भी ऋतु आये बिना फल नहीं आयेगा। २. अरिहंत प्रभु क्षमारूपी शस्त्रसे वीर है, दशलक्षण धर्ममें क्षमा धर्म आदि (प्रथम) कहा है। क्षमाधर्मकी आराधना करनेके लिये दूसरोके अपराधोंको क्षमा करो जो सुखदायक है। ३. जो सच्चे मनसे प्रभुकी सेवा करते हैं, उसके प्रतिफलकी अंशमात्र इच्छा नहीं रखते और संसारमें आसक्त नहीं होते वे साररूप निजपदका आनन्द उठाते हैं। ४. प्रभु सर्वव्यापी है–तुम्हारे हृदयमें भी रहे हुए हैं। उसका प्रत्यक्ष अनुभवकर संसारसागरसे पार हो जाओ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६ सनावद, सं.१९७६

जैसे हो सके वैसे भक्ति-भावना, त्याग-वैराग्य, आत्मभावमें जैसे-जैसे विशेष असंग एक आत्माके साथ वृत्ति संलग्न हो सके वैसा करना चाहिये जी। 'सर्वव्यापक सच्चिदानंदके समान मैं आत्मा हूँ' ऐसा चिंतन और ध्यान करना चाहिये जी। परमार्थमें यह देह बीते तो आत्माका कल्याण होगा। अपने स्वच्छंदको रोककर निःस्वार्थ प्रवृत्ति करना योग्य है।

वेदनीय कर्म—जो-जो साता असाता आवे उन्हें सम्यक् अर्थात् समभावसे भोगने पर बँधे हुए कर्म छूट जाते हैं। किन्तु पुनः बंध न हो यह भाव तो एकमात्र आत्मभावना है। द्रष्टा आत्मा है, वह जानता है, ऐसा सोचकर आत्मानंदमें काल व्यतीत करना चाहिये।

★★★

५७ सनावद, ता.५-११-२०, धनतेरस, सं.१९७६

तत् ॐ सत्

'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'

महादेव्याः कुक्षिरत्नं शब्दजितवरात्मजम्।
राजचंद्रमहं वंदे तत्त्वलोचनदायकम्॥

प्रगट पुरुषोत्तमको नमस्कार! नमस्कार!

"आभ्यंतर भान अवधूत, विदेहीवत्, जिनकल्पीवत्, सर्व परभाव और विभावसे व्यावृत्त, निजस्वभावके भान सहित, अवधूवत् विदेहीवत् जिनकल्पीवत् विचरते हुए पुरुष भगवानके स्वरूपका ध्यान करते हैं।"

ज्ञान-दर्शन-चारित्र, असंग, अप्रतिबद्ध आत्मा समझें।

समता, क्षमा, धैर्य, समाधिमरण, विचार, सद्विवेकको जानें।

आत्मा है, नित्य है, कर्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है, मोक्षका उपाय है। यह पत्र विचारणीय है जी।

हे जीव! कुछ सोच, विचार, कुछ चिंतन कर, विराम प्राप्त कर विराम। ऐसा समझ, छोड़ना पड़ेगा।

"जहां कलपना जलपना, तहां मानुं दुःखछाय;
मिटे कलपना जलपना, तब वस्तु तिन पाय."

मैत्री, प्रमोद, करुणा, मध्यस्थता ये चार भावनाएँ करनी चाहिये।

अनुप्रेक्षाके चार भेद हैं—

(१) एकत्वानुप्रेक्षा अर्थात् आत्मा एक है, नित्य है। (२) अनित्यानुप्रेक्षा अर्थात् आत्माके सिवाय शेष सब अनित्य है। (३) अशरणानुप्रेक्षा अर्थात् आत्माके सिवाय अन्य किसीकी शरण नहीं है। (४) संसारानुप्रेक्षा अर्थात् आत्माकी शरण नहीं लेनेसे संसारमें परिभ्रमण करना पड़ता है।

"हे जीव! तू स्थिर दृष्टिसे अंतरंगमें देख, तो सर्व परद्रव्यसे मुक्त ऐसा तेरा स्वरूप तुझे परम प्रसिद्ध अनुभवमें आयेगा।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"इतना ही खोजा जाय तो सब मिल जायेगा; अवश्य इसमें ही है। मुझे निश्चित अनुभव है। सत्य कहता हूँ। यथार्थ कहता हूँ। निःशंक मानें।"

"प्रवृत्तिके कार्योंके प्रति विरति।

संग और स्नेहपाशको तोड़ना (अतिशय कठिन होते हुए भी तोड़ना, क्योंकि दूसरा कोई उपाय नहीं है।)

आशंका—जो स्नेह रखता है उसके प्रति ऐसी क्रूर दृष्टिसे वर्तन करना, क्या यह कृतघ्नता अथवा निर्दयता नहीं है?"

"छोड़े बिना छुटकारा नहीं है।" "अब क्या है?" शांतिः शांतिः

कायरता देशकाल-विपरीतता विपरीत।

हे आर्य! समेट, अन्यथा परिणामका योग है। अथवा संपूर्ण सुखका प्राप्त योग नष्ट करनेके समान है जी।

अत्यंत स्थिरता, अत्यंत लौकिकभाव, विषय-अभिलाष, स्वेच्छाचार। परमार्थ अपरमार्थ निर्णय अनिर्णय। तथा प्रतिबंध विहार परमपुरुषके समागमका अभाव।

"शरीरमें पहले आत्मभावना होती हो तो होने देना, क्रमशः प्राणमें आत्मभावना करना, फिर इंद्रियोंमें आत्मभावना करना, फिर संकल्प-विकल्परूप परिणाममें आत्मभावना करना, फिर स्थिर ज्ञानमें आत्मभावना करना। वहाँ सर्व प्रकारसे अन्य अवलंबन रहित स्थिति करना।"

"आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे,
जीव लहे केवलज्ञान रे।"

आत्मा अमूल्य है। तुच्छ पदार्थोंमें प्रीति कैसे करूँ? सब भूल जायें। प्रेमको बिखेर रहे हो। उस सर्व परभावमें प्रीति न करूँ। एकमात्र सत्स्वरूप सद्गुरु पर प्रीति करूँ, अन्यत्र कहीं भी प्रेम न करूँ। ॐ शांतिः शांतिः

★★★

५८ सनावद, कार्तिक सुदी १०, रवि, १९७७

हमें समेदशिखरजी साथमें आनेके लिये विचार प्रदर्शित किया सो इस विषयमें पहले हमारी इच्छा थी, उस वृत्तिको अब संकुचित कर लिया है जी; वह शरीर आदि कारणसे तथा आत्महित तो स्वयंसे करना है ऐसे विचार चित्तमें रहनेसे। यदि यह जीव स्वच्छंद एवं प्रमादमें फँसा रहे तो कुछ कल्याण नहीं हो सकता। अतः सद्गुरु देवाधिदेवश्रीके वचनामृतका वाचन-चिंतन कर जैसे आत्मा जागृत हो वैसे करना चाहिये जी। यदि आत्मा ही जागृत नहीं हुआ तो किसी भी कालमें कल्याण होगा ऐसा नहीं लगता। अतः सत्संग, सत्शास्त्र—जिससे आत्महित हो सके वैसी पुस्तकें—का वाचन-चिंतन सत्पुरुषकी आज्ञासे हो तो कल्याण है जी। अब तीर्थयात्राके विषयमें चित्तवृत्तिको संकुचित कर एक आत्मासे पुरुषार्थ करनेकी अंतरवृत्ति रहती है जी। जिसने आत्माको जाना है, उससे उस आत्माको जाने और स्वच्छंद तथा प्रमादको छोड़कर उदयकर्मको भोगते हुए समभावमें रहे तो कल्याण है जी। यह समभाव तो, आत्माको जाने बिना, आना कठिन है जी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्गुरु देवाधिदेव परमकृपालुके वचनामृतमें अनेक स्थानों पर आत्मा यथातथ्य, जैसा है वैसा बताया है। 'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, सव्वं जाणइ से एगं जाणइ' इसका सद्गुरुसे अत्यंत महान परमार्थ जाने तो वेदनीय आदि कर्म आने पर उदास न होकर उदासीनता (समभाव) प्रकट हो तो कल्याण है जी। जिसकी बाह्यवृत्ति क्षय हुई है और अंतरवृत्ति आत्मभावनापूर्वक रहती है, उस जीवात्माका कल्याण होगा जी। आपने परमार्थबुद्धिसे सेवाभक्तिकी जो भावना प्रदर्शित की, उस भावकी आपको सफलता है जी।

यद्यपि मनमें तो आपको पत्र लिखनेका विचार आता था, किन्तु अंतरवृत्तिमें अनेक कारण आपके लिये विघ्नकारक देखकर वृत्ति-संकोचन किया था। आज आपको यह पत्र लिखना हुआ है, किन्तु अंतरंगमें आपको जो कहना था वह लिखा नहीं गया; मात्र परमार्थके लिये, अंतरमें स्वार्थरहितपनेसे, निःस्पृहासे आत्माका कल्याण हो वह स्पष्ट बताना था। आपकी समझ और चिंतन आपके क्षयोपशमके अनुसार है। उसमें 'मुझे कुछ कुछ समझमें आता है' 'मैं समझता हूँ' ऐसा रह गया देखता हूँ, ऐसा हमारी समझमें आनेसे कहना या लिखना नहीं हुआ है जी।

अब आपको जैसा कहना मुझे यहाँ स्मृतिमें ठीक लगा, वह सहज लिख रहा हूँ जी। आप जानते ही हैं कि कालका भरोसा नहीं है, प्राण लिये या लेगा ऐसा हो रहा है। यह स्वप्नवत् संसार त्रिविध तापसे जल रहा है, इसमें कुछ सदा एक जैसा रहेगा ऐसा दिखाई नहीं देता; सब क्षण-क्षण बदलता चंचल पुद्गल-संयोगवाला लगता है, वह अपना न होने पर भी 'मेरा' माना जाता है उसमें जड़-चेतनका विचार-भेदज्ञान, ऐसा संयोग प्राप्त करके भी, समझमें नहीं आया तो फिर अनंतकालसे जैसा होता आ रहा है वैसा ही होगा यों समझ लें। एक जो करना समझना है वह क्या है? इस पर विचार करना चाहिये। यदि वह नहीं हुआ तो फिर? अतः आपको वह करना है जी।

यह जो लिखना हुआ है, वह कुछ पूर्वके संयोगसे हुआ है जी। आपके कल्याण—आत्महितकी इच्छासे लिख रहा हूँ कि आत्माने आत्माको ढूँढनेके लिये समय नहीं बिताया है। जगतके जीव संसारमें मान-बड़प्पनके लिये समय व्यतीत करते हैं, उससे आत्मा बंधनसे नहीं छूटता। उसके लिये आप जैसोंको तो जाग्रत रहना चाहिये। उपाधिसे निवृत्तिका आपका बहुत विचार रहता है और आपने अपनी समझके अनुसार वैसा किया भी है, किन्तु जो करना है वह रह गया तो? अतः इस विषय पर कुछ विचार करें।

★★★

५९ मंडाला, ता.१-३-२१

सुख-दुःख आने पर सहन करना कर्तव्य है जी।

जैसे हो सके वैसे वृत्तिको रोककर ध्यान, स्मरण, भक्ति, वैराग्यभावसे स्वपर हित हो वैसे करना चाहिये। जैसे भी हो सके अपने निमित्तसे अन्य जीवको कषायका कारण न बने और जैसे सत्धर्म-आत्मभाव पर भक्तिभाव-प्रेम बढ़े वैसी चर्या, आचरण करना चाहिये जी, कुछ खींच-तानकर नहीं करना है। अपना हित-कल्याण करनेके लिये सन्मुखदृष्टि, ध्यान रखकर दूसरोंकी वृत्ति उसमें प्रेरित हो वैसा करनेमें हित है जी।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६० मंडाला, चैत्र सुदी ६, गुरु, १९७७

नरम गरम शरीरप्रकृतिके संयोगसे, वृद्धावस्थाके कारण तथा उदयकर्मके कारण व्याधि या वेदना आवे उसे समभावसे, देवाधिदेव परमकृपालु सद्गुरुदेवकी शरणपूर्वक भोगा जाय ऐसी इच्छासे वर्तन हो रहा है जी। क्योंकि इस देहसे भिन्न आत्मा वेदनाके समय व्याकुलताको छोड़ शांतभावसे अपने स्वरूपकी ओर मुड़े ऐसा प्रयत्न करना योग्य है जी। देह विनाशी है और आत्मा अखंड अविनाशी है, इसे भूलना नहीं चाहिये।

जगतके सर्व भावोंसे उदासीनता रखकर, हृदयको निर्मल कर, सारे विश्वको चैतन्यवत् देखनेके विचारमें मनको जोड़ें। परमकृपालु श्री सद्गुरु देवाधिदेव श्री प्रभुकी छबि हृदयमंदिरमें स्थापित कर, खड़ी कर, मनको उसीमें पिरोकर परम शुद्ध चैतन्यका निवासधाम, ऐसी जो सद्गुरुदेवश्रीकी पवित्र देह है, उसका वीतरागभावसे ध्यान करनेसे, स्मरण करनेसे, बारंबार याद करनेसे भी जीव परम शांत दशाको प्राप्त करता है, यह भूलने योग्य नहीं है।

इस विषयका बोध देवाधिदेव सद्गुरुके मुखसे हुआ है, उसे हृदयमें धारण किया है, उसे आज परमार्थका हेतु जानकर, हृदयमें किसी प्रकारके स्वार्थ या अन्य भावके हेतुसे नहीं, ऐसा सोचकर आपको यहाँ पत्र द्वारा सरल भावसे विदित किया है जी। आप सुज्ञ है अतः ध्यानमें रखियेगा। हमारा भी समय इसी विचारमें व्यतीत हो रहा है जी। अन्य सब तो भूल जाने जैसा है जी।

हे प्रभु! प्रायः शरीर-व्याधिके कारण पत्र लिखने-लिखानेमें चित्तवृत्तिका संकोच कर लिया है जी। अतः किसीको पत्र लिखाना नहीं होता। आपके चित्तको विकल्प न हो इसलिये, या हमें समभाव रहता है यह आपको बतानेके लिये आज यह पत्र लिखाया है। यद्यपि संपूर्ण वीतरागता तो इस दशामें यथातथ्य विद्यमान है जी, किन्तु छद्मस्थ वीतरागदशासे जितनी-जितनी सद्गुरु प्रत्यक्ष पुरुषकी प्रतीति, यथातथ्य श्रद्धा, रुचि परिणत हुई है उतनी-उतनी समदृष्टि अंतरवृत्तिमें रहती है जी। वह आपश्रीको सूचित किया है जी।

आप भी जैसे भी हो सके उस सत्पुरुषकी दशाको लक्ष्यमें लेंगे तो आत्मकल्याणका हेतु है जी। वैसे, सूक्ष्म मायासे ठगा जाकर यह जीव वृत्तिमें भूल करता है जी—'मैं समझता हूँ', 'मैं जानता हूँ' आदि दोष इस जीवमें होते हैं इसे नहीं समझनेसे। अतः प्रत्यक्ष पुरुषके वचनामृतसे विचार कर जीवको गहन चिंतन लक्ष्यमें लेने योग्य है जी।

[1]"अस्ति स्वभाव रुचि थई रे, ध्यातो अस्ति स्वभाव;
देवचंद्र पद ते लहे रे, परमानंद जमावो रे कुंथु जिनेसरु. ९"

[2]"तेणे मुज आतमा तुज थकी नीपजे, माहरी संपदा सकल मुज संपजे;
तेणे मनमंदिरे धर्म प्रभु ध्याईये, परम देवचंद्र निज सिद्धि सुख पाईए. १०"

---

१. आत्माके अस्तिस्वभावकी रुचि होनेसे (सम्यग्दर्शन होनेसे) अस्तिस्वभावका ध्यान करता है—आत्मामें रमणता करता है जिससे देवचंद्रपद अर्थात् मोक्षपदकी प्राप्ति होती है जहाँ परमानंदकी प्रचुरता है अर्थात् आनंद ही आनंद है।

२. श्री देवचंद्रजी धर्मनाथ प्रभुकी स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे धर्मनाथ प्रभु! आपके द्वारा—आपके शुद्ध स्वरूपके चिंतनसे मुझे अपने आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होती है, मेरी संपूर्ण आत्मसंपदा मुझे प्राप्त होती है इसलिये मैं अपने मनमंदिरमें आपका ध्यान करता हूँ जिससे मुझे सिद्धिसुख-मोक्षसुखकी प्राप्ति हो जाये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जेती मनमें ऊपजे, तेती लखी न जाय;
तातैं पत्रप्रवृत्तिमें, वृत्ति रही संकुचाय."

★★★

६१ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.३०-५-२१, सं.१९७७

समभाव रखकर शेष जीवनमें आत्मार्थ करना योग्य है। विकल्प करनेसे कर्म उपार्जन होते हैं। अतः समभाव रखना उचित है। समभाव रखकर जो जो आये उसे देखते रहें। धैर्य रखें। साता-असाता, संयोग-वियोग, राग-द्वेष, अनुराग-अननुराग ये किसी व्यवस्थित कारणसे रहते हैं। अतः जो आये उसे हमें समभावसे भोग लेना चाहिये।

★★★

६२ राजनगर, ता.१५-१-२२

"जो जो पुद्गल-फरसना, निश्चे फरसे सोय;
ममता-समता भावसें, कर्म-बंध-क्षय होय.

स्वर्ग, मृत्यु, पातालमें, सप्त द्वीप नव खंड;
कर्म-योग सबकूं हुवे, देह धर्याका दंड.

[1]समभावे उदय सहे, रहे स्वरूपे स्थित;
दहे पूर्वप्रारब्धने, ए ज्ञानीनी रीत."

★★★

६३ राजनगर, पोष वद ७, शुक्र, १९७८

[2]"सद्गुरु-पद उपकारने, संभारुं दिनरात;
जेणे क्षणमांही कर्यो, अनाथने य सनाथ.

सद्गुरु चरण जहां धरे, जंगम तीरथ तेह;
ते रज मम मस्तक चडो, बालक मागे एह."

★★★

६४ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम अगास, ता.२-५-२२

[3]जो मति पीछे ऊपजे, सो मति पहले होय;
काज न विणसे आपणो, लोक हसे नहि कोय.

---

१. समभावसे कर्मोदयके फलको सहन करते हुए अपने आत्मस्वरूपमें स्थित रहते हैं जिससे पूर्वप्रारब्धका क्षय हो जाता है—यही ज्ञानीकी रीति है।

२. सद्गुरुके चरणकमल(आश्रय)के उपकारको मैं रातदिन याद करता हूँ कि जिसने एक क्षणमें अनाथ ऐसे इस जीवको सनाथ कर दिया। अर्थात् सद्गुरुके आश्रयसे जीव सनाथ हो जाता है—इस अशरण संसारमें दुःखसे बचानेवाले शरणरूप (नाथरूप) एक सद्गुरु ही है।

३. जो बुद्धि बादमें उत्पन्न होती है वह यदि पहले उत्पन्न हो जाय तो अपना काम भी बिगड़े नहीं और लोग-हँसाई भी न हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस जीवने अनादिकालसे सद्देव-गुरु-धर्मको यथार्थ रूपसे नहीं जाना है। वह, यह मनुष्यभव प्राप्त कर, जैसा है वैसा समझमें आये तो आत्माको निर्भय-निःसंग शांति प्राप्त होती है जी। एक गुरुका स्वरूप यथातथ्य विचारमें आये तो जीवका कल्याण हो जाता है। यह संसार स्वप्नसमान है, इसमें एक सद्गुरुका स्वरूप क्या है यह विशेष लक्ष्यमें आये तो उस जीवको सम्यक्त्व हुआ कहा जाता है, यह ध्यानमें--लक्ष्यमें रहना चाहिये। समागममें विचार कर्तव्य है जी।

★★★

६५ आश्रम, ता.४-७-२२

समता, शांतिका सेवन करें। समभाव-धैर्य रखकर, स्वउपयोगको एक 'सहज आत्मस्वरूप'में लाकर, जागृत होकर, धारणासे स्वस्थ होकर, स्थिर द्रष्टाके रूपमें वेदनीय भोगते हुए काल व्यतीत करते हुए उदास न होकर, सदा मगनमें अर्थात् आनंदमें रहना सीखें। उदासीनता अर्थात् समभाव लावें। ऐसा किये बिना छुटकारा नहीं है। वेदनीय सुख-दुःख तो आये बिना नहीं रहेंगे। यह तो उदयाधीन प्रवृत्ति है, इसमें अधैर्य नहीं करना चाहिये, घबराने जैसा नहीं है। अतः किसी प्रत्यक्ष पुरुषकी जो आज्ञा प्राप्त हुई हो उसे संतके मुखसे सुनकर, उसमें अचल श्रद्धा रखकर केवल उस आज्ञामें आत्माको प्रेरित करें। विशेष क्या लिखूँ? यदि जीव समझे तो सहजमें ही है जी। सब कुछ भूलकर सत्संगमें जो सत्पुरुषके वचन कहे गये हैं उन्हें ही याद करें। आकुल न हों, घबरायें नहीं। जहाँ संकल्प-विकल्प उठें कि तुरत मनको उस महामंत्रमें जोड़ देवें। यही विज्ञप्ति है।

जो-जो पत्र आपको कण्ठस्थ हों उसका स्वाध्याय करते तथा जो सीखा हो उसे प्रतिदिन पाठ करते विचारपूर्वक काल व्यतीत कीजियेगा। जीवको घड़ी भर भी निकम्मा न छोड़े, अन्यथा वह सत्यानाश कर देगा। चित्तवृत्ति बहुत संकुचित हो जानेसे कुछ भी पत्र लिखवाना नहीं हो पाता, यह आपको सहज विदित किया है। यदि वासनामें संलग्न हुए हों तो वहाँसे वापस लौटकर आपको जो आज्ञा हुई हो उसमें, आत्मभावमें उपयोग लगाइयेगा, उसीमें आत्मकल्याण मानियेगा। यह भूलने योग्य नहीं है। सब भूल जायें और उस समय द्रष्टा-साक्षी बन जायें परंतु इसे अवश्य न भूलें।

"आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे,
जीव लहे केवलज्ञान रे."

★★★

६६ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
अषाढ़ सुदी १०, १९७८

शमभाव, समता, क्षमा, सद्विचारमें रहें। कोई संकल्प-विकल्प उठे कि तुरत वृत्तिको संक्षिप्त कर, जो किसी प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुषकी किसी भाविक जीवात्माके प्रति आज्ञा हुई हो वह, महामंत्र किसी सत्संगके योगसे इस जीवात्माको प्राप्त हुआ हो तो अन्य सब भूलकर उसीका स्मरण करना चाहिये जी। जिससे चित्त समाधिको प्राप्त होकर विभाव वृत्तिका क्षय होता है जी। यही कर्तव्य है जी। सर्व मुमुक्षु जीवात्माको भी यही लक्ष्य होना चाहिये जी।

आपको सत्समागममें विघ्नकारक उपाधि विशेष है जिससे आपका मन खेदको प्राप्त होता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यही सत्समागमका फल है; किन्तु यथायोग्य खेद अभी तक नहीं हो रहा है। जब यथार्थ खेद होगा और सर्व उपाधिके प्रति विषके समान बुद्धि होगी तब हरि निवृत्तिका अवकाश सहज ही देगा। जगतके जीव कुछ-न-कुछ प्राप्त करनेमें प्रयत्नशील है, पर आत्मार्थी जीव किंचित् भी ग्रहण करनेको—प्राप्त करनेको ही दुःखका मूल समझते हैं। अपना शाश्वत धन उपाधिके कारण आवरित हो गया है। जैसे भी हो सके वैसे उपाधिरहित होकर, असंग वृत्ति कर, एक सद्गुरुके प्रति अनन्य भक्तिभाव और आश्रयभाव उत्पन्न करें कि जिस आश्रयके बलसे सर्व उपाधिका विलय होगा या वह उपाधि अंतराय—आवरणभूत नहीं होगी। जिसकी दृष्टि स्वस्वरूप-सन्मुख हुई है, उस आत्माको संसारमें बड़प्पनका भाव छोड़ देना चाहिये। जब तक असद् वासनाएँ हैं तब तक सत्की प्राप्ति दूर रहती है। अतः सोच-विचारकर असत्संगका त्याग, सत्की प्राप्ति और सत्-असत्का विवेक-ज्ञान बहुत सूक्ष्म दृष्टिसे करना चाहिये। पहले भी कई बार ऐसा जोग मिला, किन्तु सत् मिला नहीं, उसे सुना नहीं, उसकी श्रद्धा की नहीं; और वह मिलनेपर, उसे सुननेपर और उसकी यथार्थ प्रतीति होने पर तदनुसार प्रवृत्ति होनेसे मोक्ष हथेलीमें है, ऐसा परमगुरु कहते हैं। इस वाक्य पर विशेष विचार कीजियेगा।

सहजात्मस्वरूप

पुनश्च—

द्रष्टा-अरूपी।

देहसे जीवको कर्मका भोग है उसका मैं द्रष्टा हूँ।

मनसे कल्पना (उठती है) उसका द्रष्टा हूँ।

ज्ञान-दर्शन-चारित्रका द्रष्टा हूँ, उपयोगमय हूँ।

चैतन्यमय हूँ, निर्विकल्प हूँ।

समभाव ही भुवन है।

सहजात्मस्वरूपका स्मरण।

★★★

६७ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, भाद्रपद सुदी ३, १९७८

सत्संग-सत्समागम अवश्य कर्तव्य है। फिर भी अंतरायके कारण विशेष पुरुषार्थ कर, प्रमादको छोड़कर, निवृत्तियोगमें अवकाश ग्रहण कर, जो भाविक जीव हों उनके साथ उनके समागममें बड़ी पुस्तक (श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथ) का योग हो तो वाचन-चिंतन कीजियेगा।

श्रीमद् राजचंद्र कृपालुदेव देवाधिदेवके वचनामृतोंसे भरे हुए पत्ररूपी अमृतका पान कर, उन पर विचार-चिंतन करनेमें समय व्यतीत कीजियेगा। यद्यपि उपाधि, व्यवसायके निमित्तसे अवकाश न मिलता हो तथापि ऐसा अवकाशका योग प्राप्तकर घंटे-दो घंटे, दिनमें या रातमें सत्समागम करें। यदि ऐसा योग न मिलें तो स्वयं ही एकांतमें घंटे-दो घंटे निवृत्ति लेकर वाचन-चिंतन करें। कालका भरोसा नहीं है। संसार स्वप्नके समान है। बुरे अध्यवसाय परिणामके निमित्तसे जीव प्रेरित होकर आर्तध्यान, संकल्प-विकल्पमें पड़कर, मनमें रति लाकर बंधन करता है जी। उस बुरे निमित्तको मनसे बदलकर स्मरणमें तथा वाचन-चिंतनमें मनको लगायेंगे जी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव जागृत न हो तो वृत्ति ठग लेती है जी। अज्ञानरूपी अंधकारमें रहता जीव घोर पापका बंधन कर दुर्गतिमें—नरक, पशु, पक्षीमें जन्म लेकर महादुःखमय जन्म-मरण करते हुए भटकता है। उसे पुनः मनुष्यभव मिलना दुर्लभ हो जाता है।

इस संसारको स्वप्नवत् जानकर प्रमादको छोड़कर, अपने स्वच्छंदको रोककर अच्छे निमित्तोंमें जुड़े तो भविष्यमें उसका फल अच्छा मिलेगा। अतः क्षणभर भी जीवको निकम्मा नहीं छोड़ना है। यदि क्षणभर भी निकम्मा रखेंगे तो जीव अपना सत्यानाश कर डालेगा।

★★★

६८ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
भाद्रपद वदी ८, गुरु, १९७८

आपका भक्तिभाव अच्छा है। किन्तु उस भावसे संकल्प-विकल्प कर कुछ भी निर्णय करना योग्य नहीं। अर्थात् कोई संकल्प-विकल्प नहीं करना चाहिये, ये मिथ्या हैं; भक्तिभावमें रहना चाहिये।

अपने प्रारब्ध-कर्मको भोगते हुए भी आकुल नहीं होना चाहिये या घबराना नहीं चाहिये; वीतरागका मार्ग ऐसा नहीं है। जो हो उसे उदासीन भावसे अर्थात् समभावसे भोगना योग्य है। अपने पतिको परमात्मारूप मानकर व्यवहार करें। कषायका निमित्त हमसे न हो इसे ध्यानमें रखना चाहिये। धैर्यसे सहनकर काल व्यतीत करना चाहिये, जल्दबाजीका काम नहीं है। अभी बाह्यपरिणतिपूर्वक व्यवहार करते हुए बहिरात्मभावसे जो संकल्प-विकल्प मनमें उठते हैं, आते हैं, वे सर्व मिथ्या हैं जी। अतः वे कर्तव्य नहीं हैं जी। वे आत्महितको आवरणकर्ता हैं जी।

★★★

६९ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
भाद्रपद वदी १४, बुध, १९७८

[1]"नहि बनवानुं नहि बने, बनवुं व्यर्थ न थाय;
कां ए औषध न पीजिये, जेथी चिंता जाय."

सन्मुखदृष्टिवान भाविक जीवात्माको जिस-जिस क्षेत्रकी स्पर्शनासे काल व्यतीत होता है, वह उदयाधीन सत्संगके वियोगमें उदासीनता अर्थात् समभाव रखकर सच्चे भावसे अपारिणामिक ममतासे वह काल व्यतीत होता है, वह आत्माके कल्याणके लिये है।

काल सिर पर खड़ा है। प्राण लिये या लेगा ऐसा हो रहा है। यह जीव अब भी किस कालकी प्रतीक्षामें है, यह विचारणीय है। प्रमाद नहीं करना चाहिये। जैसे भी हो पुरुषार्थ करना योग्य है।

"आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे,"
जीव लहे केवलज्ञान रे.

"व्यवहार-प्रतिबंधसे विक्षिप्त न होकर उत्साहमान वीर्यसे स्वरूपनिष्ठ वृत्ति करना योग्य है।" "आत्महित अति दुर्लभ है ऐसा जानकर, विचारवान पुरुष अप्रमत्ततासे उसकी उपासना करते हैं।" इस जीवकी उत्तापनाका मूल हेतु क्या है? तथा उसकी निवृत्ति कैसे हो? और क्यों नहीं हो

१. नहीं होनेवाला होता नहीं और होनहार टलता नहीं। तो फिर ऐसी औषध क्यों न पी जाये कि जिससे चिंता न हो अर्थात् चिंता नहीं करनी चाहिये, उसे घोलकर पी जाना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रही है? ये प्रश्न विशेषकर विचारणीय हैं, अंतरंगमें उतरकर चिंतन करने योग्य हैं। जब तक उस क्षेत्रमें स्थिति रहती है, तब तक चित्तको अधिक दृढ़ रखकर प्रवृत्ति करें। वचनामृत आत्मार्थी मुमुक्षु भाइयोंके लिये परम कल्याणकारी है जी।

★★★

७० श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास

ता. ६-१२-२२

भद्रिक सरलस्वभावी जीवात्मा सोमचंदभाईके देहत्यागसे स्वार्थवश शोक न कर सोचना चाहिये कि मनुष्यभव दुर्लभ है। ऐसे मनुष्यभवको प्राप्त कर यदि यह जीव, अनंतकालचक्रसे परिभ्रमण करते हुए जो प्राप्त नहीं हुआ, वैसा सम्यक्त्व प्राप्त करे अथवा सच्चे सद्गुरुदेवके प्रति उसे श्रद्धा हो जाय तो इस मनुष्यभवकी सफलता माननी चाहिये। यद्यपि उपाधि तो कर्मवश सब जीवात्माओंके उदयमें है, उसे भोगनी ही पड़ती है, कोई सुख-दुःख लेने अथवा देनेमें समर्थ नहीं है, पर यदि एक यथातथ्य सत् श्रद्धान हो जाय तो इस मनुष्यभवका मूल्य किसी भी प्रकार नहीं हो सकता और वह सब कर चुका है ऐसा समझना योग्य है। ऐसा योग यहाँ मिला है। इस क्षणभंगुर देहका त्याग होता है ऐसा दिखाई देता है, और फिर स्वजन-बंधुमें वैसा होते प्रत्यक्ष देखते हैं ऐसा जानकर, समभाव रखकर धर्ममें चित्तको लगावें। यही कर्तव्य है। होनहार हो रहा है, भावी होकर रहेगा। किसीके हाथमें कुछ नहीं है।

इस कालमें दुर्लभमें दुर्लभ सत्संग है।

"जिण वयणे अणुरत्ता, गुरुवयणं जे करंति भावेण।
असबल-असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तसंसारा॥"

(मूलाचार २, ७२)

★★★

७१ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास

पौष वदी ७, १९७९

+"जम्मं दुक्खं, जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसन्ति जंतवो॥"

(उत्तराध्ययन १६, १५)

"जरा जाव न पीडेई, वाही जाव न वड्ढई।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे॥"

(दशवैकालिक ८, ३६)

भव्य जीवात्माओंके प्रति सर्व तीर्थंकर आदि ज्ञानियोंने ऐसा कहा है—"जब तक जरा अर्थात् वृद्धावस्था नहीं आती, पीड़ा अर्थात् रोगादि वेदनी नहीं आती और इंद्रियाँ क्षीण नहीं हुई है, तब तक तुम अपने निजस्वभाव-मूल धर्मको संभाल लो।"

ऐसा है, तो हे प्रभु! इस जीवको सोचना चाहिये कि मायादेवीका प्रबल राज्य चल रहा है। वह मोहादिरूप है। जो संयोगादि बाह्य परिग्रह शरीरसे लेकर धन आदि और आभ्यंतर परिग्रह क्रोध

+ जन्मे दुःख, जरा दुःख, व्याधि मृत्यु दुःख महा!
सारा संसार दुःखी वहाँ, जीव क्लेशित सर्व हा!!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि राग, द्वेष, अज्ञान, मूल धर्मसे दूर करनेवाला मिथ्यात्व है, उससे मुक्त होना चाहिये, असंग अप्रतिबद्ध बनना चाहिये। सत्पुरुषकी दृष्टिसहित प्रत्यक्ष वचनसे हृदयमें श्रद्धा कर, मान कर, जो प्रारब्ध उदयमें आवे उसे समभावसे भोगते हुए, चित्तमें रति-अरति न लाकर, विभाववृत्ति संकल्प-विकल्पको मनमें आनेसे रोककर, जो सत्पुरुषका बोध 'सहजात्मस्वरूप' है उसके प्रति भाव, परमगुरु (ज्ञान-दर्शन-चारित्र) के प्रति प्रेम, चित्तप्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये उपयोग रखकर अर्थात् एक शब्दका उच्चारण वचनसे करके, मनसे विचार करके, पुद्गलानंदी सुखको भूलकर, आत्मानंदी सुखकी लहरें-खुमारी प्राप्त हो ऐसे आनंदके अनुभवके लिये पुरुषार्थ करना चाहिये।

जागृत हो, जागृत हो, प्रमादका त्यागकर जागृत हो। कुछ विचार कर। काल सिर पर खड़ा है, प्राण लिये या लेगा ऐसा हो रहा है। हे जीव! अब तू किस कालकी प्रतीक्षामें है? यह सोचकर तुझे निःसंगभावके प्रति आना चाहिये, उसमें प्रवर्तन करना योग्य है।

"आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे,"
जीव लहे केवलज्ञान रे.

(जीवको) निकम्मा नहीं छोड़ना चाहिये। परभावमेंसे यथाशक्ति स्वभावमें आ सके, उन उन निमित्तों-कारणोंमें वृत्तिको जोड़ियेगा। वृत्ति क्षण क्षण डिग जाती है। अतः प्रत्यक्ष पुरुषके वचनामृत आदि पुस्तकमें संलग्न होवें। इतना भव आत्माके लिये देहको लगायेंगे तो अनंत भवोंसे छुटकारा हो जायेगा, उसे लक्ष्यमें, ध्यानमें रखकर, उदयके प्रति शत्रुभाव रखकर, दाढ़में रखकर, ध्यानमें रखकर, अवसर आनेपर मार डालें, स्नातक-सूतक क्रियाकर्म निबटाकर चले जायें, छूट जायें।

यही सत्पुरुषकी सूचना है।

निःस्पृहतासे, आत्मार्थ और स्वपर हितके लिये, आत्मासे विचारकर आपको यह लेख लिखा है। हृदयमें सद्गुरुके वचन आये हैं, वे ही लिखे गये हैं, अतः वे अवश्य लक्ष्यमें रखने योग्य हैं, विचारणीय हैं, वारंवार विचारणीय हैं। यदि निःस्वार्थतासे इतनी मात्र एक आत्माकी सँभाल रखेंगे तो उस संगका फल अवश्य मिलेगा, यह निःसंदेह है।

क्या कहें? 'कहे बिना बने न कछु, जो कहिये तो लज्जइये।' सत्संग बलवान है।

"जहां कलपना-जलपना, तहां मानूं दुःख छांय;
मिटे कलपना-जलपना, तब वस्तु तिन पाय."
"क्या इच्छत? खोवत सबै, है इच्छा दुःखमूल;
जब इच्छाका नाश तब, मिटे अनादि भूल."
☆ ☆ ☆
"जेम जेम मति अल्पता, अने मोह-उद्योत;
तेम तेम भव-शंकना, अपात्र अंतर ज्योत."
☆ ☆ ☆
"विषय-विकार सहित जे, रह्या मतिना योग;
परिणामनी विषमता, तेने योग अयोग.
मंद विषय ने सरळता, सह आज्ञा सुविचार;
करुणा, कोमळतादि गुण, प्रथम भूमिका धार."
☆ ☆ ☆

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"प्रथम आत्मसिद्धि थवा, करिये ज्ञान-विचार;
अनुभवी गुरुने सेविये, बुध जननो निर्धार."

★★★

७२ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ज्येष्ठ वदी १३, मंगल, १९७९

अरेरे! क्या कहें? जो कुछ इस कालमें सबसे पहले ही करना चाहिये उसीमें विलंब हो रहा है? कैसी कुदरत है जी!

★★★

७३ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
अषाढ़ वदी ३, बुध, १९७९

इस संसारमें महामायाको दुष्करतासे तैरकर आत्महित करना ही सारभूत है। बाकी रागद्वेष करना योग्य नहीं है। यथाशक्य आत्महितका पुरुषार्थ करना चाहिये। परमकृपालु देवाधिदेव, उनकी आज्ञा पर दृष्टि प्रेरित कर आत्महित कर्तव्य है। आप तो समझदार हैं, किसी प्रकारका विकल्प न करें। हमारा भाव समदृष्टि रखनेका है, अंतरमें है वह गुरुकृपासे मिटेगा नहीं। अपने-अपने आत्मार्थके लिये पुरुषार्थ कर, आत्मार्थ साधकर कर्मबंधनसे छूटनेका अवसर आया है। दुर्लभमें दुर्लभ मनुष्यभव है। अपना दोष स्वयंको कभी दिखाई नहीं दिया। वचनामृतमेंसे परमकृपालु देवके वचन यादकर, पत्र पढ़कर, उन दोषोंको दूर करना है ऐसा हमारे अंतरंगमें रहता है। किसीका किसीके साथ संबंध नहीं है; जीव अकेला आया है, अकेला जायेगा और अपने द्वारा बाँधे गये कर्म स्वयं भोगेगा, इसमें किसीका दोष देखने जैसा नहीं है, ऐसा हमारे हृदयमें है। आप समझदार हैं। जैसे आत्महित हो वैसे करियेगा।

"वित्तजा, तनुजा, मानसी, आज्ञा सेवा चार;
सेव्य सेववा कारणे, सेवा चार प्रकार."

★★★

७४ पूना, भाद्रपद वदी ७, शनि, १९८०

आपको जो परमकृपालु देवाधिदेव कथित मंत्राक्षर बताया गया है उसका स्मरण जीवन पर्यंत हर घड़ी करते रहें और साता-असाताके उदयकालको समभावसे देखते रहें। आत्मा द्रष्टा है, ऐसा मानकर समय व्यतीत करना चाहिये। इस देहको परमार्थमें अर्थात् आत्माके लिये ही बिताना है, यही हमें और आपको हो।

वेदनी वेदनीका समय पूरा होने पर जायेगी। आपको अभी जो दुःख है, वह बादमें फिर सुख दिखाई देना संभव है जी। ज्ञानी उसे समपरिणामसे भोगता है जी। इसमें किसीकी शक्ति नहीं चलती, यह तो परीक्षा है। जो आया है वह जायेगा, आत्मा तो सदा रहेगा। वह भिन्न है, ऐसा सोचकर वाचन, श्रवण, चिंतन करियेगा। आपको शांति हो यह हमारी आशीर्वादपूर्वक भावना है जी, वह सफल हो!

यह संसार स्वप्नके समान है जी। समय बीतने पर सब जानेवाला है जी। एक धर्म, आत्माके लिये इस देहसे जो हो सके, वही सार्थक है जी। ऐसा योग बार बार मिलना दुर्लभ है जी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि श्री मोहनलालजीसे अनुरोध है कि आपने देवाधिदेव परमकृपालुदेवके जो जो वचन मुख द्वारा सुने हैं, उन्हें यादकर उनकी आज्ञामें लीन होंगे। फिर हमें जो जो आज्ञा उन परमकृपालुदेवने की है वह आज्ञा मुझे भी हो, ऐसी भावना भी रखनी चाहिये। परमकृपालुदेवने जीवात्माकी कर्मप्रकृति कुशल वैद्यकी भाँति देखकर जिसे जो आज्ञा छोटी बड़ी दी है, उसे उसी आज्ञाका पालन तन-मनसे करना चाहिये। भविष्यमें उसे इसी भवमें या परभवमें बड़ी आज्ञा अवश्य वैसे ज्ञानीसे या उसी ज्ञानीसे मिल जायेगी। घबरायें नहीं। आपने तो उनका प्रत्यक्ष बोध सुना है जी। अतः प्रत्यक्ष वचनामृतमेंसे पढ़कर या पढ़वाकर, याद कर समय व्यतीत करेंगेजी। सद्विचार कर्तव्य है जी। उनके कहे हुए वचनामृतको भी प्रत्यक्ष समझेंगेजी। भविष्यमें सब अच्छा होगा। इसीके लिये शरीरको लगाना कर्तव्य है जी। सदा ही, जो जाता है वह रहता नहीं है। जो है वह तो है ही।

★★★

७५ पूना, भाद्रपद वदी ७, शनि, १९८०

आत्माके लिये ही हमें आपको जीना है जी, वहाँ अब कुछ आकुल होने जैसा नहीं है, परम आनंदसे समय व्यतीत करना है जी। स्वप्नवत् मिथ्या संसारमें अनंत काल बीता वैसे अब नहीं जाने देना है, एक सद्गुरु देवाधिदेव प्रत्यक्ष आत्माकी आज्ञामें सब कुछ समाया है जी, उसीमें जीवन बिताकर चले जाना है जी।

★★★

७६ पूना, ता.१-१०-१९२४
आश्विन सुदी ४, गुरु, १९८०

जीजी बापाकी इच्छा दर्शन करनेकी रहती है, वह आत्माको हितकारी है, पर उन्हें कहें कि दर्शन करनेकी अपेक्षा जो दर्शन करनेकी भावना है वह आत्माको विशेष कल्याणकारी है। यथाशक्य शांति भावसे 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' मंत्रका जाप करते रहें। मनमें इसीकी स्मृति बार बार लायें और देवाधिदेव परमकृपालुदेवके चित्रपटके सन्मुख दृष्टि रखें। उनके दर्शन कर मंत्रमें उपयोग रखनेका अनुरोध है जी। इसीमें आपका कल्याण है।

साता-असाता वेदनी है वह कालक्रमसे स्वतः चली जायेगी। आत्मा नित्य है जी। समभाव रखें, अकुलाकर शोक न करें। अनेक भद्रिक जीवात्माओंने समता, क्षमा रखकर सद्गुरु-कथित मंत्रकी आज्ञामें चित्तको लगाकर दुःखको सहन किया है।

आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय है, वह यथातथ्य जानता है, देखता है, स्थिर है, जैसा है वैसा ही है, वही स्वरूप मेरा है जी। उदयकर्मके संयोगसे देहादिके कारण वेदनी है, उसे ज्ञानी सत्पुरुषने स्पष्ट भिन्न जाना है। वे सत्पुरुष-ज्ञानी समभावसे मुक्त हुए हैं। अतः मुझे उनकी शरण, आराधना करनी चाहिये। इससे, इस देहके कारण जो वेदनी है, उसका नाश होता है जी। देहके नाशके साथ वेदनीय कर्मका भी नाश है जी। मेरा उसमें कुछ नहीं है।

घबरायें नहीं। परभावके संकल्प-विकल्प न करें। सब भूल जायें। मनमें एक चित्तसे बारंबार मंत्रका स्मरण करें। सद्गुरु मेरे पास ही हैं, मेरे हृदयमें बसे हुए हैं जी। अन्य जो भी है वह पर है, मेरा है ही नहीं, ऐसा ध्यानमें रखें।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७ पूना, आश्विन सुदी ७, रवि, १९८०

जैसे आत्महित हो वैसे वाचन-चिंतन कर्तव्य है जी। 'श्रीमद् राजचंद्र' बृहद् ग्रंथ है उसमेंसे पक्षपात-रहित आत्मार्थ—आत्माका कल्याण—हो वैसी व्याख्याके पत्र पढ़ने, विचारनेका आपश्रीसे अनुरोध है जी। यद्यपि उसमें गुरुगमकी आवश्यकता अनिवार्य है, पर वह नहीं होनेसे, आपकी समझ आत्महितमें हो ऐसे, त्याग-वैराग्य विशेष बढ़ें ऐसे भावसे ध्यानमें लीजियेगा। सर्व शास्त्रोंके कथनका परमार्थ यही है कि आत्महित करना है; और वह इस ग्रंथमें समाहित है। यद्यपि इसका वाचन-श्रवण सत्समागममें विशेष हितकारी होता है, तथापि धैर्यसे निवृत्ति लेकर, एकांतमें वृत्तिको बाहर भटकती रोककर पढियेगा, विचारियेगा।

उसमें बताई हुई बोधबीजकी समझ या उसका अर्थ समझमें न आये तो उसे पढ़कर पूछने जैसा लगे तो पत्र द्वारा सूचित करें। यदि यहाँसे पत्र द्वारा सूचित करने योग्य होगा तो पत्रसे सूचित करेंगे और यदि सत्समागममें समझने योग्य होगा तो वह हरीच्छानुसार बताया जायेगा जी।

बहुत करके मताग्रही, मतमतांतरके आग्रहवाले हों उनके समागममें वाचन-विचार न करें। परंतु जो आत्मार्थी मुमुक्षुभाई सत्पुरुषकी दृष्टि सन्मुख इच्छावाले हों उनके साथ मिलकर वाचन करेंगे तो आत्महितका कारण होगा। अपनी समझके संकल्प-विकल्प छोड़कर एकमात्र आत्मार्थके लिये ही कथित वचनों पर श्रद्धा रखकर विचार कीजियेगा। मतमतांतर, पक्ष अनेक हो गये हैं उन पर दृष्टि न डालकर यहाँ लिखे अनुसार विचारमें ध्यान लगाकर लक्ष्य करेंगे तो उस संगका फल अवश्य मिले बिना नहीं रहेगा।

काल कराल है, आयुष्य क्षणभंगुर है। अतः प्रमाद छोड़कर आत्माके लिये जो कुछ समय बीतेगा वह कल्याणकारी है, लाभदायक है। स्वार्थके लिये आशा-तृष्णा सहित तो अनेक बार किया है, पर ज्ञानियोंने उसे मिथ्या-वृथा कहा है। अतः स्वच्छंदको रोककर सत्पुरुषार्थके लिये, आत्मार्थमें जीवन बीते वही हितकारी है।

धैर्यसे बारंबार वचनामृत पढ़कर, पुनः पुनः दो-तीन बार ध्यानमें लें और मनन करें, लौकिक दृष्टिसे निकाल न दें। उन वचनोंका अलौकिक माहात्म्य समझकर, समझमें न आये तो भी प्रतीति रखकर विचार कीजियेगा।

★★★

७८ पूना, आश्विन सुदी १४, शनि, १९८०

वृद्धावस्थाके कारण शरीर नरम गरम रहता है। साता-असाता वेदनीयके उदयके समय समभावसे सद्गुरु-शरण लेनेसे काल व्यतीत होता है जी। इसी प्रकार सभी जीवोंको उदयकर्म समभावसे सहन करने योग्य है। वेदनीयके उदयके समय विक्षेप, अरति या रति देहादिके संबंधमें करना योग्य नहीं है। बारंबार सहजात्मस्वरूप परमगुरु देवको स्मृतिमें लाकर समय व्यतीत करें। संतके समागममें सुनी हुई शिक्षा तथा मंत्रका ध्यान चिंतनमें लायें। मनको अन्यत्र जाते रोककर वृत्ति उपयोगमें (आत्मामें), मंत्रमें लगावें। रति-अरति करनेसे आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान होकर तिर्यंच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गति होती है जी। अतः प्रमाद छोड़कर सदैव जागृत रहें। सत्पुरुषार्थ कर्तव्य है। उससे देवादि उच्च गति और मोक्ष प्राप्त होता है जी।

★★★

७९ पूना, कार्तिक सुदी १४, सोम, १९८१

आज आपके हस्ताक्षरसे लिखा हुआ एक पत्र मिला। उससे दो दिनकी अति भयंकर, खेदजनक, आकस्मिक बीमारीसे पू.भगवानभाईका इस संसारसे क्षणिक देहके त्याग होनेके समाचार जानकर अत्यंत खेद हुआ है जी। वह जीवात्मा सच्चे सिपाही जैसे सरल, भाविक, भद्रिक थे। उनका समागम जिस जीवात्माको हुआ होगा, उसे भी खेद होगा ही; तो पूर्वके संयोग-संबंध-संस्कारसे उनके सहवासमें रहे हुए सगे, कुटुंबी, भाई तथा पुत्रादि वर्गको खेद हो और बुरा लगे तो इसमें आश्चर्य नहीं है। परंतु असार और अशरणरूप परवश स्थितिवाला यह संसार है यह सोचकर खेद नहीं करनेका आपसे अनुरोध है जी। इस मनुष्यभवसे धर्माराधन हो सकता है, उस योगका—इस मनुष्यदेहका—उस जीवात्माको वियोग हुआ है, इस योगके वियोग होनेका खेद कर्तव्य है।

पू. भगवानभाईका छोटी उम्रमें देहावसान हो गया। यदि वह शरीर रहता तो अभी कुछ आत्माका आराधन इस अपूर्व योगसे होता। पर यह देहका छूटना तो अंतरायकर्मसे हुआ है। इसमें किसीका जोर नहीं चलता। संसार महादुःखदायी है जी। काल सिर पर खड़ा है। लिया या लेगा ऐसा हो रहा है। फिर भी इस जीवसे अभी तक कुछ भी हुआ नहीं। इस स्वप्नवत् संसारमें कुछ सार नहीं है, संसार स्वार्थी है जी। इसमें यह मनुष्यजन्म मिलना दुर्लभ है। इसमें भी इस जीवको अपूर्व जोगसे धर्माराधन करना बहुत दुर्लभ है जी। खेद करनेसे आर्त्तध्यान होकर कर्मबंध होता है जी, ऐसा जानकर धर्मध्यानमें चित्त लगाइयेगा। सभी अपनोंको, कुटुंबियोंको धैर्य दिलाकर शोक दूर हो वैसा कीजियेगा।

★★★

८० पूना, मार्गशीर्ष सुदी ९, रवि, १९८१

इस औदारिक शरीरसे जिसका संबंध है, उस राजा या रंक सबको वेदनीयके उदयके समय साता या असाता भोगनी पड़ती है। कुछ ज्ञानीपुरुष उसे समतासे, समभावसे भोगते हैं। वह वेदना वेदनीय कालके समाप्त होनेपर क्षय हो जाती है। उसमें खेद नहीं करना चाहिये। आर्त्त-रौद्रध्यान करनेसे तो कर्मबंधकी वृद्धि होती है, समभावसे कर्म भोगनेसे निर्जरा होती है, ऐसा ज्ञानीपुरुषोंने जाना है जी।

"यथार्थमें देखें तो शरीर ही वेदनाकी मूर्ति है" इस पत्र नं.९२७ से परमकृपालु देवाधिदेवने भाविक आत्माओंको सूचित कर जागृत किया है जी। आत्माके सिवाय सर्व परवस्तुसे मुक्त ऐसे आत्मापर दृष्टि प्रेरित की है, यही ध्यानमें रखनेका अनुरोध है। अन्य सब कर्म हैं, उससे भिन्न हैं। शरीर संबंध कर्मसे आत्मा मुक्त है जी। उसके द्रष्टा बनकर 'सहजात्मस्वरूप'में भावना और वृत्ति करें।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८१ पूना, ता.११-१२-२४

"पुत्र, मित्र, घर, तन, त्रिया, धन, रिपु आदि पदार्थ;
बिलकुल निजसे भिन्न हैं, मानत मूढ निजार्थ.
मथत दूध डोरीनितें, दंड फिरत बहु वार;
राग-द्वेष-अज्ञानतें, जीव भ्रमत संसार."

★★

८२ पेथापुर, ता.८-२-२५,
महा सुदी १५, सोम, १९८१

उदयकर्मके अधीन वेदनाको समतासे—समभावसे धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिये। वेदना वेदनीयकर्मकी कालस्थिति पूरी होने पर क्षय होगी। आत्माको इसमें किसी प्रकार घबराना नहीं चाहिये। यद्यपि वेदना तो सब जीवोंको—ज्ञानी, मुनि आदिको—पूर्वबद्ध कर्मके अनुसार सहन करनी पड़ती है। उस वेदनाको सहन करते हुए महापुरुष नहीं घबराये और जो जीव सहन करते घबराते हैं उन्हें वेदना भोगनी तो पड़ती ही है, फिर नये कर्मोंका बंध भी होता है। अतः जो बंध उदयमें आया है उसमें क्षमा रखकर उसको जाने दें। वहाँ पर उस प्रसंगमें आत्माकी भावना करें कि अजर, अमर, अविनाशी, अछेदी, अभेदी, अनाहारी आत्मा है, तथा ज्ञानीपुरुषोंके वचनों पर प्रतीति रखें। जो वेदना जा रही है उसे भोगते हुए निर्जरा होकर आत्मभावका पोषण होता है जिससे सम्यक्परिणाम या मार्गसन्मुखदृष्टि होना संभव है जी।

★★

८३ पूना, संवत् १९८१

यह जीव अनंतकालसे परिभ्रमण करता, जन्ममरणादि दुःख भोगता आ रहा है, उससे छूटनेका कारण एक सत्पुरुष है। उसे ढूँढकर उसकी श्रद्धासे, उसकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति करनेपर जीवका मोक्ष होता है इसमें संशय नहीं, यही यथातथ्य है।

उस सत्पुरुषकी जीवको पहचान होना दुर्लभ है। उसका कारण यह है कि जीव अपनी मतिकल्पनासे ज्ञानीको अज्ञानी मानकर स्वच्छंदसे प्रवृत्ति करता है, वह भूल है। अज्ञानीको ज्ञानी मानकर उसकी आज्ञानुसार चलता है वह भी भूल है। किन्तु ज्ञानीकी दृष्टिसे ज्ञानीको माने और उसकी आज्ञानुसार चले तो जीवका मोक्ष होता है, वह संसारसे मुक्त हो जाता है; ऐसा है।

जीवकी यह भूल अपने सयानापनसे, अपनी मान्यतासे, मोहनीयकर्मके उदयके कारण होती है। इसमें मुख्य दर्शनमोहनीयकर्म दूर नहीं होनेसे, मोहनीय कर्म जीवको घबराहटमें डाल देता है। उसे एक सत्पुरुषका बोध और सत्संग मिलने पर यह भूल दूर होती है।

सत्पुरुषके वचनामृतका वाचन एवं चिंतन आत्मार्थीके लिये आवश्यक है। घबराने जैसा नहीं है। चिंता करने जैसा नहीं है। मार्ग सुलभ है, प्राप्ति दुर्लभ है। धैर्यसे उदयकर्म समभावसे भोगें और वृत्तिको परभावमें जाते रोककर एकमात्र स्मरणमें लगावें। प्रतिदिन घंटेभर या जितना अवकाश मिल सके उतनी देर निवृत्ति लेकर स्मरणमें रहें अथवा वाचन-चिंतन करें। परकथा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परभावकी बातमें चित्तको न लगावें। जीवको परभावमें ढीला छोड़ेंगे तो वह सत्यानाश कर देगा। अतः उसे स्मरणमें लगायें, क्योंकि यह देह क्षणभंगुर है, इसका कुछ भरोसा नहीं है। लिया या लेगा ऐसा हो रहा है। अतः अच्छी भावनामें, अच्छे निमित्तोंमें मनको जोड़ें। पू.भगवानभाई छोटी उम्रमें इस क्षणभंगुर देहका त्याग कर चले गये, ऐसे ही कोई इस संसारमें रहनेवाला नहीं है। अतः यथाशक्य सत्पुरुषार्थ कर्तव्य है। चित्तको अच्छा नहीं लगता ऐसी कल्पना होती है, वह भ्रम है, मिथ्या है; अतः आत्मसिद्धिके अर्थका वाचन-चिंतन करियेगा। सर्व मुमुक्षुभाइयोंको भी यही कर्तव्य है।

जो असाता वेदनी पूर्वबंधके कारण आती है, उसे सर्व ज्ञानियोंने समभावसे धैर्यपूर्वक भोगा है, जिससे वे मुक्त हुए हैं। देहसे आत्मा भिन्न है। वेदनी देहके कारण है। वह सब शरीरके कारण है। अतः उसका समय पूरा होने पर वह छूट जायेगी। आत्मा सत्स्वरूप है, उसका कभी नाश नहीं होता यों जानकर सहन करनेमें समय व्यतीत करें।

"मोही बांधत कर्मको, निर्मोही छूट जाय;
यातें गाढ़ प्रयत्नसे, निर्ममता उपजाय.
परिषहादि अनुभव बिना, आत्मध्यान प्रलाप;
शीघ्र ससंवर निर्जरा, होत कर्मकी आप.
[1]ईत चिंतामणि महत, उत खल टूक असार;
ध्यान उभय यदि देत बुध, किसको मानत सार?"
"आत्महित जो करत है, सो तनको अपकार;
जो तनका हित करत है, सो [2]जियको अपकार.
[3]कटका मैं करतार हूँ, भिन्न वस्तु संबंध;
आपहि ध्याता ध्येय जहां, कैसें भिन्न संबंध?
मरण रोग [4]मोमें नहीं, तातें सदा निःशंक;
बाल, तरुण नहीं वृद्ध हूँ, ये सब पुद्गल अंक.
प्रगट पर देहादिका, मूढ करत उपकार;
सुजनवत् या भूलका, तज कर निज उपकार.
मैं इक निर्मम शुद्ध हूँ, ज्ञानी योगी गम्य;
कर्मोदयसे भाव सब, मोतें पूर्ण अगम्य."

★★★

८४ पेथापुर, फाल्गुन वदी ६, सोम, १९८१

परमकृपालुका मार्ग जयवंत हो यही हमारी दृष्टि है जी। काल सिर पर घूम रहा है। लिया या लेगा ऐसा हो रहा है। इसमें अब किसी प्रकारकी इच्छा नहीं रही। ऐसा हो या वैसा हो यह सब देखते रहेंगे। अब वृद्धावस्थाको देखते हुए जो करना है वह तो परम कृपालु देवाधिदेवने संपूर्ण दे दिया है जी। अतः तैयार होकर बैठे हैं। मृत्युको जब आना हो--जब दिखाई दे--तब तैयार है।

---

१. अर्थ--इस ओर महान चिंतामणि रत्न है और दूसरी ओर असार खलीका टुकड़ा है। यदि विवेकी दोनों ओर ध्यान देता है तो उसमें किसको सारभूत (उत्तम) मानेगा? २. जीवको ३. चटाईका ४. मुझमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब अन्य नहीं होना है। क्या लिखूँ? इस विषयमें पूर्ण शांति है जी। आप हमारे हृदयरूप है इसलिये विदित करता हूँ जी।

★★★

८५ ता.२३-५-२५

आप आत्महित हो वैसी पुस्तकका वाचन-चिंतन करते होंगे। न करते हों तो अबसे सोचें, ध्यानमें लें। सत्संग कर्तव्य है जी। प्रमादको छोड़कर सत्पुरुषार्थ कर्तव्य है जी। स्वच्छंदको रोककर पुरुषार्थ करनेकी ज्ञानीपुरुषोंने, तीर्थंकरोंने आज्ञा दी है जी। यदि जीव उसका आराधन परमार्थके लिये, आत्माके लिये करेगा तो कल्याण होगा। अपनी कल्पनासे और स्वच्छंदसे त्रिकालमें भी कल्याण नहीं हुआ है, और होगा भी नहीं ऐसा समझमें आया है जी। काल कराल, दुषम है। कोई विरला जीव ही उस दृष्टिमें, भाव-परिणाममें लगेगा। शुद्ध भावना तो उस ज्ञानीपुरुषकी है। घड़ीभर भी छुट्टा छोड़ने जैसा नहीं है। जीव स्वयंको भूल गया है, अतः ज्ञानी गुरुकी आज्ञा है कि जागृत हो जाओ! जागृत हो जाओ! अन्यथा रत्नचिंतामणि जैसा मनुष्यभव निष्फल जायेगा। मृत्युको क्षण-क्षण याद करें। शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

८६ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.१-८-२५

यह जीव अनादिकालसे मिथ्यात्वमें फँसा हुआ है। इस स्वप्नवत् संसारमें एक समकित सार है जी। यह सम्यक्त्व दुर्लभ है जी। जीवको चेतने जैसा है जी। पूर्वप्रारब्धसे जीव उदयाधीन प्रवृत्ति करता है। उसमें पुरुषार्थ कर्तव्य है जी। यह पुरुषार्थ सत्संगके योग बिना समझमें नहीं आ सकता, समझमें नहीं आता। अपनी मति-कल्पनासे धर्म माना है, इस विषयमें यथावसर समागममें समझना होगा।

★★★

८७ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.६-१२-२५, रवि

शास्त्रमें पंथकजी विनीतका विनय पर दृष्टांत है। अपने गुरु शीलंगाचार्य प्रमादके वशीभूत थे, फिर भी पंथकजीने, विनय करना चाहिये ऐसा जानकर, विनयको नहीं छोड़ा। अतः चाहे जैसे, बड़े गुरु महान हो, उनके प्रति विनय करते देहत्याग हो जाय अथवा परिषह-उपसर्ग आ पड़ें तो भी उन्हें किसी प्रकारका खेद न हो वैसा करते हुए शिष्यको समताभावसे सहन करना चाहिये। इस जीवने जन्म, जरा, नरकादि गतिमें परिभ्रमण करते हुए पराधीनतावश कैसे दुःख सहन किये हैं! तो इस मनुष्यभवमें बड़े महात्माकी सेवामें काल व्यतीत हो—विनय करते हुए समय बीते—यह तो आत्माके लिये सार्थक है। किन्तु जीव इसका विचार न करते हुए स्वच्छंद या अपनी कल्पनाबुद्धिसे प्रवृत्ति कर रहा है!

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८८ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.२४-४-२६

जिणवयणे अणुरत्ता गुरुवयणं जे करंति भावेण।
असबल असंकिलिट्ठा ते होंति परित्तसंसारा॥ (मूला०२, ७२)

इस श्लोकका मूल परमार्थ आत्मामें विचार करनेसे सम्यक्त्व सुलभतासे प्राप्त होता है, अनंत भवके पाप नष्ट होते हैं और अनंत महा पुण्यानुबंधी पुण्यका उदय होता है। इस उपरोक्त गाथामें जो परमार्थ है, उस परम अर्थको यदि भव्यजीव आत्मामें धारण करेगा तो वह अनंत भवोंके कर्मोंको नष्ट कर परमपदकी अर्थात् मोक्षपदकी प्राप्ति कर सकेगा अर्थात् मोक्षको प्राप्त होगा। ऐसा अपूर्व अर्थ है! अतः बारंबार मनन कीजियेगा।

इस गाथाका संक्षेप परमार्थ नीचे मुताबिक है—

'जिणवयणे' अर्थात् रागद्वेष अज्ञान रहित जिन परमात्मा, केवलज्ञानमय परमज्योति परमात्माके वचनोंके प्रति अर्थात् उनके उपदेशमें जो जीव **'अणुरत्ता'** अर्थात् मन-वचन-कायाके योगसे आत्माके परिणाम अनुरंजित करेंगे अर्थात् आत्माके परिणामकी तल्लीनता करेंगे, वे भव्य जीव उस पुरुषके पदको प्राप्त करेंगे, अर्थात् सर्वज्ञपदको प्राप्त होंगे। और **'गुरुवयणं जे करंति भावेण'** अर्थात् परमगुरु निर्ग्रंथ अर्थात् मिथ्यात्व और मोहरूपी ग्रंथिरहित ऐसे सद्गुरुके वचन अर्थात् उपदेशके अनुसार जो आत्माकी भावना करेंगे, अनित्य-अशरण-एकत्व आदि भावनाएँ गुरुके वचनानुसार सद्गुरुके बोधसे समझकर जो वैसी भावना करेंगे वे सम्यक्त्वको प्राप्त करेंगे। सम्यक्त्व प्राप्त कर, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी आराधना कर अनंत भवोंके कर्मोंका नाश कर अल्पसंसारी बनेंगे, अर्थात् मोक्षके निकट पहुँचेंगे।

इस क्षणिक संसारमें हमें मनुष्यभव महापुण्यसे प्राप्त हुआ है, उसमें जो बुद्धिबल प्राप्त किया है उससे सम्यक्त्व आदिका अपूर्व लाभ प्राप्त करना योग्य है। मनुष्यत्व आदिकी सामग्रीसे, अनंतभवसे जो वस्तु प्राप्त नहीं हुई है उसे प्राप्त करनेमें ही वास्तविक विचक्षणता मानी जायेगी।

शरीरनिर्वाहके लिये धनकी प्राप्ति सभी कर रहे हैं। अधिकांश जीव इसी कार्यमें प्रवृत्ति कर रहे हैं, परंतु उस धनकी प्राप्ति तो पुण्यका उदय हो तो होती है। वह पुण्य सद्गुरुकी आज्ञानुसार चलनेसे होता है।

चार प्रकारके जो पुरुषार्थ कहे हैं उनमेंसे धर्म और मोक्षके लिये कुछ विरले जीव ही प्रयत्न करते होंगे। आत्माका सच्चा सुख—वास्तविक शांति तो धर्म और मोक्षमें ही है।

अतः आपके यहाँ सत्संगका योग न हो तो निवृत्तिके समय सत्शास्त्रका वाचन कीजियेगा। आपके पास अभी जो पुस्तकें हों उनमेंसे वाचन-चिंतन कीजियेगा और बृहद् 'वचनामृत' या अन्य किसी पुस्तककी इच्छा हो तो लीखियेगा।

"ज्ञान ध्यान वैराग्यमय, उत्तम जहां विचार;
ए भावे शुभ भावना, ते ऊतरे भव पार."

शमभाव, समता, क्षमा, दया, धैर्य, क्रोध न करना, गम खाना, आत्मभावना करना। ज्ञान,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन, चारित्र ही आत्मा है। भक्ति करें, आधा घंटे वाचन-चिंतनमें वृत्ति रोकें—मनमें अर्थका विचार करें। प्रमाद छोड़कर तत्त्वज्ञानमेंसे कुछ कण्ठस्थ करें।

"आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे, जीव लहे केवलज्ञान रे."

जीव! तू क्यों चिंता करता है!

"नहि बनवानुं नहि बने, बनवुं व्यर्थ न थाय;
कां ए औषध न पीजिये, जेथी चिंता जाय?"

त्रिविध तापसे सारा लोक जल रहा है। काल सिरपर घूम रहा है, लिया या लेगा। यह जीव किस कालकी प्रतीक्षा कर रहा है? क्षण क्षण मृत्युको याद करें, कालका कुछ भरोसा नहीं है।

[1]"उष्ण उदक जेवो रे आ संसार छे,
तेमां एक तत्त्व मोटुं रे समजण सार छे."

तत्त्व अर्थात् आत्मा है जी। मोह-ममत्व कम करें। तृष्णा न करें।

"क्या इच्छत? खोवत सबै, है इच्छा दुःखमूल;
जब इच्छाका नाश तब, मिटे अनादि भूल."

आत्मभावसे प्रणाम।

अहंकार न करें। दुःख आवे तो सहन करें। मनमें बुरे बुरे विचार उठते हों तब मनको स्मरणमंत्रमें लगा दें। मनको रोककर अन्य वाचन-चिंतनमें मनको लगावें। यथाशक्ति मनको परमात्मा परमकृपालुदेवमें संलग्न करें तथा उनके लिखे हुए वचनामृतका अध्ययन करें। मनुष्यभवमें धर्मध्यानका चिंतन करें। आत्माका चिंतन करें। आत्मा है, नित्य है, कर्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है, मोक्षका उपाय है। यह छह पदका पत्र पढ़ें, विचारें। आत्मसिद्धि कण्ठस्थ करें। कुछ संकल्प-विकल्प न करें। ज्ञानी तीर्थंकर भगवानने आत्माको जाना है वैसा ही वह है, वह मुझे मान्य है। मुझे तो उन्होंने जो आज्ञा दी है, वैसा ही करना चाहिये। स्वच्छंदको रोकें। आणाए धम्मो—आज्ञा ही धर्म है जी।

शांतिः शांतिः

★★★

८९ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास, सं.१९८२

विशेष विनतीके साथ आपश्रीको बतानेकी सूचना यह है कि प्रथम, समागममें आपको बहुत बार कहा गया है वह आपकी जानकारीमें है ही, फिर भी भूल न हो इसलिये यहाँ लिखना है कि श्रीमद् सद्गुरु देवाधिदेवकी आज्ञासे भावकी परिणतिके साथ वाचन-चिंतन कर्तव्य है जी। इसमें भूल न हो यह ध्यानमें रखेंगे जी।

आपने पत्रमें जो लिखा है उसमें आप आज्ञाका भाव थोड़ा हम पर रख रहे हैं, उसकी अपेक्षा, सद्गुरुकी आज्ञासे अब सूचित करते हैं कि उनकी प्रतीति पूर्वक हमें वाचन-चिंतन करना चाहिये। वैसे हमारा अभिप्राय यह है कि उनकी आज्ञापूर्वक हमारे कहनेसे उन पर प्रतीति करनेसे कल्याण, आत्महित होगा। हमें तो ऐसा लगता है। उनकी आज्ञामें ध्यान देना योग्य है।

---

१. यह संसार उष्ण उदक (गर्म पानी)की तरह उबल रहा है—उसमें लेशमात्र भी शांति नहीं है। उसमें साररूप एक तत्त्व है और वह है समझ—सम्यक्दर्शन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्तवृत्तिका पर्यायदृष्टिमें परिणमन होनेसे बंधन होता है। उस वृत्तिको रोककर आत्मभाव—ज्ञानीकी दृष्टिसे, जिसने देखा है, जाना है, अनुभव किया है, वह भाव—उनकी आज्ञासे मान्य करना उचित है।

"शुद्धता विचारे ध्यावे, शुद्धतामें केलि करे,
शुद्धतामें स्थिर व्है, अमृतधारा बरसे."

"आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे."

"उष्ण उदक जेवो रे आ संसार छे,
तेमां एक तत्त्व मोटुं रे समजण सार छे."

उस आत्माको ज्ञानीने ज्ञानीकी दृष्टिसे देखा है। उस भावकी परिणति मनमें, चित्तमें, भावमें कर्तव्य है जी।

★★★

९० श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे. अगास,
चैत्र वदी १२, सोम, १९८२

ऐसी छोटी उम्रमें जीवकी देह छूट जाती है। अतः इसका विश्वास न कर हमें भी यथाशक्य त्याग-वैराग्यकी भावना कर विशेष जागृति कर आत्महितकी ओर जुड़ना कर्तव्य है जी। स्वजन-कुटुंब, पुत्र-पुत्री आदि अपने-अपने पूर्वपुण्य द्वारा जो प्राप्त हुआ हो, तदनुसार सुख-दुःख भोग सकते हैं। अपना सोचा हुआ कुछ भी होता नहीं अतः जैसे भी हो धर्माराधनके लिये—परमार्थके लिये इस देहको बिताना उचित है। ऐसा योग बार बार मिलना दुर्लभ है। कोई किसीका हुआ नहीं है। अतः सम भावसे अपने अपने बँधे हुए कर्म भोग लेना चाहिये, किन्तु किसी भी जीवके प्रति इच्छा, मोह, तृष्णा करना उचित नहीं। निर्भय रहना चाहिये। किसी प्रकारका भय रखना योग्य नहीं। सत्संग, संत तथा सत्पुरुषके प्रत्यक्ष वचनामृतका योग मिला है और यह श्रद्धा यदि इस मनुष्यभवमें दृढ़ हो जाय तो जीवका कल्याण, सफलता समझनी चाहिये। मनुष्यभव भी अनंतबार मिला, संयोग-वियोग अनंत बार हुए, जन्म-मरण हुए, त्रिविध तापके असह्य दुःख सहे, पर जीवको शांति नहीं मिली। अब इस भवमें वास्तविक योग मिला है, उसका लाभ उठानेसे चूकें नहीं। जो जीव संसारकी मोहमायामें फँसे हैं, वे जीव दुःखी हुए हैं, किन्तु निकटभवी जीव इस अवसरमें जाग्रत होकर सफलता प्राप्त कर लेते हैं। चेतने जैसा है।

आप समझदार हैं। किसी बातका खेद करनेवाले नहीं है। पूर्वके संयोगोंसे क्षयोपशम अच्छा है, उसे संसारकी मायामें न गँवा देवें। चेतने जैसा अवसर मिला है। काल सिरपर घूम रहा है, लिया या लेगा यों हो रहा है। यह जीव किस कालकी प्रतीक्षा कर रहा है यह विचारणीय है। अनेक जीवोंने मनुष्यभवको प्राप्तकर आत्माका कल्याण कर लिया है, यों जानकर पूर्वके उदय, व्यवसाय, प्रारब्ध जो हैं उन्हें समभावसे भोगकर, क्षमा धारण कर, आत्महितके लिये पुरुषार्थ करना चाहिये। होनहार बदलेगा नहीं और जो बदलनेवाला है वह होगा नहीं। अतः सत्पुरुषार्थ कर्तव्य है।

जिणवयणे अणुरत्ता गुरुवयणं जे करंति भावेण।
असबल असंकिलिट्ठा ते होंति परित्तसंसारा॥ (मूला०२, ७२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो आत्मा जिन भगवानके प्रवचनमें अनुरक्त है, गुरु-आप्त पुरुषके वचनामृतमें जिसके भाव रहते हैं, जो मिथ्यात्वसे रहित है (सम्यक् परिणामी है) और जिसके परिणाम संक्लेशवाले नहीं होते वह परीतसंसारी है—समीप मुक्तिगामी है, अर्थात् सम्यक्त्वको प्राप्तकर मुक्त होता है।

"तीन भुवन चूडा रतन, सम श्री जिनके पाय।
नमत पाइये आप पद, सब विधि बंध नशाय ॥"—श्री टोडरमल

"आस्रवभाव अभावतें, भये स्वभाव स्वरूप।
नमो सहज आनंदमय, अचलित अमल अनूप ॥"—श्री टोडरमल

"सहु साधन बंधन थया, रह्यो न कोई उपाय।
सत्साधन समज्यो नहीं, त्यां बंधन शुं जाय?"—श्रीमद् राजचंद्र

इस जीवको बोधकी बहुत आवश्यकता है। बोध समकित प्राप्त करवाता है। अतः इस जीवका भी जैसे हित हो वैसी दया अंतरमें लाकर, यह मनुष्यदेहका योग मिला है तो सावधान हो जाना चाहिये। ऐसी अनुकूलता बार बार नहीं मिलती।

यद्यपि जीवको अनंतबार पौद्गलिक सुख मिला है, उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रवृत्ति की है, पर उससे सुख नहीं मिला। अतः अपने हितका चिंतन करें। विशेष क्या लिखें?

चित्तवृत्ति उदयकर्माधीन होनेसे, लिखनेकी इच्छा थी पर लिखा नहीं गया। वृद्धावस्था है, साता-असाताके उदयका वेदन समभावसे करते हैं, हो रहा है।

शमभाव, समाधि, क्षमा, समता। शांतिः शांतिः

"पावे नहि गुरुगम बिना, एही अनादि स्थित."

निर्भय होनेकी आवश्यकता है। जब तक जीवको विश्रांति नहीं मिली, तब तक बोधकी अवश्य आवश्यकता है।

"जं संमंति पासहा तं मोणंति पासहा;
जं मोणंति पासहा तं संमंति पासहा."

सम्यक्त्व अपूर्व वस्तु है जी। यही कर्तव्य है जी—तभी सफलता है जी।

★★★

९१ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
श्रावण सुदी ८, मंगल, १९८२

"जिस विद्यासे उपशम गुण प्रगट नहीं हुआ, विवेक नहीं आया या समाधि नहीं हुई, उस विद्याके लिये उत्तम जीवको आग्रह करना योग्य नहीं।"—श्रीमद् राजचंद्र

उद्धतपनसे, अपनी मतिकल्पनासे अर्थात् स्वच्छंदसे किसी पदार्थका निर्णय करना योग्य नहीं है। ऐसा ज्ञानीपुरुषोंने जाना है, तीर्थंकर आदिने कहा है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२

आपका पत्र पढ़कर खेद, खेद और खेदके साथ रंज हुआ है। अहो! इस जीवको मनुष्यभव पाकर कालका भरोसा करने योग्य नहीं है। लिया या लेगा ऐसा हो रहा है। तब यह जीव किस कालकी प्रतीक्षा कर रहा है? दुर्गतिके कारण एकत्रित करनेमें इस जीवने समय बिताया है। अतः मनुष्यभव प्राप्तकर अब चेत जाना चाहिये और अपने आत्माका कल्याण हो ऐसा करना चाहिये।

धनको प्राप्त करनेमें दुःख, खर्च हो जानेमें दुःख, तो ऐसे क्लेशकारी धनको धिक्कार है! इस देहका पोषण कर सुखकी इच्छा करता है, उसे सुख कैसा मिलेगा, इसका कुछ विचार आता है? आत्मा क्या है और ये संयोग क्या है? और जीव जिसे मान रहा है, वह मिथ्यात्व है यह समझमें कहाँ आया है? बाँधे हुए कर्मोंको भोगते समय कौन रक्षा करेगा इसका कुछ विचार आता है?

मनुष्यभवको दुर्लभ कहा है। चाहे तो थोड़े समयमें मोक्ष हो सकता है और सर्व सुख प्राप्त कर सकता है। फिर भी जीव अपने स्वच्छंदसे, अपनी इच्छासे, अपनी समझसे जो प्रवृत्ति करता है, वह इस जीवको महादुर्गति—दुःखका कारण होगा। उस समय कौन छुड़ानेमें समर्थ होगा? पुनः ऐसा योग कहाँ मिलेगा? यह चिंतामणि समान अवसर निकल गया तो फिर पृथ्वी, पानी, निगोदमें अनंतकाल परिभ्रमण करना पड़ेगा। उसकी दया करनेका यह अवसर है या नहीं? यदि जीव श्रद्धा रखकर जीवके हित-कल्याणके लिये नहीं चेतेगा तो फिर उसका परिणाम बुरा होगा।

अभी सावधान होनेका समय है। अनार्य जीवोंका संग-समागम, अनार्य देश, ये तो महा अनर्थकारी हैं, चेतने जैसा है। अतः जैसे भी सब समेट लिया जाय, सावधान हुआ जाय और आत्माकी दया आये वह कर्तव्य है। पत्रमें क्या लिखें? जो समय बीत रहा है वह वापस नहीं आता। अमूल्य क्षण बीत रहा है। 'समयं गोयम मा पमाए' इसका गहन विचारणीय आशय है। क्या करें? योग्यताकी बहुत कमी है। संसारकी प्रवृत्ति करना और मोक्ष मिले ऐसा मानना, यह कैसे संभव है? संसारके भोग-वैभवमें रहना, संसारका सेवन करना, उसमें प्रेम प्रीति रखना और वृत्तिको ठगना, क्या ऐसा मार्ग होगा? विशेष क्या कहें?

★★★

९३ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
आश्विन वदी ११, सोम, १९८२

हमें तो अपना कल्याण करना है जी। उसके साथ किसी जीवात्माका हित हो तो अपना हित समझना चाहिये। परमकृपालुदेवके वचन याद आनेसे यहाँ पत्र द्वारा विदित किया है, वह यह है कि, "हे मुनियों! बाहर निकलेंगे तो केवल विक्षेप ही भरा है।"

आत्माका मूल ज्ञान क्षायिक और पारिणामिक भावसे रहा हुआ है। वह हानि या वृद्धिको प्राप्त नहीं होता, उसे भूल कर देहादिमें आत्मबुद्धि की है और रागद्वेष मोहादि प्रकृति भाव-परिणाममें आत्मबुद्धि की है। मैं ज्ञानी हूँ, अज्ञानी हूँ, क्रोधी हूँ, मोही हूँ इत्यादिमें आत्मभ्रांति हुई है, वह भी भूल है। उसे टालनेके लिये सत्समागममें उसका विचार करना योग्य है। देहमें जो आत्मबुद्धि है वह संसार बढ़ाती है और आत्मामें जिसे आत्मबुद्धि है वह मुक्ति प्राप्त करता है। ऐसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव और ऐसे परिणामसे छूटनेका बोध किसी ज्ञानीके वचन-सत्संगमें विचारकर हृदयमें धारण करने योग्य है जी।

"यदि जीव अन्य पदार्थमें निजबुद्धि करे तो परिभ्रमण दशाको प्राप्त करता है और निजमें निजबुद्धि हो तो परिभ्रमणदशा टलती है।"

इस बातको हृदयमें धारण करके, सत्संग-समागममें इस जीवको वह लाभ लेनेका अवसर है जी।

★★

९४ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास,
कार्तिक वदी ११, गुरु, १९८३

[1]"अनादरं यो वितनोति धर्मे, कल्याणमालाफल कल्पवृक्षे।
चिंतामणिं हस्तगतं दुरापं मन्ये स मुग्धस्तृणवज्जहाति ॥१९॥

निषेवते यो विषयं निहीनो धर्मं निराकृत्य सुखाभिलाषी।
पीयूषमत्यस्य स कालकूटं सुदुर्जरं खादति जीवितार्थी ॥२३॥

—श्री अमितगति श्रावकाचार (प्रथम परिच्छेद)

[2]"अर्थ—जो नीच पुरुष धर्मका निराकरण करी सुखका अभिलाषी विषयनिको सेवे है सो अमृतको त्यागि करि जीवनेका अर्थी प्रबल कालकूट विषकूं खाय है।" (२३ अ०श्रा०)

जीवको उदयकर्मका फल भोगते हुए उदास न होकर, उदासीनता (समभाव) कर्तव्य है जी। जागृत हो! जागृत हो!

★★

९५ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
चैत्र सुदी ७, गुरु, १९८३

देह छूटनेके बारेमें निर्भय रहना चाहिये। आत्मा अजर है, ज्ञानदर्शनमय है, देहके संयोगमें होने पर भी देहसे भिन्न है। उसे साता-असाता वेदनीय हो तो भी वह किंचित् मात्र भी दुःखमय नहीं है। आत्मा है सो मेरा स्वरूप है। ज्ञानीने उसे देखा है। देहके कारण वेदनीय है, उस वेदनीयका काल पूरा होने पर क्षय होता है। वहाँ उस वेदनीयका क्षय होनेपर, नाश होने पर, मृत्यु महोत्सव है। कर्मका नाश ही मृत्यु-महोत्सव है। हर्षशोक करने जैसा नहीं है। द्रष्टा बनकर देखा करें। श्रद्धा मान्यता तो यही रखें। सद्गुरु, प्रत्यक्ष पुरुष, सहजात्मस्वरूप परमगुरु ज्ञानदर्शनमय श्रीमद् राजचंद्र वे ही गुरु हैं जी। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★

---

१. कल्याण परंपरारूप फल देनेवाले कल्पवृक्षके समान जो धर्मका अनादर करता है ऐसा मूर्ख पुरुष वास्तवमें हाथमें आये हुए दुर्लभ चिंतामणिको तृणके समान वृथा फेंक देता है।

२. जो नीच पुरुष धर्मको छोड़कर सुखके लिये विषयोंका सेवन करता है, वह जीनेकी आशासे अमृतको छोड़कर कालकूट विष खाता है!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९६ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम,
अगास ता.५-६-२७

"आप समान बल नहीं, मेघ समान जल नहीं।"

जीवका शिव होता है। अतः पुरुषार्थ कर्तव्य है। आप ही तारेंगे और आपकी कृपासे ही इस प्रकार मिले ऐसा नहीं करना चाहिये। कृपालुदेव देवाधिदेव कथित मंत्र, उनकी आज्ञापूर्वक विचार-ध्यान, मननमें दिन-प्रतिदिन वृत्तिको रोकें। अच्छे विचारमें रहें। मन अन्यत्र जाता हो तो उसे रोकें और सत्पुरुषके वचनामृतके वाचन, चिंतन, स्मरणमें उपयोगको लगावें। उपयोग अर्थात् आत्मा। ज्ञान-दर्शन-चारित्र अर्थात् जानना, देखना, स्थिर होना। आत्मा है, नित्य है, कर्त्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है, मोक्षका उपाय है। इस विचारमें चित्तको लगायें, मनमें विचार करें। उसमेंसे मन अन्यत्र जाता हों तो उसे रोकें। उद्यम बिना कुछ मिलेगा नहीं। पाव घंटा, आधा घंटा या एक घंटे तक यों नित्य परिश्रम करनेमें समय बितायें। पाव घंटा वाचन, पाव घंटा अर्थका विचार, शब्दके अर्थ पर विचार करें, जैसे कि

"छूटे देहाध्यास तो, नहि कर्ता तुं कर्म;
नहि भोक्ता तुं तेहनो, ए ज धर्मनो मर्म."

इसके अर्थका विचार करें। ऐसा करते हुए यह न सोचें कि मन भाग जाता है, अन्यत्र चला जाता है। ऐसा जो होता है वह पूर्वकर्म है, वह विघ्न डालता है। ऐसा होने पर घबरायें नहीं। उस अर्थके विचार पर मनको वापस लौटायें। यों (मनसे) लड़ाई करें। जितना हो सके उतना करें। पूरे दिन उससे संबंध रखें, उसमें परहेजका पालन करें—'सात व्यसन तथा नाटक, ख्याल, हँसी मजाक, दो-चार मिलकर विनोद करना' आदि न करें। मन विकारमें जाये वैसा न करें। बुरे निमित्त एकत्रित न करें। अच्छे अच्छे निमित्त मिलायें। अच्छे अच्छे वचनामृतके वचन सुननेका रखें। दो-चार बैठे हों तब उन्हें सुनायें, उसमें सबकी वृत्ति, मनको संलग्न करें।

आर्त्तध्यान न करें। होनहार बदलेगा नहीं और बदलनेवाला है वह होगा नहीं। अनहोनी होती नहीं। पूर्वभवमें बाँधे हुए भोगने पड़ते हैं। उन्हें भोगनेमें शोक करनेसे फिर जन्म-मरणके दुःख होते हैं। यह अवसर हार गया तो फिर नहीं मिलेगा। यों सोचकर अभी जैसे भी हो सद्विचारमें समय बितायें। जब भी बुरे विचार आयें तुरत उन्हें रोक दें। क्षमा, समता, धैर्य रखना सीखें। पूर्वबद्ध कर्मोंसे दुख-सुख आते हैं। अतः भविष्यमें बांधते समय विचार करना सीखें। किसी पर मोह न करें। मोहसे रागद्वेष होता है, बंधन होता है। समभाव रखें। सहन करना सीखें।

जो मिले उसमें संतोष रखकर यह देह आत्माका कल्याण करनेके लिये, आत्माके लिये बितायेंगे तो जन्म मरणके अनंत भव छूट जायेंगे ऐसा समझें। जन्ममरणके दुःख छुड़ानेमें कोई समर्थ नहीं है अतः पानी आनेके पहले पाल बाँधना आवश्यक है। मनको परभावमें जाते रोककर अपने आत्मस्वभावमें बारंबार लगावें। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★
★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
ज्येष्ठ सुदी ८, मंगल, १९८३

ऐसे दुषम कालमें समभाव परिणामसे प्रवृत्ति करना बहुत दुर्लभ है। जीवात्माओंकी प्रकृतियाँ भिन्न-भिन्न प्रवर्तनवाली देखकर खेद होता है। इस कालमें समभावी जीवात्मा बहुत थोड़े दिखाई देते हैं, तो अब क्या करें? कहाँ किसीको कुछ कहने जैसा रहा है? कहने जाते हैं तो उसे खेदजनक होता है। यह अच्छी तरह जानते हैं कि सत्पुरुषका सनातन जैन मार्ग सद्विवेक-विनयपूर्वक प्रवृत्ति करनेका उपदेश देता है, पर वह इस कालमें अत्यंत शिथिल, प्रमादी, स्वच्छंदी प्रवर्तनयुक्त दिखाई देता है। कोई भिन्न स्वरूपमें मुमुक्षु और भिन्न स्वरूपमें मुनि आदि देखकर विचार आता है, ऐसे वचन सद्गुरुने कहे हैं। अतः हमें तो अब जहाँ-कहीं भी क्षेत्र-स्पर्शनानुसार काल व्यतीत करना है। साता-असाता तो पूर्वके उदयानुसार जैसी सर्जित होगी वैसी आयेगी। आपको कुछ भी कहने जैसा नहीं है। आपने देवाधिदेव कृपालुदेवकी सेवा की है। आपका कल्याण होगा। आप पवित्र है, उत्तम हैं।

★★★

९८ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
भाद्रपद वदी ३, बुध, १९८३

जन्मांध या आँखों पर पट्टी बाँधकर कोई कहे कि मुझे सूर्यके दर्शन करने हैं, तो यह संभव नहीं है। अनार्य भूमि और ऐसे संयोगोंमें अपनी कल्पनासे मान लिया हो कि यह सत्य है, तो यदि वह सत्य हो तो भी सत्य नहीं है। सद्गुरुके योग बिना की गई कल्पनाएँ मिथ्या हैं। अपनी मान्यताके कारण सत्य समझमें नहीं आता। त्याग-वैराग्यके बिना और योग्यताकी कमी हो तब तक आत्माका भान नहीं होता।

"त्याग विराग न चित्तमां, थाय न तेने ज्ञान."

तीन-चार वर्ष जानकारी करनेमें बिताये तब कुछ पता लगता है। वीतराग मार्ग बहुत गंभीर है, वेदांतका इसके आगे क्या हिसाब? श्वासोच्छ्वास आदि साधन कुछ कामके नहीं है, कल्पना है। सब मान्यताएँ कैसे छूटेगी?

★★★

९९ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, ता.२०-१०-२७

किसी न किसी दिन देहका नाश होना ही है। किन्तु आत्माका नाश नहीं है। पूर्वकालमें पराधीनतासे नरकके दुःख भोगनेवाला यही जीव था। वही जीव आज किसी सद्गुरुके वचनामृत ध्यानमें लेकर श्रद्धासे बिलकुल सत्य मानकर, सत्संगसे मान्य कर इस देहको छोड़े तो फिर चिंता नहीं। दुःख तो जायेगा ही, पर जीव नहीं जायेगा। समझकर सहन करेगा तो अनंत भव नष्ट होंगे—सम्यक्त्वका आराधनकर जन्म-मरणका नाशकर मुक्त होगा। अतः शमभाव, समता कर्तव्य है जी।

मृत्युका भय कर्तव्य नहीं है। जीव क्षण क्षण मर रहा है जी। एक सद्भावकी भावना कर्तव्य है जी। जीवको परभावमें जाते रोककर स्मरणमें लगायें। परको भूल जायें। "आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।" दुःख, सुख दोनों ही बंधन हैं। श्रद्धा रखें, प्रतीति रखें। सद्गुरु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्वचनका सन्मान करें। ऐसे भाव रखेंगे तो अवश्य सुखको प्राप्त करेंगे जी। सत् आत्मा, सद्गुरुकी प्रतीति करने-करवानेमें ही कल्याण है जी।

दुःख आनेपर सहन करें। आत्मा देहसे भिन्न है जी।

शमभाव, समता, धैर्य, क्षमा। शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

१०० श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, सं.१९८३

श्रीमद् परमकृपालु देवाधिदेव सद्गुरुदेव श्री राजचंद्र शुद्ध चैतन्यस्वामी सहजात्मस्वरूप परमगुरुको त्रिकाल नमस्कार हो! त्रिकाल शरण हो! जय श्री गुरुदेव! जय गुरुदेव! जय गुरुदेव! गुरुदेवकी जय हो! जय हो!

निर्भय रहें। मृत्यु है ही नहीं। किसी भी प्रकारसे चित्तमें खेद, हर्षशोक न लाकर, किसी प्रकारका संकल्प-विकल्प न कर, अंतःकरण—मनमें हर्षोल्लास लावें। दुःखको जान लिया, वह तो जानेवाला है, उसका शोक न करें। जैसे म्यानसे तलवार भिन्न है, वैसे ही देहसे आत्मा भिन्न है। देहके कारण व्याधि, पीड़ा होती है, वह तो जानेके लिये ही आई है।

आत्मा है, उसे सद्गुरुने यथातथ्य जाना है। जैसा उन्होंने जाना है, वैसा मुझे मान्य है, भवोभव उसीकी श्रद्धा हो! मैंने तो अभीसे उसे मान्यकर, श्रद्धा प्रतीति रुचि सहित किसी संत-समागमके योगसे जाना है, वह मुझे मान्य है जी। अब मुझे कुछ भय नहीं रखना है। उदयकर्मसे जो माना जाता है, भोगा जाता है वह मेरा नहीं है, मेरा नहीं है। मैंने जिसे अपना माना है, वह सब मेरा नहीं है, वह सब सद्गुरुको अर्पण है। ज्ञान-दर्शन-चारित्र मेरा है, उसे सद्गुरुने जाना है। वह आत्मा यथातथ्य, जैसा है वैसा, जाना है, वह मेरा है, शेष मेरा है ही नहीं।

यहाँ समाधि है, आप समाधिमें रहें। सर्व वस्तु जो संकल्प-विकल्पमें आती है वह मेरी नहीं है। जितना दुःख दिखाई देता है उसे आत्मा जानता है। आत्माका सुख आत्मामें है। कुछ भी हर्ष-शोक करने जैसा नहीं है। किसी भी प्रकारसे नुकसानका काम नहीं है। कुछ अड़चन नहीं है। सुख, सुख और सुख है। पाप मात्रका नाश होना है, ऐसा अवसर है। रोग हो वहाँ अधिक कर्म क्षय होते हैं। सब प्रकारसे सुख है। दोनों हाथमें लड्डु हैं। मृत्यु तो है ही नहीं। समता, धैर्य रखकर शूरवीरतासे प्रवृत्ति करें। जितना आना हो आये, उस सबका तो नाश होगा और आत्माकी जीत होगी—निश्चित मानें। हिम्मत न हारें। वृत्ति क्षण क्षण बदलती है। आत्मा मरता नहीं है।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

१०१ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे. अगास
श्रावण सुदी ३, १९८४

"द्रव्यदृष्टितैं वस्तु थिर, पर्याय अथिर निहारि;
उपजत-विनशत देखिकैं, हरष-विषाद निवारि."
(कार्तिकेयानुप्रेक्षा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

+"जीव, तुं शीद शोचना धरे, कृष्णने करवुं होय ते करे."
"होनहार बदलेगा नहीं और बदलनेवाला होगा नहीं।"
"नहि बनवानुं नहि बने, बनवुं व्यर्थ न थाय;
कां ए औषध न पीजिये, जेथी चिंता जाय?"

"धैर्य कर्तव्य है। उदारवृत्तिवाला मनुष्य, संपत्ति हो चाहे विपत्ति, सदैव समभावसे चलता है। वह न विजयसे हर्षित होता है और न पराजयमें दुःखी। भय आ पड़े तो उससे भागता नहीं, अथवा भय न हो तो उसे ढूँढने जाता नहीं। अन्य उसे बाधक बनें तो वह चिंता नहीं करता। वह अपने या अन्यके विषयमें बातें नहीं किया करता, क्योंकि अपनी प्रशंसा करनेकी और अन्यके दोष निकालनेकी उसे आवश्यकता नहीं है। वह व्यर्थकी बातोंकी डींग नहीं हाँकता और किसीसे सहायताके लिये आजिजी नहीं करता।

प्रत्येक मनुष्यको आपत्ति और विघ्नोंके लिये सदा तत्पर ही रहना चाहिये। भाग्यमें चाहे जो लिखा हो सुख या दुःख, उसके सामने डटनेका एक ही उपाय है 'समता, क्षमा, धैर्य'। कभी हिम्मत न हारें। किसी भी प्रकारकी आपत्ति आये या चाहे जैसी दुर्घटना हो जाये तो भी किसी मनुष्यको अपना अभ्यास नहीं छोड़ना चाहिये। जितना उच्चतम और विस्तीर्ण ज्ञान वह प्राप्त करेगा वह सब उसीके उपयोगमें आयेगा।"

काल विकराल! भयंकर दुषमकाल, अनेक जीवात्माओंके पुण्यकी हानि, दुराचरण, विषय-कषाय, मायामोहके प्रबल कारण-निमित्त एकत्रित कर आत्माका अहित कर देता है। कर्मोदयके अधीन जीव बहुत कर्म बाँध लेता है। जीवको अपने आत्माके प्रति थोड़ी भी दया नहीं आई और इंद्रजाल जैसे इस संसारमें वह गोते लगा रहा है। उनमेंसे कोई भाविक आत्मा होगा वह धर्मके कारण—सत्संग, सत्पुरुषके वचन—पर दृष्टि रखकर अपना पुरुषार्थ सुल्टा करेगा, प्रमाद छोड़कर जाग्रत होगा। सावधान होने जैसा है, कालका भरोसा नहीं है। आयुष्य क्षणभंगुर है। योग्यताकी कमीके कारण कुछ लिखा नहीं जा सकता। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

१०२ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास,
भाद्रपद सुदी ७, १९८४, शुक्र ता.२१-९-२८

[1]"जाण्युं तो तेनुं खरुं, ते मोहे नवि लेपाय;
सुखदुःख आव्ये जीवने, हर्ष शोक नवि थाय."
[2]इस भवको सब दुखनको, कारण मिथ्याभाव;
तिनकूं सत्ता-नाश करे, प्रगटे मोक्ष-उपाव.

+ जीव! तू क्यों शोच करता है? कृष्णको जो करना होगा (प्रारब्धमें होगा) वही होगा।

१. जानना तो उसीका यथार्थ है जो मोहसे लिप्त नहीं होता। और सुखदुःख आनेपर जिसके मनमें हर्ष या शोक उत्पन्न नहीं होता।

२. इस भवके सब दुःखोंका कारण मिथ्याभाव (मिथ्यात्व) है। इसका जो सत्तासे (मूलसे) नाश करता है वही मोक्षका उपाय प्रकट हुआ समझना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]होवानुं जे जरूर ते, महंतने पण थाय;
नीलकंठने नगनपणुं, साप सोया हरिराय.
नहि बनवानुं नहि बने, बनवुं व्यर्थ न थाय;
कां ए औषध न पीजिये, जेथी चिंता जाय?

धैर्य धारण करना कर्तव्य है। पुरुषार्थ कर्तव्य है। यथाशक्य प्रमादको छोड़कर धर्माराधन कर्तव्य है। सत् उपयोगमें अधिक रहना कर्तव्य है। व्यावहारिक प्रसंगमें घबराहट कर्तव्य नहीं है।

*"मनचिंत्युं ते इम ही ज रहे, होणहार सरखुं फल लहे;
गुरुसाखे कीधां पचखाण, ते नवि लोपे जातें प्राण.
व्रत लोप्ये दुःख पामे जीव, इस भावतें रहे सदीव."

×"मोटुं कष्ट गरथ मेळतां, महा कष्ट वळी ते राखतां;
लाभहाणि बेउमां कष्ट, परिग्रह इण कारणे अनिष्ट."

★★★

१०३ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास,
भाद्रपद वद ५, १९८४

कलियुग है। आयुष्यका भरोसा नहीं है। देह क्षणभंगुर है। अन्यत्र कहीं भी दृष्टि करने जैसा नहीं है। हमें अपना कार्य पूरा कर चला जाना है। वृद्धावस्था हो गई है। ज्ञानीका वचन तो ऐसा है कि सर्व समय सावचेत रहना चाहिये, जाग्रत रहना चाहिये। 'जहाँसे भूले वहींसे फिर गिनें, समझे तभीसे सबेरा।' हे प्रभु! उदयाधीन वृत्ति चलित हो जाती है, पर चल-फिरकर किसकी ओर देखें? जो ज्ञानीकी आज्ञा है उसी दृष्टिसे रहें।

इस कालमें आत्माकी पहचानवाले, आत्माके भाववाले जीवात्मा थोड़े हैं, विरले हैं। लिखा जा सके वैसा नहीं है। अपने-अपने मनमें सभी मगन हैं। सबका भला हो!

★★★

१०४ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास सं.१९८४

इस संसारमें एक धर्म ही सार है। मनुष्यभवकी प्राप्ति दुर्लभ है। जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, व्याधि, दुःख, आकुल-व्याकुलतासे संपूर्ण लोक त्रिविध तापसे जल रहा है, उसपर विचार करें तथा निश्चय करें कि अज्ञानसे सद्विवेक पाना दुर्लभ है। अतः इस जीवको यथाशक्य पूरे दिनमें घंटा-आधा घंटा रात या दिनमें एकांतमें बैठकर भक्ति-भावना, वाचन-चिंतन करना चाहिये जी।

---

१. जो होनहार है वह महापुरुषको भी होता है। प्रारब्ध बदलता नहीं है। दृष्टांत—नीलकंठ (शिव) को नग्न घूमना पड़ता है और हरिराय (विष्णु) को साप (शेषनाग) पर सोना पड़ता है।

* मनमें सोचा हुआ यों ही रहता है और जो होनहार है वही होता है। गुरुकी साक्षीसे जो प्रत्याख्यान (त्याग) किया हो उसे प्राणत्याग होने पर भी भंग नहीं करना चाहिये। व्रतभंग करनेसे जीव बहुत दुःख उपार्जन करता है अतः व्रतके भावमें ही सदा रहना चाहिये।

× धन प्राप्त करनेमें महा कष्टकी प्राप्ति होती है और उसकी रक्षा करनेमें भी महा कष्ट है। धनकी प्राप्ति और नाश दोनों दुःखदायक है इसीलिये परिग्रहको अनिष्टकारी कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव क्षण-क्षण, समय-समय मर रहा है, उसमेंसे जैसे भी आत्महित, कल्याण हो ऐसा इस संसारमें कर लेना चाहिये, यह आत्मार्थ और कल्याणका मार्ग है। संसारके स्वार्थमें पूर्वके उदयसे जो काल व्यतीत होता है उसमेंसे सत्पुरुषार्थकी ओर वृत्तिको ले जाना है, संलग्न करना है। परमार्थ जो भी हो सके वह कर्तव्य है।

★★★

१०५ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
मार्गशीर्ष सुदी ३, शनि, १९८५

सारा लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार स्पर्शन, जीवात्माको सर्जित हो तदनुसार, होता है। किसीका सोचा हुआ नहीं होता। भाविक समदृष्टि जीवात्माको क्षेत्र-स्पर्शनासे, अवसर अनुकूलतासे चित्तसमाधि-आत्महित कर्तव्य है। जागृति रखकर पुरुषार्थ कर्तव्य है जी। किसी बातसे घबराना नहीं है। जैसे चित्तकी प्रसन्नता रहे वैसे कर्तव्य है जी। साता-असाता जीवात्माको जो क्षेत्र-स्पर्शनासे होनी सर्जित है वैसे होगी। इसमें किसीका सोचा हुआ नहीं होता, ऐसा सोचकर समाधि, शांतिमें रहना ही योग्य है ऐसा समझमें आता है जी।

★★★

१०६ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
फाल्गुन वदी ११, १९८५

दोपहरमें भोजनके बाद कुछ भी अच्छा नहीं लगता, जिससे वनमें भाग जाना होता है। आम्रवृक्षकी छायामें जाकर सोते-सोते श्रवण करनेका रखा है। चाहे जो हो, समयको इसी लक्ष्यमें बिताना और यथाशक्य पुरुषार्थ करनेमें भूल नहीं करना ऐसा सोचकर शुभ निमित्तमें भावना रखकर प्रवृत्ति होती है। वनमें जाते हैं वहाँ भी पाँच-पच्चीस दूसरे लोग आ पहुँचते हैं।

सत्पुरुषके वचनोंका स्मरण मधुर लगता है। अन्यत्र कहीं भी मन नहीं लगता। पूरे दिन वाचन वाचन करवाना और श्रवण श्रवण करना तथा रोग, व्याधि, जराके निमित्तोंमें जाते चित्तको अन्यत्र मोड़ना, ऐसी वृत्ति रहती है जी।

★★★

१०७ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास,
ज्येष्ठ सुदी १५, शनि, १९८५

गुरुके नामसे जीव ठगा गया है। जिस पर प्रेम ढुलना चाहिये, वहाँ नहीं ढुल रहा है और सत्संगमें, समागममें जहाँ दृष्टि पड़ी वहाँ प्रेम ढोल देता है। इससे असातनाका दोष लगता है और जीव पागल भी हो जाता है। तथा मोहनीय कर्म बना रहता है जिससे ज्ञानावरणीय कर्म आवरण करता है। मोहनीय कर्म जीवको भान नहीं होने देता।

"मात्र दृष्टिकी भूल है" जिसके पूर्ण भाग्य होंगे उसीकी दृष्टि इस दुषम कालमें बदलेगी। वैसे जीव मोहनीय कर्मके कारण धोखा खा जाता है, जैसे कि पिता, माता, भाई, कुटुंब, देहको अपना मानता है। यों कहता है कि मेरे नहीं है, किन्तु मोहनीय कर्मके नशेके कारण जीव भटक जाता है। इन सबसे मैं भिन्न हूँ। मेरा स्वरूप ज्ञान-दर्शन-चारित्र है, उसे जानना, देखना और उसमें स्थिर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होना है, ऐसा किसी सत्संगसे सुनने पर भी सत्पुरुषकी आज्ञानुसार यह जीव प्रवृत्ति नहीं करता तब उसके क्या हाल होंगे?

जीवको दुःख आता है, मरण होता है तब घबराता है, अकुलाता है, कोई बावला हो जाता है, बेचैन होता है। उसका द्रष्टा आत्मा है। यह विचार छूट जानेसे घबराकर, अकुलाकर आर्त्तध्यान कर जीव दुर्गतिमें जाता है। अतः ज्ञानीपुरुषके वचनामृतमें, पत्रोंमें जो-जो उपदेश हैं उनका वाचन-चिंतन कर्तव्य है जी।

सहनशीलता, क्षमा, धैर्य कर्तव्य है जी। घबरानेकी आवश्यकता नहीं है। कर्म किसीको नहीं छोड़ता। "जितनी शीघ्रता उतना कच्चापन, जितना कच्चापन उतना खट्टापन" समता, दयाकी भावनासे आत्मभावनामें भाव लाकर समय व्यतीत करें। जीवको निकम्मा न छोड़े। थोड़ी देर पढ़ें, थोड़ी देर चिंतन करें, थोड़ी देर सत्संग-समागम करें, थोड़ी देर व्यापार आदिमें लगाये। इस प्रकार समय बितायें।

साहस रखें। आत्मा अनंत सत्ताका स्वामी है। वह इस संसारकी मायामें, संसारके मोहजालमें फँसकर घबराता है। उपयोग ही धर्म है, परिणाम ही बंध है। जब भी बुरे परिणाम हों तब अच्छे परिणामोंमें, अच्छे भावोंमें लौट जायें, प्रमाद न करें। माया ठगती है। अभी थोड़ी देरमें वृत्ति बदल दूँगा, ऐसा सोचे तब तक तो जीव मधुबिन्दु जैसी विषयभोगकी इच्छाओं, तृष्णाओंमें लिप्त हो जाता है। उसे वहाँ टिकने न दें। यदि टिकने दिया तो दावानल अग्निसे भी अनंतगुणा दुःख उपार्जित करे ऐसी अरतिसे अकुलाकर, जीव पुण्यकी हानि कर, पापके दल संचित कर दुर्गतिमें जाता है। अतः पुरुषार्थ, गुरुआज्ञासे जैसा कहा गया है वैसा करें। साता-असाता कर्म जीवने जैसा बाँधा है वैसा भोगता है। जहाँ जाये वहाँ लड्डु नहीं बँटते। जो सुख-दुःख आये उन्हें समभावसे भोग लें, भूलें न करें। एक विश्वास रखें। आत्मा अनंत सुखका स्वामी है और बाह्य सुखकी इच्छा रख वह भिखारी बन गया है। सोचा हुआ हो नहीं पाता अतः समभाव रखें। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

१०८ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ज्येष्ठ वदी ३, मंगल, १९८५

विनय, प्रेम, भक्ति, मैत्रीभाव आदि भावनाओंका वर्णन सुनकर जीव अहंकारसे स्वच्छंद नहीं रुकनेसे बड़ी भूल करता है। अपनी मतिकल्पनासे कुछ शास्त्र-ग्रंथ आदि पढ़कर अथवा किसी समागमसे वचन सुनकर जीव कथन करनेका, उपदेश देनेका इच्छुक हो जाता है, यह भूल है। किसी पुण्यके योगसे सत्पुरुषके वचनामृत सुनकर, उसमेंसे दृष्टांत देने लगता है या अपनी मतिके अनुसार सबको अच्छा दिखाने, भला दिखानेके लिये सूक्ष्म मान अहंकारसे "मैं समझता हूँ' यों भ्रमसे [1]प्रतिबंधमें पड़ जाता है और 'नहीं दे तू उपदेशकूँ' ऐसे सत्पुरुषके वचनोंको भूलकर जीव धोखा खाता है। अपने दोष दिखाई नहीं देते। ऐसे वार्तालापसे जीव भ्रममें पड़कर अनंतानुबंधीके कारण अनेक विकल्पोंमें अपनी समझसे प्रवृत्ति करता है। यह देखकर दया आती है।

---

१. प्रतिबंध=आत्मार्थमें बाधक कारण प्रतिबंध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परामर्श और मेल-जोलसे आत्माका हित हो, राग द्वेष कषाय कम हों और क्लेश मिटकर अहिंसाभावसे भावहिंसा दूर हो वैसी इच्छा थी। किन्तु कालकी कठिनताको देखकर हमारा सोचा हुआ कुछ होता नहीं।

जगतकी रचना चित्र-विचित्र है। इसमें दृष्टि रखने जैसा नहीं है। कोई कुछ बोलता है तो कोई कुछ बोलता है। उनके सामने हमें क्या देखना? उनके सामने दृष्टि करनी ही नहीं है। आत्मकल्याण, आत्महितार्थ जैसे हो सके वैसे कर, गुरुकी शरणमें रहकर सर्व परभावसे मुक्त होना है। सब छोड़ने जैसा है।

अहो! इस कठिन कालमें इस मनुष्यभवमें जो हो सके वह कर लेना चाहिये। 'वनसे भटकी कोयल' जैसा है। किसीसे किसीका संबंध नहीं है। 'अकेला आया है, अकेला जायेगा।' ऐसा हो रहा है।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

१०९ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास,
अषाढ़ सुदी १४, मंगल, १९८५

जीवको अनंतकालसे श्रद्धा तो है ही, किन्तु जिसके भाग्य पूर्ण होंगे उसीकी दृष्टि बदलेगी। सन्मार्ग-सन्मुखदृष्टि होना महा महा दुर्लभ है।

★★★

११० श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
भाद्रपद वदी २, १९८५

'संपूर्ण लोक त्रिविध तापसे जल रहा है।' सहनशीलता, 'क्षमा ही मोक्षका भव्य द्वार है।' कोई रहनेवाला नहीं है। वृत्तिको रोकना चाहिये। आत्मभावनामें, निजभावमें परिणाम समय-समयपर लाने चाहिये। मनको परभाव–विभावमें जाते हुए यथाशक्ति रोकना चाहिये।

यह जीव निमित्ताधीन है। अतः साधक-निमित्त मिलानेका पुरुषार्थ करना चाहिये। प्रमादसे जीव दुःख खड़ा करता है। उस प्रमादको छोड़नेके लिये सत्पुरुषोंके वचनामृत पर विचार करना चाहिये। क्षण-क्षण काल बीत रहा है, वापस नहीं लौटता। लिया या लेगा यों हो रहा है। काल सिर पर खड़ा है। यह जीव किस कालकी प्रतीक्षा कर रहा है? यह विचारणीय है जी।

'फिकरका फाँका भरा उसका नाम फकीर'। सत्संगके अंतरायमें उदास न होकर, उदासीनता (समभाव) कर्तव्य है। घबराने जैसा नहीं है। मार्ग बहुत सुलभ है। किन्तु जीवको जहाँ वृत्ति रखना, करना, जोड़ना, प्रेम करना चाहिये उसमें अज्ञानसे प्रारब्धके उदयसे आवरणके कारण जीव दिशामूढ़ हो गया है। अतः थोड़ा अवकाश निकालकर सत्पुरुषके वचनामृतमें गहन ध्यान-विचारसे अंतरभावमें आना चाहिये, अंतरभावमें अधिक रुकना चाहिये। बाह्यभावके निमित्तकारणसे वृत्ति चलित हो जाती है, उसकी जागृति रख, एक शुद्ध ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय आत्मा है, उसमें प्रेम उपयोग लाकर अपने स्वभावमें सदा मगन रहें। अन्य सब भूल जाना है। "क्षण-क्षण बदलती स्वभाववृत्ति नहीं चाहिये।" "सुखदुःख मनमां न आणीए घट साथे रे घडियां।" "जीव! तुं शीद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शोचना धरे? कृष्णने करवुं होय ते करे।" मनुष्यभव दुर्लभ है। "होनहार बदलेगा नहीं और बदलनेवाला होगा नहीं।"

दृढ़ निश्चय रखकर जीवको जो करना है वह है एकमात्र दृढ़ श्रद्धा। सत्संग-समागममें सुनकर, जान कर, एकमात्र उसीका आराधन किया जायेगा तो अनेक भवोंकी कसर निकल जायेगी। यह जीव प्रमादमें, गफलतमें उसे जाने देगा तो पीछे पछताना होगा, खेद होगा। कारणके बिना कार्य नहीं होता। अतः हो सके तो कोई पुस्तक—परमकृपालुदेवका वचनामृत—वाचन करनेका रखें।

★★★

११११ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
भाद्रपद वदी ३, १९८५

काल बहुत कठिन है। जैसे भी हो सत्पुरुष, सद्गुरुकी दृष्टिसे, उनकी आज्ञासे आराधना करनी चाहिये।

विशेष यह लिखना है कि आपको या आप जैसोंको रंगरागके परिणाम विचारकर आत्मा बाह्य परिणतिमें जाये वैसा नहीं करना चाहिये। जैसे वैराग्य-उपशममें परिणति जाय वैसे 'योगवासिष्ठ' का एक भाग मुमुक्षु प्रकरण और वैराग्य प्रकरण विचारणीय है। 'पद्मनंदी पंचविंशति' ग्रंथ भी पढ़ना, विचारना अथवा वचनामृत पर विचार करना चाहिये। अर्थ पर विचार करते समय अपनी कल्पनाके आधार पर भावोंको बह जाने देना विषके समान समझना चाहिये।

ये भेजी हुई गरबियाँ* परमकृपालुदेव द्वारा रचित है। इनमेंसे कोई भी अभी प्रसिद्ध नहीं हुई है, प्रसिद्ध करनेका विचार है जी। जीवका बाह्य दृष्टिमें खिंच जाना संभव जानकर किसीको नहीं दी गई है।

★★★

१११२ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.७-१२-२९ सं.१९८६

देवाधिदेव परमकृपालुदेवने आत्माको यथातथ्य देखा है, वही देखनेकी इच्छा, वृत्ति कर्तव्य है जी। अन्य कहीं भी प्रेम-प्रीति करने जैसा नहीं है। हे प्रभु! आपको धन्यवाद है कि इस कालमें आपको परपदार्थसे, परभावसे मुक्त होनेकी इच्छा है और यथातथ्य सन्मुख दृष्टि है। अतः नमस्कार है जी। इस दीन दास 'लघु'को भी इस यथातथ्य स्वरूपकी भावना भवपर्यंत अखण्ड रहे! और सभीको इसके सिवाय अन्य कुछ कहना नहीं है। वह गुरुकृपासे सफल हो!

★★★

१११३ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
कार्तिक सुदी ५, ज्ञानपंचमी, १९८६

जीव अनादिकालसे अपने स्वच्छंदसे, अपनी कल्पनासे धर्माराधनकी इच्छा करता है कि मुझे सत्संग नहीं है, इसकी अपेक्षा यदि मैं सत्संगमें होता तो मुझे बहुत लाभ होता, ऐसी कल्पनाएँ अनेक

* स्त्रीनीतिबोधक गरबावली, श्रीमद् राजचंद्र आश्रमका एक प्रकाशन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवात्माओंको हो जाती है। इसी मोहनीयकर्मके संकल्प-विकल्पसे जीव समझता है कि 'मैं अपनी दया कर रहा हूँ', किन्तु यह दया नहीं है। अपनी दया तो सत्पुरुष देवाधिदेव सद्गुरु-कथित आज्ञाका धैर्यसे, समतासे, अपने विकल्प बंद कर, आनेवाले विकल्पोंको भूलकर आराधन करना वह है। उस आज्ञाके अनुसार धैर्यसे पुरुषार्थ करनेके भाव-परिणाम लावें। अपनी कल्पना यह कि मुझे सत्संग हो तो आराधना बहुत हो सकती है; ऐसा सोचकर अपने उदय-प्रारब्धको धक्का मारकर अपनी इच्छासे, स्वच्छंदसे अनेक जीवात्मा प्रवृत्ति करते हैं। यह जीवकी भूल है। विरह आदि, वेदनीय आदिके उदयमें जीव घबराता है, किन्तु अपनी कल्पनासे कल्याण मानकर वैसी प्रवृत्ति करते हुए जीवको विचार करना चाहिये।

'जीव, तुं शीद शोचना धरे? कृष्णने करवुं होय ते करे।' ऐसी समझ रखकर जो समताभाव धारण करना चाहिये, वह जीव करता नहीं है। जो-जो क्षेत्र-स्पर्शना उदयमें हो उसके अनुसार समतासे काल व्यतीत कर ऐसे समयमें उच्च भावना—सत्संगकी भावना रखें, किन्तु बलात् उदयको धक्का मारकर शीघ्रता करना उचित नहीं। जितनी शीघ्रता उतना ही विलंब, ऐसा जानकर समता, क्षमा, सहनशीलता, चित्तकी प्रसन्नतासे वाचन-चिंतनके निमित्त मिलाकर शांत परिणामसे भावना करें। जीवने क्या क्या दुःख नहीं उठाये? कर्मके उदयमें आनेपर जीवको सब भोगना पड़ा है। उसमें आर्तध्यान नहीं होने देना चाहिये।

यह बात ध्यानमें रखेंगे तो आत्माको हितकारी, कल्याणकारी है। मनके कारण, कल्पनाके कारण यह सब है। क्षेत्र-स्पर्शना जहाँकी होती है वहाँ काल व्यतीत होता है।

★★

११४ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास,
कार्तिक वदी ६, शुक्र, १९८६

हे प्रभु! अब तो किसी प्रकारकी ममता, मोह, इच्छा, संकल्प-विकल्प करनेके भाव नहीं है। फिर भी पूर्वके कर्मोदयसे चित्तवृत्तिमें संकल्प-विकल्प स्फुरित हो जाते हैं, घबराहट होती है, अच्छा नहीं लगता। फिर वृद्धावस्था हो गई है, इस कारण वेदनीय कर्म आते हैं, वे समभावसे देवाधिदेव परमकृपालुदेवके वचनसे, उनके बोधसे, यथाशक्य समता, क्षमा, धैर्यसे सहन करना याद रहता है। तथापि सत्संगके बिना अच्छा नहीं लगता। जब जागृतिमें भावना परिणमित होती है तब अन्य सब विस्मृत हो जाता है, वह ठीक लगता है। किन्तु वैसा अधिक समय नहीं रहता और उपयोग अन्यत्र चला जाता है तब अच्छा नहीं लगता। बाह्यदृष्टिमें चैन नहीं पड़ता और किसी जीवात्माके साथ बात करनी पड़े सो अच्छा नहीं लगता, थकान लगती है। ऐसा होता है उसका क्या करें?

कोई आत्महितकारी बात करनेवाला हो और बैठे बैठे या सोते-सोते सुनें तो ठीक लगता है। किन्तु इस कालमें वैसा संयोग तो दिखाई नहीं देता। कृपालुदेवके वचन हैं कि इस कालमें सत्संगकी कमी है। कुछ अच्छा नहीं लगता।

आत्माका बोध सत्पुरुषने दिया है कि आत्मा है उसका नाश नहीं होता यह निश्चित है। फिर भी मोह घबराहट कराता है। यह घबराहट किसे कहें? सद्गुरुके वचन हैं कि कदाचित् सातवीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरककी वेदना होती तो सम्मत करता, किन्तु जगतकी मोहिनी सम्मत नहीं होती। ऐसी बात है। दुःख किसे कहें? हे प्रभु! कुछ लिख नहीं सकता। यह सब मोहनीय कर्मका चरित्र है।

★★★

११५ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.२९-११-२९, कार्तिक वदी, १९८६

अशक्ति तो इतनी है कि कोई वस्तु लेने-रखनेमें भी साँस फूल जाती है। प्रभु! कुछ चैन नहीं पड़ता। फिर भी हे प्रभु! श्री परमकृपालुदेव इष्ट सद्गुरुदेवने अंतर-जीवनमें अमृतसिंचन किया है जिससे उस प्रकारसे सर्व प्रसंगमें, समयमें वेदन होता है, वह तो आप प्रभु जानते ही हैं। प्रभु! अंतरमें श्री परमकृपालुके उपदेशसे उदासीनता रहती है। तथा यह जो अपना स्वरूप नहीं है, ऐसे कर्म उदयमें आनेपर चैन नहीं पड़ता; पर वेदना तो देहका स्वभाव है, प्रभु! जो अंतरंग श्री परमकृपालुदेवके बोधसे रंगा है वह अन्यथा हो सकता है क्या? कभी नहीं हो सकता। उसका वेदन तो उसी प्रकारसे चाहे जिस समय होता ही है, प्रभु!

★★★

११६ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास,
पौष सुदी ६, १९८६

कालका भरोसा नहीं। लिया या लेगा यों हो रहा है। अतः सबके साथ मैत्रीभाव, करुणाभाव, प्रमोदभाव, मध्यस्थभावसे प्रवृत्ति करें। ऐसी आज्ञा परमकृपालुदेवाधिदेवश्रीकी है जी।

"ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोष;
इनकूँ कभी न छांडिये, श्रद्धा शील संतोष."

हे प्रभु! मिले उसके साथ मिलना और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी स्पर्शनासे जैसे काल बीते वैसे संतोषपूर्वक रहना ऐसी इच्छा है। क्योंकि सोचा हुआ कुछ होता नहीं। 'जा विध राखे राम, ता विध रहिये।' गुरुकृपासे जैसा होना होगा वैसा होकर रहेगा। हमारी तो ऐसी भावना रहती है कि सबका भला हो। हे प्रभु! आप तो यह जानते हैं।

कालका भरोसा नहीं है। मनुष्यभव दुर्लभ है। घबराहट, व्याकुलता आ जाती है। कोई वैराग्यकी बात करनेवाला हो तो अच्छा लगता है। प्रभु! समय बिता रहे हैं। देवाधिदेव परमकृपालु देवकी शरण एक आधार है। उन प्रत्यक्ष पुरुषका बोध हुआ था वे वचन सुनते हैं तब अच्छा लगता है और शांति प्राप्त होती है।

★★★

११७ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
माघ वदी ८, गुरु, १९८६

मरण है ही नहीं। कल्पनासे, अहंभाव ममत्वभावसे, भ्रांतिसे भूला है। उसे भूलकर सद्गुरुकी आज्ञासे सावधान रहियेगा। जो जा रहा है वह फिरसे भोगना नहीं है। देहमें होनेवाले दुःखसे कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हानि होनेवाली नहीं है। उससे आत्मा निःशंक भिन्न द्रष्टा—साक्षी है जी। सद्गुरुने उसे देखा है। उस पर मुझे श्रद्धा है, मैं मानता हूँ, भवोभव यही मान्यता रहो!

★★★

११८ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
फाल्गुन वदी ८, १९८६

इस शरीरके संबंधमें दिन-दिन वृद्धावस्थाके कारण कई कई रंग बदलते हैं। लगता है जैसे अब देह छूट जायेगी। किन्तु देहका संबंध पूर्ण होने तक—जब तक वृद्धावस्थारूपी शिकंजेमें रहना पड़ेगा तब तक—पूर्वबद्ध वेदनाको भोगते हुए काल बीतेगा। पर परमकृपालु देवाधिदेवकी शरणसे, उन सद्गुरुकी कृपासे उनकी शरणमें, उनकी आज्ञामें, उनके बोधमें, उनकी स्मृतिमें काल बीत रहा है, भाव रहते हैं जिससे संतोष मानकर काल व्यतीत कर रहा हूँ। घबराहट, आकुलता, वृद्धावस्थाकी बाँधी हुई वेदनाका गुरुकृपासे यथाशक्ति समभावसे वेदन हो रहा है।

★★★

११९ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
वैशाख सुदी ७, मंगल, १९८६

जीव अनंत कालचक्रसे मिथ्या अज्ञानसे भ्रमित होकर भूल करता आया है। मैं कौन हूँ? कहाँसे आया हूँ? इसका भान नहीं है। वैसे ही आत्माका भान भूलकर जीव मोहनीय कर्मके उदयसे विषय-कषाय और रागद्वेषमें सुख मानता है, यह सब मिथ्या है ऐसा जीवने जाना नहीं है और बंधनसे मुक्त हुआ नहीं है। अज्ञानके कारण अनंत काल बीत जाने पर भी अभी तक जीवने अपनी कल्पनासे सुखदुःख मानकर, धर्म-अधर्मको अपने स्वच्छंदसे समझकर परिभ्रमणका कारण सेवन किया है, सेवन कर रहा है और सेवन करेगा ऐसा तीर्थंकरादिने कहा है।

मनुष्यभव दुर्लभ है। इसमें भी सम्यक्त्वकी प्राप्ति दुर्लभसे दुर्लभ है। पहले तो जीवको सद्वर्तन-सदाचारका सेवन करना चाहिये और यथाशक्य रागद्वेष कम करने चाहिये। इसका कारण सर्व प्राणियोंके प्रति विनयी होना है। अपनेमें अनंत दोष हैं, ये जीवने अभी तक देखे नहीं है; और पराये दोषोंकी ओर दृष्टि दौड़ती है, जिससे वे ही दोष अपनेमें आ जाते हैं ऐसा जीवने जाना नहीं है। यदि दोष देखना छोड़ गुणोंको देखें तो उसे भी गुणकी प्राप्ति होती है। ऐसा नहीं होनेका निमित्त कारण असत्संग है। यद्यपि जीव सुखदुःख, साता-असाता पराधीनतासे भोगता आया है; और बाँधे हैं उन्हें तो भोगना ही पड़ता है; पर समभावसे सहन नहीं होता, सत्संगकी कमी है।

देहकी साताके लिये जीव अपनी कल्पनासे सुख प्राप्त करने जाता है तो दुःख हाथ लगता है। जीवने कौनसा दुःख सहन नहीं किया? विचार करने पर ज्ञात होता है कि उसने अनंतबार नरक आदिके दुःख भोगे हैं। संकल्प-विकल्प, बुरे परिणाम, आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, रति-अरति आ जानेसे अपनी क्या गति होगी? यह विचार जीवको आता ही नहीं है। यदि कोई जीव दुःख देता है तो वह हमारा मित्र है, हमें कर्मबंधनसे छुड़ाता है; परंतु तब सहनशीलता नहीं रह पाती। पूर्वबद्ध कर्म यदि अभी समभावसे, समतासे नहीं भोगेंगे तो पुनः अधिक कर्म बँधेंगे और उनका भी उदय आयेगा ही,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा भय नहीं लगता। अथवा तो जीव शुद्धाचरण, सद्वर्तन, जप-तप-दानादि क्रियारूप अच्छे कर्म अपनी कल्पनासे करता है, परंतु वह सब बंधनका कारण हो जाता है। अपने स्वच्छंदको रोककर किसी सत्संग-समागमके योगसे जो कुछ दानादि क्रिया करता है वह आत्महितार्थ है।

जीव अपनी इच्छासे करता रहता है यह बड़ी भूल है। लाभ-अलाभके बारेमें जीव विचार नहीं करता। प्राणी मात्र सुखको चाहता है, पर सुख कैसे मिले यह यदि सत्संगमें समझकर करे तो हित होता है। जीव तो ऐसा मानता है कि 'मैं समझता हूँ, मैं करता हूँ वह ठीक है' और कुछ सूक्ष्म मान कषायके कारण धर्मके नाम पर करता है और भ्रांतिमें रहता है।

जीवने परवशतासे तिर्यंच आदिके अनेक दुःख भोगे हैं। देहकी सँभाल, सुखके लिये जीवने अमूल्य सत्संगको हानि पहुँचाई है। देहकी शाताके लिये, साताशील बनकर औषधि आदिसे अनेक उपचार किये हैं। किन्तु जो बंधा हुआ है उसमेंसे कुछ भी कम नहीं होता और भोगे बिना छुटकारा नहीं है। यदि यह शेष मनुष्यभव आत्मार्थके लिये बिताये, सत्संगके योगमें आयुष्य जाय तो कितने अधिक लाभका कारण है, इस पर कुछ विचार ही नहीं किया। कलियुग महा विषम काल है। इसमें जो जो आत्माके हितके लिये उपयोगी हो उसकी विशेष सावधानी रखने जैसी है जी।

आप समझदार हैं, उत्तम जीवात्मा हैं, पवित्र हैं। जीवात्मा कर्मोंके आधीन रहकर, मनुष्यभव प्राप्त कर बँधे हुए कर्मोंसे छूटनेका विचार न करे तो फिर अन्य भव कैसे होंगे? इस पर विचारकर यहाँ यथाशक्य समता, क्षमा, धैर्य, सहनशीलता कर्तव्य है। मेरा साक्षात् आत्मा है ऐसा जानकर, विचारकर, चित्तको प्रसन्नता हो ऐसे उद्गार—अंतरंग भाव अच्छे करें; परंतु बाह्य अच्छा दिखानेके लिये भाव करना योग्य नहीं है।

अब पतिके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये इस पर विचार करें। अपने पतिको परमेश्वर बुद्धिसे सोचें। उनका विनय, वैयावच्च (सेवा) कर उनके चित्तको प्रसन्नता हो ऐसे वचनोंसे संतोष दें और उनके चित्तमें कुछ भी खेद न हो ऐसा करें। उन्हें किसी प्रकारका खेद हो तो उसमें सहभागी होनेका प्रयत्न करें। यह महा तपका कारण है।

इस जीवको खेदका कारण छोड़ देना चाहिये। 'पक्षीका मेला', 'वन वनकी लकडी' कोई किसीका नहीं है। तथा अभी जो कुछ बन सकता है और जो स्वयंको समझने योग्य है वह तो एक आत्मार्थ है। उसके सिवाय अन्य नहीं करना है। अधिक क्या लिखूँ? कुछ समझमें नहीं आता। फिर बाह्य दृष्टिसे जो जो दिखाई देता है वह आत्मा नहीं है, और आत्माको जाननेकी तो विशेष आवश्यकता है। इसमें जीवकी क्या कमी है? यह विचारणीय है। वह यह है कि बोधकी कमी है। शरीरके सुखकी इच्छासे, अपनी कल्पनाके कारण जीव सत्संग प्राप्त नहीं कर सका। आयुष्यका भरोसा नहीं है। देह क्षणभंगुर है। पूरा शरीर रोगसे ही भरा हुआ है। उसमें क्या कहा जाय? पुरुषार्थ कर्तव्य है। उसमें विघ्नकारक प्रमाद, आलस्य और अपनी कल्पनाके कारण सत्संग नहीं कर पाया यह है।

यह मनुष्यभव प्राप्तकर एक सद्गुरुको पहचानकर उनकी आज्ञाकी भावनासे काल व्यतीत करनेकी आवश्यकता है। 'आणाए धम्मो आणाए तवो'। श्री तीर्थंकरादिने जीवका उद्धार होनेके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिये 'दान, शील, तप और भाव' कहे हैं, उनमें अपनी कल्पनासे जो कुछ करता है वह बंधनरूप हो जाता है। इसका स्वरूप समझमें नहीं आया है। यदि उसका स्वरूप समझमें आ जाये तो जीवको सम्यक्त्व प्राप्त करनेका पोषण होता है। शेष तो "सौ साधन बंधन थयां" है जी!

+अहो जीव! चाहे परमपद, तो धीरज गुण धार;
शत्रु-मित्र अरु तृण-मणि, एक हि दृष्टि निहार. १
वीती ताहि विसार दे, आगेकी शुध ले;
जो बनी आवे सहजमें, ताहिमें चित्त दे. २
राजा राणा चक्रधर, हथियनके असवार;
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी वार. ३
कहां जाये कहां उपने, कहां लड़ाये लाड;
क्या जानूं किस खाडमें, जाय पड़ेंगे हाड! ४
जैन धर्म शुद्ध पायके, वरतुं विषय-कषाय;
एह अचंबा हो रह्या, जलमें लागी लाय. ५
समकिती रोगी भलो, जाके देह न चाम;
विना भक्ति गुरुराजकी, कंचन देह न-काम. ६
ज्ञानीकुं विस्मय नहीं, परनिंदक संसार;
तजे न हस्ति चाल निज, भूंकत श्वान हजार. ७

***

१२० श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
सं.१९८६

शांति, समता, क्षमा, धैर्य, सहनशीलता यह सद्गुरुकी आज्ञा है जी। इस भावनासे शुद्ध भावमें वृत्ति, मन स्थिर हो वैसा करना चाहिये जी। अन्य सब बाह्य भूल जानेका विचार करें। मंत्र 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' आत्मा है, उसे याद रखकर स्मृतिमें जाग्रत रहें। आत्मा है, द्रष्टा है, कर्त्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है, मोक्षका उपाय है। उसे सद्गुरु परमकृपालुदेवश्रीने जाना है, देखा है जी। उस आत्माकी सत्संगसे श्रद्धा हुई है उसे मानूँ। शेष परभाव, बाह्य आत्मासे मुक्त होकर

+ अर्थ—१. हे जीव! यदि तू परमपदकी इच्छा करता है तो धैर्य धारणकर शत्रु-मित्र, तृण-मणिमें समदृष्टिसे देख। २. जो बीत गया है उसको भूलकर आगेका ध्यान रख। जो सहज होता है उसीमें मनको संतुष्ट रख। ३. राजा, राणा, चक्रवर्ती, हाथियोंके स्वामी—सबको अपनी बारी आने पर एक दिन मरना है। ४. यह जीव कहाँसे आया? कहाँ उत्पन्न हुआ? कहाँ लाड़प्यारसे बड़ा हुआ? और मरकर किस अधोगतिमें जायेगा? यह कौन जानता है? ५. यदि मैं शुद्ध जैन धर्मको प्राप्त करके भी विषय-कषायमें प्रवृत्ति करूँ तो पानीमें आग लगने जैसी आश्चर्यकी बात होगी। ६. जिसके शरीर परसे चमड़ी उखड़ गई हो ऐसा रोगी भी यदि सम्यग्दृष्टि है तो श्रेष्ठ है, पूज्य है। जिसके हृदयमें गुरुदेवकी भक्ति नहीं है वह कंचनवर्णी काया होने पर भी वृथा है, निर्मूल्य है। ७. परनिंदा करते संसारको देखकर ज्ञानीको विस्मय नहीं होता अर्थात् ज्ञानी उससे डरते नहीं। जैसे हजारों कुत्ते भूँकने पर भी हाथी अपनी चाल नहीं छोड़ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरात्मासे परमात्माकी भक्ति करता हूँ, भावना करता हूँ, वह भवपर्यंत अखंड जागृत रहो! जागृत रहो! यही माँगता हूँ, वह सफल हो, सफल हो! शांतिः शांतिः शांतिः

[1]"दिलमां कीजे दीवो मेरे प्यारे, दिलमां कीजे दीवो।"

★★★

१२१ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास ता.७-७-३०

ज्ञानीपुरुषोंके वचनोंमें दृष्टि—अंतरदृष्टि—नहीं रखकर इस जीवने लौकिक दृष्टिसे सामान्यता कर रखी है, जिससे आत्मभाव स्फुरित नहीं होता। सत्संग यह एक अमूल्य लाभ मनुष्यभवमें लेने योग्य है। सत्संगकी आवश्यकता है। उसके कारण मनुष्यभवमें सम्यक्त्वका अपूर्व लाभ होता है। अनंतकालसे जीवने इस संबंधमें विचार नहीं किया है और 'मैं ऐसा करूँ, वैसा करूँ' यों जीवको अहं-ममत्व रहता है। प्रमादमें रहेगा तो फिर पुनः पुनः पश्चात्ताप होगा। चेतने जैसा है। अधिक क्या कहें?

आप गुणी हैं। हमने तो इस पत्रसे आपको याद दिलाया है। कुछ स्वार्थके लिये नहीं, पर आत्माके लिये निःस्पृहतासे, निःस्वार्थतासे आपको विदित किया है। मनुष्यभव प्राप्तकर सावधानी रखनी चाहिये। हजारों रुपयोंवाला अधिक रुपयोंके लिये संसारमें व्यापार-धंधेमें लगता है, किन्तु यह पानी बिलौने जैसा है। कालका भरोसा नहीं। लिया या लेगा ऐसा हो रहा है। फिर यह जीव किस कालकी प्रतीक्षा कर रहा है? यह विचारणीय है। समय धर्ममें बीत रहा है या अन्य भवभ्रमणके निमित्त कारणोंमें? यदि यह समझमें आये तो जीव कुछ विचार करे। प्रमादमें असावधान रहने जैसा नहीं है। संसार-व्यवसायके कामोंमें अपनी इच्छानुसार होनेवाला नहीं, अतः विचारवानके लिये विचारणीय है।

★★★

१२२ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.२२-८-३०

भेदज्ञानकी आवश्यकता है। परंतु अपनी समझ, क्षयोपशमसे अथवा न्यायनीति, सत्-विषयक भाषा सुनकर अपने अनुभवमें स्वयं मान लेता है, उसे श्री तीर्थंकरादिने मिथ्या मान्यता कहा है और उसे मृषा कहा है, वह विचारणीय है। ज्ञानियोंने, महा ज्ञानीपुरुषों द्वारा अनुभूतको सत्य कहा है, वह यथातथ्य है। आत्मार्थीको इस संबंधमें विशेष लक्ष्य देने जैसा है जी। आत्मस्वरूपके गवेषी, जिज्ञासु जो आत्मा हो गये हैं, उन्होंने यों बताया है—

[+]"ताहरी गति तुं जाणे हो देव, स्मरण भजन ते वाचक यश करे जी."

यद्यपि उपयोगके बिना आत्मा नहीं है, पर जो ज्ञानीके उपयोगमें कुछ और ही समझमें आया है, अनुभवमें आया है वह प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि राग द्वेष अज्ञानसे रहित ऐसा आत्मा द्रष्टा

---

१. हे प्यारे भाई! अपने दिलमें समकितरूपी दीपक प्रकट करो।

+ उपाध्याय श्री यशोविजयजी कहते हैं कि हे देव! तेरी गति तू ही जानता है। मैं तो केवल तेरा स्मरण, भक्ति ही करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिन्नरूपमें देखा है, उस आत्माको नमस्कार है। तथा, किसी जीवात्माको यथातथ्य आत्माका अनुभव नहीं है, परंतु उसे ज्ञानी द्वारा अनुभूतकी मान्यता-श्रद्धा होनेपर भी सम्यक्त्व कहा जाता है।

यह बात कुछ अंतरकी मान्यताके भावसे निःस्पृहतासे कही गई है। जो ज्ञानी है उसे अज्ञानी कहा जाय, श्रद्धान किया जाय, माना जाय तो भी भूलभरी जोखिम है। अतः अब मध्यस्थ रहकर जो यथातथ्य है वह मान्य है ऐसे विचारमें भाव रखे तो वह भूलभरी बात कहलायेगी? अब कर्तव्य क्या है? यथावसर समागम-सत्संगमें आत्मार्थीको विचार करना चाहिये ऐसा समझमें आता है। अपनी कल्पना और अपनी मान्यतासे प्रवृत्ति कर जीव अनादि कालसे भटका है। 'श्रीमद् राजचंद्र'मेंसे संस्मरण पोथी-१ में अंक ३७ वाँ विचार करनेका अनुरोध है। गुरुगमकी आवश्यकता है। इसमें बोधिपुरुषके बोधकी अति आवश्यकता है। 'पावे नहीं गुरुगम बिना, एही अनादि स्थित' ऐसा वचन ज्ञानीका है वह भी विचारणीय है जी।

★★★

१२३ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.२६-८-३०, सं.१९८६

'वृत्तिको रोकना' ऐसा महापुरुषोंका वचन सुना है, वह चमत्कारी है, आत्माको परम हितकारी है।

★★★

१२४ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.२८-८-३०, श्रावण सुदी ४, १९८६

सत्श्रद्धामें पुरुषार्थ करना चाहिये, उसके बदले भ्रांतिमें और 'समझमें आ गया है, जान लिया है', ऐसी भूलमें बहा जा रहा है। इस संबंधमें विचार और सावधानीके लिये सत्संगकी विशेष विशेष आराधना करें। इच्छा-संकल्पादि विषय-कषायमें चले जाये वह असत्संग है। अतः किसी सत्पुरुषके वचनामृतके विचारमें यथासंभव जीवन बिताना योग्य है। जीवको कालका भरोसा नहीं है। दुर्लभमें दुर्लभ संयोग यहाँ सहज मिले हैं उसके चिंतनमें—आत्माकी भावनामें अधिक विचार करना चाहिये। मनुष्यभव दुर्लभ है। रोग सहित काया हो तो भी मनुष्यभव कहाँ है? ब्रह्मचर्य बड़ा साधन है। अंतर्वृत्तियोंको रोकना ब्रह्मचर्य है जी। जीव समय-समय मर रहा है।

★★★

१२५ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
भाद्रपद वदी १, मंगल, १९८६

हे प्रभु! सद्गुरुकी शरणसे अन्य कोई इच्छा नहीं है और रखनी भी नहीं है। उनकी कृपासे उनकी शीतल छायामें सर्व शांति प्रवर्तित है जी। उन्हींका योगबल सब करता है जी। हमसे तो कुछ हो नहीं सकता। हे प्रभु! इस आश्रमकी जो व्यवस्था हुई है वह उनकी कृपा और योगबलका फल है। मेरी अल्पमतिसे कुछ सोचा हुआ नहीं हुआ। हे प्रभु! मुझे तो ऐसा लगा कि सब अच्छा ही प्रकाशमें आया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भविष्यमें क्या होगा और क्या नहीं, यह वृद्धावस्थाके कारण मन पीछे ही लौटता रहा है। दिन-प्रतिदिन मृत्युकी स्मृति रहनेसे 'हे जीव! आत्मामें भाव रहें तो अच्छा' ऐसा होता रहता है जी।

★★★

१२६ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.२९-९-३०

धन, पैसा, कुटुंब, परिवार आदि कुछ भी चाहने योग्य नहीं है। तथा महान व्रत ब्रह्मचर्य है, वह हाथमें आ गया है। उसके विषयमें किसी प्रकारके विकल्प किये बिना, किसी प्रकारका अहंकार किये बिना, उसका पालन करनेसे भगवानने महा लाभका कारण कहा है। क्या होगा? कैसी गति मिलेगी? आदिके संबंधमें कोई विकल्प करना योग्य नहीं।

वृत्तिको रोककर स्मरणमें लगाना, यह तप है। यही धर्म है। सत्पुरुषार्थमें रहना योग्य है।

मनके कारण सब है। बँधे हुए जा रहे हैं, अतः घबराने जैसा है ही नहीं। जो आये हैं वे जा रहे हैं। उसमें क्षमा-सहनशीलतासे आनंद अनुभवरूप आँखसे देखें। सत्पुरुषके बोधसे सद्विचाररूपी द्वार खोलकर ज्ञानचक्षुसे अंतर्यामी भगवानके दर्शन करें। 'समयं गोयम मा पमाए' समयमात्रका प्रमाद कर्तव्य नहीं है। इसे विचारपूर्वक समझनेकी आवश्यकता है। 'कर विचार तो पाम' यह ज्ञानीका वचन है सो सत्य है जी।

★★★

१२७ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
पौष सुदी ४, बुध, १९८७

"विद्युत लक्ष्मी प्रभुता पतंग, आयुष्य ते तो जलना तरंग;
पुरंदरी चाप अनंगरंग, शुं राचिये त्यां क्षणनो प्रसंग?"

"भोग बुरे भवरोग बढ़ावें, वैरी है जग जीके,
बेरस होय विपाक समय अति, सेवत लागे नीके;
वज्र अग्नि विषसे विषधरसे, हैं अधिके दुःखदायी,
धर्मरतनके चोर प्रबल अति, दुर्गति पंथ सहायी.

मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जाने,
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन माने;
ज्यों ज्यों भोग संयोग मनोहर, मनवांछित जन पावै,
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके, लहर लोभ विष आवै." (पार्श्वपुराण)

देहसे आत्मा भिन्न है, अरूपी है। "श्री सद्गुरुने कहा है ऐसे निर्ग्रंथ मार्गका सदा ही आश्रय रहे। मैं देहादि स्वरूप नहीं हूँ और देह स्त्री पुत्रादि कोई भी मेरे नहीं है। मैं तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप अविनाशी आत्मा हूँ। यों आत्मभावना करनेसे रागद्वेषका क्षय होता है।" इतना शेष भव यदि जीव आत्मार्थमें बितायेगा तो अनंत भवोंकी कसर निकल जायेगी। उपयोग ही आत्मा है और आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय धर्मस्वरूप है। वृत्ति क्षण-क्षण बदलती है, उस वृत्तिको रोकें। मन, चित्त, वृत्तिको परभावसे आत्मामें लौटावें। शुद्ध भावमें पुरुषार्थ करें। प्रमाद शत्रु है। शुभ राग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और शुभ योग (मन, वचन, काया) के परिणाम रखनेसे स्वर्गगति या पुण्य होता है। अशुभ राग या अशुभ योगसे पापबंध होता है, अधोगति होती है। ऐसे बुरे भाव न करें। जीवको निकम्मा न छोड़ें। मैं असंग हूँ। इतना भव पूर्वके उदयसे पुण्यके योगसे यदि व्रतनियमका जीवनपर्यंत पालन कर सत्शीलमें बितायेंगे तो जीव निकटभवी होकर, सम्यक्त्व प्राप्तकर अनंत सुखको प्राप्त करेगा। अतः मनके भावको आत्मामें लावें। ऐसा योग बार बार मिलना दुर्लभ है। सावधान हो जाने जैसा है। एक बार परमात्माका नाम मात्र लिया जाय तो कोटि भवके पापोंका नाश हो जाता है। अतः सावचेत होकर स्मरण करना योग्य है। सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयकी आराधना त्रैलोक्यका आधिपत्य प्राप्त कराती है, परमात्मपद प्राप्त कराती है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार परदेशमें पूर्वके उदयकर्मसे जीवात्माको अन्नजलकी स्पर्शना होती है। दूर देशमें होने पर भी इस विषयका विकल्प कर आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, खेद कर्तव्य नहीं है। यदि अपने भाव अच्छे होंगे तो जो दूर हैं वे भी पास हैं। अन्यथा पासवाले भी दूर ही हैं।

"(१) प्रज्ञा (विवेक)–यह तत्त्वज्ञानका लक्ष्यबिंदु है।

(२) नम्रता–यह दैवी गुण है। नम्रताका प्रभाव ही कुछ और है, वह सर्वशक्तिमान है।

(३) शांति–जिसमें अखंड शांतवृत्ति नहीं, उसमें सत्यका वास नहीं।

(४) जो किसीका बुरा न करे उसे भय किसका?

(५) प्रत्येक धर्मका उद्देश्य निर्मल अंतःकरण रखना है, उसीसे ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त होता है। छोटे बच्चेके समान निर्दोष हृदयके बनें।

(६) आध्यात्मिक जीवन बितानेसे अधम वासना वशीभूत हो सकती है।

(७) तिरस्कार, स्वार्थवृत्ति और शोकको थोड़ा भी आश्रय न दें।

(८) पूर्ण श्रद्धा, ज्ञान, पूर्ण शांति यही स्वर्गका राज्य है।

(९) हे आत्मन्! तेरा सनातन अंतरंग सत्त्व वर्तमान कालमें ही बता दे।

(१०) दृढ़ बनें। एक लक्ष्य रखें, अपने निश्चयको सदैव सतेज करें। सभी संदेह, आवरण और उसके कारण दूर करें और अपूर्व श्रद्धापूर्वक विवेकका उपदेश अमलमें लावें।

(११) जैसे लाखों ईंटोंसे शहर बनता है, वैसे ही लाखों विचारोंसे चारित्र–मनका निर्माण होता है। प्रत्येक जीवात्मा अपने आपका निर्माण करनेवाला है।

(१२) जो जीवात्मा अपने मनमें पवित्र और उत्तम विचार भरते हैं, उन्हें ही उत्तमोत्तम सुख आ मिलते हैं।

(१३) जो मनुष्य अपनी आसुरी वृत्तिके सामने निर्भयतासे खड़ा नहीं रह सकता, वह त्यागके ऊबड़खाबड़ शिखरों पर नहीं चढ़ सकता।

(१४) जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

(१५) भले बनें और भला करें, यही धर्मका सार है।

(१६) परमपद और कृपानिधि आज्ञाकारी सेवककी प्रतीक्षा करते हैं।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षण-क्षण मृत्युको याद करना चाहिये। इस पत्रिकामें लिखी बातें अपने ध्यानमें रखने योग्य है जी। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★

१२८ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
पौष सुदी ८, रवि, १९८७

प्रारब्धानुसार जो होता है उसे समभावपूर्वक देखते रहना चाहिये। यह पंचमकाल है—कलियुग है। आगे बढ़कर इसकी प्रवृत्तिमें समय गँवाना उचित नहीं है। हर्षशोकके बहावमें न बहकर धैर्य, क्षमा, सहनशीलता, शांति, समतापूर्वक सहना आदि उत्तम गुणोंका आश्रय लेकर धर्मध्यानकी भावना निरंतर कर्तव्य है। मृत्युको याद कर नित्य पवित्र सदाचारमें प्रवर्तन करनेका पुरुषार्थ करना चाहिये जी। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★

१२९ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
पौष वदी ११, बुध, मकरसंक्रांति, १९८७
ता.१४-१-३१

सहज मिला सो दूध बराबर, माँग लिया सो पानी;
खेंच लिया सो रक्त बराबर, गोरख बोल्या वाणी. १

सुनो भरत भावी प्रबल, विलखत कहि रघुनाथ;
हर्ष शोक, जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ. २

"नथी धर्यो देह विषय वधारवा, नथी धर्यो देह परिग्रह धारवा."

आत्मा अकेला है, अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा। समय-समय पर पर्याय बदलता है। उसे ज्ञानी भव कहते हैं। उसमें विकल्प करनेसे बंध होता है। अतः पर्यायकी ओर दृष्टि न देकर 'आत्माको देखें' ऐसा ज्ञानीका कथन है जी। अपनी कल्पनासे मानना कि ऐसा हो तो ठीक, आदि विकल्पसे क्लेशित होना उचित नहीं। अपनी कल्पनासे कल्याण नहीं होगा।

'मनके कारण सब है।' फिर घबराने जैसा कुछ नहीं है। आये हैं वे तो जा रहे हैं (कर्म)। उसमें क्षमा, सहनशीलता, आनंद अनुभवरूप आँखसे देखें। सत्पुरुषके बोधसे सद्विचाररूप द्वार खोलकर, ज्ञानचक्षुसे अंतर्यामी भगवानके दर्शन करें।

'समयं गोयम मा पमाए'—समयमात्रका भी प्रमाद कर्तव्य नहीं है। इसे विचारपूर्वक समझनेकी आवश्यकता है जी। 'कर विचार तो पाम' यह ज्ञानीका वचन है सो सत्य है जी। आप तो समझदार हैं। जो सब छोड़ना है वह सब भूल जाने योग्य है और जो स्मरण करने योग्य है उसका विस्मरण हो रहा है। यही कमी है जी।

"उत्तमा स्वात्मचिंता स्यात् मध्यमा मोहचिंतना।
अधमा कामचिंता स्यात्, परचिंताऽधमाधमा॥"

'सुज्ञेषु किं बहुना?' 'चतुरकी दो घड़ी और मूर्खका पूरा जन्म।' इस कहावतके अनुसार संक्षेपमें चेतने जैसा है जी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शांति-समाधिमें समभावपूर्वक समय बितानेकी विनती है जी। स्व.रवजीभाई अब कहाँ है? परतंत्रतासे जीवने बहुत सहन किया है। पर समझपूर्वक समभावसे वियोग सहन हो तो वह भी परम कल्याणका कारण है।

"बीती ताहि बिसार दे, आगेकी सुध ले।
जो बनी आवे सहजमें, ताहिमें चित्त दे॥
गई वस्तु शोचे नहीं, आगम वांछा नाहीं।
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जगमांही॥"

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

१३० श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.२५-२-१९३१

"जो बाहरी हैं वस्तुएँ वे हैं नहीं मेरी कहीं,
उस भाँति हो सकता नहीं, उनका कभी मैं भी नहीं।
यों समझ बाह्याडंबरोंको, छोड़ निश्चित रूपसे,
हे भद्र! हो जा स्वस्थ तू, बच जायगा भवकूपसे॥"

दासभावकी भक्तिसे दीन बालककी सद्गुरुसे अर्ज है कि गुरुभावका वेदन नहीं होता और दीन दासभावसे भक्तिपूर्वक उनकी आज्ञासे प्रवृत्ति करनेकी इच्छा, भाव रहते हैं। उस आज्ञाका पालन नहीं होता उसका खेद है और तब तक अंतरंगसे गुरुभाव माननेकी इच्छा नहीं है। जब तक उस दशाको प्राप्त करनेकी इच्छा रहती है, तब तक उसे, जो योग्यता नहीं है उसे योग्यता कैसे कही जा सकती है? इसीलिये ज्ञानीने जैसा है वैसा यथातथ्य जाना है। वह दशा देवाधिदेव परमकृपालुदेवकी है, यह निःशंक है। उनकी भक्ति करता हूँ। उनके गुणगान मुझे तथा अन्य मुमुक्षु आत्मार्थी भाविक जीवोंको भी भक्तिभावपूर्वक करना योग्य है तथा नमस्कार करने योग्य है। अपनी कल्पनासे छाछको दूध कहना तो अपना स्वच्छंद कहलाता है। उन सद्गुरुकी भक्तिमें सर्व सत्य आ जाता है। सच्ची सजीवनरूप अग्निसे सर्व पाप नष्ट होते हैं। उन सत्के चरणोंमें सब समा ही जाता है।

"सर्व जीव छे सिद्ध सम, जे समजे ते थाय।
सद्गुरु आज्ञा, जिनदशा, निमित्त कारण मांय॥"
—श्री आत्मसिद्धि गाथा १३५

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

१३१ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता. ३०-३-३१, चैत्र सुद ११, सोम, १९८७

"ज्ञान विना क्रिया अवगाहे, क्रिया विना मोक्षपद चाहे।
मोक्ष विना कहे अम सुखिया, सो जानो मूढनमें मुखिया॥"

"वीतराग शासन विषे, वीतरागता होय।
जहाँ कषायकी पोषणा, कषाय-शासन सोय॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

+"तनधर सुखिया कोई न देखिया, जे देखिया ते दुखिया रे!"

"कायानी विसारी माया, स्वरूपे शमाया एवा,
निर्ग्रंथनो पंथ, भव-अंतनो उपाय छे."

लगभग सौ व्यक्ति आयंबिल तप कर रहे हैं, यह सहज जाननेके लिये लिखा है। तपोधन महापुरुषोंके प्रतापसे आश्रम भी तपोवन बन गया है। सत्संगका अचल प्रताप सकल जगतका कल्याण करें।

[1]"पुद्गल-खल संगी परे, सेवे अवसर देख;
तनुशक्ति जिम लाकडी, ज्ञानभेद पद लेख."

★★★

१३२ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे. अगास
चैत्र वदी ३०, गुरु, १९८७

विज्ञप्ति है कि आपको समाधि-शांति-भावनाके विचारसे प्रवृत्ति करनी चाहिये। मनको ढीला नहीं छोड़ना चाहिये। थोड़ा भी ढीला छोड़नेसे वह सत्यानाश कर देता है। उसका भरोसा-विश्वास रखने जैसा है नहीं, यों सोचकर जाग्रति, स्मृति, उल्लाससे आत्माको पुष्ट करना चाहिये। वृत्ति, मनको विभाव-परभावमें जाते रोककर आत्मभावमें लगायें, आत्माके विचारमें रहें। कभी कभी उदयके समय व्यापार या कार्यप्रसंगसे परभावमें वृत्ति चली जाती हो तो उसे थोड़ेमें ही निबटाकर, जैसे भी हो वैसे सद्वर्तनमें लौटा लेना चाहिये अथवा अन्यके साथ धर्मकी बातचीत करनेमें लगाना चाहिये। परायी बातके व्यवहारमें कोई चढ़ जाये तो उसे वापस मोड़कर, अगर वह सद्व्यवहारमें न आवें तो हमें तो अपने मनको सद्व्यवहारके स्मरणमें ही रखना चाहिये, किन्तु उसमें बह नहीं जाना चाहिये। धैर्यसे काल परिपक्व होता है। जिसकी दृष्टि सन्मुख है, उसका सब अच्छा ही होगा। जिसकी योग्यता है, सन्मुखदृष्टि है, उसे अवश्य प्राप्ति होगी, यह निःशंक मानें। आप गुणी हैं। धैर्यसे इसी सत्यधर्मकी भावनाके सिवाय अन्य कुछ भी इच्छा न करें, ऐसा ध्यानमें, समझमें रखें। गुरुकृपासे सब अच्छा होगा। किसी बातसे घबराने जैसा नहीं है।

★★★

१३३ श्री अंधेरी ता.१९-५-३१
ज्येष्ठ सुदी १, मंगल, १९८७

विचारवान भाविक आत्माको ज्ञानी सद्गुरु-सत्पुरुषके वचनामृत, बोध स्मृतिमें लाकर जिससे आत्महित हो और कर्मकी निर्जरा होनेका निमित्त प्राप्त हो वैसे जागृतिपूर्वक स्व-विचारमें भाव, परिणाम, धैर्य, समता धारण करने चाहिये। सहनशीलता रखनी चाहिये कि जिससे पूर्वकर्मसे मुक्त होनेका लाभ होता है और अन्य बंध नहीं होता।

+ किसी शरीरधारीको सुखी देखा नहीं। जो है सो सभी दुःखी ही है। १. जीवको दुष्ट (दुःखकारी) जड़ पदार्थोंका संयोग हुआ है जो अवसर आनेपर अपना रंग दिखाते हैं। उस समय, निर्बल शरीरकी शक्तिका आधार जैसे लाठी है वैसे ही अबुध जीवके लिये जीवनका आधार भेदविज्ञानके द्वारा निजात्मपदकी प्राप्ति करना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह बात सोचकर अपनी मतिकल्पना और स्वच्छंदको रोककर एक सत्पुरुष श्री सद्गुरुदेवके सत्संगमें हुए बोधकी किसी महापुण्ययोगसे किसी संत समागममें प्रतीति, रुचि, आस्था अर्थात् श्रद्धा हो तो यह मनुष्यभव पानेकी सफलता है। इस संगका फल मिले बिना कभी नहीं रहता। यह अवश्य जानें, निःशंक मानें।

ऐसी प्रतीति रखकर प्रवृत्ति करेंगे तो आपको आत्महितका अपूर्व महा कल्याणकारी कारण होगा और वेदना तो वेदनी कर्म पूरा होने पर क्षय होगी। कुछ घबराने जैसा नहीं है। मनुष्यभवको भगवानने दुर्लभ कहा है। उसमें एक सम्यक् बोधबीज प्राप्त करनेका अपूर्व ऐसा विशेष अवसर—आर्य देश, मनुष्यभव, सत्संग और सच्चे बोधका संयोग मिलना—दुर्लभ है, अतः सावधान रहना चाहिये। इस भवमें विशेष जागृति रखने और श्रद्धा करने जैसा है। उसके बिना अनंत बार जन्म मरणादि दुःखोंके कारणोंको इस जीवने सहन किया है। संपूर्ण लोक त्रिविध तापसे जल रहा है ऐसा सोचना चाहिये। वह स्वप्न समान है, नाशवान है। कोई किसीका दुःख लेनेमें समर्थ नहीं है। महापुण्यके योगसे संप्राप्त यथातथ्य धर्म पानेकी सामग्री प्रमादमें न चली जाये, इसलिये भाविक आत्मार्थी आत्माके विचारमें रहता है। मंत्र-स्मरण, भक्ति, वाचन, विचारके प्रसंगमें रहना योग्य हैं। निमित्तसे ही अच्छा होता है और निमित्तसे ही बुरा होता है। अतः भक्तिभावका अच्छा निमित्त रखना योग्य है जी। चित्त-मनकी चपल प्रकृतिकी वृत्तिको रोकना योग्य है।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

***

१३४ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.१८-६-३१ अषाढ़ सुदी २, गुरु, १९८७

दुषमकाल है। इसमें अनेक जीवोंका कल्याण होगा—एक श्रद्धासे; जो कुछ कर्तव्य है वह सत्पुरुषकी दृष्टिसे करने योग्य है। श्रद्धा-कुशलता हो ऐसा, गुरुकृपालुके योगबलसे शासन यहाँ प्रवर्तित होगा। काल बहुत भयंकर आया है। पर आत्मार्थीको वैराग्यका निमित्त हो सके वैसा सनातन जैन शासन जयवंत है, शाश्वत है। अतः पाँचवें कालके अंत तक अनेक जीवोंका कल्याण, हित होने योग्य है। क्या लिखूँ? कहा नहीं जा सकता। एक इस जीवको, जैसे भी हो श्रद्धाके बलका बहुत पोषण करने जैसा अवसर आया है। करना, कराना और अनुमोदन करना योग्य है।

'समयं गोयम मा पमाए' यह कोई चमत्कार है, संकेत है। यह अद्भुत है! इसमें मुख्यसे मुख्य श्रद्धा है। उसका लाभ बहुत सत्संग और समागममें बोधके निमित्त कारणसे होता है, ऐसा समझमें आता है। आप तो समझदार हैं, आपको क्या लिखूँ? अतः यथाशक्ति सावचेत होना कर्तव्य है। आयुष्यका भरोसा नहीं है। लिया या लेगा हो रहा है। काल सिरपर खड़ा है। फिर यह जीव किस कालकी प्रतीक्षा कर रहा है? यह विचारने योग्य है जी। रहस्य शब्द कोई गूढ़, गहन है अवश्य! आप विचार करियेगा। एक सम्यक्त्व इस कालमें योग्यतासे अनेक जीवोंको प्राप्त हो ऐसा तो हो सकता है जी और ऐसा अवसर बार बार मिलना दुर्लभ है जी। यदि इस भवमें इसीके विषयमें मन-वचन-कायासे भाव परिणाम प्रबल होगा तो आत्महितकारी है, कल्याणकारी है। क्या लिखूँ? जन्म, जरा, मरण, रोग, व्याधि, पीड़ासे संपूर्ण लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। "अनादि स्वप्नदशाके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण उत्पन्न जीवके अहंभाव-ममत्वभावकी निवृत्तिके लिये" सद्गुरुने जो संकेत किया है वह "स्वप्नदशासे रहित मात्र अपना स्वरूप है, यदि जीव ऐसा परिणाम करे तो सहजमात्रमें जाग्रत होकर सम्यग्दर्शनको प्राप्त होता है।" यह निःशंक मानने योग्य है, कर्तव्य है। स्वच्छंद, प्रमाद वैरी हैं, शत्रु हैं, इससे जीवकी भूल होती है। यह जीवका ही दोष है। यह गूढ़ार्थ सत्संगमें बहुत विचारणीय है। इसमें प्रश्न यह उठता है कि प्रमाद और स्वच्छंद गये कब कहे जा सकते हैं? इस पर विचार करें। दृढ़ समकिती पुरुष विरले हैं, अतः सत्संगके योगसे जाग्रत होना कर्तव्य है जी। यह पत्रिका आपको भेंटरूप भेजी है।

"पर प्रेम प्रवाह बढे प्रभुसें, सब आगम भेद सु उर बसें,
वह केवलको बीज ज्ञानी कहे, निजको अनुभौ बतलाय दिये."

सामान्यभाव, लौकिकभाव जीवको कर्तव्य नहीं है। सद्गुरुके वचनोंका जो आशय इस पत्रमें है, उसे आत्मार्थके लिये ध्यानमें लेना चाहिये जी। यह भाविक आत्माके लिये है जी।

★★★

१३५ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, स्टे.अगास
ता.२१-८-३१, श्रावण, १९८७

"नथी धर्यो देह विषय वधारवा;
नथी धर्यो देह परिग्रह धारवा."—श्रीमद् राजचंद्र

संपूर्ण लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। कहीं शांति नहीं है। मात्र सत्स्वरूप आप्त पुरुष श्री सद्गुरु परमकृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्र प्रभु या उनका दृढ़ निश्चय जिन्हें है, ऐसे ज्ञानीके आश्रित ही उस त्रिविध तापसे दूर रहनेवाले हैं। अर्थात् जिन पुरुषोंने सम्यक्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयकी प्राप्ति की है उसकी श्रद्धा जिस संतको हो चुकी है, उनके समागमसे जो सद्गुरु पर श्रद्धा हुई है ऐसे सम्यग्दृष्टि पुरुष ही उस तापसे बचे हैं और कैसे बचाना यह भी उन्होंने ही जाना है। वैसे ही हमें भी, उन संतने जिसे माना है उसे ही मानना चाहिये। अन्यत्र दृष्टि रखने योग्य नहीं है। अपनी कल्पनासे जीव भटका है, अतः उन संतने जिसे माना है उसे ही मानना योग्य है। उससे कम-ज्यादा अपनी कल्पनासे माने वह दोषपूर्ण है ऐसा समझें। अतः उन संत द्वारा कथित पर ही प्रेम, भाव, भक्ति करने योग्य है जी। उन्हींके गुणगान करें। अन्यत्र कहीं भी प्रेम ढोलना, प्रेम करना उचित नहीं है।

उदय कर्ममें भी घबराना, अकुलाना उचित नहीं। समभावपूर्वक भोग लेना चाहिये जी।

★★★

१३६

"सुनो भरत, भावी प्रबल, विलखत कहे रघुनाथ;
हानि-वृद्धि, जन्म-मृत्यु, जश-अपजश विधि हाथ."
"जा विध राखे राम, ता विध रहिये."

संपूर्ण लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। सहनशीलता, क्षमा ही मोक्षका भव्य द्वार है। कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहनेवाला नहीं है। वृत्तिको रोकें। आत्मभावना, निजस्वभावमें परिणाम समय समय पर लावें, परभाव-विभावसे यथाशक्ति रोकें। यह जीव निमित्ताधीन है, अतः साधक निमित्तमें संलग्न होनेका पुरुषार्थ करना चाहिये। प्रमाद करनेसे जीव दुःख खड़ा करता है। उस प्रमादको छोड़नेके लिये सत्पुरुषके वचनामृत पर विचार करना चाहिये। क्षण क्षण काल बीत रहा है, वह वापस नहीं आता। लिया या लेगा यों हो रहा है, काल सिर पर सवार है। फिर यह जीव किस कालकी प्रतीक्षा कर रहा है? यह विचारणीय है। "फिकरका फाँका भरा, उसका नाम फकीर।" सत्संगका बहुत अंतराय है। अतः उदास न होते हुए उदासीनता (समभाव) कर्तव्य है। घबराने जैसा नहीं है। मार्ग बहुत सुलभ है। किन्तु जीवको जहाँ वृत्ति रखनी चाहिये, जोड़नी चाहिये, प्रेम करना चाहिये, उसमें जीव मिथ्यात्व-अज्ञानसे, प्रारब्ध-उदयके आवरणसे दिशामूढ़ हो गया है। अतः थोड़ा अवकाश निकालकर सत्पुरुषके वचनामृतमें गहन विचारसे ध्यान, अंतरभावमें आना, अंतरभावमें अधिक रुकना चाहिये। बाह्यभावके निमित्त कारणसे वृत्ति डिग जाती है, उसकी जागृति रखकर एक शुद्ध ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय आत्मा है, उसीमें प्रेम-उपयोग रखकर अपने स्वभावमें सदा मग्न रहना चाहिये। अन्य सब भूल जाने जैसा है। "क्षण क्षण बदलती स्वभाववृत्ति नहीं चाहिये।"

"सुख दुःख मनमां न आणीए" "जीव तुं शीद शोचना धरे? कृष्णने करवुं होय ते करे।" मनुष्यभव दुर्लभ है। "होनहार बदलेगा नहीं और बदलनेवाला होगा नहीं।" ऐसा दृढ़ निश्चय कर जीवको जो करना है वह है एक मात्र दृढ़ श्रद्धा। इस विषयमें सत्संग-समागममें सुनकर, जानकर, एक उसीका आराधन किया जायेगा तो अनेक भवोंकी कसर निकल जायेगी। वह भी किये बिना नहीं होगा। यदि यह जीव प्रमादमें, गफलतमें समय बिता देगा तो पीछे पछताना होगा, खेद होगा। अतः हो सके तो कोई पुस्तक, परमकृपालुदेवके वचनामृत पढ़ते रहना चाहिये।

★
★★

१३७ अंधेरी, वैशाख सुदी १५, १९८७

"सेवाथी सद्गुरुकृपा, गुरुकृपाथी ज्ञान;
ज्ञान हिमालय सब गळे, शेषे स्वरूप निर्वाण.

ए संकलना सिद्धिनी, कही संक्षेपे साव;
विस्तारे सुविचारतां, प्रगटे परम प्रभाव.

अहो! जिय चाहे परमपद, तो धीरज गुण धार;
शत्रु-मित्र अरु तृण-मणि, एक ही दृष्टि निहार.

राजा राणा छत्रपति, हथियनके असवार;
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी वार."

उदयकर्ममें भी घबराना, अकुलाना नहीं चाहिये। समभावसे भोग लेना चाहिये जी। 'मोक्षमाला'के सभी पाठ कंठस्थकर विचारणीय हैं जी। जीव अकेला आया है और अकेला ही जायेगा और अपने किये हुए कर्मोंको अकेला ही भोगेगा। ऐसा सोचकर अहंभाव-ममत्वभाव घटाकर, धर्मस्नेह रख, उल्लास भावमें आनंदमें रहना चाहिये जी। जो हो चुका है वह अब अनहोना नहीं हो सकता, अतः भूतकालकी चिंता छोड़कर, की हुई भूलें दुबारा न हो इतना उपयोग रखकर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समभावसे वर्तमानमें रहनेका पुरुषार्थ करना चाहिये। जीव भविष्यकी कल्पना कर व्यर्थ कर्म बाँधता है, इसका कारण आशा, वासना, तृष्णा है जिससे जन्म-मरण खड़े होते हैं। अतः वासनाका त्याग कर मोहरहित होकर रहना सीखना है। हमारा सोचा हुआ कुछ भी होता नहीं, अतः भविष्यकी चिंता भी छोड़ देना योग्य है।

"गई वस्तु शोचे नहीं, आगम वांछा नाहि;
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जगमांहि."

★★★

१३८ भाद्रपद, सं. १९८७

त्याग, वैराग्य, उपशमभाव बढ़े और संसारसे उदासीनता हो, संसारकी मायाकी तुच्छता समझमें आये, लौकिक बड़प्पन विष, विष और मात्र विष है ऐसा भाव हो, तथा लोकोत्तर दृष्टि अर्थात् आत्माको सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति हो ऐसे पुरुषार्थको बढ़ाना ही मनुष्यभवका कर्तव्य है।

सद्गुरुकृपासे उदयाधीन वेदना समभावसे भोगनेकी भावनामें यथासंभव प्रवृत्ति हो रही है।

★★★

१३९ सं.१९८७

तत् ॐ सत्

सहजात्मस्वरूप
परमगुरु

"आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे" जीव लहे केवलज्ञान रे।

दया, समता, क्षमा, धैर्य, समाधिमरण, समभाव, समझ।

शांतिः शांतिः

अप्रतिबद्ध, असंग, ज्ञान-दर्शन-चारित्र, आत्मा, उपयोगी अप्रमत्त हो, जागृत हो, जागृत हो। प्रमाद छोड़, स्वच्छंदको रोककर पुरुषार्थ कर्तव्य है जी। जूआ, मांस, मदिरा, बड़ी चोरी, वेश्यागमन, शिकार, परदारागमन इन सात व्यसनोंका त्याग कर्तव्य है।

समभाव।

★★★

१४० श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास सं.१९८७

तत् ॐ सत्

"इन्द्रीनसें जाना न जावे, तू चिदानंद अलक्ष्य है,
स्वसंवेदन करत अनुभव-हेत तब प्रत्यक्ष है;
तन अन्य जन जानो सरूपी, तू अरूपी सत्य है,
कर भेदज्ञान, सो ध्यान धर निज, ओर बात असत्य है."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"मोहनींदके जोर, जगवासी घूमे सदा,
कर्मचोर चिहुँ ओर, सर्वस्व लूटे, सुध नहि.
सद्गुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमें,
तब कछु बने उपाय, कर्मचोर आवत रुकें."
"धन, कन, कंचन, राजसुख, सबै सुलभ कर जान;
दुर्लभ है संसारमें, एक यथारथ ज्ञान."

वृद्धावस्थाके कारण शरीरमें कुछ न कुछ व्याधि हो जाती है, उसकी चिंता न कर श्री परमकृपालु देवाधिदेवकी शरणसे यथाशक्ति समभावसे वेदन करते हैं। सत्पुरुषके मार्ग पर चलते हुए जीवात्माको जहाँ बंधनसे छूटना होता हो, वहाँ शोक किसलिये करना चाहिये? ज्ञानीने समभावसे भोगनेका उपदेश दिया है, अतः इस जीवको यथाशक्य समतासे, धैर्यसे प्रवृत्ति करना योग्य लगता है, वह सद्गुरुशरणसे सफल हो यही भावना है जी।

हे प्रभु! वैराग्यमें बहुत विघ्न आते हैं। जितनी शीघ्रता, उतना विलम्ब। जितना कच्चापन उतना खट्टापन। हे प्रभु! धैर्य बड़ी बात है। समता, क्षमा, सहनशीलतासे प्रवृत्ति करनेके पुरुषार्थकी जीवको आवश्यकता है। ऐसा एक अभ्यास डालनेकी वृत्ति ध्यानमें रखनी चाहिये। परमकृपालुदेवकी अनंत अनंत कृपा है। उनकी कृपासे, धैर्यसे जीवका आत्महित, कल्याण हो ऐसी आशीर्वादपूर्वक भावना छद्मस्थ वीतरागभावके कारण पुराणपुरुषकी कृपासे विचारमें स्फुरित होती है, वह दीनबंधुकी कृपादृष्टिसे सफल हो, जो यथावसर समागममें अंतराय टूटने पर शक्य हो जायेगी जी।

दूसरे हे प्रभु! आपमें जो कुछ भी आत्महित होनेकी भावना रहती है, वह कुछ पूर्वसंस्कारके कारण होती है। देवाधिदेव परमकृपालुदेवने सौभाग्यभाईको व्यावहारिक व्यवस्थाके बारेमें कहा था कि तुम्हारे संबंधमें हमें बहुत चिंता है। वह निबंध तो संसार-व्यवस्थाका था, और यहाँ तो वह संबंध नहीं है; परंतु हमारे आत्माका कल्याण हो और तुम्हारा कल्याण हो इस विषयका संबंध हमारे ध्यानमें है, अन्य कुछ स्वार्थ नहीं है जी।

यह पुस्तक "श्री सद्गुरुप्रसाद" किसी अन्यके पढ़नेके लिये नहीं है। पर जिसे उन सद्गुरुकी भक्ति विशेष जागृत हुई है, उनके वचनामृतकी सूचना मिली है और जो सम्यग्दृष्टिवान जीव हैं उसे वह याद दिलानेके लिये, जागृत करनेके लिये, बोधबीजके लिये अनुरोध है जी, तथा श्री सद्गुरुकी श्रद्धा प्राप्त करनेका मूल हेतु है जी। अधिक चित्रपट आयेंगे तो उसमें कुछ अड़चन नहीं है। यह पुस्तक दर्शन-भक्तिकी है जी। इसमें अधिक चित्रपट आयेंगे तो आपत्ति जैसा मुझे लगता नहीं है।

★★★

१४१ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
कार्तिक सुदी १४, १९८८

हे प्रभु! कुछ चैन नहीं पड़ता, अच्छा नहीं लगता। हे प्रभु! सर्व कर्मोदय मिथ्या है ऐसा गुरुशरणसे जाना है, अनुभव किया है। जिनकी वृत्ति तदनुसार वर्तनकी रहती है ऐसे समभावी महात्माको नमस्कार है। भूतकालमें जो होने योग्य था वह हो गया, उसका अब शोक क्यों? क्योंकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब उसमेंसे कुछ भी नहीं रहा। वर्तमानमें जो हो रहा है, वह पूर्वकर्मके संस्कारके फलरूप है। जीवने जैसे-जैसे भाव हे प्रभु! अज्ञानभावसे किये, वे-वे भाव अभी कर्मरूपसे उदयमें आकर जीवको अकुलाते हैं उसमें घबराना क्या? माँगा सो मिला, इच्छित प्राप्त हुआ। मोहाधीन माँगा, इच्छा की, वह आया तो सही, पर उसमें घबराहट हो तो उसमें किसे दोष दिया जाय? हर्ष-शोक क्यों? उचित ही हो रहा है और वह भी हो जानेके बाद कुछ भी नहीं रहेगा, ऐसा होना ही है। कर्म उदयमें आकर खिर जाते हैं, फिर नहींवत् हो जाते हैं, तो फिर चिंता किस बातकी? होनहार होकर रहेगा। भविष्यमें जो होनेवाला है वह भी, वर्तमानमें जैसे भाव होंगे वैसा ही बनेगा। भविष्यकी स्थिति सुधारना जीवके अपने हाथमें है। सम्यक्भावना करके सम्यक् स्थिति प्राप्त करेगा तो फिर सम्यक्भाव सुंदर ही हैं। असम्यक्भावना करके सम्यक् स्थिति प्राप्त करेगा तो फिर सम्यक्भाव सुंदर ही हैं। असम्यक् प्रकारसे परपदार्थ—परभावकी भावना करना योग्य नहीं। हे प्रभु! स्वप्न समान जगत और असत्संग जैसेमें इस जीवका समय बीत रहा है, ऐसा लेख यहाँ मुमुक्षुके पत्रसे पढ़ा। अतः हे प्रभु! अब तो जैसे भी हो इस क्षणभंगुर देहमें दो घड़ी दिन जैसे आयुष्यमें *पगड़ीके पल्ले पर जरी लग जाने जैसा कुछ हो जाय तभी कल्याण है। मनुष्यभव चिंतामणि है। हे प्रभु! यह तो पक्षियोंका मेला है। स्वप्न है। ज्यादा क्या लिखूँ? जीवको सत्संग और आत्महित हो, ऐसी दृष्टि रहा करती है।

★★★

१४२ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
वैशाख पूर्णिमा, १९८८

सद्गुरु कृपासे सहन करना और जो हो रहा है उसे देखते रहना यही उत्तम औषधि है जी। नमिराजर्षि जैसोंको भी कर्मोदयके कारण असह्य वेदना सहन करनी पड़ी थी। वे भी आत्मा थे, तथा उन्होंने ऐसे समय पर आत्मलाभ प्राप्त किया था उसे याद करके समभावसे सहन करनेकी भावना रहा करती है।

★★★

१४३ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
अषाढ़ वदी ८, मंगल, १९८८

सद्गुरु श्री देवाधिदेव परमगुरुने मनुष्यभवको चिंतामणिके समान दुर्लभ कहा है। जिस सत्पुरुषने, सद्गुरुने, अनंतज्ञानी तीर्थंकरने आत्माको यथातथ्य जाना है, देखा है, माना है, उस ज्ञानीका यथार्थ सत्समागम यदि जीवको न हुआ हो तो भी उस सत्पुरुषके समागममें, जिस किसी संत या मुमुक्षुने श्रद्धा, प्रतीति की है उस सत्संगका योग, यदि मनुष्यभव प्राप्तकर इस जीवको मिल गया हो और उनकी प्रतीति, विश्वास विशेष सच्चे मनसे आनेपर, उनके कथनानुसार उन सद्गुरुके प्रति, उनके बोधके प्रति प्रतीति, श्रद्धा, रुचि, मान्यता, आस्था इस जीवको हो जाय तो यह मनुष्यभव सफल है। उस संत द्वारा कथित सद्गुरुकी एक मान्यता, श्रद्धा होनेसे समकित कहा जाता है। इतना मनुष्यभव मिला है उसमें वही श्रद्धा सत्कृपालु श्री सद्गुरुदेवके प्रति जीवको रखना

* 'पाघडीने छेडे कसब' मूल गुजराती कहावत है। पगड़ीके छोर पर जरी लगनेसे उसकी शोभा बढ़ती है, वैसे ही जिंदगीके अंतिम भागमें आत्महितका काम हो जाय तो जीवनकी सफलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य है, अपनी कल्पनासे अन्य किसीको मानना योग्य नहीं। जो इस प्रकार एक सद्गुरुकी श्रद्धासे ही रहता है उसका आत्महित और कल्याण है। यदि एक समकित भी इस भवमें न हुआ तो जन्म—मनुष्यभव व्यर्थ गया समझें। इन एकको ही माननेसे सभी ज्ञानी आ जाते हैं, ऐसा अनेकांत मार्ग अभी समझमें आया नहीं है। अतः उसने जो जाना है वही सच है, मुझे भी वही मानना चाहिये, ऐसा माने तो आत्मकल्याण होगा। उन्हींकी आज्ञासे कल्याण है। 'श्री आत्मसिद्धि'में उन्होंने जो-जो आज्ञा दी है, वही कर्तव्य है। यद्यपि जगतमें अनेक जीव उत्तम हैं, गुणी हैं, किन्तु जब तक यथातथ्य परीक्षा-प्राधान्य नहीं आया, तब तक गुणीके गुण देखें, दोष न देखें। जीव स्वच्छंदसे और प्रमादसे अनंतकालसे भटका है। अतः यथाशक्य जागृति, आत्मभावना, स्मरण-भक्तिमें अमुक समय बिताना चाहिये। काल भयंकर है। प्राण लिये या लेगा ऐसा हो रहा है। तब यह जीव किस कालकी प्रतीक्षा करता है, यह समझमें नहीं आता।

[१]"यौवननी शी करवी माया? जळ-परपोटा जेवी काया;
जावुं पडशे नरके मरीने, आवी धननी आशा करीने. ५
[२]भव तरवा इच्छे जो भाई, संत-शिखामण सुण सुखदाई;
काम, क्रोध ने मोह तजी दे, सम्यग्ज्ञान समाधि सजी ले. ६
[३]कोण पति पत्नी पुत्रो तुज? दुःखमय पण संसार गणे मुज;
पूर्व भवे पापे पीडेलो, कोण हतो कर्मे जकडेलो? ७
[४]विषयभूतनो मोह मूकी दे, कषाय चारे निर्मूळ करी ले;
काम माननो कूचो करी दे, इंद्रिय चोरो पांच दमी ले. १३
[५]दुर्गति-दुःख अनेके कूट्यो, तो पण पीछो तेनो न छूट्यो;
जाणे भूत-भ्रमित मदमत्त, जीव अनाचारे रहे रक्त. १६
[६]मा कर यौवन-धन-गृह-गर्व, काळ हरी लेशे ए सर्व;
इंद्रजाळ सम निष्फळ सहु तज, मोक्षपदे मन राखी प्रभु भज. १८"
(वैराग्यमणिमाला)

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★
★★

---

१. यौवन वयमें क्या प्रीति करना? क्योंकि काया पानीके बुलबुलेकी तरह क्षणभंगुर है। यौवनवयमें ऐसे धनमें आसक्त रहा तो मरकर नरकमें जाना पड़ेगा। २. हे भाई! यदि तू संसारसे पार पाना चाहता है तो यह संतका सुखदायक उपदेश सुन—काम, क्रोध और मोहको छोड़कर सम्यग्ज्ञानपूर्वक समाधि (आत्मस्वरूपमें रमणता) का आराधन कर। ३. तेरा कौन पति, पत्नी या पुत्र हैं? अर्थात् कोई किसीका नहीं है। सारा संसार दुःखमय है। पूर्वभवमें पापकर्म बंधनकर कहाँ दुःख भोग रहा था? ४. विषय (कामवासना) रूप भूतका मोह छोड़ दे—उसके बंधनसे मुक्त हो जा, चारों कषाय निर्मूल कर दे, काम और मानको कूट-कूटकर नष्ट कर दे और पाँच इंद्रियरूपी चोरोंका दमन कर दे अर्थात् वश कर ले। ५. दुर्गतिके दुःखोंसे जीव अनेक प्रकारसे पीड़ित हुआ है फिर भी अभी तक उसका पीछा नहीं छूटा। मानों भूत-भ्रमित होनेसे मदमत्त हो गया हो इस प्रकार जीव अनाचारमें रक्त है इसलिये दुःखसे छुटकारा नहीं हो पाता। ६. हे जीव! यौवन, धन, घरका गर्व मत कर, क्योंकि काल (मौत) यह सब हरण कर लेगा। इंद्रजाल(माया)के समान इन्हें निष्फल जानकर इनके ममत्वका त्याग कर और मोक्षपदमें प्रीति रखकर प्रभुकी भक्ति कर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४४ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास, सं.१९८८

स्नेह प्रीति करना योग्य नहीं है। एक आत्मा ज्ञानदर्शनमय है। यह भावना वारंवार करनी चाहिये। अन्यत्र परभावमें मन जाये कि तुरत वापस मोड़ देना चाहिये, वृत्तिको रोक देना चाहिये। क्षेत्र-स्पर्शना है, अन्न-जल लिखा है ऐसा समझकर अरतिसे आर्तध्यान हो वैसा न करें।

"जो जो पुद्गल फरसना, निश्चे फरसे सोय;
ममता-समता भावसे, कर्म बंध-क्षय होय."

अपनी इच्छासे, स्वच्छंदसे जीवके जन्ममरण हो रहे हैं, उससे घबराना नहीं चाहिये। मृत्युके समय कौन सहायक है? उस समय परवशतासे भोगना पड़ता है, तो अभीसे 'जा विध राखे राम ता विध रहिये।' आकुल न हों, घबराये नहीं। सहनशीलता ही तप है। जहाँ जायेंगे वहाँ मिट्टी, पानी और पत्थर हैं। किसी स्थान पर सुख नहीं है। सुखको जाना ही नहीं है। दुःख, दुःख और दुःख है। दुःखमें ही सुख मान रहा है, भ्रम है। सावचेत होने जैसा है। भूला वहींसे फिर गिन। जागे तभीसे सबेरा। अंतमें सब छोड़ना पड़ेगा। अतः समझकर स्वच्छंदको रोकते हुए, अभी जैसा अवसर है उसके अनुसार समय व्यतीत करें और समभाव रखे तो तप ही है। इच्छाएँ, तृष्णाएँ करे तो बंध है। अकेला आया है, अकेला जायेगा। फिर ऐसा अवसर नहीं आयेगा। मनुष्यभव बार बार नहीं मिलेगा। जीती हुई बाजी हारनी नहीं है। कोई किसीका दुःख बाँटनेमें समर्थ नहीं है। कोई किसीको सुख देनेमें समर्थ नहीं है।

"आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।"
जीव लहे केवलज्ञान रे।

★★

१४५ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास सं.१९८९

आपका पत्र पढ़कर समाचार ज्ञात हुए। आपको एक सूचना देनी है उसे आत्मार्थके लिये ध्यानमें लीजियेगा। आपने पर्यायदृष्टिसे यहाँ मनुष्यभव धारण किया है वह रत्नचिंतामणिके समान है। ऐसा समझकर दयाभावसे कुछ शब्द लिखनेमें आये हों तो बुरा न मानियेगा और ऐसा सोचियेगा कि हम पर दया कर छद्मस्थ अवस्थाके कारण कुछ कटुतासे अर्थात् आपसे दुबारा वह आचरण न हो इसके लिये कहा गया है। यद्यपि ऐसा कुछ नहीं कहा गया है, जो कुछ कहा गया है वह फिरसे ऐसी भूल न हो इसके लिये कहा गया है। हमारा तो सब पर समभाव है, पर किसी जीवका भला हो ऐसा समझकर कुछ कहा जाता है।

कोई किसीका बुरा नहीं कर सकता। एक आत्मा ही आत्माका भला करेगा या विभावी आत्मा बुरा करेगा। इस जगतमें कोई किसीका बुरा करने या भला करनेमें समर्थ नहीं है। अतः इस भवमें तैयार हो जाना चाहिये। मेहमान है, पाहुना है, लंबे समय तक रहना नहीं है। अकेला आया है और अकेला जायेगा। इसमें सावधान रहना उचित है। जागृत रहने जैसा है, इसलिये सूचित किया है। यदि अपने दोषको निकाल दे तो जीवका कल्याण हो जाय। जैसे भी हो ऐसे बुरे व्यवसायको त्यागकर अच्छे भाव करने चाहिये। अधिक क्या लिखूँ? समझदारको तो इतना ही बस है। अपने दोष देखे नहीं गये। जीव मतिकल्पनासे मान लेता है ऐसी कोई भूल है उसे ही निकालना जरूरी है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा जानकर, मनमें उठती वृत्तिको रोककर, कल्पनाको रोककर योग्यता लाइयेगा। आत्माका भला करनेवाला, बुरा करनेवाला एक आत्मा ही है। कल्पनाको निकालकर एक योग्यता बढ़ायेंगे तो घरमें बैठे या वनमें बैठे अच्छा ही होगा। आपको जितना बुरा लगा है, उतना ही अमृत पिलाया है। जो आपको अच्छा लगाये वह विषपान करा रहा है ऐसा मानें। अतः अब परमकृपालुदेवके वचनको, उनकी आज्ञाको ध्यानमें लेकर जागृत होवें, जागृत होवें। वृत्ति, मन, चित्तको दुबारा परभावमें जाते रोकें। पढ़ने-विचारनेमें, वचनामृतमें समय बितायें। इसमें अन्यका काम नहीं, स्वयंका काम है। 'सत्संग, सत्संग' करेंगे पर सत्संग कुसंग हो जायेगा। सत्संग क्या है? अपना आत्मा। भ्रांतिसे किसीको सत्संग मान बैठेंगे पर वह असत्संग हो जायेगा। जहाँ-तहाँसे आत्माका कल्याण हो वह करना चाहिये। यह अन्य कोई कर देनेवाला नहीं है। आप समान बल नहीं, मेघ समान जल नहीं। योग्यता लायें। आत्माको सावधान होने जैसा है। किसीका दोष देखना उचित नहीं। मनुष्यभव मिला है तो अब नरकमें, निगोदमें, तिर्यंचमें न जाना पड़े ऐसा करना अपने हाथमें है। अकेला आया है, और अकेला जायेगा। अतः रत्नचिंतामणि जैसा मनुष्यभव हार नहीं जाना चाहिये। 'कौड़ीके लिये रत्न और बाटीके लिये खेत' नहीं गुमाना चाहिये। करोड़ों रुपयोंसे अधिक मूल्यवान मनुष्यभव है उसका लाभ उठा लेना चाहिये। अधिक क्या कहें? पृथ्वी, पानी, वनस्पतिमें गया तो वहाँ कोई आधार नहीं है। अपनी मतिकल्पना ही बुरा करती है। उसे कुछ सद्भावमें लानी चाहिये, सद्वर्तनमें प्रवृत्ति करनी चाहिये। भला करेगा तो आपका आत्मा ही करेगा, बुरा करेगा तो भी आपका आत्मा ही करेगा। अतः सावधान होने जैसा है। हमने आपको (आत्माको) कुछ नहीं कहा है; हमने तो दोषको, विभावको, बुराईको कहा है।

★★★

१४६ कावा राणाका बंगला, आशापुरी रोड,
नवसारी, ता.२२-५-३३

सभी बातों और दुःखका उपाय एक सत्समागम है। अतः अधिक सयानापन और माथापच्ची छोड़कर, हजारों रुपये मिलते हों तो भी उसको विष मानकर, यह बात छोड़कर समागममें रहना चाहिये। अन्य उपाय नहीं है। समागमसे शांति मिलेगी और जो अन्य लाभ होंगे वे तो कहे ही नहीं जा सकते। अतः अन्य कुछ न कर तुरत समागममें आ जाना चाहिये। अन्य किसी बातमें कुछ भी सार नहीं है। मात्र अग्निकी ज्वालामें जलने जैसा है। तथा मोहनीय कर्म आकुलित करता है उसका उपाय एक सत्समागम है उसमें आयें। आपकी वृत्ति, व्यवहार आपको स्वयंको अच्छा नहीं लगता और खेद करवाता है और वश नहीं चलता, तो वह सब यहाँ ठीक हो जायेगा। वीतरागकी सभामें, समागममें मोहनीय कर्मको बाहर ही बैठना पड़ता है। जीवकी यदि छूटनेकी इच्छा है और सच्चे वीतराग पुरुष हैं तो फिर मोहनीय कर्म कुछ नहीं कर सकता, घबराहट आती नहीं, चली जाती है और शांति होती है।

★★★

१४७ नवसारी, वैशाख वदी १२, रवि, १९८९

भगवान तीर्थंकर आदिने मनुष्यभवको दुर्लभ कहा है, ऐसा संयोग प्राप्तकर सच्चे सद्गुरु कृपालुदेवके प्रति श्रद्धा, प्रतीति, रुचि करनी है। यह वाक्य जो लिखा है, वह किसी संतके कहनेसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान्य हो जायेगा तो जीवका कल्याण हो जायेगा। वैसे अपनी कल्पनासे 'यह ज्ञानी है' ऐसा मान लेना उचित नहीं। मध्यस्थ रहें, न अज्ञानी कहें, न ज्ञानी कहें। यदि अपने स्वच्छंदसे वह किसीको मान्य करे तो वह उसकी भूल हुई है ऐसा मानना। जो कोई सत्संगमें सद्गुरुको मान्य करेगा, उसका कल्याण होगा। अपनी कल्पनासे मानकर जीव भूल करता है। उन सत्स्वरूप ज्ञानीपुरुषोंने आत्माको देखा है, जाना है, वही मुझे मान्य है। पुनः पुनः मनुष्य भव मिलना दुर्लभ है। इस भवमें यदि श्रद्धा और प्रतीति एक आत्माकी हो गई तो इस जीवका कल्याण है। ऐसा योग बार-बार नहीं मिलेगा। अतः ज्ञानी द्वारा बताये गये मंत्रका स्मरण करना चाहिये। व्याधि, पीड़ा, दुःख देहके संबंधसे होते हैं, वे चले जाते हैं। उसका हर्ष-शोक न करें। माता, पिता, स्त्री आदिमें मोह न करें। देह भी मेरी नहीं है, ज्ञानदर्शनरूप आत्मा मेरा है। उसे ज्ञानीने जाना है। उसके अतिरिक्त किसी पर प्रीति न करें। भावना, भक्ति, स्मरण करते रहें। बीस दोहे, क्षमापनाका पाठ, आत्मसिद्धि उन्हें सुनाते रहें। स्मृति बराबर हो तो पत्र ६९२ उन्हें सुनायें। उसमें आत्महितकी जो स्मृति कराई गई है, उसे वे ध्यानमें रखें, ऐसा उन्हें कहें। अन्य कुछ इच्छा न करें, मनमें भी न लावें। उस पत्रके अंतमें लिखा है—"श्री सद्गुरुने कहा है ऐसे निर्ग्रंथ मार्गका सदा ही आश्रय रहे। मैं देहादि स्वरूप नहीं हूँ, देह स्त्री पुत्रादि कोई भी मेरे नहीं है, मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप अविनाशी आत्मा हूँ। यों आत्मभावना करनेसे रागद्वेषका क्षय होता है।" ये श्री परमकृपालुदेवके वचन हैं, इन्हें ध्यानमें लीजियेगा। संगका फल अवश्य मिलेगा। मृत्युका भय न रखें। एक आत्माको अनेक बार याद करें, विश्वास रखें। 'आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।" कुछ चिंता करने जैसा नहीं है। आत्माकी ऋद्धि अनंत है, वह आत्माके साथ ही है। अन्य सब मूर्छा-ममत्व छोड़ दे। 'हुं मारुं हृदयेथी टाळ।'

★★★

१४८ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
भाद्रपद सुदी ७, १९८९

मनुष्यभव दुर्लभ है या चार दिनकी चाँदनी है, एवं सब नष्ट होनेवाला, नाशवान है, धोखेबाज है। ऐसे संसार पर विश्वास रखकर जीव आसक्त हो रहा है। मैं कमाता हूँ, मैं विषयोंको भोगता हूँ, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ ऐसा मान रहा है। पर मृत्युकी लाठी सिर पर खड़ी है इसका जीवको पता नहीं है, उस ओर उसने देखा भी नहीं है। चार गतिमें घोर दुःख भोगने पड़े, ऐसे कर्म बंधन हों वैसे इंद्रियोंके विषय-भोगोंको जीव प्रिय मानता है यह महा अज्ञान है। "मैं समझता हूँ, मैं जो कर रहा हूँ वह ठीक है, मुझे किसीकी सलाह लेनेकी क्या आवश्यकता है? मुझे कौन पूछनेवाला है?" ऐसा सूक्ष्म अहंकार जीवको मार देता है। संपूर्ण मनुष्यभव लुट रहा है, यह तो व्यापारमें दिवालिया बननेसे भी बहुत बुरा भयंकर है। फिर कौवे-कुत्तेके भवमें धर्माराधनका अवसर कहाँ मिलेगा? वर्तमानमें कोई अघटित कार्य हो गया हो तो मन-वचन-कायासे दुबारा वैसा न करनेकी प्रतिज्ञा लेकर बलपूर्वक उससे दूर होना योग्य है। कहनेवाला कह देता है और जानेवाला चला जाता है। जो करेगा वह भोगेगा। अभी आँखें मूँदकर पाप करेगा तो फिर बिलबिलाकर पश्चात्ताप करनेसे भी छुटकारा नहीं मिलेगा।

चेतना चाहे तो अभी समय है। सत्संग-समागममें विशेष समय बिताना चाहें तो बिताया जा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकता है। अभी तक बाजी हाथसे गई नहीं है। जब तक मनुष्यभव है तब तक सब हो सकता है, फिर किसीके वशकी बात नहीं है। सबको अपने अपने कियेका फल आत्माको अकेले ही भोगना पड़ेगा। अतः डरने जैसा है, जागृत होना योग्य है। दुष्ट-समागम तजने योग्य है। उल्टे मार्गको भूल जाना चाहिये। मरजिया होकर भी सदाचारका सेवन करना योग्य है।

जीव मस्त होकर घूम रहा है, पर बीमारी या मृत्युशैया पर पड़ेगा तब कौनसा व्यापार काम आयेगा? धनके भंडार होंगे वे भी पड़े रहेंगे। सगे-संबंधी या विषयभोग कोई भी उस समय दुःख बँटानेमें समर्थ नहीं है। यह सोचकर आज्ञारूपी धर्मकी आराधना करनेको तैयार हो जाना चाहिये।

'आणाए धम्मो, आणाए तवो।"

★★★

१४९ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास ता.१४-११-३३

द्रव्य, क्षेत्र, काल आदिकी स्पर्शनाके अनुसार सब होता रहता है। उसमें समकिती जीवको हर्ष-शोक करना उचित नहीं है।

"जो जो पुद्गल फरसना, निश्चे फरसे सोय;
ममता-समता भावसे, कर्म बंध-क्षय होय."

क्षमा, सहनशीलता ही मोक्षका राजमार्ग है। नाशवान वस्तुके परिवर्तनको देखकर समझदार लोग शोकके बदले वैराग्यको प्राप्त होते हैं। हमारी दृष्टिके समक्ष कितने ही जीव इस भवकी माथापच्चीको छोड़कर चले गये हैं, फिर ढूँढने पर भी कहीं उनका पता नहीं! क्या अब उन्हें इस गाँवकी, देशकी या कुटुंबकी कुछ खबर हैं? यहाँ थे तब कितनी चिंता हृदयमें लेकर घूमते थे? उनमेंसे क्या काम आया? सत्पुरुषका एक भी वचन हृदयमें स्थिर रहे तो कल्याण है।

★★★

१५० श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
फाल्गुन सुदी ८, बुध, १९९० ता.२१-२-१९३४

महात्मा ज्ञानी कृपालुदेवके उपदेशको सुनकर उनकी शिक्षाको ध्यानमें रखें तो कर्मबंध नहीं होगा ऐसी ज्ञानियोंकी शिक्षा है, उसे ध्यानमें रखना उचित है जी।

दूसरे, भाई! आप समझदार हैं अतः आपको आकुलता, चिंता या घबराहट नहीं होनी चाहिये। जो साता-असाता आयें तथा बँधे हुए कर्म उदयमें आयें उन सबको समभावसे सहन करना चाहिये। जीवने पूर्वकालमें जो कर्म बाँधे हैं वे उदयमें आते हैं। ऋण-संबंधसे सगे-संबंधी मिले हैं। उन कर्मोंको भोगते समय समभाव रखकर सहन करें। समता, क्षमा, धैर्य रखें और सब शांतिसे सहन करें। जो कर्म उदयमें आते हैं, वे भोगनेसे छूट जाते हैं, उसमें हर्ष-शोक न करें। समतासे सहन करना ही तप है। इससे आकुल-व्याकुल होकर कुछ बुरा चिंतन न करें। 'यहाँसे चला जाऊँ, छूट जाऊँ, मर जाऊँ' ऐसा कोई संकल्प न करें। ऐसा करने पर जीव कर्म बाँधता है। तथा कर्म तो चाहे-जहाँ बंधके अनुसार भोगने पड़ेंगे। पर उन्हें समताभावसे सहन करें। आकुल होकर कहाँ आकाशमें चढ़ जायेंगे? जहाँ भी जायेंगे, कर्म दो कदम आगे ही आगे हैं। अतः समतासे सहन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करें। हमें कोई दुःख दे, अभाव करे, अपमान करे तो उसका सच्चा उपकार समझें; हमारे बाँधे हुए कर्म छुड़ानेमें वह हमारी मदद कर रहा है, उसके बिना वे छूटनेवाले न थे, यों सुल्टा सोचें। इससे भी अधिक दुःख भले ही आवे, पर घबरायें नहीं। जीवने नरकमें क्या कम दुःख भोगे हैं? उनकी तुलनामें तो यहाँ कुछ भी नहीं है। मात्र अंतराय (प्रकृति) न टूटनेसे दुःख लगता है, उससे घबराये नहीं। आप ऐसे वैसे नहीं हैं। संसार कुछ भी कहे, उसके सामने न देखें। सबके साथ एकता रखें। कुछ समझ नहीं है, कुछ समझता नहीं है, ऐसा कहे तो भी समतासे सहन करें। मान जीवका बुरा करता है, मान शत्रु है। अन्यकी ओरसे अधिक सम्मान मिलता हो या अन्य जीव पर अधिक प्रेम करे तो वह राग बंधका कारण है, और द्वेष करे तो वह भी बंधका कारण है। अतः बंधके हेतुभूत किसीके राग या प्रेमकी इच्छा समझदार जीव नहीं रखते। किन्तु समभाव रखकर, जाना-अनजाना कर समतासे सहन कर लेते हैं। अतः उस मानका त्यागकर, सबसे छोटे बनकर, मानों कुछ समझता ही न हों इस प्रकार रहें। कोई कुछ शिक्षा दे तो उसे कहें कि आपका कथन सत्य है। आत्महित होता हो तो वैसे कर लेवें, पर कोप न करे, गुस्सा न करें।

"अधमाधम अधिको पतित, सकल जगतमां हुंय;
ए निश्चय आव्या विना, साधन करशे शुंय?"

इत्यादि बीस दोहें, क्षमापनाका पाठ, आलोचना, सामायिक पाठ, हो सके तो दिनमें पाव-आधा घंटा अवकाश निकालकर पढ़ें।

किसीको कुछ कहना पड़े तो धैर्यसे कहें। कुछ घबराकर, चिड़कर, कुपित होकर न कहें। सबके साथ मैत्रीभाव रखें। स्थान-स्थान पर पहचान रखें। नम्र बनें और सबके साथ हिल-मिलकर रहा जाय वैसा करें। एकता टूटे वैसा न करें। किसीको क्रोध आया हो और वह कुपित होकर बोले तो भी उसे धैर्यसे, समतासे, 'माँ, भाई' कहकर, उसका क्रोध मिट जाय वैसा व्यवहार करें। जैसे अच्छा लगें वैसा करें। खींचतान, खेंचाखेंच न करें। उसे ऐसा कहें कि आप समझदार हैं। माता हो तो उस पर क्रोध न करें। जिस प्रकार उसका क्रोध चला जाये और वह प्रसन्न हो वैसा करें। इस भवका ही संबंध है फिर तो 'वन वनकी लकड़ी'। अकेला आया और अकेला ही जायेगा। कोई अपना स्त्री, पुत्र, माता, पिता हुआ नहीं, हैं नहीं, होगा नहीं। यदि क्षमा नहीं करेंगे और कषाय अर्थात् क्रोध, वैरभाव करेंगे तो फिरसे नये कर्म बँधेंगे। अतः सच्चा उपाय समता, क्षमा है, वही गुप्त तप है। मनुष्यभव प्राप्त किया है, वह चिंतामणिके समान है। उसमें सुख-दुःख आये उन्हें समतासे सहन करें, आकुल न हों। कर्म छूटनेका अवसर आया है। जीवने जिस प्रकारके कर्म बाँधे हैं, तदनुसार वे उदयमें आते हैं, उनसे घबरायें नहीं, समता और क्षमा धारण करें।

यहाँ आनेका थोड़ा अवकाश निकालकर यहाँ आ सकें तो बहुत लाभ होगा। समागममें हितकी बात कही जा सकेगी।

सबकी अपेक्षा समझ ही सुख है, नासमझी दुःख है। अतः सही अवसर आया है। आया हुआ दुःख जा रहा है। वह तो जड़ है। देह भी नाशवान है। आत्मा ही शाश्वत है, अजर है, अमर है। इसका बाल भी बाँका करनेमें कोई समर्थ नहीं है, अतः मुझे दुःख हुआ, मुझे रोग हुआ, मुझे व्याधि हुई ऐसा न करें। आत्मा तो इनसे भिन्न है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः सद्गुरु परमकृपालुदेवकी शरण रखें। हम भी उनके दासानुदास हैं। अपनी कल्पनासे किसीको गुरु न मानें, किसीको ज्ञानी न कहें; मध्यस्थ दृष्टि रखें। एक परमात्मा परमकृपालुदेवको मानें। उन्हींकी श्रद्धा रखें। हम भी उन्हें मानते हैं। हमारे और आपके स्वामी भिन्न न करें, वे एक ही हैं। उन्हीं पर प्रेम करें, प्रीति करें। जो होता है उसे देखते रहें और उनकी शरणमें स्मरण करते रहें। अरे मर! चाहे जितना दुःख आये तो भले ही आये। वह 'आओ' कहनेसे आयेगा नहीं और 'जाओ' कहनेसे जायेगा नहीं। हमें तो उसे देखते रहना है। देखनेवाला आत्मा है, वह तो भिन्न ही है। मेरी माँ, मेरे पिता, मेरे पुत्र—इन्हें अपना मान रहे हो वे अपने नहीं हैं, सब ऋणसंबंधसे आये हैं। जीव अकेला आया है और अकेला जायेगा। अतः हमें आत्माको नहीं भूलना है। चाहे जितना दुःख आवे तो भी आकुल न होवें। यह तो क्या है? अपना-अपना बाँधा हुआ आता है। अतः क्षमापूर्वक सहन करें। यह सब जानेके लिये आता है। समर्थ स्वामी एक परमकृपालुदेवको ही हमने तो मान्य किया है, वे ही आपके भी गुरु है; हम भी आपके गुरु नहीं, पर हमने जिन्हें गुरु बनाया है वे आपके गुरु हैं, ऐसा निःशंक अध्यवसाय रखकर जो दुःख आवें उन्हें सहन करें। कालक्रमसे सब जानेवाला है।

यदि यह शिक्षा लक्ष्यमें रखेंगे तो आपका काम हो जायेगा। संसारकी मायाके दुःख देखकर किंचित् भी आकुल न होवें। जो होना होगा वही होगा।

"नहि बनवानुं नहि बने, बनवुं व्यर्थ न थाय;
कां ए औषध न पीजिये, जेथी चिंता जाय?"

बहुत करके होनहार बदलता नहीं और जो बदलनेवाला है वह होता नहीं। तो फिर धर्मप्रयत्नमें, आत्मिक हितमें अन्य उपाधिके आधीन होकर प्रमाद क्यों धारण किया जाय?

★★

१५१ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
प्र. वैशाख सुदी १५, रवि, १९९०

जीवने जो कर्म बाँधे हैं उन्हें भोगना पड़ता है; पर उन्हें भोगते समय धैर्य और सदाचार रखें तो अच्छा परिणाम प्राप्त होता है। अच्छे और समझदार गिने जानेवाले व्यक्तिको कुटुंबमें एकता रखनी चाहिये। माताजीको समझाकर, धीरज बँधाकर, अपने सदाचरण द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये। अपना बड़ा भाई पिताके तुल्य है। उन्हें भी कुटुंबका सारा भार उठाना पड़ता हो तो उसमें सहायता कर तथा उनका सन्मान और विनय कर, उन्हें प्रसन्न रखना हमारा मुख्य कर्तव्य है। अपनी आयमेंसे यथाशक्य बचत कुटुंबके लोगोंको निभानेमें खर्च हो तो उसे अपना अहोभाग्य समझना चाहिये।

यदि हमारा व्यवहार यों सबको सुखी करनेका हो तो बहुत पुण्यका बंध होता है और कुटुंबमें एकता बढ़ती है, तब लोगोंमें भी कुटुंबकी प्रशंसा होती है। अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करनेवाला स्वच्छंदी कहलाता है। स्वच्छंद व्यवहार करनेवाला इस लोकमें कुटुंबक्लेशसे दुःखी होता है और परलोकमें भी पापका फल भोगनेके लिये अधोगतिमें जाता है। अतः जिसकी सुखी होनेकी इच्छा हो उसे माता, पिता, बड़े भाई आदिका विनय करना चाहिये और जिसे धर्मकी इच्छा हो उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्पुरुषकी शिक्षाको सुनकर विनयसहित प्रवृत्ति करनी चाहिये। जो न्याय-नीतिपूर्वक प्रवृत्ति करता है, उसकी संसारमें प्रशंसा होती है और वह धर्माराधन करने योग्य बनता है। किन्तु दुराचरणवाला कभी धर्मको प्राप्त नहीं कर सकता तथा संसारमें भी उसकी निंदा होती है और कुटुंबकी निंदाका भी कारण बनता है। कुटुंबके लोग चाहे जितने नासमझ हों तो भी समझदार व्यक्ति विनयसे उनके मनको जीत लेता है। स्वयं दुःख उठाकर भी सबके चित्तको संतोष हो ऐसे मधुर वचन द्वारा उनकी सेवा कर उन्हें प्रसन्न रखें तो वह सच्चा समझदार गिना जाता है। कुटुंबमें जो समझदार हो उसे सबका कहना सहन करना चाहिये। चाहे जितने कटु वचन कोई कह जाये तो भी मानो सुना ही नहीं, ऐसा मानकर भूल जाय और सबका भला कैसे हो ऐसे विचार रखकर सबकी सेवामें लग जाय। अपनी भूलसे किसीको बुरा लगा हो तो वैसी भूल दुबारा न होने दे और जिसे बुरा लगा हो उसे प्रसन्न करे। वे सब हमें राजी रखकर व्यवहार करते हों तो उससे हमें फूल नहीं जाना चाहिये, किंतु अपने जो दोष हों उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। सबकी प्रकृति एक समान नहीं होती, अतः समझदार व्यक्तिको सबकी प्रकृतिको जानकर कुटुंबमें क्लेश न हो वैसी प्रवृत्ति करनी चाहिये और क्लेशके जो कारण हों उन्हें दूर कर देना चाहिये, तभी समझदार गिना जायेगा। अपने दोषकी क्षमायाचना कर सबको अच्छा कहकर झगड़े शांत करे वही कुशल कहा जाता है। संसारके भोग सब दुःखके कारण हैं और जीभ शत्रु जैसी है, उसे वशमें करनेवाला सुखी होता है। जो सबसे विनम्र व्यवहार करता है उस पर सबकी प्रीति रहती है। 'नम्यो ते परमेश्वरने गम्यो' (नम्र व्यक्ति पर परमेश्वर भी प्रसन्न रहता है।) ऐसी कहावत है। अतः बहुत नम्रता रखें और 'आप समझदार हैं, आप बड़े हैं, मैं तो बालक हूँ, मेरे दोषको न देखें। आप कहेंगे वैसे मैं करूँगा।' ऐसा कहकर सबके साथ हिल-मिलकर रहनेसे पुण्य बढ़ता है और जीवका हित होता है। किसी पर द्वेष न रखें। दूसरेका बुरा चाहने पर अपना ही बुरा होता है। अतः सबको अच्छा लगे वैसा बोलें तथा व्यवहार करें। माया-कपट न रखें। सरल हृदयसे, सबका भला हो वैसा व्यवहार करनेसे अपना ही भला होता है। प्रारब्धानुसार जो सगे-संबंधी मिले हैं, उनमें संतोष रखें। यदि मन-दुःख रखेंगे और कुटुंबमें झगड़ा पैदा करेंगे तो झगड़ेसे लक्ष्मीका नाश होता है। अतः सबके साथ हिल-मिलकर प्रेमसे रहें।

★
★★

१५२ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
प्र. वैशाख वदी ८, रवि, १९९०

हे प्रभु! संपूर्ण लोकमें स्वप्नवत् मायाका स्वरूप, पुद्गल पर्यायका व्यापार चल रहा है। हे प्रभु! पूरा लोक अभिनिवेश, मिथ्यात्व, अज्ञानसे 'मेरा मेरा' के आग्रह पूर्वक प्रवृत्ति कर रहा है और संसार-परिभ्रमण कर रहा है। जिस प्रकार रागद्वेष कम हों उस प्रकारसे वेदनीयकर्मके उदयको समभावसे भोगते हुए, आत्मासे आत्मिक वस्तुकी भावना करते हुए काल व्यतीत हो रहा है। जैसे भी हो परमें भाव कम होकर आत्मभाव हो वैसा भाव रहता है। परंतु कर्मके आगे जीव परवश है।

हे प्रभु! आयुष्यका भरोसा नहीं है। प्राण लिये या ले लेगा यों हो रहा है। वृद्धावस्था है। वृद्धावस्थाके कारण शरीर नरम-गरम रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमें तो आत्मभाव ही सच्चा संबंध लगता है। हे प्रभु! सद्गुरुका भी वचन है कि—"सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो, आ वचनने हृदये लखो।" ऐसी भावनाकी समझ है। हमारा अंतरंगभाव किसीके दोष देखनेकी दृष्टिवाला नहीं है। हे प्रभु! गुण देखनेकी दृष्टि रहती है।

कृपालुकी कृपासे जब तक आयुष्यरूपी कैद है, तब तक काल व्यतीत किये बिना छुटकारा नहीं है। मनुष्यभव दुर्लभ है।

★
★★

१५३ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास ता.८-५-३४

[१]"प्रभु पद दृढ मन राखीने, करवो सौ वे'वार;
विरति विवेक वधारीने, तरवो आ संसार."

मधुर वचनसे एकता बढ़ती है और पुण्यबंध होता है। अतः समझदार व्यक्तिको अपनी स्थितिका विचारकर, सबको प्रिय लगे वैसे वचन बोलनेकी आदत डालनी चाहिये तथा आलस्य छोड़कर उद्योगमें अधिक प्रवृत्ति करनी चाहिये।

बचपनमें काम सीखनेकी आदत डाले, उपयोगी कार्मोंमें समय बितानेका ध्यान रखें, वह भविष्यमें बड़े काम कर सके वैसा चतुर होता है। किन्तु यदि बचपनसे मौज-शौककी और आलसी बनकर गप्पें मारनेकी आदत पड़ जाय या ताशके खेल, नाटक, सिनेमा, सरकस या जूआ आदिकी लत लग जाये तो उसे कुछ बड़ा काम करनेकी शक्ति प्राप्त नहीं होती। उल्टा फिजूलखर्ची बनकर यौवनका समय दुःखमें बिताता है और वृद्धावस्थामें गरीबी और रोगके दुःखसे दुगुना दुःखी होता है तथा परभवमें अधोगतिमें जाता है। 'जिसको जैसा संग, रंग वैसा ही बैठे' ऐसी कहावत है, अतः जिसकी संगतिसे हम अच्छे बन सकें अर्थात् कार्यशील, भक्तिवान बन सकें उसकी संगति अधिक रखें, परंतु जिसकी संगतिसे चाय पीने, शराब पीने, तूफान करने, नाटक देखने, जूआ खेलने, अविवेकी व्यवहार करावे ऐसे वचन बोलने, चाहे जहाँ घूमने-फिरने, विषय-विकार एवं गानतानसे आनंद करनेकी आदत पड़े ऐसी संगतिको दूरसे ही छोड़ दें; चाहे कितनी ही अच्छी क्यों न लगती हो तो भी वैसी संगतिको विषके समान समझकर उससे दूर रहें। जिनकी संगति करनेसे हमारी प्रगति हो सके, हम सत्यवक्ता बनें, न्याय-नीति सीखें, हमारा यश बढ़े, विचार करना सीखें, साहस बढ़े, सद्गुण बढ़े, और शिक्षा मिले उनकी संगति ढूँढें। ऐसे अच्छे लोगोंकी, बड़े लोगोंकी संगतिसे बहुत लाभ है। पर नीच लोग तो उल्टा हमें निंदित कराते हैं और उनकी संगतिसे बुरी आदतें पड़ती है। अतः विदेशमें रहनेवालोंको अच्छी संगतिका बहुत ध्यान रखना चाहिये। अच्छी संगति न मिले तो 'भावनाबोध' या 'मोक्षमाला' जैसी पुस्तकें पढ़नेकी आदत डालें। अन्य भी कोई सुनना चाहे तो सुन सकता है। अन्यको हमारा रंग लगे वैसा व्यवहार करें, पर अन्यके छंदमें बह न जायें। मधुर और नम्र वचन बोलें, सादे और स्वच्छ वस्त्र पहनें तथा किसीका भी काम कर दें, सेवा करें। किसीका बुरा न सोचें। छलकपट या चोरी न करें। आलसी और उडाऊ न बनें। कोई कटु वचन बोल दे तो सहन करें। कोई अच्छी शिक्षा दे तो उसे मानें। धर्म समझनेकी भावना रखें। सत्संग करें और कुसंगका त्याग करें।

---

१. अर्थ—प्रभुके चरणमें (आश्रयमें) दृढ़ मन रखकर संसारमें सर्व प्रवृत्ति करे और विरति (त्याग) और विवेकको बढ़ाये तो जीव संसारसे तर जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुखी और अच्छे बननेकी इस शिक्षाको लक्ष्यमें रखकर तदनुसार व्यवहार करनेकी आदत डालनी चाहिये। आप मुमुक्षु हैं, अतः दोनोंको समझने, ग्रहण करने योग्य यह शिक्षा लिखी है, उसे दोनों मिलकर पढ़ें। इस पत्रको पढ़ें, फैंक न दें। शिक्षाकी बात है।

जैसे भी हो एकता रखें। नींबूके पानीकी भाँति सबके साथ मिलकर रहें। मैत्री भावना, करुणा भावना, प्रमोद भावना और मध्यस्थ भावना इन चार भावनाओंके विषयमें वाचन करें। 'विनय शत्रुको भी वश करता है' अतः सबका विनय करें, ऐसी आदत डालें। जैसे भी हो किसीके भी वचनको सहन करें। क्रोध आये तो क्षमा धारण करें। किसीको क्रोध आये ऐसा न करें। किसीको क्रोध आया है ऐसा लगे तो मधुर वचन और नम्रतासे उसका हित हो, उसको अच्छा लगे ऐसा मैत्रीभाव रखें। बड़े लोगोंके सम्पर्कसे हमें बहुत लाभ होता है।

हिंमत रखें। आपने अपने बड़े भाईको पत्र लिखा सो जाना, पर उनकी अवगणना न करें। तुच्छ न गिनें। उनकी जो समझ है उसमें हमें विषमभाव नहीं करना चाहिये।

हमसे कोई मिलता हो तो उसे धर्ममें जोड़ें। हमें उसकी बातमें नहीं बह जाना चाहिये, उसकी बातोंसे प्रसन्न नहीं होना चाहिये। हम उसकी बातोंमें आ जायें तो दुर्गति होती है। कृपालुदेवकी पुस्तक पढ़नेका योग मिले तो उसमें अवकाशका समय बितायें, पर अन्य काममें गप्प मारनेमें समय न खोयें। हिम्मत रखकर, न घबराते हुए, शिक्षाकी समझमें उद्यमी बनेंगे तो सब सीख सकेंगे और अच्छे माने जायेंगे। अधिक क्या लिखें?

"ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोष;
इनकूं कभी न छांडिये, श्रद्धा शील संतोष."

★★★

१५४ अठवा लाइन्स, सूरत, ता.९-६-३४

"विद्युत लक्ष्मी प्रभुता पतंग, आयुष्य ते तो जळना तरंग,
पुरंदरी चाप अनंग रंग, शुं राचीए त्यां क्षणनो प्रसंग?"

"सर्वज्ञनो धर्म सुशर्ण जाणी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी,
अनाथ एकांत सनाथ थाशे, एना विना कोई न बांह्य स्हाशे."—श्रीमद् राजचंद्र

"द्रव्यदृष्टिसें वस्तु स्थिर, पर्याय अथिर निहार;
ऊपजत विणसत देखके, हर्ष विषाद निवार."

[१]"निज धाम चंचळ, वित्त चंचळ, चित्त चंचळ सर्वथी,
हित मित्र ने सुकलत्र चंचळ, जाय शुं मुखथी कथी?
स्थिर एक सद्गुरुदेव छो, ए टेक अंतर आदरुं,
सहजात्मरूपी सेव्य गुरुने वंदना विधिए करुं."

"नहि बनवानुं नहीं बने, बनवुं व्यर्थ न थाय,
कां ए औषध न पीजिये, जेथी चिंता जाय?"

---

१. **अर्थ**—अपना घर, वित्त, चित्त, हितकारी मित्र, सुशील स्त्री सभी चंचल है। अधिक क्या कहूँ? एक सद्गुरुदेव ही स्थिर है यह निश्चय हृदयमें धारण करूँ। ऐसे सहजात्मरूपी सेव्य गुरुको विधिपूर्वक वंदना करूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जो जो पुद्गल फरसना, निश्चे फरसे सोय;
ममता-समता भावसें, कर्म बंध-क्षय होय."

"बीती ताहि विसार दे, आगेकी सुध ले;
जो बनी आवे सहजमें, ताहिमें चित्त दे."

भाई मंगलभाईकी धर्मपत्नी पवित्र बहनका छोटी उम्रमें देहावसान हुआ सुनकर अल्प परिचयवालेको भी खेद हो ऐसी यह घटना है, तो निकट संबंधियोंको विशेष खेद होना संभव ही है। पर वह किसीके हाथमें नहीं है। कहा है कि—

"कोउ न शरण मरण दिन, दुःख चहुँ गति भर्यो;
सुख दुःख एक ही भोगत, जिय विधिवश पर्यो."

परंतु उस खेदको त्यागकर यों सोचना चाहिये कि मनुष्यभवका आयुष्य अधिक होता तो वे धर्माराधन विशेष कर सकतीं थीं। इस मनुष्यभवका कुछ मूल्य नहीं हो सकता, यह अमूल्य है। मनुष्यभवमें धर्म होता है। भगवानने मनुष्यभवको दुर्लभ कहा है। उसमें उत्तम कुलमें जन्म पाकर पुण्यवानके घरका संयोग मिला, सत्संग हो सके ऐसी निकटता होने पर भी ऐसा संबंध छूटनेसे खेद होता है। अनादिकालसे इस जीवने समकित प्राप्त नहीं किया है, तो सत्संगके योगसे 'सत्'की बात सुनकर जीवको श्रद्धा होती है इसका लाभ प्रायः मनुष्य भवके बिना नहीं मिलता, यही खेद कर्तव्य है। वैसे तो संसार असार है। इस देहकी पर्याय तो एक न एक दिन छूटेगी ही, पर उससे धर्म हो सकता है यही सार है।

आप प्रज्ञावान, समझदार, सयाने हैं, सत्पुरुषके आश्रित हैं, अतः सबको सांत्वना, धैर्य दिला सकते हैं। अतः अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। तथा मंगलभाईको कहें कि कुछ खेद कर्तव्य नहीं है। "किसी भी कारणसे इस संसारमें क्लेशित होना योग्य नहीं।" जीव मनुष्यभव प्राप्त कर केवल सम्यक् श्रद्धाको प्राप्त कर लें तो जप तप आदिसे भी अधिक हुआ—सब कुछ हुआ ऐसा समझें। सार धर्म, सम्यक् श्रद्धा दुर्लभ है। अतः आप समझदार हैं, विचक्षण हैं। मनुष्यभव प्राप्त कर सावधान होने जैसा है। कालका भरोसा नहीं है। काल सिर पर मँडरा रहा है। प्राण लिये या लेगा यों हो रहा है। जीवको बार बार यह योग मिलना दुर्लभ है—मेहमान है, पाहुना है ऐसा जानकर दिन-प्रतिदिन धर्माराधन कर्तव्य है। प्रतिदिन पाँच-दस मिनिट या पाव घंटा नियमित स्मरण-भक्ति अवश्य करनी चाहिये। रुक्मिणी माँको भी कहें कि संसारमें मनुष्यभव प्राप्तकर चेतने जैसा है। मरण तो सर्व प्राणीमात्रको आयेगा ही, अतः खेद न करें, घबराये नहीं तथा जैसे भी हो भक्ति-स्मरणका लक्ष्य रखें। एक धर्म ही सार है।

★★★

१५५ सं.१९९०

सहजात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वामीको नमस्कार हो! सर्वज्ञदेव, नमस्कार हो!
परमगुरु, नमस्कार हो!

यह जीव प्रतिसमय मर रहा है, शुभ-अशुभ पुद्गलोंका स्पर्श किया है। ज्ञानी समभावमें हैं। देह छूट जानेका भय कर्तव्य नहीं, हर्ष-विषाद करना उचित नहीं। अशुभ शुभ आदि मिथ्या बुरे जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनके परिणाम हैं, वही हानि है और वही मृत्यु है। आत्मा सर्व साता-असाताका द्रष्टा है।

★★★

१५६ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास

अषाढ़ सुदी ७, १९९० ता.८-७-३४

आपने आत्मसिद्धि कण्ठस्थ की है उसमें चौदह पूर्वका सार आ जाता है। इसमें किसीको विषम लगे वैसा नहीं है। सबके साथ शांतभावसे हिल मिलकर रहें। श्री आत्मसिद्धिमें आत्माका गुणगान है। उसमें किसी धर्मकी निंदा नहीं है। सभी धर्मोंको माननेवालोंके लिये विचारणीय है। हमें भी यदि आत्माकी पहचान करनी हो तो उसका बारंबार चिंतन करना चाहिये। चौदह पूर्वका सार उसमें है। हमें अपनी योग्यतानुसार विचार करनेसे बहुत लाभ हो सकता है। उसमें जो गहन मर्म भरा है वह तो ज्ञानीगम्य है, किसी सत्पुरुषके समागममें सुनकर मान्य करने योग्य है। पर जितना अर्थ हमारी समझमें आ सकें उतना समझनेका पुरुषार्थ करना चाहिये। इसलिये चाहे जो धर्म माननेवाला हो उसके साथ आत्मसिद्धिके विषयमें बातचीत हो और वह सुने तो उसे रुचि हो सकती है। बड़े बड़े लोगोंको मान्य करनी पड़े ऐसी बातें आत्मसिद्धिमें हैं। इससे अधिक मैं जानता हूँ ऐसा कहनेवाला कुछ भी नहीं जानता। उसमें भूल ढूँढ़नेवाला स्वयं धोखा खाता है। श्री आत्मसिद्धिको यथार्थ समझनेवाले तो कोई विरले ज्ञानीपुरुष हैं। किन्तु गुजराती भाषामें होनेसे छोटे बच्चे, स्त्री, विद्वान चाहे जो पढ़ सकते हैं, कण्ठस्थ कर सकते हैं, नित्य पाठ कर सकते हैं और यथाशक्ति समझ सकते हैं। और समझमें न भी आये तो भी वे ज्ञानीपुरुषके शब्द कानमें पड़नेसे भी जीवको पुण्यबंध होता है, ऐसा इसका प्रभाव है। अतः अन्य बातोंमें समय न खोकर घर, बाहर, काम पर या अवकाशमें जहाँ हो वहाँ आत्मसिद्धिकी कोई कोई गाथा बोलते रहनेकी आदत डाली हो तो उस पर विचार करनेका प्रसंग आता है और विशेष समझमें आता रहता है, तथा आत्माका माहात्म्य प्रगट होता है। अन्य कुछ न हो सके तो आत्मसिद्धिकी गाथाओंमें मनको रोकें, यह हितकारी है। थकें नहीं, सौ बार हजार बार एक ही गाथा बोली जाय तो भी आपत्ति नहीं, लाख बार बोली जाय तो भी कम है। उसमें कथित आत्मा मुझे मान्य है, ज्ञानी पुरुषने उसमें प्रत्यक्ष आत्मा दिखाया है, ऐसी श्रद्धा रख, कमर कसकर पुरुषार्थ करना चाहिये। अधिक क्या लिखें? पुरुषार्थ किये बिना कुछ भी नहीं होता। अतः उकतायें नहीं, भूले वहींसे फिर गिनें।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

१५७ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास

अषाढ़ सुदी १४, बुध, १९९० ता.१५-७-३४

कालका भरोसा नहीं। प्राण लिये या लेगा यों हो रहा है। संसार पंखीके मेले जैसा है, मेहमान जैसा—स्वप्न जैसा है। तीर्थंकरके वचन ऐसे हैं, संपूर्ण लोक त्रिविध तापसे जल रहा है, अज्ञानसे सद्विवेक पाना दुर्लभ है। यह यथातथ्य है। समता और धैर्य कर्तव्य है। यही एक भाव, दृष्टि करनी है। जैसा सुख-दुःख बाँधा होगा, वैसा भोगना पड़ेगा। इसमें किसीका वश नहीं चल सकता।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५८ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास ता.१७-७-३४

इस कलिकालमें अच्छी संगति, सत्संग, सत्पुरुषका योग प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है। महान पुण्यका उदय हो तब सत्पुरुषके दर्शन करनेका, बोध सुननेका योग मिलता है। न्यायनीति, सदाचारके अनुसार व्यवहार करे; सत्य, अच्छे, प्रिय लगें, एकता बढ़े वैसे वचन बोले या लिखे; अपनेको सौंपा हुआ कार्य भली प्रकार करे; बड़े लोगोंका विनय, सेवा-चाकरी करे, कोई बीमार आदि हो तो उसकी सहायता करे, भक्तिभजनके लिये नित्य नियमपूर्वक भक्ति करे; स्मरण करे, नमस्कार करे; दर्शन-सत्संग-समागमकी भावना करे उसे पुण्यबंध होता है और पुण्यवान जीव सुखी होते हैं, यह हम जानते ही है।

"बहु पुण्यकेरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मळ्यो;
तोये अरे! भव चक्रनो आंटो नहि एक्के टळ्यो."

ऐसा परमकृपालुदेवने लिखा है, तदनुसार कितना अधिक पुण्य एकत्रित होने पर मनुष्यभव मिलता है! उसे सफल हुआ कब समझें कि जब प्रत्यक्ष सत्पुरुषकी कृपासे उनके वचन पर विश्वास कर जीव मोहनिद्रा छोड़ जागृत हो और जन्म, मरण, आधि, व्याधि, उपाधि तथा सर्व दुःखको दूर करनेवाला सम्यक्त्व प्राप्त करे अर्थात् आत्माकी पहचान और उसकी श्रद्धा अचल हो तब। इस भवका बड़ेसे बड़ा लाभ समकित प्राप्त करना है। संसारी जीव धन, स्त्री, पुत्र, घर, खेत, वस्त्र, आभूषण आदिकी इच्छा करता है। किन्तु इन वस्तुओंको तो छोड़कर सबको मर जाना है। अंतमें कुछ काम नहीं आयेगा। मात्र जीवने यदि धर्मकी पहचान की होगी, धर्माराधन किया होगा, तो वह परभवमें साथ चलेगा और उसे सुखी करेगा। अतः संसारके सुखकी इच्छा नहीं करनी चाहिये। परंतु आत्माका कल्याण कैसे हो उसकी चिंता रख, सत्संग समागममें जो कुछ शिक्षा मिली हो, उसे हृदयमें अंकित कर तदनुसार प्रवृत्ति करनेका पुरुषार्थ करना चाहिये। पूर्वप्रारब्धानुसार इस भवमें जन्म हुआ है। मनुष्यदेह, अच्छा कुल, सत्संग आदिका योग मिला है, अतः उसका सदुपयोग कर शीघ्रतासे आत्महितकी साधना कर लेनी चाहिये। ऐसा अवसर बारबार मिलना दुर्लभ है। अमूल्य क्षण बीता जा रहा है। गया हुआ समय वापस नहीं लौटता, अतः समय व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये। भक्ति, स्मरण, वाचनमें अवकाशका समय बितायें और धर्मके लिये सुबह शाम बीस दोहें, क्षमापनाका पाठ आदि जो करनेको कहा गया हो उसे चूकना नहीं चाहिये। आलोचना, सामायिक पाठ नित्य वाचनका अवकाश मिले तो वाचन करते रहें। हे भाई! इस जीवको ढीला न छोड़ दें। संसारके कामकाजमें प्रयोजन हो उतना, आवश्यक व्यवहारके लिये जितना समय देना पड़े उससे अतिरिक्त समयको अन्य खेलकूद, प्रतिकूल ऐशोआराममें न जाने दें। कुछ धार्मिक पुस्तक पढ़नेका निमित्त रखें। जीवको सँभाल रखनी चाहिये। विनय बड़ी चीज है।

बहुत चेतने जैसा है। आपको जो शिक्षा दी है वह पुण्यबंधके लिये और पापसे छूटनेके लिये कर्तव्य है। हिम्मत न हारें। जैसा होना होगा वह होता रहेगा। सबको साहस बँधायें, घबरायें नहीं। धैर्य रखकर एकतासे काम करेंगे तो सुखी बनेंगे। पेट बड़ा रखें—गंभीरता रखना सीखें। जैसे भी हो अपने बड़े भाईका हित, शिक्षा और आपके प्रति प्रेम बढ़े वैसा करें। आत्मा अकेला आया है और अकेला जायेगा। सुख-दुःख, साता-असाता जीवको बंधके अनुसार आते हैं, वह किसीके वशमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। अतः समता और धैर्य अधिक रखना सीखें। हलके मनुष्योंकी संगति न करें। उम्र छोटी होने पर भी वृद्ध समझदार मनुष्य जैसी बुद्धिसे व्यवहार करें और बड़े समझदार व्यक्तिसे मिलने-जुलनेका प्रसंग रखें, उनसे जान-पहचान बढ़ायें। सबके साथ मैत्रीभाव, नम्रतासे विनयसहित बोलचालका व्यवहार रखें। गरीबी (लघुता) रखकर व्यवहार करें। 'नम्यो ते परमेश्वरने गम्यो' (नम्रतासे परमेश्वर भी प्रसन्न होते हैं।) अहंकार न रखें।

"ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोष;
इनकूं कभी न छांडिये, श्रद्धा शील संतोष."

इस दोहेको कण्ठस्थकर, इसके विचार शिक्षाको मनमें रखकर हमें व्यवहार करना चाहिये। अवकाशके समय धर्मका वाचन, विचार करें।

यह समझ इस भव, परभवके हितके लिये लिखी है। ऊपर लिखे अनुसार, जैसे आत्महित हो वैसा व्यवहार करना योग्य है। अपना बुरा किया हो उनका भी भला करनेका स्वभाव रखें। उनका तिरस्कार न करें। उन्हें अच्छा लगे वैसा मान देकर भला हो वैसा करें। 'आप समान बल नहीं, मेघ समान जल नहीं' ऐसी कहावत है, अतः अपनेसे हो उतना, इस संसारमें आयुष्य रहे तब तक भला हो वैसा करें। जैसे भी हो सद्वर्तन करें। विनय शत्रुको भी वशमें करता है। जो मिले उसमें संतोष रखें। समतासे सहन करें। झूठ बोलनेकी आदत कभी न डालें। नम्रतासे व्यवहार करें।

★★★

१५९ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
ता.१९-७-३४, गुरु

दंतालीवाले त्रिकमभाईका शरीर क्षयके कारण सूख गया है। वे अभी आश्रममें ही रहे हैं। परमकृपालुदेव पर श्रद्धा दृढ़ हो और शरीरकी ममता कम हो ऐसा बोध, पत्र आदि पढ़वाकर उन्हें सुनानेका निमित्त रखा है। इस रोगमें शरीर क्षीण हो जाने पर भी भान, सुधि अच्छी रहती है। वृद्धावस्था हो, बीमारी हो तो भी मनुष्यदेह है तब तक सत्संग आदि आत्महितका कारण बन सकता है। समकिती जीवको रोगके समय विशेष निर्जरा होती है। सामान्यतः दुःखके समय भगवान अधिक याद आते हैं और सुखके समय संसार याद आता है। अतः ज्ञानीपुरुष तो वेदनाके समय प्रसन्न होते हैं कि यह कर्मका बोझ हलका हो रहा है। यहाँ तक कि मृत्युबेलाको महोत्सव मानते हैं। जिस किसी जीवको सच्चे मनसे परमकृपालु देव पर आस्था हुई है उन सबका काम हो जायेगा। कमी मात्र बोधकी और जीवकी योग्यताकी है। उस कमीको पूरी करनेके लिये सत्पुरुषार्थ करना चाहिये।

आप तो अवसरके ज्ञाता हैं और ऐसे अच्छे निमित्त एकत्रित करते रहते हैं, अतः आपको क्या बताया जाय? आपको कुछ कहना नहीं है। 'खाते बचा सो बीज और मरते बचा सो बुद्धा।' हमें तो आपके सत्संगका बड़ा आधार है। आपको क्या लिखें? आप अवसरको पहचाननेवाले हैं। 'समयं गोयम मा पमाए।' अनमोल क्षण जा रहा है। ऐसा काल व्यतीत करनेके लिये सद्गुरुकृपासे मिला है, वह काल व्यतीत करेंगे। सद्गुरुके बोधसे हित होता है; ऐसा सत्संग दुर्लभ है। जैसे भी हो उसे प्राप्त करनेकी भावना रखनी योग्य है। जैसे भी हो सत्पुरुषके बोधमें काल व्यतीत हो वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य है। बहुत करके वीतराग मार्ग 'सम'का है। जैसी क्षेत्रस्पर्शना होती है वैसा होता रहता है। उसके द्रष्टा होकर रहें। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

१६० श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास

श्रावण सुदी ४, मंगल, १९९७, ता.१४-८-३४

महापुरुषोंने आत्महितके लिये और जीवको पुण्यबंध हो ऐसा लक्ष्य होनेके लिये बताया है। मनुष्यभव मिलना दुर्लभ है। इस मनुष्यभवको प्राप्तकर संसारमें इस प्रकार व्यवहार करें कि जिससे पुण्यबंध हो, देवगति हो और सत्पुरुष-सद्गुरुकी श्रद्धासे सम्यक्त्व प्राप्त हो। यह बात चूकने जैसी नहीं है। आत्माके लिये यही कर्तव्य है। आप तो समझदार हैं। अतः परमार्थके लिये स्वपरके हितका विचार करें। इसके लिये निम्न बातोंको ध्यानमें रखकर व्यवहार करें–

(१) झूठ नहीं बोलना। यद्यपि कई लोगोंको झूठकी आदत होती है तथापि सत्य बोलनेकी आदत रखनी चाहिये।

(२) रिश्वत नहीं लेना।

(३) चोरी नहीं करना।

(४) परस्त्रीका संग नहीं करना।

(५) न्याय-नीतिसे पैसा कमाना, उससे जो मिले उसमें संतोष रखना।

(६) सबके साथ मैत्री भाव रखना। बड़े लोगोंसे, अच्छे समझदार लोगोंसे संबंध रखना।

(७) हल्के लोगोंके साथ संबंध नहीं रखना। संसारमें पापबंध करावें, दुर्गति करावें, वैसोंका परिचय नहीं रखना।

(८) हमारा बुरा करे उसका भी हो सके तो भला करना, भला सोचना। किसीके साथ वैमनस्य नहीं करना।

(९) गंभीरतासे बड़ा पेट रखना। बुरी बात भूल जाना।

(१०) 'परमारथमां पिंड ज गाळ' अर्थात् आत्माके लिये भावना करना। चलते-फिरते, काम करते हुए भी मनमें 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'का स्मरण करना, अर्थात् क्षण-क्षण उस मंत्रको याद करना। यह भूलने योग्य नहीं है।

काल सिर पर मँडरा रहा है। प्राण लिये या ले लेगा यों हो रहा है। मनुष्यभव दुर्लभ है। यह मनमें, स्मृतिमें, चित्तमें रखना चाहिये। आप समझदार हैं। यह भावना अन्य किसीके लिये नहीं है, अपने लिये है। अच्छा न लगे तो भी 'मोक्षमाला' आदि पुस्तक पढ़नेमें मन लगायें। चित्त मन कहीं भटक रहा हो तो उसे वहाँसे लौटाकर किसी धर्मके कार्यमें लगायें। कुछ घबरायें नहीं। साहसपूर्वक मंत्रका स्मरण करते रहें। कामके समय काम और आरामके समय आराम। मनको, विचारको पुण्यबंध हो ऐसे अच्छे काममें लगायें। सबके साथ मैत्रीभाव रखें। एकता, शीलसे व्यवहार करें। किसीके साथ झगड़ा न करें। नींबूका पानी सबके साथ मिल जाता है, उसी प्रकार सबके साथ हिल-मिलकर रहें, एक हो जायें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्संग सबसे श्रेष्ठ है। परमकृपालुदेव पर श्रद्धा और उनके वचन पर यथार्थ विचार होनेसे समकित होता है। उसकी प्राप्ति बड़ी बात है, पर उसे प्राप्त करनेका प्रयास करें। साता-असाता बाँधी होगी वैसी भोगनी पड़ेगी, उसमें खेद न करें, सदैव उल्लासमें रहें। घबराकर उदास न हों। हिम्मत न हारें। समभाव रखकर सहन करें।

नित्य बीस दोहें, क्षमापनाका पाठ, आलोचनाकी पुस्तक पढ़नेका योग बनायें। बीस दोहें, क्षमापनाका पाठ तो शाम या सुबह पढ़े। उसका फल अवश्य होगा। आत्माके लिये करें। अन्य कुछ इच्छा न करें। सुख-दुःख तो पूर्वबद्ध है। वह किसीको भी आये बिना नहीं रहेगा। समय बीत रहा है वह अमूल्य है। कुछ इच्छा न करें। होनहार होकर रहेगा। किसीको बहुत याद न करें, सब भूल जायें। जो दुःखके दिन आयें उन्हें समभावसे उल्लासपूर्वक भोग लेना चाहिये।

★★★

१६१ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास ता.१८-८-३४

प्रमाद और स्वच्छंद इस जीवका बुरा करते हैं। अतः जीवको सत्पुरुषका बोध सुनकर, पढ़कर, विचारकर मनको, वृत्तिको बहुत विकल्पमें अन्य परभावमें जाते रोककर, कामकाज करते, चलते-फिरते मन स्थिर कर 'सहजात्मस्वरूप' की भावना हृदयमें करनी चाहिये। क्षण-क्षण काम करते, चलते फिरते मनमें स्मरण करते रहना चाहिये। जितना हो सके उतना सत्पुरुषार्थ करें। घबरायें नहीं, आकुल-व्याकुल न हों। जैसे भी हो सके, सद्विचारमें मनको—वृत्तिको लायें। परमें जाते मनको रोकनेके लिये परमकृपालुदेवका कोई पत्र पढ़ें, चिंतन करें।

सभी जीवात्मा प्रारब्ध प्रवृत्तिमें हैं। उसीमें सब दिन बीतते हैं, पर माहमें या पंद्रह दिनमें सभी मुमुक्षु एक स्थान पर एकत्रित हो सकें वैसा करना चाहिये। समय बीत रहा है, उसमें सत्संगके लिये एक दिनकी व्यवस्था कर लेंगे तो कुछ अड़चन नहीं आयेगी। सबकी रायसे एक दिन धर्ममें बिता सकें वैसा निश्चित करें। यह मनुष्यभव पुनः मिलना दुर्लभ है। एक शहरमें होनेसे ऐसी व्यवस्था करेंगे तो हो सकेगी। होनहार बदलता नहीं और बदलनेवाला होता नहीं, ऐसा सोचकर धर्मके काममें पुरुषार्थ कर्तव्य है जी।

★★★

१६२ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
ता.७-९-३४, गुरुवार

सबके साथ मिल जुलकर विनयसे रहें। किसीका भी कुछ काम हो तो उमंगसे कर दें। सबको अच्छा लगे वैसा बोलें, मिलने जायें, कामकाज पूछें और बालकके समान सबसे छोटे बनकर नम्रतासे रहें। घबराये नहीं, उल्लास रखें। काममें कमी न आने दें और आलस्यमें, मौजशौकमें समय व्यर्थ न जाने दें। प्रतिदिन भक्तिके बीस दोहे तथा क्षमापनाका पाठ और हो सके तो आत्मसिद्धिका भी पाठ करें। नीति-न्यायपूर्वक अच्छा व्यवहार रखनेसे पुण्यबंध होगा और धर्मके काममें ध्यान रखनेसे आत्माका कल्याण होगा, अतः दोनोंमें सावधानी रखें।

धैर्य रखें। कोई कुछ भी कहे, उसे सहन करनेकी आदत डालें। उससे बहुत लाभ होता है। जिसका स्वभाव क्रोधी नहीं होता, उसके सब मित्र बन जाते हैं। विनय सबको वशमें करनेका उत्तम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शत्रु है। यथाशक्य दुश्मनका भी भला चाहें। सदाचारका सेवन करें। मैत्रीभाव रखें। धैर्यपूर्वक मिलजुलकर आनंद मनायें। गुणग्राही बनें। किसीने हमारा उपकार किया हो तो उसका बदला चुकायें; मधुर वचनसे, नम्रतासे अच्छे वचन बोलकर उसका मन प्रसन्न हो वैसा करें। यह बात किसी समझदार जीवात्माको ही कही जाती है। सबसे बड़ी नम्रता है। लघुभाव रखकर व्यवहार करें। अहंकार और अभिमान आत्माके शत्रु हैं, उन्हें मनमें न लावें। अभिमान न होने दें। मनमें ऐसा न सोचें कि 'मैं समझता हूँ, यह तो कुछ भी नहीं जानता।' कहा है कि—

[1]"जाण आगळ अजाण थईए, तत्त्व लईए ताणी,
आगळो थाय आग तो आपणे थईए पाणी."

यह सब आपको समझनेके लिये लिखा है। मनमें ऐसा न सोचें कि मैं तो समझता हूँ। कोई ना-समझ हो तो उसका भी मन न दुःखायें। उसे भी 'अच्छा, अच्छा' कहकर उसका और अपना हित हो वैसा करें।

★★★

१६३ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
भाद्रपद सुदी ५, गुरु, सं. १९९०

मरण बहुत याद आता है। आज तकमें जो-जो मरण हुए हैं वे बारंबार याद आते हैं और क्षणिकता, अनित्यता झलक आती है कि काँचकी शीशीके समान कायाको फूटते देर नहीं लगती। घबराहट होती है, कुछ भी अच्छा नहीं लगता। किसी स्थानमें बाहर जानेसे भी अच्छा नहीं लगता। यहाँ रहनेसे भी मन नहीं लगता। मरणका भय भी नहीं है, पर विचित्र कर्मके उदय दृश्यमान होते हैं।

★★★

१६४ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास ता. २-१०-३४

किसीको क्रोध आये तब सबके साथ क्षमा, नम्रतासे बोलें। सामनेवालेसे जैसे अच्छा लगे वैसे बोलें। सामनेवालेको क्रोध आये, कषाय उत्पन्न हो वैसा न बोलें। मैत्री, करुणाभाव, प्रमोदभाव और मध्यस्थता—समभाव ऐसे वचन हृदयमें लाकर विचारकर सबके साथ बोलें। नम्रतासे, सामनेवालेको अच्छा लगे वैसा स्वभाव करनेका ध्यान रखें। अहंकार, अभिमानको वृत्तिमें न आने दें, नम्र हो जायें। सबको अच्छा लगे वैसा स्वभाव करें। 'सेठकी सलाह द्वार तक' ऐसा न करें। इस वचनको लक्ष्यमें रखकर 'मैं सबसे छोटा हूँ, मुझमें अल्पबुद्धि है' ऐसा मानकर सामनेवालेसे कुछ भी गुण ग्रहण करें। कोई हमारा तिरस्कार करें तो भी उससे धैर्यपूर्वक अच्छा लगे वैसा व्यवहार करें। 'आप समझदार हैं, आप सयाने हैं, आप ठीक कहते हैं' ऐसा कहकर जिस प्रकार क्रोध शांत होकर वह समतामें आवे उस प्रकार धैर्यसे, एकतासे, उसको अच्छा लगे वैसे बोलें। उसके साथ धैर्यसे बात करें। 'पूछता नर पंडित' ऐसा स्वभाव रखें। अपने छोटे भाई शांतिके साथ नम्रतासे बोलकर

---

१ अर्थ—कोई धर्मका ज्ञाता हो तो उसके आगे हमें नासमझ बनकर उससे तत्त्व खींच लेना चाहिये—ग्रहण कर लेना चाहिये—जैसे कि सामनेवाला अग्नि हो जाये—गुस्सा करे तो हमें पानीकी तरह शांति रखनी चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी बुद्धिमें कुछ आया हो तो भी उससे पूछें। अपनी माताके साथ, उनकी मति अल्प हो तो भी क्षमा धारणकर उनके साथ मिलकर काम लेवें। कोई भी बात पूछकर करें। जैसे ठीक हो, अच्छा हो, वैसा व्यवहार करें। यथाशक्ति अपनी बुद्धिसे उन्हें समझायें। जिससे एकता रहे, उनको अच्छा लगे, वैसा करें। यद्यपि हमें कठिन लगे तो भी वचनसे उन्हें ऐसा कहें कि आप समझदार है। अवकाश मिले तो एक-दो दिनके लिये आपकी माताजीको या आपको यहाँ आ जाना योग्य है। कुछ आत्मार्थकी बात, सत्पुरुष कथित शिक्षा यहाँ सुनकर जायेंगे तो वह आपको इस भव और परभवमें हितकारी होगी। सुख-दुःख आवें उन्हें न गिनें। जैसा समय आया हो वैसा समतापूर्वक धैर्यसे सहन कर लें। आकुल-व्याकुल न हों, घबराये नहीं। सबको अच्छा लगे वैसे मधुरतासे बोलें। क्रोधसे, अकुलाकर न बोलें।

यह बात ध्यानमें रखें। आपका बहुत भला होगा। काल सिर पर मँडरा रहा है। लिया या लेगा यों हो रहा है। गाँवमें किसीके साथ वैर न रखें। सबके साथ मिल-जुलकर रहें। किसीको क्रोध आया हो तो भी नम्र बनकर अपना काम निकाल लें। शत्रुता हो वैसा व्यवहार न करें। 'बापकी औरत' या 'माताजी' कहनेमें अंतर है, वैसे ही हमें उसे समझाकर काम लेना चाहिये। सबके साथ, छोटे बालकके साथ भी धैर्यसे समझाकर काम लेना चाहिये। संपूर्ण लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। आपके भाईके प्रति भी उल्लासभाव हो, उसे अच्छा लगे वैसे पत्र लिखते रहें। क्रोध चढ़ा हो तो क्रोध उतर जाय, अपनेको कुछ अच्छी शिक्षा लिख भेजे ऐसा उसे लिखते रहें, पूछते भी रहें।

★★★

१६५ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
आश्विन वदी २, १९९०

हे प्रभु! यह क्षणभंगुर देह धोखा देनेवाली है। रोगको लेनेमें कोई समर्थ नहीं है। जीवको अकेले ही कर्म भोगने पड़ते हैं। पर समकितीकी बलिहारी है! उसे तो ज्यों अधिक दुःख आते हैं त्यों अधिक निर्जरा होती है। जिसके पास भेदविज्ञानका शस्त्र है उसकी अंतमें विजय होती है। यहाँ सर्व प्रकारकी बाह्य अनुकूलता होने पर भी वृद्धावस्थाकी वेदना लेनेमें कोई समर्थ नहीं है। कहीं चित्त नहीं लगता। चातुर्मास उतरने पर कहीं बाहर जानेकी वृत्ति हुआ करती है। पर शरीर कुछ सहन कर सके वैसा अब रहा नहीं है। आँखोंमें धुंधलापन आ गया है, कानका बहरापन बढ़ रहा है, बोलनेमें भी तुतलाहट आने लगी है। बोलते-बोलते थकान हो जाती है। गला बैठ गया हो यों भारी आवाज निकलती है। मौत बारबार याद आती है। कुछ भय नहीं है पर कहीं चित्त नहीं लगता, चैन नहीं पड़ता। सद्गुरुकी शरणपूर्वक समताकी भावनासे जो हो उसे देखते रहना, इसके सिवाय अन्य कोई उपाय दिखाई नहीं देता। वेदनीय कर्म, साता-असाता प्राणीमात्रको भोगना ही पड़ता है, इसमें किसीका कुछ वश नहीं चलता। सद्गुरुकी शरणसे यहाँ, जैसे बने वैसे समभावसे भोगा जा रहा है। हमारा तो ध्यान एकमात्र सद्गुरुके वचनमें है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६६ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
ता.१०-११-३४

आपको क्या बतायें? परम पुरुष पर जितना विशेष प्रेमभाव, श्रद्धा, आश्रय, भक्तिभाव बढ़ेगा उतना ही स्वपर कल्याण होगा, यह तो आपके ध्यानमें है जी। आप बहुत निकट आ गये हैं अर्थात् योग्यतामें आये हैं। इतना पुण्य होने पर भी मनमेंसे उसे दूरकर ऊपर-ऊपरसे रखते हैं! स्व० जूठाभाई और आपका काम हुआ है। मार्ग पर चढ़नेके लिये परमपुरुषकी श्रद्धाकी आवश्यकता है। जिसे वह हुई उसका अवश्य मोक्ष होगा। अनेक भव्य जीवोंका कल्याण होनेवाला है। इसमें कुछ धन या पदकी आवश्यकता नहीं है, मात्र श्रद्धा करनेकी आवश्यकता है। जो ऐसा करेगा वह चाहे जैसा होगा तो भी उत्तम पदको प्राप्त करेगा। मैंने जाना नहीं है, परंतु मैंने माना है उस पुरुषने तो आत्माको जाना है, इतनी प्रतीति भी बहुत लाभदायक है।

★★★

१६७ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
ता.२९-११-३४

"होत आसवा परिसवा, नहि इनमें संदेह;
मात्र दृष्टिकी भूल है, भूल गये गत एह."

ज्ञानीको आस्रवमें भी मोक्ष होता है, कर्म छूटते हैं। मिथ्यादृष्टिको संवरमें भी बंध होता है, इसका क्या कारण है? सम्यक्त्व। आपने समकित माँगा है, वह कृपालुदेवकी कृपासे आपको अवश्य प्राप्त होगा—निःशंक मानियेगा।

जीव अनादिसे मिथ्यात्वमें है। प्रथम सीखें—मेरा कुछ नहीं, पुद्गल है वह चैतन्यशक्तिसे भिन्न है, भिन्न है, भिन्न है; आत्माकी शक्ति आत्मामें है। चैतन्य है वह अपना है, अन्य नहीं; जो ऐसा मानता है वह कर्मसे छूटता है। जो अपना नहीं है उसे अपना मानता है वह बँधता है। 'मेरा है, मैंने किया' ऐसा कहनेवाला बँधता है। सब जो जड़ है, पुद्गल-पर्याय है, वह कभी हमारा हुआ नहीं, होगा नहीं और हैं भी नहीं। उसे अपना न मानें। अपना तो आत्मा है। उसे ज्ञानीने जाना है, वह सिद्ध समान है यह निश्चित जानें। ज्ञानीने जिसे जाना है, वह आत्मा मुझे मान्य है—ज्ञानीके कहनेसे मुझे मान्य है। यही श्रद्धा करें। यही मेरी श्रद्धा हो। जितने संकल्प-विकल्प हैं वे सब मिथ्या हैं। आत्मा संकल्प-विकल्पसे रहित है, उस आत्माको मैं मानता हूँ। निश्चय नयसे राग, द्वेष, मोह आत्मा नहीं है। निश्चयनय ही मुझे मान्य है। यह सब स्वप्न है—परभावको स्वप्न समझना चाहिये।

★★★

१६८ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास ता.३-२-३५

"संतचरण आश्रय विना, साधन कर्यां अनेक;
पार न तेथी पामियो, ऊग्यो न अंश विवेक.
सहु साधन बंधन थया, रह्यो न कोई उपाय,
सत्साधन समज्यो नहीं, त्यां बंधन शुं जाय?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु प्रभु लय लागी नहीं, पड्यो न सद्गुरुपाय;
दीठा नहि निजदोष तो, तरिये कोण उपाय?''

जूआ खेलनेवाला नरकमें जाता है, यह बात बहुत ध्यानमें लेने योग्य है। ऐसा मनुष्यभव पुनः नहीं मिलेगा। सहज ही काम चल रहा हो और स्वयं जूआ आदि दुराचरणमें प्रवृत्ति करता हो उसे धिक्कार, धिक्कार, धिक्कार है!

★★★

१६९ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
फाल्गुन सुदी १०, १९९१ ता.१४-३-३५

आप जैसे भी संभव हो कोई मौका देखकर सत्संग करने यहाँ आइयेगा। एक आत्मा है, उसकी सत्संगमें उपदेशसे जान-पहचान होने पर सर्व दुःखोंका नाश होकर शांति प्राप्त होती है। अतः अवकाश निकालकर आयेंगे तो बोध मिलेगा। इसके समान एक भी नहीं है। बोधसे कल्याण होता है और यथातथ्य समझमें आता है। फिर कोई चिंता नहीं रहती। ''फिकरका फाँका भरा, उसका नाम फकीर'' इतनी बात ध्यानमें रख कर, आपके चित्तमें किसी प्रकारका खेद दिखाई दें तो यहाँ आ जायें। एक दो दिन यहाँ रहेंगे तो सर्वथा खेद-चिंताका नाश होकर, सभी बात यथातथ्य समझमें आयेगी। ज्ञानीको भी कर्म बँधे हुए होते हैं, फिर भी उन्हें खेद नहीं रहता, किन्तु उल्टा भी सुल्टा बन जाता है। यह अभी समझमें नहीं आया है अतः समझनेकी आवश्यकता है। यह बात मनमें रखेंगे तो बहुत अच्छा होगा। अधिक क्या लिखें? अवकाश निकालकर समागम करनेका लक्ष्य रखियेगा।

★★★

१७० श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास ता.२२-३-३५

भगवानका वचन है कि 'सद्धा परम दुल्लहा'। आपको परमकृपालुदेव पर श्रद्धा है वह अब बदलनेवाली नहीं है। अन्य सब तो प्रारब्धानुसार होता रहता है। जीवको योग्यताकी कमी हो तो उसे पूरी करने पर ही छुटकारा है। परमकृपालुदेवके प्रति प्रेम, उल्लास, भक्ति कर्तव्य है। शारीरिक स्थिति तो जैसी बदलती रहे वैसी देखते रहना उचित है। समता, धैर्य रखकर सब सहन करना योग्य है, समता-शांतिसे रहना योग्य है जी।

★★★

१७१ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
श्रावण सुदी १५, सं.१९९१

परमकृपालु महापुरुषोंने कहा है कि जीवने जो किया है उसे भोगे बिना किसीको छुटकारा नहीं मिल सकता। इस जीवको भी नहीं बाँधा हुआ कुछ नहीं आयेगा। अतः समतासे, धैर्यसे, समभावसे सहन करना चाहिये, ऐसा ज्ञानीपुरुषोंने कहा है। बँधे हुए कर्म छूटते हैं। उसमें हर्ष-शोक करना योग्य नहीं है।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७२ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास ता.१३-११-३५

जो दुःख आता है वह जायेगा, जा रहा है। वह वापिस आनेवाला नहीं है। उससे घबरायें नहीं। जीवको मात्र सत्पुरुषके उपदेशकी कमी है, वह प्राप्त हो वैसी भावना वर्धमान करने योग्य है। सत्संगसे वह प्राप्त होती है, अतः सत्संगकी अभिलाषा रखते रहें।

बीस दोहे, क्षमापनाका पाठ, छः पदका पत्र, आत्मसिद्धि, स्मरणमंत्र आदि सुननेमें, चिंतन करनेमें विशेष काल व्यतीत करना योग्य है जी।

★★★

१७३ नासिक, चैत्र सुदी ७, १९९२

"जब जाकौ जैसो उदै, सो सोहै तिहि थान;
शक्ति मरोरे जीवकी, उदै महा बलवान."—श्री बनारसीदासजी

क्या कहा जाय! क्षेत्र स्पर्शनानुसार है, होता है। सद्गुरुकृपासे आत्माको जाना है और देह तो इसका, उसका, सबका क्षणभंगुर है। इस संबंधमें कल्पना करना व्यर्थ है। "क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो! राची रहो?"

"जे द्रष्टा छे दृष्टिनो, जे जाणे छे रूप;
अबाध्य अनुभव जे रहे, ते छे जीवस्वरूप."

आत्मसिद्धिशास्त्र और छः पदके पत्रमें सब आ गया है।.....ने पूछा था कि गुरुगम क्या है? यह बहुत कुशल है पर गुरुगमकी प्राप्ति नहीं हुई। बहुत बातें कहनी हैं पर शक्ति नहीं है। जीवकी योग्यता चाहिये। गुरुगमके बारेमें बहुत सुननेकी आवश्यकता है। सारे दिन यह व्यवस्था और वह व्यवस्था करते रहनेमें क्या आत्महित है? आत्माकी चिंता करनी है। देहका जो होना हो वह होता रहे, भले कट जाय, भले छिद जाय, पर सद्गुरु द्वारा प्राप्त पकड़को छोड़ना नहीं है। मैंने आत्माको नहीं जाना, पर सद्गुरुने जाना है, यह श्रद्धा दृढ़ करने योग्य है, छोड़ने योग्य नहीं है। अरूपी आत्माको किस प्रकार देखा जा सकता है! 'सद्धा परम दुल्लहा।'

★★★

१७४

तत् ॐ सत्

श्री सद्गुरु राजचंद्र प्रभुको त्रिकाल नमस्कार!

(१) एक अक्षरसे समझमें आये वहाँ पाँच, पाँच अक्षरसे समझमें आये वहाँ पच्चीस, पच्चीस अक्षरसे समझमें आये वहाँ पचास, पचास अक्षरसे समझमें आये वहाँ सौ न कहें। संक्षेपसे समझमें आये वहाँ विस्तार न करें।

(२) आत्माको देखें। पुद्गल भ्रम है।

(३) पर्याय पर दृष्टि रखनेसे दोष दिखाई देते हैं, कषाय पुष्ट होते हैं। आत्माको देखनेसे आत्मा पुष्ट होता है। आत्माको देखा तो आत्मा और परको देखा तो पर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) समदृष्टि।
(५) भूल जायें।
(६) जडभरतवत्।
(७) मृत्यु महोत्सव है।
(८) समाधिमरण।
(९) दुःख जाता है—धैर्य, समता, क्षमा।
(१०) दया—आभारी।
(११) भयंकर शत्रुको जीतनेका अवसर, समय-स्वभाव।
(१२) मेरा नहीं है। जो आया है वह जाता है। वापस नहीं आयेगा।
(१३) जो है उसका स्मरण—सहजात्मस्वरूप।
(१४) एक है, दूसरा नहीं।
(१५) अन्य नहीं है।
(१६) जो है वह जाता नहीं।
(१७) जैसा है वैसाका वैसा है।
(१८) द्रष्टा है, जानता है, ऐसा ही है।

★★★

१७५

तत् ॐ सत्

अनन्य शरणके देनेवाले ऐसे श्री सद्गुरुदेव शुद्ध चैतन्यस्वामी परमकृपालु श्रीमद् राजचंद्र प्रभुको अत्यंत भक्तिसे त्रिकाल नमस्कार हो! नमस्कार हो!

[1]तारा दर्शनथी गुरुराज रे, सर्यां सर्यां मारा सहु काज रे;
भम्यो अंध बनी भवमांहीं रे, काळ अनंत पाम्यो न कांई रे. १
तारा दर्शनथी जिनराज रे, टळ्यां मोहपडल मुज आज रे;
वास्तविक वस्तुनुं स्वरूप रे, हतुं तेवुं दीठुं में अनुप रे. २

पवित्रात्मा सुज्ञ आर्य पूज्य भाई छोटालाल मलुकचंद शाहके प्रति विज्ञप्ति,

मु. श्री वटवा, अहमदाबादके पास।

श्री सनातन जैन धर्म तीर्थशिरोमणि श्रीमद् राजचंद्र आश्रमसे लिखानेवाले मुनिकुल लघुके जयसद्गुरुवंदनपूर्वक आशीर्वादके साथ सद्धर्मवृद्धि प्राप्त हो!

---

१ अर्थ—हे गुरुराज! तेरे दर्शनसे मेरे सब कार्य परिपूर्ण सिद्ध हो गये। आज तक मैं अंध होकर संसारमें भटक रहा था और अनंत काल बीत जानेपर भी मुझे कुछ भी प्राप्ति नहीं हुई। हे जिनराज! आज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि. हे प्रभु! आपका पत्र, भाई रामजी वेलजीके हस्ताक्षरोंमें लिखाया हुआ पत्र, सविस्तर पढ़कर संतोष हुआ है।

हे प्रभु! आप महाभाग्यशाली है। कर्मोदयसे होनेवाले चित्र-विचित्र देहादि पर्यायको अपना मानकर अहंभाव-ममत्वभाव हुआ है। इस संसारमें वास्तविक भूल तो यही है। इससे परभावमें परिणत हो मोहासक्तिके वश संकल्प-विकल्प आदि द्वारा बंधन हुआ है, होता है। इसमें इस जीवने महापुण्ययोगसे मनुष्यभव प्राप्त किया है। उसमें भी मनुष्यभव तो बहुत बहुत हुए पर वे पशुवत् बीते हैं, उनमें मिथ्या जड़को चेतन मानकर रागद्वेषकर भवबंधन बढ़ाया है। उस भूलको यथातथ्य समझकर श्रीमद् श्री परमकृपालुके योगसे उनके बोधकी प्रतीति, रुचि, आस्था होनेपर, मेरी अल्प मति अनुसार कल्याण होगा ऐसा समझमें आता है जी। हे प्रभु! उस विषयमें आपको कुछ नहीं लिखता। हे प्रभु! आपका पत्र पढ़कर आपके जो पर्याय, भाव हैं वे मुझे बहुत अच्छे लगे हैं जी। आपकी योग्यता, भावनाको देखकर मैं आत्मभावनासे आत्मभावमें नमस्कार करता हूँ। आशीर्वादपूर्वक आपका कल्याण हो ऐसी इच्छा कर, आप भवपर्यंत अखंड जागृत रहें यही आशीर्वाद है। हे प्रभु! मेरी योग्यताकी कमीके कारण मैं आपको कुछ लिख नहीं सकता। क्योंकि परमकृपालु देव ज्ञानीकी आज्ञा है कि आपकी योग्यता वर्धमान हो वैसा करना चाहिये। जिस ज्ञानीने यथातथ्य क्षायिक प्राप्त किया है उसका वह अधिकार है। अतः हे प्रभु! उन सद्गुरुकी आज्ञासे प्रवृत्ति करते हुए--अखंड जीवन भवपर्यंत आज्ञामें रहनेसे--जीवको अवश्य समकित प्राप्त होता है। परभवमें वह साथ रहता है। अंतमें मोक्ष होने तक वह रहता है, ऐसा समझमें आया है। तो हे प्रभु! आपको तो वह जोग मिल गया है, अतः अब आपको उसी भावकी भावनासे समय व्यतीत करना चाहिये। मुझे तो ऐसा समझमें आता है। जैसे भी हो असंग अप्रतिबद्धताकी भावनासे, एक ही जागृतिकी भावनासे कल्याण है। बाकी तो पूर्वकृत उदय आता है वह मेरा नहीं है। यह विभाव परिणाम जड़ है। पुद्गलको मैं अपना नहीं मानूँगा। मेरा जो है वह तो ज्ञानीपुरुषने कहा है सो है।

***

१७६

श्रीमद् सद्गुरु सहजात्मस्वरूप परमगुरु,
नमस्कार हो!

एक 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' यही स्मरण कर्तव्य है जी। उदयाधीन साता-असाता वेदनी कर्मबंधनसे छूटनेके समय जाती है। वहाँ उपयोग (आत्मा) देखनेकी भावना बारंबार विवेकसे विचारकर, चैतन्य जड़से भिन्न है ऐसा समझकर, ज्ञानचक्षुसे दिव्यचक्षुको विचारमें--ध्यानमें लाकर, आत्मानंद भावनासे भक्ति करनी चाहिये।

"आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।"
जीव लहे केवलज्ञान रे॥

तेरे दर्शनसे मेरे मोहपटल दूर हो गये और वास्तविक वस्तुका स्वरूप जैसा है वैसा अनुपम स्वरूप ही मुझे दिखायी दिया। ('दर्शन'का रहस्यार्थ सम्यग्दर्शन किया जा सकता है।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]"संग परिहारथी स्वामी निज पद लह्युं,
शुद्ध आत्मिक आनंद पद संग्रह्युं;
जहवि परभावथी हुं भवोदधि वस्यो,
परतणो संग संसारताए ग्रस्यो."

समझें, समझकर समा जायें।

★

सुबहमें उठकर श्री सत्पुरुषके दर्शन करें। फिर निवृत्तियोग प्राप्तकर एक आसन पर स्थित हो जायें। उस समयमें प्रथम मंत्र (परमगुरु) का स्मरण कर माला फेरें, अथवा ध्यान या भक्तिके दोहे 'हे प्रभु, हे प्रभु' में अनुकूल योगसे जितना अवकाश मिले उतने समय तक वृत्तिको रोककर उपयोगकी जागृति पूर्वक प्रवर्तन करें। सद्वृत्तिका अनुसंधान करें। कायोत्सर्गमें रटन, स्मरण, ध्यान, ज्ञान-दर्शन-चारित्र (जानना-देखना-स्थिरता), सद्विचार कर्तव्य है जी।

'सर्वव्यापक सत्-चित्-आनंद ऐसा मैं आत्मा एक हूँ,' ऐसा चिंतन करें, ध्यान करें।

उदयके धक्केसे जब-जब वह ध्यान छूट जाये तब तब उसका अनुसंधान बहुत शीघ्रतासे करें।

★★★

१७७ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास

यह जीव अनादिकालसे अपनी मतिकल्पनासे धर्म मानकर धर्माराधन करनेका प्रयत्न करता है जी, जिससे मूल धर्मको प्राप्त नहीं कर सका। अनंत जीव मिथ्या मोहके कारण अनंत संसारमें परिभ्रमण करते हैं, वह उनकी स्वच्छंद कल्पनाका फल है। जिनागममें वर्णित उस भूलको ज्ञानीपुरुषोंने देखा, चिंतन किया और उसे दूरकर अपने निजभाव मूल धर्म सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें स्वयं परिणत हुए हैं। हमें भी वही करना है।

निम्नलिखित वचन विशेषतः आत्मार्थी जीवोंको लक्ष्यमें लेने जैसे हैं, बारंबार विचारणीय हैं, प्रतिदिन स्मृतिमें, ध्यानमें, भावनामें लेने योग्य हैं—

"उष्ण उदक जेवो रे आ संसार छे;
तेमां एक तत्त्व मोटुं रे समजण सार छे."

महापुरुषोंने उस पर ध्यान दिया है। इससे जीवका कल्याण होता है। गहन बात है। ध्यानमें रखने जैसी है। पुराना छोड़ने जैसा है। कुछ कहने जैसा नहीं है। काल क्षण-क्षण बीत रहा है, वह वापस लौटकर नहीं आता। यह जीव किस कालकी प्रतीक्षा कर रहा है? ऐसा सोचकर अपने जीवनमें उस भावमें—आतम सत्स्वरूप शुद्ध आत्माकी पहचान, प्रतीति, श्रद्धा, आज्ञा भावपूर्वक—लक्ष्य रखें तो संगका फल अवश्य मिले बिना नहीं रहेगा।

'मनके कारण यह सब है' अतः चित्तवृत्तिको किसी सत्पुरुष द्वारा कहे गये वचनमें प्रेरितकर काल व्यतीत करने योग्य है जी। वे ये हैं—

---

१. अर्थ—श्री देवचंद्रजी धर्मनाथ स्वामीके स्तवनमें कहते हैं कि आप प्रभुने संग(परिग्रह)का त्याग करके निज आत्मपदको प्राप्त किया है और अनंत आनंदरूप शुद्ध आत्मस्वरूपमें लीन हुए हैं। इसके विपरीत मैं परभावमें प्रीति होनेसे परसंगमें फँसा रहकर संसारसमुद्रमें डूबा हुआ हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१[+]चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणो ।
माणुसत्तं सुइ सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ॥ (उत्तरा०३/१)

भावार्थ—मोक्षप्राप्तिके चार उत्कृष्ट अंग हैं : (१) मनुष्यभव (२) श्रुत (सत्पुरुषके मुखसे निसृत वाणी) का श्रवण, (३) सद्धर्म पर श्रद्धा, (४) संयममें बलवीर्य स्फुरित करना। ये चार महान कारण इस संसारमें जीवोंको मिलने दुर्लभ हैं।

२. अहमिक्को खलु सुद्धो, निम्ममओ णाणदंसणसमग्गो ।
तह्मि ठिओ तच्चित्तो, सव्वे एए खयं णेमि ॥ (समय०७३)

भावार्थ—मैं एक हूँ, परपुद्गलसे भिन्न हूँ, निश्चयनयसे शुद्ध हूँ, अज्ञान-मैलसे न्यारा हूँ, ममतासे रहित हूँ, ज्ञानदर्शनसे पूर्ण हूँ, मैं अपने ज्ञानस्वभाव सहित हूँ, चेतनागुण मेरी सत्ता है, मैं अपने आत्मस्वरूपका ध्यानकर सर्व कर्मका क्षय करता हूँ।

३. झाइ झाइ परमप्पा, अप्प समाणो गणिज्जइ परो वि ।
उज्झइ राग य दोसो, छिज्जइ तेण संसारो ॥

भावार्थ—परमात्मस्वरूपका ध्यान धरो, ध्यान धरो। अन्यको भी अपने आत्माके समान मानो। राग और द्वेषका त्याग करो। इससे संसारका बंधन नष्ट होता है।

४. मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धिए ॥ (द्रव्य०४८)

भावार्थ—हे भव्यजनों! यदि तुम अनेक प्रकारके ध्यान—धर्म, शुक्ल आदि या निर्विकल्प ध्यान—के लिये चित्तको स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट-अनिष्टरूप इंद्रियोंके विषयोंमें मोह न करो, राग न करो, द्वेष न करो।

५. मा चिट्ठह मा जंपह मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं ॥ (द्रव्य०५६)

भावार्थ—हे ज्ञानीजनों! तुम कुछ भी चेष्टा न करो अथवा कायाकी प्रवृत्ति न करो, कुछ भी बोलो नहीं, कुछ भी विचार न करो कि जिससे तुम्हारा आत्मा आत्मामें स्थिर हो जाय; क्योंकि आत्मामें तल्लीन होना ही परम ध्यान है।

६. खामेमि सव्व जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ति मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ॥

भावार्थ—मैं सब जीवोंसे क्षमायाचना करता हूँ। सब जीव मेरे अपराधको क्षमा करें। मेरा सब जीवोंसे मैत्री भाव है। किसीके प्रति भी मेरा वैरभाव नहीं है।

इस पत्रमें लिखी उपरोक्त छहों गाथाओंको कण्ठस्थ करें और उनका जो अर्थ हैं उस पर चिंतन करें, इतना लक्ष्य रखें।

★★★

+ चारों ही अंग दुष्प्राप्य, जीवोंको जगमें अति,
मनुष्यत्व, श्रुति, श्रद्धा, संयममें वीर्य-स्फुरणा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्रावलि—२

१ ता. २४-१-२६

जिन्हें आप्तपुरुष अर्थात् आत्मस्वरूप-प्राप्त पुरुषके बोधरूपी लाठीका प्रहार हुआ है, वे जीव तो क्षण-क्षण अपने दोष देखकर, अपनेको अधमाधम मानकर, अपनेमें विद्यमान दोषोंको पक्षपातरहित दृष्टिसे देखते हैं, और अपने राई जैसे दोषको मेरु जितना मानकर उन्हें निर्मूल करनेका ही निरंतर पुरुषार्थ करते हैं।

दोष तो अनंत प्रकारके हैं। उन सब दोषोंका बीजभूत मूल दोष स्वच्छंद, उद्धतपना है। उसके अंगभूत अर्थात् स्वच्छंदके अंगभूत अनेक दोष हैं, जैसे कि 'मैं जानता हूँ, मैं समझता हूँ' और उसके आधार पर अपनी कल्पनानुसार परमार्थका निर्णय करना, अपनी कल्पनाके निर्णयको सच्चा मानना, सत्पुरुषकी सहमतिके बिना परमार्थमार्गकी स्वयं कल्पना करना और उस कल्पनानुसार अन्यको भी समझाना इत्यादि तथा इंद्रियादि विषयोंकी अति लोलुपता, क्रोध मान मायाकी मधुरता इत्यादि दोष आत्मासे हटाकर, अपनी समझको बदलकर सत्पुरुषकी समझके अनुसार अपनी समझ बनायें। इसके बिना त्रिकालमें भी कल्याणका, मोक्षका मार्ग नहीं है।

उपरोक्त दोष आपको, हमको, सभीको विचार-विचारकर आत्मासे निकालने हैं। वे दोष जाने पर ही यथार्थ मुमुक्षुता प्रकट होगी।

२ ता.४-२-२७

सभी काम अच्छे होंगे। चिंता करने जैसा कुछ नहीं है। 'फिकरका फाँका भरा, उसका नाम फकीर।'

"नहि बनवानुं नहि बने, बनवुं व्यर्थ न थाय;
कां ए औषध न पीजिये? जेथी चिंता जाय."

"गई वस्तु शोचे नहीं, आगम वांछा नाहि;
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जगमांहि."

—यों प्रवृत्ति करनी चाहिये।

"बीती ताहि विसार दे, आगेकी सुध लेय,
जो बनी आवे सहजमें, ताहीमें चित्त देय."

मनुष्यभव दुर्लभ है। चाहे रोगी, गरीब, अशक्त, वृद्ध चाहे जैसा हो पर मनुष्यभव और उसमें किसी संतकी कृपासे प्राप्त सच्चे अनुभवी पुरुषके मंत्रका लाभ तो अपूर्व है। अतः 'सहजात्मस्वरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमगुरु' का जाप और वही भावना रखनी उत्तम है। मुनिदेव मोहनलालजी आते, पर नहीं आ सके इसमें लाभ है। ये आये और उनसे मिले, तथा हमें याद करना और बुलाना यह सब भूलकर, एक ज्ञानदर्शनचारित्रकी एकतारूप मेरा स्वरूप है, हे भगवान! मुझे उसका पता नहीं है, परंतु ज्ञानीपुरुषोंने देखा है वैसा मेरा स्वरूप है, उसका मुझे भान हो। यही आनंदस्वरूप है। अन्य सब पाँच इंद्रियोंसे जो सुखदुःखरूप लगता है, वह सब मिथ्या है, क्षणिक है, टिकनेवाला नहीं है, मात्र नाटकके खेल जैसा है। हे प्रभु! अब मैं उसका विश्वास न करूँ और मेरा जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप शाश्वत, अचल और निर्मल है, वह मुझे प्राप्त हो। उसकी प्राप्तिके लिये सद्गुरुका बताया मंत्र संतके योगसे इस भवमें मुझे प्राप्त हुआ है, उसका माहात्म्य क्षणभर भी भूला न जाय और जब तक जीभने बोलना बंद नहीं किया, आँखने देखना बंद नहीं किया, कानने सुनना बंद नहीं किया, स्पर्शसे अच्छा बुरा लगना बंद नहीं हुआ, तब तक हे प्रभु! इस मंत्रका रटन जीभके अग्रभाग पर रहे, कानमें इसी मंत्रकी झंकार रहे, अंगुलि इसी मंत्रको गिननेमें रुकी रहे, ऐसी भावना और पुरुषार्थ कर्तव्य है।

सर्व प्रकारकी चिंताओंका त्यागकर मात्र परमात्मस्वरूपके चिंतनमें एकाग्रता करें। चित्त इधर-उधर जाये तो उसे समझाकर आत्महितमें जोड़ें।

"वचनामृत वीतरागनां, परम शांत रस मूळ;
औषध जे भवरोगनां, कायरने प्रतिकूळ."

उन राजवैद—"सद्गुरु वैद्य सुजाण"—की औषधि 'विचार-ध्यान' तथा 'आज्ञा'में प्रवृत्ति प्रयत्नपूर्वक विशेष कीजियेगा।

★★★

३ चैत्र सुदी ९, सं. १९८३ ता. १०-४-२७

बहुत समागमकी आवश्यकता है। कई बातें सुननेके बाद श्रवण, मनन, निदिध्यासनके अनुक्रमसे समझमें आने योग्य है। योग्यताकी जितनी कमी होगी वह पूरी करनी पड़ेगी, परंतु बड़ी कमी बोधकी है। बोधकी आवश्यकता है। अतः अवकाश निकालकर समागममें विशेष बोधका श्रवण हो वैसा प्रथम कर्तव्य है जी।

महत् पुण्यके योगसे मनुष्यभव मिला है। उसमें भी महत् महत् पुण्यके योगसे सर्वोत्कृष्ट वस्तुकी जिज्ञासा जागृत होती है। किसी अपूर्व पुण्यके योगसे इस कालमें सत्पुरुषसे भेंट हो पाती है और प्रत्यक्ष पुरुषकी पहचान होना तो किसी अपूर्व संस्कार और अत्यंत पुण्यके पुंजका संचय हुआ हो तभी संभव है। ऐसे योगमें सत्पुरुषकी वाणीका श्रवण और उसका यथायोग्य विचार कर आत्महित साधनेके विरले संयोग तो इस कालमें कभी कभी ही बनते हैं। ऐसा दुर्लभ विकटकार्य भी सत्पुरुषके आश्रयसे इस कालमें भी सिद्ध हो सकता है। किन्तु जो वस्तु हमें खरीदनी हो उस वस्तुकी जितनी अप्राप्यता होती है, उसीके अनुसार उसका मूल्य भी विशेष होता है। जौहरीकी दुकानसे हीरे खरीदने हों और शाकभाजीवालेसे शाक खरीदना हो तो उस वस्तुके प्रमाणमें उसका मूल्य देना पड़ता है। कितने ही वर्षोंकी कमाई खाली होने पर हीरेकी प्राप्ति होती है। वैसे ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिछले जन्मोंके कितने अधिक पुण्य एकत्रित हुए हों तब सत् वस्तुकी प्राप्ति होती है। वैसा न हो तो उतनी आमदनी होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है, पुरुषार्थ विशेष जागृत करना पड़ता है। "जो इच्छो परमार्थ तो, करो सत्य पुरुषार्थ" ऐसा 'आत्मसिद्धि'में परमकृपालुदेवने कहा है, उसके अनुसार पुरुषार्थकी अभी आवश्यकता है।

"विशाल बुद्धि, मध्यस्थता, सरलता और जितेन्द्रियता, इतने गुण जिस आत्मामें हों वह तत्त्व पानेके लिये उत्तम पात्र है।"

इनमेंसे प्रथमके तीनमें मुख्यतः परभवकी कमाई लगती है और चौथा कारण जितेन्द्रियता इस भवके पुरुषार्थके अधीन है। उसे प्राप्त करनेके लिये जो कमर कसे, वह पात्रताका पात्र बनता है। "पात्र थवा सेवो सदा ब्रह्मचर्य मतिमान" इस गंभीर वाक्यको लक्ष्यमें रखकर अभी तो प्रथम सोपानके रूपमें रसकी लोलुपताका त्यागकर, आहारमें रस पैदा हो ऐसे पदार्थोंमेंसे चित्तको पीछे मोड़कर नीरस आहार लेनेकी आदत डालनी चाहिये। जिन पदार्थोंमें जीभको आनंद आता हो, मोह होता हो, वैसे पदार्थोंका अपरिचय, अनभ्यास, त्याग करनेकी वृत्ति रखनेसे रसपरित्याग या स्वादपर विजय प्राप्त करनेसे आत्माको बहुत अवकाश प्राप्त होने योग्य है। उससे बोध परिणमित होनेका कारण बनता है।

सभी शास्त्रोंका सार यही है कि किसी ज्ञानीपुरुषको ढूँढ़कर उसके वचनमें विश्वास कर, उसकी आज्ञाका पालन करनेका पुरुषार्थ करना चाहिये। ज्ञानीपुरुषसे ज्ञानकी याचना करनेकी अपेक्षा भक्तिकी कामना करना विशेष हितकारी है, ऐसा ज्ञानीपुरुषोंका अनुभवकथन है, उस पर विचार कीजियेगा।

★★★

४ आश्विन वदी ८, सं. १९८७

जो-जो जन्मे हैं उन सबकी किसी न किसी निमित्तसे मृत्यु तो अवश्य होनी ही है। महा अतिशयधारी श्री तीर्थंकर जैसे भी इस नाशवान शरीरको अविनाशी नहीं बना सके, तो आयुष्य समाप्त हो जाने पर मृत्युको रोकनेमें अन्य कोई समर्थ है? काल सिर पर मँडरा रहा है। प्राण लिये या लेगा ऐसा हो रहा है। फिर यह जीव किस समयकी प्रतीक्षा कर रहा है, यह विचार करने योग्य है। देर-सबेर हमें भी इस मृत्यु-परीक्षामें होकर जाना पड़ेगा, यह सोचकर समाधिमरणकी तैयारीरूप सद्विचार, कषायकी मंदता या क्षय, मोह और देहाध्यासका त्याग आदिके लिये निवृत्ति द्रव्य, निवृत्ति क्षेत्र, निवृत्ति काल और निवृत्ति भावका सेवन, सत्संग, संतसमागम, सत्पुरुष और उनकी वाणीका सन्मान, वैराग्य-उपशम आदिका आराधन आजसे हमें कर लेना चाहिये। यदि यह शेष भव सम्यक्त्वरूप धर्मके आराधनमें व्यतीत किया जाय तो अनेक भवोंका प्रतिफल मिलने जैसा है जी।

महापुरुषोंने आयुष्यकी अंतिम घड़ीको ही मृत्यु नहीं कहा है, पर क्षण-क्षण आयुष्यकी डोर कम होती जा रही है वह-वह क्षण यदि विभावमें बीता तो वह मृत्यु ही है। जिसकी विभाव परिणति रुकी नहीं है, उन्हें ज्ञानीपुरुषोंने चलता-फिरता मुर्दा ही कहा है। जितना समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वभावदशामें बीतता है उसे ही ज्ञानियोंने जीवन कहा है। शेष समय तो जीव मृत्युमें ही बिता रहा है। इस गिनतीसे तो हमें, अपने जीवनका घात हो रहा है इसीका, खेद करना चाहिये।

यों जीव दृष्टि बदलकर देखें तो लौकिक वस्तुओं या संबंधियोंके वियोगकी अपेक्षा अनंत गुना खेद तो हमें अपने आत्माकी अधम दशा देखकर करना चाहिये। जिस आत्माके मूल स्वरूपका ज्ञानी पुरुषोंने ऐसा वर्णन किया है कि वह केवलज्ञान स्वरूप, केवल दर्शनस्वरूप, क्षायक सम्यक्त्वस्वरूप, अनंत सुखस्वरूप, अनंत वीर्यस्वरूप है। इतनी सारी ऋद्धिका स्वामी हमारा आत्मा है, फिर भी दो आँख हों तो देख सके, चित्त स्थिर हो तो जान सके, पुद्गल पदार्थ प्राप्त हो तो सुखका अनुभव कर सके ऐसा हीन वीर्यवाला, पराधीन, पुद्गलका ही आदर करनेवाला, कंगाल जैसा हो रहा है। वह मूल स्वरूपसे कितना पतित, कितनी अधम दशामें आ पड़ा है! इस पर विचार करें। यदि हम अपने आत्माकी दया नहीं करेंगे, उसके हितकी चिंता नहीं करेंगे तो हम विचारवान कैसे? अनादिकालसे जो भूल चली आ रही है वह भूल क्या है? और यह भूल कैसे दूर हो? इसका विचार मुमुक्षु जीव करते हैं।

उस भूलको पहचानकर उसे दूर करनेके लिये यह मनुष्यभव मुख्य साधन है। सत्संग, समागम आदि सर्वोत्तम निमित्त हैं। यदि वह भूल इस मनुष्यभवमें भी दूर नहीं हुई तो यह भव व्यर्थ गया माना जायेगा। फिर अन्य ढोर, पशु या नरक आदिके भवमें ऐसी अनुकूलता कहाँसे मिलेगी? स्वजन-मरण आदिके प्रसंगोंमें संसारका स्वरूप, जैसा है वैसा समझनेकी अनुकूलता है क्योंकि वहाँ मायाका आवरण कम होना संभव है। अतः सरल जीवात्मा अपने विचारमें उतरकर इस भवको सफल करने योग्य सद्विचार सद्गुरुकृपासे प्राप्त करे तो आत्मकल्याण दूर नहीं है।

काल कठिन है, दुषम या कलियुग कहा गया है। फिर भी कर्मका तीव्र उदय एक समान होना संभव नहीं। जीव चाहे तो इस कालमें भी धर्मका अवकाश प्राप्त कर सकता है ऐसा भगवानने कहा है। किन्तु जीव जागृत होना चाहिये, आत्मकल्याणका लक्ष्य रखना चाहिये, उसके लिये पुरुषार्थका आरंभ करना चाहिये। समझनेसे ही छुटकारा है। 'जब जागेंगे आतमा तब लागेंगे रंग।' यदि सम्यक्त्वरूपी रत्न प्राप्त हो जाय तो यह मनुष्य भव चिंतामणि रत्नतुल्य है, अन्यथा पशुतुल्य है ऐसा ज्ञानीपुरुषोंने कहा है। अनादि कालके परिभ्रमणको दूर करनेका यह अवसर मिला है यह व्यर्थ न चला जाय इतना लक्ष्य अवश्य रखनेयोग्य है जी।

★★★

५ कार्तिक वदी १, गुरु, सं.१९८८

इस जीवको संसारके काममें जो मधुरता और मोह है, वह बदलकर यदि इतना उत्साह और चिंता इस आत्माके कल्याणके हेतुभूत धर्ममें रहे तो मोक्ष बहुत दूर नहीं है। मात्र दृष्टिकी भूल है। उस दृष्टिको बदलनेकी आवश्यकता है जी। तथा जिसका परम माहात्म्य है ऐसे सद्गुरुके बोधके बिना दृष्टि परिवर्तन दुर्लभ है। जब तक संसारका महत्त्व माना जायेगा तब तक हृदयमें सद्गुरुका निवास नहीं हो सकता। अतः इस क्लेशरूप संसारसे छूटनेकी भावना होने पर जीव सद्गुरुकी कृपाका पात्र बनता है तथा वैसा बननेके लिये संतके चरणकमलकी सेवा सर्वोत्तम उपाय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवको सत्संगकी और बोधकी कमी है।

महान पुण्यके उदयसे मनुष्यभव मिला है, यदि जीव उसे हार जायेगा तो फिर कौनसे भवमें धर्मसाधन समझ सकेगा? कौवे, कुत्तेके भवमें जीव क्या कर सकेगा? यों सोचकर सत्पुरुष श्रीमद् राजचंद्र परमात्मा पर अचल श्रद्धा रख उनके वचनामृतका पान करते रहनेकी विनती है जी। यदि इस भवमें इस परमपुरुष श्रीमद् राजचंद्र देव पर सर्वोपरि प्रेम प्रकट हो, उन्हें ही इस भवमें आत्मज्ञानी, आत्मदाता मानकर उपासना की जाये, तो इस जीवने बहुत बड़ी कमाई कर ली है ऐसा माना जायेगा। उनके वचनमें उल्लास भाव लाकर, उन्होंने जिस दशाको प्राप्त किया है उसके प्रति आदरभाव रखकर यह जीव उसीकी इच्छा रखे, तो इस भवबंधनसे छुड़ानेवाला समकित इस कालमें भी प्राप्त हो सकता है। यह अवसर छूट न जाय इसलिये परमपुरुषके आश्रितके समागममें उनके मुखसे सुनी हुई बातें जानकर, उसमें उल्लास रखकर, भाव-परिणामको निर्मलकर सम्यक्त्वकी प्राप्ति करना ही इस मनुष्यभव-प्राप्तिकी सफलता है।

जो होनहार है वह बदलनेवाला नहीं और जो बदलनेवाला है वह होनेवाला नहीं, ऐसा प्रायः है, तो फिर संसारी प्रसंगोंमें फँसकर धर्ममें प्रमाद क्यों किया जाय? सर्व कर्मोदय मिथ्या ही है ऐसा जिसने जाना है, अनुभव किया है, वैसे प्रवर्तनकी वृत्ति रहती है और प्रवृत्ति करते हैं, ऐसे समभावी महात्माको नमस्कार! भूतकालमें होने योग्य हुआ, हो गया, अब उसका शोक क्यों? क्योंकि अब तो उसमेंका कुछ भी नहीं है। वर्तमान समयमें जो हो रहा है, वह पूर्वसंस्कार कर्मके फलस्वरूप है। जीवने जैसे भाव अज्ञानवश किये हैं, वे वे भाव कर्मरूपमें उदयमें आकर जीवको घबराते हैं, उसमें घबराना क्यों? जो माँगा सो मिला, इच्छित प्राप्त हुआ; मोहाधीन होकर माँगा, इच्छा की, वह मिला भी सही; किन्तु अब उससे घबराहट होने लगी, तो इसमें दोष किसे दिया जाय? हर्ष-शोक क्यों? उचित हो रहा है और वह भी हो जानेके बाद कुछ नहीं रहेगा, ऐसा होना ही है। उदयमें आकर कर्मोंकी निर्जरा हो जाने पर वे नहींवत् हो जाते हैं तो फिर चिंता किस बातकी? होनहार तो होगा ही। भविष्यमें जो होनेवाला है वह भी वर्तमानमें जैसे भाव होंगे वैसा ही होगा। भविष्यको सुधारना जीवके हाथमें है। सम्यक्भाव ग्रहणकर जीव सम्यक् स्थिति प्राप्त करेगा, अतः सम्यक् भाव उत्तम हैं। असम्यक्प्रकार—परपदार्थ, परभाव—की भावना करना योग्य नहीं है। ऐसा समझते हुए भी यह जीव जगत तथा असत्संग-वासियोंके समूहमें (जो समूह पूर्वकर्माधीन उसने एकत्रित किया है और अभी भी मोहवश आँख मूँदकर कड़वा लगने पर भी मधुलिप्त तलवारको चाटनेकी अपेक्षासे इच्छा करता है) रहकर जगत तथा असत्संगियोंको अच्छा मनवानेमें लोकलाज-लोकदृष्टिमें रहकर अपना बुरा कर रहा है, करता है; उस पर विचार करे तो जीव निस्संदेह वैराग्यको प्राप्त होगा। किन्तु पूर्व संस्कारकी शक्ति प्रबल होनेके कारण अथवा जीवकी शिथिलताके कारण लोकलाज एवं लोकदृष्टि तथा विषय-कषाय आदिमें मधुलिप्त तलवारके स्वादमें पड़ा रहना योग्य नहीं है, यों जानते हुए भी आँखे मूँदकर पड़ा रहता है, वह किसलिये? इसका जीव विचार करे तो उपशम-रस चखे बिना कैसे रह सकता है? सद्गुरुकी पहचान सत्संग-संतसमागममें बोध द्वारा करके यदि जीव उसमें दृढ़ विश्वास रखे तो यह भव सार्थक हो सकता है। यह लक्ष्य चूकने योग्य नहीं है।

★
★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६ ज्येष्ठ सुदी १४, शुक्र, १९८८

सहनशीलता, धैर्य, क्षमा, शांतिपूर्वक सहन करना, ये गुण ग्रहण करनेसे अच्छी गति प्राप्त होती है। वेदनीयसे घबराना, अकुलाना नहीं चाहिये। जो आती है वह जानेके लिये आती है, और 'इससे अधिक आओ' ऐसा कहनेसे अधिक आनेवाली नहीं है या "वेदनीय चली जाओ" कहनेसे जानेवाली भी नहीं है। 'नहीं बनवानुं नहीं बने, बनवुं व्यर्थ न थाय; कां ए औषध न पीजिये, जेथी चिंता जाय?' इससे अनंतगुनी वेदना जीवने नरक-निगोदमें भोगी है, फिर भी उसका नाश नहीं हुआ। धूपके बाद छाया और छायाके बाद धूप आती है, इसी प्रकार वेदनाको रखना चाहेंगे तो भी नहीं रहेगी। जो होता है उसे देखते रहें। देखनेके सिवाय कुछ उपाय भी नहीं है।

आत्मा कभी मरता नहीं, जन्मता नहीं; बूढ़ा नहीं, युवान नहीं; स्त्री नहीं, पुरुष नहीं; बनिया नहीं, ब्राह्मण नहीं। फिर भी वह आठ प्रकारके कर्मोंसे घिरा हुआ भिन्न भिन्न रूपसे दिखाई देता है, किन्तु वह कभी भी देहरूप नहीं हुआ है। देहसे भिन्न, सदा सर्वदा चैतन्य-स्वरूप ही है, परम आनंदस्वरूप है। आत्माके सुखका वर्णन नहीं हो सकता। ऐसे अचिंत्य महिमावाले आत्माको ज्ञानीपुरुषोंने जाना है तथा संतपुरुषोंने बताया है, वह मुझे मान्य है। 'मुझे दुःख हो रहा है, मैं मर रहा हूँ' ऐसा मैं कभी माननेवाला नहीं। देहके संयोगसे देहके दंड देखने होंगे सो देख रहा हूँ। पर मेरा स्वरूप तो ज्ञानीने देखा है वैसा अनंत ज्ञानस्वरूप, अनंतदर्शनस्वरूप, अव्याबाध सुखस्वरूप और अनंतशक्तिस्वरूप है। उसमें मेरी आस्था, श्रद्धा, मान्यता, प्रतीति, रुचि है। वही मुझे प्राप्त हो। आत्मासे भिन्न जो-जो संयोग मिले हैं वे सब छोड़नेके हैं और सब दुःखदायी है। साता या असाता दोनों वेदनीयकर्म हैं, किसी प्रकार इच्छनीय नहीं है; पर जो आ पड़े उसे समताभावसे सहन करना उचित है। ज्ञानीपुरुष भी समभावसे सहन करनेके अभ्याससे सर्व कर्मसे रहित होकर मोक्षको प्राप्त हुए हैं। चित्तको स्मरणमें रोकना चाहिये।

"श्री सद्गुरुने कहा है ऐसे निर्ग्रंथ मार्गका सदैव आश्रय रहे। मैं देहादिस्वरूप नहीं हूँ और देह, स्त्री, पुत्र आदि कोई भी मेरे नहीं है, मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप अविनाशी आत्मा हूँ, यों आत्मभावना करनेसे रागद्वेषका क्षय होता है।"

यौवन, नीरोग अवस्था और सुख-वैभव भोगनेके प्रसंगोंकी अपेक्षा ऐसे वेदनाके प्रसंग जीवके कल्याणके कारण होनेसे अमृत समान हैं, किन्तु जब तक दृष्टि परिवर्तन नहीं होता तब तक बाह्य वस्तुओंमें सुख लगता है और जब उन्हें छोड़नेका समय आता है तब कठिन लगता है। परंतु आत्माके सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र आदि गुण तो अविनाशी हैं, छोड़नेसे छूट नहीं सकते। मात्र उसका भान नहीं है। वह किसी संतके योगसे सुनकर, विचारकर, सम्यक् प्रकारसे मानने पर परिणाम बदलते हैं और जीवकी योग्यतासे यथातथ्य समझमें आता है। इस आत्मभावनासे आत्मगति होती है।

★★

७ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास

मनुष्यभव मिलना बहुत दुर्लभ है जी। उसमें भी धर्मकी जिज्ञासा और सत्पुरुषका समागम तो अत्यंत अत्यंत दुर्लभ है जी। क्योंकि इस कलिकालमें जीव केवल मायामें ही फँसा रहता है। जिससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसे यह सोचनेका अवकाश भी नहीं मिलता कि मनुष्यभव प्राप्त कर उसे क्या करना चाहिये और क्या कर रहा है? परंपरासे कुलधर्म आदिके आग्रहमें प्रवृत्ति हुई हो उसमें कितना कल्याण है और सत् वस्तुका माहात्म्य कैसा होता है? जिसे सत् प्राप्त हुआ हो उसकी दशा कैसी होती है? इस पर विचार करनेके लिये सत्संग-समागमके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है। सत्संग संसार-रोगका नाश करनेकी परम औषधि है। कालका भरोसा नहीं है। प्राण लिये या लेगा यों हो रहा है, काल सिरपर मँडरा रहा है। फिर यह जीव किस कालकी प्रतीक्षा कर रहा है, यह विचारणीय है जी।

श्री ऋषभदेवजी भगवानने अट्ठानवे पुत्रोंको उपदेश दिया वहाँ कहा है कि—

"हे जीवों! आप समझें, सम्यक्प्रकारसे समझें। मनुष्यभव मिलना बहुत दुर्लभ है, और चारों गतियोंमें भय है ऐसा जानें। अज्ञानसे सद्विवेक पाना दुर्लभ है, ऐसा समझें। सारा लोक एकांत दुःखसे जल रहा है, ऐसा जानें, और 'सब जीव' अपने अपने कर्मोंके कारण विपर्यासताका अनुभव करते हैं, इसका विचार करें।"

"जिसका सर्व दुःखसे मुक्त होनेका अभिप्राय हुआ हो वह पुरुष आत्माकी गवेषणा करे, और आत्माकी गवेषणा करनी हो, वह यमनियमादिक सर्व साधनोंका आग्रह अप्रधान करके सत्संगकी गवेषणा करे, तथा उपासना करे। सत्संगकी उपासना करनी हो वह संसारकी उपासना करनेके आत्मभावका सर्वथा त्याग करे। अपने सर्व अभिप्रायका त्याग करके, अपनी सर्व शक्तिसे उस सत्संगकी आज्ञाकी उपासना करे। तीर्थंकर ऐसा कहते हैं कि जो कोई उस आज्ञाकी उपासना करता है, वह अवश्य सत्संगकी उपासना करता है। इस प्रकार जो सत्संगकी उपासना करता है, वह अवश्य आत्माकी उपासना करता है, और आत्माका उपासक सर्व दुःखसे मुक्त होता है।"—ऐसा परमकृपालुदेवने भी कहा है जी।

यह जीव अपनी कल्पनासे अज्ञान-मिथ्यात्वके कारण सत्संग सत्पुरुषके बोधको अपनी मतिकल्पनासे समझकर झूठेको—मिथ्याको सच्चा मानकर, श्रद्धा कर संतोष मानता है। किन्तु सत्संगमें सत्पुरुषके वचन प्रचुरतासे समझमें आयें तो इस जीवको अंतर्मुहूर्तमें समकित होता है और मनुष्यभव सफल होता है। ऐसा योग रत्नचिंतामणितुल्य मनुष्यभव प्राप्त होना दुर्लभ है। सब अनंत बार मिला है, एक समकित नहीं हुआ। अतः जीव कौड़ीके लिये रत्न खोने जैसा करता है, इस पर विवेकी पुरुषको विचार करना चाहिये। अधिक क्या लिखें? विवेकी पुरुषको सावधान होने जैसा है जी। पुनः ऐसा संयोग नहीं मिलेगा। यदि जीव इस भवमें एक सत्पुरुषके बोधके बीजरूप सम्यक्त्वको प्राप्त करे तो आधि, व्याधि, जन्ममरणके अनंत भव छूट जाते हैं जी।

ॐ शांतिः शातिः शांतिः

★★★

८ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
ॐ ता. ३-११-३२

तत् सत्

जब तक असाताका उदय है, तब तक अकसीर दवाओंका भी असर नहीं होता। फिर रोग कुछ दूसरा होता है और दवाई कुछ अन्य प्रकारकी ही दी जाती है। जब साताका उदय होनेवाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है तब ऐसा संयोग मिल जाता है कि जो रोग होता है वैसी ही दवा भी मिल जाती है। हम तो, सेवाबुद्धिसे जो ठीक लगता है वह बताते या करते हैं, किन्तु हमसे कुछ हो नहीं सकता। क्या करने योग्य है, इसका भान भी हमें नहीं है। परमकृपालुदेवने कहा है—

"वर्तमान आ काळमां, मोक्षमार्ग बहु लोप;
विचारवा आत्मार्थीने, भाख्यो अत्र अगोप्य."

अनेक मतमतांतरमें और अनेक नामधारी क्षयोपशमी पुरुष ऐसा मानते हैं कि उन्होंने मोक्षमार्गको समझ लिया है और उसका उपदेश देकर अन्यको मोक्षमार्ग पर आरूढ करते हैं ऐसा मानते हैं। किन्तु इन सत्पुरुषको तो ऐसा लगा कि ऐसे कालमें हमारा जन्म कैसे हुआ? आत्मज्ञानी पुरुषोंकी तो अत्यंत दुर्लभता है, फिर भी मध्यस्थतासे आत्मज्ञानकी शोध करनेका निर्णय किया हो वैसे, या सरलतासे सच्ची बातको ग्रहण करें ऐसे जीवात्मा भी बहुत कम दिखाई दिये। मात्र शुष्कज्ञानी अर्थात् ज्ञानका दिखावा कर बड़प्पन मान बैठनेवाले या मात्र क्रियाजड़ अर्थात् जिन्हें ज्ञानका माहात्म्य नहीं है किन्तु एकांत बाह्याचारको ही मोक्षमार्ग माननेवाले ऐसे अनेक पुरुष इस कालमें, मानो धर्मका ठेका उनके पास ही हो ऐसा मान बैठे हैं। वे सत्पुरुष और सत्पुरुषके मार्गके प्रति द्वेष रखनेवाले होते हैं।

ऐसे विकराल कालके पंजेसे बचानेवाले एक परमकृपालु श्रीमद् राजचंद्र प्रभु ही हैं। उन्होंने इस कालमें हम पर उपकार किया है। उनके उपकारको पूरा-पूरा समझनेकी बुद्धि भी हममें नहीं है, तो उसका बदला कैसे चुकाया जा सकता है? इस कालमें इस मनुष्यभवको सफल बनानेका यदि कोई मुख्य साधन है तो वह परमकृपालुदेव पर परम प्रेम और निष्काम भक्ति तथा उनके वचन पर श्रद्धा और संतसमागममें उनके आशयको समझनेकी तीव्र इच्छा ही है। चंदनके वनमें जैसे आसपासके अन्य वृक्ष भी सुगंधित हो जाते हैं उनमें सुगंध चंदनकी ही होती है, वैसे ही सत्पुरुष श्री परमकृपालुदेवके बोधसे जिन्हें सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई है, उनके पास उस परमपुरुषका ही सत्य बोध है और वही आत्माको हितकारी है। जो-जो वस्तु सत्पुरुषके मुखसे सुनी हो, अवधारण की हो, अनुभव की हो, उसीका वे उपदेश देते हैं और उसका ही उन्हें माहात्म्य लगा है। जिस वस्तुका मूल सत्पुरुष नहीं और जो मात्र कल्पनाके आधार पर टिकी है, वह चाहे जितनी मनोहर लगती हो, हमारे चित्तको प्रसन्न करती हो, किन्तु यदि कल्पनाको पुष्ट करती है तो उसे विषके समान समझकर छोड़ देना चाहिये। परमकृपालुदेवने कहा है कि—

"जहाँ कलपना-जलपना, तहाँ मानुं दुःख छांय;
मिटे कलपना-जलपना, तब वस्तु तीन पाई."

अतः सत्पुरुषके आधारसे जीना ही कल्याणरूप है। उनकी शरण कल्पवृक्षकी छाया है, वहाँ दुःख नहीं है। शेष सर्वत्र तीनों लोकमें तो दुःख ही भरा है। यह शरण अनन्य भावसे हमको-आपको सदैव रहे यही परमकृपालुदेवसे प्रार्थना है जी।

पुनश्च—हे प्रभु! यथातथ्य स्वरूप क्षायक सम्यक्त्व है। वह जिसे है, जिसे प्रगट प्रत्यक्ष है उसकी श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, भाव हुआ हो उसे दर्शन कहते हैं। परोक्ष दर्शन मिथ्यात्वी और समकिती दोनोंको होता है, पर उसे दर्शन नहीं कहते। विशेषतः श्रद्धा ही दर्शन है, वही समकित है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९

ॐ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास

तत् सत् पौष वदी ७, बुध, १९८९

देवको भी दुर्लभ ऐसा यह मनुष्यदेह जीवको अनेक भवोंके पुण्यके संचयसे प्राप्त हुआ है। इस देहसे सम्यक्त्वप्राप्तिरूप कमाई हो तो इस देहका मूल्यांकन किसी प्रकार नहीं हो सकता ऐसा अमूल्य उसे मानना चाहिये। क्योंकि इसकी एक पलको भी चिंतामणि रत्नसे भी अधिक मूल्यवान ज्ञानियोंने माना है। परंतु यदि जीव ऐसे मनुष्य भवके वर्ष विषयादिमें बिताये तो संपूर्ण भवका मूल्य फूटी कौड़ीका भी नहीं है। कालका भरोसा नहीं है और संसारके काम कभी पूरे होनेवाले नहीं है। जीव अकेला आया है और अकेला जायेगा। मेरा मेरा करके इकट्ठा किया सब कुछ यहीं पड़ा रह जायेगा, ऐसा सोचकर सत्संग, भक्ति, स्मरण, सत्पुरुषके वचनोंका विचार और सदाचारमें चाहे जैसे भी अधिक समय बीते वैसा करना चाहिये जी। ऐसा अवसर बार बार नहीं मिलेगा। अनमोल क्षण बीत रहा है। यह अवसर चूकने योग्य नहीं है, सावधान होने जैसा है। यदि ऐसी उत्तम सामग्री पाकर भी जीव अपने स्वरूपको समझनेका कार्य न करे तो फिर कौनसे भवमें करेगा? मैत्री भावना, प्रमोद भावना, करुणा भावना और मध्यस्थ भावना करनेसे जीवमें पात्रता आती है। वही कर्तव्य है जी।

***

१० माघ सुदी ११, सोम, १९८९

संत-समागम, सत्संग अपूर्व लाभका कारण है।

देव भी मनुष्यभवकी इच्छा करते हैं। ऐसी दुर्लभ यह मनुष्यदेह मिली है, उसका वास्तविक माहात्म्य तो सत्पुरुष ही समझ पाये हैं। इसलिये उन्हें ऐसे दुर्लभ भवकी एक पल भी रत्नचिंतामणिसे अधिक मूल्यवान लगती है और मान-पूजा या विषय-कषायके निमित्तोंको विष समान समझकर, लोकलाजको तृणवत् मानकर, आत्माकी पहचान हो, आत्माका पोषण हो उसके लिये मरजिया होकर वे पुरुषार्थ करते हैं। जीवने अपनी समझके अनुसार पुरुषार्थ करनेमें कुछ कमी नहीं रखी है। मेरु पर्वत जितना ओघा-मुँहपत्तीका ढेर लग जाये इतनी बार चारित्र लेकर कष्ट उठाये हैं, फिर भी परिभ्रमण अभी तक चल रहा है, तो अवश्य ऐसा कोई कारण रहा होगा जो जीवके ध्यानमें नहीं आया है।

सत्पुरुषके योगसे जीवको सजीवन बोधकी प्राप्ति होती है। सत्पुरुषकी अपूर्व वाणीसे जीवको धर्मका अपूर्व माहात्म्य समझमें आता है और अपूर्व रुचि उत्पन्न होती है। जिस भावसे जीवका कल्याण होता है वैसे भाव जाग्रत करनेके लिये वैसा ही कल्याणरूप प्रबल निमित्त चाहिये और जीवकी वैसी योग्यता भी चाहिये। किन्तु जैसा कि आगे कहा गया है—सर्व कल्याणके साधनोंमें सत्संग ही सर्वोत्तम साधन है जी। परमकृपालु श्रीमद् राजचंद्र देवने लिखा है कि 'अनादिकालके परिभ्रमणमें अनंत बार शास्त्रश्रवण, अनंत बार विद्याभ्यास, अनंत बार जिनदीक्षा और अनंत बार आचार्यपना प्राप्त हुआ है। मात्र 'सत्' मिला नहीं, 'सत्' सुना नहीं और 'सत्'की श्रद्धा नहीं की;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और इसके मिलने पर, इसको सुनने पर और इस पर श्रद्धा करनेसे ही छूटनेकी बातका आत्मासे गुंजार होगा।" इतनेमें जीव समझे तो अपना क्या कर्तव्य है वह समझमें आ जाता है। जीव आँखें मींचकर दौड़ा है, अर्थात् स्वच्छंदसे प्रवृत्ति की है। उसे रोकनेके लिये किसीकी आज्ञा लेने गया तो आज्ञा देनेवाला अज्ञानी और स्वच्छंदी मिला। अतः रक्तसे भीगा वस्त्र जैसे रक्तसे धोने पर स्वच्छ नहीं हो सकता, वैसे ही स्वच्छंदी पुरुषकी आज्ञा स्वच्छंदका नाश नहीं कर सकती। अतः ज्ञानीके पाससे ज्ञान प्राप्त करना योग्य है ऐसा निश्चय कर, मुझे ज्ञानीपुरुषकी प्राप्ति कब होगी ऐसी भावना कर्तव्य है; और ज्ञानीका योग प्राप्त होने पर मुझे तीनों योगसे उनकी आज्ञाका ही पालन करना है ऐसा दृढ़ निश्चय कर्तव्य है। अपनी मान्यता, कल्पना या दुराग्रहको दूर कर सर्वार्पणतासे सत्पुरुषकी आज्ञाके पालनसे ही मेरा कल्याण होगा, ऐसा मानकर आज्ञाकी भावना निरंतर कर्तव्य है जी। एकमात्र आत्मप्राप्तिका ही लक्ष्य रखकर उसके साधनरूप ज्ञानीपुरुषका योग और उनकी आज्ञापालनकी तत्परतारूप सद्व्यवहारके लिये जीव पुरुषार्थ करे तो इस मनुष्यभवमें वैसा होना संभव है जी। यहाँ इतना हो सकता है। भगवानने मनुष्यभव दुर्लभ कहा है, किन्तु यदि उसमें यह न हुआ और परकथा तथा परवृत्तिमें यह भव निरर्थक चला गया तो उसका मूल्य फूटी कौड़ी जितना भी मानने योग्य नहीं है।

★★★

११ ज्येष्ठ सुदी २, सं.१९८९

जीवको महाबंधन और परिभ्रमणका बड़ा प्रबल कारण स्वच्छंद है और उद्धारका उपाय भी स्वच्छंदको रोकना है। छोटे बालककी भी यह इच्छा रहती है कि उसकी इच्छानुसार कार्य हो; और इच्छित नहीं होता तो कलह करता है तथा रूठनेके बाद उसके कहे अनुसार करने पर भी वह हठ नहीं छोड़ता। पहले मेरी इच्छानुसार क्यों नहीं किया, ऐसी हठ करके घरके सब लोगोंको संतापकारी होता है। वैसे ही जीवको यदि अपनी इच्छाकी डोरको ढीला छोड़कर, अन्यके कहे अनुसार भले ही हो ऐसा करनेका अभ्यास डालना हो तो वह भी हो सकता है। और यदि ऐसी आदत पड़ जाय तो अन्य सबको सुखकारी लगती है और स्वयंको कषायकी मंदता होनेसे बहुत लाभ होता है; तप करनेसे भी वह अधिक है। परंतु किसीकी बात न मानकर अपनी इच्छानुसार ही करे तो उससे स्वच्छंदके पोषणकी आदत पड़ती है।

घर-घरमें मिट्टीके चूल्हे होते हैं, इसी प्रकार सभी जीव दोषसे तो भरे हुए ही हैं। पर किसीमें एकाध ऐसा गुण होता है कि वह सभी दोषोंको ढँक देता है और समकितका प्रभाव तो ऐसा है कि सब अवगुणोंको गुणमें बदल देता है।

"व्रत नहीं, पचखाण नहि, नहि त्याग वस्तु कोईनो;
महापद्म तीर्थंकर थशे, श्रेणिक ठाणंग जोई लो."

कोई व्रत-नियम आदि न हो सके तो भी जिसे समकित है उसकी दृष्टि ही बदल गई है। उसे आत्माका साक्षात्कार है। और जहाँ आत्मा है वहाँ नौ निधान है। वहाँ विकार नहीं, राग नहीं, द्वेष नहीं, मोह नहीं और बंधन भी नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परंतु उस सम्यक्त्वके लिये पुरुषार्थ करना चाहिये। सदाचार, सत्संग, सद्भावना कर्तव्य है। बुरे बुरे भाव होते हों और कहें कि मुझे सम्यक्त्व है, तो ऐसा कहनेसे कुछ होता नहीं। ब्रह्मदत्त पूर्वभवमें निदानकर चक्रवर्ती हुआ था, किन्तु बुरे भाव रहनेसे उसे नरकमें जाना पड़ा। भाव और परिणाम बहुत महत्वके हैं। स्त्रीको छोटी उम्रमें माता-पिताका अंकुश होता है, जवानीमें पतिका अंकुश होता है और पति न हो तो पुत्रके कहे अनुसार चलना चाहिये ऐसा शास्त्रमें कहा है। इस प्रकार स्वच्छंदको रोकना हितकारी है। परमकृपालुदेवने भी लिखा है कि "मुझ पर सभी सरल भावसे हुक्म चलायें तो मैं प्रसन्न हूँ।" "रोके जीव स्वच्छंद तो, पामे अवश्य मोक्ष।" अन्य सब भावोंका फल मिलता है, तो सम्यक्त्व-प्राप्तिके ही जिसे बारंबार भाव होते हैं उसे उन भावोंका फल क्यों नहीं मिलेगा? चाहे जो हो तथापि मुझे इस भवमें तो एक समकित प्राप्त करना ही है, ऐसा जिसने निर्णय किया हो और उस निर्णयके पोषक सत्संग आदि साधनोंका सेवन करता हो तो उसे वह अवश्य मिलेगा ही। आत्मा कहाँ रहता है? सत्संगमें रहता है। सत्संग-सत्संग तो बहुत करते हैं, पर नाम लक्ष्मी, नाम धनपाल, ऐसे नहीं, किन्तु यथार्थ सत्संग जहाँ है वहाँ आत्मा है। उस आत्माकी पहचान, प्रतीति और अभ्यास कर्तव्य है।

निरंकुश पशु जैसे विष्टाहार करनेको भटकता है, वैसे ही मन विषय-कषायरूप मलमें भटकता रहता है। ऐसी मलिन वृत्तियाँ मनमें उठते ही उन्हें शत्रु समझकर उनका तिरस्कार करें, धिक्कार कर निकाल दें। यदि बार-बार अपमानित होंगी तो वापस नहीं आयेंगी। किन्तु यदि उन्हें सन्मान-आदर दे दिया, उनमें मधुरता मान बैठे और क्षमा, शांति, धैर्य आदिको बार बार न बुलाया तो दुर्मतिकी शक्ति बढ़ जायेगी और मोह दुर्गतिके कारणोंको एकत्र कर जीवको अधोगतिमें घसीट ले जायेगा। किसीको यह छोटा है, यह बड़ा है, यह अच्छा है, यह बुरा है, गरीब है, धनवान है, स्त्री है, पुरुष है ऐसी दृष्टिसे देखना उचित नहीं। परायी पंचायतमें जीव समय खो रहा है। अनेक पापियोंका उसी भवमें मोक्ष हुआ है और पंडित भटकते रह गये हैं।

★★★

१२ ता. ८-६-३३

सत्पुरुष जो हमारे हितकी बात करते हैं वह भुलाने जैसी नहीं होती। परमकृपालुदेवकी भक्ति, गुणगान करनेको वे हमें कहते हैं, यह उनका महान उपकार है। परम उपकारीका उपकार भूलने योग्य नहीं है, परंतु उनकी आज्ञाका पालन न करे और अपने स्वच्छंदसे चाहे जितनी भक्ति करें, उनके गुणगान करें यह सब दिखावा है। कोई शिष्य सद्गुरुकी कायासे सेवा करता हो, पैर दबाता हो, सिर दबाता हो किन्तु उनका कहना न मानता हो, उनके वचनके विरुद्ध आचरण करता हो, तो हाथसे तो वह गुरुके चरणकी सेवा करता है परंतु आचरणसे गुरुकी जीभ पर पैर रखता है, उनकी आज्ञाका लोप करता है; तो ऐसे शिष्यका कल्याण कैसे होगा?

संसार परसे आसक्ति उठाकर परमकृपालुदेव पर, उनके वचन पर करें। उनकी मुखमुद्रा, उनके बताये 'स्मरण', 'बीस दोहे', 'क्षमापनाका पाठ', 'छः पदका पत्र', 'आत्मसिद्धि' आदि अपूर्व हितके कारणस्वरूप जो सत्साधन हैं, उनका सेवन निरंतर करना चाहिये जी। फिर अपने दोष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढूँढकर, उन दोषोंके प्रति घृणा या शत्रुभाव रखकर दोष दूर करनेका पुरुषार्थ करना चाहिये जी। सत्संगका वियोग हो तब तो जीवको विशेष सावधानीपूर्वक, विषय-कषायके वशीभूत न हो जायें, यह देखते रहना चाहिये। विषय-कषाय कम करनेका पुरुषार्थ सद्गुरुके वचनामृतके अवलंबनसे किया हो तो सत्संगका योग मिलनेपर विशेष लाभ होना संभव है।

बड़ा ग्रंथ (श्रीमद् राजचंद्र) वचनामृत-वाचनमें विशेष समय व्यतीत हो ऐसा करना चाहिये। वह सत्संगकी कमी पूरी करेगा। हम सत्संगकी भावना रखते हैं उसके साथ ही योग्यता बढ़े और सत्संग फलदायक हो वैसा पुरुषार्थ कर्तव्य है जी। जिस प्रकारके कर्म पूर्वकालमें बाँधे हैं, वे उदयमें आये हैं, उनसे घबरायें नहीं परंतु समभावसे भोग लें। निरर्थक आशाएँ-इच्छाएँ न बढ़ायें। इच्छा करनेसे कुछ मिलता नहीं। परमकृपालुदेवने लिखा है कि—

"क्या इच्छत? खोवत सबै, है इच्छा दुःखमूल;
जब इच्छाका नाश तब, मिटे अनादि भूल."

इसे ध्यानमें रखकर वासना, तृष्णा, इच्छाओंको रोकना उचित है। इच्छाके रोकनेसे तप होता है। संकल्प-विकल्प घटनेसे आत्मकल्याण करनेके मार्गका भी विचार किया जा सकता है।

★★★

१३ ता. १९-६-३३

आपने जो प्रत्याख्यान लिये हों वे आपके भाव पर आधारित हैं। यदि आपने दवा आदिकी छूट रखी हो तो वैसा करें। दवाके लिये भी उपयोग न करनेके भाव रहते हों तो वैसा करें। जैसे आपके भाव। पापके कारण तो छोड़ने योग्य ही हैं। किन्तु यदि शक्य न हो तो जितना अपनेसे पालन हो सकता हो उतना ही व्रत लेवें। सात व्यसनमें जिन सात वस्तुओंका त्याग कहा गया है, उनमेंसे प्रत्येक वस्तुके प्रयोगसे व्यसन हो जाता है, आदत पड़ जाती है, मन वहींका वहीं रहता है, धर्ममें विघ्न होता है। इस लोक परलोक दोनोंमें हानिकारक हैं और धर्मका नाश करनेवाले हैं। अतः इन्हें दूरसे ही त्यागनेकी वृत्ति रखें। शरीरके किसी कारणवश दवाके लिये उपयोग करना पड़े तो भी वह वस्तु बहुत पापका कारण है ऐसा समझकर, जहाँ तक संभव हो और उस वस्तुसे रहित अन्य कोई दवा मिलती हो तो उससे चला लेना चाहिये। अनेक देशी दवाइयाँ भी होती हैं। यदि दवाईके लिये छूट न रखी हो और दवाईमें अमुक माँस आदि वस्तु पड़ी है ऐसा निश्चय है तो उस दवाईका उपयोग नहीं करना चाहिये। और दवाईके लिये छूट रखनेके भावसे यदि कोई उपयोग करता हो तो वह भी पापका भय रखकर अमुक समय तक उपयोग करना पड़े तो करे; किन्तु यह पापके कारणका सेवन हो रहा है यह भूलना नहीं चाहिये। यह कब छूटेगा, ऐसे भाव रखने योग्य हैं। संक्षेपमें, आपके भाव पर ही सब आधारित है।

★★★

१४ ता. २३-६-३३

अभी जो दशा है, वह अज्ञानदशा है, बाल अवस्था जैसी दशा है। हम स्वयं जो बोलते हैं, निर्णय करते हैं, मानते हैं वह वैसा ही हो यह संभव नहीं है। अतः जैसे किसी बालकको हम कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूछते हैं तो वह अपने माता-पिताकी ओर देखता है और उसके माता-पिता बुलवाते हैं वैसा बोलता है। वैसे ही हमने भी कल्याणके मार्गको जाना नहीं है, अतः किसी संतसे पूछा तो उसने स्वयंको जिससे लाभ हुआ हो ऐसा निःशंक मार्ग—परमकृपालुदेवकी भक्तिका मार्ग—हमें बताया, वह मार्ग भूलरहित है, सत्य है। उस मार्गसे हमारा कल्याण है। ऐसी दृढ़ता हमारे मनमें हो ऐसा उपदेश उन्होंने हमें दिया, यह उनका परम उपकार है। उस उपकारीके उपकारको नहीं भूलना चाहिये। उन्हें उपकारीके रूपमें मानना चाहिये।

परंतु 'आप ही मुझे तारनेवाले हैं, आपकी जो गति है वही मेरी गति हो, आप ही सब करेंगे, आप ही सब जानते हैं' आदि अपनी मतिकल्पनासे किये गये निर्णय हैं, तथा कल्पना द्वारा कल्याण नहीं होता। अतः यदि हमने उन्हें विश्वास करने योग्य सच्चा पुरुष माना है तो उनके द्वारा बताया गया मार्ग जो परमकृपालुदेवकी भक्ति, परमोत्कृष्ट साधनरूप 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' का मंत्र तथा 'बीस दोहे', 'क्षमापनाका पाठ', 'आत्मसिद्धि', 'छह पदका पत्र' आदि जो-जो आज्ञारूप धर्म बताया है, यदि उसका आराधन करते रहेंगे तो अवश्य कल्याण होगा। उनके द्वारा बताया गया मार्ग हमारे आत्माके लिये कल्याणकारी और सत्य है। उसमें अपनी मतिकल्पनाको जोड़े बिना स्वच्छंदको रोककर प्रवृत्ति करते रहेंगे तो अवश्य मोक्षमार्ग प्राप्तकर मोक्ष पायेंगे। अतः स्थिर चित्तसे बारंबार इस बातका विचारकर 'यह ज्ञानी है, यह ज्ञानी है' ऐसी कल्पना करना छोड़कर 'मैं कुछ नहीं जानता, मात्र सत्पुरुष द्वारा बताया गया साधन ही मुझे ग्रहण करने योग्य है' ऐसा सोचना उचित है जी। अपनी कल्पनासे किसीको ज्ञानी, अज्ञानी कहनेमें बहुत दोष लगता है। ज्ञानी हो उसे अज्ञानी कह देवें तो मोहनीय कर्मका बंध होता है और अज्ञानीको ज्ञानी कह देवें तो भी मोहनीय कर्मरूप आचरण होता है। अतः सही सुरक्षित मार्ग यही है कि जिस पुरुषको ज्ञानीके रूपमें भजनेकी हमें शिक्षा दी गई है उसीको ज्ञानी मानकर उसीकी भक्ति करनी चाहिये तथा दूसरोंके बारेमें मध्यस्थता रखनी चाहिये। ऐसा सरल निःशंक मार्ग छोड़कर अपनी मतिकल्पनासे प्रवृत्ति करना निर्भय मार्ग नहीं है। इस पर ध्यान देनेकी विनती है।

समभावपूर्वक बँधे हुए कर्मोंको भोग लेनेसे छुटकारा होता है। स्वयं द्वारा बाँधे हुए कर्म स्वयंको ही भोगने पड़ते हैं। यदि वैसे कर्म अच्छे न लगते हों तो अब वैसे कर्म न बँधे इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये। अर्थात् रागद्वेषका त्यागकर समभावपूर्वक उन कर्मोंको भोग लेनेसे नये कर्म नहीं बँधते। अतः परमकृपालुदेवकी भक्तिमें वृत्ति रखकर जो प्रवृत्ति करनी ही पड़ती हो उसमें समय लगावें, शेष सब समय स्मरण, भजन, भक्ति, वाचन, चिंतनमें बिताना योग्य है जी। व्यर्थ संकल्प-विकल्प करनेसे कुछ कल्याण नहीं होता।

★★★

१५ अषाढ़ वदी ३, सोम, १९८९

ज्ञानीपुरुषोंने ऐसा निष्कर्ष निकाला है कि इस संसारमें किसी स्थान पर सुख नहीं है, समस्त लोक दुःखसे भरा हुआ है। तो फिर ऐसे इस संसारमें सुखकी इच्छा रखना रेतको पीलकर तेल निकालने जैसा है। ज्ञानीपुरुषोंने ऐसा देखा है, जाना है कि जीव जो-जो सुखकी इच्छा करता है वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तवमें दुःखरूप ही है। अतः जैसे बालक अफीमको मिठाई समझकर मुँहमें रख रहा हो तो माता-पिता उसे रुलाकर भी अफीम उससे छीन लेते हैं, वैसे ही ज्ञानीपुरुष, यह जीव जब पौद्गलिक सुखकी इच्छा करता है तब उसे उलाहना देकर, उपदेश देकर, परवस्तुकी इच्छा छुड़ा देते हैं, क्योंकि अनादिकालसे जीव पर्यायदृष्टिमें ही फँसा हुआ है जिससे शरीर आदि पर्यायोंमें अहंभाव-ममत्वभाव कर उनमें हर्ष-शोक, राग-द्वेष करता रहता है, इससे जन्ममरणकी परंपरा खड़ी होती है। जन्ममरणकी कारणभूत यह पर्यायदृष्टि त्याज्य है ऐसा ज्ञानीपुरुष पुकार-पुकार कर कह गये हैं। फिर भी यह जीव अनादिके अध्यासके कारण इस कथनको मानता नहीं है, उसको गले उतारता नहीं है। अन्यथा जीव सर्व दुःखोंका नाश करनेवाला सम्यक्त्व अल्प समयमें प्राप्त कर सकता है। सम्यक्त्व प्राप्त करनेका प्रबल कारण सद्गुरुकृपासे द्रव्यदृष्टिका अभ्यास करना है। जब पर्यायदृष्टिको दुःखदायक, जन्ममरणकी हेतुभूत और अनेक पापका मूल जाने और सुखका साधन तथा सत्य वस्तु दिखानेवाली परम हितकारी द्रव्यदृष्टि है उसे सद्गुरु द्वारा समझकर वैसे आत्मपरिणाम प्रवर्तित होते रहें तब आत्माका कल्याण सहज ही हो सकता है। द्रव्यदृष्टिसे आत्मा किसीका पिता नहीं, माता नहीं, पति नहीं, पत्नी नहीं, भाई नहीं; अकेला आया है और अकेला जायेगा। आत्मा बालक नहीं, युवान नहीं, वृद्ध नहीं, जन्मता नहीं, मरता नहीं, निर्धन नहीं, धनवान नहीं, भूखा नहीं, प्यासा नहीं, दुःखी नहीं, सुखी नहीं, देव नहीं, मनुष्य नहीं, स्त्री नहीं, पुरुष नहीं। इस मूल आत्माका स्वरूप सर्व परद्रव्यसे भिन्न, असंगस्वरूप, सद्गुरुकृपासे श्रद्धामें आवे, उसीकी मान्यता हो जाये तो यह भव सफल हो जायेगा। यह शुद्ध स्वरूपकी भावना ही उत्तम तप है, जप है, भक्ति है, ध्यान है और संयम है। अंतरंगमें ऐसी श्रद्धा रखकर, पर्यायदृष्टिसे जो मोह होता है उसे मनसे निकालकर, मेरा कुछ नहीं है ऐसा मानकर, मैं मर गया होता तो जैसे यह सब मेरा न रहता, वैसे ही जीवित होते हुए भी ममत्वको मनसे निकालकर, यथाप्रारब्ध जो व्यवहार करना पड़े वह ऊपर-ऊपरसे निर्मोही दृष्टिसे करना योग्य है जी। विनय, सत्य, शील, भक्ति और सहनशीलता धारण कर समताभावमें रहनेका पुरुषार्थ करना चाहिये जी।

इस कथनको लक्ष्यमें रखकर प्रत्येक प्रसंगमें, प्रत्येक कार्यमें जागृतिपूर्वक आत्माकी भावना करना योग्य है। ऐसा पुरुषार्थ किया जा सके तो वह अवश्य कल्याणकारी है।

★★★

१६ कार्तिक वदी २, १९९०, ता. ४-११-३३

एक मुमुक्षुने प्रश्न किया था कि "मनमें संकल्प-विकल्प होते रहते हैं और मनकी चंचलताके कारण संताप होता है, वह कैसे मिटे?"

यह अवसर ऐसा-वैसा नहीं है, परंतु बहुत आवश्यक और एकांतमें भार देकर कहने योग्य यह बात है, उसे यहाँ कहते हैं। इसे सामान्य न बना डाले, हृदयमें अंकित करने योग्य है।

संकल्प-विकल्प आते हैं, दुःख देते हैं यह किसे पता लगता है? जिसे पता लगता है वह संकल्प-विकल्पको जाननेवाला, संकल्प-विकल्पसे भिन्न है। ये हाथ, नाक, आँख, मुँह, कान आदि कुछ नहीं जानते। जो जानता है, वह आत्मा देहादिसे भिन्न है, ऐसा ज्ञानीपुरुषके बोधसे जानकर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस ज्ञानीपुरुष पर श्रद्धा करनी चाहिये कि वे मुझे मिथ्या नहीं बतायेंगे, वे कहते हैं वही मुझे मानना है। मुझे अभी आत्माका भान नहीं है, पर ज्ञानीपुरुषने जैसा आत्मा जाना है, देखा है, अनुभव किया है, वैसा ही मेरा स्वरूप है, वही मुझे मानना है। व्याधि, पीड़ा, सुख-दुःख, संकल्प-विकल्प जो होते हैं उन्हें मुझे नहीं मानना है। ज्ञानीपुरुषने जिसे जाना है, वह मुझे मान्य है। चिंता, फिकर, सुख, दुःख आते हैं उससे दुगुने आये, किन्तु मुझे उन्हें मानना नहीं है और जो स्मरण करनेको कहा है उसीकी एक श्रद्धा रखकर मुझे हृदयमें उसे सुरक्षित रखना है। यह मान्यता करना अपने हाथकी बात है। भले ही नरक या तिर्यंच गति होनी हो तो हुआ करे, पर मुझे तो इस भवमें बस यही निश्चय रखना है और उसका क्या फल प्राप्त होता है यह देखना है। ऐसी दृढ़तासे यदि स्मरणमें चित्त रखे तो संकल्प-विकल्प चाहे जितने भले ही आयें, वे सब जानेके लिये ही आते हैं। और नरक, तिर्यंच गति तो सामने ही नहीं आयेगी। हम कहें कि अभी ज्वर आ जाये, पेटका दर्द आ जाये, पर वह आ ही नहीं सकता। जो बंध किया है वही उदयमें आता है, वह भी रहनेको कहो तो भी नहीं रह सकता। उसका समय पूरा हो जाने पर दूर हो जानेवाला है, तो फिर चिंता किस बातकी? परवस्तुमें सिर खपानेकी माथापच्चीको छोड़कर जो हो रहा है उसे देखते रहें। मेरा-तेरा, सगा-संबंधी, शत्रु-मित्र, स्त्री-पुत्र कुछ देखने योग्य नहीं है। एक आत्मा देखें। उपयोग ही आत्मा है। चाहे जहाँ भाव, परिणाम फिरते हों, उन्हें उपयोगमें लायें। चलते, फिरते, बैठते, उठते आत्मा देखें। बेटा हो वह अन्य देखता है।[1] ऐसा अभ्यास कर लेना चाहिये, फिर उसे कोई चिंता नहीं। जो जो आता है वह सब छूटनेके लिये ही आता है। व्याधि, पीड़ा चाहे जो आवे, पर वह तो दुःखी होनेके बजाय ऐसा मानता है कि अच्छा हुआ कि ये दुःख, संकल्प-विकल्प आये, जिससे मुझे स्मरणमें जानेका निमित्त मिला, अन्यथा प्रमाद होता।

इतनी उम्र होने तक माता, पिता, स्त्री, पुत्र, धन, मकान, आहार आदि अनेक प्रकारके प्रसंग, संयोग आये। आये वे सब देखें; पर कोई स्थिर नहीं रहे। वैसे ही इस भवमें जो-जो पुद्गलकी रचना निर्मित होगी वह सब दिखाई देगी सुखरूप या दुःखरूप, परंतु वह कोई भी स्थायी रहनेवाली नहीं है, सब चली जानेवाली है। बड़े-बड़े राम-रावण, कौरव-पांडव, यादव इनमेंसे कोई अभी नहीं हैं, सब चले गये; तो इस भवमें जो सुख-दुःख आता है वह कहाँ रहनेवाला है? दो दिनके मेहमान जैसा है। उसमें क्या चित्त लगाना? अमूल्य वस्तु तो आत्मा है, उसे ज्ञानीने जाना है, यह निःशंक बात है और वैसा ही मेरा आत्मा है। अभी उसका भान नहीं है, फिर भी अभी उसे मान्य किया जा सकता है। मृत्युकी वेदनाके समय भी यह दृढ़ता रहे, ऐसा अभ्यास हो जाये तो समाधिमरण प्राप्त हो जाय, जन्ममरणके दुःख दूर हो जाय और काम बन जाय। करोड़ों रुपये कमानेसे भी अधिक कीमती यह काम है जो करने योग्य है। स्मृतिमें रखकर उद्यमशील बन जाना चाहिये। 'फिकरका फाँका भरा, उसका नाम फकीर' इस प्रकार निश्चित हुआ जा सकता है। सत्पुरुषार्थ कर्तव्य है जी।

★★★

१. मूल गुजराती पाठ – "बेट्टो होय ते बीजुं जुए."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७ श्री आबू, ता.२६-३-३५

एकांत निवृत्तिका योग बहुत हितकारी है। महान मुनिवर एकांत निवास करते हैं। आस्रवमें संवर हो ऐसी कोई कला ज्ञानीपुरुषके पास है। जो-जो देखते हैं, जो-जो कुछ करते हैं उसमें प्रथम आत्मा है। उसके बिना तृणके दो टुकड़े भी नहीं हो सकते ऐसा परमकृपालुदेवने कहा है। आत्माको छोड़कर कुछ नहीं हो सकता। मार डाल आत्माको, कभी वह मर सकेगा? मात्र पहचान नहीं है। जैसे जौहरीको हीरेकी पहचान है तो उसकी कीमत समझमें आती है। लकड़हारेके हाथमें रत्नचिंतामणि आये तो भी वह उसे कंकर समझकर फेंक देता है। रत्नचिंतामणि तो यह मनुष्य देह है। ऐसा योग पुण्यका फल है। उसकी भी आवश्यकता है। पुण्य है तो अभी इस निवृत्तिके योगमें आत्माकी बात कानमें पड़ती है और परिणमित होती है। परिणाम-परिणाममें भी बहुत भेद हैं। भाव और परिणाम वारंवार कहते हैं, वह विचारणीय है।

'आत्मसिद्धि' अमूल्य है। उसमें रिद्धि-सिद्धियाँ, अनेक चमत्कार भरे पड़े हैं। पर समझेगा कौन? जो समझेगा उसे रिद्धि-सिद्धिका कुछ काम नहीं है। परंतु ये अपूर्व वचन हैं, विश्वास करने योग्य हैं। भले ही मुझे समझमें न आये, पर परमकृपालुदेवको तो समझमें आया है न? इतना विश्वास तो अवश्य करने योग्य है। 'कर विचार तो पाम' इसमें सब क्रिया, ज्ञान आ जाता है। पर उसका माहात्म्य लगना चाहिये, विचार आना चाहिये।

क्या कहें? योग्यताकी कमी है, फिर भी उस पुरुषने कहनेमें कोई कमी नहीं रखी।

"छूटे देहाध्यास तो, नहि कर्ता तुं कर्म;
नहि भोक्ता तुं तेहनो, ए ज धर्मनो मर्म."

आत्माका सुख अनंत है—

"जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां,
कही शक्या नहीं पण ते श्री भगवान जो;
तेह स्वरूपने अन्य वाणी ते शुं कहे?
अनुभवगोचर मात्र रह्युं ते ज्ञान जो."

इस सुखका स्वाद आना चाहिये। उसका प्रथम सत्पुरुष द्वारा श्रवण हो तो भी महाभाग्य मानना चाहिये। यह बात अन्यत्र कहाँ मिलेगी? सत्संगमें आत्माकी ही बात होती है। कुछ पैसे-टकेकी भाँति इस उपदेशका लाभ नहीं होता, दिखाई नहीं देता, पर ज्ञानी तो जानते हैं। धन तो मिट्टी है, यहीं पड़ा रहनेवाला है। पर आत्माका धर्म आत्माके साथ जानेवाला है, अतः उसे अत्यंत ध्यानपूर्वक सुनना चाहिये। सुनते-सुनते आत्मस्वरूपका भान होगा। कुछ घबराने जैसा नहीं है। कुछ अच्छा नहीं लगता, चलो उठ चलें, चले जायें ऐसा करना योग्य नहीं है। चाहे जितने कष्ट पड़े तब भी इस विषयकी बात सुननी चाहिये। साता-असाता तो कर्म है, उससे कुछ घबराना नहीं। वह तो अपना है ही नहीं। सब जानेवाला है। आत्माका कभी नाश नहीं हो सकता। उसकी पहचान कर लेनी है। सत्संगसे वह होती है।

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८ ता.१९-३-३५

एकमात्र सम्यक्त्वकी भावना करनी चाहिये। जीव अनंतकालसे अनंत दोष करता आया है। परंतु यदि इस भवमें सर्व दोष नष्ट करनेके शस्त्र समान समकित प्राप्त हो जाय तो इस कालमें मोक्षप्राप्तिके समान है। जीवको अपनी कल्पना किसी-न-किसी रूपमें विघ्नकारक होती है, उसे टालना चाहिये। एकमात्र परमकृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्र प्रभुको गुरु मानें। वे ही महान अवलंबनरूप हैं, +यात्री जहाज हैं। हम तो उन्हींकी भक्ति करते हैं और इस निर्भय मार्गको ढूँढकर उन्हींका अवलंबन लेकर निःशंक सत्य माननेको कहते हैं। एक यही दृष्टि करनी चाहिये। इसमें अपनी कल्पना जोड़कर कोई हमें, कोई पोपटलालभाईको या चाहे जिस अन्य उपासकको उपास्यरूपसे मानेगा तो उसको स्वच्छंदसे माननेका फल वैसा ही मिलेगा। किसी बात करनेवालेको चिपक न जाये। वह जैसा बताये, जो आज्ञा करे तदनुसार यदि हमारे भाव होंगे तो '[1]वाळ्यो वळे जेम हेम' ऐसी दशा आने पर जीवकी योग्यता बढ़ेगी। नूरभाई पीरभाई कहकर जिसने अपनी मतिकल्पना खड़ी रखी है वह अभी स्वच्छंदका वेदन करता है। एकमात्र परमकृपालुदेवकी भक्ति परम प्रेमसे करनी चाहिये। उसमें सब ज्ञानी आ जाते हैं, सब ज्ञानियोंके उपासक महापुरुष भी आ जाते हैं, स्वयं भी बाकी नहीं रहता।

आपने अनेक बार सुना होगा फिर भी यह विशेष विचारणीय है। इसे ध्यानमें रखकर सत्पुरुषकी दृष्टिसे भावना-भक्ति करनी चाहिये। अधिक क्या? 'आणाए धम्मो, आणाए तवो।' 'आज्ञाका आराधन ही धर्म है और आज्ञाका आराधन ही तप है।' हे भगवान! अब भूल न रहें! और अल्प साधन हो सकें तो अल्प, पर यथार्थ हों, यही भाव निरंतर रखना चाहिये। स्वयं अपना काम कर लेना योग्य है। अपने दोष देखकर उनका पश्चात्ताप कर उन्हें दूर करना चाहिये तथा सद्गुरु शरणसे जो हो उसे देखते रहना चाहिये।

[2]'हुं मारुं हृदयेथी टाळ, परमारथमां पिंड ज गाळ.'

★★★

१९ श्री आबू, चैत्र वदी ४, सं. १९९१

जिसका महाभाग्य होगा और जिसका भला होना सर्जित होगा, उसे सत्पुरुषके दर्शन, समागमका लाभ प्राप्त होगा और अपूर्व माहात्म्य समझमें आयेगा।

बीस दोहे, क्षमापनाका पाठ, आत्मसिद्धि और छह पदका पत्र, इन अमूल्य बातोंको हृदयमें लिखकर गहरी समझ करने योग्य हैं। इनमें सर्व शास्त्रोंका सार आ जाता है। जीव प्रतिसमय मर रहा है। अतः जितना समय वे वचन सुननेमें बीते, उनके चिंतनमें बीते, वह जीवकी मृत्यु सुधारनेवाला समाधिमरणका कारण है।

मन कैसे वशमें हो? भेदविज्ञान ही मनको वश करनेका उपाय है। उसके लिये सत्संग और

+ मूल गुजराती पाठ 'सफरी जहाज'

१. अर्थ—स्वर्णकी तरह जैसा मोड़ा जाय वैसे मुड़ता है।

२. अर्थ—अहंभाव और ममत्वभावको हृदयसे निकाल दे और परमार्थमें ही इस देहका उपयोग कर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्बोधकी आवश्यकता है, बहुत उपदेशकी आवश्यकता है। वह हो तो जीव जागृत रहता है, फिर उसे कुछ कहना ही नहीं पड़ता। सद्बोधकी बलिहारी है। यही इच्छनीय है और विशेष ध्यान रखकर हृदयमें उतारने योग्य है, परिणमन करने योग्य है।

★★★

२० श्रबरी बंगला, माउंट आबू, ता.२-४-१९३५

समयमात्रका प्रमाद करना उचित नहीं है। इसमें भारी अर्थ समाया है। ऐसा कौनसा समय समझें? समय किसको कहा जाय? बहुत गहन रूपसे विचारणीय है। काल तो सदा ही है। पर ऐसा समय आये कि जिससे समकित हो, केवलज्ञान हो, वैसा समय कौनसा है? प्रमादने जीवका बुरा हाल किया है। जब तक शरीर नीरोगी हो, इंद्रियोंकी हानि न हुई हो, वृद्धावस्था न आयी हो और मरणांत यातना न आयी हो तब तक धर्म कर लेना चाहिये।

धर्म क्या? उपयोग ही धर्म है। उपयोग ही आत्मा है। जीवने अनेक बार इसे सुना है, पर सामान्य कर दिया है। यह तो मैं जानता हूँ, अरे! यह तो मैं जानता था, यों जीवने अमूल्य रत्नचिंतामणि जैसी वस्तुको कंकर जैसी तुच्छ मान ली है।

"हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?
कोना संबंधे वळगणा छे? राखुं के ए परहरुं?
एना विचार विवेकपूर्वक शांत भावे जो कर्यां,
तो सर्व आत्मिक ज्ञाननां सिद्धांत तत्त्व अनुभव्यां."

यह 'अमूल्य तत्त्वविचार' नाम रखकर परमकृपालुदेवने बताया है तो भी जीव मोहनिद्रामें सो रहा है। अनंतकालके बाद ऐसी बात हाथ लगी है और यदि जागृत होकर उसका लाभ नहीं लिया गया तो अनंतकाल तक दुबारा हाथ नहीं लगेगी, ऐसी परम पुरुषकी दुर्लभ वाणी सत्संगमें सुननेको मिलती है। उसका अत्यंत माहात्म्य रखकर यथासंभव विचारकर, बारंबार उसी भावनामें रहना उचित है। डाका पड़े ऐसा दुष्काल हो या लुटेरोंका भय हो तब लोग जैसे जागृत रहते हैं, सावधान रहते हैं कि जीवनभर परिश्रम कर एकत्रित किया धन कहीं घड़ी भरमें लुट न जाय, वैसे ही मृत्युका धावा तो अवश्य ही होनेवाला है और मनुष्यभवकी सामग्री लुट जानेवाली है। किंतु जो पहलेसे चेत जायेंगे, धर्म कर लेंगे, आत्माको पहचान लेंगे, उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करते रहेंगे, वे बच जायेंगे, वे अमर हो जायेंगे, शाश्वतपदको प्राप्त कर लेंगे। इस कालमें समकित प्राप्त किया जा सकता है। यदि जीव इस अवसरको चूक जायेगा तो फिर ऐसा अवसर आना दुर्लभ है। 'छह पद'के पत्र पर प्रतिदिन बारंबार विचार करना चाहिये।

★★★

२१ तीर्थक्षेत्र आबू, ता. २-६-१९३५

तत् ॐ सत्

"बहु पुण्यकेरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मळ्यो,
तोये अरे! भव चक्रनो आंटो नहि एक्के टळ्यो;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे, लेश ए लक्षे लहो,
क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो, राची रहो?''—श्रीमद् राजचंद्र

जन्म-जरा-मरणके दुःख भारी हैं। राजा या रंक मृत्यु सबके सिर पर सवार है। उसे टालनेके लिये सत्संगकी आवश्यकता है। सत्संगके अनेक भेद हैं। पर जहाँ आत्माकी ही बात होती हो, कोई भेदी पुरुष हो और वह आत्माके बारेमें बताये तो उसे सुननेसे भी अनेक भव कम हो जाते हैं। अन्यको इसका पता नहीं चलता, पर ज्ञानी जानते हैं।

'आत्माका बल अधिक या कर्मका बल अधिक होगा?'

बल तो आत्माका अधिक है। पर उस सूर्यके सामने बादल आये हुए हों तब सूर्यमें अत्यंत गर्मी होने पर भी वह दिखाई नहीं देता, ढँक जाता है, हवामें ठंडक आ जाती है, किंतु वे बादल दूर हो सकते हैं। इसी प्रकार अभी जीव कर्मोंसे घिरा हुआ है और उसकी सारी शक्ति आवरित है, फिर भी उसका मोक्ष हो सकता है।

बहुत गहन बात कह रहे हैं। आत्मा है, आत्मा नित्य है, आत्मा कर्ता है, आत्मा भोक्ता है, मोक्ष है और उस मोक्षके उपाय हैं—इन छह पद पर बहुत विचार करना चाहिये। 'आत्मसिद्धि शास्त्र'में इसका विस्तार किया गया है, जो बहुत विचारणीय है। बड़े-बड़े महाभारत, पुराण या जैन शास्त्रोंकी अपेक्षा 'आत्मसिद्धि'में सुगमता और सरलतासे सर्व शास्त्रोंके साररूप बात की गयी है। यह गहन बात विचारवान जीवको बहुत लक्ष्यमें लेनी चाहिये। है छोटीसी पुस्तकके रूपमें, पर चमत्कारी वचन हैं। इसके बारेमें हम अधिक नहीं कहते। वे लब्धिवाक्य हैं, मंत्रस्वरूप हैं। ऋद्धि-सिद्धिकी कुछ आवश्यकता नहीं है, पर जन्ममरणके चक्कर समाप्त कर सकें ऐसे ये वचन हैं। कोई समझे या न समझे, फिर भी ये वचन कानमें पड़नेसे भी पुण्यबंध होता है। उसमें आत्मासंबंधी जो बात बतायी है वह मानने योग्य है, श्रद्धा करने योग्य है। उसमें गुरुगमकी आवश्यकता है। वह प्राप्त हो जाये तो जैसे तिजोरीके ताले खुल जाये और जो चाहिये वह निकाला जा सकें, वैसे ही गुरुगमसे आत्माकी पहचान होती है। गुरुगम न हो तो वह वस्तु प्राप्त नहीं होती। तिजोरीके ऊपर हाथ फिराते रहें किंतु अंदरकी वस्तु प्राप्त नहीं होती, वैसे ही गुरुगमरूपी चाबीके बिना स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

★★

२२ ता.२०-१०-१९३५

कई बार परिश्रम करने पर भी जिस वैराग्य और उपशमकी प्राप्ति नहीं होती, उस वैराग्य आदिकी प्राप्ति सुलभ हो ऐसा महाव्याधिका अवसर आनेपर देहकी और इस संसारकी अत्यंत असारता, अनित्यता और अशरणताका मुमुक्षुओंको प्रत्यक्ष अनुभव होता है और ज्ञानीके वचन अत्यंत सत्य प्रतीत होते हैं। यदि जीव इन देहादि पदार्थोंके स्वरूपका ज्ञानीपुरुषके वचनोंके अनुसार विवेकपूर्वक विचार करे तो अवश्य प्रतीति होगी कि वे अपने नहीं है। अपने हों तो चले क्यों जाते हैं? अनादिकालसे जो जीवका परिभ्रमण हुआ है, वह इनके संयोगसे ही हुआ है, जो अपने नहीं हैं उन्हें अपने माननेसे ही हुआ है और आज भी वही दुःखका कारण है, ऐसा लगे बिना नहीं रहेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साता-असाता तो देहका स्वभाव है, उन्हें अपने मानकर यह जीव उनकी प्राप्ति-अप्राप्तिके विचारोंमें और भावना करनेमें, आर्तध्यान कर अपना बुरा करनेमें कुछ कसर नहीं रखता। ज्ञानियोंने तो सभी संयोगोंको, देहादि और कुटुंब आदि सर्व संसार-संबंधोंको पर, पुद्गलका, कर्मरूप, असार, अध्रुव और दुःखमय ही कहा है। जो ज्ञानीका भक्त है उसे तो ज्ञानीके वचन मान्य ही होने चाहिये और इससे उसे साता-असाता दोनों समान हैं। असाता तो विशेष अनुकूल है कि जहाँ संसार-मायाका, परपदार्थोंके संयोगस्वरूपका प्रतिबंधरहित स्पष्ट दर्शन होता है कि जिससे जीव उसके स्वरूपका सहज विचार कर सके।

सभी ज्ञानीपुरुषोंने अनुभवपूर्वक इस संसारको दुःखमय जानकर उससे निवृत्त होनेका ही मार्ग ग्रहण किया है, इसके लिये अत्यंत पुरुषार्थकर विजय प्राप्त की है और यही उपदेश दिया है। अनेक भक्तोंने, संसारके दुःख भले ही आवें या जावें, पर प्रभुका विस्मरण न हो, यही माँगा है। श्री ऋभुराजाने तो भगवानके दर्शन होते ही यह माँग की कि इस राज्यलक्ष्मीका मुझे पुनः स्वप्नमें भी दर्शन न हो। यह सब संसारकी असारताको ही सूचित करता है, जिस पर विचार कर जीवको उससे उदासीन होना चाहिये।

महान महान पुरुषोंने भी भारी उपसर्ग और परिषहके प्रसंगमें चलित न होकर, खेद न कर, समभावको ही धारण किया है। संसार असार, पररूप, अपने आत्मस्वरूपसे बिलकुल भिन्न है, ऐसा जानकर निज शुद्ध आत्मस्वरूपमें ही स्थित हुए हैं।

मघा(नक्षत्र)की वर्षाके समान बोधप्रवाह बह रहा है, पर उसमेंसे एक-आध लोटा भी पानी पिया नहीं, भरकर भी नहीं रखा कि बादमें पिया जाय। सारा पानी क्यारीमें जानेके बदले बाहर बह गया। कहनेवाला कह देता है और जानेवाला चला जाता है। बार बार कहने पर भी, समझाने पर भी अपनी मति-समझ-आग्रहको नहीं छोड़ता जिससे हमारा कथन ग्रहण नहीं होता। जीवने अपनी दृष्टिसे ज्ञानीपुरुषको पहचाना है, और अपनी समझसे 'यह ज्ञानी है, यह ज्ञानी है' ऐसा मानकर ज्ञानियोंकी, ज्ञानियोंके मार्गकी मान्यताकर प्रवृत्ति करता है। इस विपरीत समझसे "मैंने ज्ञानीका मार्ग प्राप्त किया है, मैं ज्ञानीकी सच्ची भक्ति करता हूँ, मैं जैसा व्यवहार, प्रवृत्ति कर रहा हूँ वह ठीक है" यों सोचकर अपनेमें भी ऐसी ही कुछ मान्यता कर, उस मान्यताके आधार पर अन्य जीवोंको भी वैसा ही उपदेश देता है, यह सब अज्ञान है। अज्ञान संसारमें भटकानेवाला है। अभी भी मनुष्यदेह है, समझशक्ति है तब तक अवसर है। सम्यक् प्रकारसे ज्ञानीका कहना मान लेनेसे ही आत्महित होता है।

हमारे हृदयमें तो मात्र कृपालुदेव ही हैं, उनका ही रमण है। हमारी तो यही श्रद्धा और लक्ष्य है। हमारे समागममें जो जिज्ञासु आते हैं उन्हें हम तो यही मार्ग बताते हैं कि परमकृपालुदेवकी ही आज्ञा मान्य करो, उनकी ही श्रद्धा करो; उन्होंने जो स्वरूप जाना, अनुभव किया, वही सच्चा है, वही मेरा स्वरूप है; इस प्रकार उस पुरुषके वचनसे श्रद्धापूर्वक मान्य करो और उन्हींकी भक्तिमें निरंतर रहो, अन्य कुछ भी कल्पना न करो।

ये परपदार्थ, उनके संयोग, ये तुम्हारे नहीं हैं। उन्हें अपने आत्मस्वरूपके समान न मानो; परंतु परमकृपालुदेव-कथित यथार्थ आत्मस्वरूपको पहचानो तो कल्याण होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमकृपालुदेवकी ही शरण, आश्रय, निश्चय ग्रहण करो और आज तक जो कुछ किया, जो कुछ माना, जो कुछ उपदेश दिया, जो जो कल्पनाएँ कीं, वह सब मेरी भूल थी, स्वच्छंद था, कल्पना थी, नासमझी थी, अज्ञान था। उसका भारी खेदपूर्वक पूर्ण पश्चात्ताप कर, उससे वापस लौटकर, ज्ञानीसे क्षमा-याचना कर, आत्माको निःशल्य करो। अब तो मुझे एकमात्र परमकृपालुदेवकी ही शरण हो, उन्हींकी आज्ञामें निरंतर प्रवृत्ति हो। उन्होंने जिस स्वरूपका अनुभव किया है, वही मेरा स्वरूप है; अन्य देहादि संबंधोंमें अपनेपनकी कल्पना मिथ्या है, ऐसी समझ और श्रद्धा करनी चाहिये। जीव स्वयं ही जब ऐसा करेगा तभी मुक्ति होगी।

सच्ची श्रद्धा आने पर सच्चा वैराग्य आता है और ज्ञानियोंने देहादिको अनित्य आदि कहा है वह जीवके विचारमें, समझमें आता है। सच्ची श्रद्धाके बिना सच्चा प्रेम उत्पन्न नहीं होता और सच्चे प्रेमके बिना वस्तुकी प्राप्ति असंभव है। सच्ची श्रद्धा सहित परमकृपालुदेवकी भक्तिमें चित्तको संलग्न रखें, उसीमें तल्लीन बनें।

यह असातावेदनीय और सातावेदनीय तो कर्मानुसार है। आत्मस्वरूपका नाश करनेके लिये वेदनीय समर्थ नहीं है तो फिर उसकी चिंता या विकल्प क्यों करें? क्यों न परम भक्तिमें भावको बढ़ाकर सभी जन्ममरण आदि दुःखोंसे सदाके लिये मुक्त हो जायें? खेद या आर्त्तध्यान करनेसे तो वह वेदनीय जीवको नवीन कर्मबंधका हेतु बनती है, जिन्हें भविष्यमें भोगना पड़ेगा। अतः समझदार व्यक्तिको अपने आत्मा पर दया कर, क्षमा और धैर्यसे अपने भाव सुधार कर, इस प्रतिकूल प्रसंगसे लाभ क्यों न उठाना चाहिये? यह मित्र जैसे लगनेवाले पर वास्तवमें बलवान शत्रुके समान देहादि संयोगोंमें कुछ भी प्रीति करना योग्य है ही नहीं। उधरसे अपने भावोंको मोड़कर परमकृपालुदेव द्वारा उपदिष्ट उपशम और वैराग्यमें तथा परमकृपालुदेवकी अपूर्व परम आज्ञाकी आराधनामें, भक्तिमें, शरणमें, आश्रयमें एकता करना उचित है।

परमकृपालुदेवकी श्रद्धा जो हमारे कहनेसे करेंगे उनका कल्याण होगा, ऐसा जो कहा था तथा संतके कहनेसे परमकृपालुदेवकी आज्ञा मुझे मान्य है, यों प्रतिज्ञा पूर्वक सभीने परमकृपालुदेवके समक्ष कहा था उसे याद कर, श्रद्धा जितनी दृढ़ हो उतनी करनी चाहिये। हाथीके पाँवमें सबके पाँव समा जाते हैं, वैसे ही परमकृपालुदेवकी भक्तिमें सर्व ज्ञानियोंकी भक्ति आ जाती है; अतः भेदभावकी कल्पना दूर कर, जो आज्ञा हुई है उसके अनुसार 'वाळ्यो वळे जेम हेम' (स्वर्णकी तरह चाहे ज्यों मोड़ा जा सके) यों अपने भाव मोड़कर एक पर आ जाना योग्य है।

★★★

२३ ता. ३१-१०-१९३५

माया सब मिथ्या है। मेरे पास इतना धन है, इतना पुत्र-परिवार है, इतना अधिकार है जिससे अब मुझे कुछ डरने जैसा नहीं है—मुझे क्या कमी है? यों जीव मानता है। तथा अहंभाव-ममत्वभाव सहित दान, दया, तप आदि धर्म करता है। पर यह सब तो भैंसेको खेतमेंसे निकालनेके लिये साठा लेकर मारने जैसा है। भैंसा कहता है कि ऐसे तो मैं बहुत चबा गया हूँ। वैसे ही यह जीव मायाके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधन अनंतकालसे प्राप्त करता आया है और क्रियाकाण्डमें प्रवृत्ति करता आया है, किंतु इससे जन्ममरण दूर नहीं हो सकते।

किंतु पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ ऐसा अपूर्व यह समकित है, आत्मश्रद्धा है। उसे प्राप्त करनेकी भावना, तीव्र जिज्ञासा बारंबार करनी चाहिये। आत्माकी पहचान होने पर ही कल्याण है और तभी मिथ्यात्वका नाश होगा और मोक्षका मार्ग प्रशस्त होगा। स्वच्छंद मोक्षमार्गको रोकनेवाला, बंद करनेवाला किवाड़ है। उसे दूर करनेका साधन भी आत्मज्ञान और आत्मभावना है।

आत्मार्थके लक्ष्यसे, आत्मभावनासे जितना प्रवर्तन, भाव होगा, उतना जीवन सार्थक है, शेष सब तो माया-प्रपंचमें बहा जा रहा है ऐसा सोचकर, वैराग्य-उपशमकी वृद्धि हो, मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ इन चार भावना सहित व्यवहार हो ऐसा पुरुषार्थ कर्तव्य है। और सत्संगकी भावना बढ़ती रहे वैसा करना उचित है। बीस दोहे, क्षमापनाका पाठ, छह पदका पत्र, आत्मसिद्धि आदि भक्ति-स्मरणमें नित्य नियमित अमुक समय बितानेका लक्ष्य रखें।

★
★★

२४ मार्गशीर्ष सं. १९९२, ता. १४-११-३५

इस दुषमकालमें इस मनुष्यभवका आयुष्य बहुत अनिश्चित है। कालका भरोसा नहीं है और मायाका अंत नहीं है। जीव यों के यों सब काम अधूरे छोड़कर परभवसे आया है, किन्तु पूर्वमें जाने-अनजाने कुछ पुण्य-बंध हुआ होगा जिसके फलस्वरूप यह मनुष्यभव, उत्तम कुल, नीरोगी काया, निश्चित आजीविका चले ऐसे साधन, सत्पुरुषका योग और परमकृपालुदेव जैसे सच्चे पुरुषकी शरण, स्मरण आदिके संयोग मिल गये हैं। जीव इतनी उच्च स्थितिमें आया है फिर भी प्रमाद करेगा तो सब सामग्री चली जानेमें समय नहीं लगेगा। छोटा बालक भी खाट या पलंगसे गिरनेसे डरता है और बचनेका प्रयत्न करता है। किंतु यह मूर्ख जीव इस उच्च दशासे गिरकर अधोगतिमें कहाँ फँस जायेगा, इसका उसे भय नहीं है, न सावधान ही होता है। मनुष्यभव यों ही चला जायेगा तो फिर क्या दशा होगी इसका जीवको अभी भी भान नहीं है। चार गतिमें तथा उसमें भी नरक-तिर्यंचमें कितने अधिक दुःख हैं इसे मृगापुत्रके चरित्रमें परमकृपालु देवने 'भावनाबोध'में कितना अधिक विस्तारसे लिखा है? फिर भी जीवको सत्पुरुषके वचनकी सत्यता हृदयमें चुभती नहीं, त्रास नहीं होता। यह सब मोहनीयकर्मका छाक है। सत्संग-समागममें बोध श्रवण करनेकी, जोरदार थप्पड़ लगनेकी आवश्यकता है, तभी जीव जागृत हो सकता है।

चक्रवर्ती जैसे छह खंडके राज्यका और छियानवे हजार स्त्रियोंका त्याग कर आत्महित करनेके लिये भिखारीकी भाँति अकिंचन होकर चल पड़े, उनमें कितना वैराग्य होगा? और यह जीव तो तुच्छ वस्तुओंमें वृत्ति पिरोकर सुखी होना चाहता है; तो यह सुखका मार्ग है या महापुरुषों द्वारा आचरित मार्ग महासुखकारी है? इस कथन पर गहन चिंतन करना चाहिये। सत्संगके अभावमें अनादि मोहका बल जीवको कर्मबंधनके कारणोंमें फँसा देता है और जीव उसमें आनंद मानता है। किंतु उसके प्रति विष, विष और विषकी दृष्टि रखकर, सत्संगकी भावना रखकर जीना उचित है और अवसर मिलने पर अवश्य ही सत्संग विशेष विशेष उत्साहसे करते रहना योग्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहनेवाला कह देता है, परंतु मानना या नहीं मानना यह आपके हाथकी बात है। सत्संग, भक्तिमें भाव बढ़े, इस प्रकार सत्संगके वियोगमें भी मुमुक्षुको प्रवृत्ति करनी चाहिये।

★★★

२५ मार्गशीर्ष, सं. १९९२, ता. १४-११-३५

अनेक मुमुक्षु दूर-दूरसे आकर, परमकृपालुदेवकी भक्तिमें रंगकर आत्महित साध जाते हैं और आपको इतना समागम होने पर भी ऐसा क्या कारण है कि सत्संग-समागम करनेमें इतना अधिक विघ्न आता है? धन, कुटुंब, काया आदिके लिये कुछ काम हो तो उसकी चिंता रखते हैं और देर-सबेरसे उस कामको कर लेते हैं; तब इस आत्माका हित हो उस कामको करनेके लिये सत्संगकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती? या यह काम कम आवश्यक लगता है? या आत्माके हितका काम इस भवमें करना ही नहीं है ऐसा निश्चय कर रखा है या क्या सोच रखा है? धन, काया आदि पदार्थ तो कल सुबह राख होकर उड़ जायेंगे। कोई किसीका सगा नहीं है। स्व० माधवजी शेठ धन-संपत्तिमेंसे क्या साथ ले गये? धर्मके प्रति उन्हें जितना प्रेम अंत समयमें जागृत हुआ था, वही वे साथ ले गये और वही उनको अच्छी गतिमें ले गया। संसारकी प्रवृत्तिमें तो जीव अशुभ भाव कर अधोगतिमें जाना पड़े ऐसे कारण एकत्रित कर रहा है। उसमें जो कोई भी सत्पुरुषके वचन सुनकर ग्रहण करेगा, जागृत होगा और धर्मकी आराधना करेगा, वह सुखी होगा। जिसे सत्पुरुषका योग हुआ है, जिसने सत्पुरुषकी सेवा की है, उसको तो इस असार संसारमें पामर प्राणियोंकी भाँति उसीमें आसक्त रहना उचित नहीं है। सौ दो सौ रुपये मिलनेवाले हों तो जीव गाडीमें बैठकर मुंबई तक दौड़ा चला जाता है, किन्तु सत्संगमें जो अलभ्य लाभ मिलता है, जन्म-जरा-मरणसे छूटकर, मोक्षप्राप्तिके हेतभूत समकितका लाभ होता है ऐसे संयोगका जीवको अभी तक माहात्म्य ही नहीं लगा है। जीवको बोधकी कमी है और सत्संगके बिना बोधकी प्राप्ति नहीं होती, अतः बारंबार समागमका योग प्राप्त हो ऐसा पुरुषार्थ करना चाहिये। आपके निमित्तसे आपके माताजी, भाई आदि अनेक जीवोंको आत्महितका कारण प्राप्त हो सकता है। वह प्रमाद या मोहके कारण रुक रहा है, अतः जागृत होकर आत्माकी संभाल अब लीजियेगा।

विशेष क्या कहें? कालका भरोसा नहीं है। प्राण लिये या लेगा यों हो रहा है। अचानक काल आ पहुँचेगा और संसारके सब काम अधूरे छोड़कर अकेले जाना पड़ेगा। शरीरमें रोग, व्याधि प्रकट होंगे तब कोई नहीं ले सकेगा, सब ताकते रह जायेंगे और अकेले ही इस आत्माको दुःख भोगने पड़ेंगे। अतः कुटुंब आदिका प्रतिबंध कम कर सत्संग-समागममें चित्तवृत्ति विशेष लगे ऐसा सोचकर प्रवृत्ति करना उचित है।

चाहे जितने दुःख उठाने पड़े, धनकी हानि होती हो, अपमान होता हो तो भी सत्संग-समागम करते रहनेका अनुरोध है, इसे न भूलियेगा। हृदयमें गहरे उतरकर विचार कीजियेगा। यह जीव बिचारा मनुष्यभव हार न जाय इस प्रकार उसकी दया करनी चाहिये। ऐसा अवसर अन्य किसी भवमें मिलना अत्यंत दुर्लभ है अतः सावधान हो जायें।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६ कार्तिक सुदी ७, सं.१९९२

एक सद्गुरुकी दृढ़ शरण ग्रहण कर निर्भय हो जाना चाहिये। व्याधि, पीड़ा, परिषह-उपसर्ग चाहे जो आ पड़ें उन्हें धैर्य, समता, सहनशीलतासे शांतिपूर्वक सहन कर लेना चाहिये। ये सब जानेके लिये ही आते हैं। कर्म अनंतकालसे आते हैं और जाते हैं। कोई टिक नहीं पाये। नरकके दुःख भी जीवने अनंतबार भोगे हैं, किंतु आत्माका कोई प्रदेश भी न घिसा है न कम हुआ है। अतः किसीसे घबराना नहीं चाहिये। आये उससे दुगने आओ ऐसा कहनेसे अधिक आयेंगे नहीं तथा चले जाओ कहनेसे जायेंगे भी नहीं। जो चले गये हैं वे लौटकर फिर कभी आनेवाले नहीं हैं। अतः एक सद्गुरुका अवलंबन ग्रहण कर उनकी शरणमें जो होता है उसे देखते रहना चाहिये, घबराना नहीं चाहिये। मंत्रका स्मरण निरंतर करते रहना चाहिये। जब तक भान रहे तब तक स्मरणमें भाव रखें। ज्ञानीपुरुषने जैसा आत्मा जाना है वैसा ही मेरा आत्मा है। आवरणके कारण मुझे पता नहीं है, पर मैंने जिनकी शरण ग्रहण की है उन्होंने निःशंक रूपसे सत्य आत्माको जाना है, इस श्रद्धाको दृढ़तासे मृत्यु पर्यंत टिकाकर रखना चाहिये। इतनी दृढ़ता रहे तो कोई आत्माका बाल भी बाँका करनेमें समर्थ नहीं है।

"धिंग धणी माथे किया रे, कुण गंजे नर खेट?"

★★★

२७ ता.२६-१-१९३६

सत्संग, सत्पुरुषार्थकी जीवको बहुत आवश्यकता है। [१]बातें करनेसे काम नहीं होता, करना पड़ेगा। एक मरजिया सौको भारी होता है। उठो, खड़े हो जाओ। [२]वार करे उसकी तलवार। तुम्हारी देरमें देर है। योग्यता लाओ। पात्रके बिना किसमें रखेंगे? योग्यता हो तो देर नहीं है। आत्मा ही करेगा। किये बिना छुटकारा नहीं है। जीवकी ही भूल है। [३]मान्य करनेवालेकी बात है। "इसके मिलने, इसको सुनने और इस पर श्रद्धा करनेसे ही छूटनेकी बातका आत्मासे गुंजार होगा।" सत्पुरुषार्थ संबंधी, विनय और लघुता संबंधी, मरे हुएको जीवित कर दे ऐसा अमृत समान अत्युत्तम बोध सुनकर हृदयमें लिखकर रखना चाहिये। मीठी [४]कुँईयाँका पानी है, जो पियेगा उसकी प्यास बुझेगी, भरकर रखेगा उसके काम आयेगा और प्रमादमें बह जाने देगा वह पछतायेगा, प्यासा मरेगा। यह जीव प्रमादमें गोते खाता रहता है, चेतता नहीं है, यह बड़ी भूल है। 'भरत, चेत!'

"ज्ञान गरीबी गुरु वचन, नरम वचन निर्दोष,
इनकूँ कभी न छांडिये, श्रद्धा, शील, संतोष."

★★★

---

१. मूल गुजराती कहावत—'वातोअे वडा नहीं थाय.' २. मूल गुजराती पाठ—'मारे तेनी तरवार, तारी वारे वार! ३. मूल गुजराती पाठ 'वात छे मान्यानी।' ४. गुजराती मूल शब्द 'वीरडी' है जिसका अर्थ होता है—नदी या तालाबके सूखे भागमें पानीके लिये खोदा गया खड्डा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८ ता. ८-२-१९३६

जीवको जन्म-मरणके दुःख जैसा अन्य कोई दुःख नहीं है। तृष्णा, मूर्च्छाके कारण जन्म-मरण होते रहते हैं। तृष्णा किसीकी पूरी नहीं हो सकती। चाहे जितनी कमाई की हो तो भी कुछ साथ जानेवाला नहीं है। साढे तीन हाथकी भूमिमें शरीरको जला देंगे। मृत्युका भय सिरपर है। फिर भी जीव ऐसा समझता है कि मुझे मरना ही नहीं है। ऐसा सोचकर आँखें बंद कर आरंभ-परिग्रहमें प्रवृत्ति करता है और रात-दिन कल्पना ही कल्पनामें गूँथा रहता है।

"जहाँ कलपना जलपना, तहाँ मानूं दुःखछांय;
मिटे कलपना-जलपना, तब वस्तू तिन पाई."

"क्या इच्छत? खोवत सबै, है इच्छा दुःखमूल;
जब इच्छाका नाश तब, मिटे अनादि भूल."

यों परमकृपालुदेवने तो पुकार-पुकार कर कहा है, पर जीवने उस पर ध्यान नहीं दिया है। 'कथा सुन-सुन फूटे कान, तो भी न आया ब्रह्मज्ञान।" "तिलक करते तेपन बहे, जपमालाके नाके गये।" यों इस जीवने कुछ ध्यानमें नहीं लिया है। सुना पर गुना नहीं। बातें करनेसे काम नहीं होता। बातोंके बड़ोंसे पेट नहीं भरता। अब तो कुछ जागृत हो, चेत जाये और सत्पुरुषार्थ करे तो कल्याण होगा। 'आत्मा है' ऐसा सुना है, बातें की हैं, पर कुछ अनुभव हुआ? जो करने योग्य है वह इस जीवने किया नहीं है। आरंभ-परिग्रह, विषय, वासना, तृष्णाको कम करनेसे समाधिसुख प्रगट होता है। जीवको मात्र समझनेकी जरूरत है। उसके लिये सत्संग, समाधि, बोध और श्रद्धासहित सत्पुरुषार्थ कर्तव्य है। समभाव कोई अपूर्व वस्तु है! उसको बुलायें, हृदयमें स्थान दें। "सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो, आ वचनने हृदये लखो।" समभावकी पहचान, समझ कर लेनी है। "भान नहीं निजरूपनुं ते निश्चय नहीं सार।"

अंतर्मुहूर्तमें समकित, अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान होता है ऐसा कहा है, वह असत्य नहीं है। मात्र जीवके भाव जाग्रत होने चाहिये। यह किसीके हाथकी बात नहीं है। 'वार करे उसकी तलवार,' 'चतुरकी दो घड़ी और मूर्खकी पूरी जिंदगी।'

★★★

२९ अहमदाबाद, मार्गशीर्ष सुदी, सं. १९९१

हम बयासी वर्षके हो गये। अब इस अंतिम शिक्षाको ध्यानमें लेंगे तो हित होगा। हमारी तरह सेठजीकी भी उम्र हुई है। उन्होंने जैसी दृढ़ता की है वैसी आप सबको करनी है। मिल-झुलकर रहेंगे तो सुखी होंगे। 'जहाँ एकता वहाँ शांति।' जितना कषायका अभाव, उतना ही धर्म समझना चाहिये। भाइयों और बहनोंमें एक दूसरेके प्रति जितना सद्भाव रहेगा, आज्ञाकारिता रहेगी, बड़ोंकी मर्यादा रहेगी, उतनी ही एकता रहेगी। एकताका बल व्यवहारमें—परमार्थमें आवश्यक है। हमें अच्छा न लगता हो तो भी बड़ोंकी भूल हमारे मनमें न बसें वैसे रहना योग्य है। वे कुछ कह भी दें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो भी वे बड़े हैं, कठोर वचन कहनेवाला संसारमें कोई नहीं मिलता, भले ही बोल गये; अतः बुरा नहीं लगाना चाहिये—यों गंभीरता रखकर सहनशीलता और विनयपूर्वक व्यवहार करेंगे तो सुखी होंगे।

★★★

३०

हमारे आत्मामें किसी प्रकारका विषमभाव नहीं है। आप हमारे साक्षात् आत्मा है। 'सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो' यही मार्ग है। परमगुरुके परम हितकारी वचन स्मृतिमें लाकर चित्तवृत्ति सत्पुरुषके वचनमें, बोधमें रखनेसे कोटि कर्मका क्षय होता है। क्षमा, समतासे सहना, सहनशीलता, धैर्य, शांति, समभाव—यह परमौषधि ज्ञानियोंने बताई है, इसके द्वारा अनंत दुःखसे भरे हुए इस संसारसमुद्रको पार किया जा सकता है। शारीरिक वेदना वेदनाके क्षयकालमें निवृत्त होगी और असाताके बाद साता दीखेगी। धूपके बाद छाया और छायाके बाद धूप, यों पानी भरकर आते और खाली होते अरहटके चक्रकी भाँति हो रहा है। समझदार व्यक्ति उसमें हर्षशोक नहीं करते। अपितु असाताके प्रसंगको परीक्षाका समय मानकर उसका सामना करनेको उद्यत हो जाते हैं, तथा विशेष वीर्य स्फुरित कर असाताके समयको आत्मकल्याणका उत्तम निमित्त बना लेते हैं। संसारकी असारताको जानकर, एकत्व भावना भाते हुए, असंग आत्माका निरंतर लक्ष्य रखते हैं। अनेक महापुरुषोंको कष्टके प्रसंग आये हैं। श्री गजसुकुमारके सिर पर पाल बाँधकर धकधकते अंगारे भरे, उस समयकी असह्य वेदनाको समभावसे श्री नेमिनाथ भगवानके वचनबलके आधार पर सहन करनेसे हजारों भव करनेवाले थे, उस सबको समाप्त कर मोक्ष पधारे। वैसे ही श्री अवंतिसुकुमाल जैसे सुकोमल शरीरवालेको, वनमें तीन दिन तक सियार पैरसे लेकर आँतों तक माँस तोड़कर खाने पर भी, सहन करना पड़ा है। उनकी समताको धन्य है कि सद्गुरु द्वारा बताये गये आत्माको वे समयमात्रके लिये भी न भूले। इसी प्रकार पांडवोंको तप्त लोहेके लाल सुर्ख आभूषण पहनाये, फिर भी मनमें कुछ भी न लाकर शरीरको जलने दिया और आत्मामें दृष्टि रखकर कल्याण कर गये।

ऐसे दृष्टांत याद रखकर धैर्य धारण करें। इस जीवने नरक-निगोद आदिके दुःखोंका अनंत बार अनुभव किया है। सहन करनेमें कुछ कमी नहीं रखी है। हिम्मत हारने जैसा नहीं है। कायर बनने पर भी कर्म छोड़ेंगे नहीं। अतः शूरवीरता ग्रहण कर, ज्ञानीके समताभावके मार्गको ग्रहण कर, देहादिसे अपनी भिन्नता विचार कर द्रष्टाभावसे, साक्षीभावसे रहना चाहिये। अन्य सब भूल जाने जैसा है। जो-जो संकल्प-विकल्प आकर खड़े हो उनका सन्मान न कर, उसमें समय न खोकर, उन्हें शत्रु मानकर, उनसे मनको मोड लें और सद्गुरुकी शरणमें, उनके बोधमें, स्मरणमें लीन होना उचित है। कालका भरोसा नहीं है, प्राण लिये या लेगा यों हो रहा है। यह मनुष्यभव चाहे जैसी दशामें हो, तब भी वह दुर्लभ है, ऐसा समझकर समयमात्रका भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। भगवानके इन वचनोंपर बारंबार विचार कर शुद्ध आत्मस्वरूपकी भावनामें निरंतर रहनेका पुरुषार्थ करना चाहिये। मैं कुछ नहीं जानता, परंतु सत्पुरुषने जो जाना है, अनुभव किया है और हम पर परमकृपा कर उपदेश द्वारा बताया है, वह परम सत्य है। वही मेरे मानने योग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। अन्य किसी भी प्रकारकी अहंभाव-ममत्वभावकी कल्पना मुझमें न हो। "सत् जो कुछ भी है, वह सत् ही है।" उसमें मुझे अपनी कल्पनाको मिलाकर उसे असत् नहीं बनाना है। वह परम सत् श्री सद्गुरु द्वारा अनुभूत मुझे मान्य है और उसीकी श्रद्धा मुझे रहे! अभी मुझे सुखदुःखरूप, साता-असातारूप, चित्र-विचित्ररूप जो लगता हैं उसे मुझे नहीं मानना है; परंतु परम आनंदस्वरूप, सर्व दुःखका आत्यंतिक नाश करनेवाला परमात्मस्वरूप मेरा है, उसमें मेरी अडोल स्थिति हो, इस भावनाकी वृद्धि करना योग्य है।

जब तक यह मनुष्यभव है तब तक सद्गुरुकी आज्ञासे प्रवृत्ति करनेका निश्चय और पुरुषार्थ चालू रखकर समय बिताना चाहिये। सत्पुरुषका योग और सद्बोधकी प्राप्ति तभी सफल मानी जायेगी कि जब हम सिंहकी सन्तानकी तरह दुःखके प्रसंगोंमें भी कायर न होकर सिंह जैसी शूरवीरता धारण करें और उनके पदानुसार चलकर उनकी दशाको प्राप्त करनेके भाग्यशाली बनें। 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?' इसका बारंबार यथाशक्य विचार पूर्वक स्मरण-भावना कर, उस दशामें रमण हो ऐसा पुरुषार्थ कर्तव्य है। परिणामकी धारा पर ही बंधमोक्षका आधार है। सद्गुरुके इस बोध पर विचार कर, विभाव परिणतिको रोककर, परमें अर्थात् राग-द्वेष-मोह-विषयमें तन्मयता हो जाती है, उसे बलपूर्वक विचार-विचारकर दूर करके आत्मभावनामें भावना रखनेसे परम कल्याण होता है। वृत्तिको रोकना, संकल्प-विकल्प परमें होते रोकना, यह सत्पुरुषकी हित-शिक्षा है। 'श्री सद्गुरुने कहा है ऐसे निर्ग्रंथ मार्गका सदैव आश्रय रहे।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचारणा

१

ॐ

उठो, खड़े हो जाओ, आत्मभावमें।

यह क्या है?

संसार है, भ्रम है; निवृत्त हो जाओ, चलो समभावमें।

देखते रहो—स्वप्नवत् है।

आप कौन हैं?

आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ।

क्या राजा हैं?

हाँ!

यह प्रजा क्या कर रही है?

सुन रही है।

उसकी देखभाल कौन करता है?

विवेक।

यह दूसरा कौन है?

विचार। चलो विचारके पास।

आपको कुछ कहना है?

हाँ, उपयोगमें पहुँचो।

उपयोगमें कुछ देखना है?

हाँ।

चलो तब।

देखो।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ।

असंग हूँ, एक हूँ।

शांतिः शांतिः शांतिः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२

सब पर प्रीति न करें। विभाव परिणामसे थक जायें। सब भ्रम है। जैसे सर्व प्राणियोंको आधारभूत पृथ्वी है, वैसे ही आत्माको कल्याणरूप शांति है। अंतरात्मासे बाह्यात्माका त्याग करता हूँ और परमात्माका स्मरण करता हूँ। ब्रह्मचर्य सर्वोत्कृष्ट साधन है। गहन विचार करें। जीवको घडीभर भी ढ़ीला न छोड़ें, मनकी इच्छानुसार न करें। आत्मा अमूल्य है, इसे निर्मूल्य न करें। सब तुच्छ है, तू अमूल्य है। सब भूल जायें। सदा समीप रहें। सबके शिष्य बनें। क्रोधादि कभी न करूँ। मोहादि, रागादि न करूँ। मुक्ति सिवाय इच्छा न करूँ। हे भगवान्! सातवीं तमतमप्रभा नरककी वेदना स्वीकार करूँ, किंतु जगतकी मोहिनी नहीं चाहिये। क्षण-क्षण बदलती वृत्ति नहीं चाहिये। जो रूप दृश्य है वह जानता नहीं है, जानता है वह दृश्य नहीं है, तब व्यवहार किसके साथ करूँ? व्यवहार तो जाननेवालेसे ही हो सकता है। आत्मा अरूपी है, वह इंद्रिय-ग्राह्य नहीं है, अतः मध्यस्थ-उदासीन होता हूँ। जीवको भेदज्ञानकी आवश्यकता है। अत्यंत खेदकी बात है कि विषयोंके आकार द्वारा सर्व ज्ञानरूपी धनका हरण करनेवाले और देहमें रहे हुए इंद्रियोंरूपी चोरोंने लोकका नाश किया है।

***

३

सहजात्मस्वरूप परमगुरु

हम जानते हैं
हमें पता है।
अब क्या है?
स्वार्थबुद्धि करते हो?
स्व-परहित कर्तव्य है।
पुराना छोड़े बिना नहीं चलेगा। छोड़ना पड़ेगा।
भूल जाओ।
असंग, अप्रतिबंध, शमभाव, समता, क्षमा, धैर्य, सद्विचार, विवेक, समाधिमरण।

शांतिः शांतिः शांतिः

***

४

तत् ॐ सत्

आत्मा है—द्रष्टा, साक्षी है।
बँधा हुआ छूटता है—समभावपूर्वक देखनेसे।
कर समता।
संचित, प्रारब्धकर्म, उदयाधीन भोगकर मुक्त होता है।
इस पर विचार कर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बँधा हुआ कर्म छूटनेसे प्रसन्न होना चाहिये—आर्तध्यान, रौद्रध्यान कर्तव्य नहीं है।
ब्रह्म मात्र बाह्यसे (पुद्गलसे) भिन्न है जी। शांतिः शांतिः

★★★

५

नहीं है वह है, है वह नहीं है।
सभी है।
अन्य।
विचार। समझो।

★★★

६

जीव अपनी दृष्टिसे कल्पना कर कर परिभ्रमण करता है।
जीवने ज्ञानीकी दृष्टिसे नहीं सोचा।
ज्ञानीके घर इजारा है।
बाह्यदृष्टिसे आत्मा स्थान-स्थान पर बँधता है।
कण बिखेर दिये हैं।
बिगड़ा सुधारें।
सुधरेको बिगाड़े नहीं।

★★★

७ श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास,
फाल्गुन वदी १२, सं.१९८३

सत्पुरुषका मार्ग, सन्मुख दृष्टि, ज्ञानीका बोध जिसे प्राप्त हुआ है, उसे पूर्वप्रारब्धके उदयसे साता-असाता आने पर उस ज्ञानीकी परीक्षा है जी।

स्वभावसे—	विभावसे—
शुद्ध चेतना है।	अशुद्ध चेतना है।
सामान्यतः शुद्ध चेतना है।	वह भ्रम है—
विशेषतः ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय	इसके कारण अज्ञान कहलाता है।
शुद्ध चेतना है।	जिससे मिथ्या मोह परिणत होकर वे भाव
	स्फुरित होकर जीवमें रागद्वेष आते हैं, तब विषय
	कषायकी सहायतासे जीव शुभाशुभ कर्म बाँधता
	है और भोगते हुए अभिन्नता मानता है,
	वह पूर्वकर्मके उदयके कारण है जी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः सत्पुरुषसे यथातथ्य निश्चयकर शुद्धात्मा भिन्न है, यह मानना, बारंबार विचार करना योग्य है जी।

★
★ ★

८

[प्रभुश्री मौन रहते तब स्लेटमें प्रश्नादि लिखते और चर्चा होती, उसकी नोंध]

(१) कार्तिक सुदी ९, बुध, सं.१९८८
ता.१८-११-३१

प्रभुश्री—उजागर क्या है?

मुमुक्षु—संपूर्ण आत्मोपयोगकी जागृति।

प्रभुश्री—जागृति कब कहलायेगी?

मुमुक्षु—वीतरागता रहे तब।

प्रभुश्री—वीतरागता किसे कहेंगे?

मुमुक्षु—स्वरूपका सच्चा शुद्ध अनुभव हो तब वीतरागता होती है।

प्रभुश्री—अनुभवको गुरुमुखसे सुनकर वेदा जाता है सो कैसे?

मुमुक्षु—गुरुमुखसे श्रवण अनुभव होता है वह सच्चा है।

प्रभुश्री—क्या जीवने गुरुमुखसे जाना है?

मुमुक्षु—जिसने जाना है उसने जाना है; वह ज्ञानी है।

प्रभुश्री—इस जीवने गुरुमुखसे जाना है, माना है, परिणमन हुआ है, अनुभव किया है, फिर भी कुछ रहता है क्या?

मुमुक्षु—बारहवें गुणस्थान तक साधन और सद्गुरुका अवलंबन कहा गया है।

प्रभुश्री—श्री महावीरने भी साढ़े बारह वर्ष कर्मक्षय करनेके लिये पुरुषार्थ किया है।

मुमुक्षु—अनुभव होनेके बाद भी पुरुषार्थ चाहिये।

प्रभुश्री—श्वासोच्छ्वासमें कर्मक्षय, वह कैसे भावोंसे?

मुमुक्षु—ज्ञानी श्वासोच्छ्वासमें ज्ञानमय भावोंसे अनंत कर्मोंका क्षय करते हैं।

प्रभुश्री—ज्ञानीका उपयोग कुछ और ही है! जिससे श्वासोच्छ्वासमें अनंत कर्मोंका क्षय होता है। मिथ्यात्वीका उपयोग उससे भिन्न प्रकारका है।

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) कार्तिक सुदी १०, गुरु, सं. १९८८,
ता. १९-११-३१

प्रभुश्री—कर्तव्य है। चेतने जैसा है। किंतु उन सबका कारण एक सत्पुरुषके प्रति दृढ़ श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, आस्था है। सुननेका कारण क्या है?

मुमुक्षु—यथार्थ बोधके बिना शुद्धि नहीं है।

प्रभुश्री—मनुष्यभव दुर्लभ है ऐसा क्यों कहा जाता है? +'ऊठी नाठा बोद्धा' [1]'समकित साथे सगाई कीधी सपरिवारशुं गाढी।'

★

(३) कार्तिक सुदी १२, रवि, सं. १९८८,
ता. २२-११-३१

प्रभुश्री—अनंतानुबंधीके स्वरूपका भान नहीं है।

मुमुक्षु—अनंतानुबंधीके स्वरूपका भान कब होगा?

प्रभुश्री—सत्संगमें सद्गुरुके बोधको सरलतासे सुनकर रुचिसे माने तो समझमें आता है। पर मोहनीयकी प्रबलता है। सूक्ष्म मान भीतरसे बुरा कर रहा है। बुद्धिसे मैं समझता हूँ ऐसा मानता है, जिससे सद्गुरुका बोध विरुद्ध भासित होता है और कषायका पोषण होता है।

मुमुक्षु—दोष-नाश होनेका क्या उपाय?

प्रभुश्री—सद्गुरुका बोध।

मुमुक्षु—ग्रंथि कब नष्ट होगी?

प्रभुश्री—कब नष्ट हुई कहेंगे? वह तो अपने आत्माको जाने तब सब झगड़ा समाप्त होता है।

मुमुक्षु—सत्पुरुषके बोधसे अनंतानुबंधी और दर्शनमोहनीय जाता है, पर योग्यताकी कमीसे बोधका परिणमन नहीं होता।

प्रभुश्री—वर्षा होने पर भी ढँकी हुई मिट्टी गीली नहीं होती।

मुमुक्षु—वर्षाका पानी टंकीमें भरकर रखा जाता है। पानी गिरता है, पर टंकी भरती नहीं—ढक्कन बंद है इसलिये।

प्रभुश्री—ढक्कन क्या? घाती पहाड़।

मुमुक्षु—घाती पहाड़ क्या?

प्रभुश्री—घाती कर्म।

+ मूर्ख उठकर भाग गये। १ समकितके साथ स्नेह-संबंध किया, मात्र उस समकितके साथ ही नहीं किंतु उसके कुटुंबियोंके साथ अर्थात् शम-संवेग आदिके साथ भी प्रेम संबंध जोड़ा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुमुक्षु—सम्यक्त्व कैसे परिणत होता है?

प्रभुश्री—सद्गुरुके बोधसे।

मुमुक्षु—वर्षामें मिट्टी भीगती है, वैसे जीव बोध परिणत होनेपर भीगता है?

प्रभुश्री—परिणत होनेपर भीगता है। बाह्यकी दौड़ है।

"प्रीति अनंती पर थकी जे तोडे हो ते जोडे एह।"

प्रमाद क्या? मद, विषयादि प्रमादके भेद हैं। एक ऐसी कुंजी है कि जिससे सब प्रमाद नष्ट होते हैं, वह गुरुगम है जी। 'ऊठी नाठा बोद्धा।'

★

(४) कार्तिक सुदी १३, सोम, १९८८,
ता. २३-११-३१

प्रभुश्री—उल्लास परिणाम क्या?

मुमुक्षु—कल्याणके अपूर्व कारणरूप रत्नत्रय पर प्रमोद, रुचि वह उल्लास परिणाम है। प्रसन्नचंद्र मुनिके परिणाम बदले, उसका कारण कृपादृष्टि या सन्मुखदृष्टि?

प्रभुश्री—सन्मुखदृष्टि। आत्म-पहचान होने पर सन्मुखदृष्टि कहेंगे या नहीं?

समपरिणाम किससे होते हैं? पहचानसे। जहाँ विषमदृष्टि है, वहाँ समपरिणाम नहीं है, कल्याण भी नहीं है। सहजस्वरूपमें जीवकी स्थिति होना उसे ज्ञानी मोक्ष कहते हैं।

★

(५) कार्तिक वदी २, शुक्र, सं. १९८८,
ता. २७-११-३१

'चित्तकी निरंकुशता' क्या है? इस पर विचार कर्तव्य है। इस पर ऊहापोह नहीं होता। कायरताकी बात न करें।

'पूछता नर पंडित।'

अकुलाहट, घबराहट, असाता अच्छी नहीं लगती। इसकी औषधि क्या?

पुरुषार्थ है।

जिसका समय ढूँढनेमें, पूछनेमें बीतता है, उसका समय यथार्थ बीतता है। गया क्षण वापस नहीं आता। समय समय जीव मर रहा है जी।

यथार्थ बोधमें एक दृष्टि—वृत्ति किस पर करें?

सम्यक्भावकी भावना कर सम्यक् स्थिति पर।

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६) कार्तिक वदी ३, सं. १९८८,
ता. २८-११-३१

प्रदेशवत्त्व
अगुरुलघुत्व
प्रमेयत्व
द्रव्यत्व
वस्तुत्व
अस्तित्व

—इस विषयमें आपकी समझमें आये उतना कहें। इसका विचार कब-कब किया है? इसका समाधान, एकमें आ जाये वह क्या है?

संपूर्ण जगतका स्वरूप इसमें ज्ञानी समझते हैं। ज्ञानी उसे ही जानें जी। 'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ' इस पर विचार किया है? गुरुगमसे जीव जागृत होता है। अनुभवमें सब आ जाता है।

★

(७) ता. २९-११-३१

वृत्ति उदयमें आये उसे सद्गुरुके बोधकी स्मृतिसे रोकें। इस विचारसे पुरुषार्थ कर्तव्य है। अभ्यास कर्तव्य है। चमचा हिलानेसे उभरेगा नहीं। कषाय कब नहीं है? तब क्या करें? उपशम-दशा। वह किसे कहते हैं? बाह्यवृत्ति बदलनेसे, दृष्टि बदलनेसे वह बदलती है। वह कैसे परिणामसे बदलेगी? पर्यायदृष्टिसे सब दुःख है; वह बदलेगी तभी छुटकारा होगा—भाव, विचार।

★

(८) ता. ३-१२-३१

सद्गुरुने यथातथ्य स्व-रूप जाना है।

आत्मा है, वह जानता है, वह सुनता है।

श्रद्धासे मान्य हुआ तो फिर उसे कुछ शेष रहा क्या?

उदयकर्मका विपाक विचित्र होता है, किंतु यदि श्रद्धा बदले नहीं तो आत्माका कल्याण हो चुका समझें। रूईका ढेर जल जायेगा—अवश्य।

★

(९) ता. ५-१२-३१

सत्पुरुषने कहा है वह सत्य है जी।

मैं तो कहता ही नहीं। ज्ञानीने कहा वही कहता हूँ। ज्ञानी किसे कहेंगे?

'आत्मसिद्धि'में गाथा है, वह—

"आत्मज्ञान समदर्शिता, विचरे उदय प्रयोग;
अपूर्व वाणी परमश्रुत, सद्गुरु लक्षण योग्य."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्तिका स्वरूप कहिये। ज्ञानीको पता है। भक्तिके अनेक भेद हैं--

"श्रवण, कीर्तन, चिंतवन, वंदन, सेवन, ध्यान;
लघुता, समता, एकता, नवधा भक्ति प्रमाण."

★

(१०) ता. ६-१२-३१

जीवकी दशा किससे आवरित है?

मोहसे।

मोह किस कारणसे है?

मनके कारण।

मनके कारण हुआ, तो बदला कैसे?

बोधसे।

बोध क्या?

सत्पुरुषकी वाणी।

सत्पुरुषकी वाणी कई बार सुनी, पर मोह क्यों नहीं जाता?

पात्रताके अभावसे।

कुपात्र भी सुपात्र होता है।

'जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ।' अतः एकमात्र पुरुषार्थ ही कर्तव्य है जी।

विशुद्ध भावसे, गुरुगमसे समझने पर शल्य जाता है जी।

★

(११) ता. ८-१२-३१

मैं जानता हूँ वह सब मिथ्या है। ऐसी सद्गुरुकी दृष्टिसे श्रद्धा हुई हो, वे तो विरले ही होते हैं। जो अपनी पकड़को छोड़ते हैं वे जिज्ञासु हैं।

"हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?"

सद्गुरु कहे सो सही है। पर आजकल तो गुरु अनेक हो गये हैं।

पैर रखते पाप है। दृष्टिमें विष है। विष, विष और विष है, ऐसा सोचकर आजके दिनमें प्रवेश कर। वह क्या?

"चेतन जो निजभानमां, कर्ता आप स्वभाव;
वर्ते नहि निज भानमां, कर्ता कर्म-प्रभाव."

यह बराबर हुआ? योग्यताकी कमी है। सत्संग, सद्बोध, सत्पुरुषार्थ चाहिये। गुरुगमके बिना समझमें नहीं आता। नहीं तो एकदम खुला है। [1]'खाजांनी भूकरी।'

यह आत्मा, यह भी आत्मा। दृष्टि कहाँ? मात्र दृष्टिकी भूल है।

★

१. 'खाजा मिठाईका चूरा' (अर्थात् मिठाई जैसे मधुर-रुचिकर ज्ञानीके वचन हैं।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१२) ता. ९-१२-३१

जगत मिथ्या है, जगत असार है।

आत्मा सत्य है। उसे किसीने जाना नहीं है। जो कहते हैं कि मैंने जाना है, वह मिथ्या है और अहंकार है। अतः जो मैंने जाना वह सत्य है ऐसा नहीं, पर ज्ञानीने जाना वह सत्य है।

मिथ्या ग्रहण हुआ है जिससे इसको बोधकी आवश्यकता है।

★

(१३) ता.१०-१२-३१

[1]'जेवा भाव तेवा प्रभु फळे।'

हम जाँच करें कि इस जीवके रागादि गये या नहीं?

यदि ऐसा है तो जिस ज्ञानीके गये हैं उसके वचन मानें।

अन्य कहते हैं वह सत्य लगता है, तो भी असत्य है ऐसा क्यों? मुझमें क्रोध नहीं है, मानको त्यागकर कहता हूँ, ऐसा कहता है वह सत्य है क्या?

मार्गका जानकार (मार्गदर्शक) नहीं है।

★★★

९ सूरत, ता.१२-६-३४

वृत्तिको रोकें।

श्री ज्ञानीने जड़ और चैतन्यकी व्याख्या यों की है—

"जडभावे जड परिणमे, चेतन चेतन भाव;
कोई कोई पलटे नहीं, छोड़ी आप स्वभाव."

इसमें जड़-चेतनकी पहचान कराई है।

जड़ : यह पुद्गल है। उसके परमाणु हैं, पर्याय हैं। उसे ज्ञानी जानते हैं। जड़ सुखदुःखको नहीं जानता। द्रव्य, गुण, पर्याय जड़के भी हैं। कर्म जड़ है।

आत्मा : इसे जीव कहते हैं। चैतन्यशक्ति कहते हैं। जानता है, देखता है, वह ज्ञानस्वरूप आत्मा है। द्रव्य, गुण, पर्याय आत्माके भी हैं। उसे जानने पर भेदज्ञान होता है। जड़को जड़ जाने और चेतनको चेतन जाने यह भेदज्ञान।

★★★

---

१. जैसे भाव वैसे प्रभु फलते हैं अर्थात् जैसे भाव वैसा उसका फल मिलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशसंग्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशसंग्रह—१

☆

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास
ता. ७-११-१९३५, सबेरे

पत्रांक ५३९ का वाचन—

"सर्व जीव आत्मारूपसे समस्वभावी हैं।"

इसे ग्रहण नहीं किया है। इस कानसे सुनकर उस कानसे निकाल दिया है। ये वचन लेखकी भाँति अंतरमें लिख रखने जैसे हैं। यह कैसे माना जाय? इस जगतमें सब जीव खदबदा रहे हैं। न यह माना गया है और न ही इस पर विश्वास है। विश्वाससे जहाज चलता है। इसकी (आत्माकी) बातें भी कहाँ है? यह तो कृपालुदेवकी दृष्टिसे, धन्यभाग्य है कि आप सुन रहे हैं। पहले पाँव टिके तब माननेमें आता है।

"निजमें निजबुद्धि हो तो परिभ्रमण दशा टलती है।"

ये कितने अद्‌भुत वचन हैं! 'तो परिभ्रमण दशा टलती है'—इतना विचार नहीं किया है। यह विश्वास और प्रतीति कैसे आये? कुछका कुछ सुनें, दूसरी बातें सुने; पर इस आत्माकी बात नहीं सुनता।

मुमुक्षु—निजमें निजबुद्धि कैसे होती है?

प्रभुश्री—नासमझीका दुःख है, वहीं गड़बड़ है। बात तो पहचाननेकी है। परिणाम आने पर, पहचानने पर ही छुटकारा है।

मुमुक्षु—भक्तिके बिना ज्ञान होता है? भक्तिसे तो होता है। दुकानदारको पैसा देंगे तो माल देगा ही। पर प्रभावना तो मुफ्त मिलती है, वैसे ही ज्ञान मुफ्त मिलता है या नहीं?

[फिर प्रभुश्रीने सबसे पूछा और चर्चा करायी]

प्रभुश्री—अपेक्षासे सभी बातोंकी 'हाँ, 'ना' होती है; पर वैसे नहीं। बात यों है—दान देते हो तो कौन लेता है? वहाँ उपस्थित हो वह लेता है। यहाँ बैठे तो सुना। भक्ति तो वचन हैं। वहाँ लिये जाते हैं, लेते हैं। जो होते हैं वे खाते हैं। भक्ति है सो भाव है। यहाँ बैठे हैं वे सुनते हैं। दूसरा तो पूछता है कि क्या क्या बात थी? इसी प्रकार दाता हो, वहाँ जाये और जागता रहे वह लेता है। ऊँघनेवाला नहीं ले सकता।

भक्ति क्या है? यही पुरुषार्थ है। ऐसा वैसा नहीं। एक आत्मा है और एक मुर्दा है, मुर्दा सुनता नहीं। भक्ति आत्मा है। इच्छा करे तो हैं, नहीं तो नहीं। यह बात कही नहीं जा सकती। भाग्यशालीको समझमें आती है। लक्ष्यमें लेगा उसका काम होगा।

भक्तिके दो भेद हैं—अज्ञानभक्ति और ज्ञानभक्ति। भक्ति ही आत्मा है। सुल्टा कर डालें। भाव, विचार और भक्ति। वैसे तो संसारमें भक्ति सर्वत्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुमुक्षु–"सत्पुरुषोंने जो सद्गुरुकी भक्तिका निरूपण किया है, वह भक्ति मात्र शिष्यके कल्याणके लिये कही है। जिस भक्तिके प्राप्त होनेपर सद्गुरुके आत्माकी चेष्टामें वृत्ति रहे, अपूर्व गुण दृष्टिगोचर होकर अन्य स्वच्छंद मिटे और सहज ही आत्मबोध हो, यों जानकर जिस भक्तिका निरूपण किया है, उस भक्तिको और उन सत्पुरुषोंको पुनः पुनः त्रिकाल नमस्कार हो!"

प्रभुश्री–इसका आशय समझना चाहिये। उसके बिना अधूरापन है। "जब जागेंगे आतमा, तब लागेंगे रंग।" जो जागे उसे कहना है। शेष सब तो कलबलाहट है। कहना है आत्माको। कहना अनकहा हो जायेगा, सुनना अनसुना हो जायेगा। सब वहीका वही। बात समझमें आनी चाहिये। थप्पड़ मारकर जगाया है। आत्माको जगाना है। वह कैसे जागेगा इसका पता नहीं है। कैसे जागेगा? कहिये।

मुमुक्षु–सद्बोधसे।

प्रभुश्री–हाथ नहीं आयेगा। यह तो एक सद्गुरु जानते है। छह खंडके भोक्ताके घर नौ निधान चले आने जैसा है। तैयार हो जायें। आपकी देरीसे देर है। [1]'सिर काटे उसे माल मिले।' सुना पर गुना नहीं। गुननेसे छुटकारा है। बात सही है। [2]"रंकके हाथमें रत्न" ऐसी बात इस

१. एक कुम्हारको मिट्टी खोदते एक पुतला मिला। वह उसने राजाको भेंट कर दिया। राजाने उसे सभामें रख दिया। उस पुतलेके गलेमें लिखा था कि 'सिर काटे उसे माल मिले।' जो पढ़ता वह यही समझता कि अपना सिर काटे उसे माल मिले। एक क्षत्रिय वहाँ आया, उसने पढ़ा और तलवारसे पुतलेका सिर काट दिया तो उसमेंसे सोनेकी मोहरें निकली।

२. एक लकड़हारा बहुत गरीब था। जंगलसे लकड़ी लाकर शहरमें बेचता। पैसा मिलता उससे तेल, अनाज और एरंडीका तेल खरीदता। नित्य लाता और नित्य पूरा हो जाता। लकड़ी बेचने शहरमें सब तरफ घूमता, लोगोंको मौजशौक करते देखता और स्वयं वैसा सुख पानेकी इच्छा करता, पर साधन न होनेसे निराश होकर हारा-थका सो जाता।

एक रात वह जल्दी उठ गया, तब उसे अपने दुर्भाग्य पर विचार आने लगा। वह सोचने लगा कि क्या करनेसे ज्यादा पैसा मिल सकता है? उसे उपाय सूझा कि यदि चंदनकी लकड़ी मिले तो अधिक पैसा मिल सकता है। चाँदनी रात थी अतः फिर सो जानेके बदले पाथेय लिया और जंगलमें निकल पड़ा। चंदनकी सुगंध आये तब तक चलते रहना–ऐसा सोचकर वह १० मील चला गया, पर चंदनका कहीं पता न लगा। तब थककर वह नदीके किनारे पाथेय खाने बैठा।

वहाँ नदीका किनारा टूटा हुआ था, उसमें कुछ पत्थर जैसा चमक रहा था। बच्चोंको खेलनेके काम आयेगा ऐसा सोचकर उसने उस पत्थरको कपड़ेके पल्लेमें बाँध दिया। फिर जो मिली वे लकडियाँ लेकर वापस आ गया। शहरमें लकड़ी बेचकर एरंडीका तेल आदि वस्तुएँ लेकर शामको निराश होकर घर आया। पूरे दिनका थका खाट पर करवट ली तो पल्लेमें बँधा रतन चुभा। पल्लेसे खोलते ही घरमें उजाला हो गया। अतः बच्चोंको खेलनेके लिये देनेके बदले उसने उसे ताकमें रख दिया। मनमें संतोष हुआ कि चलो, भटकना बेकार नहीं गया, नित्य एरंडीके तेलके पैसे तो बचेंगे।

वह प्रतिदिन लकड़ी लाता और बेचता। एरंडीके तेलके पैसे बचते उससे गुड लाता और प्रसन्न होता। यों छ महीने बीत गये, पर उसे रत्नकी पहचान नहीं हुई।

इतनेमें एक जौहरीके यहाँ भोजका प्रसंग आया। अतः एक दिन उस लकड़हारेके यहाँ अपने घर लकड़ी लानेके लिये कहने गया। उसके यहाँ ताकमें चिंतामणि रत्न देख उसे आश्चर्य हुआ कि 'रंकके हाथमें रत्न!' दया आनेसे उसने लकड़हारेको चिंतामणि रत्नकी पहचान कराई और कहा कि सुबहमें पूजा कर इससे जो माँगोगे वह मिलेगा। यह सुनकर वह खुशखुशाल हो गया। सुबहमें पूजा कर रत्नसे सभी आवश्यक वस्तुएँ माँग लीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगह आयी है। किसीको पता नहीं है। पहचानने पर छुटकारा है। बातें करनेसे काम नहीं होता। मात्र उसीकी लय लगी रहे और उसीकी इच्छा रहे, यही भावना करनी चाहिये। इसमें दूसरेका काम नहीं है। स्वयंको करना है और अपने लिये ही करना है। विनय वस्तुको प्राप्त करवाती है, और भक्ति–ये दो महान वस्तु हैं, मुख्य हैं। महावीर स्वामीने गौतम गणधरसे कहा–

***''संजोगा विप्पमुक्कस्स अणगारस्स भिक्खुणो।**
विणयं पाउ करिस्सामि अणुपुव्विं सुणेह मे॥'

(उत्तराध्ययन सूत्र प्र. अ. गाथा–१)

'विनय' सुनो, सुनो। कमी योग्यताकी है। इसे पूरी किये बिना छुटकारा नहीं है। छोड़ना पड़ेगा। छोड़कर आओ। अपना सयानापन छोड़ दो।

★★★

ता. ७-११-३५, सायंकाल

वेदनीयके दो भेद : साता वेदनीय और असाता वेदनीय। वह किसको है? देहको? स्याद्वाद है। एक भोगनेसे जाती है और एक छोड़नेसे जाती है। बाँधे हैं वे भोगते हैं। छोड़ा नहीं है। छोड़े तब कार्य सिद्ध होता है। छोड़ा कैसे जाय?

१. मुमुक्षु–कर्तापन मिटे तब।

प्रभुश्री–यह तो बराबर है। बाप करता है तो बाप भोगता है।

२. मुमुक्षु–समभावसे छूटता है।

३. मुमुक्षु–भाव और दृष्टिमें परिवर्तन हो तो छूटता है।

प्रभुश्री–सब अज्ञान है। ज्ञान प्राप्त हो तो छूटता है। ज्ञान आये तो वह नहीं रहता। यह विचार किया?

मुमुक्षु–जो जागृत हुए हैं और जिन्होंने सत्पुरुषके बोधको सुना है, उन्हें यह विचार आता है।

प्रभुश्री–जागृत हुआ कब कहा जायेगा?

मुमुक्षु– ''कषायनी उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष;
भवे खेद प्राणीदया, त्यां आत्मार्थ निवास.
दशा न एवी ज्यां सुधी, जीव लहे नहि जोग;
मोक्षमार्ग पामे नहीं, मटे न अंतर रोग.
आवे ज्यां एवी दशा, सद्गुरु-बोध सुहाय;
ते बोधे सुविचारणा, त्यां प्रगटे सुखदाय.'' (श्री आत्मसिद्धि)

प्रभुश्री–तैयार हो जाओ। 'भूले वहाँसे फिर गिनो।' 'जागे तभीसे सबेरा।' छूटा नहीं है। समकित आये तब छूटता है। यह कर्तव्य है। इसीकी भावना करो। संसारी संबंध, बाल-बच्चे, पैसा-टका आदि सब मिथ्या है। अपना कुछ नहीं है। अपना आत्मा है।

---

* अर्थ–संयोगसे विशेषरूपसे मुक्त और घर-संसारके बंधनसे मुक्त भिक्षुके विनय (आचार) को क्रमपूर्वक प्रगट करूँगा। तुम ध्यानपूर्वक मुझे सुनो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुमुक्षु—उसे तो जाना नहीं है।

प्रभुश्री—भूल इतनी ही है। इसमें क्या अड़चन है? मात्र दृष्टिकी और समझकी भूल है। 'समझ समझकर जीव ही गया अनंता मोक्ष।' तैयार हो जाओ। भले ही बीमार हों, रोगी हों, दुखी हों, पर यह एक बात है माननेकी। यही कर्तव्य है। दूसरे तो जैसे भाव वैसा फल। जैसा भाव।

ता. ८-११-३५ शामको

ये अलौकिक बातें हैं। लौकिकमें निकाल देने जैसी नहीं है। एक सत्संग है जो शांतिका स्थान है, इस जीवको विश्रांतिका स्थान है। परिभ्रमण और बंधनमें काल बीत रहा है। इसमें आत्महित नहीं है। पहचान हो या न हो, मिले हों या न मिले हों, सभी आत्मा हैं। परिवर्तन होना चाहिये, सावचेत होना चाहिए। वह (आत्मा) कहाँ है? केवल सत्संगमें है। अन्य बातें संसारकी जाल है, फँसकर मर जाना है। गफलतमें समय जा रहा है, प्रमादमें जा रहा है, पहचान नहीं है। बात कर्तव्यकी है। निमित्त बनाये तो बन सकता है। काल सबके सिर पर घूम रहा है। कोई बचेगा नहीं। जो कर्तव्य है वह किया नहीं। यह बात किसी सत्संगमें समझमें आती है। मन और वृत्ति सभीको हैं, क्षण-क्षण बदल रही हैं। उससे थप्पड़ मारकर जगाना है। सब पंचायत छोड़। अब जान लिया। सब थोथा है, संसारका काम अधूरा रहेगा, पूरा होनेवाला नहीं है। अतः उसमेंसे जो किया वह काम। जो करना है वह यहीं है। क्या करना है?

मुमुक्षु—समकित करना है।

प्रभुश्री—रामका बाण है, कैसे मिथ्या कहा जाय? किसके गीत गाने हैं? वरके गीत गाने हैं। समकित कैसे होता है?

१. मुमुक्षु—भाव और परिणामसे।

२. मुमुक्षु—सद्गुरुके बोधसे समझमें परिवर्तन होनेसे।

प्रभुश्री—भाव और परिणाम किसी समय न रहते हों ऐसा नहीं है। एक विभावके भाव और परिणाम हैं तथा एक स्वभावके भाव और परिणाम हैं। अतः सत्संग प्राप्त करें। यहाँ बैठे हैं तो कैसा काम होता है! सभीके मनमें ऐसा रहता है कि कुछ सुनें। किसने बुरा किया है? प्रमाद और आलस्य शत्रु हैं। भान नहीं है। गफलतमें समय बीत रहा है। क्या काम आयेगा? मात्र विचार ही। विचारके दो भेद हैं, एक सद्विचार और एक असद्विचार। सद्विचारसे आत्माकी मान्यता होती है। यह सब कल सुबह मिट जायेगा, हुए न हुए हो जायेंगे। महापुरुषोंने कहा है कि—

"लह्युं स्वरूप न वृत्तिनुं, ग्रह्युं व्रत अभिमान;
ग्रहे नहीं परमार्थने, लेवा लौकिक मान."—श्री आत्मसिद्धि

कहनेकी बात यह कि चेत जाइये। किसकी बात करनी है? आत्माकी, परकी नहीं। 'हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?' क्या है सच्चा स्वरूप? इस बातमें सुषुप्त न हो और जाग्रत हो तो चोर भाग जाते हैं। जागृत होना है, सावधान होना है। लिया सो लाभ। कल सुबहकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसे खबर है? यह कहनेका तात्पर्य क्या है? यह एक थप्पड़ है। 'भान नहीं निजरूपनुं' यह भान करना है। यही बात रह जाती है।

अब यह पहचान कैसे हो? सत्संगकी बहुत कमी है। वैराग्यमें बहुत विघ्न हैं। व्यवहारमें समय खो रहा है, पर सत्संगमें नहीं! कुछ है पर कहा नहीं जाता। 'जो जाना उसे न जानूँ, नहीं जाना उसे जानूँ।' अब विचार कर। कैसा विचार? तो कहते हैं कि सत्संगका। अन्य विचार तो बहुत किये। अलमारीको ताला लगा हो तो चाबी बिना क्या करेगा? यह क्या बात आयी?

मुमुक्षु–जिसके पास चाबी हो उसके पास जाना चाहिये।

प्रभुश्री–क्या भूल नहीं? भूल है। सयाने बनकर बैठे हैं, सयानापन दिखा रहे हैं। क्या यह भूल नहीं है? जो काम कर रहा हो वह काम उसके लक्ष्यमें होता है। और यह सो ऐसा? क्या तुम्हारे दिन लद गये हैं? ऐसा? क्या सर्वत्र ऐसा आत्मा है? 'जाग्रत हो, जाग्रत हो।' रत्नचिंतामणि जैसा है। ऐसी गालियाँ हैं। सुननेका साहस हो उसे कहना है। जागतेको कहा जाता है, सोतेको क्या कहना? सब व्यर्थ जाता है। समझना है। चुभोकर, धक्का मारकर कहना है। सबसे बड़ा बोध है, उसकी आवश्यकता है। तैयार हो जाओ। कोई वस्तु अपने पास हो और कहे कि मेरे पास नहीं है, तो वह झूठा है न? है तो पासमें ही, पर सावचेत होना भी तो आवश्यक है न? सोना नहीं है, जाग्रत रहना है आप सबको। स्वाद तो अलग होता है, पर आत्मामें आये तब। तब बंधसे छूटता है। गफलतमें क्यों रहा? किसके लिये ऐसा किया? अब अपने लिये करना है। कुछ है, बात गहरी है, परंतु मूल बात रह जाती है।

ता. ११-११-३५, सबेरे

मनुष्यभव दुर्लभ है। पर मनुष्यभवमें सुख मानता है वहाँ सुख नहीं है। सुखकी भावना भी नहीं हुई। मात्र बोलते हैं, पर करते नहीं। मनुष्यभवमें करने योग्य है और उसमें होना संभव है।

"ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहां समजवुं तेह;
त्यां त्यां ते ते आचरे, आत्मार्थी जन एह."–आत्मसिद्धि

लीजिये, अर्थ कीजिये! "एक एक शब्दमें अनंत आगम समाये हुए हैं।" कैसा चमत्कारी है? सयानापन करने योग्य नहीं है। समझा तो है नहीं, पर समझ गया हूँ ऐसा मानता है और सयानापन करता है। 'आत्मसिद्धि' कुछ ऐसी-वैसी नहीं है, इसमें अनंत आगम समाये हुए हैं। जड़ तो सुनेगा नहीं। चेतन है पर 'भान नहीं निज रूपनुं।' सब जीवोंके लिये है। सबको भूल निकालनी है। अजब बात है! ऐसा अवसर कहा मिलेगा? लूटमलूट करने जैसा है। चेत जाना योग्य है। सब आत्मा हैं गुरुके प्रतापसे। आत्मा है, पर भान नहीं है। अन्य सब संबंध है। प्रकृतिमें मति-श्रुत है और अन्य मान बैठा है चाचा, मामा, भाई आदि। पूरे जगतमें खदबद मची हुई है। कहने जैसा नहीं है, कहना मान्य भी नहीं होगा। किसे कहें, कहाँ जायें? यह तो ऊपर-ऊपरसे बातें करके धर्म मानता है–धर्मको तो जानता नहीं है। "धर्म धर्म सौ को कहे, धर्म नवि जाणे हो मर्म जिनेश्वर!" मैं तो समझ गया हूँ, ऐसा मानता है। धूल पड़ी तेरे समझनेमें, इस पर लगा शून्य और खींच

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौकड़ी (×)। 'जगत जीव है कर्माधीना, अचरज कछु न लीना।' संसारकी चार उपमा चमत्कारी है : समुद्र, अग्नि, अंधकार और शकटचक्र (गाडीका पहिया)। इसका *विस्तार अगाध है! कहाँ ऐसी बात! किसे कहें? लक्ष्यमें ले तब न? सबमें क्या भूल है?

मुमुक्षु—वास्तविक रुचि जागृत नहीं हुई।

प्रभुश्री—भान नहीं है। किन्तु आत्मा है तो भान कहलायेगा। फिर भी जाना नहीं है। आत्माको जान लिया तो काम हो गया। आत्माको जाना तो समकित हुआ। उसे देखा तो दीपक प्रगट हुआ। ज्ञानी-अज्ञानी दोनों कर्माधीन हैं। यह बात किसकी है? जो सब छोड़कर सबसे उच्च श्रेणीमें आवे उस ज्ञानीकी।

"समता, रमता, ऊरधता, ज्ञायकता, सुखभास;
वेदकता, चैतन्यता, ये सब जीव-विलास."—समयसार नाटक ५६

कितनी बड़ी शिक्षा है? सुना नहीं है। थप्पड़ मारने जैसी है। ऐसी-वैसी वस्तु नहीं है। पता नहीं है। चिंतामणिको कंकर समझ फेंक देता है। कहनेकी बात यह है कि 'छह पद' अगाध हैं। योग्यता नहीं है। कण्ठस्थ होनेसे क्या होता है? किंतु यदि थोड़ी दृष्टि पड़ी हो तो दीपक प्रगट हो जाय। यह सब क्या है? अज्ञान है। ज्ञान दीपक है। बोधकी आवश्यकता है। सत्संगकी कमी है। सत्संगकी इच्छा नहीं है, जरूरत भी महसूस नहीं होती।

"नहीं दे तू उपदेशकू, प्रथम लेहि उपदेश;
सबसे न्यारा अगम है, वो ज्ञानीका देश."—श्रीमद् राजचंद्र

ये सब मर्मके वचन हैं! अद्भुत है! दीपक प्रज्वलित हो ऐसे हैं। जरा-सी दियासलाई रगड़ते ही उजाला हो सकता है। पर 'छह पद' के पत्रमें स्थिरता रखे तो हो जाय। 'कर विचार तो पाम।' उलाहना देना है कि सुना पर गुना नहीं। दूर करना पड़ेगा। कौन अर्थ समझता है? अर्थ तो वही जानते हैं।

दूर करना पड़ेगा। कुछ तो करना चाहिये न? किससे करना?

मुमुक्षु—ज्ञानसे।

प्रभुश्री—बड़बड़ बोलना आ गया है। निंदा नहीं करनी है पर यह नहीं। ज्ञान क्या है? आत्मा है। मुर्दे हों तो कोई सुन सकता है? यह तो आत्माका प्रताप है। उसका माहात्म्य कैसा होगा? इसे जगाना है। यह बोलना होता है वह मेरा है ऐसा न समझें—कि सयानापन कर रहे हैं! पर ज्ञानीका कहा हुआ कहना है। अब किसको बुलाऊँ? व्यवहारसे सेठको या अमुकको बुलाओ, ऐसा कुछ चाहिये न? किसका काम है अब?

"ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहां समजवुं तेह;
त्यां त्यां ते ते आचरे, आत्मार्थी जन एह."—श्री आत्मसिद्धि

लो, अब कुछ बोलने जैसा है? बोलेंगे? बोलोगे? कुछ नहीं, सब अज्ञान और मिथ्यात्व है। मात्र सत्संग करें, वही करना है, परीक्षाप्रधान बनें। वचन है, उसकी परीक्षा होती है। यह अवसर

---

* देखें 'मोक्षमाला' शिक्षापाठ १९, २०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आया है। सारा लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। रोग, साता किसे नहीं है? साता भी पुद्गल है, उसे आत्मा नहीं कहा जा सकता। क्या किया? उत्तर देता है कि 'दल दल कर कुलडीमें डाला।' अनर्थ कर दिया। उनका एक वचन निकालें तो? आश्चर्यजनक है! [1]"जे लोकोत्तर देव, नमुं लौकिकथी।' इस तरह लौकिकमें निकाल दिया है। कृपालुदेवने मुझसे कहा और मैं घबराया। अब क्या करूँ? फिर लगा कि मुनि घबराये हैं। तब कृपालुदेवने कहा—'मुनि, गहरे उतरें।' दूसरे क्या करेंगे? 'आप समान बल नहीं, मेघ समान जल नहीं।' यहाँ कमी है—बोधकी और समझकी। सब उलटा किया है। छह पदका पत्र याद है? कोई बात खोलकर कहे तभी तो पता लगे न? अभी बहुत करना है। 'गहरे उतरें' इसमें तो बहुत समझनेका आ गया। बुरा कौन करता है? मन कहें, वृत्ति कहें, चित्त कहें—सब एक ही है। क्या यह आत्मा है? नहीं। इसे खड़ा रखना है। है, इसको (आत्माको) खड़ा रखें।

"धिंग धणी माथे किया रे, कुण गंजे नर खेट?
विमल जिन, दीठां लोयण आज."

यह सुननेकी योग्यताके बिना किसके पास बात करें? इसमें कमी किसकी है? विश्वास और श्रद्धाकी कमी है। मैं कृपालुदेवको मानता हूँ, भक्ति करता हूँ, ऐसा कहता है; पर जैसा है वैसा ही है। भूल हो रही है। कुछ अपूर्व बात की है!

"चंद्र भूमिको प्रकाशित करता है, उसकी किरणोंकी कांतिके प्रभावसे समस्त भूमि श्वेत हो जाती है, पर चंद्र कुछ भूमिरूप किसी कालमें नहीं होता, इसी प्रकार समस्त विश्वका प्रकाशक यह आत्मा कभी भी विश्वरूप नहीं होता, सदा-सर्वदा चैतन्यस्वरूप ही रहता है। विश्वमें जीव अभेदता मानता है यही भ्रांति है।"

बात सुनी नहीं, मानी नहीं; समझनेका पता ही नहीं है। यह बात किसे कही जाय? किसीको कहने जैसी नहीं है। कहनेका तात्पर्य, इसकी (आत्माकी) पहचान करानी है। किंतु बोधके बिना वह होगी नहीं और उसीकी तो कमी है। कृपालुदेवसे हमने पूछा—किसकी कमी है? कृपालुदेवने कहा कि बोधकी। तब हमने कहा कि बोध दीजिये। फिर कृपालुदेव कुछ नहीं बोले।

यह अवसर जा रहा है। अतः चेतो, जागो। लो, अब कहाँ हैं अंबालालभाई, सौभागभाई, मुनि मोहनलालजी? लाओ, कहाँ है? ज्ञानी कैसे हैं? आश्चर्यजनक बात है! एक निधान होता है, उसमें सर्व वस्तु होती हैं। अंबालालभाई, सौभागभाई निधानकी भाँति भरे हुए थे। जब निकालो तब हाजिर! उनकी बात करनेवाला भी कौन है? कृपालुदेवने कहा था कि हमारी बात कौन मानेगा?—"शुक्ल अंतःकरणके बिना मेरे कथनको कौन मान्य करेगा?"

सुन, सुन, तेरा सब उलटा है, खोखलापन है। हमसे जो कुछ कहा गया सो कह दिया। जब तक सुख-समाधि है तब तक धर्म कर लो, फिर नहीं हो सकेगा। कहनेका तात्पर्य, जगाना है। जागृत हो जाओ, श्रोता बन जाओ। किससे बातचीत करनी है? हम प्रलाप कर रहे हैं। बुरा लगा हो तो क्षमायाचना करते हैं। किसीका दोष नहीं है। कर्मका दोष है। 'जगत जीव है कर्माधीना।'

---

१. जो लोकोत्तर देव हैं उन्हें मैं लौकिक दृष्टिसे नमस्कार करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मसे दुःख मानते हैं। यह बात महापुरुषोंकी है। अतः पंडित आदि जो बड़े लोग हैं उन्हें भी माननी चाहिये। यह कर्तव्य है। आत्माको पहचानो। अवसर आया है। मनुष्य भव है। यह अमूल्य अवसर चला गया तो फिर जीव क्या करेगा?

★
★★

ता. ११-११-३५, शामको

[एक मुमुक्षुभाईने चौथे व्रतकी प्रतिज्ञा ली उस प्रसंग पर]

वृद्ध अवस्था हो—बूढ़ा हो या साधु हो, चौथे व्रतकी प्रतिज्ञा तो लाभकारी है। यह मनुष्यभव प्राप्तकर बँधा है और दुःखी हो रहा है। दीपकमें पतंगे गिरकर मरते हैं त्यों मर रहा है और सुखकी हानि कर रहा है। महाव्रत तो महा लाभदायक है। धन्य है, भाग्य है, तिलक है। देवकी गति मिलती है, काम हो जाता है। बहुत भव किये। भावसे काम बन जाता है। 'जेवा भाव तेवा प्रभु फळे' (जैसे भाव वैसा फल मिलता है।) एक श्रद्धा साथमें ले जाय तो काम बन जाय। 'सद्धा परम दुल्लहा।' एक आत्मार्थके लिये होना चाहिये। कोई भेदी पुरुष मिला हो तब यह होता है। इतना विश्वास रख और मान कि 'ज्ञानियोंने देखा है सो आत्मा है।' यहाँ प्रमादको छोड़ना पड़ेगा। यह अवसर, मनुष्यभव चला गया तो कहाँसे मिलेगा? अतः त्याग और वैराग्य: वैराग्य—यह आत्मा है। आत्माकी ओर भावना हो गई तो फिर चाहे जो होता रहे! एक आत्मा है, इस भवमें उसे पहचानना है, वह किसी भेदी पुरुष द्वारा पहचाना जायेगा। जप तप 'वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।' करनीका फल, मर जाओ, पर सत्संग करो। इतने जीव बैठे हैं पर कर्माधीन हैं, संकल्प-विकल्प करते हैं।

"जहाँ कलपना-जलपना, तहाँ मानुं दुःख छाय;
मिटे कलपना-जलपना, तब वस्तू तिन पाय."—श्रीमद् राजचंद्र

अतः इतना अवसर आया है। प्रतिज्ञा कर लो, कुछ नहीं किन्तु इस आत्माके लिये। यथार्थ ज्ञानीने इस आत्माको देखा है; ज्ञानीने देखा वह मुझे मान्य है। मेरा सब झूठा है। एक न एक दिन देर-सबेर छोड़े बिना छुटकारा नहीं है। यह थप्पड़ है। मैं जो यह बात कह रहा हूँ वह 'माननेकी बात' है। कुछ भी मान्यता हो तो उसका लाभ ही है। अतः चेत जाओ। समझा तभीसे सबेरा। अन्य सब जाने दो। एक समझ है। 'जो सुना सो प्रमाण।' पर्याय पड़े उससे भी महा पुण्यबंध होता है। अन्य सब माया है। क्षण-क्षण वृत्ति बदलती है। क्या काम करने आया था और क्या कर रहा है? धूल पड़ी! यदि इतना-सा घूँट उतारेगा तो वह भी अमृत है। सबके हाथमें है। मात्र विश्वास कर ले न! पहला लेखा ही हाथ नहीं लगा; सुना पर गुना नहीं। तेरे ही भावकी बात है, वह भाव ज्ञानीने देखा है। 'जोर दिखाता हूँ तो अपने स्वामीके बल पर।' यों स्वामी तो चाहिये न? मायाके जालमें सारा संसार फँसा हुआ है और उसे तो छोड़ना है। उनकी (सद्गुरुकी) पहचान हो गई हो, संग हुआ हो, परिचय हुआ हो तो काम बन जाय।

अब यह पिंजर पुराना हो गया है, बोला नहीं जाता। जब तक किया जा सकता है, तब तक काम कर लेना है। दुःख, ज्वर, व्याधि आते हैं, पर वह तो बंधनसे मुक्ति हो रही है। जो कर्म भोग लिये हैं वे अब तुम्हारे पास हैं? नहीं। पूर्वबद्ध भोगे जा रहे हैं। "हम और आप लौकिक दृष्टिसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार करेंगे तो अलौकिक दृष्टिसे कौन करेगा?'' जीव तो पास ही है, पर भान नहीं है। यह सब मैं बोल रहा हूँ, वह सुनाई देता होगा? ''भान नहीं निजरूपनुं, ते निश्चय नहीं सार।' चाबी मिले तब ताला खुलता है। फिर माल देखे तब लेता है। 'जिसके हाथमें चाबी', झटसे खोले, इतनी देर। कहाँ लेने-पूछने जाना है? सब तैयारी मौजूद है, याद आना चाहिये। अन्य सब याद करता है, अरे! मर जायेगा। जिसे याद करना चाहिये वह कहाँ है? लाओ! थोड़ा अवकाश निकालो। अन्य पंचायत और बातें करेगा, पर यह नहीं! अन्य हाहू करेगा, पर यह नहीं! करना पड़ेगा, देर-अबेरसे करना पड़ेगा।

★★★

ता. १२-११-३५, सबेरे

वेदनीय जायेगी, आत्मा नहीं जायेगा। जगतमें सब जीव भोगते हैं। लौकिकमें निकाल देता है। तुझे और कुछ कहना है, जागृत करना है। बोधकी कमी है। जीव बहरा बनकर बैठा है, कुछ सुनता ही नहीं है। कुछ नहीं है, सब संयोग है और नाशवान है। कहना इतना ही है कि एक धर्म है, आत्मा है, आत्माकी याद दिलानी है। याद आ जाये तो काम बन जाता है। मनुष्यभवका अवसर बार बार नहीं मिलता।

★★★

ता. १४-११-३५, सबेरे

['भावनाबोध'मेंसे मृगापुत्र-चरित्र वाचनके समय]

मृगापुत्र आत्मा है। आत्माने यह काम किया। यह भी आत्मा है। समझे तो काम बन जाय। उन्होंने संसारको कुछ गिना नहीं। आत्माकी बात आयी। क्या क्या काम उन्होंने किये हैं? यह भी आत्मा है। यह आत्माकी क्रिया नहीं हुई। यह संसारी क्रिया रही है। धूल पड़े इसमें! अनादिकालकी गाँठ पड़ी हुई है। सावचेत रहना है। दुःखको सुख माना है और सुखको दुःख माना है। मृगापुत्रका वैराग्य असीम है। इस जीवकी कमी है, कर्म रोक रहे हैं। जैसे सूर्य पर बादलका आवरण आ जाता है, वैसे ही राग-द्वेष हो रहे हैं। दृष्टिकी भूल है। दृष्टि बदलनी चाहिये। आत्मा है। 'पर्यायदृष्टि न दीजिये।' 'आत्मा' 'आत्मा' नाम लेनेसे क्या हुआ? वचन नहीं सुने, उनकी श्रद्धा नहीं हुई; योग्यताकी कमी है। यथार्थ योग मिल जाये तो काम हो जाये। अन्य सब पर है, एक आत्मा है। सत्पुरुषका एक वचन मोक्षमें ले जाता है। कृपालुदेवने मुझे कहा था कि सब जगह आत्मा देखो। फिर बात जम गयी तो जम ही गयी। एक ज्ञानचक्षु है, फिर दूसरा कैसे देखा जाय? बाह्य देखना नहीं है, आत्मा देखना है। अजब-गजब है! एक वचन पकड़में आ जाय तो काम बन जाय। ज्ञानीके वचन वैराग्यमय हैं। पानी बरसा और यदि पात्र था तो भर लिया। पात्रमें कमी हो तो पानी नहीं ठहरता। योग्यता लाओ। जीव सभी उत्तम हैं। कुछ कहा नहीं जा सकता। मात्र दृष्टिकी भूल है। बात सही है पर बहुत ऊँची है। ऐसा महा लाभका दिन कहाँसे आयेगा? अलौकिक बात है। जिसे प्रतीति और विश्वास है उसका काम बन जायेगा। ज्ञानी कहे--रात है, तो हाँ रात है--ऐसा मानना कठिन है। अपना (आग्रह) हटे नहीं तो कैसे माना जाय? संक्षिप्तमें संक्षिप्त, कुछ न आता हो तो एक श्रद्धा और मान्यता कर लो। पक्की दृढ़ता होनी चाहिये। जड़ है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह तू नहीं, तू उससे भिन्न ही भिन्न है। यह बात विश्वास हो तो मान्य होती है। योग्यतावाले और मान्यतावालेको प्रतीति हो तो मान्य होती है। अन्य सब बात मिथ्या, नाशवान हैं, मिट जायेगी। 'जगत जीव है कर्माधीना, अचरज कछु न लीना।' सारा जगत रागद्वेषमें है। सारा लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। कहीं शांति नहीं है और शांति उसके बिना नहीं होती। चाहे जहाँ पूछते रहो, पर बात एक श्रद्धाकी है और प्रतीतिकी है। 'सद्धा परम दुल्लहा।' कुछ नहीं, अन्य सब कर्म नाशवान हैं। और वह है दीपक, सो दीपक ही है; ज्ञान सो ज्ञान ही है। इसके इच्छुक होना चाहिये। जो शोधमें होंगे, उनको 'छह पदका पत्र' चमत्कारी है। कण्ठस्थ किया हो, किन्तु पता नहीं है। "चंद्र भूमिको प्रकाशित करता है, उसकी किरणकी कांतिके प्रभावसे समस्त भूमि श्वेत हो जाती है, पर चंद्र कभी भी किसी समय भूमिरूप नहीं होता, वैसे ही समस्त विश्वका प्रकाशक यह आत्मा भी कभी विश्वरूप नहीं होता।" कितनी बड़ी भूल है? चेतनका अनुभव थोड़ा भी नहीं है। मनुष्यभव है तो सुनते हो। यह जीव जंगलके रोझ (नीलगाय) जैसा है। जिस किसी भी दिन शरणके बिना काम नहीं चलेगा। यही एक शरण लेनी है। वार करे उसकी तलवार। बात तो बोली जाती है, कही जा सके उतनी कही जाती है, बाकी तो अनुभवकी बात है, उसके बिना पता नहीं लगता। बातोंसे बड़े नहीं बनते। खाने पर पता लगता है। कहने योग्य नहीं है। 'पाया उसने छुपाया' इनकी शरणसे इतना बोल लेते हैं। बोलने योग्य नहीं है। किसे कहें? जीव पवित्र है। योग्यताकी कमी है। तैयार हो जाओ। कोई इच्छुक चाहिये, उसको सब सुगम है। श्रद्धा और भक्ति बड़ी बात है। भक्ति काम निकाल देगी। अहंकारने सब बिगाड़ा है।

★★★

ता.१४-११-३५, शामको

['भावनाबोध'मेंसे भरत चक्रवर्तीके वृत्तांतके वाचनसमय]

आत्मा है उसे ज्ञानीने जाना है। सभी जीवोंको आवरण और संयोग हैं। उनमेंसे किसी जीवको वे सहायक भी हुए हैं। उसे भी उदयकर्म तो हैं, लेकिन वे उसमें ममत्व करेंगे? ज्ञानीको यदि उसके लिये विचार नहीं आयेगा तो किसे आयेगा? विघ्न आये उसे दूर करना पड़ता है। कहनेका तात्पर्य, असंग और अप्रतिबंध होनेकी आवश्यकता है। चेतो! महेमानों, चेतो! यह सब तुम्हारा नहीं है। पूरा जगत हायहायमें फँसा है। सत्पुरुषका बोध सुना हो उसको क्या होता है? उसे सब परभाव लगता है और 'छोडूँ छोडूँ' होता है। शांति तो आत्माकी है। उसे जीवने देखी नहीं है। पौद्गलिक शांतिको सुख मानता है। यह सब जागृत आत्माओंने किया है। तुम तो मेरा मेरा कर रहे हो, पर भगवानने तो सब राख और नाशवंत देखा है। कुछ पुण्य किया है उसीसे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ है। चौरासी लाख योनिके जीव भी आत्मा हैं। जैसी घानी सिकती है, वैसे दुःखी हो रहे हैं। यह सब अन्य है, कुछ चेत जाना है। आवश्यकता है सत्संगकी और बहुत उत्तम बोधकी। इस कानसे सुनकर उस कानसे निकाल देता है। सारे संसारकी चिंता करता है। यह बहुत दुःखदायी और भयंकर है। समझनेका काम है। अतः चेतो, चेतो। व्याधि होगी तो क्या सुनोगे? कुछ महाभाग्य हो तो वचन कानमें पड़ते हैं। चमत्कारी वचन हैं। जागो, जागो। सोतेको धक्का मारकर जगाना है। वृत्ति-चित्त चंचल है, वह बंधन कराता है, भव-वृद्धिका धंधा है। पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इससे छूटना है और आत्माका मोक्ष करना है। इस जीवको मुक्त होना है। अब मुझे बंधन न हो!

"जब जागेंगे आतमा, तब लागेंगे रंग।" जागृत होनेकी आवश्यकता है। महापुरुषोंको आलोचना करते हुए केवलज्ञान हुआ। छोड़े बिना छुटकारा नहीं है, पर सुने तब न? सबको कहते हैं कि छोड़ना है। यह सब बंधन, जाल नाशवान भयंकर है। मारे जाओगे। चेतो, चेतो। अन्य सब जाने दो। विघ्न करते हैं वे सब कर्म हैं। सब दुःख, दुःख और दुःख हैं।

यह सब भेदज्ञानवाला बोलता है। चक्रवर्तीका पुण्य सबसे अधिक होता है, फिर भी उसमें कुछ नहीं, उसमेंसे मात्र एक आत्मा निकला। जो राज्यके मोहमें फँसे रहे, वे नरकमें गये। पैसा-टका काम नहीं आयेगा। जीवके पास मात्र भाव है।

[1]एगोहं नत्थि मे कोइ, नाहमण्णस्स कस्सई। एवं अदीणमणसो अप्पाणमणुसासइ॥

[2]एगो मे सस्सदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो। सेसा मे बाहिराभावा, सव्वे संजोगलक्खणा॥

(संथारा पोरिसी)

वस्तु अपनी ही बतायी है।

[3]संजोगमूला जीवेण पत्ता दुक्खपरंपरा। तम्हा संजोगसंबंधं सव्वं तिविहेण वोसिरे॥

(मूलाचार ४९)

[4]अरिहंतो मह देवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो। जिणपन्नत्तं तत्तं इअ सम्मत्तं मए गहिअं॥

भारी बात की! यह प्राप्त करनेके लिये बात की। इस मार्गसे चले जाना। मन, वचन, कायासे जो बंध किया है उस सबका त्याग करता हूँ। एक आत्माको ही मानता हूँ।

★★★

ता.१५-११-३५, शामको

खेद रहता है। इस जीवको बोधकी कमी है। श्रद्धा हो और पकड़ हो तो काम बनता है। जिसे मिला है उसे सामान्य हो गया है! माने, श्रद्धा करे और पकड़ रखे तो मनुष्यभवका बेड़ा पार हो जाये। इस जीवको ऐसा अवसर चूकना नहीं चाहिये। समागम बड़ी वस्तु है। सत्समागम करना चाहिये। कुछ बोध न हो, सुने भी नहीं, तब भी काम हो जाय। कोई ऐसा कहे कि यह तो प्रशंसा कर रहा है। पर नहीं, सच कह रहा हूँ। काम होता है। यह मार्ग ऐसा है कि जन्म-मरण छुड़ाकर समकित प्राप्त कराता है। अन्यत्र संसारमें, मायामें समय खोये; पर सब धूल है! एक धर्म सार है। एक श्रद्धा, विश्वास, प्रतीति आनी चाहिये, पर सुने तब आये न?

धंधुकाके पास नागनेशके एक वणिकने कृपालुदेवको भोजन कराया था। वह जीव कोरा रह

---

१. मैं एक हूँ। मेरा कोई नहीं। मैं अन्य किसीका नहीं। इस प्रकार अदीन मनवाला होकर मैं अपने आपको शिक्षा देता हूँ।

२. एक ज्ञानदर्शनवाला शाश्वत आत्मा ही मेरा है, शेष सभी संयोगजन्य विनाशी पदार्थ मुझसे भिन्न हैं।

३. इस जीवको परद्रव्यके संयोगसे दुःखपरंपरा प्राप्त हुई है। अतः मन, वचन, कायासे सर्व संयोगसंबंध मैं छोड़ता हूँ।

४. जीवनपर्यंत अरिहंत मेरे देव हैं, सच्चे साधु मेरे गुरु हैं और केवली प्ररूपित तत्त्व धर्म हैं। इस प्रकार मैंने सम्यक्त्वको ग्रहण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानेवाला था। पर कृपालुदेवने बुलाकर उपदेश दिया, धक्का लगे ऐसे दो बोल कहे। जिसके अंतरमें लगी हो वह चेत जाता है। बोध लगता है तब अंतरमें भाला चुभता है। फिर छोड़े नहीं, अंतरमें ही रखे और स्मरण किया करे। बस तू किये ही जा। यह बात ही कुछ और है। एक धर्म ही सार है।

देखकर खेद होता है, अरेरे! ऐसा अवसर खो रहे हो! मूल तो पकड़ और मान्यता काम बना देगी। अन्य सब मिथ्या है। एक आत्मा सत्य है, चेतने योग्य है। यह समझदार पुरुषको कहना है। कोई जीव चेत जायेगा तो उसने हजारों रुपये कमा लिये। 'सद्धा परम दुल्लहा।' अन्य नहीं। किसी एक सत्पुरुषको ढूँढे। जगतमें माया है, सब झगड़ा! उसे देखकर प्रसन्न क्यों होता है? कोई साथ चलनेवाला नहीं है। एक सुई भी साथ नहीं आयेगी। धर्म करेंगे तो काम बनेगा। अतः भावना और पकड़ करनी चाहिये। कोई ढुंढिया, तपा, विष्णु, दिगंबर—यह मार्ग नहीं है। पुण्यबंध करते हैं। निंदा नहीं करनी है, पर यह नहीं है। मार्ग कोई भिन्न ही है। मेरा कुछ भी नहीं है। देह भी मेरी नहीं है। बाल-बच्चे, सगे-संबंधी, धन-दौलत किसीके नहीं हुए। सब भूल है, धोखा है, सब लुटेरे हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, मूर्छा-ममता तुम नहीं हो। बहुत भूल है। अभी तो समता, क्षमा, दया, धैर्य रखना चाहिये। बँधा हुआ आता है, चला जाता है, वापिस नहीं आता। जो तेरे नहीं हैं उन्हें अपना कहता है, यही दुःख है, इसीसे वापिस आते हैं। तेरा तो एक आत्मा है, उसका हो जा। अंतरंगमें यह गाँठ बाँधनी है। कोई सुनता है? ध्यानमें नहीं ले रहा है। विश्वाससे तो जहाज चलते हैं। इसी प्रकार आत्माका भाव है। यह भाव कहाँ करना चाहिये? सच्चे गुरुमें। मेरा आत्मा, अन्य मेरा नहीं। ऐसी समझ हो तो काम होता है। समझमें भूल है। यही बड़ी कमी है। बच्चेको चिंतामणिरत्न दिया हो तो वह उसे अच्छा कंकड़ समझता है, पहचानता नहीं है। यह कैसी बात है! सचमुच चिंता करने जैसा है। पूर्वमें पुण्य किये तो यह संयोग मिला। उसे नासमझीमें व्यर्थ न जाने दो। अतः आत्माका भाव करना चाहिये। 'वार करे उसकी तलवार।' 'करे उसके बापका।' करेगा तो मिलेगा। भावना करनी चाहिये। अन्य काममें समय खोता है, पर धर्मके काममें समय नहीं बिताता। यही विपरीतता है। समझे तो सहज है। छोड़े बिना नहीं चलेगा। अंतमें देहको भी छोड़ना पड़ेगा। अतः बातको कुछ ध्यानमें लेना चाहिये। सचमुच सावधान होना है। इस अवसरको जाने नहीं देना है। माया और मोहसे बुरा होता है।

"सहु साधन बंधन थया, रह्यो न कोई उपाय;
सत्साधन समज्यो नहीं, त्यां बंधन शुं जाय?"

यह तो हृदयका हार है। एक ही शब्द, पर भान नहीं है। कियेका फल होता है, किन्तु इसका परिणाम भिन्न ही आयेगा। देख लेना, कर्तव्य है। चेत जाओ, फिर ऐसा दिन नहीं आयेगा—जैसा-तैसा नहीं है। ध्यान रखो।

★★★

ता. १६-११-३५, सबेरे

मनुष्यभव दुर्लभ है। अकेला आया है और अकेला जायेगा। आत्मा अकेला है, उसे पहचानना है। यह पहचान सत्संगमें होगी। किसी भी प्रकारसे सत्पुरुषको ढूँढे। यह मूल आधार है। उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढूँढना है। अन्य सब संयोग हैं और माया हैं, वे मेरे नहीं हैं। सब सत्पुरुषको अर्पण करना है। हे प्रभु! मैं नहीं जानता। सत्पुरुषने जाना वह आत्मा अमूल्य है, उसे किसीने सुना नहीं है। मायाके स्वरूपको याद करते हैं वह सब मिथ्या है। आत्माकी चिंता रखनी चाहिये, सत्संगमें तत्संबंधी जो बात समझनेकी हो उसे समझना चाहिये। शस्त्र है। उससे कर्म दूर होते हैं। बाधक हो उसे हटायें। ऐसा है कुछ? अब मनुष्य भवमें है कुछ?

१. मुमुक्षु–भाव तथा समझ है।

प्रभुश्री–भाव ही शस्त्र है, लाठी है। सत्संगमें सुनकर भाव करना चाहिये। भाव शुभ होते हैं, अशुभ होते हैं वे नहीं, पर शुद्ध भाव करें। ज्ञानियोंने जैसे भाव किये वैसे भाव करें। भावना करते-करते केवलज्ञान प्राप्त होता है। इस जीवको बोधकी बड़ी कमी है। लूटालूट करने जैसा है। दो घड़ी दिन बचा है। ऐसा अवसर बार बार नहीं मिलेगा। चूकने योग्य नहीं है। जीवको बड़ीसे बड़ी कमी बोधकी है। सुना नहीं है। सुने तो जागृत हो जाय। सवणे नाणे विन्नाणे। सुननेसे देवगति मिलती है, पुण्यबंध होता है। अन्य भव करना मिट जाता है। अधिक क्या कहें? संक्षेपमें कहना है कि अनंत कालसे समकित नहीं हुआ। जप तपके तो फल मिले। तेरी देरमें देर है। तैयार होकर आये तो बैठे इतनी देर। इधरसे उधर करनेमें रहेगा, तो गाड़ी निकल जायेगी। तैयार हो तो गाड़ीमें बैठ सकता है। आत्माका भाव करना योग्य है। पंखीका मेला है। एक-एक जीवके साथ अनंतबार संबंध हो चुका है, कुछ बाकी नहीं रहा है। सब मिला और गया। आत्मा तो है, है और है। परभावमें भटकता है उसको (आत्माको) एक घर है, वह घर है स्वभाव। वह कहाँ है?

१. मुमुक्षु–सत्संगमें।

प्रभुश्री–सत्संग बहुत किया, साधु बने, जप तप किये, उसके फल मिले।

२. मुमुक्षु–उसका स्थान उसमें ही है–उसका उपयोग।

प्रभुश्री–ज्ञानीका कहा कहता हूँ। समभावमें है। उससे अनेक मोक्ष गये हैं।

२. मुमुक्षु–समभाव करना है, पर वह होता क्यों नहीं?

३. मुमुक्षु–काँटा खराब है तब समभाव कैसे हो?

प्रभुश्री–इसका उत्तर सुगम है। यह सब कहा वह अज्ञान है। अज्ञान मिटकर ज्ञान होता है। बस इतना ही। अब कुछ बाकी है? कारणके बिना कार्य नहीं होता। किसकी कमी है?

२. मुमुक्षु–पुरुषार्थकी।

प्रभुश्री–वह सत्पुरुषार्थ। सत् आत्मा है। वह पुरुषार्थ है। यहाँसे पूर्वमें जायेंगे तो पश्चिममें नहीं जा सकते। अतः 'आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।' भाव करो। संसारका सेवन भी करना और मोक्ष भी जाना, दोनों संभव नहीं है। क्या कहा? छोड़ना पड़ेगा। बात जैसी है वैसी कह दी है। तेरी देरमें देर है। तैयार हो इतनी देर है। अभी यहाँ बैठा है और अच्छे भाव करेगा तो बुरा नहीं होगा। अच्छी दृष्टिसे देखे तो बुरा कैसे हो? चाबी नहीं है, गुरुगम नहीं है। कमी गुरुगमकी है। यह मनुष्यभव तो काम बना सकता है। यह मिलना दुर्लभ है। वृद्ध, युवान, बहन, भाई–एक मात्र आत्मा। उसको आवश्यकता है समझकी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"समझ सार संसारमें, समझु टाले दोष;
समझ समझ करी जीव ही, गया अनंता मोक्ष."

अब कमी क्या रही? कहो।

२. मुमुक्षु—भेदज्ञानकी कमी है।

प्रभुश्री—केवलज्ञानकी कमी! एक मूल बातको पकड़कर रखें। मूल नींव कहलाती है। ज्ञानीने कहा है—

"सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिनस्वरूप."—श्रीमद् राजचंद्र

इसका किसीको पता नहीं है, उसका भान नहीं है। सँभाल नहीं करता। यदि सँभाले तो कर्मका क्या बस है? बेड़ा पार हो जाये। बोधकी कमी है। सद्गुरुके बिना मोक्षकी आशा न रखें। जगतमें गुरु तो बहुत हैं, वे नहीं। जो सद्गुरु हैं वे ही, अन्य नहीं। चेतो। उन्हें ही ढूँढो, उनका ही संग करो, उनके दास बन जाओ। मारें, पीटें, कुछ भी करें, चिंता नहीं। उन्हें ढूँढे बिना छुटकारा नहीं है।

२. मुमुक्षु—सद्गुरुको ढूँढें कैसे?

प्रभुश्री—(सबके सामने देखकर) कहो न। आता सब है, पर भान नहीं है। पूर्वकृत और पुरुषार्थके बिना कोई जीव मोक्ष नहीं गया। ये दो बातें चाहिये। इसीसे जीव मात्रका भला हुआ है। बात की हुई है, पर भान नहीं है। सद्गुरु, पूर्वकृत, पुरुषार्थ। चेतो, अब कसर नहीं रखनी है। प्रयत्न यही करना है। अन्य प्रयत्नसे तो थक गये। इसके सिवाय मार्ग नहीं सूझता। कृपालुदेवने भी यही कहा था, वही कहता हूँ। गाड़ीके पीछे छकड़ा जायेगा। यही लक्ष्य है, श्रद्धा भी यही है। त्रिकालमें यह बात नहीं बदलेगी। अन्य कहनेवाला कौन है?

४. मुमुक्षु—पुरुषार्थ करते समय कर्म बाधक होते हैं या नहीं?

प्रभुश्री—कर्म हैं, वे पुद्गल हैं, आत्मा नहीं। और पुरुषार्थ तो आत्माका है। इन्द्र, चंद्र, नागेन्द्र सभीने बाँधा हुआ भोगा है; ज्ञानी भी नहीं बचे। पर कर्म किस गिनतीमें? राख हैं। प्रेमभरी गहरी बात कहता हूँ। अनंत कर्म उड़ गये, नष्ट हो गये; पर आत्माकी जो शक्ति थी वह कहीं गई? उसका नाश नहीं हुआ, वह वृद्ध नहीं हुआ। पर बड़ा भ्रम है। कहिये, क्या भूल आई है? कर्म बकरे हैं, वे भाग जाते हैं।

२.मुमुक्षु—स्वयंको स्वयंकी पहचान नहीं है, भान नहीं है।

३.मुमुक्षु—'भान नहीं निज रूपनुं।'

प्रभुश्री—यह तो न्यायकी बात कही, फिर भी भूल है। भान नहीं वह कर्म है। उन्हें बुलाकर मिटा देते हैं, निकाल देते हैं। समझने जैसी बात है, बहुत गहन बातें हैं। सबको निकालनेवाला आत्मा है। इसकी शक्ति अनंत है। कर्म जानेके लिये आते हैं, कोई मालिक बन बैठे सो नहीं चलेगा। जो हैं वे हैं, नये नहीं होंगे। पढ़ा हो, अनपढ़ हो, पर 'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ।' उसे जाने तो कर्म भागने लगते हैं। रात-दिन अंधेरा हो, पर दीपक आये तो अंधेरा भाग जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः जानेवाले हैं–कर्म जा रहे हैं, जल रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं। किसीके अमर रहे हैं? सभी स्थानों पर, चारों गतिमें गये, पर आत्माका नाश नहीं हुआ। चाबी हाथ नहीं आई। भेदी गुरु नहीं मिले।

"होत आसवा परिसवा, नहि इनमें संदेह;
मात्र दृष्टिकी भूल है, भूल गये गत एहि."

कहनेका तात्पर्य, भूल मात्र दृष्टिकी है। छोड़िये, अब बोलियेगा नहीं। इन चर्म-चक्षुओंसे क्या देखेंगे? जहाँ है, वहाँ है। सबमें बड़ेसे बड़ा, चौदह पूर्वका सार–'सद्धा परम दुल्लहा' यह काम बना देती है। 'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ' यह बात होती है, पर माँको छोड़कर मीनी (बिल्ली) का दूध पीने जाये तो क्या निकले? कोई नाम देनेवाला नहीं, बाल भी बाँका नहीं कर सकता। जगतमें कर्म घूमते फिरे, पर बँधेंगे नहीं। साधुका वेष पहननेसे साधु नहीं कहलाता। बैठते, उठते, चलते, फिरते, खाते, पीते संयम–उसने जाना सो। इसे तूने नहीं जाना, दृष्टि बदली नहीं। आस्रव करे वहाँ भी संवर होता है।

"होत आसवा परिसवा, नहि इनमें संदेह;
मात्र दृष्टिकी भूल है, भूल गये गत एहि."

कौन करनेवाला है? यह आत्मा चाहे सो कर सकता है। अधिक क्या कहें? एक आत्माको जान लो; उसकी पहचान करो। सद्गुरुके बिना पता नहीं लगेगा।' मल्यो छे एक भेदी रे, कहेली गति ते तणी।' उसके धन्य और पूर्ण भाग्य हैं कि जो मानेगा, उसका काम बन जायेगा। ये सब कर्मके चोचले हैं। यह बात कुछ भिन्न है। जिसे समझमें आती है उसे कुछ गिनतीमें नहीं, बाल भी बाँका नहीं हो सकता। करना पड़ेगा, किये बिना छुटकारा नहीं है। ऐसा अवसर आया है! फिर नहीं मिलेगा, अतः चेतिये।

★★★

ता. १६-११-३५ शामको

पत्रांक १६६ का वाचन–

"किसी भी प्रकारसे सद्गुरुकी शोध करें।"

ये वचन रामके बाण हैं! यह लक्ष्यमें भी नहीं है। सुलटानेके लिये यह भव है। समझनेका योग सत्संगमें है। सत्संग और बोधकी कमी है। 'मन महिलानुं रे वहाला उपरे, बीजां काम करंत।'

इस संसारमें मोहके समान बुरा अन्य कोई नहीं है। मोह वैरी-शत्रु है। एक सद्गुरुसे ही वह छूट सकता है, उन्हें याद करें। अन्यमें तल्लीन हो रहा है, पर जहाँ होना चाहिये वहाँ प्रेम नहीं है। राग करना हो तो सत्पुरुष पर करें। वचन ग्रहण नहीं करता। अनादिसे विषय-कषाय, भोग-विलासमें पड़ा है। सारा लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। दृष्टि बदले तो ताला खुल जाय। गजसुकुमारने क्या किया? मन, दृष्टि बदल दी कि मुझे मोक्षकी पगड़ी बंधाई। मेरा क्या? मेरा आत्मा। पहचान नहीं है, इसलिये भटक रहा है, मर रहा है। यह जीव भूल करता है, मार खाता है। जाने दो, अब तो इस भवमें चेत जाओ। राग कर, पर आत्माके साथ। वहाँ प्रेम-प्रीति कर। यों प्रेमको बदल दे। यह बात भाव पर आधारित है। भाव विक्रियाका था, पर वह तू नहीं। समझ बदलनी चाहिये। प्रेम-प्रीति मोह-मायाके ऊपर होती है। पर एक चाबी घुमानेका पता नहीं है, भान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। कृपालुदेवकी कृपा कि उन्होंने बोध दिया, उनके वचनरूपी चाबी मिल गई और काम हो गया! इसकी गिनती कहाँ है? दूसरेकी गिनती करता है वहाँ बुरा होता है, उलटा हुआ है। इसलिये अब जाने दे। तुझे ही भोगना पड़ेगा। इसलिये चेतनेका अवसर आया है तो चेत जा, नहीं तो मारा जायेगा। माता-पिता, बच्चे, सगे-संबंधी कोई छुड़ायेंगे नहीं, उल्टे बंधन कराते हैं।

"सहु साधन बंधन थया, रह्यो न कोई उपाय;
सत् साधन समज्यो नहीं, त्यां बंधन शुं जाय?"

यह एक ही वचन! सुना पर गुना नहीं। ध्यानमें नहीं है, लक्ष्यमें नहीं है। पक्वान्न खाये तो मुँह मीठा होता है। बात माननेकी है। इस स्थान पर पुण्यबंध होता है, दूसरे स्थान पर चार गतिका कारण है। छाया हो वहीं बैठा जाता है।

१. मुमुक्षु–"उसकी आज्ञाका निःशंकतासे आराधन करना चाहिये।" किसकी आज्ञा? और आराधन क्या?

प्रभुश्री–विचार करना पड़ा न? और विचार तो आत्माको होता है, भान नहीं है, पता नहीं है, इसीकी गडबड़ है।

१. मुमुक्षु–इसीलिये तो पूछना है न?–पता नहीं है इसलिये।

२. मुमुक्षु–सद्गुरुकी आज्ञाकी उपासना करनी है।

प्रभुश्री–सद्गुरु कहाँ हैं?

१. मुमुक्षु–सत्संगमें हैं।

प्रभुश्री–और कहाँ है?

३. मुमुक्षु–जहाँ आत्मज्ञान है, वहाँ सद्गुरु हैं।

२. मुमुक्षु–आत्मामें हैं।

१. मुमुक्षु– "व्यवहारसे देव जिन, निहचेसे है आप;
एहि बचनसे समझ ले, जिन प्रवचनकी छाप."

४. मुमुक्षु–वाणीमें तो सभी बोलते हैं, पर पाताल फूटा हो उसका पानी काम आता है।

१. मुमुक्षु–सत्साधन क्या?

प्रभुश्री–कुछ गुत्थी उलझ गई है। इसे खुले दिलसे समझना चाहिये कि लो ऐसे, जिससे बादमें अन्य किसीको बोलना न पड़े। दूसरा कोई बोल न सके वैसा कहो।

२. मुमुक्षु–कार्य सिद्ध करनेके लिये कारणका सेवन करना होता है। सत्पुरुषकी सेवा करे तो आत्मज्ञान होना चाहिये। अपने सारे भाव बदलकर सत्पुरुषके चरणमें समर्पित कर देने चाहिये।

प्रभुश्री–कहना तो ठीक है। मुझे अपना कहाँ मनवाना है? पातालका पानी निकले तो काम हो गया! वैसा कुछ कहना है।

५. मुमुक्षु–साधन, पुरुषार्थ, संग। उसके दो भेद : सत् और असत्।

सत् वस्तु सत्पुरुषके योगके बिना नहीं आ सकती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री–बहुत चतुराई! कपड़े पहन-ओढ़ कर बात की है। बात की सो ठीक है। दो बात एकदम स्पष्ट हैं : एक तो सब छोड़ना पड़ेगा और एक बिना दूल्हेकी बारात कहलाती है।

[1]अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ॥ (उत्तराध्ययन २०, गाथा ३७)

क्या अज्ञान है वहाँ आत्मा नहीं था? पर कहना है ज्ञान-आत्माके संबंधमें। आत्माके बिना कोई करनेवाला नहीं है। आत्मा कर्मके कारण नहीं है। आत्मा मोक्षस्वरूप है। 'जब जागेंगे आतमा, तब लागेंगे रंग।' मूल बात तो पातालका पानी चाहिये। आत्मा तो है। बोध सत्संग आदि द्वारा अज्ञानका ज्ञान भी आत्माको होगा; जड़को, कर्मको नहीं होगा। कर्मकी दौड़ है! पूरा जीवन कर्मके लिये खपाया है, वह भूल है। अतः पहले एकका अंक (१) चाहिये, फिर सब शून्य (०) कामके हैं। वह कौन पहचानेगा? आत्मा ही। निश्चयसे ज्ञानी, गुरु आत्मा है। उसे वही पहचानेगा। अतः सत्संगमें बोध, वाणी सुनकर नक्की कर लें कि कहाँ जाना और क्या करना है? 'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ' इसके बिना एक कदम भी नहीं चल सकते। गुरु आत्मा है, पर पहचान होनी चाहिये। 'कीली (चाबी) गुरुके हाथ, न पायेंगे भेद वेदमें।' बात तो माननेकी, सुननेकी है। सुनाई नहीं देती; कारण, योग्यताकी कमी है, विघ्न बहुत हैं। वह मिलनेसे, वह सुननेसे, उस पर श्रद्धा करनेसे आत्मासे झंकार उठेगी, छूटनेकी बातकी। अतः झंकार होगी वहींसे, अन्य स्थानसे नहीं। स्वयं तैयार होने पर ही छुटकारा है। तब आस्रवका संवर होगा। बात इतनी ही है। बादल चढ़ा हो पर फट जाये, वैसे ही यह बात कौन सुनेगा? यह (आत्मा) न होता तो कौन सुनता? जिसके गीत गाने हैं, जिसे समझना है, वह समझमें नहीं आया। गुरु तो आत्मा है, ज्ञानी तो आत्मा है, जगत (मोह-विकल्प) तो आत्मा है। अन्य सब वर्ण, रस, गंध, स्पर्श उसमेंसे यह निकला, अन्य कुछ न निकला, कारण जड़ है उसमेंसे आत्मा नहीं निकलता। समझनेकी भूल है। सुना ही नहीं है। काल नहीं पहुँचता, बाकी बात गंभीर है, पूरी नहीं हुई है। समझने जैसी है।

★
★ ★

ता. १७-११-३५, सबेरे

पत्रांक १६६ का वाचन–

"अनादिकालके परिभ्रमणमें अनन्त वार शास्त्रश्रवण, अनन्त वार विद्याभ्यास, अनंतवार जिनदीक्षा और अनन्तवार आचार्यत्व प्राप्त हुआ है। मात्र 'सत्' मिला नहीं, 'सत्' सुना नहीं, और 'सत्'की श्रद्धा की नहीं, और इसके मिलने, सुनने और श्रद्धा करने पर ही छुटकारेकी गूंज आत्मामें उठेगी।"

प्रभुश्री–दोष तो जीवका है, योग्यताकी कमी है।

१. मुमुक्षु–जीव तो नहीं चाहता कि मैं ऐसा करूँ, फिर क्यों होता है?

प्रभुश्री–तृष्णा करता है। कमी योग्यताकी है। जड़को तृष्णा नहीं है, जीवको है। जीवमें भूल कितनी है? वह किस बातकी भूल है?

---

१. यह आत्मा स्वयं ही सुख और दुःखका कर्ता और भोक्ता है। यह आत्मा स्वयं ही सन्मार्ग पर रहे तो अपना मित्र और कुमार्गपर रहे तो स्वयं ही अपना शत्रु है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. मुमुक्षु–समझकी भूल है।

प्रभुश्री–अनादिकी भूल तो मिथ्यात्वकी है। जीवको सब मिला, पर समकित नहीं मिला। 'इसके मिलनेपर, इसको सुनने पर और इस पर श्रद्धा करनेसे ही छूटनेकी बातका आत्मासे गुंजार होगा।' उसके बाद छूटना हुआ है, तब तक सभी अधूरा।

२. मुमुक्षु–यह मिला है, सुन रहे हैं, श्रद्धा कर रहे हैं, तब और क्या करें? यह 'सत्' है ऐसा मानकर बैठे हैं।

प्रभुश्री–सुना ही नहीं है। दर्शन हुए हैं? सुना पर गुना नहीं। और करनेका किया नहीं। क्या समझना है? समझ गया, समझ गया करता है। अनादिकालसे समझे बिना कहाँ रहा है? पर जिसे समझना और जानना है, उसे जाना? 'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ।' अतः जाना नहीं है। कहनेका तात्पर्य, प्रतीति और श्रद्धा होनी चाहिये। यह काम है। सारे जगतमें श्रद्धा और प्रतीति करता है वह नहीं, जो करनेकी है वह करें।

"जैसी प्रीति हरामकी, तैसी हर पर होय;
चला जाय वैकुंठमें, पल्ला न पकडे कोय."

ऐसी यहाँ सत्में हुई है? प्रीति अनंत है। उसके बिना कोई नहीं है। "प्रीति अनंती पर थकी, जे तोडे हो ते जोडे एह।" जैसी प्रीति इस संसारमें धन-दौलत, बाल-बच्चों पर होती है, वैसी आत्मा पर नहीं हुई। अन्य बातोंमें जो प्रेम होता है, वैसा आत्मापर नहीं हुआ। गुत्थी है, भुलावा हुआ है। यह तो कुछ (भुलावा) है, अवश्य है। पानी (बोध) नहीं मिला तब तक प्यास रहती है; इसे पानी नहीं मिला। इस जीवमें भूल और कमी है। प्रमाद और आलस्यने बुरा किया है। इन चक्षुओंसे देखता है, दिव्य चक्षु नहीं है। अतः बाह्य दृष्टिसे बाह्य फल मिलता है। अंतरात्माको नहीं जान पाता। मुख्य बात यह है। उसे जानना पड़ेगा, तभी दर्शन होंगे। अनंतबार साधन किये, पर हाथ कुछ नहीं आया :

"वह साधन बार अनंत कियो;
तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो." (श्रीमद् राजचंद्र)

कुछ रह गया है। वह जो कर्तव्य है वही रह गया है। विघ्न बहुत हैं। विघ्न अर्थात् कर्म। वे बाधक होते हैं। मुख्य बात यह है। वे न हों तो उसे (आत्माको) दिखायी दे ऐसा है। मूल तात्पर्य क्या है? सब कुछ जप, तप, क्रिया, कमाई की; उसका फल मिला और मिलेगा। किंतु जो करना था वह नहीं किया; वह क्या है? उसे ढूँढ निकालो।

१. मुमुक्षु–सम्यग्दर्शन।

प्रभुश्री–देखिये, यह आया, वही कहा जायेगा। यह नहीं आया।

'समकित नवि लह्युं रे, ए तो रूल्यो चतुर्गति मांहे।' जप, तप, अन्य सब साधन बादके हैं। सिद्धांतमें सबका सार किसे कहा है? क्या करना चाहिये?

१. मुमुक्षु–सत् श्रद्धा करनी चाहिये।

प्रभुश्री–आई, देखिये, अन्य कहाँसे निकलेगा? पहचान नहीं है। आता-जाता है, बैठता-उठता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, पर पहचानता नहीं है। जैसे कोई हाथ पकड़कर कहे कि लो, देखो, इसे पहचाना? जैसे संसारमें रात-दिन एक स्थानपर साथमें मिलते हों, पर किसीसे पहचान न हो, और दूसरा व्यक्ति बताये कि यह तो अमुक व्यक्ति है, तब कहे कि अरे! ये तो अपने साथ रहते थे, पर मैं तो पहचान ही न सका। फिर पछताता है, अतः पहचान बड़ी बात है। पहचानसे ही छुटकारा है। जप, तप आदि सब साधन बादके है। पहले पहचान, सिद्धांतका सार : 'सद्धा परम दुल्लहा।' यह तो भगवानने गौतम जैसे शिष्यको कहा है। कहनेका तात्पर्य, सारका सार 'श्रद्धा' है। झंकार होगी। जहाँ चक्रवर्तीका पद प्राप्त हुआ हो, वहाँ नौ निधान चले आते हैं, लेने नहीं जाना पड़ता। अतः पढ़ा हुआ हो, अनपढ़ हो, पर 'जो जाना उसे नहीं जानूँ, जो नहीं जाना उसे जानूँ।' यह नक्की नहीं हुआ। हो जाय तो फिर चिंता नहीं। फिर सभी बातोंमें आनंद रहता है। +'ज्ञानीना गम्मा जेम नाखे तेम सम्मा।' मर! फिर पागल हो जाये, उन्माद आवे, रोग आवे, व्याधि आवें–चिंता नहीं।

२. मुमुक्षु–"विशेष रोगके उदयसे अथवा शारीरिक मंद बलसे ज्ञानीका शरीर कम्पित हो, निर्बल हो, म्लान हो, मंद हो, रौद्र लगे, उसे भ्रमादिका उदय भी रहे; तथापि जिस प्रकारसे जीवमें बोध एवं वैराग्यकी वासना हुई होती है, उस प्रकारसे उस रोगका, जीव उस उस प्रसंगमें प्रायः वेदन करता है।"

प्रभुश्री–इसका अर्थ स्पष्ट समझना चाहिये। भ्रम आदि रोग हुआ हो तो भी क्या वेदन करता है? इतना स्पष्ट कह दो। पागल, उन्मादी हो तो भी जीवमें जितनी बोध और वैराग्यकी वासना हुई हो उतना ही जीव उस रोगको वेदता है। यह मर्मकी बात है, कुछ समझमें आयी? वैराग्य आत्मा है, बोध आत्मा है। अन्य बोध बहुत सुने, अनंत बार साधन किये, पर वे नहीं। यहाँ कहना है सत् बोध। जिसे इस बातकी समझ और दृढ़ता हो गई है वह फिर नहीं डिगेगा। समझदार व्यक्ति हो किंतु बीमारीके कारण पागलकी भाँति बोले और बकवास करे; ऐसा हुआ हो, फिर भी अंतरंगमें ऐसी गाँठ बैठ गई है कि आत्मासे सब भिन्न है–सर्दी, बुखार सबको जाननेवाला हुआ, भेदी हुआ। भेदके भेदको जाना है? वह संसारकी वासना, विकल्प आदिसे आत्माको भिन्न करता है अर्थात् इन सबसे स्वयं भिन्न होता है। अतः भेदके भेदको समझनेसे काम होगा। कोई दुत्कारे, मारे, काटे, छीले, टुकडे करे तो भी कुछ नहीं। तब कहा जा सकता है कि आत्मा समझमें आया है। तात्पर्य, समझनेकी आवश्यकता है। आत्माको समझें। जिसने जाना उसने जाना। उसे अच्छा-बुरा कुछ भी हो, पर ऐसा कुछ नहीं लगता। अन्यथा नहीं मानता। आया है वह जानेके लिये ही आया है, पूर्वबद्ध छूट रहा है। इसका किसी भेदीको पता है। जिसने आत्माको जाना है, उसके कर्म छूटते हैं; दूसरा बँधता है। अतः जाननेसे छुटकारा होगा। बात यह है। आगम-सिद्धांतमें भी यही है, 'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ' एक ही बात है। यही शाश्वत है।

एगो मे सस्सदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा॥

इसकी सगाई किसने की थी? एक सगाई हो जाय तो सब काम हो जाये। सगाई कर डालो। अभी मनुष्यभवमें सगाई कर लेनी चाहिये।

+ **भावार्थ**–ज्ञानीकी प्रत्येक प्रवृत्ति सम्यक् होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१]"समकित साथे सगाई कीधी, सपरिवारशुं गाढी;
मिथ्यामति अपराधण जाणी, घरथी बाहिर काढी–हो मल्लिजिन०"

मिथ्यात्वके सिवाय और कुछ छोड़ना है? ज्ञानी पुकारकर क्या कहते हैं? मिथ्यात्व छोड़ो। तब कुछ है या नहीं? छोड़ना बहुत कठिन है, तथा सरल भी है–आँखें खोलें इतनी देर। कृपालुदेवने मुझे कहा–"मुनि, अब तुम्हें क्या है? अब क्या चाहिये? अन्य कुछ भी तुम्हारा नहीं है, एक आत्मा है।" तुरत बैठ गया। अतः छोड़ना पड़ेगा, त्यागना पड़ेगा। कोई साथ नहीं ले गया। ऐसा है या नहीं? हमें तो चपत मारकर बताया। अतः जिसे नहीं जानता था, उसे जाना। अब क्या है? क्या बाकी रहा? हमें तो आनंद आ गया। जीवने बात लक्ष्यमें नहीं ली है, वह लेनी चाहिये। कहनेका तात्पर्य, पहले श्रद्धा कर लो। किसकी श्रद्धा करें? जो है (सत्) उसकी। साँचको पकड़े तो कुछ हाथ लगे। झूठा काममें नहीं आता। मूल एकका अंक सीखनेकी बात इतनी ही है। उसे मानो। यह तेरा बल और स्फुरणा। अन्यके हाथमें नहीं, तेरे ही हाथमें है। अतः हो जा तैयार, अन्य क्या कहें? बात इतनी सी है। तैयार होनेकी आवश्यकता है। कृपालुदेव हमें और देवकरण मुनिको कहते थे कि तुम्हारी देरमें देर है। पर देवकरणजी अपनी चतुराईमें रहते थे। उन्हें मैं कहता अवश्य था, पर वे (दूसरोंको) कहते कि मुनि तो भोले हैं, मैं ठगा नहीं जाऊँगा। अंतिम बार, आखिर देवकरणजीकी चतुराई धूलमें मिल गई और उन्होंने कहा कि अब गुरु मिले, फल पका, रस चखा। ऐसा हुआ। ऐसा है। यह किसकी बात है? आत्माकी।

हजार बार इससे अधिक वेदनी आये तो भी क्या? पूर्वबद्ध उदयमें आता है, उसका क्या करें? छोड़ना है, समझने पर ही छुटकारा है। यह बात है भेदी तथा ज्ञानीपुरुषकी, हाथ नहीं लगी। कहनेका अधिकार किसीका नहीं; पर भावना, इच्छा तो करा सकते हैं। परंतु बल तो उसे स्वयं ही करना पड़ेगा, उसके बिना कुछ कामका नहीं।

★★★

ता. १७-११-३५, शामको

[एक वृद्ध बाईने चौथे व्रतकी प्रतिज्ञा ली उस प्रसंग पर]

वृद्धावस्था हो तो भी व्रत कहाँ? फिर यह तो सबसे बड़ा शीलव्रत है। एक सत् और शील ये दो वस्तु सबको समझनी चाहिये। समुद्र-किनारा आया। समकित-प्राप्तिका मार्ग। देह जाय तो भी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। मनुष्यभव पाकर इस शील व्रतकी प्राप्ति बड़ी बात है। इसका बराबर पालन किया तो देवगति होती है। इस जीवको जो श्रद्धा है, वही सत्पुरुष, वही सद्गुरु और वही अपना धर्म है।

[२]"धरम धरम करतो जग सहु फिरे, धर्म न जाणे हो मर्म, जिनेसर;
धरम जिनेसर चरण ग्रह्या पछी, कोई न बांधे तो कर्म, जिनेसर.
धर्म जिनेसर गाउं रंगशुं." (आनंदघन चौबीसी)

---

१. हे मल्लिनाथ भगवान! आपने समकितके साथ ही नहीं, किंतु शम-संवेगादि रूप समकितके परिवारके साथ भी गाढ़ प्रेमसंबंध किया है, अतः मिथ्यात्वरूप मिथ्यामतिको अपराधी जानकर मनमंदिररूप घरमेंसे बाहर ही निकाल दिया है अर्थात् मिथ्यात्वका त्याग कर दिया है। २. सारा जगत 'धर्म धर्म' कहता फिरता है पर धर्मका रहस्य किसीने जाना नहीं है। धर्म जिनेश्वरके चरण (आश्रय) ग्रहण करनेके बाद कोई जीव (निकाचित) कर्मका बंध नहीं करता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो कर्म नहीं बाँधता, उसको क्या होता है? एक सद्गुरुको ढूँढकर उसकी शरण लें, फिर दुःख-सुख आयें, देव-नरक गति चाहे जो आवें, तो भी बाल बाँका नहीं हो सकता; क्योंकि शरण एक सच्चे सद्गुरुकी आ गई। अन्य सब करनीके फल मिलते हैं। साता-असाताके फल जीवको भोगने पड़ते हैं। आत्मा उनसे भिन्न है। मेरा एक आत्मा, मैं उसे नहीं जानता; पर ज्ञानी गुरुने जो यथातथ्य जाना है, उसकी मुझे शरण है। शेष सब 'वोसिरे वोसिरे' (सबका त्याग)। विविध प्रकारसे वेदनीय आयेगी। सब सहन करें। वहाँ बँधे हुए कर्म छूटते हैं। प्रसन्न होना चाहिये, भले ही आयें। मनमें निश्चय किया है कि मेरा आत्मा मरेगा नहीं। सुख-दुःख जायेंगे; आत्माका नाश नहीं होगा। एक उसीकी शरण है। इतनी दृढ़ता रखकर सच्चेकी शरण रखें कि मेरा एक आत्मा, अन्य सगे-संबंधी नहीं। एक 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' यह मंत्र है, यदि जीवको वह स्मृतिमें आ जाय और भान रहे तब तक वही रहे, अन्य नहीं। [1]'एक मत आपडी के ऊभे मार्गे तापडी।'—की तरह यही एक पकड़ रहें। अन्य संसारी प्रसंग देखें नहीं, अनंतबार मिले, पर अपने हुए नहीं। अकेला आया और अकेला जायेगा।

'श्रीमद् राजचंद्र'में से वाचन—

"विशेष रोगके उदयसे अथवा शारीरिक मंदबलसे ज्ञानीका शरीर कंपित हो, निर्बल हो, म्लान हो, मंद हो, रौद्र लगे, उसे भ्रमादिका उदय भी रहे; तथापि जिस प्रकारसे जीवमें बोध एवं वैराग्यकी वासना हुई होती है उस प्रकारसे उस रोगका, जीव उस उस प्रसंगमें प्रायः वेदन करता है।"

बोध और वैराग्य आत्मा है। 'हीरा, हीरा' कहनेसे क्या होता है? पहचान चाहिये। वैराग्य है वह आत्मा है। उसे ज्ञानीने जाना है। वह समझने योग्य है। बोध अनेक प्रकारका होता है, पर जिस बोधसे वैराग्य होकर आत्मा जागृत हो, वह बोध सच्चे पुरुषका कहलाता है।

रोग, व्याधि, पीड़ाके समय बोध हो तो वह क्या करता है?

आत्मा है; आत्मा है तो जानता है। अभी दूसरे प्रकारसे कह रहा हूँ। पकड़ा तो पकड़ा, [2]छोड़े

---

१. एक जंगलमें सियार, खरगोश और साँप तीन मित्र रहते थे। वे एक पेडके नीचे बातें करते बैठे थे। सियारने कहा, "हमारे जंगलमें आग लगे तो हमें क्या करना चाहिये?" खरगोश बोला "मेरी तो सौ मति हैं कि जमीनमें खड्डा खोदूँ, दौड़कर दूर भाग जाऊँ या चाहे जहाँ छिप जाऊँ।" साँप बोला, "मेरी तो लाख मति हैं, जिससे चूहेके बिलमें घुस जाऊँ, पेड़ पर चढ़ जाऊँ या किसीको दिखाई न दूँ ऐसे गायब हो जाऊँ।" फिर सियार बोला कि "मेरी तो एक ही मति है कि सीधे रास्ते पर भाग जाऊँ।" इतनेमें चारों तरफ दावानल लग गया। सियार तो 'एक मत आपडी के ऊभे मार्गे तापडी' यों कहकर दो-तीन मील दूर भाग गया।

दो-तीन दिन बाद जब अग्नि शांत हुई तब मित्रोंको ढूँढने सियार उस पेड़के पास आया। बिलोंमें खरगोशको ढूँढते हुए एक स्थान पर खड्डेमें उसकी पूँछ दिखाई दी तो उसे खींच निकाला और शोक करने लगा कि 'सो मत ससडी' (सौ मति बेकार हुई); बेचारा भुँज गया। फिर साँपको आसपास ढूँढा तो पेड़की ऊँची डाल पर ज्वालासे जला साँपका शरीर दिखाई दिया। यह देख वह बोल पड़ा कि—

सो मत ससडी, लाख मत लबडी;
एक मत आपडी के ऊभे मार्गे तापडी.

२. मूल गुजराती पाठ 'छोड़े ते बेट्टो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह बेटवा! महत्वपूर्ण बात है। उसीकी बात, उसकी पहचानके लिये बोध और सत्संग चाहिये। यहाँ बैठे हैं तो ये बातें सुन रहे हैं, अन्य कहीं होते तो अन्य बातें होती। तुम्हारा आत्मा, [1]बेटवा हो वह और कुछ देखे, करे और माने। जागते-सोते, खाते-पीते, चलते-फिरते, बैठते-उठते एक आत्मा। उसका पता नहीं है। उसमें गुरुगम चाहिये। भेदीसे मिले तो काम बने। एक विश्वास आना चाहिये। यदि कहनेवाला मिले और सुनकर विश्वास करे तो काम बन जाय। उसीसे मुक्ति है। सिद्धांतका संक्षिप्त सार यही है। बोध और वैराग्यकी वासना हुई हो तदनुसार वेदन करता है। 'आओ आओ' कहनेसे और कुछ आयेगा क्या? उसकी पहचान होनी चाहिये, पहचानसे मुक्ति है।

१. मुमुक्षु– "कर्म मोहनीय भेद बे, दर्शन चारित्र नाम;
हणे बोध वीतरागता, अचूक उपाय आम." (श्री आत्मसिद्धि)

प्रभुश्री–वीतरागता कहीं भी नहीं। कहाँ है? ज्ञानीने वीतरागको देखा। आत्मा है, नित्य है, कर्त्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है, मोक्षका उपाय है। अन्यको [2]'तूँबीमें कंकड़।' श्रद्धा, प्रतीति, आस्था, मान्यता दुर्लभ है। वह करने तैयार हो जाना चाहिये। मनुष्यभवमें ही कहा जाता है; पेड़-पत्ते, कौवे-कुत्ते आदिसे कहा जाता है क्या? सबको कहनेका यह अवसर आया है इसलिये कह रहे हैं। भूलें नहीं। दृढ़ता कर दें–'यह मेरा स्वामी' ऐसा मानना कर्तव्य है। 'रंजन धातु मिलाप' मिल जाये तो कहना नहीं है। मिलाप होनेके लिये कहना है। अतः यह न जाओ; धन-वैभव, पैसा-टका जाओ, पर यह न जाओ। अन्य सब किया। अभ्यास किया! पढ़ा पर गुना नहीं।

मेहमान, भक्ति करना। 'सुनते-सुनते फूटे कान, तो भी न आया ब्रह्मज्ञान।'

★★★

ता.१८-११-३५, सबेरे

पत्रांक १६६ मेंसे वाचन–

"अनादिकालके परिभ्रमणमें अनन्तवार शास्त्रश्रवण, अनन्तवार विद्याभ्यास, अनंतवार जिनदीक्षा और अनन्तवार आचार्यत्व प्राप्त हुआ है। मात्र 'सत्' मिला नहीं, 'सत्' सुना नहीं और 'सत्' की श्रद्धा की नहीं, और इसके मिलने, सुनने और श्रद्धा करनेपर ही छुटकारेकी गूँज आत्मामें उठेगी।" ['सत्' पर चर्चा हुई]

प्रभुश्री–बात सब अच्छी की, मुझे अच्छी लगी, पर परिणाम क्या? परिणाम अर्थात् क्या?

१. मुमुक्षु–आत्माके अपने भाव।

२. मुमुक्षु–द्रव्य, गुण, पर्याय–प्रत्येकके दो भेद, विभावपर्याय और स्वभावपर्याय। वस्तुकी एक समयकी अवस्था सो पर्याय, परिणाम, वस्तुका स्वरूप; जब तक जीवके परिणाम तथा भाव नहीं आते, तब तक तद्रूप नहीं हुआ जा सकता। पर्याय वस्तुसे (द्रव्यसे) भिन्न नहीं है। वस्तु इसी रूपमें है। विभावपर्यायमें विभाव आत्मा, स्वभावपर्यायमें स्वभाव आत्मा।

प्रभुश्री–परिणामकी बहुत अच्छी बात आई। वे परिणाम बदलते होंगे या नहीं?

---

१. मूल गुजराती पाठ 'बेट्टो होय ते बीजुं जुओ'।

२. तूँबीमें कंकड़ डालकर कोई बजाये तब किस कंकड़की कैसी आवाज आती है उसका जैसे पता नहीं लगता, वैसे ही बोध सुना हो पर उसका सार न समझे तो वह तूँबीमें कंकड़ समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. मुमुक्षु–परिणाम समय-समयपर बदलते हैं। परिणामके बिना द्रव्य नहीं होता, तथा एक द्रव्यके दो परिणाम नहीं होते।

प्रभुश्री–बात तो बड़ी ऊँची, गहन! समझने योग्य है। परिणाम भी बदलते हैं, पर्याय भी पलटती है। सब है तो आत्मा भी है।

३. मुमुक्षु–'दो अक्षरमें मार्ग रहा है' वह क्या है?

प्रभुश्री–आप सब सोच-समझकर कहियेगा। बात बहुत अच्छी की, भली की।

४. मुमुक्षु–'सत्'में मार्ग रहा हुआ है।

५. मुमुक्षु–ममत्व छोड़े तो मार्ग मिलता है।

२. मुमुक्षु–आत्मामें आत्माका मार्ग रहा हुआ है।

१. मुमुक्षु–'बोध' और 'श्रद्धा' में मार्ग रहा हुआ है।

६. मुमुक्षु–सत्पुरुषकी 'आज्ञा' में मार्ग रहा हुआ है।

७. मुमुक्षु–'सम'में मार्ग रहा हुआ है।

प्रभुश्री–अनंत कालचक्रसे परिभ्रमण कर रहा है। बैठे बैठे खिलाया-पिलाया है। खिलाया है और परिभ्रमण किया है; पर कल्याण नहीं हुआ। सद्गुरुकी शरणसे बात की जा रही है। बैठे बैठे खा-खा किया है और हृष्ट-पुष्ट किया है वह क्या है?

४. मुमुक्षु–शरीरको पुष्ट किया है।

२. मुमुक्षु–अज्ञानको पुष्ट किया है।

१. मुमुक्षु–मनको पुष्ट किया है।

प्रभुश्री–सब परिभ्रमण विभावसे हुआ है। इस जीवने अनंत कालचक्रसे विचार नहीं किया। 'कर विचार तो पाम,' पर उस विचार और आत्मभावमें रहे तो, नहीं तो नहीं। 'कर विचार तो पाम' यह काम नहीं हुआ। जिस-किसी दिन इसीसे काम बनेगा। यह आने पर ही छुटकारा है। विचार नहीं किया।

३. मुमुक्षु–इस पत्रमें अंधेको मार्ग बतानेका कहा है, अतः मार्ग बताइये, कारण, कीली (चाबी) तो गुरुके हाथमें है।

प्रभुश्री–विचार करे तो किसीको पूछनेकी आवश्यकता नहीं है। अतः विचार करना चाहिये।

★★

ता. १८-११-३५ शामको

इस जीवका बुरा करनेवाला शत्रु प्रमाद और आलस्य है। धर्म करनेमें शर्म आती है, आलस्य आता है; सच्चे मार्ग पर जाते डर लगता है! करनेको तो इतना भव है। चेतने जैसा है। काल बीत रहा है। फू.... करके अचानक देह छूट जायेगी, देर नहीं लगेगी। कोई रहनेवाला नहीं है। अकेला जायेगा, साथमें कुछ नहीं आयेगा, कोई नहीं आयेगा। इतना भव बचा है। 'पवनसे भटकी कोयल' 'पंखीका मेला'। अतः चेतने जैसा है। महापुरुषोंने इस पर चिंतन किया है और करनेको कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाथसे बाजी निकल गई तो फिर नहीं आयेगी। ऐसा अवसर मिला है, मेरे भाई, चेत जा। कैसे कैसे थे! अंबालालभाई, सोभागभाई, मुनि मोहनलालजी, ऐसे ऐसे भी सब गये। अतः इस मनुष्यभवमें चेत जा। जगतकी मायामें प्रीति—धन, बाल-बच्चे आदि चाहिये। धूल पड़ी! तेरे कोई हुए नहीं। अकेला आया और अकेला जायेगा। तेरे कोई नहीं है।

पत्रांक ४३० का वाचन—

"कोई भी जीव परमार्थको मात्र अंशरूपसे भी प्राप्त होनेके कारणोंको प्राप्त हो, ऐसा निष्कारण करुणाशील ऋषभादि तीर्थंकरोंने भी किया है; क्योंकि सत्पुरुषोंके संप्रदायकी ऐसी सनातन करुणावस्था होती है कि समयमात्रके अनवकाशसे समूचा लोक आत्मावस्थामें हो, आत्मस्वरूपमें हो, आत्मसमाधिमें हो, अन्य अवस्थामें न हो, अन्य स्वरूपमें न हो, अन्य आधिमें न हो; जिस ज्ञानसे स्वात्मस्थ परिणाम होता है, वह ज्ञान सर्व जीवोंमें प्रगट हो, अनवकाश रूपसे सर्व जीव उस ज्ञानमें रुचियुक्त हों, ऐसा ही जिसका करुणाशील सहज स्वभाव है वह सनातन सम्प्रदाय सत्पुरुषोंका है।"

सबका भला हो! ऐसा अवसर फिर प्राप्त नहीं होगा। लूटमलूट करने जैसा है। इस स्थान पर कृपालुदेवकी कृपा है कि सुननेका संयोग मिला। ढेर सारा पुण्यबंध होता है। जीव यदि भाव रखे तो काम हो जाय। चले बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता। एक-न-एक दिन मायाको छोड़ना ही पड़ेगा और आत्माके साथ जाये सो ग्रहण करना पड़ेगा, अतः चेत जाओ। 'सर्व जीव आत्मस्वरूपमें हो, आत्मसमाधिमें हो, अन्य...में न हो।' यह वचन! अहा! काम निकल जाय! किंतु प्रेम नहीं है। तुझे करना है वह किया नहीं, पकड़ना है वह पकड़ा नहीं, सब व्यर्थ गया। धूल पड़ी! धर्म बढ़ानेसे बढ़ता है, माया-मोह, जन्म-मरण आदि भी बढ़ानेसे बढ़ते हैं और घटानेसे घटते हैं। कलका किसे पता है? अतः चूके नहीं, चेत जायें—हृदयमें लिख रखने जैसी बात है। एक स्मरण भूलने योग्य नहीं है, याद करते रहें। यथार्थ बात है। यह बात कौन जानता है? ऐसा (मरण) हो तो? अतः चेत जायें, ढील न देवें, घबराये नहीं। चाहे जो हो, पर हमें अपना काम कर लेना चाहिये। अवसर आया है, भूलें नहीं। बाकी तो सर्वत्र विष ही विष है, कहीं अच्छा नहीं है, छोड़ने योग्य है, सब प्रतिबंध है, अतः चेत जायें। कोई काम नहीं आया, अतः आत्माको याद करें और उसे ध्यानमें लेते रहें। आलस्य और प्रमादने बुरा किया है। ये जीवके शत्रु हैं।

आत्मार्थके लिये एक 'आज्ञा' पालन करनेका कहना है। जीवको उल्लासभाव नहीं आता। दूसरी बातों पर प्रेम-प्रीति आती है और इस पर नहीं आती। [1]कहनेवाला कहे देता है और जानेवाला चला जाता है।

"जीव यदि अज्ञानपरिणामी हो तो जैसे उस अज्ञानका नियमित रूपसे आराधन करनेसे कल्याण नहीं है वैसे मोहरूप मार्ग अथवा ऐसा इस लोकसंबंधी जो मार्ग है वह मात्र संसार है; उसे फिर चाहे जिस आकारमें रखें तो भी संसार है। उस संसारपरिणामसे रहित करनेके लिये असंसारगत वाणीका अस्वच्छंद परिणामसे जब आधार प्राप्त होता है, तब उस संसारका आकार निराकारताको प्राप्त होता जाता है।" (श्रीमद् राजचंद्र)

स्वयं मान लेता है कि मैं धर्म करता हूँ। अहा! कितने खेदकी बात है! चुटकी भरकर खड़ा

---

१. मूल गुजराती पाठ—'कहेनारो कही छूटे अने वहेनारो वही छूटे।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना है। सोतेको जगाना है। प्रतिबंध किया है उसे छोड़ो और इधर ध्यान दो। कृपालुदेवने दीपचंदजी मुनिको कहा था, "आप समझते हैं कि आप जो कर रहे हैं उससे कल्याण है, आपकी यह समझ मिथ्या है।" देखिये, निकाल दिया। अतः यह समझमें आये तो काम बनता है। यह शिक्षा कुछ ऐसी-वैसी नहीं है, अगाध बात है। इतना भव बचा है। क्या है? फिर पता लगेगा क्या? अतः बदलना होगा। बदले बिना छुटकारा नहीं है।

★
★★

ता. १९-११-३५, सबेरे

पत्रांक ४३० का वाचन—

"कल्याण जिस मार्गसे होता है उस मार्गके दो मुख्य कारण देखनेमें आते हैं। एक तो जिस संप्रदायमें आत्मार्थके लिये सभी असंगतावाली क्रियाएँ हों, अन्य किसी भी अर्थ—प्रयोजनकी इच्छासे न हों, और निरंतर ज्ञानदशा पर जीवोंका चित्त हो, उसमें अवश्य कल्याणके उत्पन्न होनेका योग मानते हैं।"

प्रभुश्री—ये चमत्कारी तथा अलौकिक वचन हैं! दो क्रियाएँ कही। एक असंग आत्माके लिये, दूसरी ओघा-मुँहपत्ती, जप-तप आदि साधन-क्रिया कही। उसके फल मिले—निंदा नहीं करनी है। कियेका फल मिला। आत्माका नाश नहीं हुआ। आत्मा है, उसे पहचाना नहीं है, माना नहीं है। ज्ञानीपुरुषने पहचाना है। ये कृपालुदेव यथातथ्य ज्ञानी। उनके आश्रित जीवोंका भी कल्याण है। ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा। अतः सबके साथ मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भाव रखें। इच्छासे तो परिभ्रमण होता है, उससे किसीका मोक्ष नहीं हुआ। आत्मध्यान श्रेष्ठ है। ज्ञानीपुरुषोंने ठप्पा लगा दिया। अतः चेत जाइये। क्या सुनाई दे रहा है?

सब मुमुक्षु—हाँ, सुनाई दे रहा है।

प्रभुश्री—तो बहुत अच्छा। इस भवमें चेत जाना है। सबके साथ मैत्री भाव रखें। आत्मा है, ज्ञानीपुरुषने उसे देखा है, वही मुझे मान्य है। मेरी यही इच्छा है, अन्य नहीं; क्योंकि अन्य सब बंधन हैं। अब वृद्धावस्था हो गई है। 'पवनसे भटकी कोयल'। छोटे-बड़े सब आत्मा हैं। पूर्वबद्ध भोगे बिना छुटकारा नहीं है। ज्ञानी भी भोगते हैं। अतः एक आत्मा। सब चेत जाइये। अंतिम अवसरकी बात है। जो सावधान रहेगा उसके बापका है। आत्माकी इच्छा और प्रीति करेगा उसका कल्याण है। 'प्रीति अनंती पर थकी जे तोडे हो ते जोडे एह।' अन्य सब—बाल-बच्चे आदि व्यवहारसे। अपना कुछ नहीं है। अपना आत्मा है। वह कहाँ है? तो कहते हैं कि ज्ञानीने उसे देखा है। इसके संबंधको, प्रीतिको प्राप्त करने तैयार हो जाइये। मैं सबसे असंग हूँ, प्रतिबंध रहित। मेरा कुछ नहीं, यह सब माया है, उसे देख रहा हूँ, एकमात्र ज्ञानसे।

दो अक्षरका 'ज्ञान' वह क्या है? दो अक्षर कौनसे कहे हैं? संक्षेपमें समझो। उसका अर्थ ज्ञानी जानते हैं, पर समझिये, आप तो समझिये। 'ज्ञान' कहते ही सब कुछ इसमें समा गया। कुछ बाकी नहीं रहा। वह आत्मा है। ज्ञान-अज्ञान, स्वभाव-विभाव—सब उसमें समा गया है, इन दो अक्षरोंको पकड़कर रखें। वह ज्ञान ज्ञानीके पास है। उन्होंने उसे जाना है, बोध किया है, यह समझनेसे ही छुटकारा है। "मात्र 'सत्' मिले नहीं, 'सत्' सुना नहीं और 'सत्' पर श्रद्धा नहीं की। इसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलने, सुनने और श्रद्धा करने पर ही छूटनेकी बातकी आत्मामें गुंजार होगी।" बस, इतनेमें ही समझ लो। संक्षेपमें बहुत कह दिया। ध्यानमें रखो। यह पागल-मूर्ख जैसा प्रलाप है। बहरा, गूँगा, वृद्ध कौन बोलता है यह न देखो। ज्ञानीने यथातथ्य देखा, वह मुझे मान्य है, उसकी श्रद्धा—इतनी दृढ़ता करने जैसी है। यह वस्तु बार बार नहीं मिलेगी। 'पंखीका मेला।' तेरा क्या है? एक आत्मा। आत्मभावना बड़ी बात है।

"आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे,
आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे,
आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे,
आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे."

इसे श्रवण करें, लक्ष्य रखें, ध्यानमें रखें। अंतिम बात कहता हूँ। पकड़ रखें। फिर ऐसा अवसर नहीं आयेगा। मैं ज्ञानीका दास हूँ, उनके दासका भी दास हूँ। ज्ञानीने जो कहा है वही कहता हूँ, उसे मान्य करें। मेरी बात नहीं है, ज्ञानीकी बात है। चाहे जितना दुःख, व्याधि, पीड़ा आये, अन्य संसारी प्रीतिका स्नानसूतक कर चले जाना है। एक मात्र कहा हुआ स्मरणमंत्र, जब तक जीवको भान हो, स्मृतिमें हों तब तक याद करते रहें। सबको अंतिम अक्षर कह दिया, उसे याद रखें, चेत जायें। भावना करेंगे तो कोटि कर्म क्षय होंगे। यह वाणी तो पुद्गल है, पर ज्ञानीपुरुषका कहा हुआ सुनेंगे तो आपके धन्यभाग्य हैं! यह बात सुननेसे कर्मकी शृंखला टूटती है और देवगतिका बंध होता है। इतना तो मुझे मान्य है, ऐसा निश्चित करनेसे बहुत लाभ है। पागल-मूर्ख, अच्छा-बुरा, प्रिय-अप्रिय सब छोड़ दो, पर ज्ञानी-कथित, सत्पुरुष-कथित एक वचन क्या है? श्रद्धा। 'यह ज्ञानी' 'अमुक ज्ञानी' ऐसा न करो। समभाव रखो, मात्र एक सम। मैं नहीं जानता, ज्ञानीने यथार्थ जाना है, वह मुझे मान्य है। यही भावना करता हूँ, अन्य नहीं। खिचड़ीमें घी गिरे वह कामका है। अन्य सभी भावना ही है, पर वह नहीं; एक आत्मभावना और वह भी ज्ञानीने की सो भावना। यदि जीव यह दृष्टि रखेगा तो वह इस भव और परभवमें काम आयेगी। इस जीवने प्रमाद-आलस्य, व्यापार-धंधा, बाल-बच्चोंमें सब खोया है। अतः अब चेत जा। 'जागे तभी सबेरा' यह कथन सही अक्षरोंका है। इसका सुनना, उसका सुनना, अमुकका सुनना, सबका सुनना—यह नहीं; पर ज्ञानीका कहा सुनना है, वह वचन रामका बाण है, फोगट नहीं जायेगा। बात बराबर समझने जैसी है। यथार्थ बात है। लक्ष्यमें रखें। *मघाका पानी बरसता है तब लोग टंकियाँ भर लेते हैं, उसी प्रकार पानी भर लेंगे और पात्र बनेंगे तो पानी टिकेगा। ज्ञानी-कथित होनेसे मुझे मान्य

---

* एक राजाके पुत्रको कोढ़ हुआ। राज्यके सभी वैद्योंसे चिकित्सा कराने पर उन्होंने ऐसा अभिप्राय दिया कि मघा (नक्षत्र)की वर्षाके पानीका एक सप्ताह तक सेवन करनेसे यह रोग मिट जायेगा। किंतु शीतकाल होनेसे मघाका पानी मिलना कठिन था। अतः राजाने ढंढेरा पिटवाया कि यदि किसीने मघाका पानी इकट्ठा किया हो तो उसके बदलेमें उसे जो माँगेगा वह मिलेगा।

एक वणिकने मघाका पानी टंकीमें भर रखा था, उसने कहा कि जितना चाहिये उतना पानी ले जाइये।

एक सप्ताह तक मघाके पानीका सेवन करनेसे राजपुत्रका रोग मिट गया। फिर राजाने सेठसे कहा कि जो चाहिये वह माँग लो। उसने कहा कि मेरे गुरुके कहनेसे मैंने यह पानी इकट्ठा किया था, अतः मुझे कुछ नहीं चाहिये। किंतु आप उनका समागम करेंगे तो आपको इस पानीसे भी अधिक लाभ होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, कर्तव्य है। अन्य न मानें, यह सब अन्य प्रवर्तन हुआ है। अब जाने दो, छोड़ दो, झटक दो, छोड़नेका छोड़ दो। छोड़ने योग्य है। अनंतकालसे अन्य ही करते रहे, उसका फल भोगा; अन्यत्र सभी जगह चौरासीके फेरेमें भटका। अतः मनुष्यभव प्राप्तकर अभी यह श्रवण करो। 'एक असंग' कह रहे हैं, अतः चेत जाओ। ज्ञानीने उसे जाना वह मुझे मान्य है। अन्य सबका फल—नरक, देवलोक आदि—अनंत बार भोग चुका हूँ। अतः अब जाने दो। अब तो 'असंगता'का ठप्पा लगाया है; अमृत बरसाया है! मघाके पानीके समान भर लेने जैसा है, प्रेमपूर्वक जानने जैसा है, भूलें नहीं। ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा। एक बाईने चौथे व्रतकी प्रतिज्ञा ली उस अवसर पर यह बात सुनी, पर फिर जोर देकर कहता हूँ कि आज तक मैंने जप, तप, क्रिया आदि की वह सब निष्फल हुई। अबसे सब एकमात्र आत्माके लिये करता हूँ, अन्य सुखके लिये नहीं। भगवानका कहा हुआ कहता हूँ। ज्ञानीने जो जाना, वही आत्माके लिये करूँ। बाईको देवगति मिलेगी। ज्ञानीकी कृपासे कहते हैं। कई जीव यहाँसे देवलोक जानेवाले हैं, अन्य गति नहीं है। अतः लूटमलूट लेने जैसा अवसर है। यह अवसर फिर नहीं आयेगा। अन्य भवमें नहीं सुन सकोगे। अतः चेत जाओ। काम बन जायेगा। आजसे, अभीसे चेतेंगे तो काम बन जायेगा। टेकको पकड़कर लक्ष्यमें लेनेवालेका काम बनेगा। ऐसा समझकर आत्मार्थ किया उसने अपना अवतार सफल किया। अपूर्व बात है! मार्ग महान है। मेहमान हो, अतः सावधान हो जाओ। अब तो बलिष्ठ बनकर, वीर बनकर सावधान हो जाओ।

कृपालुदेवने कहा था, "हे मुनि! अब जला-मिटाकर, क्रियाकर्म निबटाकर चले जाओ।" हम सात साधु थे। उन्हें देख-देखकर कृपालुदेव प्रसन्न होते थे। मूल पकड़ श्रद्धा की थी। मुख्य बात समकितकी प्राप्ति। वह पकड़में नहीं आया। अन्य सब अब जलाकर राख कर दो। सब पर है, पुद्गल है। अपना तो एक आत्मा है। उत्कृष्ट बात है यह! जगा दिया है। जागे तब कार्यसिद्धि होती है। आपकी मान्यता सच्ची हुई है तो यहाँ आकर रहते हैं। यह अवसर तो अपने दिवालीके दिन मानें। एक वचन कानमें पड़े तो काम बन जाय। यही परीक्षा नहीं है, पहचान नहीं है। यही पकड़। उन्हींका कहा हुआ, अन्य बात नहीं है। स्वामी एक है। संसारमें स्त्री एक पति करती है, वैसे ही हमें एकको ही स्वामी बना लेना है।

ता. १९-११-३५, शामको

पत्रांक ४३२ का वाचन—

"आत्माको विभावसे अवकाशित करनेके लिये और स्वभावमें अनवकाश रूपसे रहनेके लिये कोई भी मुख्य उपाय हो तो आत्माराम ऐसे ज्ञानी पुरुषका निष्काम बुद्धिसे भक्तियोगरूप संग है। उसकी सफलताके लिये निवृत्ति-क्षेत्रमें वैसा योग प्राप्त होना, यह किसी महान पुण्यका योग है, और वैसा पुण्ययोग प्रायः इस जगतमें अनेक प्रकारके अंतरायवाला दिखाई देता है। इसलिये हम समीपमें हैं, ऐसा वारंवार याद करके जिसमें इस संसारकी उदासीनता कही हो उसे अभी पढ़ें, विचारें। आत्मारूपसे केवल आत्मा रहे, ऐसा जो चिंतन रखना वह लक्ष्य है, शास्त्रके परमार्थरूप है।"

१. मुमुक्षु—आत्मा आत्मरूपसे रहे यह लक्ष्य किस प्रकार होता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. मुमुक्षु—सत्पुरुष मिले नहीं है, उनकी आज्ञा मिली नहीं है। सत्पुरुषकी श्रद्धा और निश्चय किया हो तो वह लक्ष्यमें रहता है, जिससे साधन सुलटे होते हैं। "निश्चय राखी लक्षमां, साधन करवा सोय।" "वीतरागका कहा हुआ परम शांतरसमय धर्म पूर्ण सत्य है...हे जीव! अब तुझे सत्पुरुषकी आज्ञा निश्चय ही उपासना करने योग्य है।" यह ज्ञानीपुरुषसे सुनकर दृढ़ होना चाहिये।

प्रभुश्री—इस जड़को कुछ कहना नहीं है। चैतन्यको कुछ चाहिये या नहीं? बोध, बोध। जैसे वस्त्र मैला हो तो साबुन लगाकर पानीसे स्वच्छ करते हैं, परिवर्तन हुआ या नहीं? अनंतकालसे अज्ञान है। वह ज्ञान मिलनेसे नाश होता है। गुरुगम नहीं है, प्रमादमें समय जा रहा है। अंतरंगसे किया हो तो वह कामका है। अतः ऐसा अवसर प्राप्त करके कर्तव्य है। सच्चे पुरुष, सद्गुरु मिले तो कार्यकारी है। यह ध्यानमें नहीं है। एक वचन सुनकर भी इस भव और परभवमें सुखी हो सकते हैं। "वीतरागका कहा हुआ परम शांत रसमय धर्म" का पाठ बोलो।

३.मुमुक्षु—"वीतरागका कहा हुआ परम शांतरसमय धर्म पूर्ण सत्य है, ऐसा निश्चय रखना। जीवकी अनधिकारिताके कारण तथा सत्पुरुषके योगके बिना समझमें नहीं आता; तो भी जीवके संसाररोगको मिटानेके लिये उस जैसा दूसरा कोई पूर्ण हितकारी औषध नहीं है ऐसा वारंवार चिंतन करना। यह परम तत्त्व है, इसका मुझे सदैव निश्चय रहो; यह यथार्थ स्वरूप मेरे हृदयमें प्रकाश करो, और जन्ममरणादि बंधनसे अत्यंत निवृत्ति होओ! निवृत्ति होओ!! हे जीव! इस क्लेशरूप संसारसे विरत हो, विरत हो; कुछ विचार कर, प्रमाद छोड़ कर जागृत हो! जागृत हो!! नहीं तो रत्नचिंतामणि जैसी यह मनुष्यदेह निष्फल जायेगी। हे जीव! अब तुझे सत्पुरुषकी आज्ञा निश्चय ही उपासना करने योग्य है। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।"

प्रभुश्री—जीवको विघ्न बहुत हैं। प्रमाद और आलस्यने बुरा किया है। नित्य पाठ करे तो पर्याय अच्छे होते हैं, पुद्गल अच्छे बँधते हैं, हित होता है। लक्ष्य किसे है? सामान्यमें बीत रहा है। मुझे लक्ष्यमें है, याद है, यों सामान्य कर दिया है। यह तो ज्ञानीपुरुषका कहा हुआ है, इससे हित होता है।

जन्म, जरा और मरणने किसीको छोड़ा नहीं है; वहाँ आत्मसुख नहीं है, अतः जन्म आदिसे छूटना है। चाबी बिना छूट नहीं सकते। चाबी चाहिये। वह हो तो आत्मसुख मिल सकता है। अतः गुरुगम चाहिये। आत्माका भला सच्चे गुरुसे ही हो सकता है। उनकी पहचान नहीं हुई। स्थान स्थान पर गुरु मिलते हैं और यह जीव गुरु करता है, वह नहीं। ऐसे गुरु करे उसका फल मिलता है, पर मोक्ष नहीं हो सकता। जन्म-मरणसे छूटकर इस जीवने मोक्ष प्राप्त नहीं किया और उसने समकित भी प्राप्त नहीं किया। पिता एक ही होता है। समभाव बहुत बड़ी वस्तु है। सबमें साक्षात् मेरा आत्मा ही है, ऐसा देखो। सारा जगत पर्यायदृष्टिमें है और इसीसे बंधन है। संक्षेपमें कहा। धींग धणी (समर्थ स्वामी) तो सिर पर है। परंतु जो है उसकी भ्रांति है। जो ज्ञानी न हो, गुरु न हो, उसे गुरु कहता है! अब जाने दो सब। पता न चलता हो तो मध्यस्थ रह। जो यथातथ्य ज्ञानी हो वही ज्ञानी है।

[1]इक्को वि नमुक्कारो जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स।
संसारसागराओ, तारेइ नरं वा नारीं वा॥

---

१. जिनवरवृषभ ऐसे श्री वर्धमान स्वामीको किया गया एक नमस्कार भी संसारसमुद्रसे तारनेवाला है, भले ही वह नर हो या नारी हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—इतना करना है। अकेला आया और अकेला जायेगा। मेरा कोई नहीं है। एक धर्म नहीं किया। सत्पुरुषकी वाणी दीपक है।

"निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, ल्यो गमे त्यांथी भले,
ए दिव्य शक्तिमान जेथी जंजीरेथी नीकळे."—श्रीमद् राजचंद्र

सयाना न बन। सबसे बड़ा समभाव है। यह मोक्षका मार्ग है। [1]"एके जीये जीये पंच, पंचे जीये जीये दस।" बात बहुत करनी है किंतु अवस्था हो गई है। पका पान टूटकर गिर पड़ा है और बिगड़ गया है। योग नहीं है। अन्य सब पर्याय नाशवान है, छोड़कर जाना पड़ेगा।

★★★

ता. २०-११-३५, शामको

पत्रांक ७५३ का वाचन—

"जो स्वरूपजिज्ञासु पुरुष हैं वे, जो पूर्ण शुद्धस्वरूपको प्राप्त हुए हैं ऐसे भगवानके स्वरूपमें अपनी वृत्तिको तन्मय करते हैं; जिससे अपनी स्वरूपदशा जागृत होती जाती है और सर्वोत्कृष्ट यथाख्यात चारित्रको प्राप्त होती है। जैसा भगवानका स्वरूप है, वैसा ही शुद्धनयकी दृष्टिसे आत्माका स्वरूप है। इस आत्मा और सिद्ध भगवानके स्वरूपमें औपाधिक भेद है। स्वाभाविक रूपसे देखें तो आत्मा सिद्ध भगवानके तुल्य ही है। सिद्ध भगवानका स्वरूप निरावरण है; और वर्तमानमें इस आत्माका स्वरूप आवरणसहित है, और यही भेद है; वस्तुतः भेद नहीं है। उस आवरणके क्षीण हो जानेसे आत्माका स्वाभाविक सिद्ध स्वरूप प्रगट होता है।"

प्रभुश्री—परमार्थमें तन्मय हुआ जाय तो?

ऐसा किसीने न किया हो ऐसी बात नहीं है। सभी आत्मा हैं। इस संसारकी मायामें, हायहाय और माथापच्चीमें वृत्ति तन्मय करते हैं, पर यह जो आत्मा है उसकी बात भूल गये हैं। आत्मा है उसकी तो कोई चिंता ही नहीं है।

"हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?
कोना संबंधे वळगणा छे? राखुं के ए परहरुं?"

आत्माकी बात किसीको याद नहीं आती। पर मनुष्यभव प्राप्त किया है। भले ही स्त्री हो या पुरुष हो, पर आत्मा स्त्री-पुरुष, छोटा-बड़ा, सुखी-दुःखी, वृद्ध-युवान नहीं है। भूल जा, सब नाशवान है। पूरा लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। अतः आत्माकी चिंता नहीं है वह रख। यह परमार्थका प्रश्न है। किसी भी प्रकारसे परमार्थमें तन्मय बनो। सब यहीं पड़ा रहेगा, कुछ साथ नहीं चलेगा। एक आत्मा है। मनुष्यभव उत्तम कहा गया, उसमें भी अनेक दुःख हैं—व्याधि, दुःख-सुख, मुँह-सिर, हाथ-पाँव दुःखते हैं। सब धोखा! यह आत्मा नहीं है। उसे आत्मा मान बैठे हैं कि 'मैं हूँ', 'मुझे अच्छा कहा, मुझे बुरा कहा', पर ऐसा नहीं है। ऐसा दिन फिर नहीं आयेगा। लिया सो लाभ। यहाँ सुनने बैठे तो भारी पुण्यका संचय होता है। बाकी सर्वत्र राग-द्वेष हैं—पूरे जगतमें धमाचौकड़ी और माथापच्ची है। उसकी चिंता करता है, और वह तो जानेवाला है। ज्ञानीपुरुषने

---

१. एक मनको जीतनेसे पाँचों इंद्रियाँ जीती जा सकती है और जहाँ पाँच इंद्रियों पर विजय प्राप्त की, वहाँ मन, पाँच इंद्रियाँ और क्रोध आदि चार कषाय मिलकर दसों पर विजय प्राप्त हो सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा है कि यह सब छोड़े बिना छुटकारा नहीं है। अतः इस विषयमें सत्संगमें बोध सुनकर जानकारी प्राप्त करें। इसीको याद करें और इसीका ध्यान रखें। अतः वास्तवमें लेना क्या है? आत्मा, उसकी खबर लें। चेत जायें। एक आत्मा, शेष सब धोखा है। कोई किसीका नहीं है। अकेला आया और अकेला जायेगा। 'अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।' सुख-दुःखका कर्त्ता स्वयं अकेला है। अतः उसकी खबर लेनेके लिये नम्र बनें, शूरवीर बन जायें। अन्य संसारकी मायाके रंग देखने दौड़ता है; पर जो आत्मा है उसे तो एक ओर छोड़ दिया है। अतः किसी एक सत्पुरुषको ढूँढें, उसे पहचानें। कहीं प्रीति करने जैसा नहीं है। सबसे क्षमायाचना करते हैं।

कितना पुकार-पुकार कर कहा है! पर सब पुस्तकोंमें है; कण्ठस्थ भी कर लिया, पर सब जहाँका तहाँ। संसारमें कहा जाता है कि [1]'पन्ना फिरे और सोना झरे 'वह स्वार्थ है। मायामें प्रीति है, पर एक जो भगवानने कहा है उसमें प्रीति नहीं है। अब एक थप्पड़ मारकर कहता हूँ—

"शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहिये केटलुं? कर विचार तो पाम."

'कर विचार तो पाम' अतः विचार तो बड़ी वस्तु है। पर वे कौनसे विचार? अन्य बहुतसे विचार हैं, वे नहीं। एक आत्मविचार—

"आत्मभ्रांति सम रोग नहि, सद्गुरु वैद्य सुजाण;
गुरु-आज्ञा सम पथ्य नहि, औषध विचार ध्यान."

औषधि दो हैं—विचार और ध्यान। यह स्पष्ट कह दिया। अब क्या कहना? अन्यत्र कहीं भी, किसी भी स्थान पर, किसीके पास यह बात सुनेंगे? कहीं नहीं सुन पायेंगे। जाइये तो सही, सभी माया। यह स्थान कैसा है? कानमें पड़े तो पुण्यके ढेर बँधते हैं। अन्य कहीं भी ढूँढ, लेने तो जा, नहीं मिलेगा। माया मिलेगी, पर यह नहीं मिलेगा। बुढ़ापा आया है। व्याधि सब आ रही हैं, उसे मना कैसे किया जाय? आओ, इससे भी अधिक आओ। 'छूट रहे हैं, जा रहे हैं'—ऐसा नहीं किया।

'धींग धणी माथे किया रे, कुण गंजे नर खेट,
विमल जिन, दीठां लोयण आज."

एक स्वामी किया हो तो व्याधि, दुःख, पीड़ा हो तो भी उसका क्या बिगाड़ सकते हैं? समझ बदली है। आओ, आओ और आओ—ऋण उतर रहा है। अन्यको यह सब 'मुझे हो रहा है', 'मुझे दुःख है', 'मुझे व्याधि है', 'मुझे पीड़ा हो रही है'—'मेरा, मेरा' करता है! किंतु जिसकी समझ बदली है, उसे कोई तुकार करे, तुच्छ शब्द कहे, कटु वचन बोले, गालियाँ दे, तो ऐसा समझता है कि मेरे कर्म क्षय हो रहे हैं। अन्यको 'मुझे गाली दी', 'मुझे कहा', 'मुझे, मुझे' होता है, तब बंध होता है। अतः मेहमान हो, दो घड़ी दिन बचा है, अतः चेत जाओ और सबसे क्षमायाचना कर लो।

"अधमाधम अधिको पतित, सकल जगतमां हुंय;
ए निश्चय आव्या विना, साधन करशे शुं य?"

यह गाथा रामका बाण है, ऐसी-वैसी नहीं है। अधमाधम अर्थात् स्वयं दोषयुक्त हुआ और अन्यको सिरमौर माना। अन्य सब दुःख-सुख, वृद्ध-युवान, छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरुष—उसे आत्मा न

१. भावार्थ—पन्ना (बहीखाताका पृष्ठ) पलटने पर सोना मिलता है यानि किसीके पैसे लेने निकलते हो तो बहीका पन्ना पलटनेसे ही पता चलता है और फिर वसूली करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानूँ। संसारमें दुःख, दुःख और दुःख है--कोई सीमा नहीं है। अपार दुःखसे भरा हुआ है। यहाँ आया तो भी दुःख, चलते-फिरते भी दुःख! इतना कह रहा हूँ वह परमार्थके लिये, कुछ स्वार्थ नहीं है, और सुनानेके लिये भी नहीं कह रहा हूँ--मैत्रीभाव, प्रमोद, कारुण्य और मध्यस्थभाव करियेगा। यह लक्ष्य रखें तो बेड़ा पार। ये ऐसे-वैसेके वचन नहीं हैं। एक कृपालुदेव साक्षात् प्रत्यक्ष बिराजमान हैं। यह गया, वह गया, अमुक भाई मर गये ऐसा कहते हैं। किन्तु पहचान नहीं है। "सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो, आ वचनने हृदये लखो।" क्या इसको भूल जायेंगे? नहीं नहीं, यह पंक्ति तो याद रखने योग्य है; चिंतामणि है। कहना यह है कि तैयार हो जाओ। अन्य कोई उपाय नहीं है। मिल-मिलकर सब अपने अपने मार्ग पर चले जाते हैं। फिर हो गया।

सम्यग्दृष्टि जीव जो भी करता है वह सुलटा करता है। यह कैसे? वह जो कुछ करता है वह सुलटा ही होता है, यह विचारणीय बात है। वह सुलटा कैसे होता है? कोई बतायेगा?

१. मुमुक्षु--जिसकी जैसी दृष्टि। जैसा चश्मा पहने वैसा ही दीखता है। नीला चश्मा पहने तो नीला दिखाई देता है। वैसे ही सम्यग्दृष्टि पुरुषोंने सम्यग्दर्शनरूपी चश्मा पहना है, जिससे सम्यक् ही दिखाई देता है।

२. मुमुक्षु--सम्यग्दृष्टि पुरुषोंने सबसे भिन्न अपना स्वरूप प्रत्यक्ष देखा। सम्यक् दृष्टिसे आत्माको समभावी देखा। **'सम्मद्दिट्ठी न करेइ पावं'** उनको प्रिय-अप्रिय कुछ नहीं रहा।

प्रभुश्री--'जो जाना वह नहीं जानूँ, जो नहीं जाना वह जानूँ।' अतः सुलटा हो गया। सम्यग्दृष्टिको पर्यायदृष्टि नहीं है। 'पर्यायदृष्टि न दीजिये।' उसे छोड़नी है।

१. मुमुक्षु-- "होत आसवा परिसवा, नहि इनमें संदेह;
मात्र दृष्टिकी भूल है, भूल गये गत एहि."

प्रभुश्री--इन वचनोंने तो भेद कर दिखाया है। यह तो अमृत--शक्कर, गुड़ जैसे मीठे होते हैं, वैसा मीठा! दृष्टिकी भूल यह बात बराबर है, पर अब क्या करें? कैसे करें? क्या करना चाहिये? और क्या करना शेष है? मैंने कृपालुदेवसे कहा था कि "मैं तो सर्वत्र 'भ्रम' देख रहा हूँ।" तब वे बोले, "ब्रह्म-आत्मा देखो।" इसीमें सब मर्म समाया है। 'आत्मा देखो' इस वचनसे बोध हुआ, वह कैसे हुआ? कहो, जिसे जो कहना हो वह कहो।

२. मुमुक्षु--भ्रमरूप जगतको देखनेवाला आत्मा है, अतः पहले उसे देखें। यह सब जाननेवाला, देखनेवाला आत्मा है, अतः उसे देखें। स्वयंको पता न हो तो ज्ञानीकी श्रद्धासे देखता हूँ, जानता हूँ ऐसी भावना करें।

३. मुमुक्षु--भ्रम है वह पर्यायदृष्टि है और आत्मा है वह द्रव्यदृष्टि है। आत्माके उपयोगके लिये द्रव्यदृष्टि उपयोगी है। अन्यत्र न देखकर आत्माकी ओर दृष्टि करना, यह द्रव्यदृष्टि हुई और वह करायी।

प्रभुश्री--ज्ञानीने देखा है। योग्यताकी कमी है, वहाँ दृष्टिकी भूल है, वह बदली नहीं है। अन्यकी नहीं, पर ज्ञानीकी दृष्टि। अन्यकी नहीं कही जा सकती। अब क्या करना चाहिये? क्या उपाय है? बहुत बात की--किसीका खंडन नहीं किया। मर्यादा रखकर बात की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. मुमुक्षु—कृपानाथने आपको हथेलीमें 'ब्रह्म' लिखकर बताया है।

प्रभुश्री—कौन मना कर रहा है? पर उनका उनके पास। हमें तो समझना है ना? अब क्या करें?

२. मुमुक्षु—ज्ञानीका पल्ला पकड़ें।

प्रभुश्री—किसने मना किया है? पर अभी हमारे हाथमें क्या है? अन्य सब पुद्गल और कर्म-संयोग, अब क्या करें?

५. मुमुक्षु—सत्पुरुषार्थ और सद्भाव करना बाकी है।

प्रभुश्री—सब किया है, पर अब अंतिम कहे देता हूँ : भाव और श्रद्धा। 'सद्धा परम दुल्लहा।' उन्होंने कहा उस पर श्रद्धा की तो फिर ताली! अभी आत्मभाव और श्रद्धा, ये दो बात हाथमें हैं। चेतो! चेतो! मेरा तो भाव, उसे मानूँ, अब अन्य न मानूँ। 'बात है माननेकी'। यह बात आई है। भाव और श्रद्धा करनी पड़ेगी। अतः चेत जाओ।

★

[देववंदन करने आते समय तथा जाते समय]

आत्मा है। उसे ज्ञानीने जाना है। छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, सभीको यह देववंदन करना चाहिये। यह देववंदन तो प्रतिक्रमणके समान है। जीवको पता नहीं है, ऐसा कहाँ मिलता है?

★★★

ता. २१-११-३५, सबेरे

पत्रांक २४९ का वाचन—

ॐ नमः

"कराल काल होनेसे जीवको जहाँ वृत्तिकी स्थिति करनी चाहिये, वहाँ वह कर नहीं सकता।

सद्धर्मका प्रायः लोप ही रहता है। इसलिये इस कालको कलियुग कहा गया है।

सद्धर्मका योग सत्पुरुषके बिना नहीं होता, क्योंकि असत्में सत् नहीं होता।

प्रायः सत्पुरुषके दर्शन और योगकी इस कालमें अप्राप्ति दिखाई देती है। जब ऐसा है, तब सद्धर्मरूप समाधि मुमुक्षुपुरुषको कहाँसे प्राप्त हो? और अमुक काल व्यतीत होने पर भी जब ऐसी समाधि प्राप्त नहीं होती तब मुमुक्षुता भी कैसे रहे?

प्रायः जीव जिस परिचयमें रहता है, उस परिचयरूप अपनेको मानता है। जिसका प्रत्यक्ष अनुभव भी होता है कि अनार्यकुलमें परिचय रखनेवाला जीव अपनेको अनार्यरूपमें दृढ़ मानता है और आर्यत्वमें मति नहीं करता।

इसलिये महापुरुषोंने और उनके आधार पर हमने ऐसा दृढ़ निश्चय किया है कि जीवके लिये सत्संग, यही मोक्षका परम साधन है।

सन्मार्गके विषयमें अपनी जैसी योग्यता है, वैसी योग्यता रखनेवाले पुरुषोंके संगको सत्संग कहा है। महान पुरुषोंके संगमें जो निवास है, उसे हम परम सत्संग कहते हैं, क्योंकि इसके समान कोई हितकारी साधन इस जगतमें हमने न देखा है और न सुना है।

पूर्वमें हो गये महापुरुषोंका चिंतन कल्याणकारक है; तथापि वह स्वरूपस्थितिका कारण नहीं हो सकता; क्योंकि जीवको क्या करना चाहिये यह बात उनके स्मरणसे समझमें नहीं आती। प्रत्यक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग होने पर बिना समझाये भी स्वरूपस्थितिका होना हम संभवित मानते हैं, और इससे यह निश्चय होता है कि उस योगका और उस प्रत्यक्ष चिंतनका फल मोक्ष होता है, क्योंकि सत्पुरुष ही 'मूर्तिमान मोक्ष' है।

मोक्षमें गये हैं ऐसे (अर्हंत आदि) पुरुषोंका चिंतन बहुत समयमें भावानुसार मोक्षादि फलका दाता होता है। सम्यक्त्वप्राप्त पुरुषका निश्चय होनेपर और योग्यताके कारण जीव सम्यक्त्व पाता है।''

प्रभुश्री—आत्मा करने ही आया है; पर कर्म, कर्म और कर्म ही करता है जो बंधन है। कृपालुदेवके वचन—बीस दोहें अपूर्व है! पर जीवने उन्हें सामान्य बना दिया है। अलौकिक दृष्टिसे विचार नहीं किया। ऐसे चिंतामणि रत्नको उसने कंकड़ समान माना। ये वचन! कृपालुदेवकी कृपासे मिले बीस दोहें आत्मभावसे बोलने चाहिये। और यदि उपयोगमें रहे तो कोटि कर्म क्षय होते हैं।

''प्रभु प्रभु लय लागी नहीं, पड्यो न सद्गुरु पाय;
दीठा नहि निज दोष तो, तरिये कोण उपाय?''

यह बात निकली। उपयोग इसमें आ जाये तो कोटि कर्म क्षय हो जाते हैं। यह भावना, इच्छा करे तो अन्य नीच गतिका नाश होकर देवगति प्राप्त होती है। ऐसा है; उसे सामान्यमें और लौकिकमें निकाल दिया है। यह सुनाई पड़ रहा है?

१. मुमुक्षु—हाँ, सुनाई दे रहा है।

प्रभुश्री—सबको सुनाई दे रहा है?

१. मुमुक्षु—सबको कैसे सुनाई दे? जिसको सुनाई देता है, उसे सुनाई देता है।

प्रभुश्री—कहनेका तात्पर्य, श्रवण होना चाहिये। बड़ोंकी बात कही गई। वस्तु ऐसी है और यही काम करती है। सुन रहे हैं? यहाँ आकर तो पुण्यके ढेर बँधते हैं। वीतराग मार्गमें और उनकी वाणीमें तो थोड़ी भी रज न समा सके ऐसा है। उनकी वाणीकी परीक्षा होती है, जैसे किसी अन्य वस्तुकी परीक्षा होती है वैसे। अब यह मनुष्यभव हाथसे निकल गया तो फिर पता नहीं लगेगा। अतः यह अपूर्व योग है। यह कानमें पड़ता है तो लाभ होता है। तब विशेष क्या कहूँ? संक्षेपमें कहना है कि 'भाव' है और 'परिणाम' है। अपने भावसे ही समकित और केवलज्ञान प्राप्त होता है। अनंतकालसे ओघा, मुँहपत्ती, जप-तप आदि साधन किये तो उसके फल भी मिले—निंदा नहीं करनी है। यह कोई अपूर्व बात है। बात है भोले-भालेकी, पर निकाल फेंकनी नहीं है। कोई कहे कि महाराज तो उपदेश देते हैं, उनका काम है। यों सामान्य कर देते हैं, वैसा न करें। यह तो उल्लास भावसे कहा जाता है। इसमेंसे जितना हो सके उतना करना चाहिये। लूटमलूट करने जैसा है। यह बड़ी गुत्थी है। यदि वह विघ्नकारक बने तो दूर करनी पड़ेगी। ऐसी वैसी बात नहीं है। महा लाभकारी है। ऐसा समझो कि मेरे धन्यभाग्य है कि यह बात कानमें पड़ती है। सुननेका सही अवसर आया है। अन्य सब भव हुए हैं, पर आत्मा मर नहीं गया। दूसरे सब साधन बंधनकर्ता हैं।

''सहु साधन बंधन थया, रह्यो न कोई उपाय;
सत्साधन समज्यो नहीं, त्यां बंधन शुं जाय?''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्साधन! यह कैसी अपूर्व बात! अवश्य करने योग्य। लाखों रुपये देने पर भी ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा। ज्ञानीपुरुषने दया की है। धन, पैसा-टका, बाल-बच्चोंकी इच्छा करता है और रखता है, तब फिर इसकी इच्छा नहीं? इसकी इच्छा रखी हो तो काम आये। कान लगा, ध्यानसे सुन। सत्संग अपूर्व है! फिकर करनेकी, चिंता करनेकी यह बात है। अरेरे! महा दुःख है। भगवानने कह दिया : 'समयं गोयम मा पमाए'—हे गौतम! एक समय मात्रका भी प्रमाद मत कर। पल जो बीत गई, वह वापस नहीं आयेगी। अर्थात् व्यर्थ जा रही है। जो करना था वह तो रह गया। यह पंचमकाल, सबसे कठिनमें कठिन आया है। यह बात महापुरुषोंने कह दी है।

समाधि कैसे हो? अब कुछ उपाय है?

१. मुमुक्षु—सत्पुरुषका दर्शन और योग, ये दोनों चाहिये।

प्रभुश्री—असावधानीमें जा रहा है। चिंतामणि जैसे इस मनुष्यभवको यों सामान्य कर डाला है। पता नहीं है। बालकके हाथमें हीरा आया, पर उसे पता नहीं, वैसे ही संसारमें पहचान नहीं है। अन्य सब मायाका रूप देखने दौड़ता है। धूल पड़े उसमें! पर जो देखना है वह रह गया है! आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है। उसकी अब कैसे सँभाल लेगा? सब भ्रांतिमें गया। आभूषण—गहने, कपड़े-लत्ते आदि मेरे मेरे करता हैं, पर आत्मा नहीं!

"हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?
कोना संबंधे वळगणा छे? राखुं के ए परहरुं?"

जो करना है, जिसकी बात सुननी है, वह रह जाता है। अन्य बातें कान लगाकर सुनेगा, और यह नहीं! यह तो मैं जानता हूँ, मुझे पता है। पर नहीं, पता नहीं है। थप्पड़ लगी नहीं है। कुछ भी न जानता हो तो भी 'आत्मा है,' 'ज्ञानी कहते हैं वह मुझे मान्य है।' इसमें कुछ रुपये-पैसे नहीं देने हैं, पर एक विचार करना है। 'कर विचार तो पाम।' ये प्रत्यक्ष पुरुषके वचन हैं। उनको सुननेमें भी लाभ है। इस आत्माको तो ज्ञानीने देखा है। वह इस चर्मचक्षुसे दिखाई नहीं देगा, दिव्य-चक्षुसे दिखाई देगा; वह ज्ञान है। ज्ञान चक्षु है। ये सब कौन हैं? कौन सुन रहा है? आत्मा। जो बात करनी चाहिये वह तो पड़ी रह जाती है और परवस्तुको देखते हैं। यह जीव कल्पनाएँ करता है, किंतु उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है। पुकारकर कह रहा हूँ, हाँ! दूसरे स्थानसे छूटकर आत्माके स्थानपर कैसे बैठा जाय? विश्वास कहाँ है? नहीं तो कह देते। ज्ञानीके वचन अंतरमें खोदकर, अंकितकर रखें। जैसे माता कटु औषध बच्चेकी भलाईके लिये पिलाती है, वैसे कह रहा हूँ।

"आतम भावना भावतां, जीव लहे केवळज्ञान रे।"

इसमें क्या कहा? पर तू उसे सुन, मान्य कर। सुनेगा तो काम बन जायेगा। भाव करनेसे काम होता है। दूजेकी चिंता-फिकर करता है तो इसकी नहीं? बैठा-बैठा कल्पनाएँ करेगा, पर वे तो सब बँधे हुए संस्कार हैं।

"सहु साधन बंधन थया, रह्यो न कोई उपाय;
सत्साधन समज्यो नहीं, त्यां बंधन शुं जाय?"

ऐसी बात है, चमत्कारी कथन है। 'सत्साधन समज्यो नहीं' सद्गुरुके वचन हैं, प्रत्यक्ष पुरुषकी वाणी है, ऐसी-वैसी नहीं है, कहा नहीं जा सकता—यह तो आग्रहपूर्ण विनती है। दाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीझी न हो तब तक अलग रहती है, सीझने पर मिल जाती है। प्रभु, सबका भला करना। जैसे चुटकी भरकर, डाँटकर, मारकर कोई जगाता है, तब देखता है; वैसे ही यह देखनेका है। सत्पुरुषकी वाणी सुनी नहीं है। कुछ मारकर, डाँटकर, बोलकर, ठपका देकर भी करवाना है, छुड़वाना है। अवसर आया है! अतः अपने लिये तैयार हो जाओ। अपने लिये हैं, दूसरेके लिये नहीं। यह कहा नहीं जा सकता।

★
★★

ता. २१-११-३५, शामको

ऐसी वैसी गुत्थी नहीं है। बहुत उलझी हुई है। पुरुषार्थका काम आया है। "जो इच्छो परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ।" समझमें आये तो अच्छा, उसके बिना बेकार है। 'करो सत्य पुरुषार्थ' यह क्या कहा है?

१. मुमुक्षु—जीवोंको संसारदुःखसे छूटना हो तो सत्पुरुषार्थ करें। सत्पुरुषके आश्रयमें आत्म-कल्याणके सर्व साधन करना, वह सत्पुरुषार्थ।

२. मुमुक्षु—मोक्षके मार्गमें अंतरायरूपी बड़ा पहाड बाधक बना हुआ था, उसे कृपालुदेवने निकालकर फेंक दिया, उलट दिया, दूर कर डाला। उन्होंने कहा कि हमारे जैसे तुम्हारे सिर पर हैं, फिर तुम्हें क्या चिंता? तुम तो मात्र पुरुषार्थ करो।

३. मुमुक्षु—ज्ञानीका मार्ग अंतरंग है। इस जीवने बाह्य वृत्तिसे मोक्षकी विपरीत कल्पना की जिससे मोक्ष क्या है, इसका उसे पता ही नहीं लगा। आत्माके अंतर्परिणाम सदैव साथ रहते हैं, यह जीवने जाना नहीं है। यदि जीव सच्चा पुरुषार्थ करे तो उसे मार्ग मिल जाता है। सच्चे पुरुषार्थकी कमी है। जीव अपनी समझसे मारा जाता है।

प्रभुश्री—सच्चा पुरुषार्थ करे तो मिलता है। सब बात की, वह ठीक है, सच्ची है किंतु कमी रह गई; कहना इतना है कि भाव—

"भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान;
भावे भावना भाविये, भावे केवलज्ञान."

सब पापोंका बाप भाव है। जिसे जो कुछ भाव आया, उसकी मना नहीं की जा सकती। अन्य भाव करता है तब अन्य कार्य होता है। आत्मभाव नहीं किया। भाव करेगा वहाँ परिणाम होगा। दाल चूल्हे पर रखी है तो चढ़ेगी, उसके पीछे ढोकली भी चढ़ेगी। परिणामसे है। पर 'भाव बड़ो संसारमें।' महापुरुषोंने बात की है, इसका किसीको भान नहीं है। बैठते-उठते, खाते-पीते, देखते, काम करते एक यही (आत्मा), किंतु उस भावका पता नहीं है। अन्य भाव हो जाता है। अन्यत्र बाह्यमें देखकर बाह्यभाव होता है, पर देखना तो रह ही गया। जिसके विषयमें कहा गया है, उस भावका पता नहीं है। इतनी ही बात है।

२. मुमुक्षु—आत्मभाव कहा न?

प्रभुश्री—'शक्कर, शक्कर' नाम लेनेसे मीठा हुआ क्या? लगा क्या? वृद्धावस्था आई—बूढ़े हो गये, आवाज भारी हो गया, बोला नहीं जाता। गाड़ीकी सब सामग्री हो तब गाड़ी कही जाती है और तभी चलती है। 'आत्मभाव' नाम तो अच्छा सुंदर दिया, कौन मना करता है? पर उसकी तुझे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खबर कहाँ है? कुछ बाधा आयी, तो अब क्या करें? पुरुषार्थ अनंत बार किया, उसका फल मिला, पर कार्यसिद्धि नहीं हुई।

२. मुमुक्षु—अब तो वह लेकर ही जाना है।

प्रभुश्री—बोबड़ा-तोतला, पागल-बुद्धू जैसा, मर! सूझता है वैसा दीखता है। वह सब बाहरका देखेगा। "जहाँ लगी आतमा तत्त्व चीन्यो नहीं, तहाँ लगी साधना सर्व झूठी।" सिर मुँडाया, जटा रखी, राख लपेटी, तप तपा—पुरुषार्थमें कमी नहीं रखी, पर जो करनेका है वह क्या है? और कैसे किया जाय?

२. मुमुक्षु— "वह साधन बार अनंत कियो,
तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो;
अब क्यौं न बिचारत है मनसें,
कछु और रहा उन साधनसे."

प्रभुश्री—शक्कर डाले तो मीठा होता है। नमक डाले तब तो खारा होता है। यह तो थप्पड़ मारकर ठोसा दिया है। "अब क्यौं न बिचारत है मनसे?" कोई विचार ही नहीं करते। इसका अर्थ समझमें नहीं आया और कौन कह सकता है? "मुख आगल है कह बात कहे।" यह क्या कहा? बताओ।

२. मुमुक्षु—ज्ञानीने जाना, देखा, वह आत्मा।

प्रभुश्री—कौन मना करता है? यही आत्मा है। दिन उदय हुआ तो यही उदय हुआ।

२. मुमुक्षु—यों तो सिर फोड़ने पर भी पता नहीं लगता और बुद्धि थक जाती है। कुछ उपाय नहीं चलता।

प्रभुश्री—'चुनीभाई, चुनीभाई' बोलते रहें, पर देखा न हो तो पहचान नहीं सकते। वहाँ तक कचास है, खामी है। "पावे नहीं गुरुगम बिना, ये ही अनादि स्थित।" उसके बिना प्राप्त नहीं हो सकता। अतः कुछ चाहिये। कमी किसकी है? योग्यताकी। सुन लिया, सुन लिया कहते हैं, पर सुना नहीं। मात्र नाम लेते हैं, बातें करते हैं किन्तु परिणत नहीं हुआ। बात परिणमनकी है। पापका बड़ा बाप भाव है। उसके बिना किसीको नहीं होगा। क्षण क्षण वृत्ति बदलती है, अतः अन्य देखता है वह नहीं है। "इसके मिलनेसे, इसके सुननेसे और इसकी श्रद्धा करनेसे ही छूटनेकी बातका आत्मासे गुंजार होगा।" दूजा क्या कहूँ? "आत्माको जाना उसने सब जाना।" बातें बघारनेसे काम नहीं होता।" परिणमनसे ही छुटकारा है। परिणमन किसे कहते हैं?

अभी पुरुषार्थ किया पर उलटा। नींदमें भी बोल उठता है—"मैं", किन्तु यह हाथ नहीं लगा। इस आँखसे दिखाई नहीं देगा; उसके लिये दिव्य चक्षु चाहिये। और इसकी आवश्यकता है। इसीका नाम ज्ञान रखा। दिव्य चक्षु कहें, दीपक कहें—सब बोध हैं; पर समझमें नहीं आया। किसीको कहें कि भाई, यों होकर इधरसे आना, तब उधरसे आ सकते हैं, दूसरी ओरसे नहीं। "इसके मिलनेसे, इसके सुननेसे और इसकी श्रद्धा करनेसे ही छूटनेकी बातका आत्मासे गुंजार होगा।" ये वचन लेने हैं। मान्य ये हैं, भावना यह करानी है। यह कोई "गोकुल गाँवको पिंड़ो ही न्यारो।"

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह देववंदन है सो ऐसा-वैसा नहीं है। इसमें कर्म क्षय होते हैं। करने योग्य है। पुण्यबंध होता है और देवगति होती है। जीवको पता नहीं है।

★★★

ता. २२-११-३५, सबेरे

पत्रांक ६४ का वाचन–

+ "पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥"—श्री हरिभद्राचार्य

क्या योग है! जागृत हो गया? वचन अमूल्य हैं। एक एक वचनमें अनंत आगम समाये हैं। वे वचन कहे जायेंगे। मनुष्यभव दुर्लभ है। उसमें अभी पाँच इंद्रियाँ, जानना, देखना, सुनना–यह मनुष्यभवके कारण है, उसमें सत्संग दुर्लभ है। समय बीत रहा है। 'समयं गोयम मा पमाए' यह अलौकिक वचन है! काम है भावका। भाव हुआ तो परिणमन होगा, भाव होना चाहिये। जैसे संसारमें कहते हैं–तुझे अपना भान है या नहीं? वैसा ही इस जीवको भान रखकर अवश्य श्रवण करना चाहिये। 'सवणे नाणे विन्नाणे' अभी मनुष्यभवमें सुननेका योग है, वह बहुत दुर्लभ है। बार बार ऐसा योग नहीं मिलेगा। सत्पुरुषके एक एक वाक्यमें, एक एक शब्दमें अनंत आगम समाये हुए हैं सो कैसे होगा? कल्पनाने इस जीवका बुरा किया है। वृत्ति क्षण क्षण बदलती है। सामान्य भाव हो गया है। सत्संग महा दुर्लभ है। सत्पुरुषका समागम है, उनका बोध है, उससे कोटि कर्म क्षय होते हैं। जीवको भान नहीं है। अभी जो समय बीत रहा है वह अपूर्व है। अब जाने दे, जाने दे, मर गया अभिमानमें।

"नथी लघुता के दीनता, शुं कहुं? परम स्वरूप."

सबसे श्रेष्ठ लघुता है। ज्ञानीके वचनका श्रवण करें। उससे इस जीवको अगाध लाभ होता है। मायाके स्वरूपमें संसारमें हजारों रुपयोंका लाभ होता है, उससे यह अधिक है। कुछ किया है तो यह मनुष्यभव मिला है। यह अवसर प्रमादमें और भ्रांतिमें निकल रहा है। वचन सुनने योग्य और हृदयमें धारण करने योग्य है। मर! चाहे जैसा कहा, तुझे तो सुनने जैसा है। एक आत्मा धर्म है। वह अरूपी है। पर ध्यानमें रखना, जिसने यथातथ्य जाना है उसकी वाणी है और वह अमूल्य है। हे प्रभु! मुझे पता नहीं है, पर वह मेरे कानमें पड़ो। ऐसा करनेसे कितना काम बन जाता है? भव-बंधन छूट जाता है! बुरा हुआ उसे सामान्य कर देनेसे। हाँ, इसमें क्या? वे तो बात करते हैं और बोलते हैं, पर जाने दे, बात अपूर्व है। चिंतामणिका मूल्य नहीं आँका जाता, ऐसी बात है। इसमें क्या होता है? अनंतकालसे इस जीवने सब जाना है, अनंत साधन किये हैं, पर आत्माको नहीं जाना और समकित भी नहीं लिया। तू अलौकिक दृष्टिसे देख : हे भगवान! यह ज्ञानीकी वाणी निकल रही है। इसलिये हे प्रभु! मेरा काम है, वे कहते हैं वही करनेका। अनमोल क्षण बीत रहा है। अतः यह कर्तव्य है–अवसर आया है।

एक इस चीजको ज्ञानियोंने संसारमें सबसे श्रेष्ठ देखा है। वह क्या है? समभाव। उसमें अनेक ऋद्धियाँ समायी हुई हैं। उलटा-सीधा, टूटा-फूटा बोला जाय उसे न देखें। समभाव है वही

+ **भावार्थ**–मुझे न वीरमें पक्षपात है और न ही कपिल आदिसे द्वेष परिणाम हैं; परंतु जिनके वचन युक्तियुक्त हैं, वे ही ग्रहण करने योग्य हैं। (लोकतत्त्वनिर्णय, श्लोक ३८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वभाव है। उसके बैठनेका, रहनेका स्थान है उसे भूलना मत। चेत जाना। 'भूले वहींसे फिर गिनें' 'जागे तभीसे सबेरा'। अवसर आया है, अतः चेतिये।

"निर्दोष सुख, निर्दोष आनंद, ल्यो गमे त्यांथी भले;
ए दिव्य शक्तिमान जेथी, जंजीरेथी नीकळे." (श्री मोक्षमाला)

ग्रहण करने योग्य समभाव है। अध्यात्मज्ञान संपादन करें। यह ध्यानमें रखना, हाँ! जो प्रत्यक्ष है वही बोलता है। आत्मा है, सत्ता बोलती है। दिन बीत रहे हैं, पर आत्माके बिना व्यर्थ है। उसकी बात सुनें, श्रवण करें, सुख दुःख सहन करें; पूजा, अभिमान, बड़प्पन न करें; बहुत दुःख उठाये, पर कल्याण हुआ नहीं, मोक्ष हुआ नहीं। जप तप किये, उसका फल मिला। क्या कहा? एक आत्मा। चेतने जैसा है। आत्माकी, ज्ञानकी बात आपने सुनी, उससे अकथनीय कर्म क्षय होते हैं। कैसा अवसर आया है? दाँव आया है, समय जा रहा है। मनुष्यभवमें जो धर्मकी बात है, उसमें आत्माको याद किया तो कोटि कर्म क्षय होते हैं। बहुत चमत्कार है! अपूर्व है! जिसके गुणगान किये हैं, उसका पता नहीं है। अन्य सब मिथ्यात्व है। एक सच्चा काम किसका है? उपयोगका। जाने-अनजाने कोई वचन सुना, उससे कितना काम हो जाता है! पापके दल संक्रमण होकर पुण्यरूप बंध होता है, ऐसा यह स्थान है। एक अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त किया। अनाथी मुनि, श्रेणिक राजा आदिने एक अंतर्मुहूर्तमें समकित प्राप्त किया। कैसा हुआ? दीपक प्रगट हुआ! क्या होगा? अल्पसंसारी होकर मोक्ष होगा। अज्ञान गया। यह जीव जन्ममरण करता आया है, मोक्ष नहीं हुआ है। अतः कितना सावधान रहने जैसा है? अवसर आया है। अध्यात्मज्ञान प्राप्त करें। यह उपदेश है, कहना है, दूसरी बात नहीं है। जीवको अध्यात्म ज्ञान किससे होता है? एक ही चाबी है। जीवके भानमें या लक्ष्यमें नहीं है। यह बोल रहा है, कह रहा है, इसका तो मुझे पता है, मैंने सुना है, मैं जानता हूँ, ऐसा कर करके सब व्यर्थ गँवा रहा है। वृत्ति क्षण क्षण बदलती है, अतः छोड़ सब झंझट, पड़ा रहने दे सब। आत्माको देख, तो और सब हो गया। दिखाई नहीं दिया, भाव तथा प्रतीति नहीं है। ये सब विघ्न करनेवाले हैं। वस्त्र हटाये तो दिखाई देता है, अतः देखना है। एक बड़ेसे बड़ी बात शुद्ध भावकी है, अतः चेतिये। अवसर आया है। तू असंग है। बहुत किया, वह सब अपना न समझ। कुटुंब-परिवार सब पर है, अपना न मान। यह सुनाई देता है क्या? ध्यानमें ले या न ले, भले ही मान या मत मान! मुझे क्या? जो है सो है—आत्मा! वह है तो अवश्य। उस पर दृष्टि नहीं है, भाव नहीं है। संक्षेपमें कहूँ तो 'बात माननेकी है,' मानेगा? हाँ! तो जा जा, तेरा काम हो गया। अब और मत देख। *खाजेके चूरेसे भी पेट भरता है। अतः वह जहाँ

---

* दुष्कालके समयमें कुछ मजदूर टोकरियाँ और कुदाली-फावडा लेकर मजदूरी करने जा रहे थे। उन्हें देखकर एक हलवाईकी लड़कीने अपने पितासे पूछा कि ये सब कहाँ जा रहे हैं? हलवाईने कहा—मजदूरी करने जा रहे हैं। उसने पूछा कि मजदूरी करने क्यों जाते हैं? हलवाई बोला—दुष्कालमें खानेको नहीं मिलता, अतः मेहनत कर अपना पेट भरते हैं। तब लड़कीने कहा—क्या ये खाजाका चूरा नहीं खा सकते? हलवाई बोला—वह तो तुझे मिलता है, इनको कहाँसे मिलेगा?

इसी प्रकार आजकल सत्संगका दुष्काल है। वह ढूँढने पर भी मिलना कठिन है। किन्तु जिसे पूर्व पुण्य द्वारा सत्संग मिला है, उसे ऐसा लगता है कि 'सभी ऐसा सत्संग क्यों नहीं करते?' किन्तु पुण्यके बिना सत्संग करना भी नहीं सूझता, तथा मिलना भी दुर्लभ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, वहाँ है। वही कर्तव्य है। ऐसा संयोग कहाँसे मिलेगा? नहीं मिलेगा। अतः चेतिये। आत्मा न हो तो कौन सुनेगा? सब मुर्दे कहलायेंगे। वस्तु दो हैं : जड़ और चेतन। चेतन जड़ नहीं बन सकता और जड़ चेतन नहीं बन सकता। 'सुना पर गुना नहीं।' 'आत्मा, आत्मा' कहता है, पर जाना नहीं तो दर्शन तो कहाँसे होंगे? एक बोध सुने तो काम बन जाये। कौन सुनता है? आत्मा। एक अपूर्व दृढ़ करने जैसा क्या है? विश्वास नहीं है, प्रतीति नहीं है। कोई वस्तु भींत पर लगाता है तो एक तो उखड़ जाती है और एक चिपक जाती है। अतः ऐसी जो एक पकड़ है वह क्या है? अभी कह डालेंगे कि मुझे कण्ठस्थ है, मैं जानता हूँ। हो गया! जाने दे! तुझे पता नहीं है। अवसर आया है। ज्ञानीपुरुषोंने दया और करुणा की है। वह क्या है? 'छह पदका पत्र'। 'आत्मा है, नित्य है, कर्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है और मोक्षका उपाय है।' अपूर्व बात पढ़ गया, पर वह है क्या? इसका पता नहीं है। बच्चेके हाथ चिंतामणि लग गया, पर उसे पता नहीं है। अतः चेत जा। अवसर आया है। चिंतामणि है। छह पदसे क्या होता है? यदि उसे प्रतिदिन पढ़े, सुने तो उसकी अच्छी गति होती है, देवगति होती है। अन्य सुख कुछ भी नहीं है। पर मनुष्यभव दुर्लभ है। उसमें सम्यक्त्व-प्राप्तिका अवसर है, यह चेतावनी है। कोई वस्तु चूल्हे पर चढ़ाई हो और उसका ध्यान न रखें, सँभाले नहीं तो वह जल जाती है और खानेको नहीं मिलती। वैसे ही इस भवमें पत्रका वाचन, मनन, स्मरण कर्तव्य है। मात्र पाव घंटा लगता है। क्या वह भी नहीं हो सकता? व्याधिके समय न हो सके, पर सुख-शातामें तो हो सकता है न? 'यह तो कई बार कह चुके हैं और कहते आये हैं'—ऐसा करनेसे इसमें बहुत भूल होती है।

"उस पत्रमें आप लिखते हैं कि किसी भी मार्गसे आध्यात्मिक ज्ञानका संपादन करना चाहिये, यह ज्ञानियोंका उपदेश है, यह वचन मुझे भी मान्य है।"

किसीने बात नहीं की। दिखाया भी नहीं, पर निश्चित है, अवश्य है। लाखों रुपये देंगे तो भी मुर्दा बोलेगा? जड़ बोलेगा? यह क्या है? है, भान नहीं हैं। यही कहना है। अलौकिक बात कही जाती है। 'प्रतिदिन वहीका वही कहते हैं' ऐसा लगे, पर एक है तो दूसरा क्या कहें? जाने दे अब, और इसका लक्ष्य ले। जिसमें सभी आगम समाये हुए हैं, वह क्या वस्तु है? आत्मसिद्धिजी। विचारकी बहुत कमी है। इस पर विचार नहीं किया। 'जो जाने सो ही अनुभव करते हैं।' दूसरोंको पता नहीं है। हीरेका मूल्य तो जौहरी जानता है, दूजा नहीं जान सकता। अतः कर्तव्य है। बात भेदीकी और ज्ञानीकी है, दूसरेकी नहीं। पकड़ करने जैसी है।

***

ता. २२-११-३५, सायंकाल

'उपदेशछाया' अंक ११में से वाचन—

"शरीर ठीक रहे, यह भी एक तरहकी समाधि है। मन ठीक रहे यह भी एक तरहकी समाधि है। सहजसमाधि अर्थात् बाह्य कारणोंके बिनाकी समाधि। उससे प्रमाद आदिका नाश होता है। जिसे यह समाधि रहती है, उसे पुत्रमरण आदिसे भी असमाधि नहीं होती, और उसे कोई लाख रुपये दे तो आनंद नहीं होता, अथवा कोई छीन ले तो खेद नहीं होता। जिसे साता-असाता दोनों समान है उसे सहजसमाधि कहा है। समकितदृष्टिको अल्प हर्ष, अल्प शोक कभी हो जाये परंतु फिर वह शांत हो जाता है, अंगका हर्ष नहीं रहता; ज्यों ही उसे खेद होता है त्यों ही वह उसे पीछे खींच लेता है। वह सोचता है कि ऐसा होना योग्य नहीं, और आत्माकी निंदा करता है। हर्ष शोक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो तो भी उसका (समकितका) मूल नष्ट नहीं होता। समकितदृष्टिको अंशसे सहज प्रतीतिके अनुसार सदा ही समाधि रहती है। पतंगकी डोरी जैसे हाथमें रहती है वैसे समकितदृष्टिके हाथमें उसकी वृत्ति रूपी डोरी रहती है। समकितदृष्टि जीवको सहज-समाधि है। सत्तामें कर्म रहे हों, परंतु स्वयंको सहजसमाधि है। बाहरके कारणोंसे उसे समाधि नहीं है। आत्मामेंसे जो मोह चला गया वही समाधि है।" (श्रीमद् राजचंद्र)

यह सब बात है वह क्या है? समझ आनेपर समझनेका है। तलवार बाँधकर घूमता है, पर वार करे उसकी तलवार है। मनुष्यभव चिंतामणि है, ऐसा-वैसा नहीं। असावधान क्यों रहा? असावधान रहा इसीलिये मार खाता है। चेत जाये तो मार न खाय। छिलके कूटनेमें समय बीत रहा है। प्राण लिये या ले लेगा यों हो रहा है। कोई बात सत्समागममें पकड़ ली, वही 'मारे उसकी तलवार' कहलाती है। इस जगतमें, तिरना है त्यागसे। अन्य सब मोह-ममत्व, मेरा-तेरा किया वह मिथ्यात्व है। सब छोड़कर जाना पड़ेगा। कोई साथ नहीं आयेगा। अकेला जायेगा। 'मैं' और 'मेरा' करता है कि 'मुझे दुःख हुआ' 'मुझे सुख हुआ', पर तेरा कुछ नहीं है। आत्मा अकेला आया और अकेला जायेगा। किसीका कुछ नहीं हुआ है। छोड़े बिना छुटकारा नहीं है, अतः समझकर ही छोड़ दे न! लिया सो लाभ। इस जीवका कर्तव्य क्या है? सत्संग, सद्बोधकी कमी है, अतः उसकी भावना रखनी चाहिये। कहाँ मिलेगी?

"निर्दोष सुख, निर्दोष आनंद, ल्यो गमे त्यांथी भले;
ए दिव्य शक्तिमान जेथी जंजीरेथी नीकळे."

यह वचन चमत्कारी है—जीवको पकड़ रखने योग्य। जिस पानीसे प्यास मिटे वही कामका है। पानीके बिना जी नहीं सकते। इस संसारमें सत्पुरुषका बोध ही पानी है। वह काम निकाल देगा। बीमार होगा तो उस समय कुछ हो पायेगा? दुःख आयेगा। किसको रहना है? सब मर गये बिचारे। धूलधानी और वा-पानी (अर्थात् सर्वनाश हो गया)। 'यह दुःख-सुख, व्याधि-पीड़ा मुझे होती है।' मर! बुद्धू, तेरा क्या है? तेरा आत्मा। उसे कौन मारनेवाला है? आत्मा कभी मरेगा? अवतार अनंत बार हुए और छूटे, पर आत्मा नहीं मरा। सच्चा लाभ यहाँ इस स्थान पर लेना है। अब कौन चूकेगा? किया सो काम, लिया सो लाभ। प्रतीति आये, विश्वास और प्रेम आये तो काम बनता है। 'मन महिलानुं रे वहाला उपरे, बीजां काम करंत।' ऐसा प्रेम होना चाहिये।

"जैसी प्रीति हरामकी, तैसी हर पर होय;
चल्यो जाय वैकुंठमें, पल्लो न पकड़े कोय."

तब क्या करना चाहिये? एक विनय। तेरा बुरा करे उसका भी तू भला कर। मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, माध्यस्थ भावना करनी चाहिये, अतः लिख ले; मेरा तो अब यही मार्ग है, दूजा नहीं। मेरे चलनेका मार्ग यही है। मेरा पूर्वबद्ध कर्म मुझे दूर हटाना है। लो, रखोगे तो भी रहेगा? नहीं रहेगा। तुम्हारा शरीर भी नहीं रहेगा। अतः सब मिथ्या है। वास्तवमें तो आत्माको सँभालना है। उसे नहीं सँभाला है। ज्ञानीने उसे जाना है, वह मुझे मान्य है। अच्छा-बुरा तेरे करनेसे नहीं होगा। वहाँ तो 'सात साँधे और तेरह टूटे' उसका उपाय कौन करेगा? करेगा कोई?

मुमुक्षु—अपने परिणाम जैसे होंगे वैसा होगा।

प्रभुश्री—भगवानका वचन है : 'अप्पा कत्ता विकत्ता' यहाँ कौन लाया है तुझे? सुख और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुःखका कर्ता आत्मा है। अतः हे जीव! आत्माको सँभाल! स्नेही, मित्र, सगे-संबंधी आदिसे इस संसारमें प्रीति जोड़ी है, पर वे कोई सुख देनेवाले नहीं हैं। अंबालालभाई, सोभागभाई जैसे सब गये, पर साथमें कुछ गया?

मुमुक्षु—धर्माराधन था वह साथमें गया। जैसी वासना और परिणाम!

प्रभुश्री—आत्माके साथ कोई नहीं। कुछ है क्या? तब क्या है? समझ। वह बुरी आये, अच्छी आये। उसके अनुसार गति होती है। अतः 'भूला वहींसे फिर गिन' 'समझा तभीसे सबेरा'। यह पकड़ने जैसी बात है। ये तो कोई बैठे हैं और बातें करते हैं ऐसा मत कर। बात ज्ञानीकी है। हमें तो जहाँसे वस्तु मिले वहाँसे ले लेनी चाहिये।

ता. २३-११-३५ सबेरे

[ता.१४-११-३५ (सं.१९९२) के 'जन्मभूमि'मेंसे परमकृपालुदेवकी जयंति पर छपा लेख पढ़ा गया।]

यह सब आत्माकी बात है। आत्माको तो सामान्य कर दिया है। वह क्या है? ज्ञानियोंने उसमें चमत्कार देखा है। यह माहात्म्य महान है। यह सब पढ़ा वह हमने इधर-उधरसे सुना। यह आश्चर्य किसे कहें? क्या किसीमें कोई कुछ डाल सकता है? यह तो उसे स्वयं तैयार होना है, और वही तैयार होगा; गरजमंद होगा, जिज्ञासु होगा, तभी काम बनेगा। आप सब काम छोड़कर यहाँ आकर बैठते हैं तो कुछ लाभके लिये न? भाव है तो आया जाता है। भावका कारण कुछ चमत्कारी है! उसे ज्ञानियोंने देखा है, कहा जाय वैसा नहीं है। यह तो वह, उसका भाव और प्रेम। जैसे रंगकी चमक हो वैसे। कहा नहीं जा सकता। ऐसा है तो अब क्या करें? मनुष्यभव प्राप्तकर विश्वासका, प्रतीतिका, श्रद्धाका, आस्थाका रंग (प्रेम) कर्तव्य है; उसीमें बह जाओ। कोई कपड़ेको रंगमें डुबोये, दो, चार, पाँच, आठ बार डुबोये तब रंग पर रंग चढ़ता जाता है। एक बार डुबोनेसे पूरा रंग नहीं चढ़ता, कई बार डुबोनेसे रंग चढ़ता है। अतः बात सुनें, बार बार सुनें। कहनेका तात्पर्य यह कि जिसे बहुत श्रद्धा, प्रतीति आई है उसका काम बनेगा। सबको विश्वास, प्रतीति, श्रद्धाका काम है। देख देखकर देखा तो यह फल आया। सब सामग्री चाहिये। बहुत आश्चर्यजनक है! सही बात समझनेकी है, उसमें बहुत विघ्न होते हैं। बहुत कमी है, अतः समझिये। बोलने जैसा नहीं रहा, क्या कहें? कहा जाय वैसा नहीं है। 'जब जागेंगे आतमा, तब लागेंगे रंग।' अतः जागिये। यह मतिश्रुत है, पर इसकी न्यूनता है और उसके भेद अनेक हैं। जिनेश्वरकी तो बात ही अपूर्व है!—मनःपर्यव जिन! अवधिजिन! उसका पता नहीं है। वह हो तो जाने। अतः करना पड़ेगा। यह किसीका दोष देखना नहीं है, कमी दूर करना है, पर करेगा तो यह (आत्मा) स्वयं ही।

अब यह सहज बात करता हूँ, समझनेके लिये—

संसारमें धन-दौलत, पद, खाना-पीना सब सुख था। उसे छोड़कर दीक्षा ली। उसमें भी श्वेतांबर, दिगंबर नहीं, हम तो एक ढुंढिया ऐसा मानते थे। और उसमें अहंकार और मान बढ़ा कि हम साधु बन गये, सब छोड़ दिया। ऐसा हुआ और वैसा ही मान बैठे। उसीमें अधरधक्क यों ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँच वर्ष निकल गये। [1]एकांतर उपवास आदि त्यागकी क्रिया करते थे पर अन्तरंग परिणमन कुछ नहीं--अहंकार और मान बढ़ा। बड़े-बड़े श्रावक-श्राविकाएँ सन्मान, पूजा-सत्कार करते। शास्त्रकी बात बड़बड़ बोल जाते, पढ़ जाते--वो भी मनमें अहंकार रखकर। लो, ऐसे काम किये! कहनेका तात्पर्य कि फिर कुछ अक्कर चक्कर बात हुई। नहीं बात, नहीं विस्तार, न जान, न पहचान; पर सूर्य उदय होता है और पहले प्रभात होता है वैसे पहले सुना। पूर्ण सूर्य उदय हो तब दिन होता है। अंबालालभाईसे परमकृपालुदेव संबंधी जूठाभाईकी बातें सुनी। परंतु उसमें अपना अहंकार और अभिमान अभी विद्यमान ही था। मनमें हुआ कि बात तो उसीकी है, पर ऐसा कुछ था नहीं। फिर भी विश्वास तो हुआ कि कुछ है। उसमेंसे सहज मिलने पर, अंबालालभाई बैठे हुए थे और अचानक कृपालुदेवकी बात की, हमने भी कान लगाकर सुनी। यह क्या है? किसे कहते हैं? दूसरी बातें सुनते हैं वैसे ही यह भी सुनी और सुननेके साथ बात न्यारी ही हो गई! यह मैं अपनी स्वानुभवकी बात कर रहा हूँ। जैसे संसार छोड़कर दीक्षा ली थी, वैसे ही यह बात सुनते ही सब बदल गया! फिर तो, वही बातें सुनते रहे। जूठाभाईका पत्र पढ़ा। उसे पढ़कर फिर मनमें हुआ कि जायेगा कहाँ? तबसे बदला सो बदला, सो आज और अभी तक यों ही है। न बोध, न समागम, न कुछ कहना, पर तुरंत अकेला निकल पड़ा, संघ आदि सबसे अलग हो गया। इनको (जेसींगभाई सेठको) देखा था और मिले थे, जूठाभाईको भी देखा था किंतु उस समय कुछ भान नहीं था। बादमें उगरी बहनको पहचानता, पहले पता नहीं था क्योंकि औरतोंके साथ क्या काम? बात तो पूछनेकी और सुननेकी होती है और उसीकी उमंग रहती है। मनमें लगा कि इसमें कुछ रहस्य जरूर है और फिर सब बैठ गया। अब कहाँ जाऊँगा? बकरोंकी टोलीमें सिंह हो, किन्तु अपनेको बकरा मानकर फिरता रहे, पर जातिभाई मिले तो बताये कि तू तो सिंह है, बकरा नहीं। सिंहको सावधान होनेके बाद फिर बकरा होनेका भाव नहीं रहता। फिर तो उनके वचन कानमें पड़े और अधिक बातें सुनी, जिससे पक्का होता ही गया। पर यह सच्ची बात किसीसे कही नहीं जा सकती थी--सभी बड़े-बड़े साधु बने बैठे थे।

लो, यह चमत्कार किसने किया? किसने कहा? इसलिये, इसमें पूर्वकृत और पुरुषार्थकी आवश्यकता है। यह मनुष्यभव है सो पूर्वकृत है। अब उसके द्वारा सत्पुरुषार्थ करना चाहिये। अतः स्वयंको तैयार होना है। इसकी देरमें देर है। वह छिपा नहीं रहता। अधिक नहीं कहा जा सकता। कहनेसे उसमें खामी आ जाती है। कोई दो भवमें तो कोई एक भवमें मोक्ष जायेंगे; इसका पता तो होता है, पर कहा नहीं जा सकता। इस प्रारब्धमें *'दहीका घोडा' और फालकाकी भाँति फिरता है वह तो कर्म है जिसे भोगने पर ही छुटकारा है। जो जानता है, वही करना है, अतः निश्चित, नक्की, पक्का कर लेना चाहिये। गुप्त बात कहनी है, दबाकर, जोरसे भी यही ठूँस देना है। पूनामें भगवानके समक्ष सभी भाइयोंको पुकारकर कहा था, वही बात आज भी है, इस समय भी वही चित्रपट है। इनको अन्य सब छुड़वाना है और एक मात्र आत्माका ही करवाना है। तू

---

१ एक दिन उपवास और एक दिन आहार यों क्रमशः उपवास-आहार करनेका व्रत।

* 'एनघेन' के खेलमें दाववाला लड़का।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तैयार है? तेरी देरमें देर है। सभी मुमुक्षुओंको मानने योग्य है। देखना हाँ! पकड़ ढीली मत करना और अन्य नहीं देखना। +एक पकड़ और मान्यता कर। एक आत्माको देखना है।

★★★

+ एक धनवान शेठको जिनरक्षित और जिनपालित नामक दो पुत्र थे। जब वे बड़े हुए तब व्यापार कर स्वावलंबनसे धन कमाकर आत्मसंतोष प्राप्त करनेकी इच्छासे माता-पिताके प्रेम और घर पर रहनेके आग्रहकी अवगणना कर हठ कर परदेश गये। बहुत माल भरकर जहाजको दूर देशमें ले जाकर माल बेचकर वहाँसे मसाले आदि उत्तम वस्तुएँ खरीदीं। फिर स्वदेश लौटनेको निकल पड़े। रास्तेमें तूफानसे जहाज टूट गया, किन्तु वे दोनों एक द्वीप पर पहुँच गये। वहाँ एक रयणादेवी रहती थी। उसने उन दोनोंको ललचाकर अपने घर पर रखा। उन्हें अनेक प्रकारके विलासमें मग्न किया। घरकी भी याद न आये ऐसा कृत्रिम प्रेम दिखाकर उन्हें विषय-सुखमें लीन कर दिया। एक दिन इंद्रकी आज्ञासे उसे समुद्र साफ करनेका काम सौंपा गया। अतः उसने उन दोनों भाइयोंसे कहा कि किसी विशेष कामसे मुझे तीन दिनके लिये बाहर जाना है, किंतु तुम्हें यहाँ कुछ अड़चन नहीं होगी। द्वीपमें जहाँ घूमना हो वहाँ घूमना, पर एक उत्तर दिशामें मत जाना। यों कहकर वह काम पर चली गई।

दोनों भाई सब ओर घूमकर बगीचे आदि स्थान देखते रहें। उत्तरमें जानेका निषेध होनेसे उस ओरकी विशेष जिज्ञासा हुई कि देखें तो सही, वहाँ क्या है? यों सोचकर उस ओर चले। वहाँ हड्डियाँ आदि दुर्गंधी पदार्थोंके ढेर लगे थे। दूर जानेपर एक व्यक्ति शूली पर चढ़ाया हुआ दिखाई दिया, जो चिल्ला रहा था। वे दोनों उसके पास पहुँचे। उसका मरण निकट लगता था। उन दोनोंने पूछा, "हम आपका क्या भला कर सकते हैं?" वह बोला, "भाई, मैं तो अब मृत्युके निकट हूँ इसलिये बच नहीं सकता। लेकिन तुम्हारी भी यही दशा होनेवाली है। तुम्हारी तरह मैंने भी रयणादेवीके साथ अनेक विलास भोगे हैं, पर समुद्र साफ करनेका अवसर आया तब तुम उसे मिल गये, जिससे मेरी यह दशा कर दी है। अभी वह नहीं है इसलिये तुम इस प्रदेशमें आ सके हो। अन्य किसीके मिल जाने पर तुम भी शूली पर चढ़ा दिये जाओगे।" यह सुनकर दोनोंने हाथ जोड़कर उससे विनती की कि कोई उपाय हमारी मुक्तिका हो तो कृपा कर बताइये। उन्होंने कहा कि समुद्र किनारे एक यक्ष रहता है, वह प्रतिदिन दोपहरमें पुकार करता है कि किसे तारूँ, किसे पार उतारूँ? उस समय उसकी शरण ग्रहण कर कहना कि "आप जो कहेंगे वह हमें मान्य है, पर हमें बचाइये और हमारे देश पहुँचाइये।" ऐसा कहने पर वह मगरका रूप धारणकर तुम्हें पीठ पर बिठायेगा और यदि तुम उसके कहे अनुसार करोगे तो सागर पारकर स्वदेश पहुँच जाओगे।

इस उपायकी परीक्षा करने वे दूसरे दिन गये। यक्षको विनति की तब उसने कहा कि तुम्हें ललचानेके लिये रयणादेवी आयेगी, किंतु तुम उसके सामने देखोगे भी नहीं। जो उसके प्रति प्रेमवान बनकर ललचायेगा, उसके मनको जानकर मैं उसको पीठसे उलट कर समुद्रमें फेंक दूँगा। दोनोंने समुद्र पार होनेके लक्ष्यसे उसकी शर्त स्वीकार की। तब वह मगर बनकर किनारे आया और दोनों उसकी पीठ पर बैठ गये और मगर शीघ्रतासे समुद्र पार करने लगा।

तीसरे दिन रयणादेवी आई तब उन्हें घर पर नहीं देखा तो जान गई कि उन्हें कोई भेदी मिला है। अतः उनको ढूँढनेके लिये वह समुद्रमें चली गई और आकाशमें रहकर विलाप करती हुई दोनोंसे प्रार्थना करने लगी।

जिनरक्षित गंभीर और समझदार था। वह तो उसकी ओर पीठ करके ही बैठा रहा। चाहे जैसा हावभाव करे या विनती करे तो भी उस ओर ध्यान नहीं दिया। उसके कपटजालको वह मृत्युरूप ही समझता था। वह तो फँसेगा ही नहीं ऐसी प्रतीति हो जाने पर अब वह केवल जिनपालितका नाम ले लेकर बारंबार कहने लगी–"मैंने तुम्हें क्या दुःख दिया है? मेरे सामने देख लेने मात्रसे मुझे आश्वासन मिलेगा। पहलेकी बातोंको यादकर कृपाकर मेरे स्नेहको याद करो, ऐसे निष्ठुर न बनो, अबला पर दया करो।" ऐसे वचनोंसे जिनपालित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. २३-११-३५ शामको

'उपदेशछाया'मेंसे वाचन–

"आत्माकी निंदा करें; और ऐसा खेद करें कि जिससे वैराग्य आये, संसार झूठा लगे। चाहे जो कोई मरे, परंतु जिसकी आँखोंमें आँसू आयें, संसारको असार जानकर, जन्म जरा और मरणको महा भयंकर जानकर वैराग्य पाकर आँसू आयें वह उत्तम है। अपना लड़का मर जाये और रोये, इसमें कोई विशेषता नहीं है, यह तो मोहका कारण है।"

प्रभुश्री–अपनी बात है। बात आत्माकी ही है। वह नहीं किया। जीवका सही कर्तव्य तो यही है। अन्यत्र प्रेम-प्रीति करता है। पुरुषार्थ तो करता है, पर बाहरका, इसका नहीं। जिसकी दृष्टि आत्मा पर पड़ी, उसका बेड़ा पार है। परिणाम क्या आयेगा? समकित; विशेष पुरुषार्थ करे तो केवली भी हो सकता है। जन्म-जरा-मरण हो रहे हैं, उसमें सुख और दुःख ही है, अन्य कुछ नहीं। "प्रीति अनंती परथकी, जे तोडे ते जोडे एह।" यह सब छोड़। छोड़े बिना छुटकारा नहीं है। देर-सबेर छोड़ना ही पड़ेगा। करनेका काम पड़ा रह गया है! बाहरके काममें लगेगा, किन्तु इसका भान नहीं है। यह कैसी भूल है? कालका भरोसा नहीं है। अपनी दृष्टि समक्ष कितने ही चले गये, उस पर विचार ही नहीं है।

"हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?
कोना संबंधे वळगणा छे? राखुं के ए परहरुं?"

(अमूल्य तत्त्वविचार, 'मोक्षमाला')

इसका विचार नहीं है। यह अन्य सब क्या है? वह आत्मा नहीं है। इसमें बात वैराग्य की है। अन्य सब छोड़ना है–परका त्याग। विचार नहीं हुआ। असंग है उसको नहीं सँभाला। सच तो यह है, अन्य नहीं। ज्ञानीने कह दिया : 'असंग-अप्रतिबंध,' पर उसका ध्यान नहीं। आत्मा कैसे देखा जाता होगा? कैसा होगा? अब हमें क्या करना चाहिये?

१. मुमुक्षु–जिसको आत्माका परिचय हो उसका समागम करना, उससे समझना, उसके बोध पर विचार करना, उस प्रकारका परिणाम लाना।

प्रभुश्री–यह तो एक प्रकारका उद्यम हुआ। यह भी कर लिया, पर हाथ नहीं लगा।

१. मुमुक्षु–ऐसा नहीं किया है, नहीं तो हाथ लगता।

प्रभुश्री–सबने अधूरा छोड़ा; पर किसीने पूरा किया? फिर कैसे निबटारा हो?

२. मुमुक्षु–किया तो सही, पर भाव और परिणाम वैसे नहीं किये, जिससे कचास रह गई।

प्रभुश्री–हाँ, यह तो कमी बताई। ठीक है, छोड़ो ये सभी बातें। एक कुछ करना रह गया, वह क्या है?

ललचा गया–"बेचारी इतना रो रही है तो उसके सामने देखनेमें क्या दोष है?" ऐसा सोचकर उसने ज्यों ही दृष्टि उस ओर की, यक्षने उसे उछालकर नीचे डाल दिया, देवीने उसे त्रिशूल पर झेलकर टुकड़े-टुकड़े कर समुद्रमें फेंक दिया। जिनरक्षित ललचाया नहीं, तो स्वदेश पहुँच गया।

इस कथाका बोध यह है कि जगतकी माया, पुद्गल अनेक प्रकारसे लुभाकर आत्माको उसकी प्रीतिमें फँसाते हैं; किन्तु स्वयं न ठगाकर, एकमात्र मेरा आत्मा ही सच्चा है, ऐसा मानें। शेष सब माया है। देहादि परवस्तु पर मोह न करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. मुमुक्षु–समझ करनी रह गई।

प्रभुश्री–अपेक्षासे वचन मिथ्या नहीं है। "पावे नहीं गुरुगम बिना, एही अनादि स्थित।" जब-कभी भी गुरुके बिना ज्ञान नहीं, गुरुके बिना ध्यान नहीं। फिर देर नहीं लगेगी। बड़े बड़े काम अंतर्मुहूर्तमें हो गये। अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान! गुरु बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता। उसकी आवश्यकता है।

२. मुमुक्षु–गुरुगम क्या है? कोई वस्तु है? कहाँ रहता है?

प्रभुश्री–'पावे नहीं गुरुगम बिना' वह क्या है?

२. मुमुक्षु–व्याकरणके अनुसार कहता हूँ, उसका अर्थ–गुरु बताये वह।

प्रभुश्री–इतना तो निश्चित करें। जगतमें दो वस्तु हैं : जड़ और चेतन। किसी समय, किसी स्थान पर सुना है कि जड़ जानता है? आत्मा क्या है? आत्मा है, उसके साथ बात होगी, दूसरेके साथ हो सकती है क्या? भाई कहें, दादा, मामा, पिता आदि कहें–बुरा हुआ कल्पनासे। क्षण क्षण कल्पना है। एक आत्माको जाना तो सब जान लिया। वह नहीं जाना तो कुछ नहीं जाना। बोलियेगा नहीं; ज्ञानी जानते हैं। वर्णन नहीं किया जा सकता। बड़ी बात भावकी है। भावके बिना कुछ नहीं किया जा सकता। यह मुख्य बात है। अभी तो आत्मा है, वही गुरुगम है। जड़को कुछ है? एक भाव है। भाव बिना सब फीका, राख जैसा है। नमक न डाला हो तो फीका लगे वैसा। अतः अपनेको तो एक ही भाव। सब-सबके भावके अनुसार काम होता है। राग, द्वेष, मोह, शांति, क्षमा जिसमें जिस प्रमाणमें हों, उस प्रमाणमें काम होता है। भावके बिना बात नहीं है। अन्यका परिणाम आवे तो क्या इसका नहीं? भावके अनुसार परिणाम आयेगा। अतः यह कर्तव्य है।

"निर्दोष सुख निर्दोष आनंद ल्यो गमे त्यांथी भले;
ए दिव्य शक्तिमान जेथी जंजीरेथी नीकळे."

प्रमाद और आलस्यने जीवका बुरा किया है, यह विघ्न है। क्या बताया? सत्संगमें जाओ। चाहे जहाँ जाओ, एक मात्र सत्संग। इससे भला होगा। पापका बाप जानो। क्या निकला? इसको क्या जानना है? एक सत्, सत् और सत्। यह निकला–यह परिणाम आया। 'जागे तबसे सबेरा।' जागा नहीं है, यही कमी है। जगाना पड़ेगा। बड़ों-बड़ोंने भी जगाने पर ही कार्य किया है, जैसे कुंभकर्णको नींदसे जगाया वैसे। इससे माँगो, उससे माँगो, अमुकसे माँगो, इससे काम नहीं चलेगा। एक यहाँ। "जब जागेंगे आतमा, तब लागेंगे रंग।" ये वचन ज्ञानीके हैं, बदल नहीं सकते। अतः करने योग्य है। 'सांभळी सांभळी फूट्यां कान, तोय न आव्युं ब्रह्मज्ञान।' बार-बार यही बात क्यों? यह क्या है? उलाहना दे रहे हैं! बैठेंगे तो कुछ सुनाई देगा। कचास है, खामी है, बड़ा घाटा है। पैसेवाला खर्च करेगा; न हो वह क्या करेगा? ये कह रहे हैं। जाना नहीं है। जिसके पास हो वह कर सकता है। यह वस्तु सत्की है, गुरुगमकी है। गुरुके दर्शन तथा बोध प्राप्त नहीं हुए। यह बड़ी कमी है। अजब-गजब है! बात तो बहुत है। ज्ञानी, हे भगवान! अजब-गजब! अपूर्व बात है! मनुष्यभवमें जितना हो सके, कर लो। भूलना मत, चूकना मत।

★
★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. ७-१-३६, सायंकाल

शिथिलता और प्रमाद विषके समान हैं, शत्रु हैं, इनसे बुरा हुआ है। मनुष्यभव प्राप्त किया तो यह ध्यानमें रखना चाहिये, यह अपने लिये ही है। विषयोंने जीवका बुरा किया है; वे शत्रु हैं। 'जागे तबसे सबेरा' 'समयं गोयम मा पमाए' अब कब तक पड़े रहोगे? यह सब मायाका है, वह नहीं है। आत्माकी खबर लेनी है। ज्ञानीने उस आत्माको जाना है। उसके लिये सत्संग और बोध ग्रहण करना चाहिये, उसे सुनना चाहिये। सब वर्षोंकी भोगावली है, कर्म आते हैं और जाते हैं। कर्माधीन क्रोध कषाय आवे, पर बोध हो तो उसे रोक देता है। यह तो 'पवनसे भटकी कोयल,' अतः अब दो घड़ी बैठ और सत्समागम कर। यह अवसर चला गया तो फिर क्या करेगा? सब बाह्य दृष्टिसे देखता है। वृद्ध, युवान, रोगी, बनिया, ब्राह्मण—सब कुलबुलाहट है। जो देखना चाहिये वह नहीं देखा। वह गुरुगमसे दिखाई देता है। तेरे स्वच्छंदसे करने योग्य नहीं है। गुरु-आज्ञासे काम बन जाता है। भले मनुष्य! लाभ लेनेका तो यह है। व्यवहारमें कमानेके लिये परदेश जाता है और कहता है कि 'यह मैंने कमाया है।' पर कर्म बाँधे! तो वह यह नहीं। गुरु-आज्ञासे, गुरुगमसे तो किये हुए कर्मबंध कटते हैं, कर्म आनेके द्वार बंद होते हैं। अब कहाँ खड़े रहें? सत्संगकी उपासना करे, बोध सुने तो फिर जाने कि यह मेरा खड़े रहनेका स्थान है। वैसे इस संसारमें तो पाँव रखते पाप है, दृष्टिमें विष है और सिर पर मरण सवार है। बोधसे दृष्टि बदल जाती है।

"होत आसवा परिसवा, नहि इनमें संदेह;
मात्र दृष्टिकी भूल है, भूल गये गत एह."

तेरी तो पीलियेकी आँख है अतः सब पीला ही दीखता है। एक दृष्टि तो विकारकी है और एक वैराग्यकी है। यदि तेरे भाव बदल जायें तो अपार कमाई है। इस संसारमें तो माया है और इसमें छिलके कूटने जैसा है। जीवका बुरा करता है मान। मानका तो मानो पद ले बैठा है! अब तो उसे मार दे।

"अधमाधम अधिको पतित, सकल जगतमां हुं य;
ए निश्चय आव्या विना, साधन करशे शुंय?"

लघुता आ जाये तो फिर कैसा काम होता है? यह तो मान ही मानमें रहता है कि इसको कुछ नहीं आता, यह कुछ नहीं जानता, लाइये मैं बात करूँ। इस मानने तो बुरा हाल कर रखा है। सत्संगकी तो बलिहारी है! यह अवसर आया है, चेतने जैसा है। चाबी नहीं है तो ताला कैसे खुलेगा? वह आना चाहिये। उसी प्रकार गुरु बिना ज्ञान नहीं और हो भी नहीं सकता। अन्यत्र भले ही जायें, भटकें—उससे तो ताला भिडेगा, पर खुलेगा नहीं। वह गुरुके पास ही मिलेगा। अब कब लोगे?

"अधमाधम अधिको पतित, सकल जगतमां हुंय;
ए निश्चय आव्या विना, साधन करशे शुंय?"

"प्रभु प्रभु लय लागी नहीं, पड्यो न सद्गुरु पाय;
दीठा नहि निज दोष तो, तरिये कोण उपाय?"

अतः आवश्यकता है लघुताकी। अनंत कालचक्रसे इस जीवने मानका त्याग नहीं किया है, अब उसे छोड़ दे और पानीसे भी पतला बन जा। अहंकारसे करेगा तो वह गिनतीमें नहीं आयेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं सामायिक करके आया, मैं उपाश्रय गया–ऐसा किया, वैसा किया। और वहाँसे अवकाश मिला तो फिर अन्य सब नहीं करनेका करता है! 'बेकार बैठा बरबादी करे' बरबादी हुई है नामसझीसे।

"सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिनस्वरूप."

बाप बनकर खा सकते हैं क्या? नहीं खा सकते, किंतु बेटा बनकर खा सकते हैं। ऐसा लोग कहते हैं न? यह तो संघवी हैं, बड़े हैं, समझदार हैं, जानकार हैं, क्या हम नहीं समझते? यह सब मान-पूजा है, अहंकार है। धर्म कहाँ है?

"धरम धरम करतो जग सहु फिरे, धरम न जाणे हो मर्म, जिनेश्वर;
धर्म जिनेश्वर चरण ग्रह्या पछी, कोई न बांधे हो कर्म, जिनेश्वर–
धर्म जिनेश्वर गाउं रंगशुं."

गुफामें हजारों वर्षका अंधेरा हो, पर दीपकके आते ही उजाला। यह कैसी अद्भुत बात है! चमत्कार है!

१. मुमुक्षु–जिनेश्वरके चरण अर्थात् क्या है कि जिससे कर्म न बाँधे?

२. मुमुक्षु–चरणका अर्थ यहाँ ज्ञानीपुरुषकी यथार्थ आज्ञाका आचरण-आराधन। तदनुसार हो तो कर्म नहीं बँधते। उससे विमुख हो तो बँधते हैं।

१. मुमुक्षु–चरण ग्रहण करनेके पश्चात् 'प्रवचन अंजन जो सद्गुरु करे देखे परम निधान, जिनेश्वर' यह अंजन क्या है?

प्रभुश्री–गुरुगम आया तो उसमें सब आ गया, पर मर्म समझमें नहीं आया।

१. मुमुक्षु–मर्म क्या?

प्रभुश्री–योग्यताकी कचास है। चरणमें ज्ञानीका आचरण आदि कहा, तो भी अभी बैठ। यथातथ्य पहचान होने पर यदि वह उसके उपयोगमें आया, यथातथ्य बोध हुआ और उसे ग्रहण किया तो वही आत्मा। यह कचास है उसकी योग्यताकी इसलिये कह नहीं सकते। खबर नहीं है, पहचान नहीं है।

१. मुमुक्षु– "छे देहादिथी भिन्न आतमा रे, उपयोगी सदा अविनाश।"
प्रभुश्री– "एम जाणे सद्गुरु उपदेशथी रे, कह्युं ज्ञान तेनुं नाम खास।"–

खास, खास। ऐसे पुरुषोंको कौन मानेगा! तेरे कर्म फूटे हुए हैं! बात किसकी थी? बात आत्माकी थी पर आत्माकी पहचान तो हुई नहीं। वह है, ज्ञानीके पास है। क्षणभर भी उससे अलग नहीं।

१. मुमुक्षु–"सत्पुरुष वही है कि जो रात दिन आत्माके उपयोगमें है; जिसका कथन शास्त्रमें नहीं मिलता, सुननेमें नहीं आता, फिर भी अनुभवमें आ सकता है; अंतरंग स्पृहारहित जिसका गुप्त आचरण है; बाकी तो कुछ कहा नहीं जा सकता।"

प्रभुश्री–उसे पहचाननेवाला कौन? धन्यभाग्य जो उसे जानेगा। कहनेकी बात एक आत्मा। अन्य सब देखा, परंतु आत्मा नहीं देखा। और, अन्य जो कुछ देखा उसे भी आत्माने ही देखा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. मुमुक्षु—आप हमें देखें और हम आपको न देखें और हमें भी न देखें, यह कैसी खूबीकी बात है!

प्रभुश्री—अंजन होना चाहिये, वह नहीं हुआ।

३. मुमुक्षु—तब चश्मा बदल दीजिये। उलटेके सीधे कर दीजिये।

प्रभुश्री—प्रभुकी, कृपालुकी कृपा है! आप बड़े हैं। धीरे धीरे ऐसा हो गया। बहुत होशियार है!

यह सब कौन देखेगा? आत्मा : ज्ञानी, अज्ञानी। भूल है कि आत्माको जाना नहीं। जाननेसे आस्रवका संवर होता है, और संवर ही आत्मा है।

[1]"पुद्गल खाणो, पुद्गल पीणो, पुद्गल हुंथी काया;
वर्ण गंध रस स्पर्श सहु ए, पुद्गल हुंकी माया,
संतो देखिये बे परगट पुद्गल जाल-तमासा."

महापुरुष बिचारे पुकारकर चले गये। जिसने जाना है, ऐसा भेदी मिलेगा तो काम बन जायेगा। उसके बिना छुटकारा नहीं है। जैसे परस्पर बदला व्यवहारमें करता है, वैसे ही करना पड़ेगा; उसके बिना काम नहीं चलेगा।

★★★

ता. ८-१-३६, शामको

यह जीव तो पैसेका, पूजा-मान आदिका भिखारी है। पर जो चैतन्य अपना आत्मा है, उसका भान नहीं है, चिंता भी नहीं है। उसका क्या धर्म है, जानना चाहिये। इससे काम होता है, देवगति होती है। व्यवहारमें कमाई करके जो संग्रह करता है वह भी कर्ममें हो तभी रहता है। अज्ञान और मिथ्यात्वसे सब बुरा हुआ है। वह मेरा नहीं। 'पवनसे भटकी कोयल।' आत्माके साथ एक सुई भी नहीं जायेगी। मूर्ख होगा वह नहीं चेतेगा। विशेष गहन उत्कंठा पूर्वक चेतना चाहिये। वैरी और शत्रु तो कर्म हैं, वे आत्माका घात करनेवाले हैं और उन्हींके साथ मित्रता कर रखी है! कुसंग हो गया है। अब छोड़ दे, अवसर आया है। मनुष्यभव दुर्लभ है। अन्य जन्ममें सुननेको नहीं मिलेगा। मनुष्यभवको दुर्लभ कहा है, उसका सदुपयोग न करे तो पशु समान है। इस संसारमें मनुष्यभव प्राप्त कर क्या किया? अन्य सब चित्र-विचित्र, आत्मा नहीं है, सब पुद्गल हैं। 'संतो, देखिये बे पुद्गल जाल-तमासा।' यह तेरा नहीं है, अतः समझ जा। चेत जा। गिनती कर अपने आत्माके लिये। बाल-बच्चे तेरे नहीं है और होनेवाले भी नहीं। अंतमें अकेला जायेगा। अतः विचार करने योग्य है। 'भूला वहींसे फिर गिन।' अवसर आया है। ये सब बैठे हैं और सुनते हैं, उससे भी पुण्यका संचय होता है। इसका किसीको पता नहीं। उसका पता हो तो काम बन जाय। बहुत भूल है और घाटेमें जा रहा है। अनजान और अंधा! जगत अनजान और अंधा है। जिसे गरज होगी, उसके कामका है। आयुष्यमेंसे जितना समय इसमें गया, वही सफल है। जाने-अनजाने भी इसमें समय बीतेगा वह सफल है। पर सामान्यपनेमें निकाल दिया है। सब एक समान समझ लिया है वह

---

१. चिदानंदजी पुद्गलगीतामें कहते हैं कि पुद्गल खाता है, पुद्गल पीता है, शरीर भी पुद्गलका ही बना हुआ है; वर्ण, रस, गंध, स्पर्श ये सब पुद्गलके ही गुण हैं, पर्याय हैं। हे संतों! संसारमें चारों ओर पुद्गलका ही खेल दिखाई दे रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञान है। अतः यह करना है, इसमें सावधानी रख। इसको याद करनेसे काम बन जाता है। यह तो सब मिलावट कर रख दिया है। अतः चेत जायें। ऐसा अवसर पुनः कहाँ मिलेगा? बहुत लाभ है, करने जैसा अवसर प्राप्त करके भी न करे तो फिर क्या? गफलतमें समय बीत गया तो फिर हो चुका! वृत्तिका स्वरूप नहीं जाना। ज्ञानीने तो बहुत कहा है। पढ़ जाता है पर विचार नहीं करता। जो क्षण बीत रहा है वह वापस नहीं आयेगा। 'समयं गोयम मा पमाए।' ऐसा कहनेवाले क्या पागल थे? 'सत्पुरुष वही है कि जो रात-दिन आत्माके उपयोगमें है।' यह बोलिये।

१. मुमुक्षु—"सत्पुरुष वही है जो रात दिन आत्माके उपयोगमें है, जिसका कथन शास्त्रमें नहीं मिलता, सुननेमें नहीं आता, फिर भी अनुभवमें आ सकता है। अंतरंग स्पृहारहित जिसका गुप्त आचरण है; बाकी तो कुछ कहा नहीं जा सकता।"

प्रभुश्री—यह सब तुंबीमें कंकड़ जैसा है। इसका मर्म नहीं जाना, भेद नहीं समझा, समझमें आया ही नहीं। यह चमत्कारी बात है! यह तो महान मंत्र है, कथा नहीं। पहले सत्पुरुष पर विश्वास रख, फिर उसे मान्य करके जैसे जगतके काम करता है, वैसे ही यह काम कर। यह सब बताया इसमें मात्र मान्यताभाव कर। "दूसरा कुछ मत खोज, मात्र एक सत्पुरुषको खोजकर उसके चरणकमलमें सर्वभाव अर्पण करके प्रवृत्ति किये जा। फिर यदि मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना।" लो, यह सारे संसारके सिर पर वज्रमय ताले लगा दिये कि फिर खुलें ही नहीं, और विष उतारे ऐसा है।

सत्पुरुष क्या है?

१. मुमुक्षु—आत्मा।

प्रभुश्री—सत्पुरुष कौन?

२. मुमुक्षु— + 'मळ्यो छे एक भेदी रे, कहेली गति ते तणी'

प्रभुश्री—सीधे। खोलो, खोलो।

२. मुमुक्षु—आपको भेदी मिला है, यह तो निश्चित है।

प्रभुश्री—वह तो मना नहीं कर सकता, पर बात भाव पर है। करना पड़ेगा। भाव बढ़ाये तो आत्मा और घटाये तो भी आत्मा। आत्माका भाव है। पहले पहचान चाहिये। उसके बिना कचास है। 'सवणे नाणे विन्नाणे।' विज्ञान आये तो पूछने नहीं जाना पड़ेगा। जिसका काम है उसीका है, दूसरेका नहीं। 'जब जागेंगे आतमा तब लागेंगे रंग।' कहा नहीं जा सकता। बातें तो बहुत की है। कमी योग्यताकी है और ताले खुले नहीं हैं। सभी ज्ञान, केवलपर्यंत एक आत्माको ही होंगे। यहाँ पर तो विचारका काम है, अन्यका नहीं है, आत्माका है। गुड खायेगा उसे मीठा लगेगा। अब इसका उपाय चाहिये ना?—कि यह मार्ग। अतः कहो, कौनसा मार्ग?

३. मुमुक्षु—सत्पुरुषके समागममें बोध सुनकर सत्पुरुषार्थ करना।

प्रभुश्री—बात तो ठीक की। पर 'परंतु' आया वहाँ बाकी रह गया। किसीका अपमान कैसे किया जाय? अतः 'परंतु' कहा तो कुछ कहना पड़ेगा। अभी बराबर कहलवाता हूँ अतः कहो।

+ हमें एक भेदी (आत्मज्ञानी) मिल गया है, उसकी गति (दशा) तो जैसी कही है वैसी ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. मुमुक्षु–'परंतु' कहा अर्थात् वहाँ परिणमन होना चाहिये; वह बाकी है।

१. मुमुक्षु–मैं तो कृपालुदेवके वचन कहता हूँ : "जो निरंतर भाव-अप्रतिबद्धतासे विचरते हैं ऐसे ज्ञानीपुरुषके चरणारविंदके प्रति अचल प्रेम हुए बिना और सम्यक्प्रतीति आये बिना सत्स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती, और आने पर अवश्य वह मुमुक्षु, जिसके चरणारविंदकी उसने सेवा की है, उसकी दशाको पाता है।"

प्रभुश्री–यह बात तो रोम रोम सत्य है, कौन मना करता है?

१. मुमुक्षु–तब क्या करें? क्या करना चाहिये? सिरपर स्वामी रखकर परिणमन करें।

२. मुमुक्षु–सत्पुरुषके वचनमें श्रद्धा करें, अन्य नहीं।

प्रभुश्री–कुछ उत्थापन करना है? सद्धा तो परम दुल्लहा। यहाँ भी कुछ शेष रह गया है। भावके बिना परिणमन नहीं होता।

"भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान,
भावे भावना भाविये, भावे केवलज्ञान."
'आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे.'

१. मुमुक्षु–आत्मभावना करने पर भी दूसरा ही होता है, वह नहीं होता; तब क्या करें?

प्रभुश्री–ऐसा कहते हैं कि समझकर गा, तभी काम होगा।

"मारुं गायुं गाशे, ते झाझा गोदा खाशे;
समजीने गाशे ते वहेलो वैकुंठ जाशे." (नरसिंह महेता)

१. मुमुक्षु–अनादिकालसे मिथ्यात्वके, अज्ञानके भाव हैं, वे कैसे छूटेंगे?

प्रभुश्री–पर वह मिल जायेगा।

१. मुमुक्षु–तो बस, यही चाहिये, अन्य नहीं। काम हो गया।

प्रभुश्री–ज्ञानियोंने जीवका अवलंबन जाना। पहले भाव बदलते हैं, यह बड़ी बात है। उससे सब होगा। 'भावे जिनवर पूजिये' जिनवर ही आत्मा है, उसे पहले लिया। तथा गीत गायें तो भी इसके ही, इसे जानकर गाये। बरातमें दूल्हेके गीत गाये जाते हैं, वैसे ही यहाँ आत्मा प्रथम है, उसीके गीत गाने हैं, यह बात ज्ञानीको पता है, वे जानते हैं। ये सब भाई, बहन, वृद्ध, युवान, बालक सभी आत्मा हैं, पर जाना नहीं। "मात्र 'सत्' मिला नहीं, 'सत्' सुना नहीं और 'सत्'की श्रद्धा नहीं की तथा इसके मिलने पर, इसको सुननेसे और इसकी श्रद्धा करनेसे ही छूटनेकी बातका आत्मासे गुंजार होगा।" पहले आया आत्मा। जड़ और चेतन, जैसे हैं वैसे दो भेद जानने होंगे। जीव-अजीव तत्त्व शास्त्रमेंसे पढ़ता है, अभ्यास करता है, पर वहाँ क्या विघ्न रहा? यहाँ तो भेदका भेद जानना है। भेदका भेद समझमें आया हो तो कहिये।

१. मुमुक्षु–भेदके भेदकी बात आई तब हमारा बोलना बंद हुआ।

प्रभुश्री–क्यों? बोलिये न अब। बोल सकते हो तो बोलो। भेदका भेद कहनेवाला हुआ, वहाँ अन्य जड़ हुआ। 'मैं तो नहीं जानता, पर ज्ञानीने जाना है' ऐसा स्वीकृत कर बात करे तो कर्मबंध नहीं होता। भेदका भेद जानें तो ऐसा होता है। कहना पड़ेगा कि आत्मा है। आत्मा है, नित्य है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है और मोक्षका उपाय है। भेदका भेद तो जानना पड़ेगा।

१. मुमुक्षु–भेदका भेद कैसे समझमें आयेगा?

४. मुमुक्षु–एक बालकके सिरपर दस मनका बोझा रखें तो वह दब ही जाता है, वैसे ही हमारी तो इतनी शक्ति नहीं है। [1]'केई केई मर गया गोता।'

प्रभुश्री–यह तो ज्ञानी जानते हैं।

१. मुमुक्षु–ज्ञानीने जाना, तो अब हम भी उनसे ही जानेंगे, तब तक उठेंगे नहीं, जानकर ही रहेंगे।

प्रभुश्री–आत्मा जानेगा, जड़ तो जानेगा नहीं; वही उत्तर देगा, आत्माके सिवाय कोई उत्तर देनेवाला नहीं। अतः वही करना है। कृपालुदेवने मुझे कहा कि उत्तर मिलेगा। मैं तो विचारमें पड़ गया कि यह क्या कहा! और अंदर उथलपुथल होने लगी कि अब कहाँ जाऊँ? किसके पास जाऊँ? फिर समझमें आया। अतः योग्यताकी कमी है। यह सब आवरण है, इसके हटने पर ही काम होगा। "इसके मिलनेपर, इसको सुननेसे और इसकी श्रद्धा करनेसे ही छूटनेकी बातका आत्मासे गुंजार होगा।" अभी यह देखा नहीं है, नमस्कार हुए नहीं है। सब तूंबीमें कंकड़ोंके समान। अतः कुछ करना पड़ेगा और कुछ है अवश्य। इस जीवको जो विघ्नकारक है उसे दूर करना पड़ेगा।

२. मुमुक्षु–[2]"भारी, पीलो, चीकणो, एक ज कनक अभंग रे।" परंतु पर्यायदृष्टि दूर हो तब न?

प्रभुश्री–पर्यायदृष्टि, सब संबंध है, अतः छोड़े बिना मुक्ति नहीं। करना पड़ेगा।

२. मुमुक्षु–अब तो इसकी दया करें। कृपालुदेवने सौभाग्यभाई पर बहुत दया की है तो मेरी भी यही प्रार्थना है, बापजी!

प्रभुश्री–देर किसकी है? तेरी देरमें देर है। मुझे भी कृपालुदेवने कहा था कि, 'मुनि, तुम्हारी देरमें देर है।" तब मैं तो घबरा गया। तब कृपानाथने कहा, "अब क्यों घबराते हो? अब क्या है? अब क्या बाकी रहा?" कुछ बाकी नहीं रहा। यह तो कालदोष है, यह ऐसा ही है। उसे ही दिन कहेंगे कि जब दिवाली हुई! तो इंकार नहीं किया जा सकता। किसीके रोकनेसे रुका है कि नहीं, हम नहीं आयेंगे? 'सद्धा परम दुल्लहा' यह मेरे या तुम्हारे किसीके हाथमें नहीं है। जिसका काम जिससे हो, वही करेगा, जड़का चेतन नहीं करेगा और चेतनका जड़ नहीं करेगा। मुख्य नींव श्रद्धा–गुरुकी श्रद्धा, आत्माकी श्रद्धा। सब बात इसमें है और यह है हमारा भोजन, चख ले, चढ़ गया हो तो खा ले। बात इतनी चाहिये–

"अधमाधम अधिको पतित, सकल जगतमां हुंय;
ए निश्चय आव्या विना, साधन करशे शुं य?"

कृपालुके वचनको मान्य करें।

"संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे॥"

---

१. खोजते खोजते कई मर गये। २. तौलकी अपेक्षासे भारी, वर्णकी अपेक्षासे पीला और गुणकी अपेक्षासे चिपकनेवाला–ये पर्यायदृष्टिसे सुवर्णके अनेक भेद हैं मगर निश्चयसे सुवर्ण एक ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबका सार विनय, विनय वैरीको भी वशमें करता है। बेटा बनकर खा सकता है, बाप बनकर नहीं खा सकता। आत्मार्थी विनय और लघुताकी बात करता है। विनयको पहले घरमें लायेगा तो काम बनेगा। बड़े करोडपतिमें भी विनय हो तो हम उसके दास हैं। 'लघुता तो मेरे मन मानी' (चिदानंदजी)। मान न हो तो यहीं मोक्ष है। वह छूटा तो काम बना। समाधिमें खड़े बाहुबलिजीको उनकी बहनों—ब्राह्मी-सुंदरी—ने जंगलमें जाकर कहा—[1]'वीरा, गजथकी हेठा ऊतरो।' तब बाहुबलिजी सोचमें पड़ गये और जागृत हुए कि सही बात है, मैं अहंकाररूपी गजपर बैठा हूँ। अब तो मैं छोटे भाइयोंको नमस्कार करने जाऊँ—ऐसा सोचकर पैर उठाया कि तुरत केवलज्ञान हो गया। मात्र इतने ही मानके अहंकारसे केवलज्ञान रुका हुआ था। मान-अहंकारने इस जीवका बुरा किया है। उसे छोड़नेसे ही मुक्ति है।

★
★★

ता. ९-१-३६, सबेरे

मोक्षका अनंत सुख मुनि वीतराग ही भोगते हैं और इसे समकिती जानते हैं। मुनियोंने सभी उपसर्ग सहन किये और समभावके महासुखमें स्थित हुए। क्योंकि अन्य कुछ मेरा नहीं, 'मैं' और 'मेरा' निकल गया। ऐसी वस्तुको किसी विरलेने ही जाना। किसने दिखाई? कौन दिखा सकता है? उसे तो भेदी मिला है। बात जानकर पकड़ ली, अब उसे कुछ फेंक थोड़े ही देगा? इस पर महापुरुषोंने स्तवनमें कहा है—"हुं मारुं हृदयेथी टाळ, परमारथमां पिंड ज गाळ।"[2] तथा इसको (आत्माको) बुलाया। कृपालुदेवने अहमदाबादके राजपर मंदिरमें हमें बुलाया, स्वयं भी सीधे वहाँ पहुँचे। हम तो प्रतीक्षामें ही बैठे थे। बातें करते जाते थे और बातोंमें ही बोध भी होता जाता था। फिर भूमिगृहमें गये और मुनि देवकरणजीको प्रतिमाकी ओर संकेतकर कहा, "देखो, यह आत्मा!" मैं भोला, बोल उठा, "कहाँ है बापजी?" फिर मेरे सामने ही देखते रहे, कुछ हाँ या ना नहीं कहा। मैं तो घबराया कि इन्हें क्या कहना होगा? मुझे विकल्प न रहे अतः बोधमें मुझे बताया कि "मुनि, तुम देखोगे।" अतः जितनी उतावल उतनी कचास है। है अवश्य। चिंता क्यों करते हो?

"धिंग धणी माथे किया रे, कुण गंजे नर खेट?
विमलजिन, दीठां लोयण आज."

जमकर हिम हो गये। जानकार हो गये, भेदी हो गये। किसीने कहा है न—

[3]"रंगरसिया रंगरस बन्यो, मनमोहनजी,
कोई आगळ नवि कहेवाय, मनडुं मोह्युं रे मनमोहनजी,
वेधकता वेधक लहे, मनमोहनजी,
बीजा बेठा वा खाय, मनडुं मोह्युं रे मनमोहनजी."

---

१. भाई! हाथी परसे नीचे उतरो।

२. अहं और ममत्वको हृदयसे निकालकर परमार्थमें जीवन बिता।

३. भावार्थ—(प्रभुभक्तिमें गाया गया है कि—) हमें रंगमें रस आ गया है, हे आनंदरसिक जनो! हमें आनंद आ गया है, मनमोहन प्रभुने हमारा मन मोह लिया है। किसीके आगे बात नहीं कही जा सकती। वेदन करनेवाला ही उस स्थितिका वेदन कर सकता है—लक्ष्यको बींध सकता है। दूसरे तो बैठे हवा खाते हैं (अर्थात् भक्तिवानके सिवाय दूसरेका यह काम नहीं है)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा हुआ! यह भाव है और प्रेमकी वाणी उससे प्रेम करवाती है। योग्यताके अनुसार देखता है। अरे! वाणीमें तो कुछके कुछ भाव हो जाते हैं।

एक व्यक्तिके साथ किसीने दो सौ रुपयेकी शर्त लगाई कि इस कूएको फाँद जाय तो दो सौ रुपये दूँगा। उस व्यक्तिने शर्त मंजूर की, किंतु कूएके पास आता और विचारमें पड़ जाता कि कहीं कूएमें गिर गया तो? यह सोचकर पीछे हट जाता। वहाँ एक दूसरे व्यक्तिने हिंमत दी कि "भले मनुष्य! क्या सोच रहा है? इसमें क्या लाँघना है? लगा छलांग, देखता क्या है?" जैसे ही वह व्यक्ति कूएके पास आया कि तुरत उस दूसरे व्यक्तिने जोरसे साहस बँधाया, "हाँ, शाबास! मार छलांग!" इस प्रकार हिंमतसे वह कूआ लाँघ गया और दो सौ रुपये जीत गया। इस पर हिम्मत दिलानेवाले व्यक्तिने कहा, "भाई! आधे रुपये मुझे मिलने चाहिये, क्योंकि हिंमतका बल तो मेरा था।"

वैसे ही समझ प्राप्त करनी है। समझ आ गई तो काम बन गया। स्वयं किये बिना काम नहीं बनेगा। असंग बनना पड़ेगा, छोड़ना पड़ेगा—उसके बिना मुक्ति नहीं है। अतः सुनकर खड़े हो जाइये। तब कैसी बात बन जायेगी! प्रेमके आगे क्या नियम?

एक अहीर था। जंगलमें गायें चराता था। एक दिन उसने नारदजीको जाते देखा। उन्हें आवाज देकर बुलाया और पूछा कि कहाँ जा रहे हो? उन्होंने कहा, "मैं भगवानके पास जा रहा हूँ।" अहीरने कहा, "प्रभुसे मेरी इतनी बात पूछकर आयेंगे?"

नारदजी—क्या?

अहीर—मैं प्रतिदिन प्रभुको 'ठूमरा' (प्रातःकालका नाश्ता) चढ़ाकर भोजन करता हूँ, वह उनके पास पहुँचता है या नहीं? दूसरे, मुझे प्रभुके दर्शन कब होंगे?

नारदजी—अच्छी बात है, मैं पूछ लूँगा।

फिर नारदजीने भगवानसे वह बात पूछी तो भगवानने कहा कि "ठूमरा मुझे पहुँचता है, पर दर्शन तो वह जिस इमलीके पेड़के नीचे बैठा है, उसके जितने पत्ते हैं उतने युग बीत जाने पर होंगे।" नारदजी तो सोचमें पड़ गये कि यदि मैं यह दर्शनकी बात अहीरको करूँगा तो बिचारेको आघात लगेगा। अतः वापस लौटते हुए अहीरसे मिले बिना ही वे सीधे जाने लगे। किन्तु अहीरने दूरसे उन्हें देख लिया तो आवाज देकर बुलाया और पूछा—"क्या उत्तर है प्रभुका?"

नारदजी—ठूमरा स्वयं आरोगते हैं।

अहीर—और दर्शनके बारेमें क्या कहा?

नारदजी—इस इमलीके पेडके जितने पत्ते हैं उतने युग बीतने पर दर्शन होंगे।

यह सुनकर अहीरको तो आघात लगनेके बदले प्रसन्नता हुई, और प्रेम उमड पड़ा तथा नाचते-कूदते गाने लगा, "अहो! मुझे प्रभुके दर्शन होंगे!"

प्रेमके इतने उल्लाससे प्रभावित होकर प्रभुने तुरंत दर्शन दिये। यह देख नारदजीको आश्चर्य हुआ। फिर धीरेसे प्रभुको कहा, "आप ऐसा ही सच बोलते हैं?"

प्रभु—तुम यह बात नहीं समझोगे। 'भगतको आया प्रेम तो मेरे क्या [1]नेम?'

---

१. नियम, सिद्धांत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसी बात है, अतः अब तेरी देरमें देर है, हो जा तैयार। ज्ञानीके वचन हैं कि श्वासोच्छ्वासमें कोटि कर्म क्षय होते हैं और अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान होता है। यह बात अपने हाथमें है। हाथ पकड़कर वापस छोड़ देता है। अतः हाथ बराबर पकड़ना चाहिये, तब हाथमें आयेंगे। खूबी पकड़नेकी है; ठीकसे पकड़ लिया तो काम बन गया! अब पूछते क्या हो? चोलमजीठका रंग लग गया तो पक्का हो गया। तब आस्रवमें संवर होता है। ऐसी जिसकी खूबी है! बहुत काम होता है। सारा भवसमुद्र तर जाता है। पर कुछ कमी है, इसलिये कहा नहीं जा सकता।

मुमुक्षु—कृपालुदेवने हमें आठ दृष्टिमेंसे एक दृष्टिकी गाथाका अर्थ सुनाया है। अतः अब आप कुछ प्रदान करें।

प्रभुश्री—कृपालु ही प्रदान करेंगे। सब है, मात्र समझकी कचास है। अभी बाल अवस्था है, नहीं तो कुछ कहना नहीं पड़ता। कौन करेगा? स्वयं ही करना पड़ेगा। आत्मा है, नित्य है, कर्त्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है और मोक्षका उपाय है। इतनी स्पष्ट बात कही है फिर भी विष नहीं उतरता; उतरना चाहिये। ये सब संबंध अनंत बार हो चुके हैं वह कहाँ सच है? झूठेको सच माना उससे काम नहीं चलेगा। भले ही कुछ भी हो पर एक सच है उसे मान। अतः गरजमंद होना चाहिये। अभी गरज नहीं जागी है। जो है वह है, जो नहीं है वह नहीं है। जो जैसा है वैसा है। 'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ' अतः जानना पड़ेगा, मानना पड़ेगा और करना पड़ेगा। ये सब मेरे साक्षात् आत्मा है, ऐसी दृष्टि नहीं हुई है। 'मात्र दृष्टिकी भूल है, भूल गये गत अेह।' उतावल करनेसे काम नहीं चलेगा। वे तो कहाँ है? वे खोलकर बतायेंगे। शास्त्रका मर्म तो समझना पड़ेगा और समझने पर ही छुटकारा होगा।

★★★

ता. ९-१-३६, शामको

पत्रांक ७८३मेंसे वाचन—

जीवको सत्पुरुषका योग मिलना तो सर्व कालमें दुर्लभ है, उसमें भी ऐसे दुःषमकालमें तो वह योग क्वचित् ही मिलता है। विरले ही सत्पुरुष विचरते हैं। उस समागमका लाभ अपूर्व है, यों समझकर जीवको मोक्षमार्गकी प्रतीति कर, उस मार्गका निरंतर आराधन करना योग्य है।"

'यह तो मैं जानता हूँ, मैं समझता हूँ, मैंने सुना है' इसने ही बुरा किया है। सच्ची पकड़ हो तो उससे देवगति प्राप्त होती है। इतना शक्तिशाली यह वचन है। यही संग करने जैसा है। 'लिया सो लाभ'। भारी बात कही! पर विश्वास कहाँ है? किसको होता है? उसकी बहुत जरूरत है, बेड़ा पार हो जाय ऐसा है—भले ही पापकर्म करता हो पर सुलटा हो जायेगा, अज्ञान मिटकर ज्ञान हो जायेगा। सच्चा आत्मार्थी तो कभी नहीं भूलेगा। ज्ञानीने देखा वही मुझे मान्य है, वही मेरा आत्मा। कहाँसे मिलेगा? जिसके भाग्य पूर्ण होंगे उसे ही यह बात जमेगी। जैसे मजीठका रंग, फट जाये पर फीका न पड़े, मजीठका रंग जाये नहीं। इतना कहना है कि सबका हित हो। मानना न मानना आपका काम है, हमें तो ज्ञानीका कथन सुनाना है। जहाँ आत्मार्थ होता हो वहाँ आत्मार्थमें समय लगायें, बरछी-भाले बरसते हों तो भी वहाँ जाये;-पर असत्संगमें मोतियोंकी वर्षा हो रही हो तो भी न जायें।

"विरले ही सत्पुरुष विचरते हैं। उस समागमका लाभ अपूर्व है, यों समझकर जीवको मोक्षमार्गकी प्रतीति कर, उस मार्गका निरंतर आराधन करना योग्य है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह ऐसा वैसा कथन नहीं है, समझने योग्य है। कहाँसे हाथ लगे? बड़ी बात है। इतना समझ जाये तो भी कामका है। पुण्यका संचय होता है। यह तो हलवाईकी दुकानकी खाजाकी चूरी। सत्पुरुषके वचनामृत हैं वे सिद्धांतके सारका सार है, चिंतामणिके समान हैं। यदि दो वचन भी ग्रहण हुए तो अनंत लाभ है। जो मानेगा उसका काम बनेगा। एक वचन भी कहाँसे मिलेगा? मिलना बहुत कठिन है। सत्संगका ऐसा योग कहाँसे मिलेगा?

"सहु साधन बंधन थयां, रह्यो न कोई उपाय;
सत्साधन समज्यो नहीं, त्यां बंधन शुं जाय?"

सब बंधनके नाश होनेका अवसर आया है। भिखारीके हाथमें घेबर आया है! अनंतकालसे भटक रहा है। अतः अब समझनेसे काम बनेगा। रुपये पैसे आदिकी दृष्टि है वह तो विष है, अब मेरी यह दृष्टि (आत्माकी), ऐसा होना चाहिये। अपने साथ एक धर्म आयेगा, और कुछ नहीं आयेगा। 'सवणे नाणे विन्नाणे' उसका काम हो गया। ऐसी वैसी बात नहीं है। अनजानमें जा रही है। विश्वास और प्रतीति नहीं आयी। पढ़ता है पर अलौकिक दृष्टि नहीं है, लौकिक ही लौकिक है, उसमें गुरुगम चाहिये। उसीके गुणग्राम, उसीकी स्तुति। एक मनुष्यभव प्राप्त कर करने योग्य क्या है? कहिये।

मुमुक्षु–समकित।

प्रभुश्री–भक्ति श्रेष्ठमें श्रेष्ठ है, ठिकाने पर पहुँचनेका मार्ग है। भक्तिभावसे कल्याण होता है, पर घर बैठे नहीं। यह भाव करें, फिर मौका नहीं आयेगा। अतः भक्ति करनी चाहिये।

★★★

ता. १०-१-३६, सबेरे

गुत्थी सुलझ जाये तो पता लगता है। अतः विचारणीय जरूर है। कौन सुनेगा? यही (आत्मा), अन्य कोई नहीं सुनेगा। जड़को कुछ विचार आयेगा? शांति आयेगी? इसे (आत्माको) निकाल दें तो सब पड़ा रह जायेगा। दिखाई नहीं देता, क्योंकि आँखमें पीलिया है। मैं तो यह समझनेके लिये कहता हूँ। पीलिया हो तो अन्य दिखाई देता है। जिस स्थानमें वैराग्य होना चाहिये उस स्थानमें विकार होता है और इनको (ज्ञानीको) तो विकारके स्थानोंमें वैराग्य होता है। कृपालुदेवने कहा है कि यह सब मनके कारण है। मनके बिना कोई ग्रहण नहीं कर सकता।

१. मुमुक्षु–मन किसके कारण है? आत्माके कारण?

प्रभुश्री–मन वशमें न रहता हो तब भी आत्मामें रहता है।

१. मुमुक्षु–आत्माका उपयोग मनमें जाये तो काम करता है।

प्रभुश्री–मन वचन काया तीन योग हैं। वीतरागके प्रतापसे तपगच्छ, ढुँढिया, वैष्णव कुछ नहीं रहा। यह तो आत्माकी बात है। आत्माके बिना मन कुछ नहीं कर सकता। वह तो जड़ है। चैतन्य है सो चैतन्य है।

१. मुमुक्षु–"चंद्र भूमिको प्रकाशित करता है, उसकी किरणोंकी कांतिके प्रभावसे समस्त भूमि श्वेत हो जाती है, परंतु चंद्र कुछ भूमिरूप किसी कालमें नहीं होता। इस प्रकार समस्त विश्वका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक ऐसा यह आत्मा कभी भी विश्वरूप नहीं होता, सदा-सर्वदा चैतन्यस्वरूप ही रहता है। विश्वमें जीव अभेदता मानता है यही भ्रांति है।"—श्रीमद् राजचंद्र

प्रभुश्री—तेरी नींव कहाँ है? वह अभी हिल रही है।

"छे देहादिथी भिन्न आतमा रे, उपयोगी सदा अविनाश, मूळ०
एम जाणे सद्गुरु-उपदेशथी रे, कह्युं ज्ञान तेनुं नाम खास, मूळ०
जे ज्ञाने करीने जाणियुं रे, तेनी वर्ते छे शुद्ध प्रतीत, मूळ०
कह्युं भगवंते दर्शन तेहने रे, जेनुं बीजुं नाम समकित, मूळ०
जेम आवी प्रतीति जीवनी रे, जाण्यो सर्वेथी भिन्न असंग, मूळ०
तेवो स्थिर स्वभाव ते ऊपजे रे, नाम चारित्र ते अणलिंग, मूळ०"

—श्रीमद् राजचंद्र

सुने बिना, जाने बिना क्या कहेगा? सुना तो हो गया। तुरत खड़ा हो जाये। दीया जले ऐसा है। 'सवणे नाणे विन्नाणे।' यह तो मंत्रके समान है। सामान्य बना दिया है कि इसका तो मुझे पता है, मैं जानता हूँ, मैंने सुना है। यह तो दुर्भाग्य! इस (आत्मा)को तो ज्ञानीने देखा है। अन्यको नहीं कहा जा सकता। जिसने देखा उसने देखा। उसके कारण ही सब कुछ है। 'गोकुल गाँवको पिंड़ो ही न्यारो!' सबसे अलग होना पड़ता है। अतः वह करनेको तैयार हो जा। शस्त्र तेरा अपना ही है, और वह काम आयेगा। खड़ा हो जा। तेरी देरीसे देर है। यह तो कृपालुका पिलाया हुआ पानी है, तब हमें पता लगा। सब योग्यताकी कमी है। सब आवरण हैं और वे तो कर्म हैं—आठ कर्मके बंधन है। अन्य नहीं मनवाना है, अन्यकी बात नहीं करनी है। इतना कहूँगा कि जीवका ही दोष है। यह जो इतना जानते हैं, वह भी उन्हींके प्रतापसे। सबसे अलग है एक समकित, और वही मोक्ष ले जानेवाला है। व्यवहारमें जैसे कोई बड़ा नगरसेठ जैसा व्यक्ति हो और कोई आदमी फाँसी पर लटका हुआ हो, वहाँ उनकी गाड़ी निकली और दर्शन हुए तो तुरत वह फाँसीसे छूट जाता है, ऐसा है। यहाँ तो रुष या तुष कुछ भी नहीं है। तुम्हारी देरमें देर है। हम सब सात साधु थे। जिसके भाग्यमें था उसे मिला। जो जानता है, वही अनुभव करता है। अतः यही कर्तव्य रहा। और यही करना है। अब दूसरे मार्ग पर नहीं जाना है और जा भी कैसे सकते हैं? जा ही नहीं सकते, और दूसरा मार्ग अब है ही कहाँ? सभी बातें बस वे ही हैं। स्थान-स्थान पर आत्मा, आत्मा और आत्मा ही। फिर कुछ और मानो तो तुम जानो। यही कर्तव्य है।

२. मुमुक्षु—कृपालुदेवने सब मुनियोंमेंसे आपको कहा कि, "मुनि! तुम आत्मा देखोगे।" अतः किसी पर कृपा करियेगा।

प्रभुश्री—बात तो सही है! यह बात सबने सुनी और हमने भी सुनी। इस जीवको समझ है और वह इस आत्माको है। ये सब जो यहाँ बैठे हैं, सभी आत्मा ही हैं न? सब सुनते हैं, पर सबका सुनना समान नहीं है। कितना अंतर पड़ा है? अतः उठ, वह तो आना ही चाहिये। इसके सुननेसे, इसको समझनेसे और इसकी श्रद्धा होने पर ही छूटनेकी वार्ताकी आत्मासे झंकार उठेगी। दो अक्षरमें मार्ग है! कोई भाविक आत्मा ये वचन सुनकर प्रतीति और श्रद्धा रखेंगे तो तिलक हो गया। फिर क्या चिंता है? वह भी किसके हाथमें है? अपने। अतः तैयार हो जाओ। यह किसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यके लिये थोड़े ही है? अपने लिये है। छोड़ना तो पड़ेगा। छोड़े बिना मुक्ति नहीं है। अप्रतिबंध और असंग! यही अपना मार्ग है। बाकी अन्य तो कर्म हैं। करना है अपने आत्माके लिये ही।

★
★★

ता. १०-१-३६, शामको

पत्रांक ९३५ का वाचन–

"चक्रवर्तीकी समस्त संपत्तिकी अपेक्षा भी जिसका एक समय मात्र भी विशेष मूल्यवान है ऐसी यह मनुष्यदेह और परमार्थके अनुकूल योग प्राप्त होने पर भी, यदि जन्म-मरणसे रहित परमपदका ध्यान न रहा तो इस मनुष्यदेहमें अधिष्ठित आत्माको अनंतबार धिक्कार हो!

जिन्होंने प्रमादको जीता उन्होंने परमपदको जीत लिया।"

क्या बात आयी? करना, करना और करना। किये बिना नहीं होगा। मनुष्यभवका एक समय चक्रवर्तीकी ऋद्धिसे भी दुर्लभ कहा गया। जन्ममरणसे छूटनेके लिये इस जीवको चेत जाना चाहिये। कुछ समुचित करना पड़ेगा। किये बिना छुटकारा नहीं है। राजाने कितने ही लोगोंको भूमिगृहमें उतारा था, और सब भूखे प्यासे बैठे थे। पर उनमेंसे एक उद्यमी था। उसने उद्यम किया तो ढूँढने पर खानेका डब्बा और पानी मिला। बड़े सेठकी नौकरीमें कई लोग होते हैं, पर सेठने भी तो कुछ किया ही होगा न?

१. मुमुक्षु–आप तथा अनंतज्ञानी जो वचन कहते हैं वे यथातथ्य हैं, जैसे हैं वैसे ही हैं एवं ग्रहण करने योग्य ही हैं। परंतु हृदय उस ओर झुकता नहीं और करनेकी इच्छा नहीं होती इसका क्या कारण है?

प्रभुश्री–सोचिये, कुछ तो चाहिये न?

१. मुमुक्षु–कारण ढूँढते हैं तो मिलता नहीं। और विचार भी चलता नहीं।

प्रभुश्री–विचार ही नहीं हुआ। कुछ है। कुछ भी न करे तो बैठे-बैठे कहाँसे खायेगा? आत्मा न हो तो सब मुर्दे हैं। अतः कुछ है तो सही। माँ-बापके बिना पुत्र कहाँसे आयेगा? माँ है तो पुत्र है। भगवानने पाँच समवाय कारण कहे हैं–कारण, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत और पुरुषार्थ–एक हाथसे ताली नहीं बज सकती, दोनों हाथ चाहिये। देहको सुखाकर, तप-जप कर, जला-जला कर भी अंतमें आत्माका मोक्ष हुआ। वह भी अपने भावसे ही।

१. मुमुक्षु–हाथीके हौदे पर केवलज्ञान हुआ। तो उसने वहाँ क्या किया?

प्रभुश्री–बस यही किया। हाथीके हौदे पर हो गया, वही किया है! वस्त्र मैला हो, पर धोकर आये तो उज्वल हो जाता है। किये बिना कुछ नहीं होता, करना पड़ेगा। एक पहियेसे गाड़ी नहीं चलती, दो पहिये चाहिये। एक पहियेसे चली तो उसका बनानेवाला तो था न? यहाँ बैठे हैं, तो वह भी कुछ करके आये हो तभी न? चित्र-विचित्र सब दिखाई देता है और होता है। पर इसके बिना नहीं। पर है तो सही। भेदका भेद जानना है।

१. मुमुक्षु–परसों आप कहते थे कि भेदका भेद जानना है, पर आज तक हमें तो उसका अंशमात्र भी मालूम नहीं हुआ।

प्रभुश्री–अब क्या समझना है? और भेदका भेद क्या है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. मुमुक्षु—भेदका भेद तो पर्यायदृष्टि दूर हो तब मालूम होगा न?

प्रभुश्री—भेदका भेद कह चुके हैं। यह सब क्या दिखाई दे रहा है? पर्याय। वह भी वस्तु (आत्मा)के बिना दिखाई देगा क्या? भगवानने कहा है कि अरूपी। फिर उसे देख सकेंगे? भले ही कहिए तो सही कि 'चाचा।' दिखाई देंगे? नहीं दिखाई देंगे। इसलिये मात्र एक पहचान कर ले। "एक आत्माको जान, उसकी कर ले पहचान।"

२. मुमुक्षु—दिव्य चक्षु प्रदान करें तब न?

प्रभुश्री—कृपा चाहिये। कल्याण तो कृपालुकी कृपासे होगा। राजाकी करुणादृष्टिसे जैसे सब कमा खाते हैं; वैसे ही जीवको होना चाहिये। कृपादृष्टि प्राप्त करनी चाहिये। वही दृष्टि। कर ले पहचान। 'एक मत आपडी के ऊभे मार्गे तापडी।' चमत्कार है, प्रभु! "आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।" बच्चेसे बोझ नहीं उठाया जा सकता, उसकी शक्तिके अनुसार उठाया जा सकता है। "बाल धूलिघरलीला सरखी, भवचेष्टा इहाँ भासे रे." अतः अबसे एकको ही भजो, तैयार हो जाओ। कमर कस लो। अब क्या है? मुझसे अब अधिक बोला भी नहीं जाता।

१. मुमुक्षु—आपने अभी कहा कि मुझसे बोला भी नहीं जाता; परंतु कृपालुदेव तो लिखते हैं कि निर्ग्रंथ महात्माके दर्शन-समागम मोक्षकी प्रतीति कराते हैं। अतः नहीं बोलने पर भी वह तो ऐसा ही है।

प्रभुश्री—कहूँ? और कहना ही पड़ेगा कि पढ़ा भी नहीं है, समझा भी नहीं है और दर्शन भी नहीं हुआ है। यह कहा, तो उसके लिए कुछ कमी होगी। बहुत भूल है। जैसे बच्चा भूल करता है इतनी भूल आ गई है और भूलमें ही हैं। किसीको चतुर बनने जैसा नहीं है। कृपालुदेवने मुझसे कहा कि देखते रहो न! पर यह जीव अंदर सिर घुसा देता है, तो फिर [1]सींगोंमें उलझेगा ही न?

१. मुमुक्षु—आपको कृपालुदेवने कहा कि देखते रहो, तब आप क्या देखते थे?

प्रभुश्री—जो कहा वह। करना तो चाहिये। इसके सुननेसे, श्रद्धा करनेसे ही छूटनेकी बातकी आत्मासे गुंजार होगी। योग्यताकी कमी है। अतः तैयार हो जाइये।

ता. ११-१-३६, सबेरे

पत्रांक ६४ मेंसे वाचन—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥—श्री हरिभद्राचार्य

---

१. एक सेठ प्रतिदिन दातुन करने चबूतरे पर बैठते। तब भैंसें पानी पीने जाती। उसमेंसे एक भैंसके सींग बहुत गोल थे। उसे देखकर सेठको नित्य विचार होता कि इसमें सिर आ सकता है या नहीं? छह महीने तक नित्य यही विचार होता रहा। फिर एक दिन उसने निश्चय कर लिया कि सिर घुसा कर ही देख लूँ। फिर उठकर सामने गया और उस भैंसके दोनों सींगोंके बीच अपना सिर फँसाया। भैंस घबराकर दौड़ने लगी, सेठ घिसटने लगे। फिर लोगोंने सेठको छुड़ाया और ठपका दिया कि भले आदमी, विचार तो किया होता कि ऐसा करना चाहिये क्या? सेठने कहा कि मैं छह महीनेसे नित्य विचार करता था, विचार करके ही तो किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. मुमुक्षु–तू चाहे जो धर्म मानता हो उसका मुझे पक्षपात नहीं है, पर जिससे आत्मा आत्मभावको प्राप्त करे वह आत्माका धर्म है।

प्रभुश्री–आत्मा है। तैयार हो जाना है। वह पुराना या नया नहीं है, चतुर या पागल नहीं है, और उसे पढ़ाना भी नहीं है। जो माना है उसे छोड़ना है। अब संक्षिप्त गिनती क्या है? है पता? हो तो कहो।

१. मुमुक्षु–समकित प्राप्त करना तथा श्रद्धा करना।

२. मुमुक्षु–"जिस जिस प्रकारसे आत्मा आत्मभावको प्राप्त करता है, वे वे धर्मके प्रकार हैं।" वह कर लेना है। शेष सब पररूप है।

प्रभुश्री–छोड़ना चाहे तो छोड़ा जा सकता है, छोड़े बिना मुक्ति नहीं, छोड़ेंगे तभी काम बनेगा।

२. मुमुक्षु–छूटते तो हैं किन्तु फिर नये बँधते हैं, यही दुःख है। हाथी, स्नान करके शुद्ध होता है और फिर अपने शरीर पर धूल डालकर मैला हो जाता है, वैसा ही है।

प्रभुश्री–ग्रहण करनेसे बंध होता है, उसे छोड़ दे।

३. मुमुक्षु–बसोमें कृपालुदेवको किसी व्यक्तिने कहा कि भगवान, आप हमारे सब कर्म ले लीजिये। तो कृपालुदेवने कहा कि, "हाँ, यदि फिरसे नये न बाँधो तो।" कावियामें भी ऐसा ही हुआ। एकने कहा कि अब मुझे मुक्त करें, तो कृपालुदेवने कहा कि एक ही स्थान पर बैठे रहो और भक्ति करो। बाहर अन्यत्र कहीं मत जाओ, खिड़कीमें भी जाकर न देखो। ऐसा हो सकेगा? तब उस व्यक्तिने कहा, "प्रभु, ऐसा तो कैसे हो सकता है कि कहीं न जायें?" कृपालुदेवने कहा, तब हो चुका!

प्रभुश्री–बंध वह बंध है, मोक्ष वह मोक्ष है। जितना बंध है उसे छोड़ना पड़ेगा। छोड़नेमें देर कैसी? पर फिर ग्रहण न करे तो काम हो जाय। पर पहले तो वह ग्रहण करता है, तब क्या हो सकता है?

२. मुमुक्षु–जिस मान्यतासे कर्म बँधते हैं, वह मान्यता किस प्रकार जाती है? नये कर्म न बँधे वैसी मान्यता जब हो, तब सत्पुरुषका बोध समझमें आता है।

"सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिनस्वरूप."

बाँधना नहीं है फिर भी बँध जाता है।

प्रभुश्री–पकड़ नहीं है, समझ नहीं है। वह हो तो सरल है। जीवको भाव नहीं हुआ है। वह आत्मभावमें हो तो बंध कहाँ है? इसीलिये ज्ञानियोंको बंध नहीं होता। वह कैसे होता होगा? उन्होंने क्या किया? पता हो तो कहो।

१. मुमुक्षु–जगतमें दो प्रकारके जीव हैं–ज्ञानी और अज्ञानी। अब उसमेंसे एक 'अ' को निकाल दें तो ज्ञानी हो जाये।

प्रभुश्री–ऐसा कहीं होता है? ऐसा कहा जाता है? निकालनेका तो 'मैं' और 'मेरा' हैं। उसे निकाला तो अज्ञान गया। उसे नहीं निकाला इसलिये अज्ञान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. मुमुक्षु–अबंधताका हेतु अविषमभाव है। अतः यहाँ भी 'अ' निकाल दें। (मुमुक्षुसे) 'अ' निकाल देनेसे तो यहाँ उलटा अनर्थ हो गया, अर्थात् विषमभाव हुआ।

१. मुमुक्षु–सब जगह 'अ' नहीं निकाला जा सकता। कहीं निकाला जा सकता है, कहीं नहीं, ऐसा व्याकरणका नियम है।

प्रभुश्री–गप्प न मारो। कुछ आश्चर्य है? तुलना नहीं हुई। ज्ञानी कर्म नहीं बाँधते वह क्या है?

१. मुमुक्षु–वहाँ दृष्टि बदलती है। जैसा आप कहते हैं कि,

"होत आसवा परिसवा, नहि इनमें संदेह;
मात्र दृष्टिकी भूल है, भूल गये गत अेह."

प्रभुश्री–अब इसे ही समझिये, दृष्टिकी भूल क्या है?

१. मुमुक्षु–एक कहता है कि 'मेरा है' और दूसरा कहता है कि 'मेरा नहीं किंतु जा रहा है।' इन दोनोंमें कितना अधिक अंतर है?

प्रभुश्री–यही तो कहा न ? तब फिर जहाँ बंधन नहीं वहाँ क्या है?

१. मुमुक्षु–वहाँ शुद्ध आत्मा है, संसार नहीं है। ज्ञानी वहाँ ज्ञानरूपसे ही हैं। बाकी हमें तो कुछ पता नहीं चलता।

२. मुमुक्षु–जब तक कूड़ा है, तब तक उपाधि है और रहेगी। उसे निकालना पड़ेगा। फिर कुछ करनेका नहीं रहता। परभावमें जो अपनत्व हुआ है उसे छोड़ना पड़ेगा। संसाररूपी महलकी नींव परको अपना मानना है और मोक्षमहलकी नींव, स्वको अपना मानना है।

१. मुमुक्षु–प्रभु, अब तो आप कहिये कि क्या शेष रह जाता है?

प्रभुश्री–कुछ तो रहता ही है। 'त्याग करके आ, स्वच्छ बनकर आ' ऐसा कहा तो वह उलटा लेकर आता है। तब क्या हो सकता है? इतना ही छोड़नेसे छुटकारा है। छोड़ना पड़ेगा। वहाँ फिर अन्य क्या कहा जाय? देवकरणजी मुनिको कृपालुदेवने कहा कि देखो, यह आत्मा। तो बीचमें तुरत मैं बोल पड़ा कि कहाँ है प्रभु? फिर कृपालुदेव मेरे सामने देखते ही रहे, कुछ न बोले। फिर मुझे पश्चात्ताप हुआ। फिर बोधमें बताया कि मुनि, तुम आत्मा देखोगे, तब शांति हुई। यह तो उन्हींके संकेतसे समझमें आ सकता है। प्रज्ञावानको समझमें आता है और कहा जाता है। प्रज्ञारहितको क्या कहा जाय?

★★★

ता. ११-१-३६, शामको

पत्रांक ३२१ का वाचन–

"अत्यंत उदास परिणाममें रहे हुए चैतन्यको ज्ञानी प्रवृत्तिमें होने पर भी वैसा ही रखते हैं।"

१. मुमुक्षु–ज्ञानी सर्व अवस्थामें अबंध परिणामी है, वह कैसे?

प्रभुश्री–ज्ञानी ज्ञानमें रहते हैं। अन्य अवस्थामें हों तो भी बंध नहीं होता। शुभ अशुभसे बंध तो होता है परंतु उसमेंसे ज्ञानीको एक भी नहीं हैं। अतः उनको ऐसा क्या आ गया और ऐसा क्या है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. मुमुक्षु—वैद्य विष खा ले तो भी नहीं मरता, अन्य कोई खा ले तो मर जाता है। वैसे ही ज्ञानी प्रवृत्तिमें होने पर भी प्रवृत्तिका जो उपाय निवृत्ति है, उसे वे बराबर जानते हैं; और प्रवृत्ति भी कर्मजनित है, कर्म हैं ऐसी दृढ़ मान्यता है जिससे उन्हें कर्तृत्व नहीं है, अहं-ममत्व नहीं है। इसलिये कर्म चिपकते नहीं, क्योंकि उन्हें रागद्वेष नहीं हैं।

२. मुमुक्षु—ज्ञानी ज्ञानी कहलाते हैं। उन्होंने आत्माको जाना है। अतः आत्माको जाननेसे उपयोगमें रह सकते हैं; परभावके स्वामी नहीं है; इसलिए बंध नहीं है। अतः ज्ञानीकी गति तो ज्ञानी ही जानें। उसका वर्णन शब्दोंमें नहीं हो सकता।

३. मुमुक्षु—अनुभवी पुरुषकी मान्यता दृढ़तापूर्वक बदल गई, अतः वे अन्य कुछ नहीं मानते।

२. मुमुक्षु—सम्यक्त्व आत्माको बंध नहीं होने देता। बंध-मोक्ष परिणाम और भावसे होता है। जो परिणाम बदलकर सुलटे हो गये हैं वे अबंधके कारण हैं।

१. मुमुक्षु—ज्ञानी अपने स्वरूपमें रहते हैं इसलिये मोक्षस्वरूप है, वहाँ बंध नहीं है। जहाँ स्व-स्वरूपसे विमुखता है, वहाँ बंध है।

२. मुमुक्षु—सम्यक्त्वकी अपेक्षासे बंध नहीं है। शेष मोहपरिणामकी अपेक्षासे बंध है। अंत तककी दशा प्राप्त होनेपर फिर बंध नहीं है, अबंध परिणाम है। भाव पर ही परिणामकी धारा है।

प्रभुश्री—भाव तो मुख्य कारण है—जैसा भाव वैसा बंधन। बंधन रागद्वेषसे होता है। हास्य, रति-अरति, नींद-आलस्य ये सब कर्म और बंधन। इसीका नाम पुद्गल रखा गया, उसके पर्याय, परिणामको ग्रहण करना बंध है। ज्ञानीका ऐसा क्या बल है कि वे ग्रहण नहीं करते? क्योंकि वे असंग रहे हैं। अन्य सब कुछ भले ही हो पर मेरा नहीं। मेरा तो एक आत्मा है। वह जाननेवाला है। सब भेदवाला उसे दिखाई देता है, उसे भी जाननेवाला हुआ। कितना माहात्म्य है? यह हुए बिना पता नहीं लगता। बातें बघारनेसे काम नहीं होता।

२. मुमुक्षु— [१]"शास्त्र घणां मति थोडली, मनमोहन मेरे; शिष्ट कहे ते प्रमाण रे, मनमोहन मेरे."
अतः इसमें बुद्धि नहीं पहुँचती।

प्रभुश्री—यह बात विचारणीय है, करने योग्य है। सब ओरसे मुड़ना पड़ेगा। मुड़नेसे ही छुटकारा है।

"अत्यंत उदास परिणाममें रहे हुए चैतन्यको ज्ञानी प्रवृत्तिमें होनेपर भी वैसा ही रखते हैं।"

प्रभुश्री—उन्होंने कर्मको जाना, उससे भिन्न असंग स्वरूप रहकर भेद रखा। बात तो भेदज्ञानकी है।

१. मुमुक्षु—ज्ञानी आत्मामें रहते हैं, मायाको तो एक क्षणमात्रके लिये भी हृदयमें घुसने नहीं देते। मायाका बल भी बहुत है और वह ऐसी है कि उसका महत्व लगे तो समकित भी चला जाय।

२. मुमुक्षु—उदास-परिणाम अबंधताका कारण है।

प्रभुश्री—बात तो की पर उसमें, अन्यमें यदि भाव न हो तो बंध नहीं होता, किन्तु अंतरमें भाव हो तो बंध होता है।

---

१. शास्त्र अनेक है और मति अल्प है, अतः शिष्ट (ज्ञानी) पुरुष जो कहे उसे प्रमाण (मान्य) करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. मुमुक्षु—जो रागयुक्त हो उसे बंध होता है और जो वैराग्यवाला हो वह तो उलटा मुक्त होता है। यह भगवानने शास्त्रका सार कहा है। अतः तू राग मत कर ऐसा समयसारमें एक स्थान पर कहा है।

प्रभुश्री—एकका भाव नहीं है, और एकका भाव है, इसमें अंतर हुआ। भावके बिना बंध नहीं है। क्रिया करे पर बंध तो भावसे होता है। मुख्य बात सब भाव पर है। भगवानने कहा है कि भावसे बंधन होता है।

"भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान।
भावे भावना भाविये, भावे केवलज्ञान॥"

अतः भाव बड़ी वस्तु है। जो जैनधर्मका जानकार हो उसे कहा जाय कि यह धर्म। जीव, अजीव, पुद्गल, पर्याय आदि कहें तो वह समझेगा; अन्यको कहेंगे तो नहीं मानेगा। वैसे ही मान्यतामें अंतर होता है। जिसे पकड़ा है उसे छोड़ना पड़ेगा। सभी जीवमात्रको बंधन मान्यताके अनुसार होता है, ऐसा नक्की हुआ। जैसे भाव परिणाम, वैसा बंधन और वैसी ही लेश्या होती है तथा वैसा ही भव होता है—चार गति लेश्याके अनुसार होती है। चतुर समझदार लोग तो देखते हैं कि इसका ऐसा परिणाम है। चार गतिके परिणाम जान लेते हैं। समझ चाहिये, उसमें कमी है। अन्य सब संबंध है। 'जो जाना वह नहीं जानूँ और जो नहीं जाना वह जानूँ।' यहाँ गुत्थी सुलझ गई। बात मान्यताकी है। अतः 'पवनसे भटकी कोयल' 'पंखीका मेला'। फिर सब अपने अपने मार्ग पर। अकेला आया और अकेला जायेगा, अतः चेत जा।

★★★

ता. १२-१-३६, सबेरे

[यति जिनचंद्र और मुनि मानसागर आये हुये थे। प्रभुश्रीको उनकी पहचान करवाकर नाम बताये]

प्रभुश्री—आत्मा है—इस जीवको पहचान करनी है। जिनचंद्रसे कहिये, आपने वचनामृत पढ़ा है?

जिन०—थोड़ा बहुत पढ़ा है।

मान०—मैंने नहीं पढ़ा।

[पत्रांक ३७ का वांचन]

मुमुक्षु—(मानसागरसे) इसमें क्या समझमें आता है?

मान०—जगतमें अनंत बार भ्रमण किया, पर शुद्ध सम्यक्दृष्टि नहीं हुई, जिससे परिभ्रमण हो रहा है।

मुमुक्षु—अनादिकालसे वह दृष्टि क्यों प्राप्त नहीं हुई? कारणसे कार्य होता है और व्रत-प्रत्याख्यान सब छूटनेके लिये करते हैं, फिर क्या रह गया?

मान०—संसारकी वासना अनंत कालसे लगी हुई है, उसे दूर करनेका तो यह प्रयत्न है। पर कर्मकी लहर आती है उसका ध्यान नहीं रहता। वह रहे तो कुछ हो सकता है। बाह्यभाव छोड़कर अंतरभावमें आये तो हो जाय।

मुमुक्षु—फिर कारणकी आराधनामें भूल क्या है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मान०—शुद्ध दृष्टि नहीं आई। वह आनेका कारण तो होना चाहिये; यह महाराजसे (प्रभुश्रीसे) पूछिये।

[प्रभुश्रीको कम सुनाई देता था अतः यह बात सुनाई नहीं दी।]

प्रभुश्री—साधुजीको यों पूछिये कि अनंतबार साधुता आई है और व्रत-प्रत्याख्यान किये हैं, तब फिर क्या रह गया?

मान०—द्रव्यसे तो साधुता अनंतबार आ चुकी है।

प्रभुश्री—जीवको शेष क्या रहा?

मान०—पौद्गलिक सुखके लिये साधुताको अंगीकार किया कि सुख-साता मिलेगी, मान-कीर्ति मिलेगी। ऐसे भावके बदले शुद्ध साधुत्व आवे और बाह्यभावमें तल्लीन न हो तो कल्याण होता है। अभव्यको समकित नहीं होता, फिर भी वह साधुत्व लेता है और ऐसी उत्कृष्ट क्रिया करता है कि नौवें ग्रैवेयक तक चला जाता है; किन्तु वह सब अन्यको प्रसन्न करनेके लिये है; अपने आत्माके लिये कुछ नहीं किया। उसने आत्माके स्वरूपको पहचाना नहीं है।

प्रभुश्री— +"जिहाँ लगे आतमद्रव्यनुं लक्षण नवि जाण्युं;
तिहाँ लगे गुणठाणुं भलुं किम आवे ताण्युं?"

मुमुक्षु—भूल जो होती है वह आत्मतत्त्व जाननेमें ही होती है। सब दर्शन आत्माकी भिन्न भिन्न कल्पना करते हैं। जैसे कि क्षणिकवादी, शून्यतावादी, क्रियावादी, जड़वादी आदि।

प्रभुश्री—जो मोक्ष गये वे तो आत्माको जानकर गये। वे किस प्रकार गये? और क्या किया? इस जीवने अनंतवार साधुता, जप, तप, क्रिया आदि किये। "वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।" इतना किया, तो अब कमी क्या रही?

मान०—आत्माको पहचाना नहीं।

प्रभुश्री—आत्माकी पहचान कैसे हो?

मान०—पहचाननेके लिये तो दीक्षा ली है और प्रयत्न चालू है।

प्रभुश्री—तो अब कुछ कमी रहती है?

मुमुक्षु—(जिनचंद्रजीसे) आपको कुछ कहना है?

जिन०—मुझे तो सुननेकी इच्छा रहती है।

प्रभुश्री—यह तो ठीक है, पर कुछ सुना हो तो कहना चाहिये। जैसा हो वैसा कहें, इसमें क्या हर्ज है? बात तो करनी चाहिये।

जिन०—ऐसा लगता है कि इस जीवको मुख्य आठ आत्मा हैं, दूसरी ओर अठारह पापस्थानक हैं। पापस्थानकमें जब तक मिथ्यादर्शनशल्यकी प्रकृति उदयमें रहती है तब तक प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध होता है और वह आत्माके साथ जुड़ी हुई है। मिथ्यात्वको उपशांत या क्षय कर यदि आत्माको पहचाननेका प्रयत्न किया जाय तो काम बन जाता है।

+ जब तक आत्मद्रव्यका लक्षण नहीं जाना अर्थात् आत्माकी पहचान नहीं हुई तब तक समकितकी भूमिकावाला गुणस्थानक जबरजस्तीसे कैसे आयेगा?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री—इन्होंने बता दिया : 'मिथ्यात्व'। अब इसका प्रतिपक्षी कौन है और क्या है?

[जिनचंद्रजीसे पूछा, वहाँ बीचमें ही]

मुमुक्षु—प्रतिपक्षी समकित है।

प्रभुश्री—इनको कहने दो। बीचमें होशियारी क्यों दिखाते हो? अनंतकालसे समकित प्राप्त हुआ होगा या नहीं?

जिन०—भव्यको कभी हुआ होगा। सन्मुखता दिखायी दे तब विश्वासरूपमें आया होगा। मोक्षकी इच्छा हो तब अनुमान होता है कि आया होगा।

प्रभुश्री—सज्झायमें आता है कि, 'समकित नवि लह्युं रे, ए तो रूल्यो चतुर्गतिमांही।' इसमें समकितका इन्कार क्यों किया गया है?

जिन०—इस गाथाके शब्द सामुदायिक है। समकित प्राप्त किया हुआ भी अर्धपुद्गल परावर्तन तक भटक सकता है, इसमें कुछ एकांत नहीं है; जैसे श्रेणिक राजा।

प्रभुश्री—इस जीवका बुरा करनेवाले राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। वीतराग मार्ग सम है। हमें तो सत्यके इच्छुक होना चाहिये।

जीव और भावकी बात है। समकित असंख्यात बार आता है और जाता है; पर जब यथातथ्य आता है तब मोक्ष होता है, उसके बिना नहीं होता। अभव्यकी बात नहीं है, भव्यकी है। और समकित आया तो मोक्ष ले जायेगा। यह तो बड़ी बात है। यह जीव क्रिया करता है, उसका फल मिलता है; जिससे नव ग्रैवेयक तथा बारहवें देवलोक तक जाता है, यह भी जीवको ही होता है, और मोक्ष भी जीवको ही होता है। इस जीवका बुरा संकल्प-विकल्पसे और परभावसे होता है। स्वभावमें रहे तो ऐसा नहीं होता। ज्ञानी कहते हैं कि यदि इस भवमें आत्मभावमें रहे तो अनेक कर्म क्षय हो जाते हैं। जीवमात्रको सब बंधन कर्मके हैं। जितना छोड़ा जा सके उतना श्रेष्ठ, वह कर्तव्य है। अच्छे-बुरेका तो फल है; पर बंधनसे मुक्त होनेके सब उपाय करें। अन्य भव खड़े हो जायें ऐसा न करें। समाधि प्राप्त होती हो, बंधन रहित होता हो वह करें। हम छूटनेके लिये बैठे हैं, अतः बंधन हो वैसा न करें। जगत तो ऐसा कहता है कि यह अच्छा है, यह बुरा है। उस ओर कुछ नहीं देखना है। अच्छा-बुरा कहनेसे कुछ वैसा होता नहीं। किंतु अपने भावका फल है। जो यहाँ बैठे हैं वे सब आत्मा हैं। उन्हें संकल्प-विकल्प तो होता है। कुछ तो ध्यान, वैराग्य, निवृत्ति आदिमें होते हैं और कुछ विकारमें होते हैं। अच्छा-बुरा कहलाये जानेका फल नहीं हैं, किन्तु अपने भावका फल है। अन्यके कहनेसे कुछ नहीं होता, स्वयं कुछ करे तो होता है। आप कल्पना न करें। मर! अच्छा कहे, बुरा कहे, उसकी आपको आवश्यकता नहीं है। हमें तो आत्माका, ज्ञान-दर्शन-चारित्रका काम है। जैसे शुभ-अशुभ भाव होते हैं वैसे ही शुद्ध भाव भी होता है। अतः अपने भावका विचार करें। अपने भावका ही फल है।

मुमुक्षु—यह संसार स्वार्थमय है। यदि जीव जगतकी इच्छानुसार प्रवृत्ति करे तो उसे मान देकर हाथीपर बिठा दे और यदि उसके विरुद्ध प्रवृत्ति करे और उसके स्वार्थकी पूर्ति न हो तो गधे पर बिठा दे। अतः श्रेष्ठ पुरुष जगतकी चिंता नहीं करते।

प्रभुश्री—जिसने जैसा किया, वैसा हुआ। जिस दिशामें देखा वह दिशा दिखायी दी। अतः करे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका फल है। भगवानका वचन है कि जो करेगा वह भोगेगा, अन्य कोई नहीं भोगेगा–पिता करेगा तो पिता भोगेगा, पुत्र करेगा तो पुत्र भोगेगा, अन्य नहीं भोगेगा। सभी बाँधकर आये हैं, वह भोग रहे हैं। अपने लिये करना है। कोई कुछ भी बोले, उसका हर्षशोक न करें। भले ही पार्श्वनाथ कहें, ऋषभदेव कहें, शांतिनाथ कहें, यह तो नाम मात्र है, पर हैं तो सब आत्मा। उसने किया उसको फल, हमने किया हमें फल। करेगा सो भोगेगा, यह तो अपने हाथमें है। वीतराग मार्ग अपूर्व है। करेगा सो पायेगा। किसीको कहने जैसा नहीं है। सबको चेतने जैसा है अतः चेत जाइये। समझकर शांत हो जाइये। समझनेका लक्ष्य रखें।

★
★ ★

ता. १२-१-३६, शामको

पत्रांक ८४३ का वाचन–

"श्रीमान् वीतराग भगवानोंने जिसका अर्थ निश्चित किया है, ऐसा, अचिंत्य चिंतामणिस्वरूप, परम हितकारी, परम अद्भुत, सर्व दुःखोंका निःसंशय आत्यंतिक क्षय करनेवाला, परम अमृतस्वरूप सर्वोत्कृष्ट शाश्वत धर्म जयवंत रहे, त्रिकाल जयवंत रहे।"

अलौकिक वाणी है, लौकिक नहीं। जीवने वीतराग मार्गका माहात्म्य लौकिकमें निकाल दिया है। भव्य जीवको महिमा समझकर धारण करना चाहिये। समकितकी गिनती है। जब तक मिथ्यात्व है, तब तक जीवको अज्ञान है। आत्मज्ञानियोंने जाना है आत्माको। अन्य कोई स्थान अच्छा नहीं है। अब वृद्धावस्था हो गई है। चारों ओर दुःख और वेदनी है। अन्य उसमें परिणत हो जाते हैं। पर इसे दुःख है? वेदनी है? जैसा है वैसा है। ज्ञानीने जाना है। अन्य सब साधन संसारमें बंधनरूप है। उससे छूटनेके लिये ज्ञानीकी दृष्टिसे आत्मस्वभाव, आत्माका विचार करें। ये सब यहाँ बैठे हैं, सबको भाव और उपयोग है। परभावमें प्रवृत्ति करनेसे बंधन होता है। स्वभाव है वह आत्मा है, उसके उपयोगसे पुण्य बंध होता है तथा निर्जरा होती है। उसमें लूटमलूट करना है। अच्छा, बुरा, बनिया, ब्राह्मण, पाटीदार, स्त्री-पुरुष यह नहीं देखना है, सब आत्मा हैं। अब तो यहाँसे छूटना है। संबंध और संयोग है। वह आत्मा नहीं है। आत्माको परभावसे छुड़वाना है। वह कैसे हो? जैसे भी हो सके प्रतिबंध कम करें। सबके साथ चार भावनासे प्रवृत्ति करें–मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावना। जीव सज्झायमें, ज्ञानध्यानमें, धर्मध्यान, चर्चा, वाचन, चिंतनमें रहे तो उत्तम है। इस कालमें सबसे श्रेष्ठमें श्रेष्ठ सत्संग है। वहाँ धर्मकी बात होती है। अन्य कथा-वार्ता करें तो पाप लगता है। सत्संगमें आत्माकी बात है और वहीं उपयोग जाता है। वही कर्तव्य है। सत्पुरुष कहते हैं कि गुणगान तो ज्ञानीका, वीतराग मार्गका करना चाहिये। अन्य चार कथा–स्त्रीकथा, भोजनकथा, राजकथा, देशकथा–से बंधन होता है। आत्मधर्मकी बात, ज्ञान, ध्यान, वैराग्यकी बातें जीवको हितकारी हैं और उनसे पुण्यबंध होता है।

"उन श्रीमान अनंत चतुष्टयस्थित भगवानका और उस जयवंत धर्मका आश्रय सदैव कर्तव्य है।"

देखिये, अन्य बात नहीं आयी। इस मायाके स्वरूपसे बंधन होता है। अतः सावधान रहें। अनमोल क्षण बीत रही है। मनुष्यभव दुर्लभ है। प्राण लिये या ले लेगा यों हो रहा है। वेदनीय और अशाता आ गई तो फिर कुछ नहीं होगा, यह जीव जाननेवाला है। अतः पहचान कर लें। पहचानसे ही छुटकारा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जिन्हें दूसरी कोई सामर्थ्य नहीं, ऐसे अबुध एवं अशक्त मनुष्योंने भी उस आश्रयके बलसे परम सुखहेतु अद्‌भुत फलको प्राप्त किया है, प्राप्त करते हैं और प्राप्त करेंगे। इसलिये निश्चय और आश्रय ही कर्तव्य है, अधीरतासे खेद कर्तव्य नहीं है।"

ऐसे भगवानके गुणगान करनेसे, भक्तिभावनासे, ऐसे लोग भी सम्यक्त्व प्राप्त करते हैं और क्रमशः मुक्त होते हैं। अन्य बातें छोड़ दें; उस घाटसे पार नहीं उतरेगा। संपूर्ण लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। किसी पुण्यसे मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, तो सुन रहे हैं। पशु यह नहीं कर सकता। अतः इस भवमें जैसे भी हो सके कर लेना चाहिये। 'लिया सो लाभ' [1]"आजनो लहावो लीजिये रे, काल कोणे दीठी छे?" 'समयं गोयम मा पमाए' एक यही शरण, भावना आत्मभावकी की तो केवलज्ञान प्रकट हो जायेगा। प्रमादको छोड़कर अब लक्ष्यमें लेना न भूले। प्रारब्ध विघ्नकर्ता है—खाना, पीना, बोलना, चलना आदि—ये तो आठ कर्म हैं उन्हें आत्मा मत समझ। उनसे छूटनेकी भावना करे तो बंधनसे मुक्ति होती है। 'शरीर छूट जायेगा,' 'मैं मर जाऊँगा' ऐसा भय लगता है, पर अनंतबार देह छूटने पर भी जन्म-मरणसे नहीं छूटा। वह कैसे छूटे? समकितसे। पहले इसे प्राप्त किया तो अच्छी गति मिली। फिर नरक तिर्यंचमें जाना न पड़े, यह कोई साधारण कमाई नहीं है। अतः गफलतमें मत रह। 'मेरा मेरा' करके मर रहा है। गुरु-चेला, हाट-हवेली, धन-दौलत, बाल-बच्चे ये तेरे नहीं है, सबको छोड़ना पड़ेगा। अतः 'मेरा, मेरा' कर रहा है उसका त्याग कर। तेरा तो आत्मा। वह तो ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय है। उसीकी भावना कर। भगवानने कहा है कि जब तक साता है, दुःख-व्याधि-वेदना नहीं है और सुख है तब तक धर्म कर ले, फिर नहीं कर पायेगा। बाजी हाथमेंसे निकल गयी तो फिर कुछ नहीं हो सकेगा। जब तक मनुष्यभव और साता है तब तक कर ले। सब चित्रविचित्र है। वेदना होती है, दुःख-व्याधि होती है। अतः यह मनुष्यभव प्राप्त कर आत्माके संबंधमें कुछ बात सुन, कान लगा; अन्य बातें तो बहुत हुई हैं, पर आत्माके संबंधमें नहीं हुई, वह कर। महापुरुषोंने यह उपाय बताया वह अमृतके समान है। 'मेरा मेरा' करनेसे अपना नहीं होगा, यथातथ्य एक ही बात माननी है। माने तो काम बन जाये। मेरा-तेरा, अच्छा-बुरा, वाद-विवाद कुछ भी नहीं। भाव निर्मल कर। अन्यभाव मत आने दे। 'पवनसे भटकी कोयल', 'पंखीका मेला' यों चला जायेगा, देर नहीं लगेगी। बीता हुआ अवसर हाथ नहीं आयेगा। यही कर्तव्य है।

अब वृद्धावस्था हुई। ८२-८३ वर्ष हो गये। शरीरके साँधे दुःखते हैं, सुना नहीं जाता, वेदना सहन नहीं होती, बड़ी कठिनाईसे यहाँ तक आ पाते हैं। जब तक चलता है, तब तक चलाते हैं, दिन बिताने हैं। बात करनी है समभावकी! वहाँ राग-द्वेष नहीं आते। संसारकी ओर दृष्टि नहीं करनी है। उसे देखनेसे पार नहीं पड़ेगा। जहाँ संकल्प-विकल्प हैं वहाँ दुःख है, उससे बंधन होता है।

मुमुक्षु— "ऊपजे मोहविकल्पथी, समस्त आ संसार;
अंतर्मुख अवलोकतां, विलय थतां नहि वार."

प्रभुश्री—इसके इच्छुक बनें, इसे ही देखें। आत्मा न हो तो मुर्दा है। जो जानता है उसका उपयोग, विचार हो तो भावना हुई। जैसे भाव होंगे वैसा फल मिलेगा। कुछ नहीं है। सबसे

१. आजका लाभ ले लीजिये, कल क्या होगा? उसका कुछ पता नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमायाचना करें। किसीका दोष न देखें। सभी अच्छे हैं। हमें क्या करना है? आत्मभाव।

* **"मा चिट्ठह, मा जंपह, मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो,**
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं."

आत्मभावमें रहा तो यही कर्त्तव्य है और कामका है।

★★

ता. १३-१-३६, सबेरे

आठवीं दृष्टिके विषयमें चर्चा–

१. मुमुक्षु–इस दृष्टिमें बोध और ध्यान अग्निके समान होते हैं। अपने कर्म तो जला ही दें, पर समस्त संसारके कर्म उसमें होम दिये जायें तो जलाकर भस्म कर डाले, ऐसा निर्मल और बलवान ध्यान होता है। यद्यपि ऐसा होता नहीं है, क्योंकि कोई किसीके कर्म लेता-देता नहीं, सब अपने अपने कर्म स्वयं ही भोगते हैं। यहाँ तो अपने कर्म जलाकर केवलज्ञान होता है।

प्रभुश्री–समाधिकी बात कुछ ऐसी वैसी है? पर जीवने इसे लौकिकमें निकाल दिया है। अजब गजब बात है! इस जीवने तो संसारका ही माहात्म्य जाना है। यह तो सब आवरण है। वह बीचमें आया है। उन सबसे मुक्त एक चैतन्य, आत्मा! भारी बात की है।

१. मुमुक्षु–इस आठवीं दृष्टिवालेकी तो बात ही अलग है और परिणामकी गति ही भिन्न है! इस दृष्टिकी बात हमसे तो नहीं हो सकती। वह तो अनुभवी ही जानता है।

२. मुमुक्षु–अनंतकालसे अनंत जीव मोहमें परिभ्रमण करते हैं; जिसे वे हटा नहीं सके उसे यहाँ क्षीण कर दिया है।

प्रभुश्री–'बात है माननेकी।' सत्को मानें। उसे माननेसे कुछ बदलाव आता है और काम होता है।

२. मुमुक्षु–आठ कर्ममें मोहनीयकर्म बलवान है, वह कर्मपुद्गल ग्रहण कर आठोंको बाँट देता है। वही बंध करता है और कर्म बंधन कराता है। अन्य किसीमें ऐसा बल नहीं है। मोहनीय कर्मके दो भेद हैं–दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। जहाँ विपरीत मान्यता होती है वह दर्शनमोह। सत्पुरुषकी संगतिसे वह मान्यता बदल जाय तो सब कुछ बदल जाता है।

१. मुमुक्षु–यथार्थ मान्यता हो वहाँ समकित होता है। और वह प्राप्त हुआ तो केवलज्ञानको आना ही पड़ता है। सत्पुरुषके योगसे वस्तुको वस्तुस्वरूप माने तो काम बन गया।

प्रभुश्री–देखिये, इस पूरे शरीरमें वायु है और दुःख है। यह जाना। यह सब वृद्धावस्थाकी बात है। क्या जड़ इन बातोंको सुनेगा? वह तो वही। क्या उसे मान्य नहीं करना चाहिये? इतना-सा करनेका काम सो नहीं किया। जितने ज्ञानी हो गये हैं, उन्होंने यह किया है। पहचानना है और मानना है। व्यवहारमें भी कहते हैं कि इतना-सा मान ले भाई! तो सब अच्छा होगा। तब कहता है कि बहुत अच्छा, मानूँगा। वैसे ही इसे भी मानना है। 'बात है माननेकी'। इसमें गहन रहस्य है।

---

* हे विवेकी जनों! कायासे कुछ भी चेष्टा न करो, वचनसे कुछ भी उच्चारण न करो, मनसे कुछ भी चिंतन न करो, जिससे तीनों योग स्थिर हों। आत्मा आत्मस्वरूपमें स्थिर हो, रमण करे वही निश्चयसे परम उत्कृष्ट ध्यान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यभवका रहस्य नहीं जाना तो पशु समान है। भगवानसे पूछा कि मैं भव्य हूँ या अभव्य? उत्तर मिला कि भव्य हो। तुम क्यों बोले? हो चुका। वह तो भव्य ही है। यह कितनी सामग्री है? पशु कुछ सुनेगा? किसकी सब सत्ता है? वह तो उसकी ही है। बोलिये : "चंद्र भूमिको प्रकाशित करता है....."

१. मुमुक्षु—"चंद्र भूमिको प्रकाशित करता है, उसकी किरणोंकी कांतिके प्रभावसे समस्त भूमि श्वेत हो जाती है, पर चंद्र किसी भी समय भूमिरूप नहीं होता, वैसे ही समस्त विश्वका प्रकाशक आत्मा कभी भी विश्वरूप नहीं होता, सदा सर्वदा चैतन्यस्वरूप ही रहता है। जीव विश्वमें अभेदता मानता है यही भ्रांति है।"

प्रभुश्री—यह कैसी बात की कि जमकर हिम हो जाये! किसीके पास ऐसी सामग्री है? पदार्थ मात्र जड़ और उसके भी असंख्यात भेद कहे हैं, पर वे भी जड़के ही है। लौकिक दृष्टिसे मानता है पर अलौकिक दृष्टिसे नहीं देखा। यहाँ मार्ग भूल गया है, इसका पता है? सरलता। वह हो तो मोक्ष आता है; ऐसा मार्ग है। काम हो जायेगा! देर कितनी है? बस तुम्हारी देरमें देर है।

१. मुमुक्षु—हमें कैसे तैयार होना चाहिये?

प्रभुश्री—कृपालुदेवको हमने यह बात पूछी थी, तो उन्होंने कहा, 'अब क्या है?' थप्पड़ मारा! मैं तो शांत हो गया कि वाह! प्रभु वाह! बहुत आनंद आया। यह जीव सुना हुआ, पढ़ा हुआ सब भूल जाता है, पर वह तो सब आवरण। ज्ञान है वह तो आत्मा है, उसे भूलना नहीं चाहिये। शेष सब तो छोड़ना ही है। ये सब यहाँ बैठे हैं। उन्हें कहेंगे कि आत्माको छोड़कर आइये, तो छोड़ सकेंगे? नहीं छोड़ सकते। शेष सब तो आवरणके ताले हैं, और यदि चाबी हाथ आ जाय तो ताले खुलेंगे। व्यवहारमें बड़े सेठकी पहचान हो तो अड़चन नहीं आती। वैसे ही सच्चा स्वामी करना है।

१. मुमुक्षु—हमारा स्वामी तो बड़ा है।

प्रभुश्री—*"धिंग धणी माथे किया रे, कुण गंजे नर खेट? विमल०"

यह बात कौन मानता है? मर्म न समझे तो तुंबीमें कंकर जैसा है, यह तो पातालका पानी; वह निकल जाय तो काम बन जाय। यही तो कर्त्तव्य है। ऐसा अवसर फिर कहाँ मिलेगा? "आजनो लहावो लीजिये रे काल कोणे दीठी छे?" पगली पगली बातें हैं और कहेंगे कि इसमें क्या? पर ऐसा नहीं करना है। बात सच्ची है, रामका बाण वापस नहीं लौटता, वैसी। इधर उधर कुछ देखना नहीं है और घबराना नहीं है। संसारमें मृत्युसे बुरा कुछ है? पर उसे तो महोत्सव मान लिया! कितना पलट गया? आप चाहे जहाँ जाये, पर आत्मा हो तो क्या लेना है? नगरमें घूमने जायें तो यह लेंगे, वह लेंगे, पर यहाँ तो आत्मा। वह हो तो अन्यकी क्या आवश्यकता है? "जहां लगी आतमा तत्त्व चिन्यो नहीं, तहां लगी साधना सर्व झूठी।" (मुनि मानसागरजीको) कहिये मुनि, कैसी बात है? ठीक है न? कुछ अन्य हो तो कहिये।

मान०—ठीक है, बराबर है।

प्रभुश्री— "जिहाँ लगे आतम द्रव्यनुं लक्षण नवि जाण्युं,
तिहाँ लगे गुणठाणुं भलुं केम आवे ताण्युं?"

---

* भावार्थ—समर्थ स्वामी सिरपर है फिर क्या चिंता?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगदृष्टि सब बोलते हैं, किन्तु बोलने-बोलनेमें भी भेद है। उसमें मिश्रण चाहिये। किसी वस्तुमें ऐसा मिश्रण डालते हैं कि जिससे बल-वीर्य सब बढ़ जाता है। वैसी यह वस्तु है। क्या वस्तु है? किसके गीत गाने हैं? महापुरुषोंने तो वह बात कर दिखाई है, पर उसमें भावना करना और मानना तो आपका काम है। बात समझने पर ही छुटकारा है। अन्य जो समझा है वह नहीं। यहाँ अन्य अलग ही समझना है। सद्गुरुकी आज्ञा और जिनदशा। आपकी देरमें देर है। यह सच है। वचन वापस नहीं लौटता। जिसे केवलज्ञान हुआ उसने जाना, वैसे ही यह वचन है।

१. मुमुक्षु—'हमारी देरमें देर है' यह तो सच है, पर हमें किस प्रकार तैयार होना चाहिये?

प्रभुश्री—व्यवस्थापक है न? कैसी बात करता है?

१. मुमुक्षु—हमारी शक्ति नहीं है। कृपालुदेव ही तैयार करते हैं, पर हमें क्या करना चाहिये?

प्रभुश्री—इस प्रश्नका उत्तर सुगम है—बात मान्यताकी है। उसकी देरमें देर है। तैयार होना चाहिये न? व्यवहारमें जैसे किसीसे कहा हो कि जाना है, अतः तैयार होकर आना। फिर आकर कहे कि मैं तो अपनी गठरी भूल गया। फिर लेने जाये तो रह जाये। वैसे ही यहाँ भी बराबर तैयार होकर आये तो काम बन जाय, नहीं तो फिर राम राम! ऐसा ही है; विचार करने योग्य है। मात्र पढ़ना नहीं है, विचार करेंगे तो भीतरसे मार्ग मिलेगा। कृपालुदेव कहते थे कि विचार करो; किन्तु और कुछ नहीं कहते थे। अतः वह तो वही है।

१. मुमुक्षु—इसीमें माहात्म्य है!

प्रभुश्री—भूतभाई जाने! कौन मानेगा? पर ज्ञानीकी गति तो ज्ञानी ही जानते हैं।

★★★

ता. १३-१-३६, शामको

पत्रांक ८१९ का वाचन :

ॐ

"खेद न करते हुए शूरवीरता ग्रहण करके ज्ञानीके मार्ग पर चलनेसे मोक्षपट्टन सुलभ ही है।"

१. मुमुक्षु—इस जीवको आर्त-रौद्र ध्यान रहता है, वही खेद है। संसारके अनेक कारणोंको लेकर खेद हो जाता है, वह आर्त्तध्यान है। ज्ञानी उससे बचाते हैं।

प्रभुश्री—वेदनाका दुःख कुछ कम है? कोई वैद्य भी उस दुःखको मिटानेमें समर्थ नहीं है।

१. मुमुक्षु—वह तो कर्मका रोग है! ज्ञानी महा वैद्य हैं, वे ही मिटायेंगे।

प्रभुश्री—समझनेकी कमी है, पकड़नेकी भी। कोई दृष्टि हाथ लगी तो उसे पकड़ लेना चाहिये, छोड़ना नहीं चाहिये। दुःख व्याधि आदि देहमें होती है। अनेक प्रकारके रोग होते हैं जिन्हें मिटानेमें कोई समर्थ नहीं। कहिये, कोई मिटायेगा?

२. मुमुक्षु—ज्ञानी कर्मरोग मिटायेंगे। रोग दो प्रकारके हैं—द्रव्यरोग और भावरोग। द्रव्यरोग शरीरमें होते हैं, भावरोग मनका है, वह तो अंत तक है। उसके गये बिना द्रव्यरोगकी शक्ति कम नहीं होती और उसके जानेके बाद द्रव्यरोगकी शक्ति टिक नहीं सकती। भावरोगको मिटानेवाले ज्ञानी है। अतः आप ही इसे मिटा सकते हैं, अन्य नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री—बुखार आये, सिरदर्द हो, पेटमें दर्द हो, पीड़ा हो, नींद न आये, यह सब शरीरके संबंधसे होता है। फिर यदि वह भाव मिट गया तो सब मिट गया। वह कोई कह सकेगा? कोई नहीं कहेगा। जाननेवाला कहता है। जाननेवाला हो और भान न हो तो नहीं बता सकता। उसे कौन कहेगा? एक ज्ञानी; उससे कुछ छिपा नहीं है। वह कहाँ है? कहिये।

३. मुमुक्षु—जहाँ ज्ञान है वहाँ ज्ञानी है।

प्रभुश्री—ज्ञानी वेदन करते हैं ज्ञानमें। ज्ञान कहाँ है? ज्ञानीमें।

"मा चिट्ठह, मा जंपह, मा चिंतह किं वि जेण होई थिरो,
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं."

वहाँ है; अन्य कोई स्थानमें नहीं। इस जीव मात्रको क्या ढूँढना है? इस पर विचार करें।

१. मुमुक्षु— "रे आत्म तारो, आत्म तारो, शीघ्र एने ओळखो;
सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो, आ वचनने हृदये लखो."

उसे ही पहचानना है।

प्रभुश्री—यह बात तो सही है न?

२. मुमुक्षु—बात तो सही है, पर पहले तो सत्पुरुषको ढूँढना पड़ेगा। उनके बिना काम बनेगा नहीं।

१. मुमुक्षु—उपरोक्त गाथामें यह सब स्पष्ट किया है।

"हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?
कोना संबंधे वळगणा छे? राखुं के ए परहरुं?
एना विचार विवेकपूर्वक शांतभावे जो कर्या;
तो सर्व आत्मिक ज्ञाननां सिद्धांततत्त्व अनुभव्यां.
ते प्राप्त करवा वचन कोनुं सत्य केवळ मानवुं?
निर्दोष नरनुं कथन मानो 'तेह' जेणे अनुभव्युं."

वे वचन मानें। क्या मानें? तो कहते हैं—

"रे! आत्म तारो, आत्म तारो, शीघ्र एने ओळखो."

कैसे पहचानें?

"सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो, आ वचनने हृदये लखो."

३. मुमुक्षु—पहले 'नमुत्थुणं' के पाठमें 'जीवदयाणं' ऐसा बोलते थे। पर 'जीवका दाता' अब मिला है तब समझमें आता है। शुरूआत तो दातासे हुई।

प्रभुश्री—'बहु पुण्यकेरा' क्या यह पद आश्चर्यकारक नहीं है? उसकी समझ देखिये! उसका उल्लास देखिये! उसकी बात देखिये! कैसा मर्म! क्या समझने जैसा नहीं? वहाँ निर्जरा हुई। इस जीवको वह करने योग्य है। वस्तुके माहात्म्यको नहीं समझा। प्रत्येक वचन, एकेक वचन माहात्म्यवाला है। 'अमूल्य तत्त्वविचार'की पाँच गाथाका माहात्म्य मर्मवाला है। पहले हम सब बोलते और लोग वाह! वाह! करते, पर कुछ नहीं, तुंबीमें कंकड़ जैसा था। न लेना, न देना, उलटे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहाँ पहुँच जाते? मानमें। देवकरणजी जैसोंको मानका पोषण होता कि 'मेरा कंठ कितना सुरीला है? मेरे जैसा कौन बोल या गा सकता है? उससे कितनी सारी शोभा होती है?' लो, यह बिगड़ा और दूसरा ही कुछ बीचमें घुस गया। जो समझना चाहिये वह नहीं समझ सके। कई बार बोलते पर कुछ लक्ष्य नहीं।

फिर जब कृपालुदेव मिले और कहा कि इसका मर्म क्या है, इस पर विचार करो। तब समझमें आया। उनके कहनेसे वह शक्कर जैसा मीठा लगा। कहनेवाला कौन है? समझानेवाला कौन है? और क्या है? इसका पता नहीं है। जैसे गहराईमेंसे ग्रहण किया हो, वैसा कहनेवाला नहीं मिलेगा। पाँच गाथाका अर्थ और उसमें किया हुआ सब समास, विस्तार ऐसा वैसा नहीं है, महान है हाँ!

"मारग साचा मिल गया, छूट गये संदेह;
होता सो तो जल गया, भिन्न किया निज देह."

मात्र बोल लिया, पर मर्म समझमें न आये तो क्या कामका? ऐसा बोलनेवाला और कहनेवाला कौन है? यह तो रंकके हाथमें रत्न आ गया। इसे लौकिकमें न गिने, अलौकिक दृष्टिसे ग्रहण करें।

हम फेणाव गये थे। वहाँ छोटालालभाई थे, उनके भाई आदि थे। उनसे मिलना हुआ। अंबालालभाई (खंभातके मुमुक्षु) छोटालालभाईके पास कभी कभी जाते, कृपालुदेवकी बातें कहते और समझाते; माननेको कहते; पर समझमें न आता और मान्य न होता। फिर हमसे मिलना हुआ। हम पर विश्वास होनेसे हमसे पूछा, "अंबालालभाई कहते हैं कि इसे मानो और ज्ञानीपुरुषके वचन पर लक्ष्य दो। क्या यह सही है?" तब मैने कहा कि "भाई! हम भूले हैं।" हम उस समय स्थानकवासी वेषमें थे, और हम पर विश्वास था इसलिये पूछा, "ऐसा क्यों कहते हैं? हम भूले ऐसा क्यों कह रहे हैं?" हमने कहा, "भाई! यह मार्ग भिन्न है! सच्चा है, आत्मज्ञानीका है और समझने योग्य है। अतः वे जैसा कहते हैं, वैसा करना चाहिये।" मुझ पर विश्वास होनेसे मान गये। मैंने उन्हें इस 'अमूल्य तत्त्वविचार'की पाँच गाथा कंठस्थ करनेको कहा, और उन्होंने कर ली तथा लक्ष्यपूर्वक बोलते रहते। शरीर छूटा तब तक यही भाव रहा। अच्छी गति हुई। दूसरे कर्म मिट गये और गति सुधर गई। जीवको ऐसी वस्तुकी कुछ भी गिनती नहीं और उस ओर ध्यान नहीं।

इस बातका आशय क्या है? एक श्रद्धा। जीवको श्रेष्ठमें श्रेष्ठ करने योग्य इतना है—प्रतीति, विश्वास और श्रद्धा। किसी स्वरूप-प्राप्त पुरुषने कुछ कहा हो तो उसे गले उतार दें, रोमरोममें प्रवाहित कर लें, यही मोक्षका मार्ग है। मेरी तो यही समझ है कि जो मैंने कह बतायी है।

ऐसा है! अतः इसे लक्ष्यमें रखें। इस बार तो कृपालुदेवने स्थान-स्थान पर रत्न बिछा दिये हैं! अतः क्या कहूँ? उसीमें आनंद मनाते हैं। कृपानाथने हमसे कहा था कि हमें कहीं पूछने जाना नहीं है। अतः कुछ विचार या चिंता करने जैसा नहीं रहा। फिकरके तो फाँके मार लिये हैं। मुझे कह दिया कि "अब क्या है?" क्योंकि पहचान करा दी और स्मृति दिलाई, बता दिया।

"धिंग धणी माथे किया रे, कुण गंजे नर खेट; विमल जिन दीठां लोयण आज."

भीमसेनने अभिमन्युको जीतने भेजा, कहा कि तू कोठे जीतने जा, मैं अभी आया। अभिमन्यु सभी कोठे जीत गया। पर गोबर-मिट्टीका कोठा था वहाँ उलझनमें पड़ गया और भीमसेनको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुलाया, पर उसके आनेमें देर हो गई। अभिमन्यु इतना बलवान था, उसके लिये गोबर-मिट्टीके कोठेमेंसे निकलनेमें क्या कठिनाई थी? पर नहीं निकल सका। निकलनेका भेद नहीं जानता था जिससे उलझनमें पड़ गया कि इसे कैसे जीतें; और वह निकल नहीं सका। इसी प्रकार कुछ सच्ची समझ चाहिये, और भी कुछ चाहिये। बनियोंके लिये कहा जाता है कि 'पन्ना फिरे और सोना झरे'; ढूँढा, पृष्ठ पलटे और खातोंकी जाँच की तो कुछ मिला, हाथ लगा; यदि बहियाँ रख छोड़े और उनकी जाँच न करे तो कुछ हाथ लगेगा? नहीं लगेगा। वैसे ही इस जीवको विचार करना है, अतः खड़ा हो जा। यह अवसर निकल गया तो फिर कुछ नहीं हो सकेगा।

ता. १४-१-३६, सबेरे

१. मुमुक्षु—चौथी दृष्टिमें ऐसा कहा है कि 'धर्म क्षमादिक पण मटेजी, प्रगट्ये धर्मसंन्यास' और आठवीं दृष्टिमें ऐसा कहा है कि 'चंदनगंध समान क्षमा इहां, वासकने न गवेषेजी' तो यह कैसे है? और क्या समझें?

२. मुमुक्षु—दशलक्षण यतिधर्म और क्षमा इन दोनोंके लक्षण समझमें आ जायें तो प्रश्न ही न रहे।

प्रभुश्री—तीन गुप्ति और दश यति धर्म ये कहाँ होते हैं?

२. मुमुक्षु—क्रोध न हो तो क्षमा गुण प्रकट होता है। सम्यगदर्शन ज्ञान और चारित्र आत्मामें हैं। पर क्षमा आत्माका मूल गुण नहीं है, यही यहाँ बताना है। धर्मसंन्यास योग है। इच्छायोग, शास्त्रयोग और सामर्थ्ययोग यों तीन योग हैं। धर्म-संन्यास सामर्थ्ययोगमें समाहित है। संपूर्ण धर्मसंन्यास तो सयोगी केवली तक है। जितना आत्मिक गुण प्रकटा उतनी क्षमा है। पूरी क्षमा नहीं आयी। आत्माका गुण तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र है। यहाँ क्षमा मूलभूत गुण नहीं है।

३. मुमुक्षु—आत्माका उपयोग तीन प्रकारसे है—शुभ, अशुभ और शुद्ध। शुद्धमें तो आत्मामें रमणता है। मुझे क्रोध नहीं करना है, क्षमा रखनी है, ऐसा करना है, वैसा करना है, यह तो शुभ हुआ। क्षमा धर्म तो मुनिका धर्म है। शुद्ध उपयोगमें तो आत्माकी स्थिरता है। मुनिको शुद्धभावका लक्ष्य होता है इसलिये शुभ (क्षमा) भी कार्यकारी है। संसारमें शुभ कहा जाता है वह नहीं। शुद्धके लक्ष्यपूर्वक शुभ कार्यकारी है। अतः उपचारसे सच्चा क्षमा धर्म वहाँ नहीं है ऐसा कहा है। आत्माके गुण दो प्रकारके हैं—अनुजीवी और प्रतिजीवी। अब सिद्धके आठ गुण। उसमेंसे चार—अनंत ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुख—ये अनुजीवी गुण हुए। अन्य चार—सूक्ष्मत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधता और अवगाहना—ये चार प्रतिजीवी। एक वस्तुमेंसे दाग निकल गया अर्थात् उसमें दाग था, पर मूल वस्तुके स्वभावमें दाग नहीं था। यहाँ दो अपेक्षासे कथन है—एक स्वभावकी और दूसरी आवरणकी।

२. मुमुक्षु—केवलीमें संज्वलन कषाय नहीं होनेसे क्षमा कही गयी, पर क्षमा आत्माका गुण नहीं है। परिणामकी बात तो आत्मा जानता है और भोगता है। पर बात गुण और व्यवहार धर्मकी हो रही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री–व्यवहारको भी लेना पड़ेगा।

३. मुमुक्षु–क्षमा दो प्रकारकी कही है–व्यवहारधर्म क्षमा और आत्माके परिणामरूप क्षमा। मोहनीयकर्मके क्षयसे जितने गुण प्रकट होते हैं, वे आत्माके स्वभावरूप ही हैं। यहाँ स्वभावकी क्षमाको कहना है, दूसरी व्यवहार क्षमा।

प्रभुश्री–मूल वस्तुको तोड़ फोड़कर देखना है। क्या यह ठीक है? ऐसा क्यों नहीं होता? इसे किस प्रकार समझें? क्या निकाल देना है? (मुमुक्षुको) क्यों, कुछ समझमें आता है?

४. मुमुक्षु–मुझे बराबर समझमें नहीं आता।

प्रभुश्री–जैसा है वैसा समझना चाहिये। क्षमाका नाम बड़ा है। वस्तुगत वस्तु है। दूसरे 'क्षमा' कहते हैं वह क्षमा नहीं। शुभ, अशुभ और शुद्ध ये भेद डाले हैं न? अतः इस बात पर बराबर विचार कर लक्ष्यमें लेनी होगी।

१. मुमुक्षु–मूल वस्तुके बलके बिना क्षमा नहीं होती। समभावके कारण क्षमा आदि सब गुण कहे गये।

प्रभुश्री–समभाव आत्मामें है। शुभ और शुद्धमें भूमि-आकाशका अंतर है! उसे माने बिना छुटकारा नहीं यह तो सच है न?

४. मुमुक्षु–मुझे समझमें नहीं बैठता। और बैठे बिना कैसे माना जाय? शास्त्रपद्धतिके अनुसार जम नहीं रहा है।

प्रभुश्री–वीतरागने जो कहा है वह सत् है। मूल वस्तु, बात क्या चल रही है? धर्मसंन्यास आत्मा है। 'धर्म क्षमादिक पण मटे' कहा जिससे धर्म मिट गया क्या? नहीं। क्षायोपशमिक क्षमादिक गुणधर्म मिटे, क्योंकि अब ध्यान प्रारंभ हुआ, उसमें अन्य ध्यान छोड़ दिये, पर शुक्लध्यान लिया। अन्य सब निकाल दिये। दशा वर्धमान हुई अर्थात् अन्य हो गया। अर्थात् ध्यान अंतिम ही होता है। धर्मसंन्याससे क्षायिक भावरूप क्षमाधर्म तो स्वयं आत्मा हुआ।

२. मुमुक्षु–सिद्ध भगवानको जो ध्यान होता है उसमें तो अन्य कोई ध्यान रहा नहीं। चारों ध्यान मिट गये–आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल।

प्रभुश्री– "ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहाँ समजवुं तेह;
त्यां त्यां ते ते आचरे, आत्मार्थी जन अेह."

मुख्य बात क्या है, इसे देखना पड़ेगा। उसका नाम लिया तो स्वीकार करना पड़ेगा। ये साधु बन बैठे हैं और व्यवहार व्यवहार कर रहे हैं। एक गिरधरभाई थे, वे कहते, "क्या ऐसा नहीं? वैसा नहीं? ऐसे होता है!" वाह! तेरा समकित! सच है भाई, पर मनमें कहा, "वाह! मूर्ख! यह क्या है? जो करना है उसे ही छोड़ रहा है।" यह बात तो अपूर्व है! जीवको रुचि करनी चाहिये। समझमें अंतर हो तो भी मान्यता तो स्वामीकी है। अतः उस मान्यतासे मान। मान्यता तो काम बना देती है। 'सद्धा परम दुल्लहा'। कोई पूछे, आपके कोई स्वामी है? तो कहे, हाँ है। तब चिंता नहीं रहती। सिर पर स्वामी तो रखना चाहिये।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १४-१-३६, शामको

'उपदेशछाया' मेंसे वाचन--

"वेदांतमें इस कालमें चरमशरीरी कहा है। जिनेन्द्रके अभिप्रायके अनुसार भी इस कालमें एकावतारी जीव होता है। यह कुछ मामूली बात नहीं है क्योंकि इसके बाद कुछ मोक्ष होनेमें अधिक देर नहीं है। जरा कुछ बाकी रहा हो, रहा है वह फिर सहजमें चला जाता है। ऐसे पुरुषकी दशा, वृत्तियाँ कैसी होती है? अनादिकी बहुतसी वृत्तियाँ शांत हो गयी होती हैं; और इतनी अधिक शांत हो गयी होती हैं कि रागद्वेष सब नष्ट होने योग्य हो जाते हैं, उपशांत हो जाते हैं।"

१. मुमुक्षु—इस कालमें मोक्ष नहीं है, ऐसा कहकर सबको शिथिल कर दिया है। उसका यह भेद तोड़ दिया है। वेदांतमें चरमशरीरी और यहाँ एकावतारी कहा अर्थात् सहजमें मोक्ष हो सकता है।

प्रभुश्री—पाँच समवाय कारण कहे गये हैं—काल, स्वभाव, नियति, पूर्वकृत और पुरुषार्थ। ये हों तो कितने ही भारी कर्म क्यों न हों, सब उड़ जाते हैं और मोक्ष हो जाता है। यह मनुष्यभव प्राप्त कर यही ढूँढना है। व्यवहारमें आमदनी करने आदि प्रत्येक प्रकारके मार्ग ढूँढते हैं, वह सब करनेका ज्ञानीपुरुषने नहीं कहा है। वह तो सब कर्म और पूर्वका संचय है। अभी जो मनुष्यभव है वह भी मेहमानके समान। अतः समझें। कौवे-कुत्ते नहीं समझेंगे। पूर्वकृत और पुरुषार्थकी सामग्री चाहिये। वह हो तो समझमें आ सकता है। कहनेका तात्पर्य यह कि कल सबेरे ही सब मिट जायेगा। वह तो जैसा होना है वैसा होगा ही। आप सबको यहाँ कौन लाया है? वह तो वही। समझमें आयेगा तब आत्महित होगा। 'मैं' और 'मेरा' अभी मिटा नहीं हैं, वही किया करता है। व्यापार-धंधेकी तो दौड़ लगाते हैं, पर सब कुछ यहीं छोड़कर जाना है। फिर यह बाजी हाथ नहीं लगेगी। यह कितनी अनुकूल सामग्री आ मिली है? अतः ऐसी अनुकूलताके समय भूलना नहीं चाहिये। भरत, चेत! भरतराजाने एक व्यक्तिको यही कार्य सौंप रखा था कि वह नित्य सुबहमें अभिवादनके समय आकर कहे कि भरत चेत! ऐसे ज्ञाता थे, जानकार थे, फिर भी चेतनेका निमित्त रख छोड़ा था। शरीरमें असाता बहुत है और उसको अच्छा-बुरा होनेसे उसे ही अपना माननेकी आदत हो गई है। यह मेरा हाथ, यह मेरा पाँव, सब मेरा, मेरा। किन्तु अभी साता-असाता भोग रहा है आत्मा। यह बात मान्य नहीं हुई। आत्मा कैसा है? किसीने निश्चित किया है? जगतमें माता-पिता, कुटुंब-परिवार, धन-दौलत मिले तो उससे क्या बढ़ा? इसको जाननेवाला कोई है, उसे जाना क्या? एकावतारीपना कहा इससे आशा जागृत हुई कि है। अतः विशेषरूपसे यह दौड़ करनेकी है। दौड़ता तो है पर अन्य दिशामें, जिससे दौड़ना व्यर्थ हो जाता है। जो नहीं करना है वह करता है और करनेका धरा रह जाता है। अन्यत्र दौड़ लगाता है, वह सब व्यर्थ है। प्रारब्धमें हो वह मिलता है, फिर भी उसी ओर दौड़ता है। जो करना है उसका तो मूलसे ही पता नहीं है। अन्य सब मानता है, वह तो मिथ्या है। जिसे ढूँढना है वह क्या है? "हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?" इस पर विचार करे तो काम बन जाय। अन्य सब तो यहीं पड़ा रहेगा, कुछ साथ नहीं चलेगा। छोड़ना पड़ेगा। कर्मकी गति विचित्र है। इस कालमें काम कर लेना हो तो हृदयमें इतना लिख रखें—'सत्संग और बोध'। वह करते रहना चाहिये। कुछ न सुनाई देता हो, पागलसी बातें हो पर वह सत्संग है। अनादिकालसे आत्माको आत्माके रूपमें जाना नहीं है। ज्ञानीने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाना है अतः उनके सिवाय अन्य कोई कहनेमें समर्थ नहीं है। इस भवमें उसका इच्छुक हो और शोधक बने तो धन्य भाग्य! प्रत्यक्ष पुरुषका कथन और जिसने उन्हें जाना है, जिसको वे मिले हैं उसकी बात मुझे मान्य है, वही मान्यता है। मुझे तो कोई मिले नहीं और कुछ पता भी नहीं, अतः उनकी मान्यताके अनुसार मुझे मान्य है, वही कर्तव्य है और उससे काम होगा वही हितकारी होगा। भले ही जानता हो, या न जानता हो, पर उसकी मान्यता कहाँ मिलेगी? और उसका अंतःकरण भी कहाँ प्राप्त होगा? यही एक धारणा सच्चे पुरुषकी रहे तो काम बन जाय। इस भवमें यही प्राप्त करना है। पहचान कर ले, पहचान हो गई तो जीत गये। यह ऐसी-वैसी बात नहीं है, महा दुर्लभ है। करना चाहिये।

मुमुक्षु–पिताने धन गाड़कर रखा हो और लड़केको बताया हो, उसे इसका पता भी हो और आज्ञा भी दे रखी हो तो वही बता सकता है। अतः यहाँ तो सिर देकर काम करने जैसा है। जरा भी चिंता नहीं और पूर्ण शांति है। अतः उससे मिले तो छुटकारा हो सकता है। अपने आप पता नहीं लगेगा। मिलना चाहिये।

प्रभुश्री–यह पढ़ें–

"हे गौतम! उस काल और उस समयमें छद्मस्थ अवस्थामें, मैं एकादश वर्षकी पर्यायमें, [1]षष्ठ भक्तसे षष्ठ भक्त ग्रहण करके सावधानतासे, निरंतर तपश्चर्या और संयमसे आत्मताकी भावना करते हुए, [2]पूर्वानुपूर्वीसे चलते हुए, एक गाँवसे दूसरे गाँवमें जाते हुए, जहाँ सुषुमारपुर नगर, जहाँ अशोक वनखंड उद्यान, जहाँ अशोकवर पादप, जहाँ पृथ्वीशिलापट्ट था, वहाँ आया; आकर अशोकवर पादपके नीचे, पृथ्वीशिलापट्ट पर [3]अष्टमभक्त ग्रहण करके, दोनों पैरोंको संकुचित करके, करोंको लम्बे करके, एक पुद्गलमें दृष्टिको स्थिर करके, अनिमेष नयनसे, शरीरको जरा नीचे आगे झुकाकर, योगकी समाधिसे, सर्व इन्द्रियोंको गुप्त करके, एक रात्रिकी महा प्रतिमा धारण करके, विचरता था (चमर)"

प्रभुश्री–लिखा हुआ पढ़ लिया, पर भेदीके पाससे मर्म खुल जाय ऐसा होना चाहिये। इसमेंसे स्वयं कुछ पकड़ बैठे अपनी कल्पनासे, तो वह नहीं, पर वे कहते हैं वही सत्य है, ऐसा निश्चय करे तो काम बनता है।

१. मुमुक्षु–इसमें कुछ समझमें नहीं आता। समझने जाते हैं तो सब कल्पना ही होती है।

प्रभुश्री–हम भी ईडर गये थे और वहाँ सब कल्पना की थी, वह शिला और वह पहाड़ी भी देखी। उस पर सुनहरी रेत थी, नदी थी, दिगंबर मुनियोंकी छतरियाँ थीं। वह सब देखकर आश्चर्य हुआ था।

१. मुमुक्षु–कृपालुदेवने आपको बताया था कि वे महावीर स्वामीके साथ वहाँ विचरे थे। वह सिद्धशिला, वह पुढवी शिला आदि भी आपको बतायी थी। आप तो इस संबंधमें जानते हैं, अतः आप ही कहिये।

प्रभुश्री–जितना कहा जा सकता है उतना कहा। जो स्थान देखा था उसके बारेमें बता दिया।

---

१. षष्ठभक्त=(छट्ठ) तीन दिनका उपवास (तेला)=एक साथ छह समय भोजन न करनेका व्रत।

२. पूर्वानुपूर्वीसे=पूर्व क्रमानुसार, नियमानुसार।

३. अष्टमभक्त (भुक्ति)=अट्ठम, आठ समयका भोजन त्याग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिलाको ही पुढवी शिला कहा गया है। वहाँ विचरण भी किया था। पर यहाँ तो आत्माको जानना है। अन्य किसीसे हल निकलनेवाला नहीं है।

१. मुमुक्षु—इसीलिये तो कल्पना होती है और अशातना भी हो सकती है।

प्रभुश्री—एक वचन ऐसा आया है—

"वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो;
अब क्यौं न बिचारत है मनसें; कछु और रहा उन साधनसें;
बिन सद्गुरु कोय न भेद लहे; मुख आगल है कह बात कहे?"

उनकी 'हाँ' में 'हाँ' और उनकी 'ना' में 'ना', ऐसा विश्वास होना चाहिये।

१. मुमुक्षु—ऐसा ही है।

प्रभुश्री—यदि ऐसा हुआ होता तो फिर क्या शेष रहा? क्या ऐसा आत्मा देखोगे?

१. मुमुक्षु—जैसा है वैसा बतायेंगे।

प्रभुश्री—ऐसा बताते हैं, यह है आत्मा।

'पर्यायदृष्टि न दीजिये, एक ज कनक अभंग रे.'

यही है अतः अब सावधान हो जायें, चेत जायें। बहुत कल्पना और घबराहट है, पर अंत नहीं आया।

१. मुमुक्षु—पर्यायदृष्टि ऐसी है कि सातवें गोबर-मिट्टीके कोठेमें अभिमन्यु मारा गया। पता न होनेसे वहाँ मारा गया, वैसे ही जीव फँस जाते हैं। अतः पर्यायदृष्टि कैसे छूटे?

प्रभुश्री—वज्र जैसे छह कोठे जीते पर हार न मानी, किंतु गोबर-मिट्टीके कोठेमें हार खानी पड़ी। वहाँका अनजान! अब हमें अनजान नहीं रहना है। जानकार बनना है, बात मान्यताकी है।

२. मुमुक्षु—महावीर भगवानने कृपालुदेवको बताया और कृपालुदेवने आपको बताया तो इस मर्मको आपके सिवाय कोई बता नहीं सकता। ईडरमें छतरियाँ, प्रतिमा देखीं, पर इन सबका भावार्थ और मर्म तो आपके पास रहा।

प्रभुश्री—ज्ञानीके पास। हमें तो जो बताया वही मानना और जानना है। मानना अपने हाथमें है। जिस-किसी दिन वह भावसे होगा। भावकी आवश्यकता है। किसका काम है? आपकी देरीसे देर है। पकड़ आनी चाहिये।

१ मुमुक्षु—आप कहते हैं कि अनादिकालसे अज्ञान है और अनजान है। क्या किया जाय इसका पता नहीं है। पर मानना तो यही है—जो कह रहे हैं वही; किन्तु वह तो माना नहीं जाता। और कुछ आता भी नहीं। इसका क्या कारण है?

प्रभुश्री—अनादिसे परभावमें है, उसे पलटकर स्वभावमें लाना है। ऐसे किये बिना छुटकारा नहीं है। वह किसका काम है? 'मानो, मानो' कहनेसे होगा? अतः तू स्वयं सच्चा बन जा।

१. मुमुक्षु—योग्य (स्वच्छ) हो जाये तो कृपालुदेव तैयार है। 'जिन थई जिनने जे आराधे, ते सही जिनवर होवे रे'। पर योग्य कैसे होना यह प्रश्न है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्रीजी–आप चतुर हैं, समझदार है, अतः समझिये। जनकविदेहीके पास शुकदेवजी आये तो कहा 'स्वच्छ होकर आ।' फिर वे नहा धोकर आये तब भी कहा कि 'अभी और स्वच्छ होकर आ.' यों सात बार आये फिर भी कहा कि 'अभी स्वच्छ होकर आ।' वैसे ही यही समझेगा और यही करेगा। मंगल कार्य किसे प्रिय नहीं होता? अतः तैयार हो जाइये। सामग्री तो चाहिये, और वह सामग्री तो हाथमें है।

★★★

ता. १५-१-३६, सबेरे
[आठवीं दृष्टि]

इसमें इतना सारा बल है? वह कोई ऐसी-वैसी वस्तु है? आत्मा अनंत सत्ताका स्वामी है और वही करेगा। उसे जाने तो दीपक और समकित कहलाता है और जाने बिना तो सब कच्चा है। यह जो जीव इच्छुक होगा उसे होगा। इतने अमूल्य वचन कानमें भी कहाँसे पड़े? आत्मा अनंत शक्तिका स्वामी है, केवलज्ञानवाला है! ऐसा है वह। कोटि कर्म क्षय हो जाते हैं। यह उसीकी शक्ति है। कृपालुदेवका वचन हमें याद है। हमसे कहा–अब क्या है? अब अन्य बातें किसलिये करनी हैं? अतः अब जागिये, जागृत होनेसे ही छुटकारा है। वस्तुका विचार नहीं हुआ। महान् पुण्यकी वृद्धि होने पर ही वह विचार होता है। अनंतकालसे आवरणके कारण भान भूला है। आत्माकी सत्ता तो सबके पास है, पर यदि रुकावट है तो वह आवरणके कारण।

१. मुमुक्षु–सब बोझ उतारकर हलका हो जाये तब न? ऐसा आप ही कहते हैं।

प्रभुश्री–मुझे लगता है कि कुछ धक्का लगना चाहिये।

१. मुमुक्षु–हम तो उसीकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

प्रभुश्री–केवलीने, ज्ञानीने धक्का मारा तभी काम हुआ।

१. मुमुक्षु–"प्रवचन अंजन जो सद्गुरु करे देखे परम निधान, जिनेश्वर।" है अवश्य। उसे ही ढूँढ निकालना है।

प्रभुश्री–"व्यवहारसें देव जिन, निहचेसें है आप।" प्रतीति और विश्वासकी कमी है। क्यों है न? बस एक यही ऐसा नहीं हुआ, हो जाय तो काम बन जाय। ज्ञानी इस प्रवचन अंजनको कुछ भिन्न प्रकारसे ही भोगते हैं, अन्यके समान नहीं। कुछ रंग बदलता अवश्य है। अच्छी हवामें बैठे हों तो अच्छी हवा आती है। धन्यभाग्य कि ऐसा वीतरागका मार्ग हाथ लगा! [1]"अपूर्व वाणी ताहरी, अमृत सरखी सार' ऐसा पद है न?

१. मुमुक्षु– [2]"अनंतकाल हुं आथड्यो, न मळ्या गुरु शुद्ध संत;
दुषम काळे तुं मळ्यो, राज नाम भगवंत."

प्रभुश्री–यह काल है, तो क्या आत्माने ऐसा निश्चय किया है कि न मिलूँ? नहीं मिलेगा ऐसा कुछ है क्या? मिल सकता है, पर तैयार होने पर।

---

१. तेरी अपूर्व वाणी अमृत समान साररूप है। २. अनंतकालसे मैं संसारमें भटकता रहा हूँ, किन्तु कोई सद्गुरुकी प्राप्ति नहीं हुई। पूर्व पुण्यसे इस दुषम हुंडावसर्पिणीकालमें तू 'राज' नामका भगवान मिला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. मुमुक्षु—आपको तो साक्षात् प्रभु मिले!

प्रभुश्री—बस इतनी ही आवश्यकता है—मिलनेकी, पहचाननेकी, बोधकी और सत्संगकी। इसी बातके इच्छुक, इच्छुक और इच्छुक होना है। सत्संग किया है? आपकी देरीसे देर है, केवलज्ञान हुआ उसका अन्य किसीको पता लगा? नहीं। वह तो उसे ही, स्वयंको पता चला। अब भावना तो उसीकी करनी चाहिये, अन्यकी नहीं। कृपालुदेवने मुझे लिखकर बताया, 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे।' यों थोड़ेमें बहुत मर्म समझमें आ जाता है। पर यह निर्णय करे तो दशा सुधरती है। आत्माके सिवाय कोई अन्य निर्णय कर सकता है? यह तो वही बोध देगा और उसीका काम है, अन्यका नहीं। अन्य अनेक भव प्राप्त किये, रिद्धिसिद्धि देवलोक आदि प्राप्त किये। अनेक-अनेक भव प्राप्त किये पर एक आत्माको नहीं जाना। उसे जाननेकी आवश्यकता है। आठवीं दृष्टिकी शक्ति महान है। महान है यह दृष्टि!

१. मुमुक्षु—यह तो यह स्थान भी महान है। संप्रदायमें थे तब पढ़ते तो थे, पर ऐसी समझ नहीं थी।

प्रभुश्री—पहले तो हम भी पढ़ते थे, पर अंजन लगाया तब समझमें आया।

१. मुमुक्षु—जिनके द्वारा लिखी गयी हो, वे या वैसे प्रत्यक्ष ज्ञानी हों, तब उनके सन्मुख वह समझमें आये ऐसा है।

प्रभुश्री—यही बात है। एक आत्मा न हो तो कुछ काम हो सकता है? कुछ काममें आता है? कुछ भी नहीं। इस पर कुछ गहन विचार करना चाहिये। क्या कहें? 'कह्या विना बने न कछु, जो कहिये तो लज्जइये।'

३. मुमुक्षु—पहले संप्रदायमें भी यही पढ़ते थे, तब क्या आत्मा नहीं था? वहाँ रस क्यों नहीं आता था? और अब रस क्यों आता है?

प्रभुश्री—किसीको बुखार आता हो और बीमार हो, तब कुछ नहीं भाता, रुचि नहीं होती, अच्छा नहीं लगता और खाया नहीं जाता। किन्तु दूजा नीरोग हो उसे कहे तो? दोनोंमें अंतर पड़ गया न? उसके खाने, पीने, स्वभाव, रुचिमें अंतर पड़ा न? वैसे ही है। यह तो उसे पता नहीं लगा है, सामने परदा आ गया है, आवरण आ गया है। बीचमेंसे आवरणरूपी परदा दूर हो तब पता लगता है। देखिये न, इस देहमें बैठा है तो सब है और कैसा लगता है! और वह न हो तो? वर्ण, रस, गंध, सब बदल जाते हैं। वह निकल जाय तो मरण हो गया कहते हैं और जला डालते हैं।

१. मुमुक्षु—तब तो घरके लोग ही जल्दबाजी मचाते हैं कि इसे शीघ्र ले जाओ और तुरत जला डालो।

प्रभुश्री—यह तो कोई अमूल्य बात है। इसे जानने और देखनेकी बात होगी तब तो अजब-गजब लगेगा।

१. मुमुक्षु—ज्ञानीका वास्तविक उपकार क्या है, उसका पता तभी लगेगा।

"षट् स्थानक समजावीने, भिन्न बताव्यो आप;
म्यानथकी तरवारवत्, ओ उपकार अमाप."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री—जो योगी (सदेही) होता है वह अयोगी (मुक्त) हो जाता है। उसकी बात और उसका माहात्म्य तो उसीमें है! क्या कहा जाय? वही। आप हैं, अभी यहाँ बैठे हैं, वह है तो बैठे हैं। उसके सिवाय इस देहमेंसे और कुछ निकाल दिखाइये न? जड़के सिवाय क्या निकलेगा? वर्ण, रस, गंध, स्पर्शके सिवाय अन्य कुछ नहीं निकलेगा।

"जड ते जड त्रण काळमां, चेतन चेतन तेम;
प्रगट अनुभवरूप छे, संशय तेमां केम?"

इस संबंधमें क्या कहें? और कहाँ जायें?

१. मुमुक्षु—आप कहें वहाँ।

प्रभुश्री—क्या करना है? कहिये। इन्होंने तो प्रश्न कर दिया। इसका उत्तर तो देंगे न? अब कहाँ जायें? कहा वह तो बराबर है।

४. मुमुक्षु—सेनाका नायक जहाँ ले जाय वहाँ जायेंगे।

१. मुमुक्षु—हमसे न हो सके तो हमारा दोष। जैसा कहें वैसा करेंगे और जायेंगे।

प्रभुश्री—ज्ञानी कहे वैसे।

५. मुमुक्षु—तब जीव जानेमें देर क्यों लगाता है? ज्ञानीने तो कहनेमें कुछ कसर रखी नहीं और फिर जीव कहता है कि कहाँ जायें और क्या करें?

१. मुमुक्षु—दोष तो हमारा है इसकी ना नहीं। पर आश्रय है उसे निकाल सकते हैं क्या?

प्रभुश्री—ऐसे (चतुर) सब यहाँ बैठे हैं, अब कहिये कि किसके पास जायें कि जिससे 'हाश' (शांति हुई) ऐसा हो?

१. मुमुक्षु—आत्माके पास और कहाँ?

प्रभुश्री—उसे किसने जाना और देखा? ज्ञानीने। तब उसके पीछे जाना चाहिये। और पूछना भी यही है।

१. मुमुक्षु— "पायाकी अे बात है, निज छंदनको छोड़;
पीछे लाग सत्पुरुषके, तो सब बंधन तोड."

सत्पुरुषके पीछे जाना है।

प्रभुश्री—है ऐसा, पर आत्मामें; अन्यत्र कहाँ जाये अब? जैसे जगतमें नगरमें, गाँवमें, बाग-बगीचे आदि स्थानों पर जाते हैं और आनंद मानते हैं, वैसे यहाँ कहाँ जाना है और क्या करना है?

१. मुमुक्षु—अन्यमें है वहाँसे अपनेमें।

४. मुमुक्षु—आप ही कहते हैं कि इंजिन है उसमें डब्बे जुड़ेंगे उन्हें वह ले जायेगा। जो नहीं जुड़ेगा वह पड़ा रहेगा। अतः यदि साँकल जुड़ गयी तो जायेगा।

प्रभुश्री—ऐसा ही है। कितनी देर है? कि तेरी देरमें देर है। और कुछ काम नहीं, इतना ही है। स्त्री, पुरुष, वृद्ध, युवान, सुखी, दुःखी—सब दुःख ही है, मात्र आत्मा है वह वस्तु है। वहाँ मिलना, आना, जाना, बैठना, उठना। उसकी कृपा हो जाय तो अभी, देर कहाँ है? जिस-किसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिन इस पर उनकी कृपा होगी तब काम बनेगा। उनके बिना एक तृणके दो टुकड़े भी नहीं होंगे। वह है तो सब है। इसीके कारण बोलते-चलते हैं; शेष सब धूल है! जड़ है, आत्मा नहीं। कचास है योग्यताकी। उससे रुका है।

२. मुमुक्षु—गुरुकी नावमें बैठ जायें।

प्रभुश्री—ठीक कहते हैं। उन्हींका उद्धार हुआ है। ऐसा न किया हो तो नहीं जा सकते।

१. मुमुक्षु—बैठ जाये तो न? साँकल जुड़ जाये तो न?

प्रभुश्री—तेरह मनका 'तो' अड़ गया। छोड़े बिना छुटकारा नहीं है, छोड़ना ही पड़ेगा।

१. मुमुक्षु—"अनादि स्वप्नदशाके कारण उत्पन्न हुए जीवके अहंभाव-ममत्वभावकी निवृत्तिके लिये ज्ञानीपुरुषोंने इन छह पदोंकी देशना प्रकाशित की है। उस स्वप्नदशासे रहित मात्र अपना स्वरूप है, ऐसा यदि जीव परिणाम करे तो सहज मात्रमें वह जागृत होकर सम्यग्दर्शनको प्राप्त हो। सम्यग्दर्शनको प्राप्त होकर स्वस्वभावरूप मोक्षको प्राप्त करे।"

प्रभुश्री—जिसे पता लगा, फिर मिला और जानकार हुआ तो काम बना। जिन्हें न मिले हों उन्हें जानकार होना चाहिये। कृपालुदेवने मुझे दृढ़ करा दिया कि तुम कहीं नहीं जाओगे, सब तुम्हारे पास आयेंगे। अब क्या रहा? अतः यह सब व्यवहार करते हैं सो आनंदके लिये! जो होनहार है वह बदलनेवाला नहीं और बदलनेवाला है वह होनहार नहीं।

१. मुमुक्षु—हमें 'तब फिर अन्य उपाधिके वश होकर प्रमाद क्यों करना चाहिये?'

प्रभुश्री—प्रमादको धारण न करना यह तो उसका वीर्य (पुरुषार्थ) कहा गया है। उस वीर्यको तो नहीं छोड़ना है। जो ज्ञानी होता है, उसे कैसी भी व्याधि पीड़ा आने पर उसकी मान्यता अन्यथा नहीं होती। यह तो सहज समझनेके लिये बता रहा हूँ। ऐसा कहा हो कि मांस नहीं खाना, मदिरा नहीं पीना, ब्रह्मचर्यका पालन करना, तो क्या उसका पालन नहीं करना? इसके बिना कोई अन्य बात हो सकती है? अतः उस वस्तुमें फर्क नहीं हो सकता। कृष्ण महाराजको देवने युद्धमें कहा कि पीठसे पीठ होकर लड़ें। तब उन्होंने कहा कि, "जा, जा, ऐसे नहीं, मुँहके सामने आ जा।' लड़ाई मुँहके सामने होती है।

छोड़ो, छोड़ो और छोड़ो ऐसा कहा, तो क्या आत्माको छोड़ना है?

१. मुमुक्षु—नहीं, नहीं। जो पर है उसे छोड़ना है। आत्मा तो कहीं छोड़ा जा सकता है? वह तो है ही।

★
★★

ता. १५-१-३६, शामको

पत्रांक ७१०का वाचन—

"आत्मा सच्चिदानंद"

मुमुक्षु—जीव आत्मप्राप्तिके लिये बहुत प्रयत्न करता है, किंतु सत्पुरुषके आश्रयके बिना वह प्राप्त नहीं होता और उल्टी कल्पना होती है। अतः सत्पुरुष यहाँ आत्माका लक्ष्य करवाते हैं।

तू सत्-चित्-आनंदरूप है, तू एक है, अन्य कोई तेरे साथ नहीं है, यों ज्ञानीपुरुष आत्माका निश्चय कराते हैं। ऐसी दृढ़ प्रतीति हो तब सम्यग्दर्शन होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री—जीव लौकिक दृष्टिमें प्रवृत्ति करता है, अलौकिकमें प्रवृत्ति नहीं करता। स्त्री हो या पुरुष, पर मनुष्यभव तो है न? अतः भले मानस, चेत जा न? कहीं लूट होती हो तो भागनेका, छिपानेका प्रयत्न करता है। अतः तुझसे जो हो सके वह कर ले। कौवे-कुत्तेके जन्ममें नहीं हो सकेगा। जन्म, जरा और मृत्यु, सब व्याधि, व्याधि और पीड़ा है।

जीव ऐसा सोचे कि मेरे वंशमें कोई नहीं है, एक पुत्र हो जाय तो अच्छा। मर, बुरे! तेरा कुछ नहीं है। 'मेरा मेरा' करके दौड़ कर रहा है।

"आत्मा सच्चिदानंद।"

यह वाणी तो जो जानता है वही जानता है और जानता है वही उसके आनंदका उपभोग करता है। 'भगवती' जैसे बड़े ग्रंथ भी हों, पर उनकी अपेक्षा यह ('श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथ) महान सिद्धांतका सार है। पर भोला प्राणी चेतता नहीं। कल सुबह मौत आकर खड़ी रहेगी। 'प्राण लिये या ले लेगा' हो रहा है। कौन अमरपट्टा लिखाकर आया है? अतः चेतिये, ऐसा अवसर फिर नहीं मिलेगा। एक धर्म ही सार है। कहिये, इस जीवके साथ क्या है?

मुमुक्षु—भाव और परिणाम है।

प्रभुश्री—पहले मूल हाथ लगना चाहिये। वह सत् है; आत्मा है और उसके भाव होते हैं। जड़के भी भाव होते हैं, पर वे जड़, और चेतनके होते हैं वे चेतन। भाव तो है, पर एक सत्के (आत्माके)। अरे मेहमान, अतिथि! अब तो चेत जा। हमारी इतनी उम्रमें कितने कितने चले गये, वे याद भी हैं और भूल भी गये। सारा लोक त्रिविध तापसे जल रहा है, कहीं भी सुख नहीं है। वीतराग मार्ग अपूर्व है। 'शांति पमाडे तेने संत कहिये।' संत कहाँ है? 'सत्'में, और 'सत्' कहाँ है? आत्मामें। जहाँसे भूला वहींसे फिर गिन। जब समझा तभी सबेरा। करना शुरू कर दे, भले आदमी! दिन बीत रहे हैं, क्षण क्षण सब छूट रहा है। जीवको वैराग्यकी कमी है। जैसा उत्साह व्यापार-धंधेमें, धन-दौलतमें, खाने-पीनेमें है और पाँच इंद्रियोंके भोगका लोभ है—उसीमें तल्लीनता है, वैसा उत्साह आत्माके लिये नहीं है। आत्माके लिये, धर्मके लिये तो प्रमादी! प्रमाद और आलस्य तो सबसे बड़े शत्रु हैं। अतः जो कर्तव्य है उसे कर, ऐसा दिन फिर नहीं आयेगा।

"ज्ञानापेक्षासे सर्वव्यापक, सच्चिदानंद ऐसा मैं आत्मा एक हूँ, ऐसा विचार करना, ध्यान करना।"

मुमुक्षु—इतने ही शब्द अद्भुत हैं! पर यह तो दवा सस्ती होने जैसा हुआ। जैसे लोहेके तपे हुए तवे पर पानीके थोड़े छींटे पड़े तो तुरंत ही जल जाते हैं वैसे ही अनादिकालसे रागद्वेषसे तप्त इस आत्मा पर ये शब्द तुरंत असर नहीं करते। जब असर करेंगे तब अपूर्व आनंद आयेगा। आप कहते हैं कि योग्यता नहीं है, तो अपने हृदयसे पूछे कि योग्यता क्या है? तो हृदय कहेगा कि तू पात्र नहीं है। जिस प्रकारके आत्माके गुण चाहिये वे अभी प्रगट नहीं हुए हैं।

प्रभुश्री—मरुभूमि हो और वहाँ जाना हो तो खूब पानी भर लेते हैं न? बीचमें, अधबीचमें यदि पानी न रहे तो भटकता फिरे, कंठ सूखे और कैसी वेदना हो? वह तो भोगनेवालेको ही पता लगता है। मध्यमें होनेसे न इधर जा सकता है और न उधर और 'पानी, पानी' करता है। ऐसे समयमें यदि एक मेघवृष्टि हो जाय और पानी भर जाय तो फिर प्यास रहे? न रहे। वैसे ही इस जीवको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयोग प्राप्त हुआ है तो चेत जाना चाहिये। उस स्थान पर पानी तो बरसता है पर उसके अपने अवसर पर। उस अवसर पर पानी भर लेना चाहिये। तो बादमें काममें आता है, अन्यथा मरना पड़ता है।

मुमुक्षु—यहाँ मुझे तीन वर्ष हुए, पर परमकृपालुदेवकी कृपासे ऐसा कह सकता हूँ कि अब मुझे अन्य कुछ इच्छा नहीं रहती। यही इच्छा है कि सत्पुरुषके वचनमें दृढ़ श्रद्धा हो। सिर जाय तो भले जाय, पर वही दृढ़ होती रहे।

प्रभुश्री—यह भाव है और इच्छा है तो प्राप्ति होती है। जड़को होगी? सुखदुःख भोगते हों तो, उसकी इच्छा की थी इसलिये मिला है। जैसी इच्छा और भाव होते हैं वैसा मिलता है। अतः अन्य सबको अब छोड़ दे। पिताके बिना पुत्र नहीं। उसके बिना काम नहीं बनेगा। केवल इतनी ही कसर है। 'नहीं छोडुं रे दादाजी, तारो छेडलो।' इतनी पहचान कर ले। स्वयं अपने आत्माको मानता है। इसमें अन्य कौन करेगा? विश्वास रखना या न रखना, यह किसे कहना है? इस जीवको मनुष्यभव दुर्लभ कहा गया है, उसे प्राप्तकर कुछ करता है तो उसका फल मिलता है। त्याग और वैराग्य दो बड़ी वस्तुएँ हैं। त्याग करे तो उसका फल मिले बिना त्रिकालमें भी न रहेगा। हाथमेंसे बाजी निकल गयी तो कुछ पता नहीं लगेगा। त्याग और वैराग्य इस जीवको अवश्य कर्तव्य है। मनुष्यभवमें जितना त्याग हुआ, वह संचित होकर साथमें आयेगा, अन्य नहीं आयेगा। अतः यह कर्तव्य है।

[एक बहनने चौथे व्रतकी प्रतिज्ञा ली]

यह मनुष्यभव प्राप्त कर सबसे बड़ा व्रत चौथा महाव्रत (पूर्ण ब्रह्मचर्य) है। जिसने उसे ग्रहण किया और त्याग-वैराग्य करता है, उसे देवगति प्राप्त होती है। जहाँसे भूला वहींसे फिर गिन। अघटित कार्य किये हों तो उन्हें पुनः न करनेकी प्रतिज्ञा लेकर फिरसे व्रत ग्रहण कर।

'मेरा मेरा' कर रहे हैं। स्त्री-पुरुष कहाँ है? एक आत्मा है। ज्ञानीने उसे जाना है और उसकी सामग्री है उसे, वह जानता है। अन्य अज्ञान है। कोई किसीका नहीं हुआ। माया है, छोड़ दे, जाने दे। अभीसे समझ जा, तो कल्याण होगा। यहाँ बहुतसे उत्तम जीव हैं, उनका कल्याण होगा। उनके लक्ष्यमें आया और निश्चित हुआ तभीसे त्याग है। यह महाव्रत है, यह बड़ेसे बड़ा व्रत है।

"सबको कम करते करते जो अबाध्य अनुभव रहता है वह आत्मा है।"

यह मातपिताके जैसा बताया। इसे मान्य करना चाहिये। स्पष्ट लिख दिया है। यह मोहकी जाल है, इसकी चिंता करता है और संभाल करता है। आत्माकी तो थोड़ी भी चिंता नहीं है कि मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, मेरा स्वरूप क्या है, और मेरा क्या होगा? जितना गुड़ डालोगे उतना मीठा होगा। कहनेमें कुछ कमी नहीं रखी है। अपूर्व बात की है! जितना हो सके उतना त्याग करें। अन्य अपना नहीं है, इसीलिये कहना है। करनेसे ही छुटकारा है। किसके साथ जानेवाला है कि यह 'मेरा मेरा' कर रहा है?

★★★

ता. १६-१-३६, सबेरे

१. मुमुक्षु—ढेलेकी प्रतिमा नहीं बनती। पत्थरकी प्रतिमा बनती है।

२. मुमुक्षु—पर ज्ञानी गुरुकी वचनरूपी टाँकीसे टाँचने पर बनती है।

१. मुमुक्षु—हरिभद्रसूरिजीने यह आठदृष्टिरूपी नक्शा तैयार किया है। जिसे आत्मारूपी मकान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनाना हो, उसके लिये यह आठ दृष्टिरूपी नक्शा-प्लान तैयार है। मकान बनानेका नक्शा तैयार होनेके बाद ईंट, मिट्टी, चूना, लकड़ी आदि सामग्री लानी चाहिये। वैसे ही आत्मार्थीको आत्मगुणरूपी सामग्री प्राप्त करनी चाहिये, वही शेष रह गयी है। यह तो नक्शा तैयार कर दिखाया है।

इसी तरह कृपालुदेवने आत्मसिद्धिरूपी खजाना—नव निधानका भंडार दिखाया है, यह महान उपकार किया है। आत्मसिद्धिजी भी आत्मारूपी मकान बनानेका महान नक्शा है। ऐसा हुआ हो तो काले नागको देखकर भी किंचित् भी भयको प्राप्त नहीं होता।

३. मुमुक्षु— "वर्तमान आ काळमां, मोक्षमार्ग बहु लोप;
विचारवा आत्मार्थीने, भाख्यो अत्र अगोप्य."

समागम जीवकी वृत्ति, भावमें परिवर्तन कर डालता है। श्रवण और बोधसे कार्य होगा। उस पर भावना करे तो प्रीति जागृत होती है। मोहको दूर किये बिना मोक्ष नहीं जा सकते।

१. मुमुक्षु—सत्संगके बिना रंग नहीं लगता यह तो एकदम सच्ची बात है और आत्मार्थीके लिये है यह भी सच है। पर आत्मार्थी ऐसा सोचकर बैठ जाये तो कार्य सिद्ध नहीं होता। यह तो आत्मार्थीके सिर पर बड़ी जिम्मेदारी है। जिसे कृपालुदेवकी मान्यता हुई हो उसे तो ऐसा होता है कि मैं जहाँ जहाँ जाऊँ, वहाँ कृपालुदेवका डंका बजा दूँ—'अपूर्व अवसर अेवो क्यारे आवशे?' ज्ञानी मुमुक्षुको ज्ञान दे तो मुमुक्षु आत्मा अर्पित कर देता है—

"शुं प्रभु चरण कने धरुं? आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुअे आपियो, वर्तुं चरणाधीन."

आम्रवृक्षको पानी पिलानेसे आम्रफल रस देता है, गायको घास-दाना देनेसे गाय दूध देती है। वैसे ही मुमुक्षुको ज्ञान मिलनेसे वह अपने प्राण भी दे देता है। वह ऐसा समझता है कि मुझे जो वस्तु अनंतकालसे नहीं मिली वह देकर भगवानने मुझ पर अनहद उपकार किया है। अतः वह प्राण भी अर्पण कर देता है। जहाँ पर भोले नासमझ लोग धर्मको नहीं समझते हो वहाँ वहाँ पर प्रभुश्रीजीकी पधरावनी करवाकर श्रीमंतोंको पैसेका सदुपयोग करना चाहिये और भोले लोगोंको आत्माका अपूर्वलाभ दिलवाकर इस आश्रमरूपी झोंपड़ीमें आते करना चाहिये।

प्रभुश्री—एक बहन छोटी उम्रकी है किन्तु उसके भाव अच्छे हैं, उसे चौथे व्रतकी प्रतिज्ञा लेनी है। आत्मा है। बहिन हो, भाई हो, पर मनके कारण सब है। भाव और लक्ष्य पकड़ लिया तो बेड़ा पार है। यह महाव्रत बड़ेसे बड़ा है। धन्य है उसे जो यह व्रत ग्रहण करेगा। यह व्रत हमें अंतरंगसे अच्छा लगता है और करने योग्य है, अतः यही करना चाहिये। यह मनुष्यभव तो कल चला जायेगा। बहनको यहाँ ब्रह्मचारिणी बहनोंके साथ रहनेकी वृत्ति भी है। पुद्गल विनष्ट हो जायेंगे, नाशवान हैं, उन्हें आत्मा मान बैठा है। वह तो कहीं नहीं मिलेगा, उसे तो ज्ञानीने जाना है। ज्ञानियोंने मनुष्यभवको दुर्लभ बताया यह श्रेष्ठ बात है। इस भवमें आत्मा एक-न-एक दिन मोक्ष प्राप्त करेगा, जड़ नहीं कर सकता। यह जीवका कर्त्तव्य है। पुनः पुनः ऐसा अवसर नहीं मिलेगा। अनंतकालसे भटक रहा है। सबके पास संयोग और सामग्री है उसीमें लवलीन—एकाकार हो गया है। जैसे दूधमें मक्खन रहा हुआ है वैसे। आत्मा वैसा नहीं है, अलग है। ज्ञानीपुरुष कितना कहें? 'आत्मा है, नित्य है, कर्त्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है और मोक्षका उपाय है।' ये पद रामके बाण हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेत जाये तो भाग्यशाली है। पूर्वभवकी आराधकता हो और भाग्यशाली हो तो चेत जाता है। स्त्री, पुरुष आदि कुछ न देखें, पर आत्माको देखें—ज्ञानीपुरुषोंने देखा है उसे। मैंने कृपालुदेवसे कहा कि यह सारा जगत 'भ्रम' है, तो कहा कि 'आत्मा'को देखो। फिर आँटी पड़ गयी कि यह क्या कहा? तब कहा कि विचार करो। आत्माके बिना कोई कर सकेगा? और सुन सकेगा?

"जड ते जड त्रण काळमां, चेतन चेतन तेम;
प्रगट अनुभवरूप छे, संशय तेमां केम?"

अतः अवसर आया है, करने योग्य है। उसकी जान पहचान करेंगे तो काम बनेगा।

१. मुमुक्षु—अब तो मैंने अपने सब मित्रोंको बता दिया है कि मैं बदल गया हूँ और कृपालुदेव तथा प्रभुश्रीजीको मान्य किया है। तो अन्य लोग नहीं मानते कि ऐसा हो सकता है। तब मैं छाती ठोककर कहता हूँ कि ऐसा ही है और ऐसा ही समझें, अन्यथा नहीं। मैं जानेवाला हूँ। आज सभी मुमुक्षुभाइयोंसे कहे देता हूँ कि अब मुझे प्रभुश्रीजीकी कृपासे बहुत बल प्राप्त हुआ है। इस बार मेरे दिन यहाँ बहुत आनंद उत्साहमें बीते हैं क्योंकि अब मेरे पीछे स्वामी है।

[1]"मने मळ्या गुरुवर ज्ञानी रे, मारी सफळ थई जिंदगानी.
श्रीमद् देवस्वरूपे दीठा, लघुराज प्रभु लाग्या मीठा;
आत्मिक ज्योति पिछानी रे, मारी सफळ थई जिंदगानी.
भाग्योदय थयो मारो आजे, चोटी चित्तवृत्ति गुरुराजे;
खरी करी में कमाणी रे, मारी सफळ थई जिंदगानी.
दुस्तर भवसागर तरवानो, दिलमां लेश नहीं डरवानो;
मळ्या सुजाण सुकानी रे, मारी सफळ थई जिंदगानी.
मन वचन काया लेखे लगाडुं, भक्ति सुधारस चाखुं चखाडुं;
भक्ति शिव-कर जाणी रे, मारी सफळ थई जिंदगानी."

बोलिये, श्री सद्गुरुदेवकी.....जय!

यहाँ मुझे अचिंतित, अकल्पित खूब आनंद आया है। पूरे जीवनमें ऐसा आनंद नहीं आया।

प्रभुश्री—मुख्य बात तो आत्मा, भाव और परिणाम। अन्य किससे संबंध करना है?

२. मुमुक्षु—'सवि जीव करुं शासनरसी, अेवी भावदया मन उल्लसी।'

प्रभुश्री—उत्तम जीव है। मुझे हृदयसे अच्छा लगता है। कुछ नहीं है, मनुष्यभवमें यही सार है।

★★★

१. मुझे ज्ञानी गुरु मिले हैं जिससे मेरी जिंदगी सफल हो गई है। मैंने श्रीमद्को देवस्वरूपसे पहचाना है और लघुराज स्वामी मुझे अति प्रिय लगते हैं। आत्मिक ज्योतिको मैंने पिछान लिया है जिससे मेरा जन्म सफल हो गया है। आज मेरा अति भाग्योदय हुआ है कि मेरी चित्तवृत्ति गुरुराजमें लीन हो गई है। यही मेरी सच्ची कमाई है जिससे मेरा जन्म सफल हो गया है। दुस्तर भवसागर तिरनेके लिये मुझे हृदयमें लेशमात्र भी डर नहीं है क्योंकि सुज्ञ केवट मिल गये हैं जिससे मेरा जन्म सफल हो गया है। शिवजीभाई कहते हैं कि अब मैं मन-वचन-कायाको शिवकर भक्तिमें लगाकर सफल करूँ और भक्ति-सुधारसका स्वयं आस्वाद लूँ तथा दूसरोंको भी उसका स्वाद चखाऊँ, इसीमें मेरी जीवनकी सफलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १६-१-३६, शामको

१. मुमुक्षु–"मनरूपी योगमें तारतम्यसहित जो कोई चारित्रकी आराधना करता है वह सिद्धि पाता है।" इसका क्या अर्थ?

२. मुमुक्षु–भावचारित्रकी आराधनासे 'छूट जाऊँ, छूट जाऊँ' ऐसी भावना होती है।

प्रभुश्री–मूल बात भाव ही है।

"भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान;
भावे भावना भावीअे, भावे केवळज्ञान."

मुख्य दो बात हैं–भाव और परिणाम। यह सामग्री आत्माके पास है। जड़के जड़ परिणाम और चेतनके चेतन परिणाम–यह समझनेका है। एक विश्वास और वैसी प्रतीति इस जीवको नहीं है। मर्ममें बात कही है कि 'सद्धा परम दुल्लहा।' यह बराबर है और मान्य है। यह बड़ी बात है। कृपालुदेवने कहा है कि तुम्हारी देरीसे देर है। मुर्दा तो नहीं है? आत्मा है। भाव आना चाहिये। [1]'जेवा भाव तेवा प्रभु फले, भभ्भा भजनथकी भय टले।'

२. मुमुक्षु–स्तवनमें आता है, [2]'रुचि अनुयायी वीर्य, चरणधारा सधे।' जैसी रुचि होती है वैसे भाव प्रकट होते हैं।

प्रभुश्री–भगवानने कहा है और ज्ञानी जानते हैं। जैसे भाव और रुचि होती है उसे ज्ञानी जानते हैं। कोई तो थोड़ेसे समयमें करोड़ों कर्म क्षय कर देता है, वह भी भावसे ही होता है।

३. मुमुक्षु–चारित्र आत्माका धर्म है। वह समरूप है। मोह अर्थात् दर्शनमोह और क्षुभित करनेवाला चारित्रमोह, इन दोनोंसे रहित समभाव है। भावमन तो आत्मा है। वह मन श्रद्धाकी ओर झुकता है, फिर चारित्र प्रकट होता है। कषाय चारित्रको आवरित करनेवाला है। उसे तो वह हेय जानता है और छोड़ता है वैसे वैसे चारित्र प्रकट होता है। बाह्य और आभ्यंतर क्रियाओंका रुक जाना चारित्र है। तभी यथार्थ भावचारित्र होता है। मनके कारण सब है। जब तक मन बाह्यमें होता है, तब तक चारित्र नहीं आता। मनकी स्थिरता ही चारित्र है, वहाँ मन वशमें रहता है।

२. मुमुक्षु–अंतराय कर्म क्षय हो तब लाभ और केवलज्ञान प्रकट होता है।

३. मुमुक्षु–अंतरायकर्मके क्षय होने पर अनंतदान, अनंतलाभ, अनंतवीर्य, अनंतभोग, अनंत उपभोग प्रकट होते हैं। यहाँ एक स्थान पर शंकाकारने टीका की है कि ज्ञानियोंने तो सब छोड़ा है और ये तो अनंत भोगते हैं ऐसा हुआ। इसका क्या अर्थ समझें? भोग दो प्रकारके हैं–बाह्य और आभ्यंतर। भगवान तो उन दोनोंसे रहित हैं। जिस प्रकार 'घीका घड़ा' में घड़ा घीका कहलाया, पर वास्तवमें तो घी और घड़ा भिन्न-भिन्न हैं। घड़ा तो मिट्टीका है। इसी प्रकार समवसरणमें भगवानकी जो विभूतियाँ होती हैं वे तो पुण्यकी विभूति हैं। उसके भोगमें उनको कुछ लेना-देना नहीं है। वह तो सहज स्वभावसे पुण्यानुसार होता रहता है और पूर्वबद्ध आकर चला जाता है। वे तो उसमें एकदम उदासीन हैं, उन्हें कुछ भी हर्षशोक नहीं है।

---

१. जैसे भाव होते हैं वैसे ही प्रभु परिणमित होते हैं अर्थात् फल मिलता है। भजनसे संसारभय दूर होता है। २. रुचिके अनुसार वीर्यका प्रवर्तन होता है अर्थात् श्रद्धाके अनुसार जीवकी प्रवृत्ति होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. मुमुक्षु—मुझे लगता है कि अभी तक शरीरके जो भोग थे उनके स्थान पर जो आंतरिक गुण प्रकट हुए, उनके प्रकट होनेसे आत्मिक भोग भोगते हैं—जो अनंत लाभ, अनंतवीर्य आदि स्फुरित होते हैं उन्हें भोगते हैं, अन्य पौद्गलिक भोग नहीं।

५. मुमुक्षु—यहाँ पुण्य-प्रकृतिके भोगका कथन नहीं है। वीर्य तो आत्माका गुण है। पहले भाव परवश थे वे कर्म आवरणके हट जानेसे स्ववश हो गये, क्योंकि स्वयंमें अनंत वीर्य प्रकट हुआ। यही कहना है। स्तवनमें आता है कि "दान विघन वारी सौ जनने, अभयदान पद दाता।" जो अपने परिणामका दान अन्यमें होता था वह अब स्वयंमें होता है और अन्यके संसार-परिणाम बदलकर अपनेमें (आत्मामें) करवाते हैं अर्थात् अभयदान देते हैं। केवलज्ञान तो सबका समान होता है, किन्तु यहाँ अपने स्वरूपके वीर्यांतरायका क्षय बताना है।

प्रभुश्री—हाथीके पाँवमें सभी समा जाते हैं। चेतन और जड़ दो पदार्थ हैं, इनमें सब समा जाता है। और क्या कहे? 'सर्व जीव छे सिद्ध सम, जे समजे ते थाय।' समझे बिना सब अधूरा है। व्यवहारसे कर्मकी बात है।

★★★

ता.२४-१-३६

प्रभुश्री—इसे सुननेसे, इस पर श्रद्धा करनेसे और यही करनेसे छुटकारा है। 'एक मरजिया सौको भारी' वैसे ही यदि यह जीव तैयार हो जाय तो सब कर सकता है।

१. मुमुक्षु—साहेब, कोई एक वर्षसे तो कोई दो, पाँच, पंद्रह वर्षसे समागम कर रहे हैं, फिर भी अभी योग्यताकी कमी क्यों रह गयी?

प्रभुश्री—सबको एक तराजू पर कैसे तौला जाय? भिन्न भिन्न तराजू होना चाहिये। अर्थात् तराजू भले ही एक हो पर प्रत्येकको भिन्न भिन्न प्रकारसे तौला जाता है। 'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ।' कुछ क्रिया करे उसका फल मिलता है। क्रिया कुछ बाँझ नहीं होती। बहुत साधन किये। 'तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो।'

मुमुक्षु—बात तो सिद्धशिलाकी करना, किन्तु करनेके लिये खड़ा न होना तो बात कैसे बनेगी?

प्रभुश्री—यह तो पाँव उठाये, तभी वहाँ जा सकते हैं। दीक्षा ले, सब करे तो उसका भी फल मिलता है। 'पलमें प्रगटे मुख आगलसे।' यह सब सुनकर खड़ा हो जा न? पेटमें छुरी भोंककर मर जाना चाहिये। संसारका सेवन भी करना और मोक्ष भी जाना, यह नहीं हो सकता। सब छोड़ना ही पड़ेगा। छोड़े बिना मुक्ति नहीं है। पत्रमें पढ़ते हैं कि एक सत्पुरुषको ढूँढो। फिर, अब क्या शेष रहा? इस पर श्रद्धा करनेसे, इसे सुननेसे काम बन जायेगा। निमित्त मिले तो सब कुछ हो सकता है। बाहर बैठे हों तो यहाँकी वाणी सुनाई देगी क्या? यहाँका निमित्त है तो यहींके पर्याय पड़ेंगे। यह तो आस्रवमें संवर और संवरमें आस्रव है। क्या यह मिथ्या है? ये सब पागल जैसी बातें करते हैं—सिर पर स्वामी है, स्वामी किया है इसलिये बोलते हैं तो भी आपत्ति नहीं। वीतराग मार्ग है। सब मत, गच्छ हैं, पर यह सबसे श्रेष्ठ है। अन्यत्र ऐसा नहीं है। ये साधु हैं। इन्हें दो हजार रुपये देंगे तो आयेंगे? स्वेच्छासे आये, पर ये भी आत्मा हैं न? हमने छोटी उम्रमें दीक्षा ली अतः सर्वत्र वाह! वाह! हो गयी। अब तो वह भी काला हो गया। सफेदमें दाग दिखाई दे, पर कालेमें दिखाई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं देता; यों यह सब काला है, मात्र एक सत्पुरुष ही उजले हैं। चंद्रमें कलंक है यह सभी कहते हैं, पर [1]तवेको कोई नहीं कहता। 'आणाए धम्मो आणाए तवो' इसीमें सब आ गया है, कुछ शेष नहीं रहता। परमकृपालुदेवकी साधुसंबंधी सभी बातोंसे हमें संतोष हुआ है। साधु कौन? 'आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं।'

★★★

ता. २५-१-३६, सबेरे

पत्रांक ७२७ का वाचन–

"अल्प आयु और अनियत प्रवृत्ति, असीम बलवान असत्संग, पूर्वकी प्रायः अनाराधकता, बलवीर्यकी हीनता ऐसे कारणोंसे रहित कोई ही जीव होगा। ऐसे इस कालमें, पूर्वकालमें कभी भी न जाना हुआ, प्रतीत न किया हुआ, आराधित न किया हुआ और स्वभावसिद्ध न हुआ हुआ ऐसा 'मार्ग' प्राप्त करना दुष्कर हो इसमें आश्चर्य नहीं है। तथापि जिसने उसे प्राप्त करनेके सिवाय दूसरा कोई लक्ष्य रखा ही नहीं वह इस कालमें भी अवश्य उस मार्गको प्राप्त करता है।"

प्रभुश्री–जीवको विचार आया ही नहीं। काम बना दे इतना सब कुछ है, फिर भी इस स्थान पर कुछ करे तो अभी करने योग्य है। मात्र इस जीवकी ही भूल है। अब बोलियेगा नहीं। इतना समझने योग्य है। यदि इसने कुछ किया तो बस; यही चाबी है। यह बात बहुत जोरदार है। तैयार हो जा, तेरी देरमें देर है, अब क्या है? ऐसा वैसा कथन नहीं है। मरते हुएको जीवित करता है। सत्पुरुषोंने मरे हुएको जीवित किया है। हिंमत न हारें।

१. मुमुक्षु–हिंमत हारनी नहीं है। अब तो मरजिया होना है। आपने कहा था कि सिर पर सत्पुरुष हैं, साथमें हैं और उनकी हिम्मत है, तब फिर हिम्मत किसलिये हारें?

प्रभुश्री–यही कर्तव्य है। हिम्मत नहीं हारनी चाहिये।

२. मुमुक्षु–वीतराग मार्गमें प्रवृत्ति है, तब हिंमत क्यों हारे?

प्रभुश्री–गिर गये तो खड़े हो जाइये, फिर कैसे चल नहीं पायेंगे? चल पायेंगे। पता नहीं है। कोई यदि गिरे तो उसे खड़ा हो जाना चाहिये। अब क्या है? पड़ा रहना ही नहीं है। खड़ा हो जा। भूला वहींसे फिर गिन, समझा तभीसे सबेरा, पुनः जुट जा न? स्वच्छंदने बुरा किया है। अन्य किसीका दोष नहीं है। बैठा है वहाँसे अब खड़ा हो जा। अभी जो दशा है वह तो तू गिरा हुआ है, वहाँसे खड़ा होना है। जागृत हुए बिना छुटकारा ही नहीं है।

"सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिनस्वरूप."

चमत्कार है! यह तो चिंतामणि है! किसीको पता नहीं है। 'ओहो! इसमें क्या है?' ऐसा कहता है पर यह तो निधान है, सुनने योग्य है, रखने योग्य है। साहस रखने जैसा है। यह आ गया तो प्रकाश हो जायेगा, भव टल जायेंगे। चित्तमें कचरा है, कमी है। जीव तो भले हैं पर योग्यताकी कमी है। वही करेगा। इसके सिवाय अन्य कोई नहीं है। यह तो है ही, हाथ आ गया तो काम हो गया! 'तो' तेरह मनका है। आ जाये तो कुछ नहीं, देर नहीं लगेगी। दो बातकी

---

१. मूल शब्द 'कलाडो' है जिसका अर्थ मिट्टीका रोटी सेंकनेका तवा होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यकता है : निमित्त और उपादान। दोनों मिले तो काम बने। एक पहियेसे गाड़ी नहीं चल सकती। दो पहिये हो तो गाड़ी चलती है। इस पंचमकालमें सत्पुरुष, उसकी आज्ञा आदि प्राप्त हुए फिर भी यह जीव करता नहीं। यह तो इसीकी भूल है। जीव तैयार ही नहीं हुआ है। तैयार हो जाइए। कमी है। खड़े हो जाइए, मान्य कीजिये। क्या मार खानी है? अब अहंकार ही अहंकारमें रहता है। यदि एक—

"ज्ञान, गरीबी, गुरुवचन, नरम वचन निर्दोष;
इनकुं कभी न छांडिये, श्रद्धा, शील, संतोष."

सबसे नम्र बन जाना चाहिये। अहंकारवालेको मोक्ष नहीं है। मार खायें, मारे-कूटे तो भी क्षमा करें, अन्य बात नहीं। इसके सिवाय अन्यसे तो छुटकारा नहीं है। नहीं तो मर! गोदे खा। (आत्मा) 'है' पर यों ही दिखाई देगा क्या? है; जैसे कोई प्राकृतिक उग निकला हो! जाता भी नहीं, बनता भी नहीं। मीठी कुईका पानी, वह कभी खारा होगा क्या? और खारी कुईका कभी मीठा होगा क्या? बस, समझ जायें। "जिसने सारे जगतका शिष्य होनेरूप दृष्टिका वेदन नहीं किया है वह सद्गुरु होनेके योग्य नहीं है।" वह चमत्कारी वाक्य है! अभी तक विचार नहीं किया है। मुझे सारे जगतका शिष्य बनने दें। "आत्मा विनयी होकर, सरल और लघुत्वभाव प्राप्त कर, सदैव सत्पुरुषके चरणकमलमें रहा, तो जिन महात्माओंको नमस्कार किया है उन महात्माओंकी जिस जातिकी रिद्धि है, उस जातिकी रिद्धि संप्राप्त की जा सकती है।" यह चिंतामणि कहलाता है। यह ले और यह दे ऐसा नहीं है। अब तो चेतिये, जागृत होइये, जागृत होइये! यह बुरा, यह दुर्बल ऐसा नहीं देखना है। जैसा है वैसा है। रात है सो रात है, दिन है सो दिन है। रात सो दिन नहीं, दिन सो रात नहीं। नम्र होना पड़ता है, कठोर नहीं बनना चाहिये।

***

ता. २५-१-३६, शामको

मातापिता जैसी शिक्षा है। आत्माकी जन्ममरणसे छूटनेकी बात है। संसारमें मोह है। इन स्त्री, पुत्र, मकान, पैसा, पद आदिमें 'मेरा-मेरा' हो रहा है, यही बंधन है, परभवमें भटकानेवाला है। क्रोध, मान, माया और लोभका जीवने यदि बहुत अभ्यास रखा तो वह अभ्यास नरकमें ले जानेवाला है। ऐसा मनुष्यभव प्राप्त किया है—पशु, कौवे, कुत्तेको तो कहा नहीं जा सकता, अतः सावधान होना चाहिये। अरे! स्त्री, पुत्र और पैसेमें आसक्त रहकर सिर फोड़!—चार गतिमें भटकेगा। जीवको तरनेके लिये जितना हो सके उतना, यथाशक्ति त्याग करना चाहिये। त्यागके बिना मोक्ष नहीं होगा। छोड़ना पड़ेगा। देह छूटेगी तब कुछ साथ नहीं आयेगा। अतः त्याग बड़ी चीज है। परदेशमें धर्म होगा, बातें होती होगी, पर यह स्थान भिन्न है। मार्ग भिन्न है। मर्म समझना चाहिये। उदय कर्म हो—घर, स्त्री, बच्चे, पैसा हो; पर उसमेंसे जितना हो सके उतना त्याग करना चाहिये। सब न छोड़ा जा सके तो थोड़ा भी त्याग करना चाहिये। यह नींव है। यह मर्म किसीको समझमें नहीं आया है। मर्मको छातीमें, हृदयमें रखें। साढ़े तीन हाथकी जगहमें जला डालेंगे। धर्म साथमें आयेगा और यही सहायक है, अन्यथा भवभवमें भटकेगा। सबसे उत्तम मनुष्यभव पाकर सबको अवश्य मूल बातकी ओर कदम बढ़ाना चाहिये। परस्त्रीका त्याग करना चाहिये। इसमें भी चौथे महाव्रतको महान कहा है। उसके लिये तैयार हो जायें। इस जगतमें अन्य विषयभोग, हँसना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोलना करते हैं वे दुःखदायी और विष हैं। पुरुष हो तो स्त्रीकी ओर दृष्टि नहीं रखनी चाहिये। इस जीवको जो छोड़ना है वह भिन्न है। इस समय दिखायी दे कि यह भोग रहा है, पर वास्तवमें नहीं भोगता; और नहीं भोगता तो भी भोग रहा है। अतः विषयका त्याग करना चाहिये। वीतरागने—परमकृपालुदेवने अनंत दया लाकर बताया है कि इतना तो समझे—

"नीरखीने नवयौवना, लेश न विषयनिदान;
गणे काष्ठनी पूतळी, ते भगवान समान. १"

यह जीव कुछको कुछ समझ बैठा है। ऐसा न करके बराबर विचार करना चाहिये। इस शरीरमें पीप, चर्बी, खून, हड्डियाँ, विष्टा आदि हैं। इसमें आत्मा मान लिया यही अज्ञान है। 'यह पुरुष है, यह स्त्री है' यह अज्ञान है। यह सब छोड़ना होगा। तेरे बसमें नहीं कि तू जाने, यह तो ज्ञानी ही जानते हैं। मात्र त्याग, त्याग और त्याग ही चाहिये। देह जाये तो भले ही जाये। यह (अज्ञान) छोड़नेसे अजर, अमर हो जाओगे।

"आ सघळा संसारनी, रमणी नायकरूप;
ए त्यागी, त्याग्युं बधुं, केवळ शोकस्वरूप. २"

इस संकटको पहले मिटाना है!

"एक विषयने जीततां, जीत्यो सौ संसार;
नृपति जीततां जीतिये, दळ, पुर ने अधिकार. ३"

इस विषयको ही जीतना है, अन्य काम नहीं है। अभी कहता है कि मैंने खाया, मैंने पिया, यह आत्माका सुख नहीं है। यह सब पुद्गल है। इसे अपना माना यही जन्ममरण है।

"विषयरूप अंकुरथी, टळे ज्ञान ने ध्यान;
लेश मदिरापानथी, छाके ज्यम अज्ञान. ४"

मदिरापान करे तो नशा और विष चढ़ता है, पागल जैसा बोलता है, जिससे ज्ञान और ध्यान जैसी वस्तुका पता नहीं लगता। किस काममें संलग्न हो रहा हूँ? किसी गुरुगमसे, किसी भेदी मनुष्यसे ज्ञान और ध्यानको समझ ले और सावधान हो जा।

"जे नववाड विशुद्धथी, धरे शियळ सुखदाई;
भव तेनो लव पछी रहे, तत्त्व वचन अे भाई. ५"

खेतमें बाड लगानेसे पशु, जानवर, मनुष्यसे रक्षा होती है, वैसी ही ये नौ बाडें बनायी गयी हैं। बड़ा भारी काम है! यह संसारकी माया है वह तू नहीं है। तेरा आत्मा है। यह सब छोड़। ध्यान देने योग्य है। यह (ब्रह्मचर्य) बनेसे बड़ा व्रत है। दृष्टि, वार्तालाप, बोलने-हँसनेसे पीछे हट; यह तू नहीं है। तू ऐसा करने जाता है तो मरता है, तुझे पता नहीं है। तू समझता है कि इसमें क्या है? बोलता हूँ इसलिये कुछ आपत्ति नहीं, पर ज्ञानीने आत्माको जाना है, ऐसा भेद अन्य कोई नहीं जान सका। मात्र भेद जाननेकी आवश्यकता है। जब तक आत्माको नहीं जाना तब तक अन्यको ही आत्मा मान बैठा है, और उससे नरक, तिर्यंच आदिमें भटक रहा है। अतः त्याग ही करना चाहिये। चौथा व्रत सबसे बड़ा है।

"सुंदर शियळ सुरतरु, मन वाणी ने देह;
जे नर नारी सेवशे, अनुपम फळ ते तेह. ६"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरतरु—कल्पवृक्षके समान फल देनेवाला है। मन, वचन, देह ये तो विष हैं। जो नर-नारी इस व्रतकी भावना और पालन करेंगे, वे अनुपम फल प्राप्त करेंगे।

"पात्र विना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान;
पात्र थवा सेवो सदा, ब्रह्मचर्य मतिमान. ७"

पात्रके बिना वस्तु नहीं रह सकती, क्योंकि वस्तुके लिये पात्र चाहिये। जैसे पानी आदिके लिये पात्र चाहिये, वैसे ही पात्रताके लिये ब्रह्मचर्य है। यह बड़ा स्तम्भ है। यदि मन विषय-विकारमें जाये तो कटारी लेकर मर जाना, विष भक्षण कर लेना। जीवको आत्माका भान नहीं है, पता नहीं है। एक मात्र सार वस्तु बड़ीसे बड़ी ब्रह्मचर्य है—अपनी या परायी स्त्रीका सेवन नहीं करना। संपूर्ण लोक स्त्रीसे बँधा है, जिससे जन्ममरण प्राप्त होंगे। अतः इसे छोड़ दे। छोड़े बिना छुटकारा नहीं है। यह चमत्कारी बात है! अतः जो यह व्रत ग्रहण करेंगे उनका काम बन जायेगा। वीतराग मार्ग अपूर्व है! जितना करे उतना कम है! 'समयं गोयम मा पमाए'—फिर अवसर नहीं आयेगा। अपनेसे जितना हो सके उतना त्याग करना चाहिये।

★★★

ता. २६-१-३६, सबेरे

वृत्ति बुरा कर देती है, जीवका आत्महित नहीं होने देती। इस समय तो विशेष करना चाहिये। आनंदघनजी भगवानने कहा है कि—

[१]"धार तरवारनी सोहली, दोहली चौदमा जिन तणी चरणसेवा;
धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना धार पर रहे न देवा."

पुकार कर कहा है! कुटुंब, विषय, कषाय महा अनर्थ है। ये सब तो अनर्थ करनेवाले हैं। यदि बोध ग्रहण किया तो उसका काम हो गया और यदि नहीं किया तो वह रह गया।

"सहु साधन बंधन थयां, रह्यो न कोई उपाय;
सत्साधन समज्यो नहीं, त्यां बंधन शुं जाय?"

सब कुछ रह जाता है। आत्माको भावना, चिंतन, आलोचना करनी है। पर जीव बाहरका देखकर मग्न हो गया, फिसल गया—यही भुलावा है। 'मुख आगल है, कह बात कहे?' इस बातकी कमी रही है, अर्थात् इतनी पात्रता नहीं है, इसलिये ये इसमें नहीं डालते। पात्रता हो तो अभी डाल दें। यही कमी है। मुझे तो यही दिखाई देता है। हलवाईकी बच्चीको खाजाका चूरा खानेको मिलता है, इसलिये वह (दुष्कालके समय) गरीबोंको देखकर कहे कि "ये सब भूखे क्यों मर रहे हैं? चूरा क्यों नहीं खा लेते?" वैसे ही इस जीवकी योग्यताकी कमी है। सत्संगका दुष्काल है। अब क्या किया जाय? कहिये, कुछ बात कीजिये।

१. मुमुक्षु—भूतकालके साधन तो व्यर्थ गये, पर अब वर्तमान कालके व्यर्थ न चले जाये ऐसा करना है।

---

१. **भावार्थ**—तलवारकी धार पर चलना सरल है किंतु चौदहवें भगवानकी चरणसेवा मुश्किल है, क्योंकि नट लोग तलवारकी धार पर चलते दिखाई देते हैं परन्तु भगवानकी सेवारूपी धार पर देवता भी नहीं चल सकते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. मुमुक्षु–योग्यता प्राप्त किये बिना, तैयार हुए बिना छुटकारा नहीं है। सत्संगके योगकी विशेष आराधना करनी चाहिये। "परम शांतिपदकी इच्छा करें, यही हमारा सर्व सम्मत धर्म है। और इसी इच्छा ही इच्छामें वह मिल जायेगा, अतः निश्चित रहें। मैं किसी गच्छमें नहीं, पर आत्मामें हूँ, इसे न भूलें।"

प्रभुश्री–क्या नहीं है? कौनसी वस्तु नहीं है? आत्माके पास क्या नहीं है? अन्य कोई, बाप दे सके ऐसा हो तो कहो। मात्र एक आत्मा ही देगा। यह निश्चित कर लें। यह निश्चित नहीं हुआ, यही भूल है। यही करना है। यह निश्चित करनेकी ही जरूरत है। यह बात ऐसी ही है। 'भरत चेत!' ऐसा कोई आकर कहता था। उनके समान तो कोई तैयार भी नहीं है, सब समझनेकी बात है। बात आश्चर्यजनक है! 'सवणे नाणे विन्नाणे' कुछ कम कहा है? अरे! तुम्हारा काम हो गया! नित्य प्रति बात करते हों तो कभीकभार निकल भी जाये, वह भी अनजानेमें जाय! यह बराबर है। सत् समझें। कहनेका तात्पर्य कि तैयार हो जायें। शुकदेवजीको कहा कि स्वच्छ होकर आओ। यों पता लगनेसे सब होगा। यह सब सत्संगके बिना नहीं होगा। ये वचन ज्ञानीके हैं, यह जो बात कही वह भी वही है। किसीका बल नहीं कि सत्संगके बिना प्राप्त कर ले। समागममें आये, जूतें पड़े, भालें बरसे तो भी पीछे न हटे, तब काम बनता है। 'पवनसे भटकी कोयल','पंखीका मेला!' ये भाई बहन, माता-पिता न देखें। यह कुछ नहीं, मात्र एक आत्मा। यह बात दूसरी चलती है। यह तुम नहीं हो। ये जो बनिया, ब्राह्मण, पाटीदार कहलाते हैं वह बात नहीं है। कुछ अन्य करना है और वह दिखलाना है–यह बात अद्‌भुत है! कुछ और ही करना है। क्या? दृष्टि-भेद करना है। तैयार होकर आओ, योग्यता तो चाहिये ही। यह बात करते हुए तो पर्याय प्रवेश कर रही है और बात काम आ रही है, लाभ होगा–कानमें पड़ी या नहीं? यह बात बहुत जोरदार है, आश्चर्यजनक है! पर उसे लोकदृष्टिमें निकाल देते हैं। सत्संगकी तो ज्ञानी भी प्रशंसा करते हैं। तब फिर हमें भी उसी आधार पर बैठा रहना है। अब कुछ उपाय है?

२. मुमुक्षु–उपाय तो जिसका जो होता है वही हो सकता है, अन्य नहीं। योग्यता लानेके लिये आरंभसे अंत तक सत्संग और सत्पुरुष ही है।

प्रभुश्री–इस बातको मना तो कैसे किया जा सकता है? उपेक्षा नहीं कर सकते। परंतु यहाँ पर अन्य कुछ कहना है, वह क्या है?

३. मुमुक्षु–वीतरागमार्ग आत्मभावस्वरूप या परिणामस्वरूप है। वह असत्संगके कारण विपरीत प्रवर्तित हो रहा है, तब आत्मभावना किस प्रकार की जाय? भावोंमें परिवर्तन करना है और परिवर्तन करनेसे ही काम बनेगा।

प्रभुश्री– "मा चिट्ठह, मा जंपह, मा चिंतह किं वि जेण होई थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं॥"

कर्मको भूत समझना चाहिये। भूतको निकालने पर ही मनुष्य अच्छा होता है।

४. मुमुक्षु–भूतको निकालनेके लिये भोपा चाहिये, वह बताइये।

प्रभुश्री–आप अनजान नहीं है। बेधड़क बात की है : 'पावे नहि गुरुगम बिना' यही अंतिम छोर है, यही निबटारा है। यह बात बहुत गहन है, अभी समझने योग्य है। गुरु क्या है? यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझने योग्य है। यह सब बात जो अभी की है वह स्वर्णमुद्राके समान है। 'सत्संग करूँ, सत्संग करूँ' ऐसा जीवको हुआ ही नहीं है। क्यों? इसलिये कि ऐसा हुआ ही नहीं है। यह प्रत्यक्ष विघ्न है, ऐसा जीवको हुआ ही नहीं है। वह क्या है? इस जीवको एक ही चाहिये, क्या? आप जानते हैं। जीयें तब तक करते रहें, लक्ष्यमें रखें, भूले नहीं। ज्ञानीका कहा हुआ है—'सत्पुरुषार्थ'। इसके बिना कुछ हो सकता हो तो कहो। यही मार्ग है। यह सबका सार है, बहुत चमत्कारी है, वास्तविक और समझने योग्य है! योग्यताके बिना नहीं आ सकता। सत्पुरुषार्थसे ही आता है। यह बात गोल-गोल की है, किसीको पता नहीं लग सकता। समझना पड़ेगा, करना पड़ेगा। किये बिना छुटकारा नहीं है। रोयें, मार खायें, कट जायें, पर यही करना है। इसीकी भावना, इच्छा करें। यही करना है। करना पड़ेगा ही। इसीके पीछे पड़ें, अन्यथा यह सब भूल है। बात महान है! भोले-भालोंकी समझमें नहीं आ सकती, बात गहन है।

★★★

ता. २६-१-३६, शामको

'उपदेश छाया' में से वाचन—

"छह खंडके भोक्ता राज छोड़कर चले गये और मैं ऐसे अल्प व्यवहारमें बड़प्पन और अहंकार कर बैठा हूँ, यों जीव क्यों विचार नहीं करता?"

प्रभुश्री—चक्रवर्तीका पुण्य बहुत प्रबल होता है, पर उसे भी तृण समान मानकर चल निकले। चक्रवर्तीके वैभवके आगे किसीका वैभव नहीं। चौदह रत्न और नौ निधानका स्वामित्व जिनके पास! पर उसे कुछ नहीं गिना। भरतको भी आदर्शभुवनमें केवलज्ञान हुआ। वस्तुको देखें तो क्या है? केवल आत्मा। टेढ़ा क्या है? विभाव। स्वभावमें हो तो सब सीधा। अतः पुकारकर कहते हैं कि 'आप स्वभावमां रे अबधु सदा मगनमें रहेना।' जीव अन्य देखने जाता है। "कदम रखनेमें पाप है, देखनेमें जहर है, और सिर पर मौत सवार है; यह विचार करके आजके दिनमें प्रवेश कर!" मनुष्यदेह प्राप्त कर यह ग्रहण करना है। जब तक यह देह है, तब तक सब होगा। आप मेहमान हैं। किसके लिये करना है? अतः चेत जाना चाहिये। आज नहीं तो कल, तेरे कुटुंब परिवार, सभी गये हैं वैसे ही तुझे भी जाना है। तो अब क्या करना है? कुछ नहीं। इस जीवको वैराग्य नहीं आया है। वैराग्य आये तो सब ठीक हो जाये। कमी वैराग्यकी है। जिसे त्याग वैराग्य है उसका सब ठीक है, इतना समझ लें। त्याग और वैराग्य दोनों चाहिये। इन्हें निमित्त बनायें, बुरा निमित्त निकाल दे। इतना ही कर्तव्य है, इसीमें लाभ है। यह करते करते कर्म मार्ग देंगे, लाभ होगा।

"आयुके इतने वर्ष बीत गये तो भी लोभ कुछ कम न हुआ, और न ही कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। चाहे जितनी तृष्णा हो परंतु आयु पूरी हो जाने पर जरा भी काम नहीं आती, और तृष्णा की हो उससे कर्म ही बँधते हैं। अमुक परिग्रहकी मर्यादा की हो, जैसे कि दस हजार रुपयेकी, तो समता आती है। इतना मिलनेके बाद धर्मध्यान करेंगे ऐसा विचार भी रखा हो तो नियममें आया जा सकता है।"

१. मुमुक्षु—हाथमें कौड़ी न हो और लाख रुपयेकी मर्यादा करे तो?

प्रभुश्री—यह परिणामसे होता है। परिणाम कल्पनावाला हो तभी ऐसा होता है। अपेक्षा लेकर कहे कि मैंने भी इस प्रकार किया है या नहीं? पर यह गलत है। समझ ऐसी है कि दस हजारकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमाई हो नहीं सकती और लाख रुपयेकी मर्यादा करे तो यह व्यर्थ है। समझे बिना कल्याण नहीं होता। संक्षेपमें सब कुछ पर है, अपना नहीं।

२. मुमुक्षु—परको छोड़ना और अपना करना।

३. मुमुक्षु— "शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहिये केटलुं? कर विचार तो पाम."

प्रभुश्री—यह सब छोड़िये। हजारों बातें हैं, पर संक्षेपमें एक आत्मा। हजारों-लाखों बार बातें की, पर वह नहीं। "आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।" यह हो तो समझमें आता है।

मनुष्यभव प्राप्त किया है तो जब तक शरीर रहे तब तक अच्छा निमित्त बनाये रखना, छोड़ना नहीं। इससे लाभ होगा। यह निमित्त प्राप्त किया तो सुननेको मिला। मनमें भावना करें कि 'सुनता रहूँ, सुनता रहूँ।' 'मैं जानता हूँ, मैं समझता हूँ' ऐसा होता है, पर अलौकिक दृष्टिसे समझा नहीं है। क्या करे?

★
★ ★

ता. २७-१-३६, सबेरे

कमी प्रमादसे है। प्रमादने बुरा किया है। पुरुषार्थ किया होता तो कल्याण हो जाता। पूर्वकालमें ज्ञानी मिले थे, किन्तु पुरुषार्थके बिना वह योग निष्फल गया। पुरुषार्थकी कमी है। यहाँसे अन्यत्र जाना हो तो कदम उठाने पड़ते है, पुरुषार्थ करना पड़ता है। कौवे-कुत्तेके जन्ममें भी आत्मा है। पूर्वकृत पुण्यसे मनुष्यभव मिला है, अतः कहते हैं कि चेतिये! अब पुरुषार्थकी आवश्यकता है। स्त्री, बच्चे, मान, बड़प्पनकी जैसी चिंता है वैसी इसकी नहीं है। यही बुरा करनेवाला, अनर्थ करनेवाला है। अतः चेतिये! ऐसी वैसी बात नहीं है, चिंतामणि रत्न है। "वीतरागका कहा हुआ परम शांत-रसमय धर्म पूर्ण सत्य है, ऐसा निश्चय रखना।" वीतराग कथित ऐसा अन्य कुछ नहीं है। श्वेतांबर, स्वामीनारायण, दिगंबर आदि भले हों, पर वीतरागके मार्गकी बात है। "तू चाहे जिस धर्मको मानता हो, मुझे उसका पक्षपात नहीं है।" "जीवके अनधिकारित्वके कारण तथा सत्पुरुषके योगके बिना समझमें नहीं आता।" इन वचनोंको तीर समझें; घोटकर पी जायें। 'यह तो मैं जानता हूँ', ऐसा करता है। पर जा मूर्ख! यह तो चिंतामणि है। ऐसी वैसी बात नहीं है। सत्पुरुषके बिना समझमें नहीं आता—यही कमी है, यही अवगुण है, यही भूल है, यही अंधेरा है, जो कहे सो। समझ आनी चाहिये। इससे भव सुधरेगा। तेरा काम बनेगा। बहुत हित होगा। क्या यह बात विचारणीय नहीं है? 'मैं जानता हूँ' इसका त्याग कर दे। खोद खोदकर वचन लिखे हैं। पता नहीं है। 'तुंबीमें कंकर!' यह बात ऐसी वैसी नहीं है। तैयार हो जाओ। भले ही टुकड़े हो जाये, चाहे जो हो, पर तैयार हो जाओ। यहीं मर जाना है। लाखों रुपये चले जाये, देहत्याग हो जाये, पर तैयार हो जाओ। यह पैसेवाला है, समझदार है, पर धूल पड़े इसमें! समझदार कैसा? इसमें किसी पर विषमभाव नहीं है। यह बात करनेकी है। अहो! क्या यह मामूली कमाई है? चिंतामणि है! किससे बुरा हुआ? परभावसे। परभाव जैसा अन्य कोई शत्रु नहीं है। इस समय पड़े हुए हो तो खड़े हो जाओ। यह तुम्हारी दृष्टिके समक्ष प्रत्यक्ष है कि कुछ किया तो कुत्ते-बिल्लीके जन्मसे छूटकर मनुष्य जन्म प्राप्त किया या नहीं? उससे तो अच्छा है न? यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यक्ष देखो। कुत्ते-बिल्लीको धर्मका योग नहीं है। अब मनुष्यभवमें योग है, तब चतुराई दिखा रहा है। थप्पड़ मारकर पाठ सिखाना है, भूल निकालनी है, उलाहना देना है। बुरेमें बुरा प्रमाद है। हमारा क्या है? क्या ये सब मेहमान नहीं है? किसी पर द्वेष नहीं है। क्या कोई अमरपट्टा लेकर आया है? चमत्कारी है! भूला वहींसे फिर गिन।

पहले किसीसे ऋण ले रखा हो तो देना पड़ेगा या नहीं? ऋण चुकाना पड़ता है, वैसे ही इस जीवको सब सुख, दुःख—जिसने जैसा किया हो वैसा फल मिलता है। स्त्री हो तो स्त्रीको और पुरुष हो तो पुरुषको भोगना पड़ता है। अब क्या करना है? तैयार होना है। कौवे-कुत्तेको नहीं कहना है। यहाँ तक आये हो, सुनने बैठे हो तो सुन रहे हो। व्यापार-धंधेकी बातें करते हैं पर ये सब बंधका हेतु हैं।

"सहु साधन बंधन थयां, रह्यो न कोई उपाय;
सत्साधन समज्यो नहीं, त्यां बंधन शुं जाय?"

संसारमें सब दौड़भाग और तूफान है। कितने ही मर गये बेचारे! माणेकजी सेठ तुम्हारे जैसे थे, पर गये न? अब कहाँसे लायें? आज अवसर आया है। छह खंडके भोक्ता भरतको कहा कि भरत चेत! चेताया न? यह तो जाने कितने पैसेवाला है, उसकी कुछ इच्छा ही नहीं है! बाल-बच्चे, खाने-पीनेका हो तो सुखी माने, पर यह तो चार दिनकी चाँदनी है! यह तो चला जायेगा। वास्तवमें दुःख किसका है? जन्म-जरा-मरणका। वह किसीको न हो ऐसा कुछ है? इस विषयमें विचार करना चाहिये कि यह बहुत दुःख है। 'अहो दुक्खो हु संसारो' ऐसा कहा है, वह चमत्कारी है! भूला वहींसे फिर गिन। ऋषभदेवके पुत्र जन्म-जरा-मरणसे त्रसित हुए, कार्यवाहकको राज्य सौंपकर चले गये और वे अट्ठानवें ही केवलज्ञानको प्राप्त हुए। जड़को कुछ कहा जाता है? भरतको कहा कि चेत! यों सावचेत होना है। इस बातको लक्ष्यमें नहीं लेता। कहनेका तात्पर्य यह है कि इस बातको लक्ष्यमें लो।

"हे परमकृपालुदेव! जन्म, जरा, मरणादि सर्व दुःखोंका अत्यंत क्षय करनेवाला वीतराग पुरुषका मूलमार्ग आप श्रीमान्ने अनंत कृपा करके मुझे दिया, उस अनंत उपकारका प्रत्युपकार करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। फिर आप श्रीमान् कुछ भी लेनेमें सर्वथा निःस्पृह हैं; जिससे मैं मन, वचन, कायाकी एकाग्रतासे आपके चरणारविंदमें नमस्कार करता हूँ। आपकी परमभक्ति और वीतराग पुरुषके मूलधर्मकी उपासना मेरे हृदयमें भवपर्यंत अखंड जागृत रहें, इतना माँगता हूँ, यह सफल हो। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः"

यह बात कंठस्थ कर लें।

इस बातको पचा लें। इसे प्रकट न करें। किसीसे कहें नहीं। चिंतामणिकी भाँति ध्यानमें रखें। उस परमकृपालुदेवको ज्ञानीने देखा है। देखता है? हाँ। ज्ञानी इससे बातें करते हैं। यह बात जड़की नहीं है। यहाँ पर जो आत्मा हो वे सब सुनियेगा। कहना किसे है? आत्माको; जड़को नहीं। वार करे उसकी तलवार। यही कर्तव्य है। 'परमकृपालुदेव'की बात क्या साधारण है? बहुतसे लोग कहते हैं, 'ये कैसे परमकृपालुदेव?' पर उनकी जो दया प्रवर्तमान है वह आश्चर्यजनक है! पैसेसे, सोनेसे, चाँदीसे, महलसे काम नहीं होगा। अनेक भवोंमें पैसे तो मिले, फिर भी अनंत भव करने पड़े—नरकमें गया, जन्म-जरा-मरण किये वह भोगता आया है। जीव कहें या चेतन कहें उसके लिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह बात है—'हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?' यह बात लक्ष्यमें नहीं है। कितनी भूल है? यह ऐसी वैसी बात नहीं है। यह अवसर आया है इसलिये बात कही जा रही है। यह क्या साधारण अवसर है? किसी भिखारीको खाना मिल जाय तो वह प्रसन्न होता है वैसा यह दृश्य है—ऐसा बन आया है! देखिये न, बैठे हैं सभी! निंदा नहीं करनी है—चुपचाप सुन रहे हैं। यहाँ तो पुत्रकी, स्त्रीकी, मकानकी चिंता; धन नहीं है उसकी चिंता। सारा संसार आशामें हैं—भीख, भीख और भीख! तृष्णा है; तृष्णा मिटी नहीं। कल्पनाका थैला भरे बैठा है। इच्छा ही किया करता है। यही इसका धंधा है! कल्पना, विकल्प, मान-बड़प्पनकी इच्छा; मनमें क्रोध भी आ जाय। अपना क्या है? धिक्कार है उसे! ज्ञानीका कथन भिन्न है। नाटक, सिनेमा आदि देखनेका शौक है इसलिये देखने जाता है। इससे तेरे जन्मको धिक्कार मिला! कल वृद्ध हो जायेगा, कोई बात भी नहीं सुनेगा। मोहने बुरा किया है। सब पर मोह; महल, आभूषण, स्त्री, बच्चे देखे कि मोह, मोह और मोह ही है! यह सब प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, पर यह सब तो सर्वथा नाशवंत है। ऐसी भावनाएँ करके अनर्थ कर डाला। जो वस्तु सत् है, जिसकी बात करनी है, वह नहीं करता। व्याख्यान सुनता है तो मानके लिये। सब मानके भूखे हैं। आप सेठ हैं न? आइये, आगे बैठिये। बड़े लोग हैं न? अतः आगे बैठते हैं, बातचीत करते हैं। इस मानने ही बुरा किया है, अन्यथा मोक्ष तो यहीं है। ज्ञानीपुरुषोंने बहुत बातें की हैं। हम भी बहुत बातें करते थे, ज्ञानी हाथ लग गये थे। आठ नौ साधु थे। छोटे बड़े सब समान नहीं होते। इस संसारमें सावधान किससे होना है? किसीको पता है? क्या है? आप समझदार हैं, कहिये न।

मुमुक्षु—एक सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेना चाहिये।

प्रभुश्री—यह तो ठीक है, इसको कौन मना कर सकता है? जीवको यही करना है। अन्य है ही क्या? सच है, सचको झूठ कैसे कह सकते हैं? यही करना है। इसके वर्तमानमें बहुत भेद हो गये हैं। यह मैंने माना सो सच है, यह नहीं। यह माना वह सच है? स्थान स्थानपर सब मान बैठे हैं। ऐसा हो गया है। उसकी खोजमें तो कोई विरले ही होते हैं! तो वह कैसा होगा?

मुमुक्षु—घरका समकित नहीं करना है। भगवानका हो वही कामका है। लोग मानते हैं पर अनुभव नहीं है तो वह नाम समकित है, भाव समकित नहीं है। ऐसे समकित नहीं होता।

प्रभुश्री—यह सुगम है। अभी तो ऐसा (दुर्गम) कहा, अब सुगम कैसे हो गया? ज्ञानीके वचन कैसे निकाल दें? आपके पास लाखों रुपया होनेसे समकित मिलेगा क्या? भाव और परिणामसे मिलेगा। यह आपके पास है। छोटा बड़ा नहीं देखना है। भाव और परिणाममें निहित है। यह तो सही है कि कारणके बिना कार्य नहीं होता—कारण और कार्य कहा जाता है; वह होगा तो कार्य होगा, अन्यथा नहीं। इसीकी कमी है। इसे प्राप्त करना चाहिये। यह कैसे मिलेगा? पुरुषार्थसे।

मुमुक्षु—'दान, शील, तप, भाव'

प्रभुश्री—सत्पुरुषके समागमसे जो होता है वह सीधा होता है। जीव मरजिया होकर पुरुषार्थ करे तो मिथ्यात्व जाता है। पुरुषार्थ करे तो मिलता ही है। कुछ पुरुषार्थ करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. २७-१-३६, शामको

स्वयंको समझना है, कोई भी बात सुनकर बातका सार समझना चाहिये। बात बहुत भारी की! फिर चिंतामणि लगेगी। संसार असाररूप है। मनुष्यभव पाकर भी संसारमें भटक-भटककर नरकमें जाता है! धन मिलेगा, रुपया पैसा मिलेगा, पर चिंतामणिके समान आत्मा मिलना कठिन है। पैसा टका मिलेगा, पर साढ़े तीन हाथकी भूमि पर जला देंगे। रुपया, पैसा, स्त्री, बच्चे कोई भी साथमें नहीं जायेगा। कोई किसीका नहीं है। है क्या? मेरा घर है? पर वह भी नहीं रहेगा। जिसके लिये 'मेरा मेरा' किया है, उसे छोड़ना पड़ा है। एक सुई भी साथमें नहीं जायेगी, पैसा टका पड़ा रहेगा। जीवका जो एक कर्तव्य है उसे तो वह समझता नहीं है। करना तो एक ही है। मुख्य बात है: सबके पास भाव है। भाव ही सत्संग, सद्बोध—पानी पीनेसे प्यास बुझती है। भूखा हो तो खानेसे तृप्ति मानता है, पर आत्मा कभी खाता नहीं, मरता नहीं, जन्मता नहीं। आत्माको पहचाननेकी विशेष आवश्यकता है। अन्य तो सब किया है, पर यह नहीं किया है। पूर्ण भाग्य हो तो काम होता है। पानीमें डूबते हुए डुबकी लगाने जैसा है। इस संसारमें ही डूब रहा है। संसारमेंसे कोई निकलता नहीं। मात्र जिसने भावना की है, शरण ग्रहण किया है, वह जहाज मिले तो पार लग जाता है। अन्य कौन निकल सकता है? कोई निकल पायेगा?

(उठकर जानेवालेको संबोधित कर) मेहमान है। चेत जायें—दो घड़ी दिन है। 'वनसे भटकी कोयल।' यहाँ बैठे हैं, ये सभी मेहमान हैं। ये कहीं जानेवाले हैं और वे भी कहीं जायेंगे। यह मेरी माँ-मौसी कहलाती है, पर आत्मा किसीका पुत्र या पिता हुआ है? सब मोह है, ममत्व-माया है। सब मिथ्या है। उसे सत्य मानकर सिर पटका है! भूसा कूटनेसे दाने नहीं निकलेंगे। पानी बिलौनेसे मक्खन नहीं निकलेगा। खोटेको खरा माना है। जो करना है वह क्या करना है?

मुमुक्षु—"दूसरा कुछ मत खोज, मात्र एक सत्पुरुषको खोजकर उसके चरणकमलमें सर्व भाव अर्पण करके प्रवृत्ति किये जा। फिर यदि मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना।" पहले सत्संग, श्रवण और अवधारणा कर परिणाम और भाव करने चाहिये।

प्रभुश्री—यदि जीव सत्पुरुषार्थ करे तो सारा काम निबट जाये। किसी महापुरुषकी शिक्षा है—"दूसरा कुछ मत खोज, मात्र एक सत्पुरुषको खोजकर उसके चरणकमलमें सर्व भाव अर्पण करके प्रवृत्ति किये जा। फिर यदि मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना।" विशेष रूपसे लिखकर रखने योग्य है। ऐसा करना चाहिये। कोई तेरा होनेवाला नहीं हैं। अतः जीवको यह करना है कि सत्संग करे, इसके समान कमाई किसीमें नहीं है। दो घडी समय जाये तो वह कुछ गिनतीमें नहीं है। हमने सत्संगमें बात सुनी यों कहे पर उसका पता नहीं है, उसके मूल्यका पता नहीं है। जीवको यथार्थ विचार करना है। अन्य काम करने हों और पचास रुपये कमाने हों तो दौड़कर जाता है, पर कल सुबह मर जाना है। पुनः पुनः ऐसा अवसर कहाँ मिलेगा? अतः लो, कर ही लेता हूँ, ऐसा विचार अभी नहीं आया है। यह जो सब मिला है वह रहनेवाला नहीं है, जानेवाला है। जो करना है उसका पता नहीं है और उसकी सँभाल भी नहीं है। सँभाल तो अन्य वस्तुओंकी है। यह तो मानो करके बैठा है! करनेका तो रह जाता है और न करनेका आगे धरता है। व्यापार-धंधा, बच्चोंकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शादी आदि करता है और भागदौड़ कर माथापच्ची करता है! पानी बिलौनेसे मक्खन नहीं निकलेगा। महान दुःख है! किसे कहें? बात कुछ कहने जैसी नहीं है। किसको कहें? कोई आत्मार्थी हो तो बात की जा सकती है। इस संबंधमें ही उत्सुकता रखनी चाहिये। रात दिन बीत रहे हैं पर सब व्यर्थ! कुछ गिनतीमें नहीं। सत्समागम हुआ होता तो गिनतीमें आता। पाँच-पंद्रह मिनिट सत्समागम हो तो भाग्य! और कहता है कि व्याख्यान सुनकर आया हूँ, पर फोड़ सिर। कहनेका कुछ और है वह समझमें नहीं आया। अंतरंगमें विचारकर श्रद्धा करनी है। धैर्य रखें तो काम होता है। यही शिक्षा है। इतनी तो श्रद्धा कर। एक हजार रुपयें प्राप्त करे, पर पापकर नरक-तिर्यंचमें जाता है। किन्तु इससे तो देवगति होती है, अन्य नहीं। यहाँसे छूटनेकी देर है। खेलना है तो न खेलें क्या? जो करना है वह न करें क्या? मैं तो करूँगा, ऐसा कहता है, पर यही तो तेरी तकलीफ है! अवसर निकल गया तो बस हो गया! मघाकी वर्षा हो रही है, जिनके पास पात्र थे उन्होंने भर लिये हैं, वे ही पीयेंगे। मघाका जल मीठा होता है, उससे रोग नहीं होता, रोग मिट जाता है, ऐसा जीवने किया नहीं, वह करना चाहिये। यह इसके लिये, यह इसके लिये ऐसा नहीं; आत्माके लिये ही है। "चेत भरत, चेत!" यों कहते थे, ऐसे चेतना है। मात्र एक भाव। यहाँ पाँच मिनिट बैठे तो क्या रुपया पैसा दिया कि लो, ले जाओ इतना? मात्र कोई एक बात आत्माके हितकी ग्रहण हो गयी तो उसका काम हो गया। यही अच्छी बात हुई है।

"हमें अमुक कार्य करना है, हाँ" यों इस जीवने हजारों अन्य काम किये हैं, पर यहाँ (सत्संग) करेगा तो देवगति प्राप्त होगी। अन्यथा फिर धूल फाँक, धूएँके मुट्ठे भर! यह तो तेरा काम होगा, जन्म सफल होगा। 'मनुष्य देहका अवसर रे, फिर फिर नहीं मिले।" अतः चेत जा। जो वार करे उसकी तलवार, करे उसके बापका! तेरे भाव देख! तुझे आत्माकी दया आती हो तो कर ले। बार बार मौका नहीं मिलेगा। समझा? समझने योग्य है। सब बातें करते हैं—'बेहद अच्छी बात कही' पर 'तुंबीमें कंकड़ है।' यह बात की वह किसे समझमें आयेगी? बात चमत्कारी है! पर इसका इच्छुक कौन है? 'असंग-निर्मोह' ये बातें कभी सुनी नहीं है। मुँहसे बड़बड़ बोलता है, पर उससे कहीं कल्याण होता है? कल्याण तो समझनेसे, श्रद्धा करनेसे, भावना करनेसे होगा। भाव—

"भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान;
भावे भावना भाविये, भावे केवळज्ञान."

ऐसा किसी स्थान पर सुना है? किसीको सौ पाँचसौ रुपया देनेपर कोई देगा? यह कैसी वस्तु है? मनुष्यभवका यह अवसर बहुत महान है। बहुत दिनोंके बाद यह बात सुनी है, क्या यह किसीने गाली दी है? बात तो सच्ची कही है। श्रद्धा हो तो काम बन जाय। यहाँ पुण्यशाली जीव आते हैं, लक्ष्य रखते हैं, लक्ष्य छोड़ते भी नहीं। पुत्र-पुत्री हों तो भी क्या? न हों तो भी क्या? मात्र एक मनुष्यभव मिला तो इसे सत्समागममें व्यतीत करना है। यदि सत्संगकी पकड़ हो जाय तो देवगति प्राप्त होती है। ऐसी कुछ बात है? जिसने आत्माको जाना वह कर सकता है। आत्माका पता किसे है? "ज्यां लगी आतमा तत्त्व चिन्यो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व जूठी।"

"जिहाँ लगे आतम द्रव्यनुं, लक्षण नवि जाण्युं;
तिहाँ लगे गुणठाणुं भलुं, केम आवे ताण्युं?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब इसके हाथमें है, यह करे सो होता है। आस्रवमें संवर और संवरमें आस्रव करता है। जो बाँधे उसको बाँधता है और छोड़े उसको छोड़ता है। जिसने आत्माको जाना, उसे फिर पंचायत कैसी? सब छोड़ना है। यह मेरे द्वारा ग्रहित है ऐसा कहाँ लगता है? प्रमाद और आलस्यमें सब खोया है। आत्माकी संभाल किसने ली है? उसकी गिनती नहीं है। तब सिर फोड़! जाने दे, बेटा होकर खाया जा सकता है। 'मेरे बापकी पत्नी! ला, पानी पिला' ऐसा कहे तो नहीं पिलायेगी किन्तु, 'माँजी, पानी पिलाइये' ऐसा कहे तो पिलायेगी। अतः इस जीवको चेतना चाहिये। बात अमूल्य चमत्कारी है! अर्थ सुना नहीं। सत्संग तो अमृत है! जिसका भाग्य होगा वही समझ सकेगा। क्या करना है, इसका ही पता नहीं है। कहिये, क्या करेंगे?

१. मुमुक्षु—[1]सुहगुरुजोगो तव्वयणसेवणा आभवमखंडा।

प्रभुश्री—तुंबीमें कंकड़! मुँहसे बोल गये बस, अर्थका पता नहीं है। इसकी जिज्ञासा ही कहाँ है? बाल-बच्चोंकी चिन्ता है। पर इसकी चिंता कहाँ है? बच्चा बीमार हो तो डॉक्टरके पास भागता है, पाँच पचास रुपये खर्च करता है। पर आत्माके विषयमें कुछ नहीं किया। "हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?" जैसे भाव वैसे प्रभु मिलते है। जैसा भाव करे वैसा फल मिलता है। बाह्यभाव हो तो क्या मिलेगा? चेत जा, समझा तभीसे प्रभात। कुछ कर ले। ऐसा अवसर फिर कहाँ मिलेगा? कुछ कर लेना चाहिये। करे उसके बापका। संक्षेपमें कहते हैं—सत्संग करना भूले नहीं। इसमें लाभ है। थोड़ा किया होगा, तो भी उसका फल मिलेगा। सार ग्रहण करें। जिससे हित हो वह करें। मनुष्यभवमें लक्ष्य लेना चाहिये। मनुष्यभव प्राप्त कर जिससे आत्माका हित हो वैसा सत्संग करना चाहिये। जीवको पता नहीं है। काम बन जाये ऐसा सुअवसर है। ये ऐसी वैसी बातें नहीं हैं। मनुष्यभव होगा तो सुनोगे, कौअे-कुत्ते क्या सुनेंगे? अन्य भवमें क्या सुनेंगे? एक मात्र असावधानी और प्रमादने बुरा किया है। अन्य सब करता है पर धर्मके लिये नहीं करता। उसमें प्रमाद, आलस्य होता है।

२. मुमुक्षु—जीवका शीघ्र मोक्ष कैसे हो?

प्रभुश्री—प्रश्न कठिन है! जानकारी होनी चाहिये। शीघ्र मोक्ष कैसे हो?

३. मुमुक्षु—अमेरिका जानेके लिये विमानमें बैठे तो शीघ्र जाता है। इसी प्रकार सत्पुरुषार्थरूपी विमानमें बैठे और गुरु अनुकूल हों तो शीघ्र मोक्ष पहुँचता है।

प्रभुश्री—पहले संसारको छोड़े तो मार्ग शीघ्र मिलता है। पहले जानकारी होनी चाहिये। गाड़ीमें बैठकर जायेंगे, विमानमें बैठकर जायेंगे, ये सब बातें करते हैं। पर ऐसा होता नहीं। यह मोक्ष कैसा है इसका पता है? बातोंसे बड़े नहीं बनते।

"सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिनस्वरूप."

समझनेसे छुटकारा है। पहले सुनना होगा, फिर करना होगा। सब जानते हैं, तब माल लेते हैं न? बिना जाने कोई ढबाढब ले लेता है क्या? यह बात तो स्वयंको 'असंग अप्रतिबद्ध' सुनेंगे तब

---

१. सद्गुरुका योग, उनके वचन और सेवा भवपर्यंत मुझे अखंड प्राप्त हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगी। पहले 'एकम एक' यों पढ़ाई शुरू होती है। पढ़े बिना कहें कि बाँच, तो क्या बाँचेगा? इसी प्रकार जीवको जाननेकी जरूरत है। यह मेरा पुत्र, पिता, स्त्री, देह है ऐसा कौन करता है? भाव करता है। यह मेरा घर, यह सब। बंध और मोक्ष ये दो बात हैं। पहली बात बंध।

"सहु साधन बंधन थयां, रह्यो न कोई उपाय;
सत्साधन समज्यो नहीं, त्यां बंधन शुं जाय?"

बीस दोहे, क्षमापनाका पाठ ये महामंत्र हैं! कालकूट विष उतार दें ऐसे महामंत्र हैं। यदि इसका भेदी मिले और जानकारी ले तो सब हो जाय। जीव श्रवण करे तो विज्ञान प्राप्त होता है। श्रवण करनेसे पता लगता है। उससे कर्मका त्याग कर मोक्ष होता है। हमारे बाप-दादा करते आ रहे हैं; उसे कैसे छोड़ा जाय? तो कहते हैं कि धूल पड़ी उसमें! जो करना है वह तो किया नहीं। पुरुष, स्त्री, यह कौन है? आत्मा है। आत्मा पुरुष, स्त्री, पशु नहीं है। ये सब संबंध हैं, इसे तो छोड़ना है। मात्र एक आत्मा ही है। यह ठपका नहीं है, पर शिक्षा है। बीस दोहा और क्षमापनाका पाठ करने योग्य है।

★★★

ता. २८-१-३६, सबेरे

पत्रांक १८७ का वाचन–

"अंतिम स्वरूप समझनेमें, अनुभव करनेमें अल्प भी न्यूनता नहीं रही है। जैसा है वैसा सर्वथा समझमें आया है। सब प्रकारोंका एक देश छोड़कर बाकी सब अनुभवमें आया है। एक देश भी समझमें आनेसे नहीं रहा; परंतु योग (मन, वचन, काया)से असंग होनेके लिये वनवासकी आवश्यकता है; और ऐसा होने पर वह देश अनुभवमें आयेगा, अर्थात् उसीमें रहा जायेगा..."

बात वस्तुतः एक सत् है और एक पर है। परको छोड़कर सत्को लिया अतः कुछ बाकी नहीं रहा। जाना तो सही, पर यहाँ क्या कहना है? 'एक देश भी समझमें आनेसे नहीं रहा' क्या कहा? उन्होंने तो छोड़ा है। क्या छोड़ा है? परको छोड़ा है। अपना नहीं छोड़ा है और वह छोड़ा भी नहीं जा सकता। उन्होंने कहा असंग, तो अब संगवाला कैसे कहेंगे? किसी तारतम्यसे कह सकते हैं। प्रज्ञामें कचास है, जिससे सब समझमें नहीं आता। पर मूल बात तो यह है कि जो जाननेवाला है वह जानता है। उसको जाननेवाला है। आत्माको जाननेवाला ज्ञान है। जाननेवाला ही जानता है। परंतु जड़ नहीं जान सकता–कुछ भी करो, चाबी लगाओ, बुलाओ, यंत्र रखो, पर वह जानेगा नहीं और देखेगा भी नहीं। भेदका भेद क्या, यह जानना है और उसे वही जानता है। जिसे जानना है उसे जानता है ऐसा है कुछ? सिद्धगतिमें हो या अन्य चौरासी लाख जीवयोनिमें हो, पर जाननेवाला तो है ही। वही जानता है, अन्य कोई नहीं जानता। इसमें किसकी कमी है? योग्यताकी। योग्यता आने पर समझमें आयेगा। स्याद्वाद मार्ग है। वचन आत्मा, काया आत्मा, मन आत्मा ऐसा कह सकते हैं और नहीं भी कह सकते। एकको समझमें आये और एकको न आये, वह योग्यताकी कमी है। कोई समझे, कोई न समझे इसका कारण यह है। जिसको है उसको है, अन्यको नहीं। कई लोग आत्माको नहीं मानते, इस देहके कारण आत्मा है ऐसा कहते हैं; जैसा मनमें आता है वैसा बोलते हैं।

[चर्चा चली]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री–बात बहुत भली की। थोड़ा भी विचार नहीं किया। आपने क्या कहा वह थोड़ा जानना है।

मुमुक्षु–आत्माका कर्त्तापद तीन प्रकारसे हैं–"परमार्थसे स्वभावपरिणति द्वारा आत्मा निज-स्वरूपका कर्त्ता है। अनुपचरित अर्थात् अनुभवमें आने योग्य, विशेष संबंधसहित व्यवहारसे यह आत्मा द्रव्यकर्मका कर्त्ता है। उपचारसे घर, नगर आदिका कर्त्ता है।" अब आत्मा उस निज स्वरूपका कर्त्ता हुआ तो परस्वरूपका कर्त्ता नहीं है, जिससे पूर्वबद्ध निर्जरित होता है। अब दूसरी इच्छा क्या है? पर ऐसे ही होता रहता है।

प्रभुश्री–जैसे वृक्षको पहले पानी देते हैं तब फल मिलते हैं। इतना तो पहले करना ही पड़ेगा। परमार्थकी बात है, इससे बात चली है। प्रारंभमें यह न हो तो कुछ भी नहीं है। जड़को क्या कहेंगे? चेतनको कहेंगे। कौन है? आत्मा है। इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। इसका भान और पहचान नहीं यही भूल है।

मुमुक्षु– "चेतन जो निजभानमां, कर्त्ता आप स्वभाव;
वर्ते नहि निजभानमां, कर्ता कर्म-प्रभाव."

प्रभुश्री–इतना ही है ऐसा जानना पड़ेगा। अर्थात् ऐसा भाव आना चाहिये। आये बिना कैसे देखेगा? इतने ऊपर बैठे थे उन्हें दिखायी दिया, नीचेवालेको कैसे दिखायी देगा?

मुमुक्षु–ऊपर तो आना है, पर छाती पर जो भार पड़ा है, वह दूर नहीं होता।

प्रभुश्री–कभी भी उसे दूर किये बिना छुटकारा है? वह मिलना चाहिये। यदि वह दूर करनेवाला मिल जाय तो दीप प्रगटे, देर नहीं। यही कुछ कमी है। इसीसे यह रुका हुआ है। इसे प्राप्त करने पर काम होगा, अन्य कोई उपाय नहीं। इसका उपाय क्या है?

मुमुक्षु–सत्संग और सत्पुरुषका योग बारंबार करना अर्थात् सत्पुरुषार्थ करना।

प्रभुश्री–एक नयकी अपेक्षासे इसे स्वीकारना होगा। पर जीवने अनंत बार यह सब किया है, पर कुछ कसर रही है। अर्थात् तुम्हारी बात निकल गयी–अवश्य कमी है। यह तो बात प्रत्यक्ष सुनी हुई है, अनुभूत की हुई है उसे कह रहा हूँ। यह जो बैठे हैं उन्हें निकट आनेकी आवश्यकता है। मरजिया होना पड़ेगा। एक मरजिया सौको भारी। 'जो सिर काटेगा वह माल पायेगा।'

मुमुक्षु–"समीपमुक्तिगामी जीवको सहज विचारमें ये सप्रमाण होने योग्य हैं।" अर्थात् समीप तो आना ही पड़ेगा।

प्रभुश्री–बात तो यही करनी है। अन्यत्र पाँव रखनेकी आवश्यकता ही कहाँ है? अन्यत्र पैर रखनेकी आवश्यकता क्या है? अन्यत्र दृष्टि डालनेकी क्या आवश्यकता है? जो है सो है। उन्होंने आत्माको जाना है यही तो भिन्नता हुई है। यह अन्य सब जो देख रहे हैं, उसमें भेद पड़ा। यह दृष्टि नहीं। दृष्टिको बदलना चाहिये इसका पता नहीं है। इतना आ जाय तो उसका बल कितना अधिक बढ़ जायेगा? तब कुछ शेष नहीं रहेगा। ऐसा करनेसे लाभ होता है–बदल गया! सब जो था वह बदल गया! समझको ही समकित कहा है। परिवर्तन न हुआ तो समकित कैसा? यों बंधन होता हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो परिवर्तन नहीं कहा जा सकता। तथा समकितीको भेद पड़ा है, वह अन्यभावमें तन्मय नहीं होता ऐसा प्रत्यक्ष देखते हैं, ऐसा समझमें आता है, यही कर्त्तव्य है। ज्ञानी हैं। लेने जाना नहीं है। वही बतायेंगे। आप इतने लोग बैठे हैं, संसारमें अन्य अनेक बैठे हैं—कैसे कैसे धनाढ्य, चतुर, पर कहींके कहीं मग्न हो रहे हैं! क्या उन्हें लेश भी पता है? और आपको यह बात समझमें आ गयी तो काम हो जायेगा। एक जरा दृष्टि डाली है इससे आपको लाभ होगा। कुछ बात की, भागीदार बनाया तो रिद्धि आती ही रहेगी। वस्तु तो यही है, यही करना है। इसीमें रमण करना है। यही करवाना है। "इसे सुननेसे, इस पर श्रद्धा करनेसे ही छूटनेकी वार्ताका आत्मासे गुंजार होगा।" अन्य क्या कहे? बातोंसे बड़े नहीं बनाने हैं। कोई छोटा-बड़ा नहीं हैं। जाने दीजिये। यह सब अहंकार है मरनेके लिये! यह सब विष है। मर जायेंगे।

"धरम धरम करतो जग सहु फिरे, धर्म न जाणे हो मर्म, जिनेसर;
धर्म जिनेसर चरण ग्रह्या पछी, कोई न बांधे हो कर्म, जिनेसर."

इतनेसे अक्षर समझ लें तो फिर कर्म नहीं बाँधेंगे। बात आपको कही कि अमुक वस्तु है, देखो तो तुरत पता लग जाय। सोना तो सोना ही है। शुद्ध स्वरूप! यही समझना और यही कर्त्तव्य है। करना यही है, अन्य कुछ नहीं। मायामें आसक्त होना नहीं है, प्रसन्न होना नहीं है और मानना भी नहीं है। दिन बीत रहे हैं; पर इसीसे एक न एक दिन काम होगा। इससे अतिरिक्त कुछ नहीं करना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशसंग्रह—२

ता. २६-६-१९२२

चाहे जैसा प्रतिबंध हो, मरण समान वेदना हो, चाहे जैसे मायाके फंदेमें फँस गये हों, परंतु आत्महितको कभी नहीं भूलना चाहिये!

ये बुजुर्ग संदेसरसे नित्य यहाँ आ सकते हैं, तब पासमें रहनेवालोंको तो यह अमूल्य लाभ शेष जीवनमें जितना ले सकें उतना थोड़ा बहुत ले लेना चाहिये। हाथ जोड़कर कहता हूँ कि यह एकांत नहीं है। स्याद्वादवाणीको कौन समझेगा? समझें या न समझें तो भी हितकारी है। इस अमूल्य अवसर पर आप सबके कर्मके दल सत्पुरुषकी कृपासे क्षीण हो रहे हैं।

जीवको भागते हुए रुक कर, पीछे मुड़कर प्रारब्धानुसार जो जो प्राप्त हुआ हो उससे घबराये बिना संयोगोंमेंसे सार ग्रहण कर लेना योग्य है। एक दुर्गंधित कुत्ता राजमार्गके पास पड़ा था जिसकी दुर्गंधसे सारी सेना घबरा गई, पर श्रीकृष्णने तो हाथीसे उतरकर जाँच की। उसके दाँत और नाखून कैसे अखंडित हैं! ऐसा कहकर गुण ग्रहण किया। यह तो लौकिक बात है, पर परमार्थसे तो यह शरीर वैसा ही दुर्गंधित है। उसमें नित्य स्थायी रहनेवाला तत्त्व तो आत्मा है, उसके गुण ग्रहण करने योग्य हैं, उसे पहचानना है। सत्पुरुषकी शरण स्वीकार कर अहंकारको छोड़ते जाना और कार्य करते हुए भी 'सहजात्मस्वरूप'का जाप करते रहना चाहिये। ऐसा करने पर आस्रवसे संवर हो जायेगा। महात्मा पुरुषकी बाह्य चेष्टा पर ध्यान न देकर उनके आत्माकी चेष्टा पर ध्यान देना चाहिये। ज्ञानी और अज्ञानीके कार्योंमें वासनाक्षयका भेद है। आंतरिक वासनाका मूल ज्ञानीने क्षय किया है। इस दृष्टिको भूलना नहीं चाहिये। सभी सत्पुरुषोंको समान मानकर गुरु भावनाको गौण नहीं करना चाहिये, किन्तु उसमें दृढ़ता ही लानी चाहिये। एक ही व्यक्तिके उपदेशसे आत्महित सिद्ध हुआ है, सिद्ध होता है और सिद्ध होगा। ऐसी दृढ़ मान्यता रखनेसे यह भव सफल होगा। संपूर्ण जगतके प्रति शिष्यभाव रखनेसे मूलमें जिस निमित्तके द्वारा शीघ्र आत्महित होता हो और जो जीवन सद्गुरुको अर्पण हो चुका हो, वह निरर्थक भटकनेमें व्यर्थ न चला जाय, यह ध्यान रखने योग्य है।

ता. २३-७-२२

बहुत भागदौड़ करनेमें धर्म नहीं है और बहुत ढील करनेमें भी नहीं है, मध्यस्थताका मार्ग ग्रहण करना चाहिये।

ता. ६-९-२२

यह अवसर चूकना नहीं चाहिये। परम दुर्लभ मनुष्यदेह और ऐसे संयोग मिलने सुलभ नहीं हैं। महान पुण्यके योगसे जो लाभ प्राप्त हुआ है उसे चूकना नहीं चाहिये। शेष मनुष्यभव इस(भक्ति)के लिये ही बिताना योग्य है।

जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ।

(आचारांग-४, १२३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह वाक्य कितना अधिक मूल्यवान है! इसमें सर्व शास्त्रोंका सार समाहित है। उसका वर्णन नहीं हो सकता। उसका अर्थ करने पर समझमें आ गया ऐसा मानता है, पर वह मिथ्या है। यह नहीं, उसे अनुभव करना ही वास्तविक है। सभी अपने अपने क्षयोपशमके अनुसार समझते हैं, पर जिसकी इंद्रियाँ विषयव्यापारको छोड़कर एक ही आत्माकी ओर मुड़ी हैं, उसे उसमें परम अद्‌भुत रहस्य–चमत्कारी बातें ज्ञात होती हैं।

★

"आप स्वभावमां रे! अबधू सदा मगनमें रहना।"

[भक्तिमें गाया गया पद]

'अबधू' अर्थात् आत्मा। हीरा, माणिक, मोती, पैसा मिले तो यह जीव दौड़ दौड़कर जाता है, पर आत्मा आत्माको संबोधित कर जो पुकार रहा है, उस पर ध्यान नहीं देता।

"निर्दोष सुख, निर्दोष आनंद, ल्यो गमे त्यांथी भले;
ए दिव्य शक्तिमान जेथी जंजीरेथी नीकळे."

आत्माका लक्षण जानना, देखना और स्थिर होना है, इसे निरंतर स्मरणमें, अनुभवमें रखना चाहिये। फिर भले ही मृत्युके समान वेदना आ जाय, पर 'जानने देखनेवाला ही मैं हूँ,' अन्य तो जा रहे हैं। मात्र प्रेमसे उन्हें हाथ जोड़कर अतिथिकी भाँति बिदा होते देखना चाहिये। उनमें आत्माको कुछ चिपके ऐसा नहीं है, नहीं कुछ लेना या देना! जो जो उदयमें दिखाई देता है, वह जानेके लिये ही है–आया कि गया। वज्रके ताले लगाकर कहें कि जो आना हो वह आये–मरण आये, असाता आये, सुख आये, दुःख आये, चाहे जो आये, पर वह मेरा धर्म नहीं है। मेरा धर्म तो जानना, देखना और स्थिर होना ही है। अन्य सब तो पुद्‌गल, पुद्‌गल और पुद्‌गल ही है। चक्कर आयें, बेहोश हो जायें, श्वास चढ़े यह सब देहसे अलग होकर बैठे बैठे देखनेमें आनंद आता है।

[उस समय प्रभुश्रीको चक्कर, मूर्छा आती थी]

जागृत, जागृत और जागृत रहें। हाय! हाय! अब मर जाऊँगा, यह कैसे सहन होगा? ऐसा ऐसा मनमें नहीं आने देना चाहिये। वस्तुको जाननेके बाद उसे कैसे भूला जा सकता है? मैं देह नहीं हूँ, यह निश्चय हो जाना चाहिये। पूर्वमें ऐसे कई हो गये हैं; जिन्हें घानीमें डालकर पेरा गया, फिर भी उनका चित्त विभावमें नहीं गया। संयोग, संयोग और संयोगोंके सिवाय हमारे आसपास है ही क्या? पहने हुए कपड़े, मनुष्य, सुख दुःख आदि संयोगवश प्राप्त हुए हैं और उनका नाश होता या वे दूर होते दिखाई देते हैं। पर अंतमें कौन किसके साथ आता है? सबसे उदासीन व्यवहार करना चाहिये। पर इस जीवको तो अकड़कर खड़े रहना है! संसार भोगना है और मोक्ष भी प्राप्त करना है, यह तो त्रिकालमें भी संभव नहीं है। मार्ग एक ही है। जब तब उसी मार्गसे मोक्ष प्राप्त होगा। 'मेरा मेरा' करते तो मर जाना है। 'देखनेमें विष है, मृत्यु सिर पर है, पैर रखते पाप है,' पर दीनबंधुकी कृपादृष्टिसे सब कुशलक्षेम है। सदैव 'अधूरा, अधूरा और अधूरा' ऐसी भावना रखें। अहंकार तो मार डालनेवाला है।

हमने 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' मंत्रके जापकी रात दिन धुन लगायी पर विकल्प उठता कि 'अभी तक कुछ दीखता क्यों नहीं? आत्मा हो तो कुछ तो दिखाई देना चाहिये?' पर अरूपी आत्मा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसे दिखाई दे? फिर कृपालुदेवसे पूछा कि मंत्रका जाप तो बहुत किया, पर जैसा आप कहते हैं वैसा दिखाई क्यों नहीं देता? "कुछ नहीं, अभी चालू रखें।" ऐसा उत्तर मिला। इस जड़ जैसे देहमें चेतन दिखाई देता है। पर विश्वास और दृढ़तासे गुरुआज्ञाका पालन करना और देखने आदिकी इच्छा भी नहीं रखनी चाहिये। योगमें तो मात्र श्वास सूक्ष्म होती है। ज्ञानीने आत्माको जाना है, वही मुझे मान्य है, यह श्रद्धा ही काम बना देती है।

मुमुक्षु—यहाँ बैठे हैं उनका तो कल्याण होगा न?

प्रभुश्री—गोशाला जैसे विषमभावधारीको ज्ञानीपुरुषकी प्रतीति होने पर मोक्ष प्राप्त हुआ तो (सबकी ओर अंगुलि निर्देश कर) इन बेचारे जीवोंने क्या दोष किया है? पर यह जानना आत्म-हितकारी नहीं है, क्योंकि अहंकार आ जाता है।

सुख दुःख तो ज्ञानी, अज्ञानी दोनोंको कर्मवश भोगना पड़ता है, पर दृष्टि ही बदलनेकी आवश्यकता है। सब सुलटा कर लेना है। 'आप स्वभावमां रे! अबधू सदा मगनमें रहेना।" शांतिपूर्वक निश्चिततासे 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'के जापमें समय बिताना चाहिये। उससे निर्जरा होती है।

★★★

ता. ७-९-२२, पर्युषण पर्व

त्याग, त्याग और त्याग। 'श्रद्धा, सत्श्रद्धा, शाश्वतश्रद्धा।' 'सद्धा परम दुल्लहा।' यह महावीर स्वामीका परम विचारणीय वाक्य है। आगामी पर्युषण तक इस पर विचार करें।

★★★

ता. २१-९-२२

[1]"हांरे प्रभु दुर्जननो भंभेर्यो मारो नाथ जो;
ओळवशे नहीं क्यारे कीधी चाकरी रे लोल." [स्तवनमें गाया गया]

प्रभुश्री—इसका क्या परमार्थ है?

१. मुमुक्षु—'रीझ्यो साहेब संग न परिहरे रे!' एक बार कृपा हो जाय और फिर कुछ दोष हो जाय तो भी की हुई सेवाको नहीं भूलते।

प्रभुश्री—भाईका अर्थ ठीक है। आप बतायेंगे?

२. मुमुक्षु—सत्पुरुष की हुई सेवाको नहीं भूलते और किसीका कहा नहीं सुनते।

प्रभुश्री—'दुर्जननो भंभेर्यो' इसका अर्थ आपके विचारसे क्या है?

३. मुमुक्षु—काम, क्रोध, मान आदि दुर्जन, उनसे आत्मा घिरा हुआ है। पर सत्पुरुषकी सेवा की हो तो भटकना नहीं पड़ता।

प्रभुश्री—सबका अर्थ ठीक है—सभी नय सच्चे हैं। हमें तो सुलटा भाव लेना है, फिर क्या?

यह शरीर ही दुर्जन है। कितने ही जन्म बीत गये पर आत्माकी पहचान नहीं हुई। देहके धर्म तो ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंको होते हैं, पर अंतरंगकी चर्यासे ही ज्ञानीकी पहचान होती है। बाहरसे

---

१. मेरे नाथ ऐसे हैं कि दुर्जन उनके कान भर दे फिर भी मैंने जो उनकी सेवा की है उसे कभी नहीं भूलेगें! शरीर ही दुर्जन है, वह यदि विपरीत वर्तन भी करे तो भी समकित अचल है तो जीवका अवश्य कल्याण होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ फर्क नहीं होता। शरीर अच्छा हो तब तो कुछ नहीं, किंतु मृत्युके समयकी व्याधि और पीड़ाके समय ज्ञानी और अज्ञानीकी परीक्षा होती है। जीव बहुत तड़फता है; ऐसा सुंदर पाँच इंद्रियोंवाला शरीर छोड़कर जाना अच्छा नहीं लगता। 'मेरा मेरा' कर जिसमें आसक्त रहा, वही सब उस समय बाधक होता है, पर ज्ञानीको तो उसमें कोई सार ही नहीं लगा, तो उसे छोड़नेमें क्या देर? कृपालुदेवको सूखा रोग था। यह तो आप सबको मालूम है। कुछ लोगोंको मृत्युके समय दस्त लग जाते हैं, कुछकी आँखें फट जाती है; कुछकी साँस रूँधने लगती है, किसीको सन्निपात हो जाता है, परंतु ये सब बाह्य चेष्टाएँ हैं। साँस चलता है तब कैसा लगता है इसका हमें अनुभव है। उस समय तो अन्य कुछ सूझता ही नहीं, पर ज्ञानीको उसमें भी समता रहती है। कृपालुदेवने अपने भाईसे कहा, "मनसुख! माता पिताकी सेवा करना। अब मैं समाधि लेता हूँ।' यों कहकर करवट बदली। यों मृत्युके समय पहलेसे ही समता रखी हो वही उस समय स्थिर रह सकता है। थोड़ी भी माया रखी हो तो उसका कैसा असर होता है?

एक महाराज कथा कहते, जिसे सुनकर सब दंग रह जाते। सत्यके संबंधमें बोलना हो तो असत्यकी धूल उड़ा देते। ब्रह्मचर्यके संबंधमें बोलना हो तो बेधड़क गरज उठते। अहिंसामें भी ऐसी सूक्ष्मता और दयाभाव प्रकट करते कि व्याख्यान समाप्त होने पर लोग कहते "धन्य महाराज! आज तो खूब कहा!" किन्तु परिग्रहके संबंधमें बोलने पर नरम पड़ जाते। इससे एक शिष्यने विचार किया कि 'ऐसा क्यों होता है? चलो उनकी गद्दी या झोला देखें।' जब वे निवृत्त होने जंगल गये तब खूँटीसे उनका झोला उतारकर देखा, पर कुछ मिला नहीं। फिर तकिया देखा तो एक स्वर्णमोहर कपड़ेमें बाँधकर छिपायी हुई मिली। शिष्यको विश्वास हो गया कि यह वस्तु ही उन्हें परिग्रहके संबंधमें बोलने नहीं देती। अतः उस मोहरको निकालकर तकियेको बाँधकर वापस रख दिया और चला गया। फिर महाराज आकर बैठे तो ऐसा लगा कि तकियेको किसीने खोलकर बाँधा है। उन्होंने खोलकर देखा तो मोहर दिखाई नहीं दी। किन्तु ज्ञानी थे इसलिये समझ गये कि अच्छा हुआ, बला टली! चित्त वहाँका वहाँ चिपका रहता था, अब वह झंझट मिटा। दूसरे दिन परिग्रह पर बोलने पर थोड़े भी रुके नहीं और सबको बहुत आनंद आया। फिर सब चले गये, पर मोहर निकालनेवाला शिष्य बैठा रहा। उसने कहा, "महाराज! आज तो परिग्रह पर खूब बोले।" महाराज समझ गये और हँसकर कहा, "तेरा ही काम लगता है! बहुत अच्छा किया।"

★★★

ता. २२-९-२२

"गुरु दीवो, गुरु देवता, (गुरु) रविशशी किरण हजार;
जे गुरुवाणी वेगळा, रडवडिया संसार."

ज्ञान दीपकके प्रकाशित होने पर अंधकार कहाँ रह सकता है? जिसके द्वारा देखा जा सके वह देवता–स्वर्गीय कहो तो भी देव है और जिसमें तद्रूप करनेका गुण है वह देवता, अग्नि कहो तो भी ठीक है। गीली सूखी चाहे जैसी लकड़ियाँ, लोहे आदिको भी अग्नि अपने समान बना देती है, वैसे ही गुरु भी आत्मामय बनाते हैं, मोक्ष प्राप्त करवाते हैं। समकित प्रकट होनेके बाद मोक्ष न जाना हो तो भी वह ले ही जाता है। सूर्यकी अनंत किरणोंसे अंधकार नष्ट होता है, वैसे ही सद्गुरुकी अनंत शक्तिसे सर्व दोष दूर होते हैं। जिसके प्रकाशसे आँखें देख सकती हैं, ऐसे सूर्यके समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभावशाली सद्गुरु होते हैं। फिर संसारके तापमें शीतलता प्रदान करनेवाले चंद्रके समान भी सद्गुरु हैं। बात बहुत सूक्ष्म है—क्यों समझमें आ रही है न?—परंतु आत्महितकारी है।

★★★

ता. २२-९-२२

एक बार खंभातमें अंबालालभाईके घरके ऊपरी खंडमें मैंने कृपालुदेवसे कहा, "मैंने दो स्त्रियाँ, दो बच्चे, धन-दौलत आदिको छोड़ा तो क्या मैं त्यागी नहीं? अब मुझे और क्या छोड़ना शेष रहा है?" फिर कृपालुदेवने मुझे आडे हाथों लिया, "मुनि! दो बच्चोंको छोड़कर इतने सारे श्रावकों और संघाडेमें मन पिरोया है! अपनी स्त्रीको छोड़कर अन्य कितनी स्त्रियोंकी ओर दृष्टि करते हो? इसमें तुमने क्या छोड़ा? एक गया और उसके स्थान पर दूसरा आ गया!" तब मुझे लगा कि, "हाय! हाय! ऐसा है? तब तो सच ही मैं मुनि नहीं। मेरे पीछे तो बहुत उपाधि लगी हुई है।" तब कृपालुदेवने कहा, "अब तुम मुनि हो। मैंने छोड़ा है, मैंने त्याग किया है, इस अहंकारको मनसे निकाल दिया है इसलिये तुम मुनि हो।"

★★★

ता. ३१-५-२३

मानवदेह दुर्लभ है, उसमें भी सत्पुरुषका योग बहुत दुर्लभ है और उसके प्राप्त होने पर भी आयुष्यका योग मिलना भी दुर्लभ है। श्री देवकरणजी और श्री जूठाभाईको सत्पुरुषका योग मिला, पर आयुष्यकी कमी रह गयी।

एक सेठको बहुत सी दुकानें हों, उनमेंसे कुछमें लाभ और कुछमें हानि, ऐसे दृष्टांतवाली एक पुस्तकमें धर्मके चार भाग अलग अलग किये गये हैं, फिर उसके दस भाग किये हैं। उसको हमने पहले पढ़ा था और प्रत्येकमें कहाँ-कहाँ हानि है उस पर विचार किया था। सब दुकानोंकी कमी (हानि) दूर हो ऐसी एक दुकान परमकृपालुकी कृपासे समझमें आयी।

(मुनि मोहनलालजीसे) वचनामृतमें ऐसा लिखा है कि यदि तू स्वतंत्र हो तो दिनके निम्न भाग कर—भक्तिकर्तव्य, धर्मकर्तव्य आदि। उसमें धर्म और भक्ति दोनों आते हैं, इनमें क्या भिन्नता है?

मुनि मोहनलालजी—जो मंत्र मिला है उसका तथा सत्पुरुषकी मुखाकृति आदिका चिंतन, क्षमापना, बीस दोहे आदि जो सत्पुरुषने बताये हैं उन्हें बोलना यह भक्ति है, और स्वरूपका चिंतन धर्म है।

प्रभुश्री—हम कृपालुदेवके जीवनकालमें ऐसे ही दिन बिताते थे। दिनमें भिन्न भिन्न ग्रंथ पढ़े हों उनकी रातमें चर्चा करते। पर दिनमें सोनेकी मनाई थी जिससे रातमें सोनेके समयकी प्रतीक्षा करते। 'पुष्पमाला'में निद्राके लिये दो प्रहर कहे गये हैं, पर हमें एक प्रहर ही मिलता और प्रातः ४ बजे उठ जाते। प्रतिक्रमण आदि आवश्यक क्रियाओंसे निवृत्त होकर कुछ मुनि गोचरीके लिये जाते और हम पढ़ते। पूरा प्रहर न हो सके तो कमसे कम घड़ी दो घड़ी नियमित उसमें बितायें। धर्मका स्वरूप तो अनुभव होगा तब समझमें आयेगा। विषय, कषाय, प्रमाद और स्वच्छंदको दूर करना चाहिये और ये दूर होंगे भी। 'धर्म कहे आत्मस्वभावकूँ अे सत् मतकी टेक।'

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"भगवान मुक्ति देनेमें कृपण नहीं है, पर भक्ति देनेमें कृपण है, ऐसा लगता है।"

(पत्रांक २८३)

इसका अर्थ क्या समझें? [फिर चर्चा हुई]

'अभी रुकना, रुकना' कहा था। पर जो कहना था वह चला गया। (फिर थोड़ी देर बाद कहा) मुक्ति अर्थात् छूटना, तू कर्म बाँध और मैं छोड़ूँ ऐसा चलता रहता है। परंतु पात्रताके बिना भक्ति (आत्मा) प्रदान करनेमें कृपण है।

एक बालकृष्ण नामक जैन मुनि थे। एक बार सौराष्ट्रमें एक राजाको उन्होंने कहा कि वर्षा आयेगी। राजा उपाश्रयसे घर पहुँचे कि तुरत वर्षा हुई। अतः उस राजाकी उन पर श्रद्धा हो गयी और अपने राज्यमें शिकारकी मनाई कर दी।

दीक्षाके पहले उन महाराजसे हम मिले थे। वटामणमें वे कभी-कभी आते थे। देवकरणजी और हम साथमें थे। देवकरणजीको ऐसे महाराजकी वंदना करना अच्छा नहीं लगा, पर मैंने सरलभावसे नमस्कार किया था और उन्होंने आशीर्वाद दिया था कि तुझे ज्ञान होगा।

एक बार वटामणमें सभी अग्रणी वणिक और भावसार बैठे थे। तभी बड़े साहबके लिये सिपाही दो बकरे ले जा रहे थे। वे उनसे छीनकर पांजरापोलमें भेज दिये गये। सिपाहीको कुछ लालच दिया, पर पैसे कम पड़ जानेसे वे नहीं माने और दस पंद्रह लोगोंको पकड़कर साहबके तंबूके आगे ले गये। फिर सिपाही धमकाने लगे तब हमने एक युक्ति की, और सबने जोरसे चिल्लाना शुरू कर दिया। साहबने बाहर आकर पूछा कि यह क्या हो रहा है और इन्हें क्यों पकड़कर लाये हो? तब सबने कहा कि बकरे कहीं भाग गये होंगे इसलिये हमको पकड़ लाये है। यह सुनकर साहबने कहा 'इन्हें छोड़ दो' और सब छूट गये।

★★★

ता. ३१-५-२३

"अभिनिवेशके उदयमें उत्सूत्रप्ररूपणा न हो इसे मैं ज्ञानियोंके कहनेसे महाभाग्य कहता हूँ।"

(वचनामृत)

मुमुक्षु–अभिनिवेश अर्थात् आग्रह। एक शास्त्रीय अभिनिवेश और दूसरा लौकिक अभिनिवेश। प्रत्यक्ष ज्ञानी होने पर भी शास्त्रका बहुत सन्मान करना शास्त्रीय अभिनिवेश है और अपनी समझको सच्ची सिद्ध करनेका प्रयत्न करना लौकिक अभिनिवेश है।

प्रभुश्री–अपनी पकड़ (कल्पना)को सच्ची सिद्ध करनेसे मूलमार्गका विरोध होता है। ऐसा न हो तो महाभाग्य समझा जाता है। किसी साधुसे अमुक आचारका पालन न होता हो तब वह ऐसा कहे कि शास्त्रमें तो ऐसा है पर मुझसे वह पालन नहीं होता, तो उसे भाग्यशाली समझना चाहिये। मरीचिके भवमें महावीर स्वामीने अपने पास दीक्षाका आग्रह करनेवाले एक व्यक्तिसे कहा कि 'धर्म ऋषभदेवके पास है और यहाँ भी है,' यों मिश्र वचन कहनेसे उन्हें बहुत लंबे कर्म बाँधकर जन्मोजन्म परिभ्रमण करना पड़ा था।

मुमुक्षु–अपनी इच्छा न हो फिर भी प्रभु, उदयके कारण ऐसा बोला जाय तो क्या हो?

[इसके समाधानमें पत्रांक ४०३का वाचन कराया]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री–मुमुक्षुको तो सत्पुरुषके गुणगान करने चाहिये, पर धर्म तो सत्पुरुषसे ही सुनना चाहिये। कुछ सयानापन किया तो विषभक्षणके समान दुःखदायी है।

सत्पुरुषके बोधका असर दिखाई नहीं देता, पर काम करता रहता है और परिणमित होता रहता है। धर्मराज और अन्य पांडव हिमालय पर गये थे। वहाँ कर्मानुसार सब बर्फमें धँस गये– कोई घुटने तक, कोई कमर तक तो कोई गले तक, धर्मराजकी मात्र अंतिम अंगुलि बर्फमें धँसी रही तब उन्हें अपने दोष समझमें आये, फिर आगे गये। यों किसी-न-किसी बहाने जीव अटके हुए हैं। ऐसा अपूर्व जोग मिलना दुर्लभ है।

★★★

ता. ३१-५-२३

छत पर एक विचार स्फुरित हुआ था वह जानने योग्य है–

संतसे, सत्संगसे, प्रत्यक्ष पुरुषकी वाणीसे और प्रत्यक्ष पुरुषसे जिसे श्रद्धा हुई है, उसकी आज्ञानुसार चलनेवाला ज्ञातपुत्र (ज्ञानीका पुत्र) है। ये सब समकित प्राप्तिके साधन हैं।

इससे आत्मधर्मका पोषण होता है। इसमें किसीको कुछ शंका हो तो कहो।

मुमुक्षु–प्रत्यक्ष पुरुष और उनकी वाणी तो समझमें आती है, पर संत और सत्संग, इसमें संत अर्थात् आत्माको प्राप्त न किया हो वे या कौन?

प्रभुश्री–सद्गुरु, संत और परमात्मामें भिन्नभाव नहीं है, सभी आत्मा हैं।

★★★

ता. ३१-५-२३

मुनि मोहनलालजी–(मुमुक्षुसे) तुमने समाधि और बोधिके संबंधमें विचार किया?

मुमुक्षु–प्रभुश्रीके चरणकमलके योगसे सब हो जायेगा। इनकी कृपासे सब काम सुधर जाते हैं।

प्रभुश्री–(एक वाक्य बोलनेके बाद मोहनलालजीसे) याद रहा? लिख रखने योग्य वचन हैं।

[मोहनलालजीको याद न रहा। अतः ना कहकर प्रतीक्षा करने लगे।]

प्रभुश्री–पर वह तो चला गया। [फिर याद कर लिखाने लगे।]

स्वयंको स्वयंका बोध होनेसे स्वयंको स्वयंमें समा जाना चाहिये–भावसे और विचारसे, अन्य विकल्पोंको छोड़कर, यह विचार समाधि प्राप्त कराता है।

अप्रतिबंध (प्रतिबंध रहित), असंग (सर्व संगसे रहित), यह शांतिका मार्ग है।

पुरुषार्थ, भक्ति कर्तव्य है, स्वच्छंद और प्रमादको छोड़कर। जागृत हो, जागृत हो।

सत्संग-सत्पुरुषके बोध पर विचार करना चाहिये। रत्नचिंतामणिके समान यह मनुष्यभव मिला है, पर जीवको जो लक्ष्यमें लेना चाहिये उसे जाना नहीं है। अनादिसे जो भूल हो रही है, वह क्या है? और कैसे दूर हो? ज्ञानीपुरुषोंने इस पर विचार-विचारकर निश्चय किया है, उसे अवधारण करना चाहिये।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ जो हैं, उन सबके धन्यभाग्य हैं, ऐसा समय मिलना दुर्लभ है! सारा संसार जन्म, जरा और मृत्युके त्रिविध तापसे जल रहा है। उसमें सत्संगका ऐसा योग मिलना दुर्लभ है। धर्मकी गरज किसे है? यहाँ इन सबको किसने बुलाया है? किसी भाग्यशालीको ही जिज्ञासा उत्पन्न होती है। किससे कहें और कौन सुने? अन्यथा प्रभु, (गला बताकर) यहाँ तक भरा है! अब समय हो गया है, पधारिये।

सर्व धर्मके अंग जैनमें आ जाते हैं। किसी मार्गकी निंदा नहीं करनी है। जिस मार्गसे संसार मल दूर हो, ऐसी भक्ति करनी है। क्षमापनाका पाठ, बीस दोहे और 'मूल मार्ग' नित्य बोलें और हो सके तो अपूर्व अवसर भी।

★
★★

ता. १-६-२३

'श्रीमद् राजचंद्र'मेंसे वाचन–

"यह तो अखंड सिद्धांत मानें कि संयोग, वियोग, सुख, दुःख, खेद, आनंद, अराग, अनुराग, आदि योग किसी व्यवस्थित कारणको लेकर होते हैं।" (वचनामृत)

प्रभुश्री–'व्यवस्थित कारण' क्या?

मुनि मोहनलालजी–निर्माण हो चुका है।

प्रभुश्री–अशुद्ध चेतना–विभाव–मोहनीय कर्म, इन कारणोंसे संयोग वियोग आदिकी भावना हुई, वही क्रमशः दिखाई देती है।

★

मुमुक्षु–सत्पुरुष पर सच्ची श्रद्धा आ गयी है, ऐसा कब समझा जाय?

प्रभुश्री–यह आत्महितकारी प्रश्न है। इसका उत्तर यों दें कि ऐसा हो तब सच्ची श्रद्धा आयी मानना चाहिये।

(मुनि मोहनलालजीसे) विचारमें आये सो कहें।

मुनि मोहनलालजी–सबको बोलने दें, फिर मुझे जो कहना है, वह कहूँगा।

१. मुमुक्षु–कठिनसे कठिन आज्ञाको भी बिना संकोचके आराधन करनेको तैयार हों तब।

२. मुमुक्षु–संसारकी अपेक्षा सत्पुरुष पर अधिक प्रेम आता हो तब।

३. मुमुक्षु–कुगुरु पर से श्रद्धा हट जाये और सत्पुरुष पर प्रेम आवे तब।

४. मुमुक्षु–रुचिपूर्वक संसार भोगनेकी अपेक्षा संसार भोगनेके भाव ही मंद पड़ जायें तब।

५. मुमुक्षु–जीव अनादिकालसे रागद्वेषके कारण भटक रहा है, वह मिटे तब।

मुनि मोहन०–एक तो सत्पुरुषकी आज्ञाका आराधक बने और दूसरा अपने दोष टाले–पदार्थका अज्ञान, परम दीनताकी कमी और संसारके अल्प भी सुखकी इच्छा–ये दोष टलें तब।

प्रभुश्री–सत्पुरुष है यह कैसे पता चले? अन्यथा वासदके पास कुछ लोग कूएमें गिरे थे, ऐसा आज्ञाराधनका फल प्राप्त होता है।

मुनि मोहन०–सोनेकी परीक्षा जैसे कसौटी, छेदन और तपानेसे होती है, वैसे ही सत्पुरुषके प्रभावका स्वयंको पता लग जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री—आप्तपुरुषके बोध और सत्पुरुषकी दृष्टिसे अंतरात्मा बनने पर सच्ची श्रद्धा आयी, मानी जा सकती है। अंतरात्मा कब होता है? उसकी मान्यतानुसार मानने पर (सत्पुरुषके माननेके अनुसार माननेसे)—सत्पुरुषकी कृपादृष्टि पर रहनेसे। ऐसा कब होता है? सत्पुरुषके बोधसे। मात्र बोधकी कचास है। अन्यथा बोधसे भी अंतरात्मा बना जा सकता है।

सत्पुरुषमें संसारका भाव हो ही नहीं सकता। सामान्य मुमुक्षु भी जब संसारके कार्यकी उपेक्षा कर सकता है, तब सत्पुरुषसे तो संसार दूर ही रहता है। वज्रभींत जैसा भेद उसे हो जाता है—उसे मिथ्या निरंतर मिथ्या ही लगता है। तब वह जानबूझकर उसमें कैसे लिप्त हो सकता है?

[1]"एह दृष्टिमां निर्मळ बोधे, ध्यान सदा होय साचुं;
दूषण रहित निरंतर ज्योति, रत्न ते दीपे जाचुं."

★

अशातना और अशुचिसे सावधान रहें। जहाँ समाधिमरणकी तैयारी करने आते हों, वहाँ किसीको विक्षेप हो ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये। हमारे निमित्तसे किसीके मनमें खेद हो तो वह हिंसा है। छोटे बच्चोंको भक्तिमें लेकर आनेसे वे मलमूत्र करें या आवाज करके बोधमें अंतराय करें, जिससे महादोष लगता है। प्रभु! छूटनेका प्रयत्न करते बंधन होता है। इसके बजाय दूर बैठकर नाम-जपन करे या भक्ति भावना करे तो उसका फल कम नहीं है। परमकृपालुदेवने हमें कितना विरह सहन कराया था, वह तो हमारा मन जानता है। मात्र उनके पास बैठकर भक्ति-भजन ही करनेकी भावना थी। 'हम अब शुद्धिका पालन करे या न करें तो भी चलेगा।' ऐसा नहीं चल सकता। शुद्धि अशुद्धि सब समान हो तो विष्टा और भोजन पास-पास रखकर देखें!

★

संसार स्वप्न जैसा है। जनकराजाको 'यह सत्य या यह सत्य?' ऐसा हुआ था, तब उसका निबटारा अष्टावक्रके बिना नहीं हुआ था। सब भवाईके वेष या मृगजलके समान मिथ्या है। उसीको प्राप्त करने सभी व्यर्थ दौड़ लगा रहे हैं।

★★★

'श्रीमद् राजचंद्र' में से वाचन—

"यह तो अखंड सिद्धांत मानें कि संयोग-वियोग, सुख-दुःख, खेद-आनंद, अराग-अनुराग, इत्यादि योग किसी व्यवस्थित कारणको लेकर होते हैं।" (वचनामृत)

१. मुमुक्षु—कुछ लोग कहते हैं कि स्त्री स्त्रीके रूपमें और पुरुष पुरुषके रूपमें ही जन्म लेते हैं जैसे कि बाजरी बोने पर बाजरी और गेहूँ बोने पर गेहूँ उगते हैं।

प्रभुश्री—आत्माके लिये तो सभी पर्याय समान है। जैसी भावना हो वैसे जन्म मिलते हैं। खेतमें बाजरी बोनेसे बाजरी और गेहूँ बोनेसे गेहूँ उगते हैं। वैसे ही जीव खेत जैसा है। आत्मा जैसे कर्म बाँधता है वैसा फल मिलता है। पुरुषवेद बाँधे तो पुरुष होता है, स्त्रीवेद बाँधे तो स्त्री होता है।

★

---

१. देखें संदर्भ—आठ योग दृष्टिकी सज्झायमें, सज्झाय ७/४ (यशोविजयजी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसीको सुखी करनेसे अपने आत्माका ही हित होता है। संक्षेपमें, जिसकी तृष्णा कम होती है, रागद्वेष कम होते हैं, उसे उतने कम जन्म लेने पड़ेंगे और तृष्णाका नाश होने पर मोक्ष होगा।

★★★

ता.१५-६-२३

जिसने आत्माको प्राप्त किया है वे सद्गुरु; शुद्धात्मा बने हैं वे सद्देव और जिनसे ज्ञान परिणमित होता है वे सब साधन–भक्ति, आज्ञाका आराधन आदि–धर्म हैं।

१. मुमुक्षु–कृपालुदेवका क्या अर्थ है? वे मिले हैं इसका क्या अर्थ? और उन्हें कैसे पहचाना? प्रत्येक व्यक्ति क्या समझकर यहाँ आते हैं या यहाँ चिपक रहे हैं? अनादिकालसे खोटेको चिपकनेसे परिभ्रमण चल रहा है, पर अब जिससे चिपके हैं वे सच्चे हैं यह कैसे जाना?

२. मुमुक्षु–(पूछने पर) मुझे पता नहीं। मुझे सत्पुरुषकी क्या परीक्षा?

प्रभुश्री–जो बुद्धिमें आये वह कहना चाहिये।

२. मुमुक्षु–मैं पहले भक्ति करता था, पर चित्त शांत नहीं होता था। इतनेमें श्रीमद् राजचंद्रके संबंधमें सुना और तत्त्वज्ञान पढ़नेका अवसर मिला। उसके बाद सुना कि आपको उनसे समागम है। कावि‌ठा और सीमरडामें आपका समागम हुआ। तबसे ऐसा लगा कि ये वचन कुछ अपूर्व हैं।

३. मुमुक्षु–सत्पुरुषकी मुखमुद्रा, नयन और वचनका प्रभाव दर्शन करते ही पड़ता है।

४. मुमुक्षु–सत्पुरुषके वचन आत्मामेंसे निकलते हैं इसलिये असरकारक होते हैं।

"निर्दोष नरनुं कथन मानो, तेह जेणे अनुभव्युं."

५. मुमुक्षु–ज्ञानीसे तू ज्ञानकी इच्छा रखता है, पर भक्ति नहीं है तो ज्ञान कैसे परिणत होगा? ऐसा वचनामृतमें लिखा है, अतः ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिमें ही रहना चाहिये।

प्रभुश्री–यह सच है, ज्ञानीका विश्वास हो जाने पर भक्ति करनी चाहिये, पर ज्ञानीकी पहचान कैसे हो? यह प्रश्न है।

६. मुमुक्षु–तुलसीदासजीने ज्ञानीके निम्न लक्षण कहे हैं–

"तनकर मनकर वचनकर, देत न काहु दुःख;
कर्म रोग पातिक जरे, देखत वाका मुख."

फिर ज्ञानी स्व-पर हितके साधक होते हैं और कृपालुदेवने भी 'आत्मज्ञान समदर्शिता' वाली गाथामें सद्गुरुके लक्षण कहे हैं। उनके अनुसार ढूँढनेसे पहचान होती है।

७. मुमुक्षु–लोह-चुंबकके समान आकर्षण होता है, जाना हो संदेशर और पहुँच जाय अगास आश्रम। एक बार बैल खो गया उसे ढूँढते हुए आपके पास नडियाद पहुँच गया। खेतमें जाना होता है और यहाँ चले आते हैं; इस परसे हमें तो लगता है कि यह सत्य है।

८. मुमुक्षु–संसारभाव मंद होनेसे जाना जा सकता है।

मुनि मोहनलालजी–देवकरणजीके उपदेशसे मैं संसार छोड़कर साधु बना। आपके प्रति भी पूज्यभाव तो था ही, परंतु फिर कृपालुदेवके साथ आपका संबंध होने पर आप और आपके शिष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवकरणजी परसे श्रद्धा उठ गयी एवं आपकी निंदा करने लगा। बादमें मैं भावनगरके एक साधुके पास आचारांग सूत्र पढ़नेके लिये रहा। उन्होंने कहा कि हमें समझनेमें इतनी कठिनाई होती है परंतु श्रीमद् राजचंद्र नामक एक पुरुष हैं वे तो इसका अर्थ ऐसे कर देते हैं मानों उन्होंने महावीरके हृदयको ही जान लिया हो। तब मैंने कहा कि ऐसी बात है? उत्तर मिला कि 'हाँ, ऐसा ही है!' तब मुझे बहुत पश्चात्ताप हुआ कि मैंने देवकरणजी और बड़े महाराजकी उपेक्षा की यह बुरा हुआ। तब उन साधुजीने कहा कि यदि उनकी विराधना की तो मर गये समझना। इससे तुरंत आपसे मिलनेकी इच्छा जाग्रत हुई। मैंने अपने एक परमस्नेही साधुको आगे भेज दिया कि जिससे वह आपकी चर्याको देखें और जैसा लगे वैसा मुझे बतायें। इसके पश्चात् मैं एक-डेढ़ महीने बाद खंभातकी ओर गया। वहाँ तो मार्गमें वही साधु मिल गये कि जो एक मास आपके समागममें रहकर गये थे। उनसे पूछा तो कुछ बोले नहीं, फिर अधिक पूछा तब बताया कि 'दोनों चौथे कालके पुरुष हैं।' अब तो और भी उत्सुकता बढ़ी। अन्य सब लोग खेडा गाँवमें गये और मैं आपसे मिलनेके लिये, मुझे प्राप्त समाचारके अनुसार उस बंगले पर गया जहाँ आप प्रतिदिन जाते थे। नदीके किनारे ख्रिस्तीका चार मंजिलका बंगला था, जिसकी ऊपरी मंजिल पर आप कुछ बोल रहे थे। आप क्या करते हैं यह मैंने सीढ़ियों पर खड़े खड़े देखा। आप कभी प्रणाम करते, कभी गाथाएँ बोलते और कभी खड़े ही रह जाते। इस सारी चर्या परसे आपकी कुछ अलौकिक दशा दिखायी देती थी! गाँवमें जानेका समय हुआ था अतः नमस्कार करके बैठा और बादमें गाँवमें चला गया। आप वहाँ किसीके साथ कुछ बोलते नहीं थे, केवल साधुके साथ ही कुछ पूछें तो बोलते थे; अन्यथा शांत ही रहते थे।

बादमें खंभात पधारे तब साथमें चातुर्मास बितानेका लाभ मिला। अंबालालभाईकी वैराग्यदशा और सारी रात आपके साथ उनकी बातें चलती यह देखकर मुझे चमत्कार प्रतीत हुआ, और उसी चातुर्मासमें वहाँ श्रीमद् राजचंद्र—कृपालुदेव भी पधारे और एक सप्ताह तक मुनियोंको बोध दिया। आपने पहले मुँहपत्ती डाल दी थी और फिर विचार किया कि "क्या कहेंगे? पूछे बिना ऐसा किया यह उचित है क्या?" इस विचारसे एक घंटे तक आपकी आँखोंसे आँसुकी धारा बहती रही और कृपालुदेवकी आँखोंसे भी आँसु गिरने लगे! सब स्तब्ध रह गये। फिर परमकृपालुदेवने देवकरणजीसे कहा कि महाराजको मुँहपत्ती दे दो और कहो कि अभी धारण करनेकी आवश्यकता है। तब देवकरणजीने मुझे एक ओर बुलाकर कहा, "जिन्होंने डेढ़ मासका पुत्र और बयासी वर्षकी वृद्ध माँको छोड़कर साधुपना अंगीकार किया, ऐसे व्यक्ति जिस पुरुषको ग्रहण करें तो क्या वे निष्कारण ऐसा करते होंगे? 'जो उनका हो वही मेरा हो', ऐसा आजसे मान ले, इसीमें तेरा कल्याण है।" अतः उसी दिनसे कृपालुदेवके प्रति मेरी आस्था हो गयी।

★
★★

ता. १८-६-२३, शामको

सद्गुरु, सद्देव और सद्धर्म ये आत्मारूप ही हैं।

स्थितिकरण—किसी स्थिर वस्तुके साथ किसी हिलती हुई वस्तुको बाँध दें तो वह हिलती हुई रुक जाती है, स्तम्भके साथ हिलती हुई वस्तुको बाँधे तो वह स्थिर हो जाती है। इसी प्रकार सत्पुरुषके साथ संबंध-सहवास करनेसे स्थिरता आती है। बोधका प्रभाव होता है।

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेवा करना और आज्ञाका पालन न करना, यह पाँव दबाना और जीभ पर पैर रखनेके समान है।

स्त्रियोंमें सरलता होती है, उनके मनमें ग्रंथि नहीं होती।

जिस 'पंचाध्यायी' का स्वाध्याय चलता है वह जिसकी समझमें आता हो उसे ध्यान रखना चाहिये। यह दूसरोंको भी हितकारी है।

मुमुक्षु–'शुभ शीतलतामय छांय रही' इस पदमें 'नवकार महापदने समरो'के स्थान पर 'सहजात्मस्वरूप सदा समरो' ऐसा क्यों बोला जाता है?

प्रभुश्री–'नवकार' और 'सहजात्मस्वरूप'में अंतर नहीं है। और, इसे हटाकर हमें अपना अन्य कुछ करना नहीं है। सर्वत्र भजन आदिमें, इसीके विचारमें समय बिताना है। हमें तो कुछ पता नहीं है, पर कुछ अंशोंमें उस पुरुषकी आज्ञा स्वीकार की है। यदि विराधना करोगे तो मारे जाओगे। 'हे हरि! हे हरि! शुं कहुं? दीनानाथ दयाळ!'के स्थान पर 'हे प्रभु! हे प्रभु!' बोलनेकी आज्ञा हुई थी। तब उस प्रकार कहना न मानें तो स्वच्छंद माना जायेगा।

कृपालुदेवके प्रति प्रेम समर्पित करें। हम सभी साधक हैं। विकथामें नहीं रुकना है। यह काम तो मोहनीय कर्मका उन्माद है।

'महामोहनीय कर्मथी बूडे भवजळमांहि'–जिन्होंने सिर मुँडाया है उन्हें चेतने जैसा है।

'मोक्ष कह्यो निजशुद्धता'–कर्म आ-आकर गिरते हैं पर शुद्धता, समताको संभालें। सहजात्मस्वरूप परमगुरुदेवकी जय अथवा त्रिलोकीनाथकी जय बोली जाय तब आनंद आता है, परंतु धूल उड़ती हो तब कोई आँखें फाड़ता है? घर देख लेने पर घरमें घुस जाता है अथवा आँखों पर कपड़ा ढक लेता है।

★★★

ता. १९-६-२३, सबेरे

जानते हैं यह स्थान कैसा है? देवस्थानक है! जिसे यहाँ आना हो वह लौकिकभाव बाहर, द्वारके बाहर छोड़कर आये। यहाँ आत्माका योगबल प्रवर्तमान है, युवानका काम नहीं है। जो इच्छुक होंगे वे रहेंगे। जो उत्कंठित हो उन्हें भक्ति-भजनमें समय बिताना चाहिये। चित्रपट और पवित्र स्थानोंकी अवज्ञा न करें।

★★★

पूना, श्रावण वदी ९, ता. १८-६-२४, शामको

ये भाई चरोतर-गुजरातसे आये हैं। क्या इन्हें यहाँ व्यापार करना है? इतनी दूर पहाड़ लाँघकर आत्मकल्याणके लिये आये हैं। यहाँसे कुछ लाभ लेकर जायें तो अच्छा। दुषमकालमें सत्संग दुर्लभ है। आत्महित विस्मृत न हो इसके लिये पुरुषार्थ कर्तव्य है।

★★★

ता. २२-६-२४

इसे क्या कहेंगे? क्या स्वामीनारायणके समान [1]संसारीको गद्दी पर बैठाकर उसे संन्यासी नमन

---

१. पूनामें प्रभुश्रीके पूर्वाश्रमके पुत्र मोहनभाईको कुछ मुमुक्षुओंने प्रभुश्रीकी अनुपस्थितिमें रातमें उनकी गद्दी पर बलपूर्वक बिठाकर भक्ति की थी, उस संबंधमें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करे ऐसा उलटा मार्ग चलाना है? क्या मार्ग ऐसा है? अनंत संसारमें भटकानेवाला ऐसा कारण कैसे सूझा? आपमेंसे भी कोई कुछ नहीं बोला? इस गद्दीपर पाँव कैसे रखा जाय? हम भी नमस्कार कर इसकी आज्ञा लेकर बैठते हैं, वहाँ ऐसा स्वच्छंद! बलपूर्वक दबाकर बैठा दिया इसमें उसका क्या दोष? पर किसीको यह नहीं सूझा कि क्या ऐसा करने देना चाहिये?

हम तो अब मुक्त होना चाहते हैं। जैसा है वैसा स्पष्ट कह देना चाहते हैं। जिसे मानना हो वह माने। बिचारे जीव कठिनाईसे आकर्षित होकर, पैसा खर्च कर, भक्तिभावके लिये आते हैं और इसमें ऐसी घटना घटित हो! हमें तो यह अच्छा नहीं लगता। मोहनीय कर्म है। प्रभु, अब पधारिये! मोहनीय कर्मने तो मार डाला है, बुरा किया है। अब सावधान होने योग्य है प्रभु!

★★★

ता. २३-६-२४

"धन्य! ते नगरी, धन्य! वेळा घडी;
मातपिता कुल वंश जिनेश्वर." [प्रातः स्तवनमें गाया गया]

इसमें क्या मर्म छिपा है? इस पंक्तिको लौकिकमें समझना है या अलौकिकमें? कुलवंश और संबंध क्या यह सब शरीरके बारेमें है? यों तो सारा संसार कर ही रहा है। यह तो समकितके साथ संबंध जोड़नेकी बात है। समकितसे जो गुण प्रकट होते हैं, उन्हें वंश कहा गया है। देखो, पीढ़ी ढूँढ़ निकाली! संसारीको गद्दी पर बैठाकर, संन्यासी भी उसके पाँव छूअे ऐसा स्वामीनारायण और वैष्णवों जैसा मार्ग चलाना है क्या? यह तो उनका योगबल है, वह इस स्थानका देव जागेगा तब बनेगा। 'कर विचार तो पाम' ऐसा कहा है, क्या वह व्यर्थ है? विचारके बिना, सद्विचारके बिना तो धर्म प्राप्त होता होगा? 'ऐसेको मिला तैसा, तैसेको मिला [1]ताई, तीनोंने मिलकर तूती बजाई' यह बात तो लौकिक है, किन्तु परमार्थ समझनेके लिये कह रहा हूँ।

एक मोची था। वह घर छोड़कर घूमने निकला। चलते चलते काशी बनारस जा पहुँचा। वहाँ संस्कृत आदि पढ़कर पंडित बनकर लौटा। अब उसे जूते सिलाई करना कैसे अच्छा लगता? वह वापस दूर देश चला गया। एक छोटे ठाकुरके दरबारमें जाकर श्लोक बोला और सभाको राजी कर दिया। ठाकुरने उसे पंडितका स्थान दे दिया। अतः वह वहीं रहने लगा। वहाँके राज्यपुरोहितकी कन्याके साथ उसका विवाह भी हो गया।

थोड़े दिन बाद उस मोचीके गाँवका एक व्यापारी उस देशमें माल लेकर आया, उसने उसे पहचान लिया। पर पंडित सावधान हो गया, अपनी जान-पहचानसे उस व्यापारीके चुंगीके पैसे माफ करवा दिये। फिर व्यापारीसे कहा कि यहाँ मेरे विषयमें किसीसे कुछ बात नहीं करोगे।

व्यापारी माल बेचकर अपने देश गया। वहाँ जाकर उस पंडितके पिता मोचीसे कहा कि, "तुम यहाँ जूते क्यों सी रहे हो? अपने लड़केके पास जाओ न? वह तो अमुक शहरमें राजाका बड़ा दरबारी है।" मोची वहाँ गया और अपने लड़केसे मिला। फिर लड़केने अपने पिताको समझाया कि यहाँ कोई कुछ जान न पाये, इस प्रकार आप यहाँ रहिये और आरामसे बैठकर खाइये। कुछ दिन तो ऐसा चला। कोई पूछे तो कहता कि यह तो हमारे गाँवका आदमी है, बच्चेको झुलानेको रखा है।

१. तेली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंडितके यहाँ जो भी लोग आते वे नित्य अपने जूते द्वार पर खोलकर ऊपर जाते। बूढ़ा बाप बच्चेके पालनेके पास बैठे-बैठे जूते ही देखा करता और बकता रहता कि इसके जूतेमें एकहरा तलिया है, इसको सीनेवाला कुम्हार जैसा है, इसकी अपेक्षा उस जूतेकी सिलाई अच्छी है। इतनेमें एक व्यक्तिने पंडितकी पत्नीसे पूछ लिया कि यह कौन है? तब उसने कहा कि हमने इसे बच्चेको झुलानेको रखा है। सुनकर बूढ़ा बोल पड़ा कि मैं तो तुम्हारी सासका पति हूँ। इससे वह समझ गयी कि यह कुछ षड्यंत्र जैसा ही लग रहा है। अतः वह तो तुरंत बच्चेको लेकर अपने पिताके घर चली गयी और पितासे कहा कि, "बिना जाँच किये ही मोचीके साथ मेरा ब्याह कर दिया।" यों कहकर रोने लगी।

जब पंडितको इस बातका पता लगा तो वह शहर छोड़कर जानेकी तैयारी करने लगा। अपना सामान आदि बाँधकर तैयारी कर रहा था तभी राजपुरोहित अपनी कन्याको लेकर पहुँच गया और पूछा कि कहाँ जानेकी तैयारी कर रहे हो? पंडितने कहा कि मुझे इस शहरमें नहीं रहना है। राजपुरोहित तो इसका कारण जानता ही था, इसलिये उसने कहा, "मैं भी तुम्हारे साथ आता हूँ, क्योंकि तुम्हारी बातका पता लगने पर मेरी बातका भी पता लग सकता है। मैं भी तुम्हारी ही तरह तेली-तंबोली था और यहाँ आकर राजपुरोहित बना। हम राजासे मिलकर कहेंगे कि हमें गाँव जाना है और अन्य देशमें जाकर रहेंगे।

दोनों राजाके पास गये। राजा चतुर था। उसने पूछा कि आप दोनों विद्वान मेरे राज्यदरबारमेंसे क्यों जा रहे हो? मुझे इसका कारण जानना है। पहले तो उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब राजाने कहा कि तुमने कैसा भी अपराध किया होगा तो भी मैं माफ कर दूँगा। तब साहस बटोरकर उन्होंने बताया कि हममेंसे एक तेली और दूसरा मोची था। पर अब यह बात प्रकट होनेका भय है। इसलिये यहाँसे चले जानेका निर्णय लिया है। इस पर राजाने भी अपनी बात प्रकट की और दर्पण दिखाकर कहा कि मैं भी पहले नाई था और इस प्रकार दर्पण दिखाया करता था, इसलिये डरें नहीं।

यों ले-भागनेवालोंसे मार्ग नहीं चल सकता। सच पर बात आ गयी है इसलिये अब तो जो है वह स्पष्ट कह देना है। जिसे मानना हो वह माने और न माने तो वह उसका अधिकार है। हमें तो अब मुक्त होना ही है। पूजा, फूल और सेवा यह सब हमने होने दिया, यह हमारी भूल है। इस समस्त संघके सामने हम कहे देते हैं कि छोटी उम्रमें हमने संयम लिया था, तब क्या ऐसे ही थे? भूलें भी हुई होंगी। पर अब तो सच पर ही जाना है। हमें आश्रमका भी क्या प्रतिबंध है? इस आश्रममें अब हमें सिर नहीं खपाना है। भले ही वहाँ पशु और गधे घूमें। निवृत्तिका समय बितानेके लिये, भक्ति भजन कर लेनेके लिये एक स्थान बनाया था, वहाँ तो क्या-का-क्या हो गया! यात्रामें हम सभी स्थानों पर गये हैं उनमें कई स्थान देख रखे हैं! वृद्धावस्था है इसलिये स्थविर-कल्पीके योग्य किसी स्थानकी आवश्यकता है, वह पुण्ययोगसे ऐसा अन्य कोई स्थान मिल जायेगा, पर वहाँ हमारी आज्ञाके बिना कोई न आये और पत्र आदि लिखनेकी भी आवश्यकता नहीं है।

गुरुकी शरणसे, जब आश्रममें सुधार होगा, सब बातें ठीक होंगी तब पता चलेगा और उस समय आनेमें भी आपत्ति नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ आश्रममें एक दो मुनि रहेंगे और जिसे उत्कंठा हो वह अपना समय वहाँ भक्तिभजनमें व्यतीत करें। पर वहाँ चित्रपट और शुभ स्थान हैं, उनकी विराधना न करें और उज्झडपन न करें। अन्य सब काम बंद रखें। हमें ऐसा लगता है कि आश्रमके ग्रह अभी ठीक नहीं है। अनुकूलतासे धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा सब ठीक हो जायेगा।

किसीकी ओर कुछ भी देखने जैसा नहीं है। स्वयं स्वयंका कार्य करके चले जानेका मार्ग है। हमें अपनी भी संभाल करनी चाहिये या नहीं? हम तो अज्ञातरूपमें जड़भरतकी तरह विचरण कर रहे थे। उसमें इसने (रणछोड़भाईने) भंड़ा फोड़ा (प्रसिद्धिमें लायें)। ऐसे समयमें कुछ इसकी सेवा-भक्तिके कारण संतके मनको शांति मिली। उसकी दुआसे यह जो कुछ है सो है, पर इस कालमें पचाना कठिन है। किसीके सेवाभक्ति करने पर हमें तो बहुत गुदगुदी होती थी। क्यों भाई, आपको भी ऐसा होता है?

रणछोड़भाई—होता है, प्रभु!

प्रभुश्री—ज्ञान तो अपूर्व वस्तु है। (परमकृपालुदेवके चित्रपटकी ओर अंगुलिनिर्देश कर) हम तो इनकी शरणमें बैठे हैं। क्यों भाई, आपको ज्ञान हुआ है? हुआ हो तो बताइयेगा।

रणछोड़भाई—(सिर हिलाकर) नहीं प्रभु!

प्रभुश्री—निष्पक्षपातसे एकमात्र आत्महितके लिए हम एक बात बताना चाहते हैं। इसमें न कोई हमारा स्वार्थ है, न किसीको उल्टे मार्गपर चढ़ाना है और न ही पूजा-सत्कार स्वीकारनेकी बात है। सकल संघकी साक्षीसे हम यह बात कह रहे हैं। जो भरी सभामें संघके समक्ष असत्य या ठगनेके लिए बोलता है उसे शास्त्रमें महापाप कहा गया है। ऐसे जीव भावी जन्ममें गूँगे पैदा होते हैं, उनकी वाणी बंद हो जाती है, मूढ़ भी होते हैं। हम जो कहते हैं उसपर जिसे विश्वास हो वे ही खड़े हो जायें, अन्य भले अपने स्थानपर बैठे रहें। किन्तु जैसा हम कहते हैं, वैसा करना हो वे खड़े होकर कृपालुदेवके चित्रपटके आगे हाथ रखकर कहें कि संतके कहनेसे मुझे कृपालुदेवकी आज्ञा मान्य है। हमारे मनमें तो ऐसा हुआ कि जो वचन हमें आत्महितका कारण हुआ वह वचन दूसरे भी सुनें, श्रद्धा करें तो उनका भी कल्याण हो। अतः उनकी आज्ञा 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' जो हमारे पास आये उन सबको कृपालुकी दृष्टिसे कह सुनायी।

परंतु नासमझीसे कोई पोपटलालको, कोई रत्नराजको, कोई इन भाईश्रीको (रणछोड़भाईको) और कोई हमको देहदृष्टिसे पकड़ बैठे। यह विष पी रहे हो, विष! मर जाओगे। यह मार्ग नहीं है। ज्ञानी तो जो है सो है। उसकी दृष्टिसे खड़े रहोगे तो तिरनेका कुछ उपाय है। हमें मानना हो तो मानो, न मानना हो तो न मानो, परंतु जैसा है वैसा कहे देते हैं। हमने तो सोचा था कि अभी जो चलता है वैसा भले चलता रहे, समय आनेपर सब बदल देंगे। क्या हमें पुष्पहार, पूजा-सत्कार ये सब अच्छे लगते होंगे? किंतु कड़वे घूँट जानबूझकर उतार जाते। अब तो छिपाये बिना स्पष्ट कहे देते हैं कि पूजा-भक्ति करने योग्य ये कृपालुदेव हैं। हाँ, भले ही उपकारीका उपकार न भूलें। किसी परिचित मित्रकी भाँति उसकी छबि हो तो आपत्ति नहीं, परंतु पूजा तो इस (कृपालुदेवके) चित्रपटकी ही होनी चाहिए। अच्छा हुआ, अन्यथा कृपालुदेवके साथ इस देहकी मूर्ति भी, मंदिर बनता तब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थापित कर देते। ऐसा नहीं करना है। बारहवें गुणस्थान तक साधक, साधक और साधक ही रहना कहा है। इधर-उधर देखा तो मर गये समझना। अब एक-एक यहाँ आकर कृपालुदेवके चित्रपटके पाट पर हाथ रखकर कहें कि 'संतके कहनेसे कृपालुदेवकी आज्ञा मुझे मान्य है।' जिसकी इच्छा हो वह आकर ऐसा कह जाय। उठो भाई! तुम्हें यह रुचिकर है या नहीं?

मुमुक्षु–हाँ प्रभु!

[फिर सब एकके बाद एक उठकर चित्रपटके समक्ष संकल्प कर प्रभुश्रीको नमस्कार कर बैठते गये। कुछ नये लोग भी वहाँ थे। उन्हें देखकर प्रभुश्री प्रसन्नतापूर्वक बोले–]

ये भद्रिक नये लोग भी साथ ही साथ लाभ ले गये। कौन जानता था? कहाँसे आ चढ़े! टिके रहें तो काम बन जाये!

हमने जो कहा है, वह मार्ग यदि खोटा हो तो उसके हम जामिनदार है। परन्तु जो स्वच्छंदसे प्रवृत्ति करेगा तथा 'यों नहीं, यों' कर दृष्टि बदलेगा तो उसके हम जिम्मेदार नहीं है। जिम्मेदारी लेना सरल नहीं है। पर इस मार्गमें भूल नहीं है। जो कोई कृपालुदेवको मानेगा उसे कुछ नहीं तो देवगति तो है ही।

★★★

पूना, ता. १८-१२-२४, गुरु

प्रभुश्री–कितने ही भव किये होंगे। है उनका पता? पहाड़, वृक्ष, वनस्पति, तिर्यंचके–किसीका पता है? मरनेके बाद, इस देहमें इतने वर्ष रहे इसका कुछ भान रहेगा? मृत्युका भय नहीं लगा है।

मुमुक्षु–परमकृपालुदेवसे आपका परिचय, आपका पहलेका गृहस्थजीवन, आचार्यपद और उसके बादका चरित्र, आप प्रत्येक व्यक्तिको बीस दोहे और क्षमापनाकी आज्ञा देते हैं, उसका क्या रहस्य है? पहले मुमुक्षुको क्या जानना चाहिये? 'सनातन जैन' से क्या तात्पर्य है? सनातन जैनीमें कैसे गुण, कैसा व्यवहार होना चाहिये? हमें मात्र अपना कार्य ही कर लेना चाहिये या धर्मप्रचार भी करना चाहिये? उसमें मुनि हो सकते हैं या नहीं? आदिका विस्तारसे वर्णन हो तो अनेक लोग वचनामृतका वाचन कर 'यह तो पढ़ लिया है' ऐसा कहते हैं, उन्हें यह सब जाने बिना केवल पढ़ लेनेसे ही समझमें नहीं आ सकता, यह बात ध्यानमें आये।

प्रभुश्री–प्रभु! यह तो कोई अपूर्व ग्रंथ बन जाये! पहला प्रश्न जो आपने पूछा है, वह महान पुण्यके उदयसे आपको सूझा है। काल तो प्रभु, बीत ही रहा है, किन्तु उसके निमित्तसे बिताया जाय तो सफल हो।

मुमुक्षु–धर्मके प्रचारमें लगें या अपना काम करके चले जायें–मौन रहें?

प्रभुश्री–स्याद्वाद मार्ग है, प्रभु! पूरे संसारको चमड़ेसे नहीं मढ़ा जा सकता, मात्र पाँवमें जूते पहने जाते हैं। मार्गमें काँटे हों उन्हें दूर करनेमें हानि नहीं। पर कृपालुदेवका वचन है, यदि दुपट्टा काँटोंमें उलझ जाये तो दुपट्टेके लिये आगे जानेसे रुकना नहीं चाहिये। निकले तो निकाल लेना, नहीं तो छोड़कर आगे बढ़ जाना चाहिये।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १९-१२-२४

'इष्टोपदेश'में से वाचन–

"क्षोभरहित एकान्तमें तत्त्वज्ञान चित्त लाय ।
सावधान हो संयमी निजस्वरूपको भाय ॥३६॥"

क्षोभरहित–अटका न रहे। चाहे जैसी बाधा आवे, पर उसे दूर करे। आत्मानुभवकी, गुरुकी सच्ची शरणकी तो खूबी ही कुछ ओर है! गला रूँध रहा हो, श्वास छातीमें समाता न हो, चक्कर आते हो, घबराहट होती हो तो भी क्या हुआ? चाहे मृत्यु क्यों न आ जाये, पर सच तो सच ही है। अब तुझे (वेदनाको) नही मानूँगा। अनादिकालसे ऐसी ही भूल हो रही है, पर अब सद्गुरुके वचन हृदयमें लिख रखे हैं। देहका अंत हो जाये तब भी उसे नहीं छोड़ूँगा। यह पकड़ा हुआ पल्ला नहीं छोड़े तो क्या सामर्थ्य है कि मोहराजा उसके सामने देख सके?

मोहराजा क्रोधसे कहता है, "भाई, तू जा, जा। यह तो कुछ अलग ही सुनने, स्मरण करने बैठा है। फिर हमारा नहीं रहेगा। अतः शीघ्र जा।" परंतु तलवार या कुल्हाडी लेकर खड़े व्यक्तिके पास जानेसे सब डरते हैं। तब क्रोध कहता है, "अभी तो वह जोशमें है, वह मेरे वशमें नहीं आयेगा।" मानभाईको कहता है, "तुम तो बड़े आदमी हो, तुम्हारा प्रभाव पड़ेगा।" पर उसे भी डर लगा कि अभी तो बड़े लोगोंके आश्रयमें है, अतः मेरा बस नहीं चलेगा। मायासे कहा तो वह भी कहने लगी कि उसे तो और ही लगन लगी है, अतः मेरा कुछ नहीं चलेगा। अतः अंतमें लोभभाई चले। जहाँ रिद्धि-सिद्धि दिखाई दे तब लगता है कि अन्यकी अपेक्षा मुझमें कुछ विशेषता है। यों लोभभाईके साथ मानभाई भी आये और माया आदि भी आई। किन्तु पहलेसे ही मान, पूजा, बड़प्पन, लालसा आदिको जिसने जला दिया हो और एक मात्र मोक्षकी अभिलाषा रखी हो तब फिर देख लो उसका बल! प्रभु! कुछ कर लिया हो तो काममें आता है और चलित न हो तो इनका–कृपालुदेवका–ऐसा योगबल है कि चाहे जैसे कर्म हों उन्हें जलाकर भस्म कर डाले। कर्मका क्या बल? पर इनकी शरण ग्रहण करे तब ऐसी गाँठ लगा दे कि वह छूटे ही नहीं। तब तो जो आये उसे फटाफट देने लग जाय, तू भी आ जा। शूरवीरकी भाँति शस्त्र चलाये और कर्मोंको नष्ट करे। चाहे जैसी वेदना हो पर उसका लक्ष्य वही रहे।

चक्रवर्ती राजाके यहाँ कामधेनु गाय होती है। दस हजार गायोंका एक गोकुल माना जाता है, ऐसे अनेक गोकुल चक्रवर्तीके यहाँ होते हैं। मात्र दूसरी गायोंका दूध पीकर रहनेवाली जो गायें होती हैं, उनका दूध पीकर रहनेवाली हजार गायें होती हैं, उनका दूध पीकर रहनेवाली सौ गायें होती हैं, फिर उनका दूध पीकर रहनेवाली दस गायें होती हैं और उनका दूध पीनेवाली एक कामधेनु गाय होती है। उसके दूधकी खीर उसका बछड़ा या चक्रवर्ती ही पी सकता है। चक्रवर्तीकी पट्टरानी भी उसे पचा नहीं सकती। उनकी दासी पकानेके बर्तनमें चिपकी हुई खुर्चन या जला हुआ मावा बर्तन साफ करनेके समय खा लेती है तो उसमें इतना बल आ जाता है कि जो हीरा घनकी चोटसे या खलमें रखकर पीसनेसे भी न टूटे, उसे वह चुटकीमें दबाकर चूरा कर डालती है। तब चक्रवर्तीकी शक्तिका तो कहना ही क्या! किसके लिये यह दृष्टांत दिया वह बात तो भूल ही गये। कुछ बलके विषयमें होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म, कर्म और कर्म! कर्मरूपी मदारी जीवरूपी बंदरको खेल खिला रहा है। अन्य क्या? जैसा दिखाई दे रहा है वैसा जीव है क्या? आत्माका स्वरूप क्या है? ज्ञान, दर्शन, चारित्र–जानना, देखना, स्थिर होना। कृपालुदेवका वचन है, हृदयमें लिख रखा है, "मुनि! जड़भरत बनकर विचरना।" पागल बन जाने जैसा है। लोग कहेंगे मुनि खाते हैं, पीते हैं और ऐसा क्यों कर रहे हैं? अन्यत्र कहीं चैन नहीं पड़ता। जिससे आनंद मिले वह तो है नहीं। उदास, उदास, उदास! घबराहट, घबराहट और घबराहट रहती है। कुछ नहीं सुहाता।

'सद्धा परम दुल्लहा।' यह आ जाये तो काम बन जाये। सच्चे पुरुषकी पहचान, श्रद्धा यही सम्यक्त्व। आज या पचास वर्ष बाद भी जो उससे चिपका रहेगा उसका बेड़ा पार है।

कर्म किसीको छोड़ता है? चाहे कितनी ही घबराहट होती हो, किन्तु सत्संग, सत्शास्त्र और ऐसे अन्य कार्योंमें ही लगे रहें तो समय तो ऐसे भी बीतता है और वैसे भी बीतता है; पर एकमें निर्जरा है और दूसरेमें बंधन है। क्या करें? कर्म घेर लेते हैं, उसका फल सहन कर रहे हैं। चाहे जो हो पर करना यही है। हमें अपना भी सँभालना चाहिये न? जब-जब अवकाश होता है, तब-तब इसी साधनमें, स्मरणमें, ध्यानमें प्रवृत्ति करते हैं। सभीको यही करना है।

अनंत पुण्यका उदय हो तब सत्पुरुषके मुखसे आत्मा संबंधी बात सुननेको मिलती है। यह अनमोल क्षण बीता जा रहा है। पूरा संसार व्यर्थकी माथापच्चीमें पड़ा है। कालको धिक्कार है!

प्रभुश्री–(एक विद्यार्थीसे) क्या पढ़ रहे थे, प्रभु?

विद्यार्थी–उपन्यास, इसमें कुछ जानने योग्य नहीं है। 'फॉर्थ रीडर'मेंसे एक बात है।

प्रभुश्री–उसमें क्या पढ़ा?

विद्यार्थी–एक व्यक्ति पाँच जहाज लेकर अमेरिका खोजने गया, उसमेंसे चार तूफानमें फँसकर समुद्रमें गुम हो गये। बचा हुआ एक, एक द्वीप पर जाकर वापस लौटते हुए डूब गया। पर उस द्वीपमें एक संस्थान स्थापित किया वहाँ उसका नाम रहा।

प्रभुश्री–(पुस्तक मँगवाकर, हाथमें लेकर) यह चित्रांकित कुछ पढ़ रहे थे और लेटे हुए थे। क्या पढ़ रहे हैं ऐसा पूछनेका विचार हुआ इसलिये पूछा। कहो, इसमें क्या मिला?

शरीर ठीक न होनेसे मनको रोकनेके लिये बेचारेने कहानी पढ़ी, पर उलटा मोहनीय कर्म बढ़ाया। समय तो इसमें भी बीता; पर किसी धार्मिक पुस्तकको पढ़नेमें समय बिताया होता तो शुभ निमित्तसे निर्जराका कारण होता। हमें भी वृद्धावस्थामें वेदनाके कारण जब चैन नहीं पड़ता तब कुछ शुभ निमित्तकी योजना करते हैं। आज नींद नहीं आयी, चैन न पड़ा इसलिये पढ़नेमें यों समय बिताया तो कुछ हानि हुई?

यह मात्र आपको या इनको ही नहीं कह रहा हूँ। बुरा न माने, पर सारा संसार ऐसे ही मदहोश होकर पागल हो रहा है और मिथ्यात्वको ही बढ़ा रहा है। तो अब कुछ सोचना चाहिये या नहीं?

अनादिकालसे इन्द्रियोंके विषयोंमें ही फँसकर परिभ्रमण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"अनादि स्वप्नदशाके कारण उत्पन्न जीवका अहंभाव, ममत्वभाव।"

अहंभाव और ममत्वभाव, अहंभाव और ममत्वभाव! बस इसमें सब आ गया—पशु-पक्षी, वृक्ष-पहाड़, इंद्र-चंद्र आदि सभी। मैंने जाना, मैंने खाया, मैंने पिया, सबमें 'मैं और मेरा' यही मिथ्यात्वका मूल है।

छह पदका पत्र अमृतवाणी है। पत्र तो सभी अच्छे हैं, पर यह तो लब्धिवाक्य जैसा है! छह मास तक इसका पाठ करे तो प्रभु! कुछसे कुछ हो जाता है! चाहे जैसी बाधा विघ्न आयें, उन्हें भगा देना चाहिये। दिनमें एक बार इस पर विचार करनेका रखें, फिर देखें। यह समकितका कारण है।

"इस स्वप्नदशासे रहित मात्र अपना स्वरूप है, यदि जीव ऐसा परिणाम करे तो सहज मात्रमें जागृत होकर सम्यग्दर्शनको प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर स्वस्वभावरूप मोक्षको प्राप्त करता है।"

यही मोक्षमार्ग है! अब मुझे अन्य क्या मानना है? यदि ऐसी पकड़ हो जाय तो देर-सबेर उसरूप अवश्य होना ही है।

"जन्म, जरा, मरण, रोग आदि बाधारहित संपूर्ण माहात्म्यका स्थान, ऐसे निजस्वरूपको जानकर, अनुभवकर वह कृतार्थ होता है।"

कुछ बाकी रहा? जन्ममें कम दुःख है क्या? जरा, इस बुढ़ापेके (अपनी ओर अंगुलिनिर्देश कर) दुःख कम नहीं है—चला फिरा नहीं जाता, खाना-पीना अच्छा नहीं लगता और रोग, दुःख, दुःख और दुःख, हिला न जाय, बोला न जाय, इच्छानुसार न हो, सुख चैन न आये—इन सब बाधा पीड़ासे रहित, संपूर्ण माहात्म्यका स्थान ऐसा निज स्वरूप', हाश! अन्य चाहे जो हो, पर इसमें अन्य क्या होनेवाला है?

"जिन-जिन पुरुषोंको इन छह पदोंसे सप्रमाण ऐसे परमपुरुषके वचनसे आत्माका निश्चय हुआ है, वे वे पुरुष सर्व स्वरूपको प्राप्त हुए हैं, आधि, व्याधि, उपाधि सर्व संगसे रहित हुए हैं, हो रहे हैं और भविष्यकालमें भी वैसे ही होंगे।"

ठप्पा लगाया है ठप्पा! श्रद्धाकी आवश्यकता है, निश्चयकी आवश्यकता है। 'सद्धा परम दुल्लहा' कहा गया है प्रभु!

सच्चे पुरुषकी श्रद्धा, प्रत्यक्ष ज्ञानीकी आज्ञा, यही 'सनातन धर्म'।

['तत्त्वज्ञान'मेंसे 'वचनावली'का वाचन]

"शास्त्रमें कही हुई आज्ञायें परोक्ष हैं और वे जीवको योग्य बनानेके लिये कही गयी है। मोक्षप्राप्तिके लिये प्रत्यक्ष ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन करना चाहिये।"

प्रभुश्री—यही, यही।

मुमुक्षु—प्रत्यक्षसे क्या अभिप्राय है?

प्रभुश्री—इतना स्पष्ट होने पर भी समझमें न आये तो यह इस कालका एक विशिष्ट अछेरा[1] माना जायेगा। प्रत्यक्ष अर्थात् जिसने आत्माको प्राप्त किया है, वह। शास्त्रसे प्राप्त ज्ञानमें और प्रत्यक्ष ज्ञानी द्वारा प्राप्त धर्ममें बड़ा भेद है। शास्त्रमें तो मार्ग बताया गया है, मर्म तो ज्ञानीके हृदयमें

१. आश्चर्य, अघटित घटना। शास्त्रमें चौथे कालमें दश अछेरे कहे गये हैं वैसा ही यह एक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहा हुआ है। कागज पर 'अग्नि' शब्द लिखकर करोड़ों मनुष्य अपनी पर्चियाँ रूईके गोदाममें डालें तो उससे रूई जलेगी क्या? किन्तु प्रत्यक्ष सच्ची अग्निकी एक छोटीसी चिनगारी भी लाखों मन रूईमें पड़ी हो तो वह जलाकर भस्म कर देती है। अतः शास्त्रका ज्ञान चाहे कितना ही क्यों न हो और कैसा भी क्षयोपशम हो तो भी वह कागज पर लिखी 'अग्नि'के समान है, परंतु आत्माके अनुभवकी एक चिनगारी हो तो भी वह सच्ची अग्निके समान कोटि कर्मोंका क्षय कर मोक्ष प्राप्त कराती है।

एक बुढ़िया थी। उसे रूईसे भरी गाड़ी दिखाई दी, उसे देखकर वह पागल हो गयी कि मुझसे तो नित्य पाव भर रूईकी पूनियाँ भी नहीं कतती तब इतनी गाड़ी भर रूई कब कतेगी? फिर एक समझदार व्यक्तिने उस पागल बुढ़ियासे कहा कि माताजी! गाड़ीमें तो अग्निकी जलती हुई चिनगारी गिरी जिससे सब रूई जल गयी।" तब वह 'शांति' कहकर भानमें आई। इसी प्रकार कर्म कितने भी क्यों न हों, उनसे घबराना नहीं चाहिये, धैर्यसे सहन करना चाहिये।

"कोटि वर्षनुं स्वप्न पण, जागृत थतां शमाय;
तेम विभाव अनादिनो, ज्ञान थतां दूर थाय."

इसी प्रकार ज्ञान होनेपर उन कर्मोंका बल नहीं है कि ज्ञानकी अग्निके आगे टिक सकें।

समझनेके लिए, अज्ञानका एक मिथ्या दृष्टांत देता हूँ। जहाँ सब कुछ स्वप्न जैसा है, वहाँ सत्य क्या है?

वटामणके पास एक गाँव था, वहाँ एक नथु बाबा रहता था। उसी गाँवमें एक नथु दर्जी भी रहता था। एक दिन उस नथुबाबाने 'तेरे नाम पर थू' कहकर एक बड़े अफसरका अपमान किया। अतः दरबारकी ओरसे आज्ञा दी गई कि नथु बाबाको फाँसी पर चढ़ा दो। वह बाबा तो कहीं दूर चला गया। राज छोड़कर ही चला गया। उसे कौन पकड़े? गाँवके मुखिया पर दरबारकी आज्ञा आयी। उसका उत्तर यों लिखा गया कि नथुबाबा तो भाग गया है। फिर आज्ञा आयी कि चाहे जिस नथुको फाँसी पर चढ़ा दो। अतः 'अंधेर नगरी चौपट राजा'के समान बिचारे निर्दोष नथु दर्जीको फाँसी पर चढ़ा दिया गया। यों किसीके बदले कोई मारा जाता है। केलेके साथ उगा एरंडा केलेका पानी पी जाता है ऐसी घटना भी घट जाती है। इन मोहनलालजीकी सेवामें रहा तो कृपालुकी दयासे यहाँ आना संभव हुआ।

★★★

ता. २६-१२-२४

किसीका मन दुःखी हो ऐसा न करें। कृपालुदेवका कथन मुझे याद है। इनकी सेवामें खंभातके श्री अंबालालभाई रहते थे। वे अपनी पत्नीके साथ बिलकुल संबंध नहीं रखते थे। यह उनके मातापिताको बुरा लगा और यह बात कृपालुदेवके पास आई। तब कृपालुदेवने उन्हें सेवासे निवृत्त होनेकी आज्ञा दी और कहा कि जाकर उनके मनको संतुष्ट करो। चाहे जैसे सामनेवालेको समझाकर, राजी रखकर, धर्मकी साधना करनी चाहिये, मन दुःखाना नहीं चाहिये।

आश्रममें नहीं जाना ऐसा कुछ प्रतिबंध हमें नहीं है और वह एकांतपूर्ण सुंदर स्थान भी है। परंतु कृपालुदेवकी दृष्टिसे विचरण करना है। अभी तो आश्रमसे मन उठ गया है। वहाँ मोहनलालजी रहेंगे। यहाँ भी कुछ आपत्ति जैसा नहीं है। पर सुबह-शाम मच्छीमार लोग जाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेकर जाते हैं यह अच्छा नहीं लगता। कृपालुदेवने हमें मना किया है कि "जहाँ अनार्य या अभक्ष्य आहार लेनेवाले लोग रहते हों, वहाँ मुनि, आप न रहें, विचरण न करे।" ऐसा कृपालुदेवका कथन याद आता है। इसलिये ऐसे पर्यायवाले क्षेत्रमें रहना न पड़े तो अच्छा।

★

['इष्टोपदेश'का वाचन—गृहस्थ चौथे पाँचवें गुणस्थानमें प्रत्याख्यानावरणीय कषाय सहित होनेसे कर्म ग्रहण तो करते हैं पर बँधे हुएको भोगकर क्षय कर देते हैं।]

प्रभुश्री—इसमें क्या समझें?

१. मुमुक्षु—लक्ष्य अन्य होनेसे कर्मोंको भोगते हुए भी न भोगने जैसा परिणाम आता है। भोगकर उनसे मुक्त हो जाते हैं।

प्रभुश्री—आप क्या समझें?

२. मुमुक्षु—पूर्वबद्ध कर्म आयेंगे तो अवश्य ही, पर आसक्तिरहित भोगकर उन्हें जला देते हैं।

प्रभुश्री—बात सच्ची है। आपका कहना भी सच है और इनका कहना भी सच है, पर कोई मर्म रह जाता है।

अनेक लोग ऐसा कहते हैं कि हम तो भोगकर कर्म क्षय कर देते हैं। कुछ वृत्ति उठी उसे पूर्वकर्म समझकर स्त्री आदिका भोग कर फिर मानते हैं कि मैंने कर्म क्षय कर दिया। पर बात ऐसी नहीं है, यह तो मोह है। वृत्तिको रोकना चाहिये, सुखा देना चाहिए। यों संतुष्ट करनेसे कर्मसे छूटा नहीं जाता। वह तो अग्निमें लकड़ी डालने या आगमें घी डालकर बुझाने जैसा प्रयत्न हुआ। ऐसा कभी नहीं होता।

सम्यग्दृष्टिकी बात अलग है। किन्तु 'मैं भोगकर छूट रहा हूँ' ऐसा कभी नहीं हो सकता। वृत्तिको रोकना, क्षय करना चाहिये। "वृत्तियोंका क्षय करें, मुनि!" ऐसा हमें कृपालुदेवने कहा था। कुल्हाड़ी लेकर खड़े रहें, जैसे ही वृत्ति जाग्रत हो कि उसके टुकड़े कर दें! जो कर्म आये उसे आने दें, फिर फटकार दें। बेचारे कर्म 'हमारा क्षय करो, हमारा क्षय करो' कहते हुए सिर झुकाकर आ खड़े होंगे। उनको प्रत्येकको कहें—'तुम आओ, मैं देखता हूँ' यों कहकर वीरकी भाँति खड़े रहना चाहिए। उनके समक्ष झुकना नहीं चाहिए।

[वाचनमें 'उपेक्षा' और 'उदासीनता' शब्द आये]

प्रभुश्री—दोनोंमें अंतर है। उदासीनता अर्थात् वीतरागता और उपेक्षा अर्थात् त्याग। दोनोंमें यह भेद है कि वीतरागतामें शांति है और त्यागमें शौर्य है। सम्यग्दृष्टि शूरवीर होता है। कर्मका क्षय करनेमें बलकी आवश्यकता है।

काल दुषम है। आयुका भरोसा नहीं है। जितना कर लिया उतना कामका है। संसार और संबंधियोंकी मान्यता हो गई है। अंतमें उन्हींको याद करता है और अंतमें उनसे कुछ कह जानेकी इच्छा होती है। यदि अपना सच्चा सुख, अपनी सत्य बात समझमें आयी हो, दृढ़ संबंध बाँधा हो तो वह समयपर उपस्थित क्यों न हो? गलत दृष्टांत है, पर समझने योग्य है। जैसे स्त्रियाँ चूड़ा पहनकर अपने पतिको ही अपना मानती है, वैसे ही उसके नामका ही चूड़ा पहनना चाहिए। यह भव तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके लिये ही बिताना है, ऐसा दृढ़ विश्वास सत्पुरुषके प्रति हो जाना चाहिये और समय भी केवल उसी चर्चामें बिताना योग्य है। अन्य सब मिथ्या निकला, तो अब क्या करें?

★
★ ★

पत्रांक ३७३ का वांचन–

"मनके कारण यह सब है।"

'मन' क्या?

भावमन और द्रव्यमन यों दो भेद हैं। भावमन आत्मा। आत्माके बिना मन कैसा?

'उसके कारण' इसके भी दो भेद होते हैं। द्रव्यमनके कारण और भावमनके कारण।

'यह सब है' क्या है?

स्वभाव और विभाव। आत्मा न हो तो यह सब कैसे जाना जाय?

'उसका निर्णय' यह भी आत्माके कारण बाह्याभ्यंतर ये दो भेदवाला है। लंबे समयके बोधके बिना यह समझमें आना कठिन है।

एक गाँवके पटेल पर दरबारका रोष होनेसे उसे एक जोड़ी बैल, गाड़ी और अनाज देकर कुटुंबके साथ राज्यकी सीमाके बाहर निकाल दिया। वहाँ जंगलमें उसकी स्त्रीने एक बालकको जन्म दिया। बारिश होने लगी और लुटेरे लूटनेको आ पहुँचे। अतः वह गाड़ी पर चढ़कर दुपट्टा हिला-हिलाकर कहने लगा, "आओ, आओ, जितने आ सको आओ।" लुटेरे बोले–"किसको बुला रहा है? उतर नीचे, वर्ना लाठी मारकर मार डालूँगा।" तब उसने अपनी आपबीती कह सुनायी–"मैं तो पूरे गाँवका स्वामी था। ईर्ष्या करनेवालोंने चुगली की कि मेरे गाँवसे दरबारके पास कोई फरियाद नहीं जाती, जिससे दरबारको पैसे नहीं मिलते। इसलिये मुझे गाँवसे निकाल दिया। बारिश होने लगी, स्त्रीने बच्चेको जन्म दिया और तुम भी आ गये। अतः और भी जो दुःख आनेवाले हों उन्हें बुला रहा हूँ कि वे सब आ जायें।"

इस प्रकार जिसे संसार दुःखरूप लगा है, पर सुखमें या दुःखमें जिसे समता रहती है, वह तो प्रभुसे दुःख ही माँगता है। हमें आँतकी गाँठ है। दस्तके समय अर्शमें कचाई रह जानेसे आँत खिसकती है। वह प्रसूतिकी वेदना जैसी पीड़ा प्रतिदिन भोगनी पड़ती है। वृद्धावस्था, कफ, घबराहट, वायु आदिके रूपमें पूर्वबद्ध कर्म भोगने पड़ते हैं, वे भोग रहे हैं, वे जानेके लिये आये हैं अतः जा रहे हैं–ऐसा देख रहे हैं।

★

[मुमुक्षुको 'तत्त्वज्ञान' देते हुए]

इस 'तत्त्वज्ञान'में जो वस्तु है वह अपूर्व है! आप जो मानते हैं उस धर्मसे कोई विरोध नहीं है। पूजा करें, दान दें तो उसका फल है, पुण्यबंध होता है। पर यह तो मोक्षका मार्ग प्राप्त करानेवाला है। चाहे जितनी प्रवृत्तिमें हों तो भी उसे न भूलें। सच्चा धर्म, सत्पुरुषोंका धर्म शास्त्रोंमें नहीं होता। शास्त्र योग्यता प्रदान करते हैं। इतना भव इसीके लिये बिताना है। जब सबका फल मिलता है तब इसका क्यों नहीं मिलेगा? यह चूकने योग्य अवसर नहीं है। स्मरणमें रहें।

★
★ ★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. २८-१-२५

पत्रांक ११७ का वाचन–

"उस पावन आत्माके गुणोंका क्या स्मरण करें? जहाँ विस्मृतिको अवकाश नहीं है वहाँ स्मृति होना भी कैसे माना जाय?"

प्रभुश्री–इसका क्या परमार्थ है?

मुनि मोहन०–बोधबीजकी बात है। जहाँ मन और वाणीकी गति नहीं है वहाँ स्मृति, विस्मृति जो मनके कारण है, उसकी गति कैसे हो सकती है? आप कुछ कहिये।

प्रभुश्री–नय अनंत हैं। नयकी अपेक्षासे मिथ्या नहीं है। पर उनकी शरणसे अभी जो स्मरणमें आता है वह बताता हूँ। सत्पुरुषके योगसे मार्ग मिल जाता है, वस्तु समझमें आ जाती है। उसे ग्रहण करके छोड़े नहीं, उसीके लिये जीये, ऐसा कुछ समकितका रंग है! जैसे किसी वस्तुको दाग लग जाय तो वह मिटता नहीं, वैसे ही यह भी विस्मृत नहीं होता।

"एही नहीं है कल्पना, एही नहीं विभंग;
जब जागेंगे आतमा, तब लागेंगे रंग."

ऐसा रंग सौभाग्यभाईको, जूठाभाईको, हमको लगा था। कागज पर लिखी 'अग्नि' और सच्ची अग्निमें आकाश-पातालका अंतर है। एक बार उसका स्पर्श हो जाने पर फिर कैसे भी प्रसंग आये तब भी उसे अलगका अलग ही लगता है। जूठाभाईके यहाँ भी व्यापार, सगाई-संबंध आदिके अनेक प्रश्न आये, पर वे अपने नहीं हैं ऐसा ही मानते थे। आत्महितमें ही लक्ष्य रहता था, ऐसी दशाकी प्रशंसा की है।

"क्या इच्छत खोवत सबै, है इच्छा दुःखमूल।"

★
★★

ता. २५-५-२५

आप, आप और आप सब एकत्रित हुए हैं वे संस्कार ही हैं न? ऋणानुबंधके कारण सब मिलते हैं और अलग होते हैं। सच्चा वैराग्य ही कहाँ समझमें आया है! समझमें आयेगा तब तो एक घडी भी अच्छा नहीं लगेगा। हाथी, गाय, भैंसके बच्चेका जन्म होता है तब झिल्ली आती है। उसमेंसे बच्चेको बाहर निकालना पड़ता है, आँवलमेंसे बच्चेको अलग करना पड़ता है। वैसे ही बेचारा जीव कर्मकी झिल्लीमें लिपटा हुआ है। उसे वहाँ कैसे अच्छा लग सकता है? जो अच्छा लगे उसे अच्छा नहीं लगाना और जो अच्छा न लगे उसे अच्छा लगाना–ऐसा ज्ञानीपुरुषका वचन है। दुःख आये, मृत्यु आये, चाहे जो आये, भले ही उससे अधिक आये, जितना आना हो उतना आये! यह कहाँ आत्माका धर्म है? यह बुलानेसे नहीं आयेगा और 'मत आओ, मिट जाओ, अच्छा हो जाओ' कहनेसे कम होनेवाला नहीं है, तब फिर उससे डरना क्या? ज्ञानीपुरुषोंने जैसा देखा है वैसा मेरा स्वरूप है। उन्होंने जो माना है वह मुझे मान्य है। फिर अन्य चाहे जो आये। उसे मेरा मानूँ तब तो मुझे दुःख होगा न? एक सच्चे पुरुषके मिलनेसे यह समझमें आता है, अन्यथा कौन जाने आत्माका स्वरूप क्या और कैसा है?

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो कण्ठस्थ हो गया हो उसे गुनगुना लेते हैं, प्रतिक्रमण पड़पड़ कर लेते हैं, या उपयोग न रहे, कच्चा याद हो, बराबर याद न हो तो जो बोलना चाहिये उसके स्थान पर अन्य कुछ बोल जायें। ये दोनों बातें ठीक नहीं है। याद हो तो ऐसा होना चाहिये कि नींदमें हों और कोई सुनानेको कहे तो उठकर फौरन एक भी भूल किये बिना सुना दें। ध्यान रखकर बोला जाय—उपयोगशून्य उच्चारण न हो इसके लिये कभी कभी उलटे क्रमसे बोलना चाहिये, जैसे १, २, ३, ४ के स्थान पर ४, ३, २, १ की भाँति। जैसे आत्मसिद्धिका पाठ करना है और अच्छी तरह याद हो गई है तो अंतिम गाथासे आरंभकर पहली गाथा तक बोलना चाहिये। यों प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करे तो उपयोगसहित बोला जा सकता है।

मनको यदि थोड़ी देरके लिये भी ढीला छोड़ दिया तो वह अनर्थ कर डालेगा। अतः उसे कुछ न कुछ काममें लगाये रखना चाहिए। भगवानकी आज्ञा है कि समयमात्र भी प्रमाद नहीं करना।

★★★

ता. १४-६-२५

[पाँच समितिके विषयमें पत्रांक ७६७ का वाचन]

इसमें अपूर्व बात कही गई है।

"प्रवचन अंजन जो सद्गुरु करे, देखे परम निधान जिनेश्वर।"

इसमें प्रवचन-अंजन कहा है, वही बात इस पत्रमें है। तीन गुप्ति—मन, वचन और काया तथा पाँच समिति—आज्ञाके उपयोगपूर्वक बोलना, चलना, आहार ग्रहण करना, वस्त्र आदि लेना या रखना और निहार क्रिया (मलमूत्र त्याग आदि)—इन आठों ही कामोंमें आज्ञाका उपयोग रखकर व्यवहार करना उसे 'प्रवचन अंजन' कहा है। घटपट आदिके विषयमें बोलनेके पहले आत्माकी ओर उपयोग रहे। पहले आत्मा फिर अन्य कुछ। जहाँ दृष्टि जाये वहाँ आत्मा, आत्मा, आत्मा। रोम-रोममें यही सत्य, सत्य, सत्य हो रहा है।

अठारह दूषणसे रहित कैसा है वह देव! क्रोध नहीं, मान नहीं, माया नहीं, रति-अरति नहीं, आदि दोषोंसे रहित! वह कभी प्यासा हुआ है? भूखा हुआ है? रोगी है? ब्राह्मण है? स्त्री है? पुरुष है? एकमात्र समझ बदल जाय तो चमत्कार हो जाय। "वहाँ मैं गया" कहता है वहाँ मिथ्यात्व है। 'मैं' और 'तू' भिन्न हुआ है उसे हुआ है। अन्य कुछ भी कहे तो अच्छा नहीं लगता। काशीके बड़े पंडित हों या अन्य कोई भी हों, पर एक सच्चे पुरुषकी मान्यता हो गई है, जिससे अन्य कोई अच्छा नहीं लगता। यही कर्तव्य है। 'बात मान्यताकी है।' सत्पुरुषकी यथायोग्य प्रतीतिके बिना जीवाजीवका ज्ञान नहीं होता यह सत्य है। ढूँढिया रातमें पानी नहीं रखते, आवश्यकता पड़ जाय तो मूत्र या राखसे काम चला लेते हैं। शास्त्रमें ऐसी संकुचितता क्यों रखी होगी? ऐसी शंका आचारांगका वाचन करते हुए हमें हुई थी। इसके विषयमें देवकरणजी और हमने पुछवाया था जिसका यह उत्तर है।

इसमें तो अपूर्व बातें भरी हुई हैं। तोड़फोड़ कर कही जाय तो असली मजा आये। बबूलको बाथ भींचकर कहे कि मुझे छुड़ाओ, मुझे कोई छुड़ाओ। छोड़ दे तो छूट जायेगा। सत्पुरुष तो कहकर चले जाते हैं। पंडित तो लग्न करा देगा, पर क्या वह घर भी बसा देगा?

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता.५-१-२६

[गोमट्टसारमेंसे कषायमार्गणाका वाचन]

कृपालुदेवने चार कषायोंको चार चक्रवर्ती कहा है। उनको जीतना चक्रवर्तीको जीतनेके समान है। रागद्वेषरूपी बैलसे कषायरूपी कृषक मिथ्यात्व बीज बो रहा है। वह कैसा फल देता है? अरे! अनंत संसारमें भटकाता है। यह शत्रु है, इसे नहीं मारेंगे? मर! मर! स्थान स्थान पर मर जाने जैसा है। हाँ, मृत्यु न होती और भले ही वृद्धावस्था, रोगोंसे जर्जरित यह शरीर ऐसा ही चलता रहता तो ठीक, धीरज रख सकते हैं। किन्तु यह दो घड़ी दिन जितना यह मनुष्यभव मिला है, इसका क्या भरोसा? कितने दिन जीना है? क्या सदैव बैठे रहेंगे? तब मृत्युको कैसे भूल सकते हैं?

जो सम्यक्त्वका, आत्माके शुद्ध परिणामका घात करे, वह कषाय। अरेरे! यह तो कसाई ही है। इससे बड़ा पाप क्या है? मोहनलालजी कहते हों या हम कहते हों किन्तु मनमें यह विचार आये कि ये तो ऐसा कहते हैं, पर ऐसा होना चाहिये। ये बड़े हैं अतः क्या कहें? अन्यथा वास्तविक तो यह है। ऐसे भाव आयें वह क्या है? जीवने सामान्य कर दिया है। इस चंदनवृक्षकी हवा आना भी दुर्लभ है। इस कालमें यह मिलना महा दुर्लभ है। एक ज्ञानीकी दृष्टिसे जो सच है, वही सच है। शेष तो बाहरसे भले ही शीतल दीखता हो, पर ज्ञानी कहे कि वह रागी है तो वह सत्य है; और बाहरसे क्रोधी दीखता हो पर अंतरपरिणाम सम्यक् भी होते हैं। एक शीतलदास बाबाजी थे। एक व्यक्तिने आकर उनसे नाम पूछा तो बोले—"शीतलदास।" फिर पूछा तो कहा—"शीतलदास।" यों दो-तीन बार उत्तर दिया, पर पाँच-सात बार पूछा तो बाबाजी चिमटा लेकर खड़े हो गये मारनेके लिये। तब उस व्यक्तिने कहा—"आपका नाम शीतलदास नहीं है, वास्तवमें तो अग्निदास है।" ऐसा हो जाता है।

★

मुमुक्षु—"आ अवनिनुं कर भलुं' (इस अवनिका भला कर) ऐसी परमकृपालुदेवने प्रार्थना की है, उसके अनुसार कृषि, कामिनी और कंचनके त्याग द्वारा टोलस्टॉय और लेनिनने रागद्वेषके त्यागके निमित्त स्वीकार किये हैं, अतः वे भी धर्मप्राप्तिके पात्र बन रहे हैं।

प्रभुश्री—वहाँ राजा है या नहीं?

मुमुक्षु—राजाको तो फाँसी पर चढ़ा दिया।

प्रभुश्री—तब तो वहाँ अभी तक रागद्वेष हैं और वे भी तीव्र। इसी कारणसे ज्ञानियोंने उन देशोंको अनार्य कहा है। बाहरसे चाहे जैसा दिखायी देता हो पर ज्ञानीकी दृष्टिसे जो सत्य है, वही सत्य है। अन्य मुझे मान्य नहीं है। चाहे जैसा चमत्कार जैसा भले ही लगे, पर ज्ञानीको जो सच लगा वही मुझे मान्य है। इतना इस भवमें करने जैसा है।

एक त्यागी था, वह प्रतिदिन खाता था, फिर भी ऐसी बात फैल गई थी कि 'वह कभी निहार नहीं करता।' एक जैनको इसका पता लगा, अतः उसकी परीक्षा लेने मिठाई लेकर उस त्यागीके पास पहुँचा। भक्तिभाव दिखाकर उसे भली प्रकार भोजन करवाकर सेवामें रहनेकी आज्ञा लेकर वहीं रह गया। पूरे दिन कुछ पता नहीं लगा। पर प्रातः जब बाबाजी स्नानके लिये जाने लगे तब वह व्यक्ति भी उनके साथ गया। बाबाजीने स्नान करते करते डुबकी लगा दी तो विष्टा तैरकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऊपर आ गई। तब उस जैनने कहा—बाबाजी, अब बाहर आ जाइये, लींडी (विष्टा) ऊपर दिखाई दे रही है। यों लोगोंको तमाशा दिखाकर, जिसे आहार होता है उसे निहार होता ही है, यह सिद्धकर सारी पोल खोल दी।

अतः बाहर कैसे भी चिह्न दिखाई देते हों, पर जो सत्य है वही सत्य है। मैं समझता हूँ, मुझे जो समझमें आता है वही सत्य है और इसका कहना मिथ्या है, इन सब बातोंको छोड़कर, ज्ञानीने जो देखा है वही सत्य है, इस पर दृढ़ रहनेकी आवश्यकता है। कोई कहे कि मैं समझता हूँ तब भी भूल है। ज्ञानीकी छाप (मुहर) चाहिये। अपने आप मान लेना योग्य नहीं है।

★
★ ★

ता. ६-१-२६

प्रभु! जीव अभी थका कहाँ है? स्वच्छंद और स्वच्छंदमें ही अपनी कल्पनासे भागता ही रहता है। कुछ कहने जैसा नहीं है। यह कोई अपूर्व अवसर है, सावधान होने जैसा है। 'ऐसा करूँ तो ऐसा होगा, ऐसा किया सो ठीक किया,' आदि नासमझी है। कर्म कहाँ छोड़नेवाले हैं? गुरुकी शरणसे हमें तो सातावेदनी हो तो भी अच्छी नहीं लगती तथा असाता भी वैसी ही है। यह कहाँ आत्माका धर्म है? कहीं भी अटकने जैसा नहीं है।

★

मुमुक्षु—दो दिन थोड़ी बीमारी थी तब तक तो मंत्रका स्मरण हुआ, पर तीसरे दिन विशेष पीड़ा हुई तब मंत्र-जापकी इच्छा, भावना तो रहती, पर 'बाप रे! अरेरे!' ऐसे बोल निकल जाते। ऐसा क्यों होता होगा?

प्रभुश्री—जो भावना रहती है वह भी कुछ कम नहीं है। अपारिणामिक ममता जैसा है। पर स्वास्थ्य ठीक होने पर अन्य कर्मोंका प्रवाह जो बंद हुआ था, वह फिर प्रारंभ हो गया न? यह बुला रहा है, यह अमुक वस्तु लाये, यह काम है, यह लेंगे न? इस संकल्प-विकल्पमें स्मरण भी रहना कठिन हो जाता है। अतः बीमारी भी हितकारक सिद्ध होती है। रोगके चले जाने पर आपको ऐसा लगता होगा कि ठीक हुआ; किन्तु फिर यह उपाधि आकर चिपक गई। बखेड़े बाँधे थे उन सबका ऋण चुकाना पड़ता है न? किन्तु जितना समय स्मरण और भावनामें बीता वह सार्थक हुआ।

हमारी तो अब वृद्धावस्था हुई, दुःख भी चलता रहता है। कलकी अपेक्षा आज बुखार विशेष है, फिर भी फालतू बकबककी तरह यह बोलना हो जाता है। कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मृत्यु न हो तब तो कोई बात नहीं, पर ऐसा शरीर भी कितने दिन चलेगा? और अकेले हमारे लिये ही ऐसा कहाँ है? किसीके लिये भी ऐसा कहाँ है कि इतने वर्ष तक तो मृत्यु आयेगी ही नहीं? घड़ीभरमें क्या से क्या हो जाता है! अतः हमें तो उनकी शरणसे किसीमें आनंद नहीं आता। एक देवने एक समकितीको वैरभावके कारण समुद्रमें फैंक दिया, जहाँसे उसका मोक्ष हुआ। ऐसी कुछ कथा है न? पर निमित्त सदैव अच्छे रखने चाहिये।

मुनि मो०—धारशीभाईके अंतकालके समय उनके समीप चौबीसों घंटे शुभ निमित्त रखे गये थे। कभी वाचन होता तो कभी मंत्रजाप होता था। 'सहजात्मस्वरूप, सहजात्मस्वरूप, केवलज्ञान-दर्शनमय सहजात्मस्वरूप' ऐसा जाप चालू ही रहता था। जब वेदनीय कर्मका तीव्र उदय होता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब जीवका वीर्य मंद पड़ जाता है और दब जाता है, उस समय याद दिलानेवाला कोई हो तो विशेष लाभ होता है।

प्रभुश्री—सौभाग्यभाईकी मृत्युके समय अंबालालभाई 'सहजात्मस्वरूप' सुनाते थे तब अपने ध्यान-उपयोगसे बाहर आकर सौभाग्यभाईको उसमें उपयोग जोड़ना पड़ा। अतः उस समय कुछ न बोलनेका उन्होंने कहा था। यों स्याद्वाद भी है।

मुनि मो०—फिर भी अंबालाल विचक्षण थे। जब भी विशेष वेदनाके चिह्न दिखायी देते तब वे वापस स्मृति दिलाते रहते थे।

★★★

ता. ७-१-२६

['मोक्षमाला' शिक्षापाठ १०० 'मनोनिग्रहके विघ्न' का वाचन]

मुमुक्षु—लक्ष्यकी बहुलताका क्या अर्थ है?

प्रभुश्री—उपयोगका विभावसे छूटना, विशालता होना। उपयोगकी निर्मलताके लिये, वह भूला न जाय उसके लिये कुछ अधिक श्रवण आदिकी विशेष आवश्यकता नहीं है।

['एक भी उत्तम नियमको सिद्ध नहीं करना' इस अठारहवें दोषके विवेचनके प्रसंग पर दृष्टांत]

फेणावके छोटालाल कपूरचंद, अंबालालके मित्र थे। उन्हें 'बहु पुण्यकेरा पुंजथी' काव्यकी पहली गाथाकी दो पंक्तियाँ बार बार याद आती रहतीं। जब देखो तब वह उनकी जीभ पर ही होती। इनका उच्चारण किये बिना वे कभी दिखायी नहीं पड़े। इससे उनके मतिज्ञानमें निर्मलता होनेसे उन्हें अपनी मृत्युका कुछ पता लग गया। वे स्वयं बहुत पक्के थे। अंबालालभाईके कुटुंबका बहुतसा काम संभाल लेते, पर स्वार्थी इतने अधिक कि उनके चाहे जैसे काममें अन्यको स्वार्थकी गंध आये बिना न रहती। एक दिन शामको जहाँ सब भक्ति करते बैठते वहाँ आकर सबको नमस्कार करना शुरू कर दिया। सबको लगा कि बिना कारण वे ऐसा नहीं करेंगे। अतः अंबालालभाईने पूछ लिया—"छोटाभाई! तुम आज ऐसा क्यों कर रहे हो?" उन्होंने कहा—"मुझे आपसे आज वचन लेना है।" "तुम्हें क्या चाहिये, बोलो?" "आप वचन दें कि दूँगा, तो माँगूँ।" अंबालालभाईने हाँ कही तब उन्होंने उनसे और उनके पास बैठे नगीनदाससे अपनी मृत्युके समय उपस्थित रहकर मृत्यु सुधारने और स्मरण दिलानेकी माँग की। अंबालालभाईने उसे स्वीकार किया। एकाध सप्ताह बाद छोटाभाईको प्लेगकी गाँठ निकल आई। अतः व्यावहारिक उपकारके कारण और वचनबद्ध होनेके कारण अंबालालभाई तीनों दिन उनके पास ही रहे और कुछ वाचन, भक्ति, बोध आदिसे उनका उपयोग उसमें ही जुड़ा रहे ऐसी प्रवृत्ति करते रहे। नगीनदास भी साथ रहे और उनका भतीजा पोपटभाई भी सेवामें रहा। इन तीनोंको छूतका रोग लग गया और तीनोंकी मृत्यु साथ ही हुई जिससे तीनोंका अग्निसंस्कार भी साथ ही किया गया।

यह 'मोक्षमाला'का मनोनिग्रहका पाठ योग्यता देनेवाला है। इसमें कितनी सारी बातें कही गई है! आलस्य, नींदका त्याग और संयम ये सब कर्तव्य हैं।

मुमुक्षु—'लक्ष्यकी बहुलता'में लक्ष्यका क्या मतलब है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री–लक्ष्य क्या? 'लक्ष्य, लक्ष्य' अर्थात् घिस डालना। वहीका वही, वहीका वही–निरंतर लक्ष्यमें रखना। अन्य कुछ अच्छा न लगे।

इस पाठमें लिखे दोष जब तक रहेंगे, तब तक मन कैसे वश होगा? 'मन, उसके कारण, यह सब और उसका निर्णय'–पत्रांक ३७३ में यही बात है। पत्रांक ४३० में लिखे हुए प्रतिबंध प्रत्येक व्यक्तिके लिये विचारणीय है।

"असंगता अर्थात् आत्मार्थके सिवायके संगप्रसंगमें नहीं पड़ना, संसारके संगीके संगमें बातचीतादिका प्रसंग शिष्यादि बनानेके कारणसे नहीं रखना, शिष्यादि बनानेके लिये गृहवासी वेषवालोंको साथमें नहीं घुमाना। 'दीक्षा ले तो तेरा कल्याण होगा', ऐसे वाक्य तीर्थंकरदेव कहते नहीं थे। उसका एक हेतु यह भी था कि ऐसा कहना यह भी उसके अभिप्रायके उत्पन्न होनेसे पहले उसे दीक्षा देना है; वह कल्याण नहीं है। जिसमें तीर्थंकरदेवने ऐसे विचारसे प्रवृत्ति की है, उसमें हम छः छः मास दीक्षा लेनेका उपदेश जारी रखकर उसे शिष्य बनाते हैं, वह मात्र शिष्यार्थ है, आत्मार्थ नहीं है। पुस्तक, यदि सब प्रकारके अपने ममत्वभावसे रहित होकर ज्ञानकी आराधना करनेके लिये रखी जाय तो ही आत्मार्थ है, नहीं तो महान प्रतिबंध है, यह भी विचारणीय है।

यह क्षेत्र अपना है, और उस क्षेत्रकी रक्षाके लिये वहाँ चातुर्मास करनेके लिये जो विचार किया जाता है, वह क्षेत्रप्रतिबंध है। तीर्थंकरदेव तो ऐसा कहते हैं कि द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे और भावसे–इन चारों प्रतिबंधसे यदि आत्मार्थ होता हो अथवा निर्ग्रंथ हुआ जाता हो तो वह तीर्थंकरदेवके मार्गमें नहीं है, परंतु संसारके मार्गमें है।"

यह कथन कोई पढ़े तो कैसा परिणाम आये? किसी भी साधुको अपने दोष जाननेका यह साधन है।

★

['गोमट्टसार'मेंसे ज्ञानमार्गणाका वाचन]

मिथ्यात्व जानेपर श्रद्धा होती है। किन्तु श्रद्धा आनेके पहले क्या करना चाहिये? मनोनिग्रहके पाठमें जो लिखा है वह योग्यता देनेवाला है। 'एक मत आपडी के ऊभे मार्गे तापडी'–यह तो श्रद्धा आनेके बाद होता है। पर उससे पहले योग्यता लाने और उसे टिकाकर रखनेके लिये परिश्रम करना पड़ता है। औषध देनेके पहले जुलाब दिया जाता है और बादमें पथ्यका पालन करना होता है। ऐसी योग्यता या दशा लानेकी बात है। यदि अपनेमें गुण प्रकट हुआ है ऐसा देखने लगे तो, जैसे बालकको खजूर अपथ्य हो और वह उसे खा जाय तो उसे फिर जुलाब देना पड़ता है, सब औषध बेकार जाती है, वैसे ही सीधा न रहे, इधर-उधर हाथ-पाँव पटके, तब उसे माँ-बाप कहते हैं कि अब तो चुपचाप बैठ जा। इसी प्रकार धर्ममें भी कंगाल, रंककी तरह दीन होकर पड़े रहने जैसा है। उपदेश देने या सयानापन बतानेकी आवश्यकता नहीं है। पर एक सत्पुरुषने मान्य किया है, उन्होंने देखा है, वही सच है यह ध्यानमें रखना चाहिये, इसे भूलना नहीं चाहिये। यदि स्वयंको देखे तो वहाँ क्या मिलेगा? अंधेरा, तर्क-वितर्कका जाल। जब तक इतनी योग्यता प्राप्त न हो तथा वैसी दशा प्राप्त न हो, तब तक वहाँ क्या देख पायेंगे? थोड़ा बड़ा हो, योग्य वय हो, तब समझमें आता है। अब क्या किया जाय? 'शक्कर ऐसी होती है' ऐसा कहनेसे उसकी मिठासका पता नहीं लग सकता, पर एकने चखी हो वैसे ही दूसरा भी चखे तो उसे पता लग सकता है। परीक्षाप्रधानत्व वयसे, योग्यतासे आता है। तब तक वह परीक्षा कैसे करेगा? किस नापसे नापेगा? घड़ा उलटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखकर पानी भरा जा सकता है क्या? कल एक भाई बात करते थे कि पश्चिमके देशोंमें रागद्वेष मिटनेके चिह्न दीखते हैं, पर ज्ञानीने देखा वही सत्य है। यही श्रद्धा करने योग्य है। ये भाई तो मनमें ऐसा मानते हैं कि मेरी समझ ही ठीक है। पर देख, क्या निकला! पुण्ययोगसे सब मिल जाता है, पर समझकी बात ही अलग है! वह उदार है इसको कौन मना करता है? और कुछ वैसे संयोगसे ही यह जो है वह दिखायी देता है।

मुनि मोहन०—जो मिथ्यात्वमें हो वह उदारता दिखाये या चाहे जैसी प्रवृत्ति करे तो भी कर्म बढ़ाता रहता है और समकिती जीवको निर्जरा होती जाती है। उलटा अधिक क्षयोपशमवालेके पास अधिक कचरा होता है। गिनती तो समकितकी है।

मुमुक्षु—प्रभु, किसी जीवको छोड़ना हो, पर छोड़ा न जाता हो, समझमें ही न आता हो कि कैसे छोड़े, उसका क्या करें?

प्रभुश्री—कुछ यही बाकी है। छोड़नेका ऐसा कहाँ दिखायी देता है कि, बढ़े हुए नाखूनको काट देनेकी भाँति दूर किया जाये? पर जो ज्ञानीकी दृष्टिसे सच्चा नहीं है, उसे सच्चा न मानें। फिर भले ही सब पड़ा रहे। वह तो उसका समय आने पर ही जायेगा।

पर कोई बीस वर्षका पुत्र मर जाये तो ऐसा नहीं होना चाहिये कि हाय! हाय! लड़का चल बसा। किन्तु पहलेसे निश्चित करके रखना चाहिये कि 'मृत्यु तो है ही, और यह सब तो झूठी माया है, स्वप्नके समान है। जीये तो भी क्या और मर जाये तो भी क्या?' कोई गाली दे तो, एकको तो उल्टा ऐसा लगता है कि 'मेरा पाप धुल रहा है, कर्म नष्ट हो रहा है' और दूसरेको ऐसा लगता है कि 'मुझे गाली दी'; किन्तु समझ सच्ची होकर बुरा न लगे तब समझना चाहिये कि इसे ज्ञानीके कथनानुसार सच्ची श्रद्धा है। नहीं तो 'मुझे श्रद्धा है' ऐसा कहनेसे क्या होता है? भेदज्ञान होना चाहिये। काम करते हुए भी ऐसा लगे कि यह सत्य नहीं है, राखकी पुड़ियाके समान है।

यदि कोई कह दे कि तुम कल मर जाओगे तो उसका मन किसी भी अन्य काममें लगेगा? मन पीछे हटेगा, उदास रहेगा। इसी प्रकार मृत्युको याद रखनेसे योग्यता आती है। ममता घटे वैसा करें। ठौर ठौर मर जाने जैसा है। महाभाग्यसे ज्ञानीपुरुषका आश्रय प्राप्त होता है। हमें कृपालुदेवका आश्रय प्राप्त हुआ है, वह किसी-न-किसी पूर्वकर्मके संयोगसे प्राप्त हुआ है न? यदि ऐसी सच्ची दृष्टि हुई हो तो फिर एक कुटुंब जैसा लगता है। कुटुंबमें जैसे एक ज्यादा कमाये और दूसरा कम कमाये तो भी सब कुटुंबी माने जाते हैं, वैसा प्रतीत होता है।

मृत्युके समय शोक या खेद नहीं होना चाहिये। जैसे पशुको नये घर या नये स्थान पर बाँधे तो उसे भी वहाँ अच्छा नहीं लगता, वैसे ही इस जीवको देहसे निकलना अच्छा नहीं लगता। जीवका देहके साथ वस्त्र जैसा संबंध है, इसे तो ज्ञानीने जाना है।

मुनि मोहन०—किसी मनुष्यने धन गाड़कर रखा हो उसे चोर निकाल कर ले जाय और जमीनको वापस बराबर कर दे, तो जब तक चोरीका पता नहीं लगता तब तक खेद नहीं होता; किन्तु पता लगने पर खेद होता है। इसी प्रकार क्षण-क्षण मृत्यु हो रही है, उसका पता नहीं है; किन्तु मृत्युके समय देह छूटनेके समय खेद होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री–यदि उसका हो तो छूटे कैसे? जो पराया होता है वही छूटता है। मृत्युको याद करनेवालोंमें कुछ ऐसे भी स्याद्वादी होते हैं जो सोचते हैं कि मरण होगा तो इकट्ठा किया हुआ बच्चे खायेंगे, किन्तु वैराग्यको प्राप्त नहीं होते। आत्मा कब किसीका पुत्र हुआ है? किन्तु व्यवहारमें जैसा होता है वैसा कहा जाता है। राखकी पुड़ियाके समान व्यवहार बना लेना चाहिये। क्योंकि यह सब मिथ्या सिद्ध हो चुका है, इसमें कुछ सार नहीं है। वह कहाँ आत्माका गुण है? आत्मा ही सत्य है।

★★★

ता. ११-१-२६

['मूलाचार'के वाचनके समय]

शंका– तत्त्वकी समझ समकितका कारण है और उसमें शंका करना समकितका घात है। ऐसा नहीं करना चाहिये।

कांक्षा– तीन प्रकार है–(१) इस लोककी संपत्तिकी इच्छा (२) परलोककी संपत्तिकी इच्छा और (३) कुल धर्मकी (लौकिक धर्मकी) इच्छा।

(१) 'इस लोककी अल्प भी सुखेच्छा' हो तो समकित ही नहीं है। पूरी रात इस पर विचार करें–खानेकी इच्छा, पहननेकी इच्छा, नींद लेनेकी इच्छा, सुखकी इच्छा, धन-पुत्र आदिके संबंधमें विचार करें–तो भूल समझमें आती है।

(२) परलोककी–देवताके सुखकी, वैभवकी इच्छा और

(३) लौकिक धर्म–माता-पिता-पुत्रका धर्म, कर्तव्य, और कहे जानेवाले धर्म–ये कोई आत्माके धर्म हैं? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही आत्माका धर्म है।

अहा! इस पुरुषका उपकार! एक 'इस लोककी अल्प भी सुखेच्छा' में कितना अर्थ समझा दिया है? उसके एक शब्दका भी विचार कहाँ हुआ है?

विचिकित्सा–यह तीसरा दोष है। इसमें मुनिराजके मलमूत्रादिमें ग्लानि नहीं करनी चाहिये, प्रत्युत विनय बड़ा गुण है। यह धर्मप्राप्तिका कारण है।

हम तो मात्र दो शब्द कानमें पड़े इसलिये कठिनतासे सभामें आते हैं, और आवश्यकता होती है तो बोलते हैं, पर अब हमारे भाषाके पुद्गल जैसे होने चाहिये वैसे व्यवस्थित हैं क्या? खींचतानकर मुश्केलीसे कुछ बोलते हैं, उसमें भी अरुचि रहती है। हमें तो अब इसीमें समय बिताना है। कृपालुदेवने बताया है तदनुसार जिनकी उनपर दृष्टि हो उन्हें अब हमारी सँभाल लेनी चाहिये–लड़के जैसे बूढ़ेको बुढ़ापेमें सँभालते हैं वैसे करना चाहिये। हमसे अब कुछ बोला जाता है? नहीं तो कुछ साहस भी करें। पर पहलेसे हमारी तो भावना ही ऐसी है कि कुछ सुनें। कोई सुनाये तो सुनते ही रहें ऐसा मन था और अब भी ऐसा ही है। समय तो बीत ही रहा है न? अब और क्या करना है?

एक ब्राह्मण था। वह पढ़ने गया। पढ़कर दूसरे ब्राह्मणोंके साथ जंगलमें होकर वापस घर आ रहा था। रास्तेमें एक बाघ दिखाई दिया। अन्य सब तो भाग गये, पर वह ब्राह्मण पशुकी भाषा भी बोलना जानता था। उसने बाघको उसकी भाषामें धर्मका उपदेश दिया और कथा कही, जिससे बाघ प्रसन्न हुआ। अतः उसने मरे हुए मनुष्योंके शरीर परके गहने, धन, माल आदि जहाँ गुफाके पास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इकट्ठे करके रखे थे वहाँ उसे ले गया और एक स्वर्णमोहर देकर कहा कि हमेशा आकर धर्मकथा सुना जाना। वह ब्राह्मण प्रतिदिन वहाँ जाता और धर्मकथा सुनाकर धन ले आता। दूसरा कोई भी व्यापार नहीं करता, फिर भी खूब पैसा खर्च करता। सब उसे पूछने लगे कि तुम पैसे कहाँसे लाते हो? उसने उन लोगोंसे सब बात बता दी, पर भला वे कैसे मानते? बाघ किसीको मारे बिना कैसे रह सकता है? फिर जाँच करने पर उन्हें यह बात सच्ची लगी। अतः सब उसकी ईर्ष्या करने लगे। एक व्यक्तिने उसके नाशका उपाय ढूँढ निकाला। उसने बाघके बारेमें बात करते हुए पूछा कि बाघ तुम्हें कभी नहीं मारेगा? उसने कहा कि कभी नहीं मारेगा। तब उसने कहा—आज तुम बाघको कुत्ता कहकर बुलाना। उस पोथी-पंडित ब्राह्मणको कुछ अनुभव नहीं था इसलिये उसने कहा कि कहूँगा। बाघ अपनी गुफाके पास सो रहा था, वहाँ जाकर उसने कहा—उठ कुत्ते। बाघको तो खूब गुस्सा आया पर वह अपनी गुफामें घुस गया। दूसरा कोई होता तो उसे मार डालता, पर इसे क्या करूँ? इसे भी शिक्षा देनी चाहिये यों सोचकर उसे एक स्वर्णमोहर देकर कहा—कल आओ तब एक कुल्हाड़ी अपने साथ लेते आना। दूसरे दिन ब्राह्मण कुल्हाड़ी लेकर आया तब बाघने कहा कि इसे मेरे सिर पर जोरसे मारो। ब्राह्मणने आनाकानी की, पर बाघने खूब हठ पकड़ ली तब उसने बाघके सिरमें चोट मारी। फिर बाघ गुफामें गया और मोहर लेकर आया और वह ब्राह्मणको देकर बोला कि अब थोड़े दिन बाद आना। थोड़े दिन बाद घाव भर गया। फिर ब्राह्मण आया तब बाघने कहा—सिरका घाव तो भर गया है पर उस दिन मुझे कुत्ता कहा था उसका घाव अभी नहीं भरा है। अब आज तो तुझे छोड़ता हूँ किन्तु फिरसे आया तो समझ लेना कि तुम्हारी मौत आ गई है।

यह कथा तो केवल दृष्टांतरूप है, किन्तु इससे समझना यह है कि सत्पुरुषके वचनकी ऐसी चोट लगनी चाहिये कि उसका घाव कभी भरे ही नहीं। दूसरे सब काम, धर्म, कर्तव्य सब भूल जाये, मिट जायें; पर सत्पुरुषके वचन ऐसे गहरे हृदयमें अंकितकर रखें कि कोई गाली दे फिर ऊपरसे कितनी ही दोस्ती करने आवे पर उसका दाग नहीं मिटता, वैसे ही वचनका दाग-रंग ऐसा लगना चाहिये कि उसका असर सदैव रहे, कभी जाय नहीं।

★
★ ★

ता. १२-१-२६

['मूलाचार' के वाचनके समय]

जब तक देव गुरु धर्मके विषयमें मूढ़ता रहती है तब तक सम्यक्त्व नहीं माना जाता।

उपगूहनमें ऐसा कोई तत्त्व है कि जिससे समकितकी शुद्धि होती है।

सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्रमें ग्लानि, मंद उत्साह, अभाव, अनिच्छा उत्पन्न हो तो उसे धर्मभक्ति द्वारा दूर करनेसे समकितकी शुद्धि होती है। अन्यकी अपेक्षा स्वयं पर ही इस बातका ध्यान रख समकित शुद्ध करनेके लिये रत्नत्रयमें मंद उत्साह, अभाव, प्रमाद, ग्लानिको दूर करना चाहिये। जब अन्य अन्य वस्तुओंमें भावना रहती है, तब सम्यग्ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक्चारित्रमें प्रमाद ही है। उन्हें दूर करनेकी आवश्यकता है। उन्हें दूर करनेसे समकितकी शुद्धि होती है।

स्थितिकरण!—परमकृपालुदेवने इस पामर जीवपर कितने उपकार किये हैं! कैसे कैसे मिथ्यात्वमेंसे छुड़ाकर कहाँ खड़ा किया है! सुखके निमित्तभूत उनके हित मित वचनोंसे कितना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकार हुआ है! उस उपकारका बदला किसी प्रकार चुकाया नहीं जा सकता। स्थितिकरण! –मोक्षमार्गमें खड़ा रखना, स्थिर करना। अहा! कैसा गुण है! संपूर्ण जगत कहाँ खड़ा है?

[मोहनलालजी महाराज सभामेंसे आये, उनसे उपगूहन और स्थितिकरण संबंधी वाचन करवाया और उसका अर्थ पूछा]

प्रभुश्री–ग्लानिका अर्थ क्या है?

मुनि मोहन०–विचिकित्सा, दुगंछा।

प्रभुश्री–सम्यग्ज्ञानादिमें ग्लानि क्या?

मुनि मोहन०–प्रमाद, मंद उत्साह, अभाव, अनिच्छा आदि।

प्रभुश्री–ये प्रमाद, मंद उत्साह, अधैर्य, कोई प्रश्न पूछे तो अरुचि होना आदि दोष हैं। उन्हें दूर करनेसे सम्यक्त्वकी शुद्धि होती है। सभामें क्या वाचन हुआ?

मुनि मोहन०–"सत्पुरुषकी आज्ञामें चलनेका जिसका दृढ़ निश्चय है और जो उस निश्चयका आराधन करता है उसे ही ज्ञान सम्यक्परिणामी होता है, यह बात आत्मार्थी जीवको अवश्य ध्यानमें रखना योग्य है। हमने जो ये वचन लिखे हैं उसके सर्व ज्ञानीपुरुष साक्षी हैं।

अनंतबार देहके लिये आत्माका उपयोग किया है। जिस देहका आत्माके लिये उपयोग होगा उस देहमें आत्मविचारका आविर्भाव होने योग्य जानकर, सर्व देहार्थकी कल्पना छोड़कर, एकमात्र आत्मार्थमें ही उसका उपयोग करना, ऐसा निश्चय मुमुक्षु जीवको अवश्य करना चाहिये।"

(पत्रांक ७१९)

मुझे ज्ञानावरणीयकर्मके आवरणसे यह समझमें नहीं आता कि क्या करने योग्य है? तो इस विषयमें बतानेकी कृपा कीजियेगा।

प्रभुश्री–वह हम कब नहीं बताते? उस पुरुष पर श्रद्धा है इसलिये इच्छा हो जाती है; नहीं तो हमें तो क्या कहना है?

जो कषाय छोड़नेके निमित्त हैं, उन निमित्तोंसे ही कषायबंध भी होता है और कषाय मनमें यों के यों रहा करते हैं–मनुष्यभव है इसलिये उसका पता तो लगता ही है। हमें तो अब कानमें दो शब्द उनकी आज्ञानुसार पड़े वैसे निमित्तोंमें रहना है, अतः ऐसे कषायके निमित्तों पर अरुचि रहती है।

पृच्छना–क्या प्रश्न पूछनेमें खींचतान करना उचित है? मनमें ऐसा लाना चाहिये कि ये तो समझते नहीं, मैंने जो सोच रखा है वह सत्य है इस आधार पर आग्रह रखकर चर्चा करनेमें या कषाय करनेमें क्या तथ्य है? यहाँ कैसा विनयका स्वरूप आया है? कैसा यथार्थ वर्णन किया है? आत्मा पर सत्का रंग चढ़ावे वह सत्संग या कषायका रंग चढ़ावे वह सत्संग?

कोई प्रश्न करे तो धैर्यसे हमें जो उत्तर सूझे उसे कहनेमें क्या हर्ज है? फिर तर्कसे चाहे जैसा प्रश्न भले ही करे। साव गलत प्रश्न खड़ा किया हो तो भी उसका सरलतासे अपनेको समझमें आये वैसा मन खोलकर स्पष्टीकरण हो तो सत्संगमें रंग आता है। नहीं तो सत्संग कैसा? हमें कहाँ अपना आग्रह रखना है? समझमें आये वह कहना चाहिये और अंतिम तो वे ज्ञानी ही जानते हैं।

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

['गोमट्टसार'मेंसे पर्याय, समास, ज्ञान और अर्थाक्षर इन श्रुतज्ञानके भेदोंके पुनरावर्तनके प्रसंगमें]

शास्त्रवाचन मृत्युके समय याद रहे भी और न भी रहे। पर सम्यग्दृष्टि, सत्पुरुषके प्रति सन्मुखदृष्टि, उनके मंत्रका स्मरण और भावना ही काम करती है। जिसका क्षयोपशम अधिक हो उसके पास उतना ही विशेष परिग्रह है। किसीको शास्त्रका ज्ञान न हो, क्षयोपशम कच्चा हो, बहुत बार सुनने पर याद होता हो, पर यदि श्रद्धा दृढ़ हो तो वह काम बना देती है। जिसके पास विशेष सामग्री हो वह उसका उपयोग कर सकता है, वह दृढ़ताका कारण है। पर उसका गर्व हो तो अधिक पैसेवाले सट्टेमें गुमा देते हैं, वैसा हो जाता है। छोटे गाँवमें थोड़ी पूंजी हो तो भी बड़ा धनवान माना जाता है। पर कुएके मेंढक! तुझे कहाँ पता है कि कृपालुदेव और ऐसे समर्थ ज्ञानीके आगे इस क्षयोपशमका क्या हिसाब? कुछ गर्व करने जैसा नहीं है। सम्यक्त्वके स्पर्शसे लोहेके पाटकी दूकान हो तो वह सौ टचके शुद्ध सोनेके पाटवाली दूकान हो जाय।

मुमुक्षु—कोई शास्त्र आदिका वाचन न करे और मात्र जो स्मरणमंत्र मिला हो उसका ही आराधन किया करे तो ज्ञान हो या नहीं?

मुनि मोहन०—'मा रुष मा तुष' इतना सा मंत्र याद रखनेका भी जिसका क्षयोपशम न था, फिर भी उसकी श्रद्धा दृढ़ थी तो उसे ज्ञान हुआ। गौतम गणधरदेव जैसे शास्त्रकर्ता रह गये और भिखारी जैसेको केवलज्ञान हो गया।

प्रभुश्री—स्याद्वाद रखिये।

"ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहां समजवुं तेह;
त्यां त्यां ते ते आचरे, आत्मार्थी जन एह." (आत्मसिद्धि)

मुनि मोहन०—'ज्ञानमें कुछ न्यून चौदह पूर्वधारी' के प्रश्नकी चर्चा कृपालुदेवने की है। उसमें निश्चित उत्तर स्याद्वाद सहित है।

प्रभुश्री—मार्ग कोई अपूर्व है, मोक्ष पहुँचाये ऐसा मार्ग कृपालुदेवने बना दिया है। उस दृष्टिको प्राप्त होना ही पूर्ण भाग्य है।

'प्रभु, प्रभु' शब्द बोलनेकी टेव मुझे है। इस विषयमें एक भाईने मुझे कहा कि आप ऐसा क्यों बोलते हैं? पर उनकी आज्ञासे दीनता स्वीकार कर प्रवर्तन करना है, इसलिये यह शब्द उपयोगपूर्वक बोला जाय तो अच्छा। इसमें कुछ आपत्ति जैसा है? 'अबे' और ऐसा ही कुछ बोला जाय उसकी अपेक्षा *चूड़ियोंके व्यापारीकी तरह अभ्यास कर रखा हो तो मुँहसे अच्छी ही वाणी निकले। कुछ नहीं तो पुण्यबंध तो होगा ही। 'प्रभु' तो बहुत सुंदर शब्द है। हमें तो उनकी आज्ञासे यह शब्द

* एक चूड़ियोंका व्यापारी गधी पर पाटले, चूड़ियाँ आदि लादकर बेचनेके लिये गाँवोंमें जाता। उस गधीको हाँकते हुए लकड़ी मारकर बोलता—"माँजी चलो, बहिन चलो, फूफीमाँ तेज चलो।" यों मानभरे शब्दोंका प्रयोगकर लकड़ी मारता। मार्गमें उसे कोई व्यक्ति मिला, उसको ऐसा लगा कि 'यह ऐसा क्यों बोलता है?' अतः उसने उससे पूछा तब चूड़ियोंका व्यापारी बोला कि "मुझे गाँवोंमें गरासिया (राजपूत) आदिकी स्त्रियोंके साथ चूड़ियोंका व्यापार करना होता है, अतः ऐसा अच्छा बोलनेकी आदत डाल रखी हो तो अपशब्द मुँहसे निकले ही नहीं। यदि भूलचूकसे भी 'गधी' जैसा शब्द मुँहसे निकल जाय तो गरासिये लोग हमारा सिर काट डालें। अतः अच्छा बोलनेका अभ्यास करनेके लिये मैं ऐसा बोलता हूँ।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हितकारी है। प्रभुत्व उन्हें अर्पण कर हमें दीनता, दासता, परम दीनतामें रहना योग्य है। चाहे जैसे भी कषाय कम करने हैं। बुढ़ापेके कारण बैठा नहीं जा सकता, यों सो जाना भी पड़ता है, पर क्या भाव दूसरा था? गुरु कहे वैसे करना चाहिये, करे वैसे नहीं करना चाहिये।

★★★

ता. १६-१-२६

['मोक्षमाला' शिक्षापाठ ८ 'सत्देव'के वाचन प्रसंग पर]

यह सब मिथ्या है, राखकी पुड़िया जैसा है। यह कुरता, यह मकान, यह शरीर—यह सब जैसा है वैसा ही रहेगा क्या? पुराना हो जाता है न? फट जाता है, पुराना हो जाता है, नष्ट हो जाता है, तो इसमें क्या रखने जैसा है? किसमें ममता करनी चाहिये? क्या साथ ले जाना है? सब यहीं पड़ा रह जायेगा। मेरे संबंधी, मेरे प्रियजन, मेरे हाथ, मेरे पाँव, यह सब मेरा मेरा करने पर भी कहाँ रहनेवाला है? बस इतना ही करना है कि मेरा कुछ नहीं है।

जहाँ-तहाँ दिन पूरे करने हैं, कारावास पूरा करना है। खाना-पीना पड़े तो पागल कुत्तेकी भाँति खाया-न खाया कर बद्ध कर्म पूरे करने हैं। अंतरमेंसे सब निकाल देना है। किसके पुत्र और किसके संबंधी?

आत्माके सिवाय कोई सहाय करनेवाला नहीं है। और उसे तो एकमात्र सत्पुरुषने जाना है। अतः ऐसे एक सत्पुरुषमें ही चित्त रखना चाहिये। जो आत्मारूप हो गये हैं वे ही सत्य हैं। उन्होंने जाना है वही सच है। उनकी प्रत्यक्ष वाणी परसे किसी संतसमागम द्वारा उसकी प्रतीति कर उसकी पहचान कर लेनी चाहिये। अन्य सब ओरसे तो मर जाने जैसा है। मरनेवालेको चिंता कैसी? यहाँसे जाना ही है तब यहाँकी चिंता क्यों रखी जाय? जहाँ-तहाँसे उठ जाना है और घरको जान लेना है। जैसे छोटा बच्चा अपनी माँको पहचानता है अतः अन्य कोई 'आओ, आओ' कहे, फिर भी वह मना कर देता है। कोई उसे कंधे पर बिठाये तो भी उसकी दृष्टि माँकी ओर ही रहती है। पर पहचान न हो तब तक जो बुलाये उसके पास चला जाता है। पहचान होनेके बाद तो दूसरेके बुलाने पर भी उसके पास नहीं जाता।

मेरा-तेरा छोड़कर, कोई कुछ भी कहे उसे सहन करना चाहिये। दुःख आये उसे सहन करे। क्षमापूर्वक सहन करना चाहिये। तप कहो, क्षमा कहो, चारित्र कहो—सभी इसमें आ जाता है। बुरा नहीं लगाना चाहिये। धैर्य रखना चाहिये। आत्माकी दया रखें। इसे दाग न लगने दें। सत्पुरुषने जिसे जाना है, वही आत्मा है। पापसे डरते रहना चाहिये। उपयोग रखना चाहिये। जिससे विभाव परिणाम न हो वही अहिंसा; और ममता, रागद्वेष द्वारा आत्माकी विस्मृति हो, उसका घात हो वही हिंसा है।

पहले मात्र कथनसे 'यह ठीक है, यह ठीक है' ऐसा प्रत्येकको लगता है, पर सत्य प्रकाशमें आ जाय तो कल्याण हो जाता है। *कुत्ते और कीड़ेके दृष्टांतमें कीड़ेका उद्धार होता है, किन्तु पूर्वमें जो

* एक गुरु थे, वे शिष्योंसे पैसा लेते थे। शिष्य भी भाविक होनेसे महंत समझकर उन्हें पैसे देते थे। वह गुरु मरकर अयोध्यामें कुत्ता हुआ। उसके शिष्य उसके सिरमें कीड़ोंके रूपमें उत्पन्न हुए और सिरकी पीप और खून खाते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु था वह कुत्ता रह जाता है, इस प्रकार जो बुराईको छोड़ देता है उसे लाभ होता है। बतानेवालेको चिपक नहीं जाना चाहिये, सच पर ही रहना चाहिये।

★★★

ता. १७-१-२६

समकितीके लक्षण—

१. पहले आत्मा देखें।

२. किसी भी क्रियामें पहले दयाकी भावना रखें।

★★★

ता. १९-१-२६

अंतरायकर्मकी परीक्षाके लिये महा मुनि क्या क्या करते हैं? अमुक प्रकारका आहार, अमुक दान देनेवाला, अमुक पात्रमें हो तो ही लेना आदि अभिग्रहका क्या तात्पर्य है? इस देहको अपनेसे भिन्न समझकर उसकी पर्वाह नहीं करना, न चलने पर बद्धकर्मका उदय हो तो ही उसे पोषण देना। पर यह जीव तो उसके लिये कितने-कितने संकल्प-विकल्प, तृष्णा और अनर्थ-दंडसे कर्मबंध किया करता है? जिस सुखके लिये वह तड़फ रहा है वह तो अंतरायकर्मके टूटने पर ही प्राप्त होता है। उसके बिना तो भले ही शक्ति लगाकर मर जाय तो भी काम नहीं बनता। साता, वैभव, बाल-बच्चे, स्त्री, धन, कुटुंब, परिग्रह आदिके लिये जितनी तीव्र इच्छा करता है, वे सब बंधके कारण हैं। अंतराय टूटे बिना उनकी प्राप्ति नहीं होती, नासमझीसे व्यर्थ ही दंडित होता है। एक सत्पुरुषके सिवाय कहीं सुख नहीं है। उसने जाना वही सच्चा सुख है। उसकी शरण, उसकी भावना करनी चाहिये। योग, कषाय और इंद्रियाँ राक्षस जैसे हैं। उन्हें मारनेकी जरूरत है। श्रीकृष्ण महाराजने राक्षसोंको मारा उनमेंसे एक रह गया था उसीने यह सब तूफान किया, ऐसी यह कथा है। अनादि कालके इन शत्रुओंके साथ युद्ध कर उन्हें पराजित करना है। आत्माने ही यह सब किया है न? कर्म किसने बाँधे हैं? किसी अन्यको दोष देनेकी जरूरत नहीं है। जब आत्मा शूरवीर होगा तभी काम बनेगा।

★★★

ता.२०-१-१९२६

['गोमट्टसार'मेंसे लेश्या मार्गणाके गति-अधिकारके वाचन प्रसंग पर]

मृत्युका विचार किये बिना उद्यमशील हो जाना चाहिये। मृत्यु जैसे आनी हो वैसे भले आये। किया हुआ कुछ निष्फल जानेवाला है? एकेन्द्रियमेंसे आकर एक भवमें मोक्ष गये, उन जीवोंने कुछ कमाई की थी, कुछ भरकर रखा था, तभी तो फूट निकला न? कोई कोई तो कितना संयम-पालन करके भी अंतमें हरिणके या ऐसे भवमें जाते हैं। मृत्युके समय वैसी लेश्या आनेसे या आयुष्य बंध

जब राम स्वर्ग सिधारनेवाले थे तब उन्होंने सभी अयोध्यावासियोंको गंगा किनारे आनेको कहा। सबके आनेके बाद नगरमें सेवकोंको भेजा कि जो कोई प्राणी अयोध्यामें रह गया हो उसे यहाँ ले आओ। मात्र वह कुत्ता नहीं आया था उसे राज्यसेवक नदी किनारे ले आये। किन्तु वह वापस चले जानेका प्रयत्न कर रहा था। तब रामने कहा कि इसे गंगामें डुबकी लगवाओ। इससे उसके सिरमें रहनेवाले कीड़ेरूप शिष्य बाहर निकल गये और रामके साथ स्वर्ग पधार गये; पर वह कुत्तारूपी गुरु यों ही रह गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानेसे ऐसा होता है। किन्तु किया हुआ व्यर्थ नहीं जाता। वहाँसे मनुष्यभव प्राप्तकर उसी भवमें मोक्ष जाते हैं। प्रकृतिके कैसे कैसे नियम हैं, कुछ कहा नहीं जा सकता! अतः प्रयत्नशील हो जाना चाहिये। पुरुषार्थ करने लग जाय तो सब हो जाता है। बाकी इधर-उधर देखने जायेंगे तो अंत आनेवाला नहीं है।

★

स्वधर्मी भाईका एक टुकड़ा भी नहीं खाना चाहिये। कृपालुदेवके समयमें कैसा व्यवहार होता था?

"संसारीका टुकडा, गज गज जैसे दाँत;
भजन करे तो तो पचे, नहि तो काढे आँत."

जब साधुको भी ऐसा है, तब अन्यको तो कितना बंधन होता होगा?

मुनि मोहन०–अंबालालभाईके मित्र छोटालालभाईके घरकी नींव खोदते समय प्रतिमा निकली थी इसलिये वह भूमि न्यातिवालोंने माँगी। वह भूमि मंदिरके लिये देनेका उसका विचार था, किन्तु उन्होंने माँगी, आग्रह किया इसलिये वह भी अड़ गया और पूरी न्यातिका सामना करके भी जीता। ऐसा खटपटी होने पर भी उसकी मृत्यु सुधरी थी।

प्रभुश्री–चाहे जैसा दिखायी दे, पर उसका अंतःकरण सरल था, हँसमुख और उदार था। एक बार मेरे पास आकर सरलतासे बोला–"प्रभु! अंबालाल कहते हैं वह मेरे माननेमें नहीं आता, पर आप जैसा है वैसा कहेंगे तो मैं मानूँगा।" हमें तो अन्य क्या कहना था? हमने कहा–"वे सत्य कहते हैं, अब पुरुषार्थ करने लग जाओ।" तब वह उद्यमशील बन गया। अंबालाल चाहे जितने क्षयोपशमवाले थे, पर उनकी अपेक्षा इसकी सरलता कम न थी, इसके कारण सबकी देवगति हुई। उसकी मृत्यु सुधारनेमें अंबालाल आदिका मरण भी सुधरा।

★

हमें कृपालुदेवने जो पत्र लिखे हैं उनमें सभी आगमोंका सार ठूँस-ठूँसकर भरा है और लिखा है–"अब यों क्यों करते हो? थोड़ी शांति रखो न अब।" यों सावधान किया है। 'हुं तो दोष अनंतनुं, भाजन छुं करुणाळ!" और 'वृत्तिको रोको' ऐसे ऐसे वाक्य जो मोक्षमें ले जाये वैसे हैं। अपने दोष देखें, पश्चात्ताप करें। गोशालकने बहुत पाप किये थे, मुनिकी हत्या, तीर्थंकरकी निंदा आदि–फिर भी अंतमें पश्चात्ताप करनेसे उसे उच्च देवगति प्राप्त हुई थी। परिणाम शुद्ध करनेकी आवश्यकता है।

★
★★

ता. २१-१-१९२६

सब शास्त्रोंका सार और मोक्षप्राप्तिका मार्ग या समकितका कारण विनय है। विनयसे पात्रता, योग्यता आती है। धर्मका मूल विनय है। सेवाकी भावना रखें। लघुता रखें, गुरुसे न अति दूर और न अति निकट बैठें, नीचे आसन पर बैठें, आज्ञाके बिना शरीरको भी छूना न चाहिये। ये सब विनयके मार्ग हैं। प्रायश्चित्त द्वारा दोषोंकी शुद्धि करनी चाहिये। ऋद्धिगारव, रसगारव और सातागारवका त्याग करें।

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[एक गिरगिटका बच्चा दरवाजेके कपाटसे कुचल गया था, उसे एक भाईने पूँछ पकड़कर फेंक दिया, उस प्रसंग पर]

प्रत्येक प्राणी पर दया रखें। उसकी मृत्यु इस प्रकारके कर्मबंधके कारण हुई होगी। उसके पीछे कोई रोनेवाला, विलाप करनेवाला है? उसकी सेवा करनेवाला कोई है? इसके साथ हमने भी कितने भव किये होंगे उसका कुछ पता है? अनंत बार उसके साथ माता-पिता, सगे-संबंधीके रिश्ते हुए होंगे! किसीके भी प्राण दुःखित हों वैसा वर्तन नहीं करना चाहिये। उपयोगपूर्वक यत्नासे काम करना चाहिये।

★★★

ता. २२-१-१९२६

['मूलाचार'मेंसे 'उदीरणा'के वाचन प्रसंग पर]

'अपक्व-पाचनरूप उदीरणा'—आम डाल पर पककर गिरता है तब खाया जाता है। कोई कच्चे आमको तोड़कर, डाल पर पकानेकी अपेक्षा घास पत्ते डालकर जल्दी पका लेते हैं। हम कोई वस्तु कच्ची खाते हैं? शाक भी लाकर, काटकर,पकाकर खाते हैं। इसी तरह कर्मके लिये भी तप एक प्रकारका ताप है। मक्के, गेहूँकी बालियाँ आदि पकाकर खाते हैं, वैसे ही जो कर्म सत्तामें हैं और अमुक समय बाद उदयमें आनेवाले हैं उन्हें तप द्वारा पका लेते हैं।

चोरी की हो, पाप किये हों इस भवमें, वे तो हमें याद रहते हैं, उसका विचारकर पश्चात्ताप करते हैं कि अरे! मैंने क्रोध करके, मान करके, माया करके, लोभ करके, आरंभ-परिग्रहका सेवन करके, हिंसा करके बहुत पाप उपार्जित किये हैं। ऐसे अनिष्ट दुःखके कारणोंका अब सेवन नहीं करना है, ऐसा निश्चय करे और उदरपोषणके लिये जो पाप किये हों उनके पश्चात्तापमें उपवास करें, ऊनोदरी करें, रसत्याग करें या ऐसे तपकी आराधना करे, तो उस पापका जो फल आनेवाला था वह यदि निकाचित न हो तो निर्जरित हो जाता है और उदयमें आ जाय तो भी कम रस देता है। परिणाम मंद होनेसे नया बंध भी अल्प होता है।

स्वाध्यायके पाँच भेद—(१) वांचना—पढ़ना, वाचन, (२) पृच्छना—दूसरेको पूछना, शास्त्रमें जो पूछने योग्य हो उसका विनयपूर्वक प्रश्न करना, (३) परावर्तन—वाचन किये हुएकी पुनरावृत्ति करना, (४) धर्मकथा—पढ़े हुए, सोचे हुएको कहकर बताना। (५) अनुप्रेक्षा—वारंवार भावना करना।

★★★

ता. २३-१-१९२६

मुमुक्षु—प्रभु! जीवका कल्याण कैसे हो? जीवका स्वरूप क्या और ईश्वरका स्वरूप क्या है?

प्रभुश्री—इस संबंधमें आपको कुछ कहनेका विचार था, पर आपने कुछ पूछा नहीं था तब तक इस विषय पर चर्चा नहीं हुई। जीवका शिव होता है यह तो प्रभु! सुना है न? बहुत बोधसे समझमें आने जैसी यह बात है; पर यदि अन्य परिश्रम किया हुआ व्यर्थ नहीं जाता तो किसी आत्मप्राप्त पुरुषके आश्रयसे किया गया पुरुषार्थ कैसे निष्फल होगा? आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है, यह कल्याणका कारण है। प्रभु! इसकी ही गवेषणा करनी चाहिये। यह सब तो जलके बुदबुदकी भाँति फुस करके फूट जायेगा; पर जो सदैव रहनेवाला है उस स्वरूपको समझनेकी जरूरत है। आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबको यहाँ किसने बुलाया है? सब अपने-अपने संस्कारोंसे आकर मिले हैं। कुछ पूर्वमें किया होगा तब न? हमें किसी पूर्व पुण्यके प्रतापसे भेदी पुरुष मिला और उनके वचनसे हमें जो शांति मिली, उससे मनमें सदैव ऐसा रहता है कि सर्व जीवोंका कल्याण हो! हम तो गुरु बनते नहीं, पर सद्गुरुको बता देते हैं। हमारा कहा मानकर जो उनकी आज्ञाका पालन करेंगे उनका अवश्य मोक्ष होगा। पर यदि वे बिना समझे मार्ग बतानेवालेसे ही चिपक जायेंगे—कहावत है कि 'पूंखनेवालीको ही ब्याह ले' ऐसा करेंगे—तो हमारी जिम्मेवारी नहीं है। बतानेवालेको खतरा है। गुरु बनना बहुत जिम्मेवारीका काम है। आपने बात सुनी होगी। अयोध्यामें एक कुत्ता था। उसके सिरमें कीड़े पड़ गये थे। वह कुत्ता पूर्वभवमें कुगुरु था। रामने उन कीड़ोंको गंगामें स्नान कराकर मोक्ष प्राप्त करवाया, पर कुगुरुका उद्धार नहीं हुआ। उलटा मार्ग बताने जैसा बड़ा खतरनाक कोई काम नहीं। श्रद्धा आनी चाहिये। अन्यथा 'ओ...हो' में निकाल दे तो सच्चे मंत्रसे भी सिद्धि नहीं होती। एक बड़े योगीने एक व्यक्तिको 'राम राम' जपनेका मंत्र दिया। वह जपता-जपता जा रहा था। रास्तेमें उसने अहीरोंको बातें करते देखा। वे भी अलग होने पर 'राम राम' बोलते थे। यह देखकर उसका विश्वास उस महात्मा पुरुषके शब्दों परसे उठ गया। वापस जाकर उसने गुरुसे कहा कि 'आपने जो मंत्र बताया था वह तो अहीर भी जानते हैं। ऐसा मंत्र क्या दिया?'

आत्मा आत्मा या धर्म धर्म तो सारा जगत कहता है, पर एक व्यक्ति उसे पहचानकर तद्रूप होकर कहता है, शब्दमें आत्माका आरोपण कर मंत्र देता है और दूसरा व्यक्ति बिना समझे तोतेकी तरह बोलता है उसमें अंतर है या नहीं? यह कोई अपूर्व बात है प्रभु! कल्याण हो सकता है, पर जीव लगा रहे तब, कुछ स्वच्छंद या स्वार्थ न रखे तब।

कल 'तत्त्वज्ञान' लाना। उसमेंसे अवसर आने पर करने योग्य कुछ पाठ बतायेंगे। जैसे नहाकर चंडीपाठ बोलते हैं, वैसे क्षमापनाका पाठ और बीस दोहे बतायेंगे। उनका प्रतिदिन पठन करना और 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'का जाप करना।

['उपमिति भवप्रपंच कथा' में अपुण्यककी कथाके प्रसंग पर]

इंद्रियोंके विषयभोग और कषायका कदन्न[1] खाकर अपुण्यक नामक भिखारीको रोग हुए, फिर भी उन्हें छोड़नेका उसका मन नहीं होता। खा, खा, अभी खाये जा। कितने कालसे खा रहा है फिर भी पेट नहीं भरा।

उनकी (सत्पुरुषकी) करुणा तो सारे संसारके उद्धारकी होती है, पर अभागा जीव उसे माने तब न? पाँच इंद्रियोंके विषय और कषाय मनरूपी घरके स्वामी बन गये हैं। इन शत्रुओंको निकाले तभी आत्माका कल्याण करनेवाली सत्दया और सद्बुद्धिरूपी देवियोंका आगमन होगा। इनका निवास हो तभी कल्याण होगा। कुछ पढ़ना आ जाय या अध्ययन किया हो या याद रहता हो तो उसका अभिमान करता है कि मुझमें बुद्धि है न? मुझमें दया है न? पर मिथ्यात्वके कारण भटकता है। मतिश्रुतज्ञानमें और कुमति-कुश्रुतमें भेद है, इसका पता कहाँ है? भीखके ठीकरेमें इस कुबुद्धिको लेकर भटक रहा है, उस पर मोह करता है और उसका गर्व करता है।

★

१. बिगड़ा हुआ बासी भोजन, खराब अन्न।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

['मूलाचार'मेंसे स्वाध्यायके पाँच भेदके वाचन प्रसंग पर]

प्रभुश्री–इसमें परावर्तनके संबंधमें आया वैसा करना होगा या और कुछ?

मुनि मोहन०–यह भी सच है और दूसरा भी सच है।

प्रभुश्री–दूसरा क्या?

मुनि मोहन०–किसी सत्पुरुषने व्यक्तिगत आज्ञा दी हो वह भी सच है।

प्रभुश्री–वे कुछ अन्य कहते होंगे? यदि उन्हें मूल वस्तुके सिवाय अन्य कहना हो तो वह भी हमें मान्य नहीं है। उठ, चाहे जितने ज्ञानी हों पर उन्हें कुछ अन्य-अन्य कहता होता है या मूल एक ही होता है?

पर इसका भी विचार करेंगे या नहीं? परावर्तन अर्थात् पहले पढ़े हुए पाठको फिरसे पढ़ना, पुनः आवृत्ति करना यह आवश्यक है या नहीं? अन्य वाचन आवश्यक है या नहीं?

मुनि मोहन०–उसके लिये मैं कहाँ मना करता हूँ? पर व्याख्यान देने जाने पर बंधन होता है या नहीं?

प्रभुश्री–यदि उपदेश देने जाते हैं तो तो बंधन ही है। किन्तु स्वाध्यायके लिये स्वयंको जो याद हो उसका पाठ करनेसे वह ताजा होता है, भूला नहीं जाता और उसमें समय व्यतीत होता है। बाकी तो ध्यान तरंगरूप हो जाता है यह याद है न? आपने कहा वह भी न्याय है। किन्तु अल्पत्व, लघुत्व और परम दीनता कब आयेगी? अभी तो एक्का घोटना पड़ेगा। स्वयं जानता है उसे संभालकर छिपाकर रखे उसका, या याद हो उसे सरलतासे बोल जाय उसका, या जो याद हो या स्मृतिमें हो उसका–एकका भी गर्व करने जैसा कहाँ है? इसका क्या महत्त्व है? किन्तु हमारे स्वाध्यायमें यदि कोई सुन ले तो कुछ हानि है क्या? भले ही सभी शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष जायें। कोई अधिकारी जीव हो उसका कल्याण हो जाये। कुछ गर्व करने जैसा नहीं है। कोई कोई तो निकटभवी यों कानमें बात पड़ते ही श्रद्धा कर मोक्ष चला जाता है और किसीको बार बार सुनने पर भी परिभ्रमण करना पड़ता है। 'हुं तो दोष अनंतनुं, भाजन छुं करुणाळ।' इसमें क्या आया? मैं बोल बोल करता हूँ पर मेरी भूल होगी उसे मुझे निकालनी पड़ेगी और तभी छुटकारा होगा। जो तुम्हारी भूल होगी उसे तुम्हें निकालनी पड़ेगी और जो इसकी भूल होगी उसे इसको निकालनी पड़ेगी।

★★★

ता. २५-१-१९२६

['मूलाचार'में से 'अजीव दया' के वाचन प्रसंग पर]

यहाँ अठ्ठाइस प्रकारसे इंद्रियसंयम और चौदह प्रकारसे जीवदया तथा अजीवदया कही है उसमें सूखे तृण, लकड़ियाँ आदि चाहे जैसे तोड़ने नहीं चाहिये, फैंकने नहीं चाहिये, पर उपयोग रखना चाहिये।

★★★

ता. २६-१-१९२६

['मूलाचार'में से इंद्रियसंयम और कषाय रोकने संबंधी वाचन]

प्रभुश्री–(मुनि मोहनलालजीसे) नीचे सभामें आज क्या वाचन हुआ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि मोहन०–इंद्रियविषयोंसे उपरत होकर सत्शास्त्रका अभ्यास किया जाय तो वह फलदायक सिद्ध होता है। इस भावार्थका पत्र पढ़ा गया था।

प्रभुश्री–यहाँ भी यही चिल्ला रहे थे। इंद्रियोंको जीतनेकी बात ही बार बार कही गई।

पंच परावर्तनमें ज्ञानी भगवान हमारे समक्ष क्या समझाना चाहते हैं, इसका आपने क्या विचार किया है?

मुनि मोहन०–आज इतना विचार किया गया कि इस जीवने अनंत अनंत बार भवभ्रमण किया, इसका एकमात्र कारण जिन भगवान द्वारा प्रतिबोधित तत्त्वों पर सम्यक् श्रद्धा न होना है–यही समझानेका हेतु प्रतीत होता है।

प्रभुश्री–ठीक है, सबसे अमूल्य वस्तु समकित है। उसका क्या वर्णन हो सकता है! उसकी खूबी ही कुछ और है! यह महा दुर्लभ है। वह प्राप्त होने पर मोक्ष अवश्य होता है और भ्रमणका अंत आता है।

निष्पुण्यककी बात याद रखने जैसी है। उसने अंतरदया और सद्बुद्धिको अपना ठीकरा धोकर साफ कर देनेकी विनती की कि दुर्गंधयुक्त सब अन्न निकालकर साफ कर दीजिये, फिर परमान्न दीजिये। पात्रताके बिना किसमें भरेगा? इस ठीकरेको देख न! सिंहनीका दूध मिट्टीके ठीकरेमें लिया जाता होगा? तुरत टूट जायेगा। शक्ति हो उतना ही ले सकता है, उससे विशेष बोझ आ जाने पर टूट जाता है। पहले पात्रता लानेकी आवश्यकता है, योग्य बननेकी आवश्यकता है। तुम्हारी देरीसे ही देर है। इसमें सिफारिश कहाँ चलती है?

"एगं जाणइ से सव्वं जाणइ,
सव्वं जाणइ से एगं जाणइ."

यही, एक आत्माको जाननेकी आवश्यकता है, उसको जान लेनेसे सब जान जायेंगे।

★

['गोमट्टसार'में द्रव्यके छः अधिकारका वर्णन है। उसमें नाम अधिकारके बाद उपलक्षण अधिकारमेंसे 'परमाणु रूपी है, अविभागी है, निरंश है, फिर भी उसका आकार षट्कोण गोल है' इस संबंधी वाचन]

१. मुमुक्षु–जो अविभागी या निरंश हो वह षट्कोणवाला कैसे हो सकता है? षट्कोण होनेसे छह अंश क्यों नहीं माने जाते?

२. मुमुक्षु–द्रव्यार्थिक नयसे वह निरंश कहा जाता है और पर्यायार्थिक नयसे षट्कोणी, षट्अंशी भी कहा जा सकता है। फिर भी वे षट्कोण सदैव रहते हैं, किसी भी समय वह उससे कम कोणवाला नहीं होता। और उससे छोटी अन्य कोई वस्तु विश्वमें नहीं है कि जिसकी उपमासे उसके भागोंका नाप या अनुमान हो सके।

प्रभुश्री–ये षट्कोण कहाँ और किस आधार पर रहे हुए हैं?

[कोई उत्तर नहीं दे सका। अंदर कुछ कारण बताया नहीं है और अन्य कुछ बैठता नहीं है ऐसा सबने कहा]

३. मुमुक्षु–छह ओर छह कौने (कोण) हो सकते हैं। चार दिशामें चार, एक ऊपर और एक नीचे; घनकी छह दिशाओंकी भाँति कौने (सिंघाडे जैसे) हो सकते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री—कुछ कुछ बैठता है।

"दर्शन षटे समाय छे, आ षट् स्थानक मांही;
विचारतां विस्तारथी, संशय रहे न कांई."

इसमें कहे अनुसार जैसे—(१) आत्मा है, वैसे ही जड़ (पुद्गल परमाणु) भी हैं। (२) आत्मा नित्य है, वैसे ही जड़ भी नित्य है। (३) आत्मा कर्त्ता है, वैसे ही जड़ भी निज स्वभावका और उसके विभावका कर्त्ता है। (४) वह भोक्ता है। कर्त्ता है तो वह जड़ स्वभावका भोक्ता भी है। (५) आत्माका मोक्ष है, वैसे ही जड़को भी संस्कार या विभावसे मुक्त होनेरूप मोक्ष है। (६) मोक्षका उपाय है। यह भी दोनोंके लिये लागू होता है। यह घटित होता है या नहीं?

फिर दूसरे प्रकारसे—छह द्रव्य हैं न? जहाँ लोकाकाश है वहाँ छहों द्रव्य हैं। तो जहाँ जड़ है वहाँ चेतन भी है न? वहाँ धर्म, अधर्म भी हैं न? दूसरे जड़ परमाणु भी है न? काल भी है न? सारे लोकाकाशमें पुद्गल-परमाणु ठसाठस भरे हुए हैं, ऐसा आगममें कहा है। अतः जहाँ छहोंका स्पर्श है उसे छह कौनेवाला गोल कहा होगा?

एक सर्वज्ञने जो कहा हो और देखा हो उसे मान्य रखकर कल्पना करनेमें दोष नहीं है। किसी बालकको कहें कि यह डब्बी है, पर वह अपने मातापिताकी ओर दृष्टि करता है; और वे कहें कि यह चश्मा है तो बालक भी कहता है—'चश्मा है, हाँ! चश्मा है, चश्मा।' यों स्वीकार कर उसे याद कर लेता है। उसी प्रकार एक सर्वज्ञकी श्रद्धा हो उसे अन्यका मान्य तो नहीं होता, पर उसे शिरोधार्य कर कल्पना, चर्चा करनेमें आपत्ति नहीं है। मैंने जो सोचा है वह सत्य है और यह कहता है वह झूठ है, मात्र ऐसी धारणा नहीं करनी चाहिये। पर जैसा सर्वज्ञने देखा है, वैसा ही है और वही सत्य है; पर ये तो उनके कथनको समझनेके प्रयत्न हैं। दुपट्टा काँटोंमें उलझा हो तो वहाँ रुकने जैसा नहीं है, रात बिताने जैसा नहीं है। सर्वज्ञने जैसा देखा है उसे सत्य मानकर आगे बढ़ना चाहिये, योग्यता बढ़ानी चाहिये।

★★★

ता. २९-१-१९२६

['गोमट्टसार'में भावमन और द्रव्यमनका स्वरूप तथा श्वासोच्छ्वासको पौद्गलिक कहकर शरीररूपी जड़ पुतलेको हिलाने-चलानेवाली (प्रेरक) कोई चेतन सत्ता होनी चाहिये, ऐसा बताकर आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि सूक्ष्म विचारके साथ की है, तत्संबंधी वाचनके प्रसंग पर]

मुनि मोहनलालजी—अहा! ऐसा वर्णन अन्य किसी शास्त्रमें नहीं है।

प्रभुश्री— "ग्रहे अरूपी रूपीने, ए अचरजनी वात;
जीव बंधन जाणे नहीं, केवो जिन सिद्धांत!"

इसमें क्या रहस्य भरा है? कोई भस्म या धातुपुष्टिकी दवा तिलभर खायी हो, पर उसके अनुरूप अनुपान आदि सर्दियोंमें मिल जाय तो कितनी पुष्टि होती है?—यह तो झूठा दृष्टांत मात्र बातको समझानेके लिये कहा है—बाकी कृपालुदेवने ऐसा-ऐसा मर्म कहा है कि उसकी खूबी अब समझमें आती है। इनका बहुत बड़ा उपकार है, नहीं तो यह स्थिति कहाँसे आती? यह सब उनके कारण ही है। इससे समकितका पोषण होता है। जैसा हो वैसा कहना चाहिये। यों तो दूसरे महा पुरुषोंका भी उपकार मानना है, पर इनका कहा हुआ तो कुछ अपूर्व ही है। दूसरे दोहेमें कहा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"प्रथम देहदृष्टि हती, तेथी भास्यो देह;
हवे दृष्टि थई आत्ममां, गयो देहथी नेह."

कैसी बात कही है! जितनी योग्यता हो उतना समझमें आता है। कोई नाटक देखने जाये और तालियाँ बजाकर कहे–'अहा! आजका खेल कितना सुंदर है!' वहाँ बंधन है; और यहाँ 'अहा!' कहे तो क्यारीमें पानी डाला जा रहा है, पोषण हो रहा है।

मुनि मोहन०– "होय न चेतनप्रेरणा, कोण ग्रहे तो कर्म;
जड स्वभाव नहि प्रेरणा, जुओ विचारी धर्म."

इसमें 'प्रेरणा' शब्द है वह इसको सुननेके बाद विशेष समझमें आया। पहले स्फुरणा या ऐसा कुछ अनिश्चित अर्थ समझमें आया था। वह अब इस पुतलेके दृष्टांतसे 'हिलानेवाला, चलानेवाला' यों स्पष्ट समझमें आया।

★

हमें तो कृपालुदेवके जीवनकालमें इतना उलाहना मिला है कि कुछ शेष नहीं रहा। हम कुछकी कुछ धारणा कर बैठे थे। पत्रांक ५३४ 'दिशामूढ़वाला' और ऐसे पत्रोंसे इतनी अधिक ठेस लग गई कि अब इनकी शरणसे उसका विचार ही नहीं आता। वह सब क्या कहनेकी बात है? नहीं है शरमाने जैसा? मुँह नीचा करने जैसा हमने भी किया था–कुछका कुछ मान बैठते, पर उस सच्चे पुरुषकी उपस्थिति थी, जिससे चौखट सही स्थान पर बैठ गई। मार्ग कुछ अपूर्व है!

आज तक हमारे पाससे हमारे चित्रपट ले जाते और माला तथा 'तत्त्वज्ञान' हमारे हाथोंसे दी है। पर यह सब अब हमने बंद कर दिया है। .....ने भी अपने चित्रपट बनवाये, पर अपने हाथोंसे तो कैसे देते? अतः हमारे पास भेज दिये। पर हमने तो कह दिया कि हम यह जोखम नहीं उठायेंगे। हम तो किसीका चित्रपट नहीं दे सकते। हाँ, वे देना चाहें तो भले ही दें। तुम्हें अच्छा लगे तो लो! बादमें हमने हमारा चित्रपट देना भी बन्द कर दिया और सबको कह दिया कि हमारे वचन पर विश्वास हो तो कृपालुदेवका चित्रपट रखो और उनकी आज्ञा (मंत्र) जो हमारे द्वारा मिली है उसका पालन करो। यदि वह मिथ्या निकले तो उसकी जिम्मेवारी हमारी है।

किसी भी वस्तुका आग्रह करने योग्य नहीं है। दृष्टिरागके कारण हमने भी कृपालुदेवसे कहा था कि चित्रपट नहीं तो कागज पर मात्र हाथ-पाँवकी रेखा जैसा बनाकर दे देंगे तो भी मुझे चलेगा। कुछ भक्तिका साधन और आज्ञा मिले तो बस। आग्रह करनेसे प्रतिबंध होता है। चाहे जो हो जाय तो भी यह वस्तु मुझे मिलनी चाहिये, ऐसा कहनेसे प्रतिबंध होता है। हमें कृपालुदेव वैसी वस्तु देते नहीं थे।

★

मुमुक्षु–यह अंगूठी मैं आपके चरणोंमें रखता हूँ। इसका आप जो उपयोग करना चाहें, करें।

प्रभुश्री–आपको लोभ छोड़नेकी इच्छा हो तो यहाँ अनेक खाते हैं। ज्ञान खाता है, साधारण आश्रम खाता है, साधु-समाधि खाता है। जिस खातेमें देनेकी आपकी इच्छा हो उस खातेमें देवें! हमें इसका क्या करना है?

मुमुक्षु–प्रभु! मुझे इसका पता नहीं है। आपको जैसा अच्छा लगे उसमें आप इसका उपयोग करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री–हम कुछ नहीं कह सकते। यह अंगूठी ले लें और आपको रखनी हो तो रख लें और बेचनी हो तो बेच दें, पर पैसे लेकर आयें तब जिस-जिस खातेमें जितना-जितना देना हो, उतना विचार करके दे देना।

यहाँ कई बहन और भाई यों चूड़िया या आभूषण रख देते हैं, उनको हम यही कहते हैं। भावनाकी बात है। जितना लोभ छूटे उतना अच्छा। पर हमें अपने चरणोंकी पूजा नहीं करवानी है। पहले यह होता था, वह सब अब बंद कर दिया है। हमें थप्पड़ें लगी है। बहुतसी बातें हो गई हैं, वे याद हैं। अतः हमें अब ऐसा बंधन नहीं करना है। गुरु जो हैं वे ही हैं। यह उनका अधिकार है। हम तो साधक हैं, मार्ग बता देते हैं। मानना न मानना आपका अधिकार है। किन्तु जिससे हमें बंधन हो वैसा हम नहीं करेंगे।

★

['गोमट्टसार'का वाचन चालू। पुद्गलको रूपी और अरूपी कहा था वह अटपटा लगता था जिससे सब उलझ गये थे, उस प्रसंग पर]

प्रभुश्री–कुछ अटक जाने जैसा नहीं है। कुछ भी खींचतान किये बिना, आत्महितके लिये पुद्गलका वर्णन किया है–परमाणुके रूपमें अरूपी और स्कंधमें रूपी यों मानकर आगे बढ़ें।

★

मुमुक्षु–मेरा एक बेग गाड़ीमें खो गया जिसमें कृपालुदेव और आपके चित्रपट तथा 'तत्त्वज्ञान'भी साथमें खो गये। अतः दूसरा चित्रपट और आपके हस्ताक्षर सहित 'तत्त्वज्ञान' देनेकी कृपा करें।

प्रभुश्री–एक आर्याजीने वडोदरामें चातुर्मास किया। उनको स्लेटकी आवश्यकता होनेसे एक वकीलने अपने पुत्रकी स्लेट उन्हें दे दी, किन्तु स्लेट पर पाँव पड़ जानेसे टूट गई जिससे आर्याजीको बुरा लगनेसे वह रोने लगीं। वकीलको जब यह बात मालूम हुई तब वह दूसरी स्लेट लाकर देने गया, किन्तु देते हुए उसने कहा–'स्लेट जैसी वस्तुका भी उपयोग नहीं रहता तो संयममें उपयोग कैसे रहेगा?' यह सुनकर उसे मुँह नीचा करना पड़ा था।

इस प्रकार उपयोग न रखनेसे वस्तु खो जाती है या बिगड़ती है। चित्रपट आदिका खोना तो असातनाका कारण है। यदि यात्रामें दर्शन करनेके लिये रखनेकी इच्छा हो तो उसे जीवकी भाँति सँभालकर रखना चाहिये।

★

[सुबहमें रूपी-अरूपी पुद्गलकी चर्चा फिर हुई और कुछ कुछ समझमें आई।]

प्रभुश्री–कुछ होशियारी दिखाने जैसा नहीं है। हमने कृपालुदेवसे कहा था कि हमने शास्त्रों-सूत्रों आदिका वाचन किया है। पर उस पुरुषकी कितनी गंभीरता! मात्र थोड़ा-सा सिर हिलाया और फिर कहा–ठीक है, ठीक है, कूएके मेंढकके समान थोड़ा जानकर छलकनेकी जरूरत नहीं है।

★

सब असातामय ही है। सातावेदनीय भोग रहे हैं, वह भी असाता ही है, पर भान नहीं है। जितना पैसा, परिग्रह है वह सब असातावेदनीय है, छोड़ने योग्य है। शरीर वेदनाकी मूर्ति ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो सुख प्रतीत होता है वह भी एक प्रकारकी वेदना ही है। जीवको तो यह सब भोगना ही पड़ता है। सुख-दुःख मानना यह कुछ जीवका स्वभाव है?

"जीवनी उत्पत्ति अने रोग, शोक, दुःख, मृत्यु,
देहनो स्वभाव जीवपदमां जणाय छे."

★★★

ता. ३०-१-१९२६

['मूलाचार' में कृत्रिम और अकृत्रिम जिनालय जिस लोकमें विद्यमान हैं वह 'स्थापना लोक' यों लोकके नौ भेदमेंसे एक भेदका फिरसे वाचन हो रहा था, उस प्रसंग पर]

इसमें कुछ भिन्न बात कही गई है। अकृत्रिम तो आत्मा है और कृत्रिम तो संयोग है। भाई, मामा, लड़का, चाचा सब संयोग हैं। चोरी की हो, पराया ग्रहण किया हो, वह पचेगा क्या?

*'काचो पारो खावुं अन्न, तेवुं छे चोरीनुं धन;
काची खावी छे हरताल, तेवो छे चोरीनो माल.'

इसमें सत्य क्या है? पचास सौ वर्षका आयुष्य, इसमें क्या स्थायी रहेगा? क्या कुछ साथमें जानेवाला है? पक्षियोंके मेलेके समान सबको जाता हुआ देख रहे हैं या नहीं? 'मेरा मेरा' करता है पर तेरा तो आत्मा है। परमार्थके लिये देहका उपयोग होना चाहिये। इस भवके संबंधी ही संबंधी है क्या? दूसरोंके साथ अनन्त बार संबंध हुए हैं वह नहीं गिनेगा? 'परमारथमां पिंड ज गाळ' इसमें सब आ गया। जो मानने योग्य है, क्या वह तेरा नहीं?

चौविहारका प्रत्याख्यान अच्छा है। 'अब इसे इतने समय तक तो खानेको दूँगा ही नहीं। यह कहाँ खाता है या पीता है? यह धर्म इसका कहाँ है?' यह शरीर जो माँगे उसके विपरीत करना चाहिये, विरुद्ध होनेकी जरूरत है। यह (प्रत्याख्यान) अभयदान है। विचार बदल देनेकी आवश्यकता है। बहुत दिनों तक इसे सँभाला है फिर भी भवभ्रमण मिटा नहीं। अब तो कोई माला, पुस्तक या चित्रपट देखकर क्या भावना करनी है? क्या याद रखना है? आत्मा। इस आत्मभावनाके हेतुसे सभी क्रिया करनी हैं।

मनुष्यभव बहुत दुर्लभ है। उसमें भी ये संयोग और आयुष्यकी अल्प स्थिति। अतः सावचेत हो जाना चाहिये। 'यह ज्ञानी है और यह ज्ञानी है' ऐसा माननेसे कल्याण होगा? किस तराजूसे तौलोगे? तुम ज्ञानीकी परीक्षा करोगे? तब तो तुम ही ज्ञानी हो।

[1]"मा चिट्ठह, मा जंपह, मा चिंतह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं॥"

[2]"मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्तझाणप्पसिद्धिए॥"

---

* अर्थ–कच्चा अर्थात् शुद्ध किये बिना पारा तथा हरताल (पीले रंगका एक चमकीला खनिज पदार्थ जो दवा, रंगाई आदिके काम आता है) उसके प्राकृतिक रूपमें सेवन किया जाय तो शरीरको गुणकारी नहीं होता, परन्तु उलटा नुकसान करता है, वैसे ही चोरीका धन टिकता नहीं। हरताल और पारा भस्मके रूपमें शरीरको बहुत पुष्टि देता है।

१. २. अर्थके लिये देखें पृष्ठ ११५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहन करना, समभाव रखना और क्षमाभाव धारण करना। जितने अधिक सहनशील, उतने ही महान। किसीको चोट लग गई हो तो उसको पट्टी बाँधनेमें या ऐसे अन्य परमार्थके काममें समय बीते वह बुरा नहीं है। यह तो कर्तव्य है। इसमें कहाँ ममत्व दिखाना है? 'मेरा मेरा' करे वहाँ बंधन है। 'अरेरे! किसीने काट लिया, डंक मारा, काटता है, खुजली हो रही है, दुःख हो रहा है' ऐसा करे, इस शरीरको अपना माने वहाँ बंधन है। पर आत्माको दुःख कहाँ होनेवाला है? उसे कौन काटनेवाला है? भेदका भेद जानना चाहिये। आत्मा देहसे भिन्न है ऐसा जाननेवाला है न? उसे जानना है। एक आत्माको जान लेनेसे सब जान जायेंगे। मोक्षका मार्ग स्पष्ट है। तलवार मैदानमें पड़ी है। जो वार करे उसके बापकी है। रागद्वेष न करें, मोह न करें। क्षमासे सहन करें। इसमें कोई शास्त्र मना कर सकता है क्या? यही मोक्षका मार्ग है और यही करना है। सर्व ज्ञानियोंने यही कहा है।

हम उपदेश नहीं देते, पर इनका कहा हुआ स्वाध्यायके रूपमें कह बताते हैं। यह मीठी कुईका पानी है। किसी बातका गर्व नहीं करना चाहिये। किसीको अधिक याद रहता हो या बोलना आता हो तो उसका भी वापस अभिमान हो आता है। मोक्षका मार्ग ऐसा नहीं है कि जिसे समझमें आये, याद रहे या अधिक बुद्धि हो वही मोक्षमार्ग प्राप्त करे और दूसरे भोले-भालेको प्राप्त ही न हो। उलटा क्षयोपशमवालेको अधिक ध्यान रखने जैसा है। उसकी निंदा नहीं करनी है--उसे अपनी शक्तिके अनुसार क्षयोपशमका उपयोग करना है। जैसे पत्ते पड़े हैं, जैसा बाँधा है वह सब अब चाहे जैसे पूरा करना है। समय बिताना है। इतने अधिक भव तो व्यर्थ गये ही हैं, तब यह इतना भव—अल्प आयुष्यके शेष वर्ष—अब तो इसके लिये ही बिताऊँ ऐसा कर्तव्य है। ज्ञानीने जो देखा है, कहा है वह मुझे मान्य है। उसकी मान्यता मान्य करने जैसी है। और यह तो कोई अल्प क्षयोपशमवाला भी कर सकता है। उसकी मान्यताको मान्य करनेमें क्षयोपशमवालेको उलटी कठिनाई आती है। पर भोलेभाले जीव तो इसी प्रकारके काम निकाल लेते हैं। कुछ क्षयोपशमसे (बुद्धिचातुर्यसे) किसीको 'यह ज्ञानी है, महान है' ऐसा नहीं समझना चाहिये। भले ही आवरण हो, पर श्रद्धा काम निकाल देती है। साल भर बैठा-बैठा सुनता हो पर किसी समय ऐसा योग आनेसे यदि हृदयमें बैठ जाये तो कल्याण हो जाता है। इन्होंने दस-पंद्रह रुपयोंका लोभ छोड़ा और आश्रममें आते रहते हैं तो इसमें कुछ बिगड़ गया? पैसे तो कंकर हैं, मैल हैं, नाशवंत हैं, पर ऐसा योग मिलना दुर्लभ है। दया, क्षमा, धैर्य—ये इनके वचन विचारणीय हैं। शास्त्र, माला, पुस्तक, ध्यान यह सब करके अंतमें करना है क्या? आत्माकी भावना। इसका लक्ष्य न रहा तो जन्म-मरणसे छूट नहीं सकते; भले ही ज्ञानी कहलाता हो, पर उसकी सिफारिश वहाँ नहीं चलती। इसमें कुछ अन्य आता हो तो कहिये।

मुमुक्षु—अन्य कुछ नहीं है। पर कल अकृत्रिम मंदिरके विषयमें कहा था, वह अभी तक समझमें नहीं आया।

प्रभुश्री—कुछ मंदिर बनाये गये होते हैं वे तो कृत्रिम कहे जाते हैं। पर जैसे मेरु पर्वत है, उसके रूप, रस, स्पर्श आदिमें परिवर्तन होता है फिर भी उसे शाश्वत कहते हैं। इसी प्रकार मंदिर, विमान आदि भी अकृत्रिम होते हैं। खड्डे, टेकरियाँ भरती जाती है न? यों ही बिना बनाये भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकृत्रिम बने होते हैं। आज बहुत अच्छी बात आ गई।

"निश्चय वाणी सांभळी, साधन तजवां नो'य;
निश्चय राखी लक्षमां, साधन करवां सोय."

"अथवा निश्चयनय ग्रहे, मात्र शब्दनी मांय;
लोपे सद्व्यवहारने, साधन रहित थाय."

उपरोक्त कथनानुसार अकेले निश्चयनयकी बात सुनकर साधन, सद्व्यवहार न छोड़ें, निश्चयनयकी बात सुनकर एकांत न पकड़े। विचक्षणका मार्ग है।

★
★★

ता. १-२-१९२६

बोध कुछ भी हुआ हो वैसा और उतना, चाहे जितना क्षयोपशम हो तो भी लिखा नहीं जा सकता। वे सत्पुरुषके घरके वचन अन्यरूप होनेसे जूठे हो जाते हैं। स्वाध्यायमें अपना समय बितानेके लिये लिखनेमें आपत्ति नहीं है पर वह जूठन मानी जाती है। क्या मूलकी तुलना कर सकती है? वीतरागतासे बोली गई वाणी, रागरूपसे प्रदर्शित की जाय तो दूध कड़ुवी तूंबीमें भरकर पीने जैसा है।

★
★★

ता. २-२-१९२६

[विनय ही मोक्षमार्ग है। इसे कृतिकर्म कहते हैं। 'मूलाचार'में तत्संबंधी वाचनके प्रसंग पर दृष्टांत]

एक गाँवमें एक ज्ञानी मुनि अनेक शिष्योंके साथ पधारे। उन मुनिका स्वभाव क्रोधी था, यह तो वे स्वयं भी जानते थे। अतः क्रोधका निमित्त ही न हो यों सोचकर वे एक वृक्षके नीचे सबसे दूर जाकर बैठ गये। दूसरे शिष्य भी अपने अपने आसन पसंदकर किसी-न-किसी धर्मक्रियामें दिन बिताते थे। एक दिन संध्याके समय हाथ पर मींढल बाँधे हुए एक युवक विवाह करके मित्रोंके साथ मुनिके दर्शनार्थ आया। उसके मित्र हँसोड थे। वे उनमेंसे एक साधुके पास जाकर बोले–"महाराज, इसे साधु बना लीजिये।" एक-दो बार कहा तो साधुजी नहीं बोले। फिर भी वे बोलते ही रहे, तब साधुजीने कहा–"हमसे बड़े वे मुनि वहाँ बैठे हैं, उनके पास जाइये।" दूसरे साधुके पास जाकर कहा तो उन्होंने भी वैसा ही उत्तर दिया। यों करते-करते वे अंतमें बड़े मुनि महाराज–गुरुजीके पास गये। दर्शन कर उन्हें बारबार वही बात कहने लगे। गुरु कुछ देर तो चुप रहे, पर बार-बार खूब आग्रह करनेसे वे क्रुद्ध हो गये। और उस नवपरिणीत युवकको पकड़कर बाल उखाड़कर मुनि बना लिया। उसने समझा कि महाराजने मुझ पर बड़ी कृपा की; अतः वह कुछ नहीं बोला। पर उसके अन्य साथी तो उसके मातापिताको समाचार देने उसके घर चले गये। नवदीक्षित शिष्यने गुरुजीको बताया कि यदि अब हम यहाँ रहेंगे तो हम पर विपत्ति आयेगी। अतः अब यहाँसे विहार करना ही उचित है। गुरुने कहा कि अब तो रात पड़नेवाली है, रातमें कहाँ जायेंगे? शिष्यने कहा कि वृद्धावस्थाके कारण आपसे नहीं चला जाता हो तो मैं आपको कन्धे पर बिठाकर ले चलूँगा।

यों निश्चयकर सब पर्वतकी ओर चल पड़े। गुरुकी आँखसे कम दीखता था अतः उन्होंने कहा–"भाई! अब दिखायी नहीं देता।" तब शिष्यने उन्हें कन्धे पर बिठा लिया। पर्वत पर चढ़ते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए खड्डे, पत्थर आदिके कारण शिष्यके पाँव फिसलते जिससे गुरुजीको झटके लगते थे, तब कन्धे पर बैठे-बैठे गुरु शिष्यके लोच किये हुए सिर पर मारने लगे। पर शिष्यके मनमें गुरुके दोष न आये। उलटा उसे ऐसा लगा कि मैं कैसा निर्भागी हूँ कि मेरे कारण उन्हें विहार करना पड़ा और वृद्धावस्थामें यों दुःख झेलने पड़े। गुरु तो उस पर क्रोध करते कि तुझे दीखता नहीं है क्या? यों कैसे चलता है? आदि कहते, तब शिष्य 'खड्डेके कारण पाँव डोल जाता है' यों कहकर अपने दोष देखता, किन्तु गुरुजी पर द्वेष न करता। फिर विशेष सावधानीसे टेढ़ा होकर, हाथसे नीचे जाँच करते हुए धीरे-धीरे चढ़ने लगा। यों परिषह सहन करते-करते शिष्यको केवलज्ञान हो गया। गुरु मनमें सोचने लगे कि अब खड्डों-पत्थरोंसे झटके क्यों नहीं लगते? फिर शिष्यसे पूछा—'क्यों रे! अब कुछ भूल क्यों नहीं होती? क्या ज्ञान उत्पन्न हुआ है?' तब शिष्यने कहा—'आपकी कृपासे।' गुरुने पूछा—'मतिज्ञान उत्पन्न हुआ है क्या?' उसने कहा—'आपकी कृपासे।' फिर पूछा—'श्रुतज्ञान उत्पन्न हुआ है क्या?' शिष्य बोला—'आपकी कृपासे।' फिर पूछा—'अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है क्या?' शिष्य बोला—'आपकी कृपासे।' फिर पूछा—'मनपर्यवज्ञान उत्पन्न हुआ है क्या?' शिष्यने कहा—'आपकी कृपासे।' गुरुको तो आश्चर्य हुआ, फिर पूछा—'क्या केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है?' शिष्यने कहा—'आपकी कृपासे।' यह सुनकर गुरु शिष्यके कन्धेसे नीचे उतर पड़े और शिष्यके पाँव पड़कर क्षमा माँगने लगे कि 'हे भगवन्! मैंने आपको बहुत दुःख दिया है।' यों कहकर अपनी निंदा करने लगे। तब गुरुजीको भी केवलज्ञान प्रकट हो गया।

विनय वशीकरण है। विनय शत्रुको भी वशमें कर लेता है ऐसा व्यवहारमें भी कहा जाता है। विनयका त्याग नहीं करना चाहिये।

★
★★

ता. ३-२-१९२६

सब लोग हों तब 'उपमिति भवप्रपंच'का थोड़ा वाचन करें। पढ़े हुए विषयको पुनः पढ़े। स्याद्वाद है। नमस्कार सोते-सोते भी हो सकते हैं। यों परिणाम-भाव पर सारी बात है।

मुमुक्षु—(मुनि मोहनलालजीको बारंबार उलटकर) हृदयकमलमें भावमनकी उत्पत्तिका विवेचन पढ़नेमें आया, पर विचार तो मस्तिष्कमें कर रहे हों ऐसा लगता है। किन्तु पुस्तकमें तो लिखा है कि भावमन हृदयमें उत्पन्न होता है। ऐसा क्यों है?

प्रभुश्री—ये सब अहंकारके पर्याय हैं, प्रभु! ये सब शब्द कषायके पर्याय हैं न? इन्हें छोड़ना है न? इस विषयमें कुछ कहना नहीं है। 'पूछो बड़े चचाको या बड़ी चाचीको' ऐसी बात है, वैसे ही आप हमसे पूछते हैं और हमारा कहा मानें उसकी अपेक्षा ज्ञानीका कथन मान्य करें। मैं देख रहा हूँ कि कितने ही विषयोंमें मेरी अपेक्षा आपका क्षयोपशम अच्छा है। जितना क्षयोपशम हो उतना ही बोला जाता है। इस कानसे अब सुनाई नहीं देता तो इतना क्षयोपशम कम हुआ न? अभी समझमें आता है इतना कह दें तो हिम जैसा ठंडा लगे कि ठीक कहा! पर कुछ बातें बोलने योग्य नहीं होती; सयानापन दिखाने जैसा नहीं है। शामको 'मूलाचार'में नहीं पढ़ा था कि व्याख्यान आदिसे आकुल हुए चित्तवालेको नमस्कार नहीं करना चाहिये? वीतराग वाणी! उसकी खूबी कुछ और ही है! यह (मूलाचार) वीतराग वाणी कही जाती है। ज्ञानीका कथन मान्य करें और क्षयोपशमके अनुसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझें। किन्तु 'मैं समझता हूँ वैसा ही है' ऐसा किसीको भी नहीं मानना चाहिये। किसीको अधिक क्षयोपशम हो तो वह कुछ अधिक कह सकता है। पर ज्ञानीका कहना इतना ही है क्या? ज्ञानीके एक एक शब्दमें अनन्त आगम समाये हुए हैं। योग्यताकी कमी है।

★★★ ता. ४-२-१९२६

['मूलाचार'में से प्रतिक्रमण अधिकारके वाचन प्रसंग पर]

प्रभुश्री–इस जीवने आत्माके सिवाय सभी भावोंमें जहाँ जहाँ ममत्व किया है–यह मेरा लड़का है, यह किसीका लड़का है, यह मेरा घर है, ये मेरे कपड़े हैं, संक्षेपमें, जहाँ अंतरंगमें 'मैं' और 'मेरा' रहा हुआ है, वहाँ मिथ्यात्व है। असंयम अर्थात् अविरति या व्रतका अभाव। वृत्ति रुकी नहीं है वही असंयम है। वृत्तिके निरोधको ही तप कहा गया है। रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय और कषाय–ये इस ठीकरे(शरीर)में लेकर जीव भ्रमण करता है। जहाँ भी जाता है वहाँ 'उपमितिभवप्रपंच'के निष्पुण्यककी तरह दुर्गंधित अन्न साथमें लेकर जाता है और रास्तेमें पाथेयकी तरह खाता रहता है। शुभाशुभ योगोंमें–संयोगोंमें प्रमाद कर्तव्य नहीं है। हे गौतम! समयमात्रका भी प्रमाद मत करो, ऐसा शास्त्रमें कहा गया है। प्राण लिये या ले लेगा ऐसा हो रहा है, यह ठीकरा टूट जायेगा। फिर इसमेंका कुछ भी काम नहीं आयेगा। जितना समय अच्छे निमित्तोंमें बीता, उतना ही सार्थक है।

१. मुमुक्षु–'उपमितिभवप्रपंच'में 'कर्मविवर' द्वारपाल निष्पुण्यकको सुस्थित महाराजाके द्वारमें प्रवेश करने देता है, इसका क्या अर्थ है?

२. मुमुक्षु–'कर्मविवर' अर्थात् 'कर्मका विच्छेद' होने पर अंतरात्मामें प्रवेश होता है। सात प्रकृतिका उपशम हो तब पहले ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय आदि सर्व कर्मप्रकृतिका समय एक कोडाकोडीसे कुछ कम रहता है, तब कर्म उसे मार्ग देते हैं, तब सुस्थित महाराजाकी उस पर दृष्टि पड़ती है। फिर उसे दर्शन होता है। धर्मबोधकरकी तीन दवायें (१) शलाका अंजन (२) तत्त्वप्रीतिकर पानी और (३) परमान्न, उसका पात्र निष्पुण्यक जीव बनता है। अधःप्रवृत्तिकरण आदि सामग्री प्राप्तकर जीव पुरुषार्थ करता है तो सद्भाग्यसे उसका सद्धर्ममें प्रवेश होता है। कई बार उस द्वारके सामने वह आता है, पर या तो स्वयं भूल जाता है या कर्म उसे प्रवेशकी आज्ञा नहीं देता।

प्रभुश्री–मनुष्यभव दुर्लभ है। उसमें ऐसा योग, वीतरागवाणीका श्रवण विशेष दुर्लभ है। भले ही समझमें आये या न आये, पर हमारे कानमें शब्द पड़ने ही महा दुर्लभ है।

★★★ ता.४-२-१९२६

('मूलाचार'मेंसे गुरुके आगे विनयपूर्वक आलोचना करना, अन्य लोगोंके समक्ष करना और स्वयं पश्चात्तापके रूपमें एकांतमें करना, इन तीन प्रकारोंके वाचन प्रसंग पर)

दूसरोंके आगे अर्थात् सभाके समक्ष अपने दोषोंकी क्षमायाचना करना, यह अधिक दीनताको प्रदर्शित करता है। यों पंच या संघके समक्ष क्षमा माँगनेसे हृदय अधिक हल्का हो जाता है और पुनः वैसा पाप होनेकी संभावना कम रहती है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. ६-२-१९२६

'गोमट्टसार'में से कर्मकांडका वाचन–

पयडी सील सहावो जीवंगाणं अणाइसंबंधो।
कणयोवले मलं वा ताणत्थित्तं सयं सिद्धं ॥२॥

जो अन्य कारण विना वस्तुका सहज स्वभाव होइ जैसे अग्निका ऊर्ध्वगमन, पवनका तिर्यग्गमन, जलका अधोगमन स्वभाव है ताकौ प्रकृति कहीए वा शील कहीए वा स्वभाव कहीए ए सब एकार्थ है।

प्रभुश्री–('सहज' शब्द सुनकर) इसने क्या काम किया है! कैसी 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' मंत्रकी योजना की है प्रभु! उस समय तो कुछ पता नहीं था, पहचान नहीं थी। पर अब समझमें आता है कि अहा! कितना उपकार किया है! समय तो बीतता ही जा रहा है, कुछ रुकता नहीं। इनके उपकारका तो बदला चुकाया नहीं जा सकता, चमड़ी उतरवाकर उसके जूते सिलवायें तो भी बदला नहीं चुकाया जा सकता।

मेरा लाडला बहुत गहरा उतरा है। इसमें तो भारी अर्थ समाया हुआ है। घाती अघाती होने पर भी आठों कर्मोंकी परस्पर कैसी क्रमपूर्वक योजना की है!

संसार स्वप्नके समान है। पैर रखते पाप है, मृत्युका भय सिर पर है। यदि मरना न हो तो भले ही आलस्य करें, पर वह तो छोड़ेगी नहीं। बहुत पुण्यसे मनुष्यजन्म मिलता है, उसे व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये। सावधान हो जाना चाहिये। घडीभरमें फूट जाय ऐसा यह शरीर है। इसका भरोसा करने जैसा नहीं है। पाप और पुण्य साथमें चलते हैं, अन्य सब यहीं पड़ा रह जाता है। यह हम सब अपनी आँखोंसे देख रहे हैं। त्याग और वैराग्यकी आवश्यकता है। कमाईके लिये या व्यापारकीर्तिके लिये इतना सारा करते हैं, तो इस जीवका अनादिकालसे परिभ्रमण हो रहा है उसे दूर करनेकी उत्कंठा नहीं होनी चाहिये? इसके (जीवके) प्रति अपना फर्ज निभाना चाहिये, इसकी सेवा करनी चाहिये। 'आत्मघाती महापापी।' यह बात सभी दर्शनोंमें मान्य है। विष्णु, महादेव या माताको माननेसे मोक्ष नहीं होगा। करनीका फल मिलेगा, किन्तु सच्चे देव 'आत्मा'को पहचाने बिना मोक्ष नहीं है। सनातन जैन, वेदांत–सभीमें आत्माका ही लक्ष्य रखा गया है। पापसे छूटनेका मार्ग सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे धर्मकी पहचान है। इसमें तो कोई अपूर्व बात आ जाती है। इतने भव व्यर्थ चले गये तब इस शेष भवको तो धर्मके लिये जाने देना चाहिये। इसमें जो समय बीतेगा वह व्यर्थ नहीं जायेगा। इसीको ढूँढना, इसीकी शोध करना, इसीके विचारमें रहना। प्रभु! कैसे-कैसे जीवोंका उद्धार हो गया है?

★★★

ता. ७-२-१९२६

['उपमिति भवप्रपंच'के वाचनके प्रसंग पर]

यह आत्मा कबसे बँधा हुआ है, इसका कुछ पता नहीं है। अनादिकालसे यों ही भटक रहा है। उसमेंसे मनुष्यभव प्राप्त किया तो भी भिखारीका भिखारी ही रहा–सुखकी भीख, पैसेकी भीख, वैभवकी भीख, मानकी भीख, यों विषय, कषाय और तृष्णाओंसे जीव घिरा हुआ है, इसका कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पता ही नहीं है। महान पुण्यके उदयसे किसी संतका योग मिलता है। स्थान-स्थान पर भुलावेमें फँसनेके संयोग हैं। वह भिखारी कितनी ही बार सुस्थित राजाके महलके पास आया, पर द्वारपाल उसे प्रवेश करने ही नहीं देता। जब स्वकर्मविवर नामक द्वारपालको दया आई और अंदर प्रवेशकी आज्ञा प्राप्त हुई, तब अंदर जाकर देखता है कि अहा! वहाँ कितने ही तपस्वी, योगी और महात्मा मुक्तिके लिये प्रयत्नशील हैं, धर्मध्यान-शुक्लध्यानमें लीन हैं। उनके आत्मवैभवको देखकर वह तो दिग्मूढ हो गया। फिर भी उसके पास टूटे हुए मिट्टीके घड़ेका जो टुकड़ा (ठीकरा) था, उस पर उसको बहुत मोह था। 'मैं यहाँ आया हूँ, कोई मेरे इस ठीकरेको ले लेगा तो? यहाँसे चला जाऊँ या क्या करूँ?' यों सोचकर आँखें बन्द कर जा रहा था, पर सुस्थित राजाकी दृष्टि उस पर पड़ गई, जिससे धर्मबोधकर गुरु उसे विमलालोक नामक अंजन लगाते हैं, तब सिर हिलाता है और आँखें खोलता ही नहीं है। फिर भी आँखमें थोड़ी दवा लगने पर उसे ठीक लगता है और सब देखकर आनंदित होता है। पर उसे पुनः अपने ठीकरेकी याद आती है और उसे छुपाता फिरता है।

यों जीव अनेकानेक पुण्यके योग प्राप्तकर भी सावधान न हो तो यह मनुष्यभव गुमा बैठने जैसा है। चाहे कितनी ही साहबी क्यों न हो, पर क्या कुछ भी साथमें आनेवाला है? इस देहको छोड़नेके बाद इनमेंसे क्या काम आयेगा?

मुनि मोहनलालजी—भावनगरका एक राजा बहुत ही दान देता था। सयाजीविजयमें उसकी आलोचना हुई कि राजाको इतना अधिक खर्च नहीं करना चाहिये। पर उसने पर्वाह नहीं की। थोड़े दिनों बाद वह राजा मर गया। उसने जो दान दिया वह उसके साथ गया न? पीछे जो पड़ा रहा उसमेंसे कुछ भी अब उसके काम आयेगा? दान पुण्यमें भी दो भेद हैं—एकसे तो पुण्यके योगमें नये पुण्यका बंध होता है और एक पुण्य पूरा होकर नया पाप बँधता है। जिसके योगसे नया पुण्य बँधे वही पुण्यानुबंधी पुण्य है और वही कामका है।

प्रभुश्री—उस गद्दी पर दूसरा राजा आया। वह शिकारी और पापी था। वह नींदमें भी हरिण देखता और भय ही भयका अनुभव करता। उसने सभामें सयाने लोगोंके समक्ष यह बात कही तब चर्चा करने पर उसे विश्वास हुआ कि जो पाप किये हैं वे सब उसे घेर लेते हैं।

एक धनवान बनिया गरीब होने पर गाँवमें जा बसा और वहाँ अनीतिसे पैसा एकत्रित कर लोगोंको दुःख देता जिससे मरकर बकरा हुआ। उस गाँवके लोगोंमेंसे एक मरकर कसाई हुआ। वह कसाई उस बकरेको ले जा रहा था तब एक मुनिकी दृष्टि पड़ी तब उन्हें हँसी आई। यह देखकर इस बातका स्पष्टीकरण करने लोग उपाश्रयमें गये। उन्हें मुनिने बताया कि इसी गाँवका बनिया जो परगाँवसे आकर यहाँ रहा था वही बकरा बना है। यह तो अभी उसका पहला भव है। ऐसे तो अनेक भव उसे लेने पड़ेंगे, तब लोगोंका जो खून चूसा है उसका बदला चुकेगा। ऐसे पापसे त्रास आना चाहिये।

पूनामें एक नारणजीभाईने मुझसे पूछा—"महाराज साहब! इस माणेकजीको आपने क्या कर दिया है? पहले तो ये नित्य हजामत करवाते थे अब सप्ताहमें भी नहीं कराते।' मैंने कहा—'प्रभु! उन्हें मृत्युका भय लगा है।' दूसरा क्या कहें? उनका भी यहाँ आनेका विचार रहता है, पर अंतरायके कारण नहीं आ सकते। यह सब, कुछ करनेसे आ मिलता है न?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि मोहन०—कलेक्टर और वायसरॉय विलायतसे आते हैं उसके पहले उनके लिये बंगला, फर्नीचर आदि तैयार रहता है, वैसे ही जीव जो कर्म उपार्जन करता है, उसीके कारण उसे सब प्राप्त होता है।

प्रभुश्री—पैसेवालेके घरमें जन्म होना वह इसके जैसा ही है। कहाँ परिश्रम करना पड़ता है? पिता इकट्ठा करके गये वह सब उसे मिलता है। अन्यथा दूसरे लोगोंको एक पैसेके लिये कितनी मेहनत करनी पड़ती है? पैसेवालेको तो अधिक सावधान रहना चाहिये। उसे मौजशौक और अनीतिमें खोनेके अनेक प्रसंग आते हैं। क्योंकि पुण्यके कारण वैसे संयोग तो मिलते हैं पर स्थान स्थान पर बंधनके कारण तो खड़े हैं। यदि चेता न जाय तो ऐसा भव फिर नहीं मिलता। मनुष्यभव महादुर्लभ है। किसी पशु या बैलको लाकर खड़ा कर दें तो वह कुछ समझेगा? यह मनुष्यभव है इसलिये कहते हैं कि इस संयोगको व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये।

पेथापुरमें एक कार्यभारी था वह नित्य हमारे पास आता। उसने 'मोक्षमाला' पूरी पढ़ी और हम वह सुनते। उसकी क्या समझ थी! उसकी आँखमें आँसू आ जाते। ऋणानुबंधसे सब संयोग मिलते हैं। माणेकजी सेठके कारण ये भाई (लश्करी) और इनके कारण ये इंजीनियर साहब यहाँ आये। यों ही पहली पहचान कहने-सुननेसे ही होती है। इन दुर्गाप्रसाद और माणेकजी सेठका तो घर जैसा संबंध है। यह क्या पूर्वके संबंधके बिना हो सकता है? हमसे कुछ कहा नहीं जा सकता। किन्तु दिखायी दे वैसा और सबको समझमें आये ऐसा है कि पहले कुछ किया होगा तब यह मनुष्यजन्म, आर्यदेश और ऐसा संयोग प्राप्त हुआ है। कुछ त्याग भी करनेकी आवश्यकता नहीं और साधु बननेकी भी कोई खास जरूरत नहीं, पर समझ बदलनेकी जरूरत है। समझदारका मार्ग है। जो त्यागता है उसे तो आगे मिलता है, पर इस पुण्यपापसे छूटनेकी जरूरत है। आत्मा पर दया करनी चाहिये। आत्मघाती महापापी। समझकर असंग होनेका मार्ग है। यदि यह मनुष्यभव गुमा दिया तो ढोर-पशुमें कहाँ जन्म होगा उसका कुछ पता नहीं है। फिर कुछ समझमें आयेगा क्या? सावचेत होना चाहिये प्रभु! और क्या कहें?

(प्रभुश्रीने 'तत्त्वज्ञान'में से क्षमापनाका पाठ निकालकर एक मुमुक्षुसे कहा—)

प्रभु! यह चंडीपाठकी तरह नित्य नहा-धोकर करनेका पाठ है। कण्ठस्थ हो जाय तो करने योग्य है। हो सके तो रातको सोनेसे पहले भी इसके विचारमें ही रहें।

भरत चक्रवर्ती प्रतिदिन उठनेके समय ऐसा कहलवाते थे कि 'भरत चेत, भरत चेत, भरत चेत'—यों तीन बार कहलवाते थे। बड़े चक्रवर्ती थे, नरकमें जाने योग्य काम करते थे, किन्तु समझ दूसरी थी। पूर्वबद्ध पुण्यको भोगते हुए भी श्री ऋषभदेवकी आज्ञाको नहीं भूलते थे। नहीं तो, यदि अंतमें इतने वैभवको न छोड़ें तो नरकमें ही जायें। एक दिन शृंगारकर राज्यसभामें जाते समय उन्होंने दर्पणमें देखा कि एक अंगुलिमेंसे एक अंगूठी कहीं गिर गई है और वह अंगुलि खाली खाली लग रही है। यह देखकर उन्होंने दूसरी अंगूठी भी निकाल ली तो दूसरी अंगुलि भी शोभाहीन दीखने लगी। यों सब आभूषण और वस्त्र निकालकर अपने शरीर और स्वरूपके विचारमें पड़ गये। यों विचारते-विचारते उन्हें केवलज्ञान हो गया। अतः राजपाट छोड़कर चल पड़े। उनके वैभवके आगे हमारी क्या गिनती है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस 'तत्त्वज्ञान'में बीस दोहें हैं उन्हें कण्ठस्थ करें और नित्य बोलें। बोलते हुए ऐसी भावना करे कि 'हे प्रभु! मैं तो अनंत दोषसे भरा हुआ हूँ–क्रोध, मान, माया, लोभ, विषय, प्रमाद आदिसे मैं तो भरा हुआ हूँ।' ऐसी दीनताकी भावना करे। ये बीस दोहे बहुत समझने योग्य हैं। सब मिलाकर दस-पंद्रह मिनिट बोलते लगेंगे। सब शास्त्रोंका सार इस पुस्तकमें समाया हुआ है। 'सत्पुरुषके चरणकमलका इच्छुक', 'मूल मार्ग' इन सबमें सत् चित् और आनंद कहो या ज्ञान-दर्शन-चारित्र कहो, उसकी समझ है। इसमें 'आत्मसिद्धि' नामक शास्त्र है वह भी बहुत समझने योग्य है। समागम रखते रहें। आप ब्राह्मण हैं?

मुमुक्षु–जी हाँ।

प्रभुश्री–दो सगे ब्राह्मण भाई थे। उनमेंसे बड़ा भाई अविवाहित था। उसे धर्म पर विशेष प्रेम था अतः छोटे भाईको कहकर घर छोड़कर तीर्थयात्रा करने और किसी संतको ढूँढकर आत्म-कल्याणका उद्यम करने निकल पड़ा। ढूँढनेवालेको संसारमें मिल ही जाता है। किसी पहाड़ी प्रदेशमें एक आत्मज्ञानी सच्चे महात्मा उसे मिल गये, उनकी सेवामें वह रह गया। उन महात्माकी कृपासे उसे आत्मज्ञान प्राप्त हुआ, जिससे उसे यह सब (संसार) स्वप्नके समान लगने लगा।

एक बार उसे विचार आया कि गुरुकृपासे मुझे लाभ हुआ है, पर मेरा छोटा भाई बेचारा मौजशौकमें पड़ गया है। स्त्रीकी चमड़ी सफेद होनेके कारण उसके मोहमें उसके साथ ही उठने-बैठनेमें सारा समय बिता रहा है। अतः दया लाकर उसने उसे एक वैराग्यभरा पत्र लिखा और डाकमें डाल दिया। उसके भाईने भी भाईका पत्र समझकर ऊपर-ऊपरसे देखा, किन्तु विषयासक्तको वैराग्यकी बात कैसे रुचिकर हो? अतः पत्रको एक ताक पर फेंक दिया। उसका एक मित्र वहाँ आता था उसको वह पत्र बताया। उसके भाईने उसे वैसे अठारह पत्र लिखे एकके बाद एक, पर छोटे भाईको तो ऐसा लगता कि उसका तो लिखनेका ही काम है; अतः जो भी पत्र आते उन सबको वह ताकमें डाल देता। समय व्यतीत होने पर सभी संयोग अच्छे नहीं रहते। उसकी स्त्री मर गई जिससे वह तो पागल हो गया। सब लोग समझाते, पर वह तो न खाता, न पीता और 'मरना ही है' ऐसा बोलने लगा। उसके सगे-संबंधी चिंतित हो गये और उसके मित्रको जाकर कहा कि सोमल एक सप्ताहसे खाना नहीं खा रहा है, तुम उसको थोड़ा समझाओ न। उसका मित्र आया तो सोमल रो पड़ा और सब वैभवकी बातोंका वर्णन करने लगा। उसके मित्रने पूछा कि तुम्हारे भाईके पत्र कहाँ रखे हैं? उसने ताक बता दिया। उसमेंसे निकाल निकालकर उसका मित्र एक एक पत्र पढ़ने लगा। कुछ निमित्त बदले तो चित्तको उसमें रोकना पड़ता है। एक समयमें दो क्रियाएँ साथमें हो सकती है? जितनी देर वे पत्र सुननेमें उसका मन रुका उतनी देर वह स्त्रीकी चिंता भूल गया। सब पत्र पढ़े जाने पर उसे समझमें आया कि उसके भाईके कथनानुसार संसार क्षणभंगुर और दुःखदायी है। यह विचार आते ही सब छोड़कर पत्रमें लिखे पते पर भाईको ढूँढने निकल पड़ा। उसका भाई जंगलमें पहाड़ी प्रदेशमें रहता था। वहाँ जाकर उसके चरणोंमें अपना सिर रखकर मोक्षमार्ग बतानेकी विनती की। उन दोनों भाइयोंने धर्माराधन किया और वह सोमल ब्राह्मण मरकर देव हुआ। शुक्रका तारा उदय-अस्त दिशामें जगमगाता दिखाई देता है वहीं उसका जीव है। वह उसका विमान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्गाप्रसादके पास 'तत्त्वज्ञान' है और बहनके पास भी है। उसमेंसे वे पढ़ते रहें ऐसा कहना और महाराजश्रीने धर्मवृद्धिके लिये कहा है ऐसा सूचित करना। ये शब्द सुनकर भी जीव पुण्यबंध करे ऐसा निमित्त है। सारी बात भाव पर टिकी हुई है न? अच्छा निमित्त हो तो पुण्यबंध होता है और बुरा निमित्त हो तो पापबंध होता है। कर्मके संयोगसे प्रवृत्तिमें पड़ना पड़े, यह अलग बात है; पर न लेना न देना, फिर भी मात्र संकल्प-विकल्प या निंदामें प्रवृत्ति कर जीव कितने अधिक कर्म बाँध लेता है?

★

['उपमितिभवप्रपंच'का वाचन पुनः प्रारंभ]

"पवित्र पुरुषोंकी कृपादृष्टि ही सम्यग्दर्शन है" ऐसा वचनामृत कृपालुदेवका है। ऐसी ही यह गहन बात है। कर्मविवर प्रवेश करने दे तभी किसी सत्पुरुषके सन्मुख हुआ जा सकता है।

मुनि मोहन०—वसोमें एक भावसारका पुत्र जो सप्त व्यसनका सेवन करनेवाला था, वह भी कृपालुदेवकी सेवामें रहनेको तत्पर हुआ यह सत्पुरुषकी वाणीका कितना बल है!

प्रभुश्री—भूतकालमें कैसे कैसे जीवोंका उद्धार हो गया है! वेश्या, महा पापी, चंडाल और घोर कर्म करनेवालोंका भी उद्धार हो गया है। सत्पुरुषोंकी कृपादृष्टिके बिना ऐसा कैसे हो सकता है? कर्मविवर प्रवेश करने दे तभी इन पुराणपुरुषकी कृपादृष्टि प्राप्त होती है। एक बार उस मार्ग पर चढ़ जानेवाला तो मोक्ष जायेगा ही। कैसी अद्‌भुत बात है!

★
★★

ता. ९-२-१९२६

प्रभुश्री—आवश्यक याने क्या?

मुमुक्षु—आवश्यक अर्थात् अवश्य करने योग्य।

प्रभुश्री—(मुनि मोहनलालजीसे) आप क्या समझें?

मुनि मोहन०—मोक्षके लिये करने योग्य क्रिया।

प्रभुश्री—पुस्तकमेंसे पढ़िये।

'मूलाचार'का वाचन—

अवश—कषाय और रागद्वेषके वशमें नहीं वह अवश, उसका आचरण ही आवश्यक है।

प्रभुश्री—धीरे-धीरे सुना जाय तो जानकारी प्राप्त होती है। यह वैष्णव था, पर हमें याद न रहे वह भी यह बता दे, पूर्ति करे ऐसा यह पढ़कर ही जानकार हुआ है। यह गुडगुडिया भी क्या जानता था? पर यह भी पढ़कर जानकार बना है और बता सकता है। क्षयोपशमका सुलटा उपयोग किया जाय तो हितकारी है, वर्ना उलटा उपयोग हो उतना बंधन है। बहुत सावधानीकी जरूरत है। शास्त्र शस्त्र बन सकता है, पर किसी सत्पुरुषकी दृष्टिसे वाचन हो तो लाभकारी है।

आवश्यक छह प्रकारके कहे गये हैं—(१) सामायिक, (२) चौबीस तीर्थंकर स्तवन, (३) वंदना, (४) प्रतिक्रमण, (५) प्रत्याख्यान, (६) कायोत्सर्ग। छठे कायोत्सर्गमें आसनकी बात आती है। पलथी, सुखासन आदि चौरासी आसन हैं। पद्मासनमें पहले बाँया पाँव दाँयी जाँघ पर रखकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दाँया पाँव ऊपर रहे यों दोनों पाँवोंकी पगथलियाँ जाँघोंके ऊपर रखी जाती है। इसमें पहले बाँया हाथ दो पाँवोंके बीच सीधा रखकर उसके ऊपर दाँया हाथ सीधा रखा जाता है, यह किसलिये? पाँवोंसे अनेक पापकर्म बँधते हैं अतः थोड़ी देर (दो घडी) पाँवोंको संयममें रखनेके लिये। इसी प्रकार हाथसे बहुतसे कर्मोंका बंध होता है उनका संवर करनेके लिये इस आसनमें हाथ भी एकके ऊपर एक रखा जाता है। दूसरी इंद्रियाँ तो किसी वस्तुके स्पर्श होने पर जानती हैं, किन्तु मन और आँख तो दूरसे भी कर्म बाँध लेते हैं। अतः दृष्टिको नाक पर स्थिर की जाती है जिससे वह भटकती न फिरे और कर्म न बाँधे। अब रहा मन। उसके लिये किसी सत्पुरुषके वचन 'हे भगवन्! मैं बहुत भूल गया। मैंने आपके अमूल्य वचनों पर ध्यान नहीं दिया।'' इसे मनसे लक्ष्यमें लेकर इस पर अपनी बुद्धिके अनुसार विचार करें अथवा 'हे प्रभु! हे प्रभु! शुं कहुं?' या 'छह पद' के पत्रके विचारमें मनको रोकें। यों कमसे कम दिनमें घड़ी दो घड़ी अवश्य करना चाहिये। ऐसे पवित्र वचनोंके उपयोगमें मन लगा हो तो, बेकार बैठा मन पाप करता रुके।

★
★★

ता. १०-२-१९२६

[कौनसे निमित्त (नोकर्म) मति, श्रुत आदि ज्ञानको तथा निद्रा आदि द्वारा दर्शनको रोकनेमें सहाय करते हैं, इस विषयमें श्री गोमट्टसारमेंसे वाचनके प्रसंग पर]

मुमुक्षु–जहाँ रागद्वेषके परिणामवाले भाव हों वहाँ बंध है। संक्लेश परिणामसे बंध होता है।

प्रभुश्री–विचार करनेके लिये कह रहा हूँ। भाव तो ऐसे होते हैं कि मुझे अमुक काम कभी नहीं करना है। उसे दूर करनेका यथाशक्य प्रयत्न होता हो फिर भी वह आकर खड़ा हो जाता है और उसमें जीव तदाकार हो जाता है, तब क्या समझना चाहिये?

मुनि मोहन०–पुरुषार्थ जितना कम होगा उतना ही बंध होगा। आत्माकी शक्ति (वीर्य) जहाँ विशेष प्रकट हुई हो वहाँ कर्म दिखायी देकर निर्जरित हो जाते हैं। जहाँ कर्मकी शक्ति आत्माकी प्रकट शक्तिसे अधिक हो, वहाँ बंध होता है, पर उसके लिये किये गये प्रयत्नके प्रमाणमें मंद होता है। तीर्थंकरको बंध.....

प्रभुश्री–(बीचमें रोककर) 'सम्मद्दिट्ठी न करेइ पावं' ऐसे बोल तो शास्त्रमें आये हैं। अतः आप जो कहना चाहते हैं वह उचित नहीं है।

जिसके दूर करनेके परिणाम होते हैं उसे भोगते समय खेद ही खेद होता है। परंतु कर्म छोड़ता नहीं है, तब उसे 'उदय' जानते हैं। ध्यानमें बैठे हों तब जिसका कोई विचार ही न हो वह आकर खड़ा हो जाता है। बंदरकी पूँछके समान, जिसको मनमें लाना ही न हो वह आकर दिखाई दे तो उसका क्या किया जाय? यह पूछना है।

★

['मूलाचार'मेंसे 'निषिद्यका' और 'आसिका'के वाचन प्रसंग पर]

आसिका और निषिद्यका यों क्रमको समझना योग्य है। गुरुके पाससे उठना पड़े, किसी शरीरके या व्यापारके निमित्तसे, तो मनमें क्या रहता है? भाड़में जाय यह काम कि मुझे इसके लिये समय खोना पड़ेगा! जैसे सीताने 'पद्मपुराण' में कहा है कि 'धिक्कार है इस स्त्रीवेदको कि जिसके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण इतना-इतना सहन करना पड़ा, परिभ्रमण करना पड़ा!' 'हे प्रभो! आत्मार्थके सिवाय किसी भी काममें मेरा चित्त न लगो।' यों सर्व प्रकारकी अभिलाषाओंसे रहित होकर उठना यह आसिका। 'हे भगवान्! अनिवार्य होनेसे मुझे जबरजस्ती उठना पड़ रहा है।' आसिका (आवस्सहि) अर्थात् उठना पड़ रहा है, जाना पड़ रहा है, पर जिस कामके लिये उठे उस काममें कितनी सावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करें उसका स्वरूप कितना सुंदर प्रस्तुत किया है! पाँच इंद्रियाँ और चार कषाय मिलकर इन नौके वश न हो, उन्हें रोके तथा चित्तके परिणामोंकी विशुद्धता टिकाकर संसारके काम उदासीन भावसे करके वापस लौटे और कहे कि हे भगवन्! मैं प्रवेश करूँ?—यह निषिद्यका। आचारांगसूत्र आदिमें इसका विशेष वर्णन है।

आज्ञामूल धर्म कहा गया है। 'आणाए धम्मो आणाए तवो' अतः किसी भी कार्यमें प्रवृत्ति करनी पड़े तो गुरुकी आज्ञा लेकर, उपरोक्त कथनानुसार परिणामकी चंचलता न हो और विषय-कषायमें लुब्ध न हो जाय ऐसी उदासीनता रखकर प्रवृत्ति करनेका उपदेश इसमें है। महामुनियोंके आचारकी ये बातें हैं। इन महापुरुषोंके आचारसे हमें भी सीखना है। छोटे बच्चेको किसीने भी कन्धे पर बिठाया हो किन्तु यदि वह माँको पहचानने जितना बड़ा हो तो उसकी दृष्टि माँकी ओर रहती है। वैसे ही सद्गुरुकी आज्ञासे, सद्गुरु द्वारा जानकर, उनके बताये अनुसार (स्वच्छंदसे नहीं) आत्माका लक्ष्य रहे, उसकी दृष्टि निर्दिष्ट पदार्थ पर ही रहे तो कल्याण होता है। स्थान-स्थान पर जीव परिणत होता है, तो यदि जीव सत्पुरुषके बताये मार्ग पर प्रवृत्ति करे तो इसमें उसका क्या बिगड़ जायेगा? इसमें किसीकी कुछ सिफारिश चलनेवाली है? जीवने जितनी अंतराय प्रकृति बाँधी है उतनी उसे विघ्न करेगी ही न? अभी ही किसीको नींद आ रही हो या चित्त कहीं भटक रहा हो तो कुछ लक्ष्यमें रहेगा क्या?

प्रभु! अनमोल क्षण बीत रहा है। हमें तो अब ऐसा लग रहा है कि कालने लिया या ले लेगा। आयुष्यका कुछ भरोसा है? कल क्या होगा कौन जानता है? अपना धन्यभाग्य समझना चाहिये कि कृपालुदेवकी कृपासे ये बोल हमारे कानमें पड़े! इतना समय तो इसमें बीता! और करना भी क्या है? 'जागृत हो जाओ, जागृत हो जाओ।' 'हे गौतम! समयमात्रका भी प्रमाद कर्तव्य नहीं है।' ऐसा महापुरुषोंने कहा है, क्या वह व्यर्थ कहा है? इसीके चिंतनमें, इसीके विचारमें, इसीके लिये जितना समय बीतेगा वह सार्थक होगा। शेष समय तो व्यर्थ गया। कुछ व्याधियाँ और दुःख हों तो अच्छा है कि वे हमें सावचेत करते रहते हैं। आग लगी है उसमेंसे जितना बचा लिया जाय वह हमारा है। अंतमें तो धोखा ही है—ठगोंके नगरमें जैसे धोखा ही धोखा होता है वैसा ही यहाँ है, कहीं भी खड़े रहने जैसा नहीं है। संसार राखकी पुड़िया या स्वप्नके समान है। उसमें धर्मसाधनाका यह अवसर आया है उसे भूलना नहीं चाहिये। महापुरुषोंकी बातें हैं। विचार करें तो उसमें कुछ अंतर नहीं है। आचारांग हो या मूलाचार हो—महापुरुषोंने उसमें आत्महितकी गहन बातें कही है। उसमें मूल बातमें कुछ आपत्ति, झगड़ा या विवाद जैसा हो सकता है? बादमें छोटी छोटी बातें उठाकर तर्क द्वारा मतभेद उत्पन्न करनेमें क्या सार है? इससे आत्माका कल्याण होगा? वीतरागके मार्गमें—आत्मकल्याणके मार्गमें कुछ भेद हो सकता है? 'एक होय त्रण कालमां, परमारथनो पंथ।' यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी समीपमुक्तिगामी जीवके हृदयमें यह बात बस जाये तो उसका कल्याण हो जाये, ऐसा यह वीतराग मार्ग है।

ता. १२-२-१९२६

['मूलाचार'में से अन्यत्वभावनाके वाचन प्रसंग पर]

अनमोल क्षण बीत रहा है प्रभु! इस मनुष्यभव और इन संयोगोंमें सावचेत होने जैसा है। वैराग्य और बोधकी आवश्यकता है। यह वैराग्य कैसा होगा? कुछ अच्छा न लगे। खाना, पीना, लेना, देना क्या यह आत्माका धर्म है? इसमें तो कुछ अलग ही निकला! ज्ञानीने जीवका स्वरूप जाना है और हम केवल इसीमें ही आसक्त रहें तो क्या कुछ समझा है ऐसा माना जायगा? रामचंद्रजीका कैसा वैराग्य था! 'योगवासिष्ठ'में ऐसा सुंदर वर्णन है कि उसे पढ़कर ऐसा लगने लगता है कि कहाँ वह दशा और कहाँ हमारा हीन पुरुषार्थ और विपरीत प्रवृत्ति! उनका इतना वैराग्य, ज्ञान होनेके पहले था, वसिष्ठ द्वारा वस्तुका–आत्माका स्वरूप समझनेके पहले था, तब ज्ञानीका इनसे कितना गुना होगा? धन्य है उस पुरुषको, कृपालुदेवको! किसी पुण्यके योगसे किसी सत्पुरुषका समागम प्राप्त होता है। उसमें चेत जायें तो काम बन जाय। पुण्यके संयोगसे ही मनुष्यकी उन्नति होती जाती है, आगे आगे बढ़ता जाता है। आज जो ये संयोग मिले हैं, वे पहले किये गये किसी कर्मका फल हैं। यह मिस्त्री पहले कितने वर्ष यहाँ रहा, पर कुछ कहा नहीं गया। आज अचानक उसे यह संयोग प्राप्त हो गया है। हमें कहना हो तो भी कुछ कहा नहीं जाता; और कभी-कभी तो एक अक्षर भी नहीं बोलनेका सोचकर आते हैं किन्तु भाषाके पुद्गल बँधे हुए हैं तो मनमें बोलनेकी अनिच्छा होने पर भी बोलना हो जाता है।

मिस्त्री–हम अभी जो कर्म करते हैं उसका फल इस भवमें मिलेगा या अगले भवमें?

प्रभुश्री–कोई महात्मा तपका समय पूरा होने पर पारणेके लिये बस्तीमें आये। उस समय एक लकड़हारेने उन्हें बुलाकर अपने भोजनमेंसे दो रोटियाँ भिक्षामें दे दी। वे खड़े खड़े ही भोजन करके चले गये। उसकी स्त्री खाना बना रही थी, उसके मनमें ऐसा लगा कि यह कहाँसे आ गया? अब मुझे अधिक रोटियाँ बेलनी पड़ेगी। किंतु उस लकड़हारेके पुत्रके मनमें यह विचार आया कि पिताजीने अपने भोजनमेंसे दो रोटी दानमें दे दी है अतः मैं अपने भोजनमेंसे आधी रोटी पिताजीको दे दूँ। ऐसा सोचकर उसने आधी रोटी पिताजीको दे दी और नयी रोटी बने तब तक भोजन चालू रखनेको कहा। उसकी बहन भी खाने बैठी थी। उसने भी भाईकी भाँति आधी रोटी पिताजीको दे दी।

वह भव पूरा होनेपर लकड़हारा देव हुआ और फिर दूसरे भवमें राजा हुआ। उसने एक बार जनक राजाकी भाँति सभामें प्रश्न पूछा कि दत्ताका फल क्या है और [1]अदत्ताका फल क्या है? बड़े बड़े पंडित इसका उत्तर न दे सके। फिर पंडितोंने राजासे समय माँगा कि अमुक समयमें हम आपको उत्तर देंगे। वह समय पूरा होने आया, पर किसीको उत्तर नहीं सूझा। अतः 'राजाको क्या मुँह दिखायेंगे?' ऐसा सोचकर निराश होकर राजपंडित उतरे हुए मुँहसे घरमें चक्कर लगा रहा था। यह देखकर उसकी पुत्रीने पूछा–"पिताजी! आपको ऐसी क्या चिंता है कि नित्य आपका शरीर सूखता जा रहा है?" पंडितने कहा–"कुछ नहीं बेटी, तुझे जानकर क्या करना है?" फिर

१. अदत्ता=निष्फल दान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी उसने जानना चाहा तो पंडितने राजाका प्रश्न बताया। यह सुनते ही वह मूर्छित हो गयी। फिर जाग्रत होने पर उस पुत्रीने कहा, "पिताजी! इसका उत्तर तो मैं भी दे सकती हूँ।" तब पंडितने राजाको यह बात कही कि इस प्रश्नका उत्तर मेरी पुत्री भी दे सकेगी। तब उसकी पुत्रीको सभामें बुलाया गया। उसने राजासे कहा, "राजाजी, आपके यहाँ थोड़े समय बाद एक कुमारका जन्म होगा, उसे पूछने पर आपको प्रश्नका उत्तर मिलेगा।" राजाको पुत्र नहीं था, अतः यह सुनकर वह प्रसन्न हुआ और पुत्रीको पुरस्कार देकर बिदा किया। पुत्रका जन्म होनेपर सब प्रसन्न हुए। प्रश्नका उत्तर सुननेके लिये राजा राजकुमारका जन्म होते ही उसके पास गया और उससे प्रश्न पूछा कि कुमार मूर्छित हो गया। फिर जाग्रत होकर कुमारने उत्तर दिया कि 'अमुक देशमें एक गाँवमें एक गरीब बुढ़िया है। वह नित्य बारह बजे गाँवके बाहर नदी पर पानी भरने जाती है। उस समय उसके पास जाकर उसका घड़ा चढ़वाओगे और प्रश्न पूछोगे तो वह इसका उत्तर देगी।' फिर राजाने वैसा ही किया और बुढ़ियासे प्रश्न पूछा तो वह भी मूर्छित हो गयी। फिर जाग्रत होकर उसने कहा कि "मैं आपके कुमारके पास आकर बात करूँगी।" फिर सब एकत्रित हुए। मूर्छा जाने पर, तीनोंको जातिस्मरण ज्ञान हुआ था जिससे उन्होंने पूर्वभवकी बात जानी थी। फिर कुमारने राजासे पूर्वभवकी बात कही। तब राजा भी मूर्छित हो गया और उसे भी जातिस्मरण ज्ञान हुआ। तब कुँवरने कहा, "राजाजी, अब आप अपने आत्माका कल्याण करिये और मुझे राज्य सौंप जाइये। किन्तु बारह वर्ष बाद आकर मुझे समझाइयेगा, चेताइयेगा। इस बुढ़ियाको इसकी आजीविकाके लिये कुछ धन दे दीजिये। यह पंडितकी पुत्री साध्वी होनेवाली है।"

पूर्व जन्मका लकड़हारा मरकर देव हुआ था और देवका आयुष्य पूरा कर राजा हुआ था। लकड़हारेकी स्त्री मरकर ढोर पशुके अनेक भव पूरे कर चंडालके यहाँ जन्मी थी, यह वही बुढ़िया थी। लकड़हारेकी पुत्री भी अच्छे भव कर पंडितके यहाँ जन्मी थी।

कुछ कर्म जो तीव्र होते हैं वे तुरत भी उदयमें आते हैं। क्रोधका फल तुरत भी मिलता है। कुछ कर्म हजारों वर्ष बाद भी उदयमें आते हैं तब फल देते हैं। किन्तु किये हुए कर्मोंको भोगे बिना छुटकारा नहीं है। ऐसा कहा जाता है कि धर्मराजकी बहीमें लिखा जाता है, उसी प्रकार आत्मा कर्मोंके कारण भवोभवमें भटकता रहता है। किसी संतको ढूँढकर उसके कथनानुसार शेष मनुष्यभव बिताये तो कल्याण हो सकता है। इस मिस्त्रीका क्षयोपशम पूर्वभवके सुकृत्योंके कारण अच्छा है। 'तत्त्वज्ञान' तुम्हें ले लेने जैसा है।

मिस्त्री—प्रभु! मैं लाया हूँ।

प्रभुश्री—(उसमेंसे क्षमापनाका पाठ निकालकर) चंडीपाठकी भाँति नित्य नहा-धोकर यह पाठ बोले और इसे कण्ठस्थ कर लेवें। दोहे हैं, आत्मसिद्धि है—जैसे जैसे समागम होगा वैसे वैसे यह सब अमूल्य लगेगा। प्रभु! इतनेमें तो सब शास्त्रोंका सार समाया हुआ है। इनका एक भी वाक्य कल्याणकारक है। किसी संतके योगसे बात सुनकर उन्होंने जो बताया हो तदनुसार कार्य प्रारंभ कर देना चाहिये। 'एक मत आपडी के ऊभे मार्गे तापडी'—यह बात सुनी है?

मिस्त्री—जी नहीं।

प्रभुश्री—सियार, खरगोश और साँपमें मित्रता थी। आग लगी तब सियारने पूछा, "साँपभाई,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुम क्या करोगे?'' उसने कहा–''इसमें क्या? अपने पास तो लाख [1]मत हैं। इस वृक्ष पर चढ़ जाऊँगा तो भी कुछ नहीं होगा।'' खरगोश भाईसे पूछा तो उसने कहा, ''मेरे पास तो सौ मत हैं। इस बिलमें घुस जाऊँ तो फिर आग क्या करेगी?'' फिर सियारने सोचा कि मेरे पास तो छिपनेका कोई स्थान नहीं है और आग तो सुलगती हुई मेरे पास तक आ पहुँची है; अतः जिस ओर आग नहीं है उस ओर भाग जाऊँ–यह सोचकर वह एक-दो कोस दूर भाग गया। साँप तो ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गया, खरगोश बिलमें घुस गया। दो दिन बाद आग शांत होने पर सियार मित्रोंका पता लगाने आया। उसने वृक्ष तो पहचाना, पर साँप नहीं मिला। ऊपर देखा तो शाखासे लिपटा हुआ साँपका मृत शरीर नजर आया। फिर खरगोशको ढूँढने बिलके पास गया, पर वहाँ तो राख थी। उसे दूर करके देखा तो बिलमें पूँछ जैसा दिखायी दिया। खींचकर निकाला तो झुलसा हुआ खरगोशका मुर्दा शरीर था। तब सियार बोला–

*''लाख मत लबडी, सो मत ससडी;
एक मत आपडी के ऊभे मार्गे तापडी.''

यह तो परमार्थ समझनेके लिये दृष्टांत है। चाहे जहाँ नहीं घुस जाना चाहिये। एक सच्चे पुरुषके बताये हुए मार्ग पर ही लक्ष्य रखकर चलता जाय तो मोक्ष जाते कोई रोक नहीं सकता। एक प्रकारसे देखें तो मार्ग कितना सरल और सुगम है! फिर भी अनादिकालसे आज तक जो परिभ्रमण हुआ है वह मात्र बोधके अभावसे हुआ है। आप सब मनमें घबरा रहे थे कि क्यों कुछ बोलते नहीं? यह पता तो लगता है, प्रभु! पर अब हमें तो कुछ भी नहीं करना ऐसा रहा करता है। मृत्युका कोई भरोसा है? किसीको कैसे लाभ होता है, और किसीको कैसे लाभ होता है; किसीको दूर रखनेसे लाभ होता है और किसीको पास रखनेसे लाभ होता है–ये सब भेद भी समझने योग्य हैं। अब शरीर पुराना छींका हो गया है तो इससे इच्छित काम कैसे हो सकता है?

मुमुक्षु–हमारे भी अंतरायकर्मका उदय है न प्रभु?

प्रभुश्री–यह भी सच है।

★★★

ता.१३-२-१९२६

(मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके अंतमें कौन-कौनसी प्रकृतियोंकी व्युच्छित्ति होती है, इस विषयमें 'गोमट्टसार'में से वाचनके प्रसंग पर)

प्रभुश्री–अहा! मिथ्यात्व गया तो अब इतने भव परिभ्रमण नहीं होगा, ऐसा सरकारी पेंशन जैसा निश्चित हो जाता है।

मृत्युके समय कुछ भी भान नहीं रहता। कोई यों बुलायें कि भाई..., तो भी आँख ऊँची न करे ऐसा क्यों होता है? कुछ याद नहीं रहता इसका क्या कारण? चेतन कुछ जड़ थोड़े ही हो जाता है? पर उस समय मानो कुछ भी पता नहीं रहता! क्या वेदनासे घिर जाता होगा? क्या आवरण आ जाता होगा? समकितीको कैसे लगता होगा?

---

१. मत=मति, बुद्धि। * लाख मत (मति) वाला साँप लटका (लबडी); सौ मतवाला खरगोश सेंका गया (ससडी); अपना (आपडी) एक मत था कि सीधे रस्ते पर भाग गया (तापडी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि मोहन०—समकितीको तो पता रहता है, उसके परिणाम सत्पुरुष कथित लक्ष्यके अनुसार रहते हैं। भिन्नता भासित होनेसे स्वयं वेदना आदिसे अलग है ऐसा भान रहता है। और दूसरे बुलाते हों तो सुनता है, पर अपनी गति सुधारनेके प्रयत्नमें होनेसे सगे-संबंधी बुलावें तो भी नहीं बोलता—ये कोई भी आत्माको मदद नहीं कर सकते ऐसा वह जानता है। अतः जो सच्ची शरण है या सत्पुरुषसे प्राप्त स्मरण है उसमें ही अपना उपयोग रखनेमें वह प्रयत्नशील रहता है। सौभाग्यभाईने अंत समयमें अंबालालभाईको बताया था कि "अंबालाल, सौभाग्यको अन्य ध्यान नहीं है, पर आप उच्च स्वरसे स्मरणमंत्र बोल रहे हैं उसमें, मुझे अपना तार जुड़ा हुआ हो तो भी उसमेंसे विक्षेप पाकर जुड़ना पड़ता है।"

प्रभुश्री— "शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहिये केटलुं? कर विचार तो पाम."

"छूटे देहाध्यास तो, नहि कर्ता तुं कर्म;
नहि भोक्ता तुं तेहनो, ए ज धर्मनो मर्म."

इन गाथाओं पर विचार कर्तव्य है।

★★★

ता. १४-२-१९२६, सबेरे

"छूटे देहाध्यास तो, नहि कर्ता तुं कर्म;
नहि भोक्ता तुं तेहनो, ए ज धर्मनो मर्म."

"शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहिये केटलुं? कर विचार तो पाम."

इन गाथाओं पर बारंबार विचार कर्तव्य है। शामको उठनेके बाद यों ही जागते हुए रात बिताई है। अब ऐसा जोग मिला है तो सोचकर निश्चित कर लेना चाहिये न? मृत्युके समय सौभाग्यभाईका उपयोग इस 'शुद्ध बुद्ध....." वाली गाथामें था।

मुनि मोहन०—अंबालालभाईकी अंगुलि

महादेव्याः कुक्षिरत्नं शब्दजितवरात्मजम्।
राजचंद्रमहं वंदे तत्त्वलोचनदायकम्॥

इस श्लोकके चार चरण बोलते हुए चार अंगुलिके पैरवों पर रहती और दो शब्दोंका स्मरण प्राप्त होनेके बाद दो अंगुलि पर फिरती ऐसा देखा है। मृत्युके समय भान नहीं था पर वह क्रिया चलती रही। धारशीभाईकी मृत्युके समय मंत्रका स्मरण करानेवाले व्यक्ति चौबीस घंटे उनके कमरेमें बोलते ही रहें ऐसी व्यवस्था की गई थी।

प्रभुश्री—धारशीभाईका क्षयोपशम अच्छा था। हमारे प्रति प्राण न्यौछावर करे ऐसा उनका प्रेम था। कई बार हमें खुले मनसे कहते कि ऐसाका ऐसा भान मृत्युके बाद भी रहे तो कितना अच्छा हो! गुण, पर्याय, केवलज्ञान आदिकी बातें वे भली भाँति कह सकते थे। यह पूर्वोपार्जित क्षयोपशम है। किन्तु समझ कुछ अलग ही वस्तु है। उन्हें आँखका दर्द था जिससे झटका लगने पर आँख दबाये रखते। ज्ञानी वेदनीयकर्मको वेदनाके रूपमें अलग ही जानते हैं। वह आत्माका धर्म नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृपालुदेवके समागमकी तो बलिहारी है! जो द्रव्य, गुण, पर्यायकी बातें करना नहीं जानते उनका भी कल्याण होता है, ऐसा धर्मका मार्ग है। मृत्युके समय क्या ध्यान रखना है? यदि सत्पुरुषमें उसकी दृष्टि रहे तो उसका कल्याण है। जैसे स्त्री एक बार निश्चित करती है कि यह मेरा पति है, फिर उसीके नामकी चूड़ियाँ पहनती है, वैसे ही चलते, फिरते, काम करते उसीका चिंतन, स्मरण, भजन, गुणकीर्तन रहा करे और अंतमें भी उसीमें चित्त रखे तो बेड़ा पार हो जाय! 'गोमट्टसार'में भी आता है कि केवली या श्रुतकेवलीके चरण समीप क्षायक समकित होता है। ये (कृपालुदेवकी ओर देखकर) श्रुतकेवली हैं, इन्हें छोड़कर दूसरेको पकड़ना तो आँचल(स्तन)को छोड़कर गलथना (बकरीके गलेका आँचल) पकड़ने जैसा है। उससे क्या दूधका स्वाद आयेगा? सत्पुरुष या संत कहे वैसे करना चाहिये। वे करे वैसा करनेमें सदा कल्याण नहीं होता। अहंकार रखनेमें जीव मर जाता है। आँखका मींचना भी अहंकारके बिना नहीं होता। पर ज्ञानीकी गति (दशा) तो ज्ञानी ही जानते हैं। उनकी बात तो एक ओर रखें। बाकी हमारे जैसोंके बाह्य आचरणको देखकर कोई बाह्य अनुकरण करे तो कल्याण हो सकता है? अंबालालभाई अंगुलियों पर अंगूठा फिराते थे, वैसे मैं भी कभी-कभी अंगुलियाँ हिलाता हूँ, यह देख कोई वैसा ही करके अपनेको ज्ञानी मानें तो ऊँट (अहंकार) खड़ा हो जाय और मारे जानेका प्रसंग आ जाये न?

किसी भी बातका गर्व करने जैसा नहीं है। ये तो पुराने हैं और ये नये समागमी हैं, ऐसा भी नहीं करना चाहिये। पुराने तो पड़े रह जायें और नये आगे बढ़ जायें, अपना काम कर लें, ऐसा यह मार्ग है। दीनता और दासत्व भूलना नहीं चाहिये। "हुं तो दोष अनंतनुं, भाजन छुं करुणाळ।" हे प्रभु! इनके वचन याद आते हैं कि क्या अजब गजब उनकी वाणी थी! अब समझमें आती है। किन्तु उस समय इतनी समझ कहाँ थी? धारशीभाईने अंतमें मुझे कहा कि कृपालुदेवने आपसे जो कहा हो वह कहें। पर मैंने कहा कि वह तो पुस्तकमें आपने पढ़ा होगा, पर मुझसे कैसे कहा जाय? आज्ञा बिना बोला नहीं जा सकता, मेरा मुँह बंद कर दिया है। फिर उन्होंने मस्तक पर हाथ रखा, समझदार थे इसलिये समझ गये कि योग्यताके बिना वस्तुकी प्राप्ति नहीं हो सकती। बाकी ज्ञानी तो इतने दयालु होते हैं कि योग्यता हो तो रास्ते पर चलते व्यक्तिको बुलाकर भी दे देते हैं।

कई लोगोंकी प्रकृति होती है कि जिस-तिससे बात करते रहते हैं, पर वैसा नहीं करना चाहिये। यह तो थके हुएका मार्ग है। जिसे चाह होगी, सच्ची गरज होगी, वह तो ढूँढता ही होगा और जो ऐसा गरजवान होता है उसीको प्राप्ति होती है।

'उपमिति भवप्रपंच'में कितनी बात आती है? उसमें तो बहुत कहा है! एक सत्पुरुष पर दृष्टि रखनेकी ही बातें आती हैं। मैं तो यही देखता रहता हूँ कि इसने क्या लिखा है! किन्तु योग्यताके बिना कैसे समझमें आ सकता है?

★
★★

ता. १५-२-१९२६

सब धर्मोंमें जो तत्त्व है, वह जिनदर्शनमें समाहित है। महावीर स्वामीकी आज्ञा रागद्वेषका त्याग कर समभावमें आनेकी है। क्षमापूर्वक सहन करें। जितना अधिक क्षमाशील, उतना अधिक महान। किसी अपूर्व योगके कारण और इन सबके अंतराय टूटे हुए हैं इसलिये आज इतना बोला जा सका। नहीं तो प्रभु! अपना सोचा कुछ होता ही नहीं। सच कहूँ तो मुझे तो बोलना ही नहीं था,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर यह [1]मीठी कुईका पानी है। इनके (परमकृपालुदेवके) वचन स्मृतिमें हैं, उन्हें कहना है। यदि कुछ शास्त्र या सत्पुरुषकी वाणीके विरुद्ध कहा जाता हो तो आप कहियेगा। इसमें तो सर्वधर्ममान्य कथन है। कहाँ बाड़ा बाँधना था? जहाँ आत्माकी ही बात हो वहाँ भेद कैसा? वेदांत हो या जैन हो, सत्-चित्-आनंद कहो या ज्ञान-दर्शन-चारित्र कहो, भात कहो या चावल कहो—इससे मूल वस्तुमें कहाँ कुछ फर्क पड़नेवाला है?

चाहे जैसे करके शुभ निमित्तमें रहना है और समय बिताना है। और क्या करना है? इनकी शरणसे पुस्तक, स्थान, मकान, चेला-चेली—इन सबमें अप्रियता हो गई है। इनके समागमसे पहले इनमें ही प्रवृत्ति थी। पर इनका कोई ऐसा योगबल कि कहीं भी खड़े रहने नहीं दिया! प्रभु! धोखा, धोखा और धोखा ही निकला है। अंत समयमें यदि किसी स्थानमें जीव (मोह) रह जाये तो छिपकली या ऐसे जीव-जंतु होना पड़ता है; स्त्रीपुत्र या चेला-चेलीमें जीव रहे तो उनके पेटसे अवतार लेना पड़ता है; महल-मकान या उद्यान आदिमें जीव रहे तो मेंढक या अलसिया बनना पड़ता है और खेत या जमीनमें वृत्ति (मन) रहे तो धातु या पत्थरमें उत्पन्न होना पड़ता है। "पैर रखते पाप है, देखनेमें जहर है और मृत्यु सिर पर है।" 'चरण धरण नहीं ठाय' यों महापुरुष कह गये हैं। हमने तो यह सब विष जैसा मान रखा है तब इसकी इच्छा कैसे हो सकती है? जब तक इसमें मीठास है तब तक, जैसे निष्पुण्यकका रोग नहीं मिटता था वैसे ही, यह सब बंधनरूप होता है।

जीव परीक्षा किस प्रकार कर सकता है? परीक्षा-प्रधानता, योग्यता होनी चाहिये न? यहाँ तो आत्माकी ही बात है। इसमें भेद नहीं है। हमें तो अब मौतके विचार आया करते हैं; और सबको उसकी स्मृति करना योग्य है। फिर जाकर खड़े कहाँ रहेंगे? कुछ निश्चित तो करना होगा न? घर देख रखा हो तो वहाँ जा सकते हैं, पर भान न हो तो कहाँ जायेंगे? इतना भव तो इसीके लिये बिताना योग्य है। इतना पुण्य एकत्रित हुआ है, मनुष्यभव मिला है तब कहना होता है। यदि किसी पशु या बैलको बुलाकर कहेंगे तो वह कुछ समझेगा? अवसर आया है उसे चूकना नहीं है। अंतमें सब यहींका यहीं पड़ा रह जायेगा। सब ऐसाका ऐसा रहनेवाला नहीं है। मृत्यु न हो तो कुछ कहना नहीं है, पर वह तो है ही। तो अब क्यों न जाग्रत हुआ जाय? नौकरी, व्यापार आदिकी चिंता करते हैं तो इस आत्माकी चिंता क्यों नहीं? अब तो यह निश्चय करना है कि इतना जीवन इसके लिये ही बिताना है। एक शरण ग्रहण कर कुछ भी करे तो विघ्न नहीं आता ऐसी चमरेन्द्र और शक्रेन्द्रकी कथा है। चमरेन्द्रने अभिमानसे शक्रेन्द्रके स्वर्गमें जानेका विचार किया, तब समझदार मंत्रियोंने किसीकी शरण लेकर जानेकी सलाह दी। अतः वह महावीरस्वामीकी शरण लेकर वहाँ गया और जोरसे गर्जना की कि शक्रेन्द्रने वज्र फेंका। पर तुरत ही उसे विचार आया कि कदाचित् किसी महापुरुषकी शरण लेकर आया होगा, और यदि वज्र उसे लगेगा तो असातना होगी, यह सोचकर पीछे दौड़कर वज्रको पकड़ लिया। इसी बीच वह चमरेन्द्र महावीर स्वामीके पैरोंके नीचे छोटा जन्तु बनकर छिप गया था। वहाँ आकर शक्रेन्द्रने महावीरस्वामीसे क्षमायाचना की और चमरेन्द्रसे कहा कि अब निकल। उसने निकलकर क्षमा माँगी। यों शरण था इसलिये बच गया।

★

१. मूल शब्द मीठी वीरडी है जिसका अर्थ है पानीके लिये खोदा गया गड्ढा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघने आनंदघनजीसे व्याख्यान करवानेके लिये उनके गुरुसे विनती की। वे विशेष वैराग्यमें थे, इसलिये सबको प्रिय थे। किसी कारणसे अग्रणी बड़े सेठ न आ पाये, तो भी सब आ गये हैं यों समझकर आनंदघनजीने व्याख्यान शुरू कर दिया। फिर सेठ आये। बातचीतमें सेठने कहा–'हम हैं तो आप हैं।' तब आनंदघनजी वस्त्र उतारकर नग्न होकर गुरुके पास जाकर चल निकले। किसीका कहा न माना।

उनके गुरुके देहावसानके बाद एक पिंजियारा विद्याके बलसे आकाशमें रहकर बोलता कि 'हे बादशाह! एक कर, एक कर।' अतः बादशाहने सबको मुसलमान बनानेके लिये सताना शुरू किया। संघने मुसलमान बननेसे मना कर दिया, जिससे सबको कैदमें डाल दिया और सबसे चक्की पिसवाने लगा। तब सब साधु परामर्शकर आनंदघनजीके पास गये और उन्हें सब बात बतायी। जैसे लब्धिधारी विष्णुकुमारने सबको धर्ममें होनेवाली कठिनाईको दूर किया था और फिर प्रायश्चित्त लिया था, वैसे ही शासनको निर्विघ्न करनेके लिये उन्होंने आनंदघनजीसे विनती की। उन्होंने उसे स्वीकार किया और एक सोटी दी। उन्होंने कहा कि इस सोटीको चक्कीसे छुआना तो चक्कियाँ जाम हो जायेगी। कोई पूछे कि ऐसा किसने किया? तो कहना कि हमारे गुरुने किया। मैं अमुक स्थान पर दोपहर बारह बजे आऊँगा, बादशाहको वहाँ आनेके लिये कहना। बादशाह वहाँ आया, पर उसे आनंदघनजीके पास द्वारपाल जैसे दो बाघ दिखायी दिये जिससे वह आगे बढ़ न सका, उसे बुलाने पर भी वह न जा सका। तब आनंदघनजी बाघके पास होकर बादशाहके पास गये और कहा– "क्यों सबको सता रहा है?" बादशाहने कहा–'बारह बजे खुदाका हुक्म सुनायी देता है।" इतनेमें तो बारह बज गये और आकाशवाणी हुई, तब आनंदघनजीने एक वस्त्र ऊपर उठाया कि पिंजियारा नीचे गिर पड़ा और गिड़गिड़ाने लगा। आनंदघनजीने कहा, "यह तो तेरे गाँवका पिंजियारा है, अब किसीको धर्मके लिये मत सताना।" पिंजियारेसे भी कहा–"इसमें तेरा कल्याण नहीं है।"

अंजनकी आवश्यकता है। यशोविजयजीको आनंदघनजीके समागमसे वह प्राप्त हुआ था। उसके बाद लिखे गये ग्रंथ मध्यस्थ दृष्टिसे लिखे गये हैं।

★

शामको

समभाव, धैर्य, क्षमा, समतासे सहना–यह वीतरागकी आज्ञा है। समझकी जरूरत है। चाहे जैसे पापी, वेश्या और चंड़ालका भी उद्धार हो गया है। लीक बदलनेकी जरूरत है। गाड़ीकी लीक बदलनेमें कठिनाई तो होती है, पर लीक बदलते ही दिशा-परिवर्तन हो जाता है। आकाश-पातालका अंतर पड़ जाता है।

अनादिकालसे जीव लोभके कारण ही अटका हुआ है। उस शत्रुको मारनेके लिये, लोभ छोड़नेकी बुद्धिसे खर्च किया जाय तो उसका फल अच्छा है। ऐसा ही करने योग्य है।

★★★

ता. १६-२-१९२६

[सुबह चार बजे 'परमश्रुतप्रभावकमंडल'की ओरसे प्रकाशित होनेवाली 'श्रीमद् राजचंद्र'की द्वितीय आवृत्तिके लिये लिखी गयी प्रस्तावनाके प्रूफके वाचनके प्रसंग पर]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रस्तावनामें परीक्षकवृत्ति है। कोई परीक्षा लेकर बच्चोंको पारितोषिक दे या अंक प्रदान करे उसी प्रकार सत्पुरुषकी परीक्षा करनेका प्रयत्न है। पर जिसकी परीक्षा लेनी हो उससे परीक्षक अधिक चतुर होना चाहिये। अर्थात् अपनी समझका मूल्य विशेष समझकर, सत्पुरुषकी दशा उसमें समाहित होती है ऐसा मानकर, मानो उसे सिरोपाव देते हों कि 'इतने पुरस्कारके योग्य है' ऐसी वृत्ति इन शब्दोंसे ज्ञात होती है। सत्पुरुषकी परीक्षा करनेकी सामर्थ्य किसमें है? जो सत्पुरुषको बराबर पहचाने वह सत्पुरुष जैसा ही होता है।

★★★

ता. १७-२-१९२६, सबेरे

[तीर्थंकर प्रकृतिकी स्थितिका उत्कृष्ट बंध कब पड़ता है, इस विषयमें 'गोमट्टसार कर्मकांड' के द्वितीय अधिकारके वाचन प्रसंग पर]

समकितका कितना माहात्म्य है! असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यके उत्कृष्ट संक्लेश परिणाम नरकगतिके सन्मुख होने पर होते हैं और उस समय तीर्थंकर प्रकृतिकी स्थितिका उत्कृष्ट बंध भी पड़ता है। समकित है इसलिये उसकी उपस्थितिमें जो-जो क्रिया होती है वह पुण्यरूपसे परिणत होती है। रक्तकी बड़ी नदियाँ बहें वैसे भरतके संग्रामके प्रसंग पर गणधर भगवान पुंडरीकने ऋषभदेव भगवानसे पूछा—"अभी भरत चक्रवर्तीके परिणाम कैसे होंगे?" भगवानने कहा, "तुम्हारे जैसे।" क्योंकि उनकी समझ बदल चुकी थी, जिससे दर्शनमोह रहित क्रिया होती थी। नहीं तो 'सम्मद्दिट्ठी न करेइ पावं' ऐसे सूत्र महापुरुष क्यों कहते? यह किसका माहात्म्य है? समकितका। जैसे चंदनवृक्षके समीपवर्ती अन्य नीम आदि वृक्ष भी सुगंधित हो जाते हैं वैसे ही समकितीकी कषायवाली क्रिया भी समकितकी उपस्थितिमें पुण्यरूपसे परिणत होती है। समकित पुण्य है और मिथ्यात्व पाप है, ऐसा 'मूलाचार' एवं 'गोमट्टसार'में भी आता है। जिसका ऐसा माहात्म्य है उसे छोड़ कर इस भवमें गुड्डे-गुड्डीके खेल जैसे सुख और समृद्धिके पीछे समय बिताना क्या समझदार विचारवान पुरुषको शोभा देता है? इस भवमें तो समकित ही प्राप्त करना है, फिर भले ही कितने भी भव हों उसकी फिकर नहीं है। उसकी प्राप्तिके बाद उसकी क्रिया पुण्यानुबंधी पुण्यका उपार्जन करती है और अंतमें समकित उसे मोक्षमें पहुँचाये बिना नहीं छोड़ता। आज कैसी आश्चर्यजनक बात आयी है!

१. मुमुक्षु—सिद्धपुरके गोदड पारेख कहते थे कि आपसे मिलनेके बाद आपने हृदयमें ऐसा पक्षी बिठा दिया है कि वह फड़फड़ाता ही रहता है। पहले तो आरामसे खाते और चैनसे सोते थे, पर अब तो कहीं भी चैन नहीं पड़ता।

प्रभुश्री—ऐसा ही है। हमें कृपालुदेव मिलनेके बाद सब मुनि हमारे संबंधमें बात करते कि इनके पास जाओगे तो वे भूत लगा देंगे। इनके शब्द भी कानमें न पड़ने चाहिये, वर्ना प्रभाव हुआ ही समझना।

२. मुमुक्षु—अहमदाबादमें अभी भी ऐसा ही कहा जाता है कि जो आपसे मिलता है उसे भूत लग ही जाता है।

प्रभुश्री—ऐसा ही है। क्या होता है उसका हमें कैसे पता लगें? पर कितने ही कर्मोंकी निर्जरा होती है, कर्मका पुंज क्षय होता है, यह तो ज्ञानी ही जानते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. मुमुक्षु–मैंने कहीं पढ़ा है कि शास्त्र पढ़ने पर समझमें न आये तो भी जो शब्द कानमें पड़ते हैं उनके संस्कार अगले भवमें भी जाग्रत होकर वह समझमें आता है और मोक्षका कारण बनता है।

प्रभुश्री–यह बात सत्य है।

★

शामको

[पत्रांक १९४ के स्वाध्यायके प्रसंग पर]

"हे आयुष्मानों! इस जीवने सब कुछ किया है, एक इसके बिना, वह क्या? तो कि निश्चयपूर्वक कहते हैं कि सत्पुरुषका कहा हुआ वचन, उसका उपदेश सुना नहीं है, अथवा सम्यक् प्रकारसे उसका पालन नहीं किया है। और इसे ही हमने मुनियोंकी सामायिक (आत्मस्वरूपकी प्राप्ति) कहा है।"

हम कृपालुदेवसे मिले, तब अन्य साधु ऐसा कहते कि हम बिगड़ गये हैं। एक साधु जो हम पर प्रेम रखता था उसने मेरे पास आकर कहा, "आप जो करते हैं वह मैंने सुना है, वह कुछ भी हो, पर महावीर कथित सूत्रों पर श्रद्धा रखियेगा। इतना मेरा कहा मानियेगा।"

सूत्राभिनिवेश भी मिथ्यात्व है। अन्यथा हमें वीतरागके वचनोंका कहाँ अनादर है? परंतु अपनी समझसे समकित मानना योग्य नहीं। आज तो घर-घरका समकित हो गया है, पर समकितकी महिमा तो कुछ और ही है! कृपालुदेवसे मिलनेके पहले हम सूत्र पढ़ते, उस पर फिर चर्चा करते और जिसे अधिक याद रहे तथा जो अधिक वर्णन करे वह बड़ा माना जाता। यह भी मिथ्यात्व है। भगवानने 'सद्धा परम दुल्लहा' कहा है। सच्ची श्रद्धा–समकितका माहात्म्य, 'गोमट्टसार' और 'मूलाचार'का वाचन हो रहा है उसमें वर्णित है। 'समकित ही पुण्य है और समकिती जो-जो क्रिया करता है वह पुण्यरूपसे ही परिणत होती है।' यह पढ़ते हुए निश्चय होता है कि कृपालुदेवसे सुने वचनोंकी शास्त्र भी साक्षी देते हैं, और समकितका पोषण करते हैं। भरतराजा और श्रेणिकराजाके दृष्टांतसे, समकितकी उपस्थितिमें जो संक्लेश परिणाम थे वे पुण्यरूपसे फलित हुए। समकितीकी क्रियाका परिणाम या तो निर्जरारूप होता है या तो पुण्यबंधरूप होता है; पर समकिती पाप तो कर ही नहीं सकता। मिथ्यात्व ही पाप है। मिथ्यात्वीके परिणाम शुभ दिखाई देते हों, पर उसका फल मोक्षमार्गमें सहायक पुण्यरूप न होनेसे संसार-परिभ्रमण करानेवाला है, अतः उसके शुभ परिणाम भी पापरूप हैं। कोई कहीं और कोई कहीं अटके हैं, पर कहीं भी अटकने जैसा नहीं है। स्त्री, बच्चे, धन, संपत्ति, इसमें या उसमें–कहीं भी अटके बिना आत्माको ही उपादेय, ध्येय मानना चाहिये। इसकी श्रद्धा हो गयी तो काम बन गया। चाहे जैसे कर्म दिखायी दें पर इसे तो चूकना ही नहीं चाहिये। जो बँधे हुए हैं वे तो आयेंगे ही–मेहमान भोजन करके चला जायेगा, पर संयोगोंको तो संयोग ही मानें। ध्यान करने बैठें तो संकल्प तो आयेंगे, पर उन्हें भिन्न जानें, तन्मय न होवें। सबको विष समझकर चलना है, अन्यथा भव खड़े करानेवाली सामग्रियाँ आ-आकर गिरती हैं। उन्हें आत्माका धर्म न समझें। यदि उसका संयोग अनिवार्य हो तो उसे भोग लेवें। जो आया है, उसे भोगना ही है, पर उसे इष्ट न मानें तो बंध नहीं होगा। यों भेद पड़े तो बहिरात्मासे अंतरात्मा हो जाय और यों करते करते 'दीनबंधुनी महेरनजरथी, आनंदघन पद पावे।'

★
★ ★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १८-२-१९२६, सबेरे

प्रभुश्री—कोई सुने पर समझमें न आये तो उसका क्या?

मुनि मोहन०—समकितीको सब सुलटा होता है।

प्रभुश्री—सुननेकी भावना हो, उसीमें दृष्टि रखे, किन्तु पूर्वभवके अंतराय या आवरणके कारण सुनायी न दे तो क्या वह निष्फल जायेगा?

यह माणेक माँजी नित्य आती हैं। इन्हें कुछ भी समझमें नहीं आता, किन्तु सुननेकी इच्छा करे तो कुछ लाभ होगा या नहीं?

यदि उसीमें सिर खपाते रहें तो कर्म मार्ग दे देता है। ज्ञानी अंतर्मुहूर्तमें कोटि कर्मका क्षय करते हैं। इसी प्रकार कोई समकिती—श्रद्धावाला जीव हो और उसे शास्त्र सुननेका लक्ष्य होने पर भी समझमें न आये तो भी उसे क्रियाका फल तो होता होगा या नहीं?

मुमुक्षु—पहले मागधी भाषाका पता ही नहीं था। अब उसकी गाथा ठीक तरहसे पढ़ी जा सकती है। यह समझमें न आने पर भी सिर खपानेका परिणाम है।

प्रभुश्री—यह गुडगुडिया वैष्णव है। इसे पहले तो सबकी तरह वैकुंठ, गोलोक आदिका ख्याल होगा। पर अब शास्त्रमें कैसी समझ पड़ती है? यह भी कैसा था? किन्तु पढ़कर जानकार बना तो समझ सकता है न? इस प्रकार क्या होता है उसका हमें क्या पता लगेगा? पर ज्ञानी तो जान रहे हैं। कुछ आश्चर्यकारी बात है! धन्ना श्रावकका जीव कैसा था? पशु चरावे वैसा। उसे मुनिका योग हुआ, वहाँ उपदेश सुना और समझमें आये या न आये, मुझे तो वे कहें वैसा करना है—यह व्रत लूँ, यह व्रत लूँ—ऐसी भावना रहती थी, पर किया कुछ नहीं था, फिर भी भावना ही भावनामें मृत्यु होनेसे देव होकर वहाँसे च्यव कर धन्ना नामका बड़ा लक्षाधिपति श्रावक हुआ, कितनी ही कन्याओंसे शादी की और मोक्षकी तैयारी की। ज्ञानीकी आज्ञासे श्रुतज्ञान सुनने पर परोक्ष ज्ञान होता है और दीनबंधुकी कृपादृष्टिसे फिर प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, पुद्गल और जीव भिन्न भासित होते हैं।

★

शामको

['मूलाचार'में से 'संसारभावना'में अश्रद्धानरूप मिथ्यात्वके विषयमें वाचन]

श्रद्धासे विपरीत अश्रद्धा। श्रद्धा किसकी? सद्देव, सद्गुरु और सद्धर्मकी। इसमें सत् ही आत्मा है, इसलिये यह आत्मा ही देव, आत्मा ही गुरु और आत्मा ही धर्म है ऐसा मानना चाहिये। इस आत्माकी उपस्थिति हो, श्रद्धा हो तो कर्मबंध नहीं होता।

मृत्यु न हो तो कोई बात नहीं, पर वह तो कब आयेगी उसका कुछ भरोसा नहीं है। अतः जितना समय हाथमें है उसे व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये। शेष आयुष्य तो इसके लिये ही बिताने योग्य है। सबके लिये समय बिताते हो तो इसके लिये, आत्माके लिये इतना नहीं करोगे? समझदार व्यक्तिको तो उसीकी शोध होती है, उसके सिवाय कुछ अच्छा ही नहीं लगता—न हो सके उसका खेद रहना चाहिये। कृपालुदेवने हमें कहा था कि "हमसे मिलनेके बाद अब तुम्हें क्या भय है?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"धींगधणी माथे किया रे, कुण गंजे नर खेट? विमल जिन दीठां लोयण आज।"

ऐसा महापुरुषोंने भी कहा है। शरणकी भी बलिहारी है! यही कर्तव्य है। इसे ही समकित कहा है।

ता. २०-२-२६, शामको

('मूलाचार'में से 'संसारभावना'के प्रथम श्लोकका पुनः वाचन)

अश्रद्धानरूप मिथ्यात्व–आत्माकी श्रद्धा नहीं सो मिथ्यात्व, अश्रद्धान। मेरा शरीर, मेरा घर, मेरा कुटुंब–इन्हें अपना माना है, यह भी एक प्रकारकी श्रद्धा है; पर सच्ची श्रद्धा नहीं है, मिथ्या है। संयोग हैं वे दिखायी तो देते हैं। आपबीती कहूँ या परबीती?

मुनि मोहन०–आपबीती, प्रभु!

प्रभुश्री–शरीरमें कोई चाबी घूम जाय तो सब कुछ घूम जाता है। पीड़ा, पीड़ा और पीड़ा। श्वास लेनेमें भी घबराहट हो और कुछ भी आराम न रहे। यह सब क्या है? नोकर्म, द्रव्यकर्मका संयोग। उसमें जीव परिणत होता है। उस समय भावना तो दूसरी होती है, उसमें लक्ष्य रखना होता है और वेदनामें लक्ष्य नहीं रखना होता, पर क्या ऐसा हो सकता है?

मुमुक्षुगण–ऐसा होता तो नहीं।

मुनि मोहन०–परमकृपालुदेवको किसीने जूते पहननेको दिये थे। उन्हें पहनकर चलनेसे पाँव लहूलुहान हो गये। जब दूसरोंने ध्यान दिलाया तब बोले–"तुमने कहा तब जाना कि फफोले हो गये हैं और लहू निकला है।"

प्रभुश्री–वह बात अलग है। हम जा रहे हों और हाथमें कुछ लगे या खरोंच आ जाय, किन्तु भान न हो तो पता नहीं चलता। इस समय यह बात नहीं है। अभी यहाँ ढोल-नगारे बजते हों और शास्त्रवाचन होता हो तो सुनायी देगा? वैसे ही अभी बुढ़ापेके दुःख आ गये हों और खदबदाने लगे हों तो पता नहीं चलेगा? यह तो अनुभव है कि जब वेदना घेर लेती है तब कुछ नहीं हो पाता। परंतु भाव तो वहाँ (आत्मामें) ही होते हैं। यदि घर देखा हुआ हो तो उसमें घुसा जा सकता है। बच्चा माँको पहचानने जितना बड़ा हो तो वेदनाके समय 'माँ माँ' पुकारता है, वैसे ही अंतर्चर्या वैसी रहती है। ज्ञानीसे मिलनेके बाद भाव बदल जाते हैं। वह अंतर्चर्या–भावना आत्माकी रहती है। संयोग देखें, पर उसमें परिणत न हो वह अंतरात्मा। अंतरात्मा कहीं परदेश गया है? पर भान नहीं है; वही करना है। अंतरात्मा, अंतर्चर्या, भावना–यह तो ज्ञान है। ज्ञान किससे होता है? ज्ञानीसे।

"सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिनस्वरूप."

'देखे परम निधान' ऐसा भी महापुरुषोंने कहा है। जिनदेव–आत्मा! उनके द्वारा उपदिष्ट मोक्षमार्ग–मुक्त होना–उसे नहीं देखनेसे संसार-परिभ्रमण है। पहलेसे अभ्यास कर रखना जरूरी है। कृपालुदेवने पत्रांक ४६० में कहा है तदनुसार सावधान होनेकी आवश्यकता है। आग लगे–घर जलने लगे–तब कुआ खोदे तो आग कैसे बुझेगी? कुछ पहलेसे करके रखा हो तो वेदनाके समय काम आता है। मरते समय अन्य सब याद आता है–शरीर, कुटुंब, बच्चे। इसका अभ्यास हो गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है इसलिये अधिक वेदना होने पर भी याद आता है। इसके स्थान पर दूसरा अभ्यास कर रखा हो तो इसमें क्या कुछ पक्षपात चलता है कि वह याद आये और यह न आये? अवश्य आये। शरीरका यंत्र बिगड़ते कहाँ देर लगती है? जहाँ कफ छूटता न हो, श्वास रुंधा हो और पाठ पढ़ना हो या अन्य धर्मक्रिया करनी हो तो वह कैसे हो सकती है? किन्तु अभ्यास कर रखा हो तो अंतरंगपरिणाम–अंतरचर्या–उसीमें रहती है। मेरा कुछ भी नहीं है, ऐसा निश्चय कर लेना चाहिये। 'मेरा मेरा' मानते हैं वह मिथ्यात्व है।

★★★

ता. २१-२-१९२६

इतनी अधिक वेदना एक साथ आ जाती है और दिन प्रतिदिन पीड़ा, निर्बलता बढ़ती जाती है कि मानो सब कुछ नष्ट हो जायेगा। कल शाम ऐसी ही घबराहट हो गयी थी जिससे नीचे नहीं आ सके। (मुनि मोहनलालजीसे) कहिये, उस समय वेदनाका अनुभव होता है या नहीं?

मुनि मोहन०–ज्ञानीको भी वेदना तो होती है पर उसे उसकी कोई गिनती नहीं होती। कृपालुदेव, मुनि और सब लोग दोपहरमें नरोडामें जाते थे। तब अग्निसे अधिक तप्त रेत थी। वहाँ होकर जंगलमें जानेके लिये सब लोग निकले। वहाँ सब दौड़ादौड़ करते, कपड़े डालकर खड़े होते या टपाटप पाँव उठाते। किन्तु कृपालुदेवने अपनी चालमें कोई परिवर्तन नहीं किया, धीरे-धीरे चलते थे। किसीके पाँवमें जूते भी नहीं थे। सबको उस समय लगा कि देवकरणजी स्वामी व्याख्यान सुंदर देते हैं पर सच्चे ज्ञानी तो ये ही हैं। वहाँ बैठनेके स्थान पर गये तब भी कृपालुदेवने पाँव पर हाथ तक नहीं फेरा। पाँवमें लाल लाल छाले पड़ गये थे। कोमल शरीर और जूते बिना धूपमें चलनेका अभ्यास नहीं। अतः वेदना तो अधिक होती ही होगी।

प्रभुश्री–यह तो दशाकी बात है। उत्तरसंडाके बंगलेमें रहते थे तब मोती भावसार सेवामें रहता था। वह धोती ओढ़ाता, ढँकता, पर वापस खिसक जाती। मच्छर, बड़े बड़े डांस वहाँ खूब थे पर स्वयं न हिलते, न डोलते, पड़े ही रहते।

कृपालुदेवके प्रथम समागममें निश्चयनयसे आत्माका बोध होनेसे बाह्य दया और क्रियाको छोड़ दिया। सभीको जैसे अपने-अपने गच्छमें आग्रह होता है वैसा आग्रह पहले तो बहुत था। देवकरणस्वामीसे अधिक दया पालनेकी, समानता करनेकी, महान गिने जानेकी बहुत उमंग थी। अतः उनसे अधिक तप करनेका होता। क्षयोपशम तो था नहीं पर शरीरका बल था। अतः जोर लगाकर भी खूब पढ़ता और कण्ठस्थ करता। अब तो हँसी आती है!–खंभा पकड़कर 'भक्तामर'की गाथाएँ रटकर ऐसी याद की कि सभी अक्षरोंका शुद्ध उच्चारण होता। अन्य संयुक्ताक्षरोंका स्पष्ट उच्चारण 'सम्यक्त्व'की भाँति नहीं हो सकता था, किन्तु परिश्रम करनेसे उसके सब संयुक्ताक्षर शुद्ध बोले जाते। चतुरलालजीको अब भी वेदांतका असर रहा है इसलिये वे एकदम शुष्कज्ञानी हो गये हैं। कम समझवालेको वेदांत जिसमें अकेले निश्चयनयकी बात है, ठीक बैठ जाता है और वह उसकी पकड़ कर बैठता है। अनेकांतदृष्टि सूक्ष्म है।

हमारी सब बात वे (परमकृपालुदेव) तो जानते थे, उनसे क्या अज्ञात था? एक बार चिंउटी यों जा रही थी उसे धीरेसे हाथपर चढ़ाकर यों एक ओर सँभालकर रखा। तबसे मुझे लगा कि ये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यों दयाका पालन करते हैं तो हमें भी ऐसा ही करना चाहिये। तबसे मानो दयाका पुनर्जन्म हुआ। नहीं तो ऐसा लगता था कि बहुत दया पाली, पर उससे कल्याण नहीं हुआ। पर जैसा है वैसा समझकर करना वही है। तबसे उन्होंने मुझमें दयाका प्रवेश करा दिया। आज दिन तक वही दृष्टि है। पानीमें कैसे चलना यह कृपालुदेवने बताया कि मुनियों, आगे पानी है, उपयोगपूर्वक चलियेगा। यों यों बिलौनेकी तरह पाँवसे पानी हिलाकर न चलियेगा; किन्तु कमर तक पानी हो तो भी पाँवोंको ध्यानसे ऊपर उठाकर फिर सँभालकर आगे रखना चाहिये। पानी हिले नहीं और अप्कायके जीवोंको कष्ट न हो वैसे चलना भी उन्होंने सिखाया था। नदी पार करनी हो तो संथारा करे कि यदि पार करते हुए मगर या अन्य कोई जीव खींच ले जाये तो 'जीवनपर्यंत चौविहार', और पार हो जाये तो दूसरे किनारे पहुँचने तक। यों संथारा करके, प्रतिक्रमण, क्षमापना करके नदी पार करते। पार करनेके बाद पानी निथरने तक खड़े रहना चाहिये। कपड़ोको निचोड़ा नहीं जा सकता। हरी शाकभाजी समारते समय ज्ञानीको कितनी दया रहती है यह तो वे ही जानते हैं।

मुमुक्षु–काविठामें मच्छरोंमें बैठते पर उड़ाते नहीं। एक व्यक्ति हरे घासकी गठरी पर बैठा था, उसे कृपालुदेवने कहा, 'नीचे बैठो भाई, जीव दब रहे हैं।"

मुनि मोहन०–इस पुरुषने तो ठेठ मोक्षका मार्ग बता दिया है। मात्र हमारी कमी है। "हम देहधारी हैं या नहीं इसे जब याद करते हैं तब मुश्किलसे जान पाते हैं" ऐसी जिसकी दशा हो उसकी क्या बात करें? हम सब तो उनकी दशा देखकर चकित हो जाते थे।

★

('विमलपुराण'में से श्रेणिक राजाके चरित्र-वाचनके प्रसंग पर)

यह भारी बात है! बहुत मर्मवाली बात है। कई बार शास्त्र शस्त्र बन जाते हैं। एक तो यहाँ वाचन होता है और एक अपने आप ही पढ़ लेते हो–उसमें बहुत भेद है। यहाँ भूल निकलती है, मूल बातकी ओर, आत्माकी ओर लक्ष्य रहता है। श्रेणिक राजा कहे या उसकी रानी कहे, पर सब कर्म और उनका जीवसे संयोग है या और कुछ? कर्म फूट निकले दिखायी देते हैं। अन्यथा कथा पढ़ते-सुनते जीव कैसे कैसे कर्म बाँध लेता है? यहाँ तो बातको फोड़कर उसका विस्तार कर ग्रहण करने योग्य पर विचार किया जाता है। यहाँ आत्माके सिवाय अन्य क्या हो सकता है? यह स्थान आप कैसा जानते हैं? इस धर्मस्थानका कोई अपूर्व बल है! मात्र योग्यताकी कमी है, वैराग्यकी कमी है। ऐसा योग मिलना दुर्लभ है। चेतने जैसा है। फिर कुछ हो सकेगा? अभी हमारा कैसे भी करके धर्मध्यानमें प्रवृत्ति करनेका मन होता है, पर बल और स्थिरता कहाँसे लायें? यदि कुछ बलपूर्वक करने जायें और उससे कुछ शरीरमें गड़बड़ हो जाये तो उसे बराबर करनेमें जो थोड़ा बहुत होता है वह भी रुक जायें। जब तक साता (सुख-शांति) है तब तक चेत जाने जैसा है।

यह अवसर चूकने जैसा नहीं है। सावचेत होनेकी आवश्यकता है। एक ही खेतमें जैसी उपज करनी हो वैसी हो सकती है–गन्ना पैदा करना हो तो भी हो सकता है और तमाखू पैदा करनी हो तो भी हो सकती है। व्यापार आदिके लिये इतना अधिक करते हैं तब अपने जिस आत्माको पहचाना नहीं उसके लिये कुछ नहीं करेंगे? तमाखूके लिये जमीनको कितनी शुद्ध करनी पड़ती है और कितना अधिक परिश्रम करना पड़ता है, तब धर्मकी प्राप्तिके लिये पुरुषार्थ नहीं करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये? यदि मृत्यु न होती तब तो ठीक था, पर घड़ी भरमें फूट जाय ऐसा, पानीके बबूले जैसा या शीशे जैसा यह शरीर है तब तक 'बिजलीकी चकाचौंधमें मोती पिरो लेने'के समान आत्महितकी साधना कर लेनी चाहिये।

★★★

ता. २२-२-१९२६

['परमात्मप्रकाश'के वाचन प्रसंग पर]

इन चार विषयों पर विजय प्राप्त करना दुष्कर या दुर्लभ है—

(१) जिह्वा—सब इंद्रियोंमें मुख्य इंद्रिय जिह्वा है। इसके जीतने पर सब इंद्रियोंको जीता जा सकता है।

(२) मोह—आठ प्रकारके कर्ममें मुख्य मोहनीय है, इसको जीतने पर सभी कर्म जीते जा सकते हैं।

(३) ब्रह्मचर्य—पाँच महाव्रतोंमें मुख्य ब्रह्मचर्य है, इसमें अपवाद नहीं है।

"एक विषयने जीततां, जीत्यो सौ संसार;
नृपति जीततां जीतिये, दळ, पुर ने अधिकार.
पात्र विना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान;
पात्र थवा सेवो सदा, ब्रह्मचर्य मतिमान."

(४) मनोगुप्ति—तीनों गुप्तियोंमें मुख्य मनोगुप्ति है। मनके कारण यह सब है।

इन चारोंको कैसे जीता जाय?

मुनि मोहन०—'इंद्रियदमनकुं स्वाद तज, मनदमनकुं ध्यान।'

प्रभुश्री—जब भी मनमें विचार आये कि यह ठीक लगेगा, या ऐसा हो तो ठीक, तो उसके विरुद्ध ही खड़े हो जाना चाहिये कि ऐसा कदापि नहीं होगा। इसी प्रकार मोहकी वृत्ति उठे या कामकी वृत्ति जागे, या किसी प्रिय वस्तुके संकल्प-विकल्प आते रहते हों तो वहाँ कटाक्षदृष्टि रखें और वृत्तिको रोकें। जहाँ तहाँ यही करना है। जड़ और चेतनका भेद करना है।

मुमुक्षु—'कृष्ण बाल ब्रह्मचारी हों तो जमुना मैया, मार्ग देना।' यों काम करते हुए लिप्त न हो उसका क्या समझना?

प्रभुश्री—साधन तो चाहिये—वर्षा, बीज और जमीनका संयोग हो तब बीज अंकुरित होता है, उसी तरह त्याग, वैराग्य और उपशम तो चाहिये ही!

एक साधुने हिमालयकी सर्दीमें, सर्दीका सामना करते हुए करवटें बदल बदलकर रात निकाली और प्रातः सूर्योदय होने पर उठा और भुजायें ठोकते हुए बोला कि मैंने सर्दीके साथ लड़ाई कर विजय पाई है। पुरुषार्थकी जरूरत है।

"जो इच्छो परमार्थ तो, करो सत्य पुरुषार्थ;
भवस्थिति आदि नाम लई, छेदो नहि आत्मार्थ."

"निश्चय वाणी सांभळी, साधन तजवा नो'य;
निश्चय राखी लक्षमां, साधन करवा सोय." (श्री आत्मसिद्धि)

शुष्कज्ञानी हो जानेकी जरूरत नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

''अथवा निश्चयनय ग्रहे, मात्र शब्दनी मांय;
लोपे सद्व्यवहारने, साधनरहित थाय.''

कृष्णकी बात तो ज्ञानीके संबंधमें कही जायेगी। पर यदि तू वैसा करने लगा तो भटकेगा। यह मार्ग नहीं है। ज्ञान तो जहाँ है वहाँ है। होगा तो 'नहीं है' कहनेसे चला नहीं जायेगा और नहीं है तो 'है' कहनेसे आ नहीं जायेगा। पर महामोहनीय कर्मका बंध होगा। ज्ञानीने जाना है वैसा ही आत्मा है।

जो भूल हो उसे तो बताना ही पड़ता है। चलते हुए बैलको कोई चाबुक मारता है? उन्मत्तता, स्वच्छंद, प्रमादका त्याग करना है। अंकुश तो अच्छा है। हम तो उधर, अंतमें, सबसे पीछे जा बैठे हैं, इसलिये बोलते हैं। किसीने हमारा 'लघु' नाम रखकर अच्छा ही किया है। लघुता ही रखनेकी आवश्यकता है। किन्तु यदि मनमें मान रहता हो, तो लघु कहें या कुछ भी कहें, वह कुछ कामका नहीं है। 'घृताधारं पात्रं वा पात्राधारं घृतं' यों कहनेवाले पंडित जैसा, या 'हाथी प्राप्तको मारता है या अप्राप्तको?' ऐसा वाद करनेवाले पोथीपंडित जैसा नहीं बनना है। मनमें ऐसा रहे कि 'ये महाराजा पधारे, अतः ये बोलेंगे। ये क्यों नहीं बोलते? क्या कम हो जायेगा? ये बोलें तो अच्छा। मुझे बोलना न पड़े।' यह सब छोड़ने जैसा है। प्रत्युत, बोलनेसे तो स्वाध्याय होता है, लब्धि बढ़ती है, प्रमाद नष्ट होता है। दो बोल बोलनेसे क्या कुछ बिगड़ जाता है? किसीका अहित होता है? परिणाम पर ही बड़ा आधार है। आप और मैं यहाँ बैठे हैं पर जिसके परिणाम बढ़ गये वही बड़ा है।

★
★ ★

मार्गशीर्ष सुदी १३, शुक्र, सं.१९८३

जैसे मृत्युके समय श्रावक मरनेवालेसे ऐसा कहते हैं कि तुझे अरिहंतकी शरण प्राप्त हो, शांतिनाथकी शरण प्राप्त हो, वैसे ही हमारी शैय्याके पास उस समय जो भी उपस्थित हों वे सब 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' का उच्चारण करें। इन शब्दोंके पुद्गलोंसे पूरा कमरा भर दें। ऐसा कौन अभागा होगा जिसे उस समय यह मंत्र अच्छा न लगेगा? यह सुननेसे वृत्ति उसीमें जाती है। मृत्युको क्षण-क्षण याद करना चाहिये। अभी मर ही रहा है। समाधिमरण करानेवालेको भी महालाभ होता है।

★
★ ★

पौष वदी ६, सोम, सं.१९८३

['अमितगति श्रावकाचार'में से श्रावककी ग्यारह प्रतिमाओंमें आठवीं आरंभत्यागकी और नवमी परिग्रहत्यागकी प्रतिमाओंके वाचन प्रसंग पर]

जीवने अभी तक धर्मको जाना नहीं है। त्यागका फल मिलता है। 'त्यागे उसके आगे और माँगे उससे भागे!' ऐसी कहावत है। कंदमूल, लहसून, प्याज, आलू आदि; हरे शाक, उदुंबर, बड़के फल, पीपलके फल–ऐसे अभक्ष्य फल खानेसे नीच गति होती है, बुद्धि बिगड़ती है। कितने दिन जीना है? कितने ही लोग घर बनवाकर उसमें रहनेसे पहले ही मर जाते हैं। मनुष्यभव प्राप्त कर यदि सावचेत न हुए तो नरक-तिर्यंचके भवमें दुःख भोगने पड़ेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]ऊंधिया, [2]पोंक आदिमें इलिका आदि भप जाते होंगे! अतः वह माँसके समान अभक्ष्य है। आश्रमके स्थानमें ऐसे पापके काम कभी नहीं करने चाहिये। किसीको यहाँ ऊंधिया नहीं लाना चाहिये, न बनाना ही चाहिये। मिठाई, पतासे जैसा प्रसाद बाँटना हो तो बाँटना चाहिये। पर अमरूद जैसे अधिक बीजोंवाले फल और जिसमें जीव हों ऐसी वस्तुओंका प्रसाद नहीं करना चाहिये। श्रावक तो जीवन पर्यंत ऊंधिया न खानेका प्रत्याख्यान ही ले लेते हैं कि 'हे भगवन्! जब तक जीवित रहूँ तब तक अभक्ष्य वस्तु मुँहमें नहीं डालूँगा।' उसके बिना कहाँ मर जायेंगे? खानेकी अन्य वस्तुएँ कहाँ कम हैं?

आजकल पचास-सौ वर्षका अल्प आयुष्य! उसमें धर्म कर लेना चाहिये और चाहे जैसे हो तो भी जो व्रत-नियम लिये हों उनका कभी भंग न हो ऐसा ध्यान रखना चाहिये। बड़ी बात भावकी है। बाहरसे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करता हो और मन तो भटकता हो! 'सेठ कहाँ गये हैं? तो कहे कि ढेढवाडे।' ऐसा नहीं होना चाहिये। बाहरसे बड़ा ब्रह्मचारी होकर घूमता हो तो क्या हुआ? यदि अंतरंगमें दया न हो तो क्या कामका? ब्रह्मचर्यव्रत लेनेवालेको बहुत सँभालना है। स्वाद नहीं करना चाहिये, शरीरका शृंगार नहीं करना चाहिये, स्निग्ध-भारी भोजन नहीं करना चाहिये, बुरी बातें नहीं सुननी चाहिये। नौ बाड़ोंका रक्षण करना चाहिये, नहीं तो जैसे खेतकी बाड़ द्वारा रक्षा न की जाय तो वह नष्ट हो जाता है, वैसे ही व्रत भंग हो जाता है। जब तक नहीं जानते थे तब तक जो हुआ सो हुआ; पर अब तो जिन कारणोंसे व्रतभंग होनेकी संभावना हो उन्हें विष समान समझना चाहिये। कौरमें मक्खी आ जाय तो उल्टी द्वारा उसे निकालनी पड़ती है, वैसे ही आत्माका घात करनेवाले बुरे परिणामोंका वमन कर देना चाहिये। ब्रह्मचर्यको आप कैसा जानते हैं? ब्रह्मचारी तो भगवानके समान है! 'ब्रह्म' ही आत्मा है। इतना भव लक्ष्यपूर्वक समतासे सहन करके बिताये और संपूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करे तो बेड़ा पार हो जाये। यह व्रत ऐसा-वैसा नहीं है। सत्पुरुषके आश्रयसे प्राप्त हुए व्रतको ऐसा-वैसा नहीं समझना चाहिये। अन्य सब कामोंके लिये अनंत भव बिताये, तब इसके लिये इतना-सा भव बिताकर देखूँ कि क्या होता है? यों सोचकर त्याग और वैराग्यमें प्रवृत्ति करनी चाहिये। दिन-दिन त्याग बढ़ना चाहिये। श्रीकृष्ण और श्रेणिक महाराजसे कुछ व्रत-नियम नहीं होते थे, पर सत्पुरुषके बोधसे समझ आ गयी थी, अतः परिणाम कैसे रहते होंगे? 'हे भगवन्! मुझसे कुछ पालन नहीं होता, पर आत्माके सिवाय अन्य किसीको अब मैं अपना नहीं मानूँगा, किसीमें अपना मन नहीं लगाऊँगा।' ऐसा करनेकी आवश्यकता है। देवके उपसर्गसे एक मुनिको एक ओर काँटे और एक ओर कीड़े तथा जलयुक्त स्थानको पार किये बिना जानेका कोई मार्ग नहीं था। तब काँटेवाले रास्तेसे जाते हुए मुनिको देवमायासे उत्पन्न राज्य-कर्मचारियोंने कीड़ेवाले स्थानकी ओर धक्का मारा, पर उन्होंने गिरते-गिरते भी जीवोंको बचानेके लिये स्थान स्वच्छ करनेका प्रयत्न किया। उस समय उनके परिणाम जैसे अहिंसक थे वैसे परिणाम रखने चाहिये।

हमसे जो पालन नहीं होता उसका हमें खेद रहता है, वैसे ही सब जीवमात्रको भी करना

---

१. कंदमिश्रित भोजन २. चिडवा, होले।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये। हे भगवान! मुझे नहीं तो मेरे पड़ौसीको हो! ऐसा समझकर सच्ची बात बताये देते हैं। किसीके भी दोष देखना विषपान जैसा है। मात्र चेतानेके लिये कहना पड़ रहा है।

★★★

माघ सुदी १, सं. १९८३, सबेरे

['अमितगति श्रावकाचार'मेंसे 'दान अधिकार'के वाचन प्रसंग पर]

किसी भी निम्न वर्ण–जैसे कि ढेढ, भंगी, वाघरी (वागुरिक) आदि–द्वारा दिया गया प्रसाद यहाँ नहीं बाँटना चाहिये। कुछ ढेढ यहाँ नारियल और पैसे रख जाते हैं, उन्हें नारियल वापस लौटा दें और पैसे भंडारमें डाल दें। उसका उपयोग साधारण खातेमें मंदिर मकान बनानेके लिये किया जा सकता है। किन्तु प्रसादके रूपमें कुछ भी नहीं लेना चाहिये। काशीमें एक वेश्याने ब्राह्मणोंको भोजन करा कर पाप दूर करनेके लिये ब्राह्मणोंको भोजनके लिये निमंत्रित किया। वहाँ ब्राह्मणोंके स्थान पर, अकालके कारण जनेऊके धागे पहनकर पेट भरने काशीमें आये हुए पाँचसौ हिजड़ोंने भोजन किया। दक्षिणा देते समय उस वेश्याने अपने पापसे छूटनेके लिये उन ब्राह्मणोंसे बात की। तब उन ब्राह्मणवेशधारी हिजडोंने भी अपनी सच्ची बात कह दी। यों 'जैसेको मिला तैसा, तैसेको मिला ताई, तीनोंने मिलकर तूती बजाई' वाली कहावतकी तरह हुआ।

★★★

फाल्गुन वदी ११, सं.१९८३

अनन्तकालसे इस जीवको भटकानेवाले पाँच इंद्रियोंके विषय तथा क्रोध, मान, माया और लोभरूप कषाय हैं। इनके जैसा अन्य कोई शत्रु नहीं है। क्रोधसे प्रीतिका नाश होता है, मानसे विनयका नाश होता है, मायासे मैत्रीका नाश होता है और लोभसे तो सब-कुछ नष्ट हो जाता है ऐसा सूत्रमें कहा गया है। अनादिकालका लोभ छूटता नहीं, अतः उसे कम करनेके लिये हे भगवान! ये सौ-सवासौ रुपये जिन्हें मैं अपना मानता था, उनका त्याग करता हूँ, लोभ प्रकृतिको छोड़नेके लिये दान करता हूँ। पुण्य प्राप्त हो, या परभवमें स्वर्गके सुख मिले, इसके लिये अब मैं दान नहीं करूँगा। किसी कुत्तेको रोटीका टुकड़ा डालूँ या भिखारीको मुट्ठी भर चने दूँ, वह भी हे भगवान! उतना लोभ कम करनेके लिये दूँ। लोभ छूटे तभी दिया जाता है। पर यदि भिखारीको देकर मनमें परभवमें प्राप्त करनेकी इच्छा रखें तो वह दान देनेवाला भी भिखारी ही है। कोई करनी बाँझ नहीं होती, करनीका फल तो मिलता है। पर जो लौकिक भावसे आज तक दान दिया है, उसका फल प्राप्तकर देवलोककी ऋद्धि सिद्धि भोगकर, पुण्यके क्षय होने पर पृथ्वी, पानी, वनस्पति, पशु-पक्षी, साँप-चूहा, कुत्ते-बिल्लीके भव धारण कर परिभ्रमण करना पड़ता है। अतः हे भगवान! किसी संतके योगसे अब जो दान-पुण्य करूँ वह अलौकिक दृष्टिसे करूँ, जन्म मरणसे छूटनेके लिये करूँ–ऐसी भावना कर्तव्य है।

इस मंदिरकी दान-सूचीमें जो-जो दान लिखा रहे हैं, उन्हें हमने तो सावधान कर दिया है और यही बात कहते हैं कि अब जन्ममरणसे छूटनेके सिवाय अन्य इच्छा रखना योग्य नहीं है।

फिर भी, जो अनाजके लिये खेती करते हैं, उनके घास तो अवश्य होती ही है। इसी प्रकार मोक्षकी इच्छासे जो क्रिया करते हैं, उन्हें भी मोक्षमार्गमें सहायक पुण्यका बंध होता है। वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्यानुबंधी पुण्य उन्हें स्वर्गसुखोंका भोग करवाकर, मनुष्यभव प्राप्त कराकर मोक्षका हेतु बनता है। इस भेदको अवश्य ध्यानमें रखकर अलौकिक दृष्टिसे दान करना चाहिये।

★★★

अक्षयतृतीया, सं. १९८३

माधवजी सेठ सब छोड़कर चले गये। नारके हरिभाईका शरीर भी छूट गया और आप सब भी क्या यहीं बैठे रहनेवाले हैं? अतः चेत जाना चाहिये। मनुष्यदेह मिलना दुर्लभ है। क्षणमें नष्ट हो जाय ऐसी देह है। कुछ भी साथमें आनेवाला नहीं है। यह भव चिंतामणिरत्न जैसा है। इसमें यदि आप पालन करें तो आपको तो ब्रह्मचर्यव्रत प्राप्त हुआ है सो महा कल्याणका कारण है। बाह्यसे भी यदि उसका पालन हो सके तो महान फल है। 'जो त्यागे उसके आगे, और माँगे उससे भागे' ऐसी कहावत है। आ-आकर आगे पड़ेगा, पर 'हुं मारुं हृदयेथी टाल'। अब कुछ भी 'मेरा' नहीं करना है। आत्मस्वरूपसे तो सब भिन्न है, अतः अब परवस्तुको अपनी न मानें। यह समझ काम बना देती है। रागद्वेषमें न पड़े। जो आ पड़े उसे समतासे देखते रहें, उसमें आसक्त न हों। गजसुकुमार आदि महापुरुषोंको यादकर क्षमापूर्वक सहन करना सीखें। क्रोध न करें—क्रोधसे तो किये हुए पुण्यका, जप तपके फलका नाश होता है। अब, मात्र पुण्यकी आशासे क्रिया करनेकी अपेक्षा, जन्ममरण कैसे छूटें इसका लक्ष्य रखें। पुण्य बाँधकर फिर उसे भोगना पड़ता है और उसे भोगते हुए तृष्णासे फिर नये कर्म बाँधकर परिभ्रमण ही परिभ्रमण करते रहना पड़ता है। अब उसकी इच्छा भी न करें। अब तो इसी लक्ष्यसे ज्ञान, ध्यान, विचार, सत्संग, सत्शास्त्रमें वृत्ति रखें। जीव बंदर जैसा है और कर्मरूपी मदारी उसे नचा रहा है, वैसे ही यह नाच रहा है। खाना, पीना, सोना, सूँघना, चलना, फिरना—सब कर्म ही कर्म है। एक घड़ी भी जीव क्रियाके बिना कब रहा है? नींदमें भी क्रिया करता ही रहता है। इस क्रियामेंसे पीछे हटकर स्मरण, पाठ आदिमें मनको जोड़ना चाहिये।

यह जो वाचन हो रहा है इसमें कैसा आत्माका स्वरूप कहा है! कौन मरता है? आत्मा मरता है? तो अब चिंता किसकी है? यह सब जो दिखायी दे रहा है, इस सबका तो देर-सबेर नाश होना है। जो पराया है उसे छोड़े बिना छुटकारा नहीं है। छोड़ना ही पड़ेगा, ऐसे ज्ञानीपुरुषके वचन हैं, परंतु

"निश्चय वाणी सांभळी, साधन तजवां नो'य;
निश्चय राखी लक्षमां, साधन करवां सोय."

व्यवहारको त्याग कर शुष्कज्ञानीकी भाँति लूखे न बनें। यह स्याद्वाद है। खेद न करें। उदास (अनासक्त) रहें, उदासी (शोक) न रखें। अर्थात् समता, निर्लिप्तता, वैराग्य रखें, पर शोक, खेद, हाय-हाय न करें।

सामान्य गुणके छह बोल हैं उन्हें मौखिक याद कर लें। (१) अस्तित्व, (२) वस्तुत्व, (३) द्रव्यत्व, (४) प्रमेयत्व, (५) अगुरुलघुत्व, (६) प्रदेशत्व। ये अनुपूर्वी और (६) प्रदेशत्व, (५) अगुरुलघुत्व, (४) प्रमेयत्व, (३) द्रव्यत्व, (२) वस्तुत्व, (१) अस्तित्व—ये पच्छानुपूर्वी ऐसा बोला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। नींदमें भी फटाफट बोल सकें ऐसे इन छह बोलोंको मौखिक याद कर लें। अन्य कुछ भी समझमें न आये तो "हे भगवान! 'ताहरी गति तुं जाणे हो देव!' ऐसा महापुरुषोंने भी कहा है, तो मेरी क्या शक्ति है? पर तूने जो आत्मस्वरूप जाना है वह मुझे मान्य है; और मुझे भी जो यह दिखाई देता है, इष्टानिष्टपना क्षण क्षणमें लगता है, उसे अब मैं नहीं मानूँगा। हे प्रभु! तेरा मान्य किया हुआ मुझे प्राप्त हो, मुझे कुछ समझमें नहीं आता, पर तूने जाना है वह सत् है।" ऐसा आश्रयभाव रखना चाहिये। यह समकितका कारण है।

पहले हमने अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अगुरुलघु, गुण-गुणी, अव्याबाध आदि बोल याद किये थे, पर कुछ भी समझमें नहीं आता था। किन्तु वे आत्माके गुण हैं, बीजरूप हैं। सद्गुरुकी शरणसे जैसे जैसे समय बीता वैसे-वैसे इन पर विचार होता गया! द्रव्यत्व क्या? अगुरुलघुत्व किसे कहते हैं? उसके भेद? उन्हें न मानें तो क्या? ऐसे कई विचार उस परसे आते हैं और भवस्थिति आदि कारण प्राप्त होकर सम्यक्त्वका कारण बनता है। अतः इन बोलोंको याद कर रखें और इनके चिंतनमें रहें।

ये विचार लिख लेने योग्य हैं, क्योंकि ये आत्माके घरके हैं, आत्महितकारक हैं। अब इसी वस्तुकी शोधमें, विचारमें रहें। कर्मके उदयके कारण चित्तवृत्ति स्थिर न रहे और खिसक जाये, फिर भी उसे वापस उसमें लगायें। भावना यही रखें। भावना महान वस्तु है। जाग्रत रहनेकी आवश्यकता है। लोभको छोड़नेकी वृत्ति हुई तो ये पुद्गल कानमें पड़े।

★★★

कार्तिक सुदी ७, मंगल, सं.१९८४

परमकृपालुदेवकी कृपासे आनंद है! अहा! उनका उपकार कि उन्होंने सच्चे मार्ग पर आरूढ किया।

"मारग साचा मिल गया, छूट गये संदेह;
होता सो तो जल गया, भिन्न किया निज देह.

समज, पिछे सब सरल है, बिनू समज मुशकील;
ये मुशकीली क्या कहुं? ....

खोज पिंड ब्रह्मांडका, पत्ता तो लग जाय;
येहि ब्रह्मांडि वासना, जब जावे तब .....

आप आपकुं भुल गया, इनसें क्या अंधेर?
समर समर अब हसत है, नहि भूलेंगे फेर.

जहां कलपना–जलपना, तहां मानुं दुःख छांई;
मिटे कलपना–जलपना, तब वस्तू तिन पाई.

हे जीव! क्या इच्छत हवे? है इच्छा दुःखमूल;
जब इच्छाका नाश तब, मिटे अनादि भूल."

इसमें क्या मर्म छिपा हुआ है? किसी विरलेको ही वह समझमें आयेगा। उनके आश्रयसे रहनेवालेका भी कल्याण है। जो कोई उनको माननेवाला हो उसके तो हम दास हैं। अब तो बुढ़ापा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आया है, अतः प्रभु! मृत्यु बार बार याद आती है। यद्यपि गुरुकृपासे मृत्युका भय नहीं है, खेद नहीं है या आर्त्तध्यानका कारण नहीं है। शरीरका स्वभाव तो सड़ना, गलना और विनष्ट होना है। उसमें पर्यायदृष्टि रखकर यह जीव 'मेरा मेरा' कर बँधा हुआ है। वैसे तो गुरुकृपासे संसार, स्त्री-बच्चे, धन, व्यापार आदि तो सहज ही छूट गया है, किन्तु सर्व प्रकारसे असंग 'तेवो स्थिर स्वभाव ते ऊपजे रे' ऐसा बननेकी आवश्यकता है। पर उसके लिये आवश्यक सामग्री कहाँ है? अतः जाग्रत रहनेकी आवश्यकता है।

निमित्त अच्छा बनायें। यहाँ आये तो पुण्ययोगसे कुछ बात कानमें पड़ी। लाखों रुपयोंका यह धन हैं। मनुष्यभव मिलना महा दुर्लभ है। भले ही वह रोगी हो, अशक्त हो, स्त्री हो, पुरुष हो, पर यदि मनुष्यभव हो तो समझा जा सकता है। महाभाग्यके उदयसे सत्पुरुषका योग मिलता है। एकदेशी(सत्संगी)का योग भी कहाँसे मिले! अभी पुराणका वाचन हो रहा है, इसमें यही बात बारंबार आती है कि किसी सत्पुरुषका योग मिला और जीवकी दिशा बदल गयी। जैसे कहींकी हवा अच्छी हो तो रोग मिट जाता है और किसी किसी स्थानकी हवासे रोग फूट निकलता है, वैसी ही सत्पुरुषके योगबलकी बात है। भरतका जीव सिंह था तब उसे जातिस्मरण हुआ था किसी चारण मुनिके प्रतापसे! दूसरे चार जीव भरतके भाई होनेवाले थे—बंदर, सूअर, बाघ और नेवला—वे भी जातिस्मरणज्ञानको प्राप्त हुए, वह भी मुनियुगलका प्रभाव! महावीर स्वामीके जीवको भी सिंहके भवमें सम्यक्त्व हुआ, वह दो चारण मुनियोंकी कृपासे! यों स्थान-स्थान पर जीवका महापुरुषोंके योगसे कल्याण हुआ है।

क्रोधसे क्या क्या होता है तथा पुण्यके योगसे क्या क्या होता है—वह इस 'उत्तरपुराण'में चंदनाके जीवकी पूर्वभवकी कथामें आता है। मृत्युके दुःखके समय परिणाम स्थिर रखें, जागृति रखें।

मुनि मोहन०—प्रभु! मृत्युके समय किसी जीवको ध्यान रहे और किसीको न भी रहे, पर उस समय क्या अवश्य कर लेना चाहिये? किस वस्तुमें उपयोगको जोड़ना चाहिये? क्या लक्ष्य रखना चाहिये?

प्रभुश्री—प्रश्न बहुत अच्छा किया है। सत्य बात तो ज्ञानी जानते हैं, पर हमारी बुद्धिमें जो आता है उस पर विचार करनेके लिये इस बातको ध्यानमें लेवें।

अभी जिसका वाचन चल रहा है, उसमें एक बात है। एक विद्याधरने राक्षसविद्या साधकर एक द्वीपका पूरा गाँव उजाड़ दिया। वहाँ तीन वणिकपुत्र जहाजको लेकर आ पहुँचे। उनमेंसे एक शहरमें गया पर उसे कोई मिला नहीं, मात्र एक राजकुमारी मिली। उससे उसने सब बात जानी। उसने वहाँ पड़ी एक तलवार उठायी और जब वह राक्षसी विद्याधर आया तब तलवारसे उसे मार डाला। मरते-मरते वह नवकारमंत्र बोला, जिससे उस श्रावकपुत्रको पछतावा हुआ कि मैंने अपने धर्मबंधुकी ही हत्या कर दी। उसने उससे क्षमा माँगी। उसने कहा कि क्रोधके वश होकर मैंने पूरा नगर उजाड़ दिया, पर मैं श्रावक हूँ। क्रोधके फल बुरे होते हैं ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है वह सच है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहनेका तात्पर्य यह कि ऐसा पापकर्म करनेवालेको भी अंतमें मरते-मरते भी जो श्रद्धा थी तदनुसार स्मरण करनेका सूझा। अतः जो पहलेसे ही पुरुषार्थ किया होगा वह अंतमें काम आयेगा।

दूसरे, जीव क्षण क्षण मर रहा है। 'क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो! राची रहो?' भगवानने कहा है कि 'समयं गोयम मा पमाए।' अतः क्षण क्षण मृत्युको याद करते रहना चाहिये। यदि ऐसी मृत्युकी तैयारी कर रखी होगी तो काम आयेगी, अंत समयमें आकर उपस्थित हो जायेगी। हमें कृपालुदेवने भी सं.१९५१के वर्षमें पत्र लिखा था कि मृत्युके पहले तैयारी कर लेनी चाहिये और मृत्युके समय तो अवश्य वैसा करना चाहिये। कर्मकी गति विचित्र है! श्रेणिक राजा और कृष्ण महाराज भी क्षायिक समकितके धारक थे तथा मृत्युके समय भी, भगवानका कथन अन्यथा नहीं हो सकता ऐसा मानते थे। मारनेवाले जराकुमारको श्रीकृष्णने कहा–"जा, चला जा, नहीं तो बलदेव आकर तुझे मार डालेगा।" पर उसके दूर जाते ही लेश्या बदली, विचार आया कि अनेक संग्रामोंमें जो अविजित रहा उसे मारकर शत्रु यों ही जा रहा है! ऐसा विचार आया। गतिके अनुसार मति हुई या मतिके अनुसार गति हुई, कुछ भी कहो। पूर्वकालमें नरकका आयुष्य बँध चुका था जिससे वैसी लेश्या आकर खड़ी हो गई।

कहना तो न चाहिये, पर समझनेके लिये कहता हूँ। हम यहाँ पाट पर शामको सब दरवाजे बंद करके बैठते हैं। सोचते हैं मानो मर गये थे, धर्मके सिवाय अब कोई बात नहीं करनी है। जब तक उस विचारका बल चलता है तब तक थोड़ी देर तो निर्विघ्न रहा जाता है पर थोड़ी देर बाद गोला आकर धडाकसे गिरता है! और होता है कि अरे! तुझे किसने बुलाया था? पर सद्गुरुशरणसे उसे विघ्नकर्ता जानकर दूर कर देते हैं, अन्यथा उसी विचारमें बहकर प्रसन्नचंद्र राजर्षिकी भाँति जीव कहाँसे कहाँ पहुँच जाता है!

पूर्वबद्ध कर्म हमें या इन्हें–सबको (उदयमें) आये बिना नहीं रहेंगे। जो अध्यास हो गया है उसमें पुरुषार्थ करने पर कमी आती है और दूसरा हो जाता है। अच्छे या बुरे कर्म, साता या असाता धूप-छाँवकी तरह आयेंगे ही। पर पुण्य या पाप किसीकी आवश्यकता नहीं है ऐसा मानें। समकिती पुण्यक्रिया करता है मगर इष्ट समझकर नहीं करता। किसी राजाने हजार रुपयेका दंड किया हो फिर भी यदि वह पचास रुपये देनेसे निबटता हो तो प्रसन्न होनेकी बात है, पर दंड कुछ इष्ट वस्तु नहीं है। वैसे ही समकिती पुण्यक्रियामें, भक्तिमें उल्लास रखता है, फिर भी वह क्रिया भी अंतमें छोड़नी है ऐसा मानता है, शुभ बंधका कारण मानता है। इष्ट तो मोक्षका भाव ही है।

***

आश्विन, सं. १९८५

दीवाली पर *तीन दिनमें १०८ माला फेरनी चाहिये। एक साथ १०८ फेरनी हों तो वैसा करें--तीन प्रहर जाग कर करें। वैसा न कर सकें तो पक्खीके दिन अर्थात् चतुर्दशीके दिन ३ माला 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' मंत्रकी, २८ माला 'परमगुरु निर्ग्रंथ सर्वज्ञदेव' मंत्रकी और ५ माला

* सं. १९८६ में प .पू. प्रभुश्रीजीने तीनके बदले चार दिन अर्थात् तेरस, चौदस, दीवाली और प्रतिपदाकी रातको छत्तीस-छत्तीस मालाएँ फेरनेका क्रम बताया था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे' मंत्रकी यों ३६ माला फेरनी चाहिये। इतनी ही (३६) माला दीवालीके दिन शामको और ३६ प्रतिपदाकी शामको। यों १०८ माला तीन दिनमें फेरें।

इन छत्तीस माला तक भी यदि कोई सामायिककी तरह स्थिरतासे न बैठ सके तो सुबह-शाम मिला कर ३६ माला फेर लें। यों १०८ माला मात्र समाधिमरणकी इच्छासे फेरें। किसी भी प्रकारकी इस लोक-परलोककी इच्छा-निदान न करें, तीनों दिन यथाशक्ति तप करें। उपवास, एकासन या नीरस आहारसे चलावें तथा ब्रह्मचर्यका पालन करें। तीनों दिन शुभभावनामें बितायें तो वह समाधिमरणकी तैयारी है।

'जैन व्रत कथा'में जैसे अनेक दुःखी लोगोंने दुःखसे छूटनेके उपाय पूछे हैं और साधु मुनियों द्वारा बताये गये व्रतसे लाभान्वित हो कर जैसे कल्याण प्राप्त किया है, वैसे ही यह व्रत भी वैसा ही है। प्रतिदिन--तीनों ही दिन 'आत्मसिद्धि' आदिका नित्यक्रम भी चालू रखें।

★★★

अषाढ़ वदी ३०, मंगल, सं.१९८८, ता.२-८-३२

आत्मा उपयोगस्वरूप है। उपयोग सदा ही, निरंतर है। इस उपयोग पर भी उपयोग रखना है। सूर्य-चंद्र बादलमें छिप जाने पर दिखायी नहीं देते, पर वे हैं ऐसी प्रतीति है; इसी प्रकार शुद्ध स्वरूप है, यह प्रतीति भूलने योग्य नहीं है। उपयोग छूट जाता है यह भूल महावीर स्वामीने देखी। इसे उन्होंने स्थान-स्थान पर आगमोंमें उपदिष्ट किया है। यही सब भूलोंकी बीजभूत भूल है।

★★★

कार्तिक सुदी ४, सं.१९८९

समभाव! **'कडेमाणे कडे!'** सम्यक्त्वके पहले भी समभावकी प्राप्तिके लिये समभाव रखनेका अभ्यास करनेसे तद्रूप हुआ जा सकता है, उसका--अभ्यासके समयके समभावका--वैसा फल। पर ज्ञानीकी कृपासे भावसमताकी प्राप्तिके लिये पुरुषार्थकी आवश्यकता है। यह भूलने योग्य नहीं है।

★★★

कार्तिक सुदी ११, सं.१९८९

"वस्तुस्वभाव विचारते, शरण आपकूँ आप;
व्यवहारे पण परमगुरु, अवर सकल संताप."

"व्यवहारसे देव जिन, निहचेसें है आप;
एहि बचनसे समझ ले, जिनप्रवचनकी छाप."

इस प्रकार निश्चय सद्गुरु अपना आत्मा ही है।

*"**अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।**" आत्मा ही दुःखका और सुखका कर्त्ता है। सद्गुरु तो उपदेश देकर रुक जाते हैं। 'ब्राह्मण ब्याह करा देता है, पर घर तो नहीं चला देता।' यदि स्वयं उपदेशानुसार प्रवृत्ति न करे और उलटा चले तो सद्गुरु क्या करेंगे? 'जब जागेंगे

* उत्तराध्ययन अध्ययन २०, गाथा ३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आतमा, तब लागेंगे रंग।' अपना आत्मा ही बोधको भी ग्रहण करनेवाला है। जब वह पुरुषार्थमें जुट जायेगा, तभी काम बनेगा। "आप ही तारिये, आप ही सब करेंगे' ऐसा हमने कृपालुदेवसे कहा। उत्तरमें उन्होंने कहा कि इतना तो आपको स्वयं करना पड़ेगा–वासना, रागद्वेष छोड़ने पड़ेंगे। इसे और कोई नहीं कर देगा। स्वयं ही पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

★★★

माघ सुदी १२-१३ मंगल-बुध, सं.१९८९

आज्ञा अर्थात् क्या?

सत्पुरुष पर ऐसी श्रद्धा कि जो वे कहते हैं वह सत्य है। उन पर प्रेम हो, उनके वचनका श्रवण हो, सुनकर उसे सत्य माने और तदनुसार प्रवर्तनके भाव हो–इस प्रकार भावका पलटना ही आज्ञा है।

★★★

चैत्र वदी ४, सं.१९८९

'जगत आत्मारूप माननेमें आये'। परको पुद्गल समझकर आत्माको देखना। देखनेवाला (आत्मा) हो तो देखा जाता है। उसे भूलकर देखनेका अभ्यास है उसे बदल डाले। दृष्टिपरिवर्तन करना होगा।

★★★

ज्येष्ठ वदी १३, सं.१९८९ ता.२०-६-३३

'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' मंत्रका स्मरण निरंतर करना चाहिये। अभी यह तो हो सकता है। फिर जो बाकी रहता है वह भी अवश्य प्राप्त होगा।

★★★

श्रावण वदी ३०, सोम, सं.१९८९, ता.२१-८-३३

['समयसार'के आस्रव अधिकारके वाचनमें 'ज्ञानी किस कारणसे कहे जाते हैं?' इस प्रश्नके प्रसंग पर]

इसका क्या मर्म है? क्या रहस्य छिपा है?

सत्पुरुष पर श्रद्धा हो, शास्त्रके वाचनसे वह श्रद्धा पुष्ट हो और आत्माको पहचाननेकी जीवको उत्सुकता हो, तब सत्पुरुषके बोधसे ऐसी श्रद्धा होती है कि यह आत्माका स्वरूप है। अर्थात् ज्ञानीको आत्माकी श्रद्धा है, वैसी श्रद्धा होना ही सम्यक्त्व है। इसी कारणसे वे ज्ञानी कहलाते हैं और उन्हें निरास्रव कहा गया है।

★★★

भाद्रपद सुदी १३, सं.१९८९, ता.१-९-१९३३

['समयसार'के बंध अधिकारके वाचनमें 'अभव्यको ग्यारह अंग पढ़ने पर भी सम्यक्त्व नहीं होता' इस प्रसंग पर]

दुःख आदि प्रसंगोंमें देखनेवाला मैं हूँ, कर्मफलरूप दुःख तो शरीरमें है–ऐसा भेदज्ञान सद्गुरु द्वारा नहीं हुआ जिससे ग्यारह अंगका अभ्यास निष्फल हुआ। दुःख आदिके समय देखनेवाला अलग रहे तो समकित है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्विन वदी ७, सं.१९८९

['उत्तराध्ययन'के 'मोक्षमार्ग गति' अध्ययनमें सामायिकके स्वरूपके वाचन प्रसंग पर]

बहुत बार सुना होगा, पर सामायिकका स्वरूप क्या है?

आत्मा, समताभाव, सम—यह सामायिक है। पहले कभी नहीं कहा। यह वचन निकल गया है वह सर्व शास्त्रोंका, आत्मसिद्धि आदि सर्व साधनोंका सार है! वही मोक्षका मार्ग है। इन दो अक्षरोंमें सब समा गया है। किसीको कहें तो 'ओहो!' में निकाल दे कि 'इसका तो हमें भी पता है।' पर सब मतांतर, आग्रह छोड़कर यही ग्रहण करने योग्य है।

★★

कार्तिक वदी १, शुक्र, सं.१९९०

['उत्तराध्ययन'में केशीस्वामीने गौतमस्वामीसे प्रश्न किया है कि 'यह भयंकर अश्व तुम्हें उन्मार्ग पर क्यों नहीं ले जाता?' उस प्रसंग पर]

एक श्रद्धा करने योग्य है कि इस सत्पुरुषने आत्माको जाना है वह मुझे मान्य है। अन्य चाहे जैसे विकल्प आयें, उसका पता लगता है, अतः वह जाननेवाला उन सबसे अलग सिद्ध होता है। उसे जाननेवालेको मानें। सद्गुरुने कहा है वैसा उसका स्वरूप है। मुझे अभी भान नहीं है तो भी मुझे और कुछ नहीं मानना है, यह तो मेरे हाथकी बात है। ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाय तो, जो संकल्प-विकल्प, सुख-दुःख आते हैं वे जानेके लिये ही आते हैं। भले ही दुगुने आयें पर उन्हें स्वीकार नहीं करना है—इतनी श्रद्धा होनी चाहिये। दर्पणमें सामनेके पदार्थ दिखायी देते हैं, पर दर्पण दर्पणरूप ही है; वैसे ही चाहे कुछ भी मनमें आये, तो भी आत्मा आत्मारूप ही है, अन्य सब पहलेके कर्मके उदयरूप भले ही आयें—वह सब तो जानेवाला ही है, पर आत्माका कभी नाश होनेवाला नहीं है—उसमें माथापच्ची करने जैसा, इष्ट-अनिष्ट मानकर हर्षशोक करने जैसा कुछ नहीं है। इतनी आयु होने तक अनेक सकंल्प-विकल्प हो गये, पर कोई रहे नहीं, सब गये। अतः नाशवान वस्तुकी क्या चिंता? जो अपने आप ही नाश होनेवाली है, उससे घबराना क्या? फिकरकी फाकी मार लेनी चाहिये। स्मरणका अभ्यास विशेष रखें। संकल्प-विकल्प आते ही स्मरणके शस्त्रका प्रयोग करना चाहिये और समझना चाहिये कि अच्छा हुआ जो मुझे स्मरण करनेका निमित्त प्राप्त हुआ, अन्यथा प्रमाद होता। सद्गुरुने जो मंत्र दिया है वह आत्मा ही दिया है। उसे प्रकट करनेके लिये प्रेमकी आवश्यकता है। प्रेममें सब आ गया। चलते-फिरते, उठते-बैठते एक आत्माको ही देखें। [1]मूर्ख हो वह दूसरा देखेगा। ऐसा दृढ़ अभ्यास हो जाय तो फिर जो उदयमें आये वह कुछ हानि नहीं करता, मरने आता है, फिर उसको कुछ चिंता नहीं है।

★★

पौष सुदी, १२, सं.१९९०, ता.२८-१२-३३

जीवने आज्ञाका पालन नहीं किया है। बीस दोहे, क्षमापनाका पाठ, 'हे परमकृपालुदेव! जन्म-जरा-मरणादिका नाश करनेवाला' यह पत्र, 'वीतरागका कहा हुआ परम शांतरसमय धर्म'—यह सब

---

१. मूल गुजराती पाठ—बेट्टो होय ते बीजुं जुए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामान्य बना दिया है। 'आत्मसिद्धि'में चमत्कार है। 'कर विचार तो पाम।' योग्यताकी कमी है।

★★★

माघ वदी ६, सं.१९९०, ता.५-२-१९३४

प्रभुश्री—कुछ पूछना हो तो पूछिये।

मुमुक्षु—मुझे क्या करना चाहिये?

प्रभुश्री—तुझे क्या करना चाहिये?

(थोड़ी अन्य बात होनेके बाद) सब शास्त्रोंका सार यही है कि 'ब्रह्मचर्य'का पालन करें। इससे योग्यता आदि सब मिल जायेगा। जिसकी एक यही इच्छा रही उसे वह प्राप्त हो जायेगा। आत्मामें विषय विकार आदि कुछ नहीं है। दो ही वस्तु हैं—जड़ और चेतन। परको स्वस्वरूप या अपना मानना ही व्यभिचार है।

★★★

चैत्र सुदी १४, गुरु, सं.१९९०

कैसे छूटा जाय? क्या साधन है? वहाँ कैसे जाया जाय?

भाव तो सदा साक्षात् प्रत्यक्ष ही है। भावसे बंधन या मोक्ष होता है। उस भावको पहचान लेना जरूरी है। मुनि मोहनलालजीको अंत समयमें बहुत वेदना थी, फिर भी पहचान हुई हो तो भाव तो साथ ही था। सत्पुरुषसे सुनी हुई यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात है, किन्तु समझ चाहिये, पहचान चाहिये।

★★★

ज्येष्ठ वदी १४, सं.१९९०, ता.१०-७-१९३४

'सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके सिवाय मेरा कुछ भी नहीं है।' यह ज्ञानीका कथन मान्य करनेकी प्रतिज्ञा कर्तव्य है। यही बारंबार चिंतन करने योग्य है।

★★★

माघ वदी १०, सं.१९९१, ता.२८-२-१९३५

आत्मदृष्टिके प्रति प्रेम, सावधानी रखें। सत्पुरुषके बताये बिना ऐसा नहीं हो सकता। बोधकी जरूरत है। सत्पुरुषके पास अजब चमत्कारी कला है! आत्मा किस समय नहीं है? उसे भूलना योग्य नहीं। शूरवीर होनेकी जरूरत है। 'एक मरजिया सौको भारी।' इसी प्रकार आत्माकी स्मृति अनेक कर्मोंका नाश करनेवाली है। स्मरण करते रहनेकी आदत डालें। बोध है वही गम है।

★★★

भाद्रपद सुदी ६, बुध, सं.१९९१

आत्माको देखें। श्रेणिक राजाको अनाथीमुनिसे यही दृढ़ता हुई थी। परमकृपालुदेवने हमसे यही कहा था। उसमें स्वयं भी आ गये, ऐसा कहा था। और वह दृढ़ता होनेसे परदा दूर हो गया। मीठी कुईका पानी प्यास बुझाता है। खारा समुद्र पूरा भरा हुआ हो तो भी कुछ कामका नहीं।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्विन सुदी २, रवि, सं.१९९१, ता.२९-९-१९३५

संजोग सब छोड़ने है। आत्माको देखें। एकांतमें कहने योग्य कह रहा हूँ। संयोगोंको मानकर जीव भूला है। बीस दोहें, क्षमापनाका पाठ, आलोचना, छह पदका पत्र, आत्मसिद्धि, देववंदन—ये अपूर्व वचन हैं! इन्हें कण्ठस्थ कर लें। प्रमाद न करें। देववंदनके श्लोकोंका अर्थ समझें।

सब आत्मा हैं, स्त्री-पुरुष, छोटा-बड़ा नहीं देखना है। सत्पुरुषकी प्रवृत्ति छूटनेके लिये होती है। वे करें वैसा न करें, कहें वैसा करें। एक दिन सबको मरना है। अतः प्रमादका त्याग करें। जो करेंगे उनके बापका है। सत्पुरुषके वचन मुँहसे बोलते रहेंगे तो भी हितकारी है। भाव और परिणाम ही अभी हाथमें हैं। उन्हें अशुभमें लगायेंगे तो पाप बँधेगा और शुभमें लगायेंगे तो पुण्य बँधेगा, शुभगति होगी; और आत्मभावमें लगायेंगे तो जन्म-मरण टलेंगे। यह अवसर चुकने योग्य नहीं है। सबका कल्याण होगा। सम्यक्त्वके सिवाय किसीकी इच्छा न करें।

★★★

कार्तिक वदी ९, सं.१९९२, ता.१९-११-१९३५

अब बयासी वर्ष हो गये हैं। अंतिम सीख। मघा नक्षत्रका पानी टंकियोंमें भरकर रखते हैं, वैसे ही ज्ञानीका कथन जो मैं कह रहा हूँ, उसे लक्ष्यमें रखेंगे तो काम बन जायेगा। वह ज्ञानी और यह ज्ञानी ऐसा न करें। किसीकी निंदा न करें। पर एकमात्र परमकृपालुदेवकी श्रद्धा रखें। उनके द्वारा बताये गये स्मरणको मृत्युके समय जब तक भान रहे तब तक हृदयमें रखें। यह असंग, अप्रतिबंध होनेका मार्ग है। मार्ग दो अक्षरमें समाया हुआ है। 'ज्ञान' ये ही वे दो अक्षर हैं। ज्ञानमें सब समाया हुआ है। पत्र ४३० अमृततुल्य है। जो कुछ करना है वह आत्मार्थके लिये करना है। "मैंने आत्माको नहीं जाना है, पर ज्ञानी परमकृपालुदेवने निःशंकतासे आत्माको जाना है वैसा ही मेरा आत्मा है। मुझे उसकी पहचान नहीं हुई है, पर उसकी मैं भावना करता हूँ।" ज्ञानीने देखा है वैसे आत्माकी भावना करते-करते केवलज्ञान प्राप्त होता है। छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरुष, वृद्ध-युवान, रोगी-नीरोगी दिखायी देते हैं वे तो शरीर हैं, उसे नहीं देखना चाहिये। ज्ञानीने देखा है वैसा आत्मा है। उसीके लिये मैं धर्म आदि करता हूँ, देवलोक आदि इंद्रियसुखके लिये कुछ नहीं करना है। आज तक धर्मके नाम पर जो कुछ किया हो वह सब व्यर्थ हो जाओ! अब तो आत्माके लिये करना है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशसंग्रह—३

ता. ३-११-१९३३

मुमुक्षु—कषाय, संकल्प-विकल्प आदिसे अंतरंगमें होनेवाली जलन (उद्वेग)को शांत करनेका उपाय क्या?

प्रभुश्री—मनमें संकल्प-विकल्प होते हैं जिससे जलन होती है। पर हम जो यह उपाय बता रहे हैं वह रामबाण है। यदि उसे श्रद्धापूर्वक मान्य किया जाय तो मान्य करनेवालेका अवश्य कल्याण होगा। पर जीवको विश्वास होना चाहिये, श्रद्धा होनी चाहिये। यहाँ पर हम जो कह रहे हैं उस पर जो कोई श्रद्धा रखकर मान्य करेगा उसका काम बन जायेगा।

देवदेवीकी मान्यता अथवा यह ज्ञानी है, यह गुरु है ऐसी अपनी कल्पनाको छोड़कर एक सच्चे सद्गुरुपर दृढ़ रहें।

मनमें संकल्प-विकल्प आते हैं उससे भले ही दुगने आये! परंतु वे संकल्प-विकल्प किसे आये? मुझे। ऐसा कहनेवाला 'मैं' तो संकल्प-विकल्पसे केवल अलग हूँ; मैं और वह एक नहीं। आकाश और पातालमें जितना अंतर है उतना ही अंतर उसमें और मुझमें है। मन, चित्त, विषय, कषाय—ये सब जड़ हैं। उसमें अहं और ममत्वकी जो मान्यता थी वही मिथ्यात्व या अज्ञान। मैं उन सबको जाननेवाला, सबसे भिन्न आत्मा हूँ। अब इतनी ही मान्यता कर जिसका उस पर दृढ़ विश्वास होगा, उसका काम बन जायेगा। इतने लोग यहाँ बैठे हैं, पर जो सुनकर तदनुसार मान्य कर, दृढ़ श्रद्धापूर्वक प्रवृत्ति करेंगे, उनका काम हो जायेगा।

मैं तो उस मनसे, संकल्पसे, विकल्पसे, कषायसे, देहसे, स्त्रीसे, पुत्रसे, धनसे, धान्य आदि सबसे केवल भिन्न हूँ। रोग हुआ हो, रहा न जाता हो तो भी ऐसा समझे कि जिसका निकट संबंध हो वही स्वयंको दिखायी देता है। जैसे पड़ौसीका घर जलता हो तो अपने घरमेंसे ज्वाला दिखायी देती है, वैसे ही व्याधि, रोग, शोक, खेद, कषाय, विषय ये सब पुद्गलमें हो रहे हैं। देहका धर्म देह करती है, मनका धर्म मन करता है, वचनका धर्म वचन करता है, वह सब पुद्गल है। मैं आत्मा इन सबसे अलग हूँ। मात्र उनको देखनेवाला, जाननेवाला हूँ। उसके नाशसे मेरा नाश नहीं है। शरीरमें साता या असाता होनेसे मुझे साता या असाता नहीं है। चाहे जो भी हो, चाहे तो नरक-तिर्यंच गति हो, चाहे मृत्यु आ जाये; पर यह श्रद्धा अचल रहो कि मैं उन सबसे भिन्न हूँ, मात्र देखने-जाननेवाला आत्मा हूँ। उस आत्माको एक ज्ञानीने जाना है, मैं वैसा हूँ। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुखमय मेरा जो स्वरूप है उसे यथातथ्य ज्ञानी सद्गुरु भगवानने जाना है। जिस आत्मस्वरूपको श्री सद्गुरुने जाना है, देखा है, अनुभव किया है वैसा ही पूर्वमें हुए सर्व ज्ञानियोंने देखा है, जाना है, अनुभव किया है। मेरा और सभी जीवोंका शुद्धस्वरूप उन ज्ञानियोंने जाना है, वैसा ही है। वही मुझे मान्य है। वही मेरा है। उसीमें मुझे प्रेम, प्रीति, स्नेह, भक्ति, भाव करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य है। वही मुझे प्राप्त करने योग्य है, चाहने योग्य है, अनुभव करने योग्य है, उसीमें तल्लीनता करना योग्य है।

ऐसी श्रद्धापूर्वक जिसे मान्यता हो गयी है वह प्रत्येक प्रसंगमें—सुखमें, दुःखमें, आधिमें, व्याधिमें या संकल्प-विकल्पमें एक आत्मभावनामें ही रह सकता है, अपना और परका भेद कर सकता है।

"जड ने चैतन्य बन्ने द्रव्यनो स्वभाव भिन्न,
सुप्रतीतपणे बन्ने जेने समजाय छे;
स्वरूप चेतन निज, जड छे संबंध मात्र,
अथवा ते ज्ञेय पण परद्रव्यमांय छे."

जिसको ऐसी श्रद्धापूर्वक मान्यता निरंतर रहती है और परोक्ष आत्मभावनामें जागृत रहता है, उसे सर्व व्रत, नियम आदि आ जाते हैं। उसे कषायादि सर्व जो कुछ आता है वह छूटनेके लिये ही आता है।

"श्री तीर्थंकरादिने बार-बार जीवोंको उपदेश दिया है; परंतु जीव दिग्मूढ़ रहना चाहता है, वहाँ उपाय नहीं चल सकता। पुनः पुनः ठोक-ठोककर कहा है कि एक यह जीव समझ ले तो सहज मोक्ष है, नहीं तो अनंत उपायोंसे भी नहीं हैं। और यह समझना भी कुछ विकट नहीं है, क्योंकि जीवका जो सहज स्वरूप है वही मात्र समझना है; और वह कुछ दूसरेके स्वरूपकी बात नहीं है कि कदाचित् वह छिपा ले या न बताये कि जिससे समझमें न आवें। अपनेसे आप गुप्त रहना किस तरह हो सकता है? परंतु स्वप्नदशामें जैसे न होने योग्य ऐसी अपनी मृत्युको भी जीव देखता है, वैसे ही अज्ञानदशारूप स्वप्नरूप योगसे यह जीव अपनेको, जो अपने नहीं है ऐसे दूसरे द्रव्योंमें निजरूपसे मानता है; और यही मान्यता संसार है, यही अज्ञान है, नरकादि गतिका हेतु यही है, यही जन्म है, मरण है, और यही देह है, देहका विकार है, यही पुत्र है, यही पिता, यही शत्रु, यही मित्रादि भावकल्पनाका हेतु है; और जहाँ उसकी निवृत्ति हुई वहाँ सहज मोक्ष है; और इसी निवृत्तिके लिये सत्संग, सत्पुरुष आदि साधन कहे हैं; और वे साधन भी, यदि जीव अपने पुरुषार्थको छिपाये बिना उनमें लगाये तभी सिद्ध होते हैं।

अधिक क्या कहे? इतनी संक्षिप्त बात यदि जीवमें परिणमित हो जाये तो वह सर्व व्रत, यम, नियम, जप, यात्रा, भक्ति, शास्त्रज्ञान आदि कर चुका, इसमें कुछ संशय नहीं है।" (५३७)

***

फाल्गुन सुदी ९, सं. १९९० ता. २२-२-३४

जीवको करने योग्य क्या है?

बुरा किया हो तो वह प्रेम-प्यार है, उसीने किया है। उस प्रेमको संसारमें जहाँ-तहाँ बिखेर दिया है। वहाँसे वापस लौटाकर किसी एक ही स्थान पर—ज्ञानीमें करना योग्य है।

वैराग्यको बढ़ाना उचित है। रामचंद्रजीने वसिष्ठगुरुसे कहा कि—"यह संसार, भोग आदि सर्व पदार्थ जो त्रिविध तापके कारण हैं, उनसे मेरे मनको शांति प्राप्त नहीं होती। वे सर्व जन्म-मरण आदि दुःखके कारण हैं। आप निरंतर सत्शांतिमें रहते हैं, अतः आपके पास शांतिमें रहनेकी कोई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कला है, वह मुझे बतायें। यदि नहीं बतायेंगे तो खाना-पीना, चलना-फिरना, बोलना-चालना आदि सर्व प्रवृत्तियोंको मैं बंद कर दूँगा। ये श्वासोच्छ्वास भी अपने आप ही पूरे हो जायेंगे। अतः जिससे मुझे शांति हो, वह बतायें, तो वैसा करूँ।"

क्या चाहिये? ऐसा वैराग्य चाहिये। जीवको अभी इसकी चिंता ही कहाँ हुई है? इच्छा ही कहाँ है? जीवने समागममें मान्यता की है। पर अभी वह मान्यता यथातथ्य सच्ची कहाँ है? क्या माना है? क्या मानना है? यह मानना बहुत कठिन है।

वैराग्य कैसे आये? पुरुषार्थसे। पुरुषार्थ करे तो वैराग्यको बुलाने नहीं जाना पड़ेगा। कोई जीव इतना-सा एक ही वचन पकड़कर पुरुषार्थ किये जाय तो उसका काम बन जाय। पुरुषार्थ करें। जिन्होंने पुरुषार्थ किया है वे ही मोक्ष गये हैं। विषय-विकार लेकर कोई मोक्ष नहीं गया।

इतने शेष भवमें चाहे देह त्याग हो जाय, चाहे जो हो जाय, पर यही करना है। भवस्थिति या अन्य कोई कल्पना नहीं करनी है।

मुमुक्षु–क्या पुरुषार्थ करे?

प्रभुश्री–पुरुषार्थ सत् और शील है। सत् अर्थात् आत्मा। आत्माके संबंधमें ही बात, विचार, लक्ष्य यह सत्, और शील अर्थात् ब्रह्मचर्य।

ब्रह्मचर्यका यथार्थ स्वरूप तो ज्ञानीने ही जाना है, पर यदि द्रव्यसे भी पाला जायेगा तो वह महान लाभका कारण है। मन, वचन, कायासे पाले। पालनेवाला नहीं जानता, पर नियम दिलानेवाला सच्चा ज्ञानी है, वह जानता है। अतः सुप्रत्याख्यान होनेसे काम हुए बिना नहीं रहेगा।

ज्ञानीके वचनोंमें आगम समा जायें ऐसा परमार्थ होता है। अतः जीव ज्ञानीका एक भी वचन पकड़कर प्रवृत्ति किये जायेगा तो उसका कल्याण होगा।

छोड़ना पड़ेगा। त्याग-वैराग्य तो चाहिये ही। छोड़े बिना कोई मोक्ष नहीं गया। कल्पनाएँ, मान्यताएँ छोड़नी पड़ेगी।

चक्रवर्ती वचन बोले, वासुदेव वचन बोले या कोई राजा वचन बोले वे उन सबके पुण्यानुसार मान्य किये जाते हैं–महत्त्वके लगते हैं, समान नहीं गिने जाते। तब ज्ञानीके वचन तो उससे भी अधिक अपूर्व माहात्म्यवाले हैं। उनका माहात्म्य नहीं लगा है। प्रत्यक्ष पुरुषका सामान्यपना हो गया है। कल्पना होती है कि कुछ तीर्थंकरके वचन हैं? किसी गणधरके हैं? पर इसका पता नही हैं; सब कुछ है। गणधर कौन? तीर्थंकर कौन? आत्मा क्या? यह जाना है?

★★★

ता. २३-२-३४

वैराग्यके निमित्तसे वैराग्य होता है। सत्संग वैराग्यका निमित्त है। विषय विकारके निमित्तसे वैराग्य नहीं होता, पर विकार होता है। यहाँ सत्संगमें ज्ञानीपुरुषके वचनोंका वाचन होता है, विचार होता है, तब क्या होता है? भव कट जाते हैं, हजारों भव नष्ट हो जाते हैं।

जीवको माहात्म्य नहीं लगा है। लौकिकभाव कर डाला है। सामान्यता हो गई है। पहचान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हुई है। पहचान हो तभी माहात्म्य लगता है। तभी काम होता है। 'जे लोकोत्तर देव नमुं लौकिकथी' ऐसा हो गया है।

"जन्म मरण किसके है? जो तृष्णा रखता है उसके।"

यह ज्ञानीके वचनोंका वाचन हो रहा है, विचार हो रहा है, वहाँ अपूर्व हित हो रहा है। पर माहात्म्य नहीं लगा है, जिससे अपूर्व भाव नहीं आते। सावधान हो जाना चाहिये। कालका भरोसा नहीं है। पक्षीका मेला है। घर, कुटुंब, धन, धान्यादि कुछ भी तुम्हारे नहीं है। सुई तक भी साथमें नहीं ले जा सकते। शरीर भी तुम्हारा नहीं है। आत्माको पहचान लेनेका अवसर आ गया है। देहादिके लिये जितनी चिंता रखते हैं, उससे अनंतगुणी चिंता आत्माके लिये रखनी चाहिये।

यह (आश्रम) तीर्थक्षेत्र क्यों है? यहाँ आत्माकी ही बात होती है। सबसे पहले आवश्यकता किसकी है? श्रवणकी। 'सवणे नाणे विन्नाणे।' सुननेसे विज्ञान (विशेषज्ञान) प्राप्त होता है। सत्संगमें बोध सुननेको मिलता है। सत्संगमें अलौकिक भाव रखने चाहिये। जब लौकिक भाव हो जाते हैं तब अपूर्व हित नहीं हो सकता।

★★★

ता. २४-२-३४

परोक्षमेंसे प्रत्यक्ष होगा। परोक्षमेंसे प्रत्यक्ष होते देर नहीं लगेगी। प्रत्यक्ष करनेपर ही छुटकारा है।

मनुष्य देह चिंतामणि है। मरनेको तैयार हो जाओ। श्रद्धाको दृढ़ कर दो। चतुराईवाले और पंडिताईवाले किन्तु श्रद्धा-प्रतीतिसे रहित है वे रह जायेंगे और पीछे बैठे हुए भोले भाले अनपढ़ भी यदि श्रद्धाको दृढ़ कर लेंगे तो उनका काम हो जायेगा। परमकृपालुदेव द्वारा अनेक जीवोंका उद्धार होगा।

निश्चयसे आत्माको देखें तो शुद्ध आत्मा ही दिखायी देता है। अर्थात् वहाँ कर्म नहीं है। निश्चयनयका अवलंबन छोड़ने पर कर्मबंध होता है।

सत्संगमें अलौकिकभाव हों तो अवश्य कल्याण होता है।

★★★

ता. ६-३-३४

गुत्थी पड़ गयी है उसे सुलझाना चाहिये। दृष्टि विषयविकारवाली है। उसे बदलकर हड्डी, चमड़ी, माँस, पीप, लहू, मलमूत्र, विष्टा आदि तुच्छ पदार्थोंसे भरी देहकी मलिनता पर विचार किया जाय तो पुरुषार्थ आरंभ होता है। गुत्थी सुलझाना चाहते हैं पर अधिक बल नहीं चल पाता, अर्थात् वह पुरुषार्थ अखंड चालू नहीं रहता। वापस विषय-विकारमें बहने लगता है। वहीं गुत्थी सुलझनेकी अपेक्षा बल खाकर अधिक उलझने लगती है।

पुरुषार्थ चालू रहे तो वैराग्यकी वृद्धि होकर गुत्थी सुलझ ही जाये।

★★★

ता. ७-३-३४

'सद्धा परम दुल्लहा'

श्रद्धा दो प्रकारकी है : एक सम्यग् और दूसरी विपरीत श्रद्धा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसारमें सुख है ऐसी मान्यता, तथा देह, स्त्री, पुत्र, गृह, धन, धान्य, रोग, शोक, क्लेश, क्रोध, मान आदि परमें मैं और मेरेपनकी श्रद्धा, मान्यता यह संसारकी श्रद्धा है, विपरीत श्रद्धा है।

उसे बदलकर 'छे देहादिथी भिन्न आतमा रे, उपयोगी सदा अविनाश' ऐसी श्रद्धा हो वह परोक्ष श्रद्धा है। देह, स्त्री, पुत्र आदि मेरे नहीं, रोग आदि मुझे नहीं; मैं तो मात्र ज्ञाता-द्रष्टा, देखने-जानने-वाला, सबसे भिन्न, अविनाशी, ज्ञानीने देखा, जाना, अनुभव किया वैसा आत्मा हूँ–यह परोक्ष श्रद्धा है।

प्रत्यक्ष श्रद्धावाला जीव किसी स्त्री, पुरुष या पदार्थको देखता है तो उसमें पहले आत्मा देखता है, फिर पर द्रव्य देखता है। जैसे, श्रेणिक वह आत्मा है, ऐसा पहले लक्ष्यमें रखकर, श्रेणिकराजा, चेलणा राणी, राजगृही नगरी आदिका वर्णन करते हैं।

परोक्षवाला पहले दृश्य पदार्थको देखता है। फिर विचारकर 'दृश्य और आत्मा भिन्न हैं' यों भिन्नता देखता है। जिसे प्रत्यक्ष आत्माका अनुभव हो उसे प्रत्यक्ष श्रद्धा है। इन दोनोंकी श्रद्धा सम्यग् श्रद्धा है।

परोक्ष श्रद्धावाला द्वारके बाहर खड़ा है, प्रत्यक्ष श्रद्धावाला अंदर प्रविष्ट हुआ है। परोक्षवाला पाँव बढ़ाये तो अंदर प्रत्यक्षमें प्रविष्ट होता है। परोक्षके अनेक भेद हैं। मात्र कहनेके परोक्षसे काम नहीं होगा। परोक्ष श्रद्धावालेकी रोग, वेदनीय आदि प्रसंगोंमें परीक्षा होती है। ऐसे प्रसंगोंमें परोक्ष श्रद्धा बलवान रहे और उपयोग जागृत रहे कि मैं इस वेदनीय आदिका मात्र ज्ञाता-द्रष्टा हूँ, आकाश और पातालमें जितना अंतर है, उतना ही रोगादिमें और मुझमें अंतर है, वे मेरे आत्मासे भिन्न हैं; ऐसा भेदज्ञान वहाँ बलवान हो तब परोक्षमेंसे प्रत्यक्ष श्रद्धामें आत्मा आता है।

★★★

ता. १२-३-३४

जितनी सावधानी व्यवहारके लिये रखी है, उससे अनंतगुनी सावधानी आत्माके लिये रखनी चाहिये। जप, तप, क्रिया अनंत की, किन्तु मोक्ष हो सके वैसा साधन नहीं किया। अपनी समझ पर शून्य बनाकर चौकड़ी मार दे। आत्माकी पहचान नहीं है, अतः उस विषयमें मैं एकदम मूर्ख हूँ, अजान हूँ, ऐसा मान। फिर सच्चे ज्ञानीने जो जाना है, देखा है, वह मुझे मान्य है, यों विश्वास-प्रतीति रख और जो ज्ञानी बताये वह सदाचार पाल। सदाचारके पालन बिना मोक्ष होगा ऐसा त्रिकालमें भी मत मानना।

सत्संग, सत्बोधकी आवश्यकता है। उससे भेदविज्ञान होगा। देह, स्त्री, सगे संबंधी, धनधान्य, पुत्र, मित्र कोई तेरे नहीं हैं। तू बनिया, ब्राह्मण, पटेल कुछ भी नहीं है। तू आत्मा है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनंत अक्षय निधि तेरे पास है।

[1]"तारुं तारी पास त्यां, बीजानुं शुं काम?
दाणे दाणा उपरे, खानारानुं नाम."

यों अंतरंगसे दृढ़ कर ले कि मेरा कुछ नहीं है, मेरा एक आत्मा है। सब धोखा है, स्वप्न है, ठगोंका नगर है। निश्चित जानें कि यह सब एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा।

---

१. तेरा तेरे पास है अर्थात् रत्नत्रयरूप निधि तेरे पास है। वहाँ दूजेका क्या काम? दाने दाने पर खानेवालेका नाम है अर्थात् अपना प्रारब्ध कोई बदल नहीं सकता। अपना सुख-दुःख अपने पर ही निर्भर है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेदज्ञान द्वारा अंतरंगसे अपना मानना छोड़ दो। यहाँसे नीचे उतरते ही पुत्र-पिता, अच्छा-बुरा, मेरा-तेरा आदि आरंभ हो जाता है। अतः भेद डालनेका अभ्यास करना चाहिये। बोध हो तो हो सकता है। कर्म अलग हैं और आत्मा अलग है। ऐसा भेद यथार्थ बोध प्राप्त होनेपर होता है। इतने भवमें मर गये हैं, ऐसा समझो। धोखा है, स्वप्न है 'आत्मा सत् जगत मिथ्या।' विषयके फल नरकादिके दुःख कडुवे हैं। विषय भोगनेके लिये यह देह नहीं मिली है। पुरुषार्थसे मनको जीतो। इच्छाका नाश करो। वासनाने ही बुरा किया है।

★★★

ता. १८-३-३४

"सर्व दुःखसे और सर्व क्लेशसे मुक्त होनेका एकमात्र उपाय आत्मज्ञान है।"

श्रीराम तीर्थयात्रा कर लौटे। सारा संसार त्रिविधतापसे जलता देखा। जहाँ देखो वहाँ आधि, व्याधि और उपाधि, जन्म, जरा और मरण, दुःख ही दुःख, इससे वे तो उदास हो गये। ऐसा वैराग्य हुआ कि न खाते, न पीते, कुछ भी अच्छा न लगता। मन कहीं भी न लगता। गुरु वसिष्ठ मुनि ज्ञानी थे। उनसे चित्तशांतिका उपाय पूछने लगे। गुरुने बोध द्वारा शांति करायी।

सभी जीव अनंत कर्म वर्गणाके भारसे दुःखी हो रहे हैं। उनमें मुख्य आठ कर्म हैं। उनमें भी मुख्य मोहनीय है। उसे नष्ट करनेका अचूक उपाय बोध और वीतरागता—समता है।

बोध सत्संग—सद्गुरुसे ही प्राप्त होता है। सत्संगमें एकमात्र आत्माकी ही बात होती है। सत्संगमें कोटि कर्मका क्षय होता है, हजारों भवका नाश हो जाता है, ऐसी अपूर्व कमाई सत्संगमें होती है। पर ज्ञानीके वचनका अलौकिक दृष्टिसे माहात्म्य समझमें आना चाहिये।

विचार, विनय, विवेक और सत्संग ये चार आत्मज्ञान प्राप्त करवा सकते हैं। चारमेंसे एक हो तो चारों ही आते हैं।

स्त्रीको देखकर विकार होता है, परंतु स्त्रीको देखकर तो वैराग्य होना चाहिये। हड्डी, मांस, चमड़ा, लहू, पीप, विष्टा, मलमूत्रादिसे भरी हुई यह थैली है, ऐसा विचार, ऐसी दृष्टि हो तो वैराग्य होता है। सारा संसार एक स्त्रीसे मोहित हुआ है, पर विवेकी, विचारशीलको तो उससे वैराग्य होकर दृष्टि आत्मा पर जाती है। वह तो उसमें देह और आत्माकी भिन्नता देखता है।

जो करोड़ों रुपये देने पर भी न मिले ऐसी यह मनुष्य देह है। इसमें राजपाट या करोड़ों रुपये मिलना सुलभ है। पर वे साथ नहीं जायेंगे, एक मात्र धर्म साथमें जानेवाला है। उसीके लिये यह मनुष्यभव बिताना चाहिये। जब तक समकित नहीं होता तब तक संसारके दुःख खड़े ही रहेंगे। जिसे समकित हुआ, उसका मनुष्यभव सफल हुआ। 'जहाँ आशा वहाँ वासा[1]।' अतः समकितकी ही आशा, इच्छा, अभिलाषा रखें।

योग्यता प्राप्त करें। ज्ञानीके ज्ञानदानके द्वार अखंड खुले हुए हैं। जो भी आये उसे देनेके लिये ही बैठे हैं। परंतु लेनेवाला योग्यतायुक्त होना चाहिये। सद्गुरुकी श्रद्धा, प्रतीति, रुचि यह सबका मूल है।

★★★

१. वासना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १८-३-३४

मनुष्यभव महा दुर्लभ है। उसमें पद अधिकार मिलना सुलभ है। नौकरी व्यापार सब प्रारब्धानुसार मिले हैं। पर यह सब तो छोड़कर एक दिन जाना पड़ेगा। अकेला धर्म साथमें चलेगा। आत्माका सच्चा धर्म क्या है? इसका पता सत्संगसे लगता है। किसी संतसे आत्माके हितके लिये साधन–पाठ, वचन–मिला है उसका नित्य स्मरण करें। दस मिनिट लगते हैं। इतने समय तक अवश्य स्मरण करें। परमात्मा अरूपी है। उस अरूपी परमात्माकी पहचान वचनोंसे होती है। अतः संत द्वारा बताये गये साधन–मंत्र, क्षमापनाका पाठ आदि–को व्यर्थ न समझें। 'यह तो मैं जानता हूँ, यह तो मुझे कंठस्थ है' ऐसा लौकिक भाव न रखें। इसमें जो माहात्म्य रहा हुआ है वह कहा नहीं जा सकता, ज्ञानी ही जानते हैं। सौभाग्यभाईने वह साधन मुमुक्षुको देनेके लिये परमकृपालुदेवसे आज्ञा माँगी, तब वे चुप रहे। हमने पूछा तब हमें वह अन्यको देनेकी आज्ञा दे दी। अतः जो कोई जीव हमारे पास आता है, उसे वह साधन उसके आत्माका अनंत हित करनेवाला जानकर उसे देते हैं। अतः उसकी आराधना अलौकिक भावसे करनी चाहिये। अधिक समय मिले तो आलोचनाको नित्यक्रममें रखें। यदि वचन पर श्रद्धा होगी तो संगका फल अवश्य मिलेगा।

★★★

ता. १७-४-३४

प्रभुश्री–जीव है तो शुद्ध, पर मदिराके छाकसे मत्त हो रहा है।

मुमुक्षु–मदिरा पी ही क्यों?

प्रभुश्री–विभावके कारण, अज्ञानके कारण।

मुमुक्षु–विभावको दूर करनेके लिये क्या करें? विभावको दूर करनेके लिये कुछ प्रदान करें।

प्रभुश्री–ज्ञानीकी आज्ञा ही भवकूपमें डूबते प्राणीको तारनेके लिये रस्सीके समान है। उससे विभाव दूर होगा।

मुमुक्षु–रस्सी तो मिली है, पर अब आप खींचे तब न?

प्रभुश्री–डूबनेवालेको भी पाँव टिकाने पड़ेंगे, जोर लगाना पड़ेगा। पुरुषार्थ करना होगा।

मुमुक्षु–ज्ञान कैसे प्राप्त हो?

प्रभुश्री–त्रिकालमें भी ज्ञानीको ढूँढना पड़ेगा। सत्पुरुषको ढूँढकर उस पर श्रद्धा और उसकी आज्ञाका आराधन–ये दो करते रहें। विशेष करने जायेंगे, आत्मा देखने जायेंगे तो अपने आप कुछ भी जान नहीं पायेंगे।

सदाचार अर्थात् सत् और शील। सत् अर्थात् आत्मा, आत्माका विचार, बात, लक्ष्य। शील अर्थात् मुख्यतः ब्रह्मचर्य, उसका द्रव्यसे भी पालन हो तो बड़ी बात है। सत्य (ब्रह्मचर्य) तो सर्व परभावका त्याग है। सदाचारका तो पहले बहुत पालन किया। परंतु सद्गुरुकी आज्ञारूप रक्षक (मार्गदर्शक) साथमें नहीं था, इसलिये काम बना नहीं। आज्ञासे सदाचार एकमात्र आत्मार्थकी इच्छासे होता है और स्वच्छंदसे तो वह पुण्य, स्वर्ग या कल्पित मोक्षकी इच्छासे होता है। अतः आज्ञासे ही काम बनता है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरत, ता. ११-६-३४

मुमुक्षु—समकिती उदयको भोगता है। मिथ्यात्वी भी उदयको भोगता है। एक बँधता नहीं जबकि दूसरा बँधता है। सम्यग्दृष्टिके पास ऐसा क्या है कि वह बँधता नहीं?

प्रभुश्री—सम्यग्दृष्टि ऐसे ज्ञानी गृहस्थ हों तो भी मुनि है। मिथ्यात्वी साधु हो तो भी संसारी है।

[1]"उपर वेश अच्छो बन्यो, मांही मोह भरपूर जी।"

यों ऊपरसे तो चारित्र धारणकर हजारों मनुष्योंको उपदेश आदि वाक्चातुर्यसे प्रसन्न करता हो फिर भी कुगुरु है। समकिती कुछ बोलता भी न हो फिर भी मुनि है, ज्ञानी है। ऐसा समकितीके पास क्या है?

समकितीका संग आत्मगुण प्रकट करनेवाला है। मिथ्यात्वी कुगुरुका संग, उपदेश आदि सब संसारवृद्धिके कारण हैं। अतः त्याज्य हैं।

मायाशल्य, मिथ्यात्वशल्य और निदानशल्य—इन तीनोंमेंसे एक भी शल्य हो तब तक धर्म फलदायक नहीं होता; और कुगुरुमें तो तीनों ही शल्य होते हैं।

ऊपरसे साधुका वेष हो और बाह्य चारित्र आदिसे जनरंजन कर साधु कहलाये तथा मान-पूजा आदिके लिये दिखाना कुछ—साधुत्व और भीतरसे प्रवृत्ति कुछ—विषयकषाय-मोहसे भरपूर, ऐसा हो तो वह मायाशल्य कहलाता है। अपने आत्माके लिये धर्म न करते हुए अंतरंग श्रद्धाके बिना जगतको ठगनेके लिये गुरुपना आदिकी अज्ञानक्रिया करना मायाशल्य है।

धर्मकी आराधना करते हुए जीवको संसारफलकी इच्छा होती है, वह नियाण (निदान) शल्य है। विषयभोगकी इच्छासे, धनकी इच्छासे, पुत्रकी इच्छासे या स्वर्ग आदि सुखकी इच्छासे धर्ममें प्रवृत्ति करना निदान शल्य है।

देहको आत्मा मानना, आत्माको देह मानना, स्वद्रव्य आत्माको परद्रव्य जड़ मानना, परद्रव्यको स्वद्रव्य मानना, ये सब मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत मान्यता है। वह काँटेके समान दुःख देनेवाला है। इसलिये उसे मिथ्यात्वशल्य कहते हैं। अतः इन तीनों शल्योंसे रहित होना है।

हमने आत्माको जाना नहीं है। पर जिस सद्गुरुकी शरण ली है, उसने तो जड़-चेतनको यथार्थ जाना है—सद्गुरुदेवने यथार्थ आत्मस्वरूपको जाना है—अतः उनकी श्रद्धा भी समकित है। परमकृपालुदेव पर श्रद्धा करें। श्रद्धा ही आत्मा है। इतना मनुष्यभव प्राप्त कर एक सत्पुरुषको ढूँढकर उसकी सच्ची श्रद्धा हो जायेगी तो काम बन जायेगा।

"अन्य कुछ मत खोज, मात्र एक सत्पुरुषको खोजकर उसके चरणकमलमें सर्वभाव अर्पण करके प्रवृत्ति किये जा।" जिसने आत्माको जाना है ऐसे सद्गुरुकी जो श्रद्धा है वह समकित है। अतः अविचल श्रद्धा करें। सच्चेकी श्रद्धासे सत्यका फल प्राप्त होगा। मिथ्याकी श्रद्धासे वैसा फल प्राप्त होगा।

★
★★

---

१. अर्थ—बाहरसे वेश अच्छा धारण किया, किंतु अंदर भरपूर मोह है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरत, ता. १२-६-३४

यहाँ आये हैं तो बहुत लाभ होगा। अभी पहचान नहीं हुई है। पहचान कर लेनी चाहिये। जड़-चेतनकी पहचान होने पर समकित कहा जाता है। नौ ही तत्त्व जड़-चेतनमें समा जाते हैं।

श्री ज्ञानीने जड़-चेतनकी व्याख्या यों की है–

"जड भावे जड परिणमे, चेतन चेतन भाव" यह पद कंठस्थ कर लें। इसमें जड़-चेतनकी पहचान करायी है। जड़ पुद्गल है। उसके परमाणु हैं, उसके पर्याय हैं। उन्हें ज्ञानी जानते हैं। जड़ सुख-दुःखको नहीं जानता। द्रव्य, गुण, पर्याय जड़के भी हैं। कर्म जड़ है।

आत्माको जीव कहते हैं, चैतन्य शक्ति कहते हैं। जो जानता है, देखता है वह ज्ञानस्वरूप आत्मा है। द्रव्य, गुण, पर्याय आत्माके भी हैं। उसे जानने पर भेदज्ञान होता है। जड़को जड़ समझें और चेतनको चेतन यही भेदज्ञान है।

यह बात कंठस्थ कर लें। लक्ष्यमें रखेंगे तो जड़चेतनकी पहचान होगी।

★
★★

सुरत, ता. १२-६-३४

'सहजात्मस्वरूप' यह महा चमत्कारिक मंत्र है। स्मरण करते, याद करते, बोलते, वृत्तिको उसीमें संलग्न कर देनेसे कोटिकर्म क्षय होते हैं, शुभ भाव होते हैं, शुभगति और मोक्षका कारण होता है। मृत्युके समय चित्तवृत्ति मंत्रस्मरणमें या उसे सुननेमें लगी रहे तो अच्छी गति प्राप्त होती है और जन्म मरणसे मुक्त होनेका वह समर्थ कारण होता है।

वृत्ति ही वैरी है, शत्रु है, बुरा करनेवाली है। उसे रोकें। वृत्तिको रोककर स्मरणमें लगना ही तप है। यही धर्म है। सत्पुरुषार्थमें रहें।

'आणाओ धम्मो, आणाओ तवो' ज्ञानीकी श्रद्धा कर उसकी आज्ञानुसार चलें।

★

कुगुरु इच्छा, वासना, तृष्णा सहित हैं। 'क्या इच्छत? खोवत सबे, है इच्छा दुःखमूल।' वे स्वयं डूबते हैं, अन्यको भी डुबोते हैं। स्नानादिमें धर्म नहीं है। बिल्लीके बच्चे[1] घानीमें पिल गये थे, वैसा देखादेखी धर्म करने जाने पर अधर्म ही होता है।

---

१. एक स्त्री प्रतिदिन प्रातः जल्दी उठकर नदीमें नहाने जाती। तब रास्तेमें भजन गाती-गाती चलती थी।

एक दिन किसी बोहरेको आवश्यक काम होनेसे जल्दी उठनेकी इच्छा हुई। इतनेमें ही वह स्त्री भजन गाती हुई उसके घरके पाससे बहुत सबेरे निकली। यह सुनकर बोहरेने समझा कि सबेरा हो गया है, अतः शीघ्र उठा, उतावलीमें बिना देखे घानीमें तिल डाले और घानीको जोत दिया। घानीके खड्डेमें रातको बिल्ली ब्या गई थी इसका उसे पता नहीं था, इसलिये तिलके साथ बिल्लीके बच्चे पिल गये। सारा तेल खूनवाला लाल लाल हो गया, पर अंधेरेमें उसे कुछ पता नहीं चला, उसने तेल डिब्बेमें भर लिया।

फिर प्रातः वह स्त्री नदीमें नहाकर वापस लौटी। आकर बाल सँवारने लगी तो बालमेंसे छोटी छोटी मछलियाँ निकलीं। यह देख उसे लगा कि आज तो बहुत पाप हुआ। चलकर किसी ज्ञानी गुरुको बताऊँ और प्रायश्चित्त लूँ। अतः किसी ज्ञानी गुरुके पास जाकर उसने सब बात बतायी।

मुनिने ज्ञानसे जाना कि इसे इतना ही पाप नहीं लगा है, पर और अधिक पाप लगा है। अतः उन्होंने उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शील महान तप है। जिसने शीलव्रत धारण किया है वह संसारसमुद्रके किनारे पहुँच गया है। सत्य, शील, त्याग, वैराग्य धारण करने योग्य है।

मुमुक्षु—मोक्ष किसे कहते हैं?

प्रभुश्री—मूर्तिमान मोक्ष तो सत्पुरुष हैं।

मुमुक्षु—सत्पुरुष कौन हैं?

प्रभुश्री—जिसे निशदिन आत्माका उपयोग है वही सत्पुरुष है।

आत्मामें परिणमित होनेपर मोक्ष है। बनिया-पटेल, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष आदि रूपमें परिणत होकर यहाँ बैठे हो, उन सबसे ऊँचे उठकर, एक आत्मा हूँ ऐसा कहनेमात्रसे नहीं, पर ऐसे परिणाम प्राप्त हों तब मोक्ष है। वृत्तिको सबमेंसे उठाकर आत्मामें मोडें। जो आत्मामें परिणमित हुए हैं, ऐसे ज्ञानीकी श्रद्धा ही समकित है, यह मोक्षका बीज है।

अज्ञानीको व्याधि या रोग हो जाने पर 'मैं बीमार हूँ, मर रहा हूँ, दुःखी हो रहा हूँ," यों घबरा जाता है। समकितीको व्याधि या दुःख हो तो यह रोगादि शरीरमें होते हैं, मैं तो उसे जाननेवाला केवल उससे भिन्न हूँ, यों ज्ञाताद्रष्टा रहता है।

★★★

सुरत, ता. १३-६-३४

सद्गुरु किसे कहते हैं? 'आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं, ते साचा गुरु होय'। आत्मज्ञान कैसे हो? आत्मज्ञानीके परिचयसे। सत्संग सद्बोधकी कमी है। सच्चेकी श्रद्धा होना व्यवहार समकित है।

'जगतजीव है कर्माधीना।' सब कोई उदयको भोगते हैं। भरतजी तथा गाँधीजी दोनोंको उदय था। परंतु जिसे समता—समकित है, उसका उदय नवीन बंधका हेतु नहीं होता। दूसरेका उदय संसार बढ़ानेवाला होता है।

स्त्रीसे कहा कि अमुक बोहराके यहाँसे दो पैसेका ताजा तिलका तेल ले आओ। वह स्त्री उस बोहरेके यहाँ गयी। रातके अंधेरेमें पीला हुआ तेल डब्बेसे निकाला तो वह लाल दिखायी दिया। जिससे उसने कहा कि कोई रांड जल्दी उठकर गाती हुई जा रही थी जिससे मैंने समझा कि सुबह हो गयी है। मैंने शीघ्रतामें बिना देखे घानी जोत दी। उसमें कुछ पिल गया लगता है। ऐसा कहकर खलीकी जाँच की तो उसमें हड्डियाँ दिखायी दी। पास ही बिल्ली बैठी-बैठी रो रही थी। अतः बोहरा खेदपूर्वक बोला "अरेरे! इस बेचारी बिल्लीके बच्चे पिल गये!"

वह स्त्री समझ गयी कि मुझे यह पाप भी लगा है, अतः मुनिके पास जाकर बोहरेकी कही हुई सब बात बतायी और उसका भी प्रायश्चित्त माँगा।

मुनिने दया कर प्रायश्चित्त बताते हुए कहा कि ऐसे स्नानमें धर्म नहीं है। महाभारतमें भी कहा है कि—

"आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहा शीलतटा दयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा॥"

संयमरूपी जलसे भरपूर, सत्यमय प्रवाहवाली, शीलरूपी तटवाली, दयारूपी लहरोंवाली आत्मारूप नदीमें हे पाण्डुपुत्र (युधिष्ठिर), तू स्नान कर। बाकी पानीसे तो आत्माकी अंतरंग शुद्धि नहीं होती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणाम, भाव ही हमारे पास अभी पूंजी है। वह शुद्धताको प्राप्त हो ऐसे निमित्त सत्संग, सद्बोधकी आराधना करें।

समकितसे मोक्ष है, बाह्य चारित्रसे मोक्ष नहीं है।

★★★

सुरत, ता. १४-६-३४

मोक्ष क्या है? बंधसे छूटना मोक्ष है। सत्संग, सद्बोधसे वस्तुकी पहचान होती है। जड़-चेतनका विभाग करना चाहिये। सत्पुरुष पर विश्वास, श्रद्धा, प्रतीति यह [1]एकका अंक है।

असद्गुरुसे पूरा जगत संसारसमुद्रमें डूबा है। मतमतांतर-आग्रहरहित 'आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं' ऐसे ज्ञानी गुरुकी प्राप्ति, उनकी श्रद्धा ही जड़-चेतनकी पहचान करायेंगे। फिर जड़को चेतन नहीं मानेंगे और चेतनको जड़ नहीं मानेंगे।

अनंतानुबंधी कैसे दूर हो?

जीवको ज्ञानीपुरुषकी पहचान होनेपर तथाप्रकारसे अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ कम होनेका कारण बनने योग्य है। सूर्यके उदय होने पर अंधेरेका नाश होता है, वैसे ही ज्ञानीपुरुषका समागम, पहचान अनंतानुबंधीको दूर करनेका उपाय है।

बापका कूआ होनेसे डूबकर मरा नहीं जाता। वैसे ही बापदादाने माना वह मेरा धर्म, वे मेरे गुरु, ऐसा आग्रह ही अनंतानुबंधी है। आत्मा श्वेतांबर नहीं है, दिगंबर नहीं है; वैष्णव नहीं है, स्त्री नहीं है, पुरुष नहीं है, वृद्ध नहीं है, युवान नहीं है। यों पर्यायदृष्टिको दूर कर मैं आत्मा हूँ—ज्ञानी सद्गुरुने जाना वैसा—यों आत्माकी ओर दृष्टि कब करेंगे?

चेतन निर्विकल्प है, पर वर्तमानमें कल्पनाओंसे भरा हुआ है। निर्विकल्पदशा प्राप्त करनेके लिये सत्संग, सद्बोधका निरंतर सेवन करना चाहिये।

ज्ञानी उदयको भोगकर कर्म क्षय करते हैं, अज्ञानी कर्म बढ़ाता है।

★★★

सुरत, ता. १८-६-३४

मनुष्यभव बहुत दुर्लभ है। सत् और शील मुख्य हैं। प्रतिज्ञा ली हो फिर भी मनसे सावधान रहना चाहिये। मनको मार डालें। धक्का मार-मारकर मार डालें। कल्पना है। हड्डी, माँस, लहू, पीप आदिसे भरे चमड़ेमें आसक्त होने जैसा क्या है? यह सब जो दिखायी देता है वह क्या आत्मा है? विश्वास रखें। श्रद्धा रखें। इसमें चमत्कार है! जो दिखाई दे रहा है वह सब जड़ है। देखनेवाला आत्मा भिन्न है। उस पर दृष्टि करें।

जो पर्याय दिखायी देता है, वह जड़ है। जड़को द्रव्य, गुण, पर्याय हैं। आत्माको भी द्रव्य, गुण, पर्याय होते हैं। आत्माके पर्याय स्वपर्याय हैं और जड़के पर्याय परपर्याय हैं। परपर्यायमेंसे आत्मा पर दृष्टि करनी है। इसे बारंबार स्मरण करें।

---

१. मूलभूत बात, शुरूआत, प्रारंभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगतमें जो दिखायी दे रहा है उसे जड़रूप देखें, पुद्गलरूप देखें—उसके पर्यायोंको जाने। पुद्गलको पुद्गलरूपसे देखनेसे आत्मा पर दृष्टि जायेगी। पुद्गल आत्मा नहीं है, पुद्गल अपना नहीं है।

आत्माकी ही रटन रातदिन निरंतर रखें।

"परिणति सब जीवनकी, तीन भात बरनी;
एक पुण्य, एक पाप, एक राग-हरनी."

शुभ परिणति, अशुभ परिणति और शुद्ध परिणति। वीतराग परिणतिमें आना चाहिये।

★★★

ता. ३०-६-३४

एक बार पढ़कर, फिर याद रहे हुएका विस्तारसे कथन करें। ऐसा अभ्यास डालें। यह स्वाध्याय है। यह तप है। इससे वाक्यलब्धि बढ़ती है।

जो व्रत सम्यग्दृष्टि करता है वही व्रत मिथ्यादृष्टि भी करता है। प्रथमको निर्जरा होती है, दूसरेको बंध होता है।

सम्यग्दृष्टि ऐसा क्या करता है?

सम्यग्दृष्टि उलटेको सुलटा कर देता है।

योग्यताकी कमी है। सबसे पहले मार्गके ज्ञाता ज्ञानीके समागम द्वारा श्रद्धा-प्रतीति करें।

नौ पूर्व पढ़ा फिर भी मिथ्यात्व। तो सम्यग्दृष्टिमें ऐसी क्या विशेषता है?

सम्यग्दृष्टि आत्मामें परिणमित हुए हैं; मिथ्यात्वी परिणमित नहीं हुए, परमें परिणमन हुआ है—बोलने मात्रका ज्ञान है।

योग्यता अर्थात् परिणाम—परिणमन होने पर ही योग्यता कही है। खिचड़ी चूल्हे पर चढ़कर तैयार हुई, वैसे ही परिणमन होने पर ही योग्यता होती है। तब तक कचास है।

मुमुक्षु—परिणमन कैसे हो?

प्रभुश्री—दृष्टि बदलनेसे। समकितीकी दृष्टि बदल गई है। यह जो छोटा, बड़ा, बनिया, ब्राह्मण, स्त्री, पुरुष आदि दिखायी देता है, वह सब दृष्टि बदलने पर आत्मा दिखायी देता है कि यह तो आत्मा है। वह सबसे अलग है। यों दृष्टि बदलनेसे परिणाम आत्मामें हुए हैं। खाते-पीते, चलते-फिरते जहाँ दृष्टि पड़े वहाँ पहले आत्मा दिखायी देता है। यों दृष्टि बदलनेकी आवश्यकता है। तब फिर परिणमन होना अनिवार्य ही है। व्याधि आये, रोग आये, मृत्यु आये तो भी समकितीको महोत्सव है।

★★★

ता. १-७-३४

"जगत आत्मारूप माननेमें आये"—दृष्टि बदले तो विकारके स्थानोंमें वैराग्य होता है। स्वच्छंद और प्रमाद बाधक हैं।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. ७-७-३४

सब परमें परिणत होकर बैठे हैं। आत्मामें परिणतिसे ही मुक्ति है।

उदासीनता–समता–रागद्वेषरहित परिणति आत्माकी है।

यह काला है, यह गोरा है, यह छोटा है, यह बड़ा है, यह शत्रु है, यह मित्र है–यह बाह्यदृष्टि है। उसे पलटाकर यह मेरा साक्षात् आत्मा, यह भी मेरा साक्षात् आत्मा, यों सबमें आत्माको कब देखेंगे?

ज्ञानीसे आत्माको देखनेकी दृष्टि प्राप्त हो तभी राग-द्वेष मिटते हैं।

जिस-तिसमें मैं और मेरापन हो गया है यही मिथ्यात्व है। कदाचित् कोई ऊपर-ऊपरसे ऐसा कह दे कि ये देहादि मेरे नहीं हैं, तो भी क्या यह जाना है कि मेरा क्या है? मेरा जो है उस आत्मस्वरूपको यथार्थ तो ज्ञानीने ही जाना है। अतः उस ज्ञानीकी श्रद्धासे आत्माको देखनेकी दृष्टि बनायें। दृष्टि विषमय है, उसे तत्त्वकी ओर करें।

★★★

ता. २९-७-३४

ज्ञानीसे जो द्रव्यसे भी शील अर्थात् ब्रह्मचर्य आया है, वह समकित होनेका कारण है। जिसके पास सत् और शील है उसे समकित अवश्य होगा। समकित न हो तब तक उसीके लिये झुरें। उसीकी इच्छा, वांछा रखें।

★★★

ता. ३०-७-३४

कषायका स्वरूप ज्ञानी ही जानते हैं। मृत्युके समय कषाय तूफान मचाते हैं, लेश्याको बिगाड़ते हैं। अतः प्रथम पाठ यही सीखना है कि 'धीरज'। ओहो! यह तो मैं जानता हूँ, ऐसा न करें; धैर्य, समता और क्षमा इन तीनोंका अभ्यास बढ़ायें। रोग या वेदनाको समतापूर्वक सहनेका अभ्यास करें।

मैंने तो आत्माको नहीं जाना है, पर पूर्वके अनंत ज्ञानियोंने उस आत्माको यथातथ्य जाना है। जिसकी शरणमें मैं हूँ उन ज्ञानी सद्गुरु भगवानने भी वैसे ही आत्माको यथातथ्य जाना है, वह मुझे भी मान्य है। वैसा ही सिद्धके समान मेरा आत्मा शुद्ध है। वही मेरा स्वरूप है। वही मुझे प्राप्त हो! ज्ञानीको जो है वह मुझे भी हो! इतनी बात अपूर्व है।

★★★

ता. १७-९-३४

गुणानुरागी बनें। मुख्य यही करना है। आत्माको देखने पर ही गुणानुरागी बना जा सकता है। दृष्टि परिवर्तनसे ही यह संभव है।

"प्रभु, प्रभु लय लागी नहीं"

"हे जीव! क्या इच्छत हवे? है इच्छा दुःखमूल;
जब इच्छाका नाश तब, मिटे अनादि भूल."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुत्तेको लाठी मारने पर फिर वे लौट कर नहीं आते, वैसे ही कर्मों पर ज्ञानीपुरुषके वचनरूपी लाठीका प्रहार हो तो जो कर्म आये हैं वे भाग जानेके लिये ही आये हैं, फिर लौटकर आनेवाले नहीं हैं।

★★★

ता. ९-१०-३४

जीवको सत्संगका माहात्म्य नहीं लगा है, सामान्य बात हो गयी है। पहचान नहीं हुई है। कोई कहे कि अभी यहाँसे गये वे तो राजा थे। तब आश्चर्यचकित होकर पूछता है कि "हें! क्या राजा थे?" पीछेसे पश्चात्ताप करता है। वैसे ही जीवने ज्ञानी और सत्संगको यथार्थमें पहचाना नहीं है। पीछेसे पछताता है।

सत्संगमें क्या होता है? जिन्होंने आत्माको जाना है, ऐसे आत्मामें रमण करनेवाले ज्ञानीके दर्शन या समागमका संयोग मिलता है। यह मिलना अति दुर्लभ है!—

[1]'एनुं स्वप्ने जो दर्शन पामे रे, तेनुं मन न चढ़े बीजे भामे रे!'

योग मिलने पर भी पहचान हो तभी अपूर्व भाव जाग्रत होते हैं। अपूर्व भाव आने पर ही कल्याण होता है।

सत्संगमें आत्माके भाव विशुद्धताको प्राप्त होते हैं। 'आतम भावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे'। जीवने आत्मभावको जाना नहीं है। संकल्प-विकल्पने ही जीवका बुरा किया है। संकल्प-विकल्प द्वारा कर्मकी प्रकृतिका अनुसरण कर जीव कर्मके ढेर बाँध लेता है। सत्संगमें—शीतल शांत महात्माकी उपस्थितिमें—आत्माका भाव, उपयोग संकल्प-विकल्पका त्याग कर ज्ञानीके वचनमें जुड़ता है, उसमें लीन होता है, जिससे कोटि कर्म क्षय होते हैं।

आत्मा कैसी अपूर्व वस्तु है! अन्य नाशवान पदार्थोंकी जितनी चिंता है, उतनी भी आत्माके लिये नहीं है। युगलिकका सुख, चक्रवर्तीका, इंद्रका, अहमिन्द्रका जो सुख है, उन सबसे अनंतगुना सुख सिद्धको एक समयमें है। सर्व आत्मा सिद्धके समान हैं, पर अपने सुखको प्राप्त करनेकी आकांक्षा कहाँ है? विश्वास, श्रद्धा कहाँ है?

कितने अधिक पुण्य बढ़े तब मनुष्यभव मिला है! उससे भी कितने अधिक पुण्य बढ़े तब सत्पुरुषका योग मिला है! अब अवसर आया है, संयोग मिला है। जागृत हो जायें। प्रमादसे अनंत कमाई हार न जायें। आत्माको पहचाननेका पुरुषार्थ करें। दुर्लभ सत्संगको सफल बना लें।

आत्माको पहचाननेके लिये गुरुगम चाहिये। दिव्यचक्षुसे आत्माकी पहचान होती है। इन चर्मचक्षुओंसे तो यह मोतीभाई, यह माणेकभाई, यह पुरुष, यह स्त्री, यह छोटा, यह बड़ा, यह बनिया, यह ब्राह्मण आदि दिखायी देते हैं। किन्तु दिव्यचक्षु प्राप्त होने पर यह सब जो दिखायी दे रहा है वह पुद्गल, जड़ भास्यमान होता है। उन्हें देखने-जाननेवाला आत्मा प्रत्यक्ष सबसे भिन्न सबसे प्रथम भासित होता है।

---

१. भावार्थ—यदि कोई स्वप्नमें भी इसका (सद्गुरुका, आत्माका) दर्शन पाता है तो उसका मन अन्य भ्रममें नहीं पड़ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जेलमें पड़े हो, बंदी हुए हो, जैसे-तैसे समय पूरा कर रहे हो। बहुत दुःख है संसारमें। अब यदि आत्मज्ञान नहीं हुआ तो दुःख मिटनेवाला नहीं है। अतः प्राप्त योगको सफल बनानेके लिये जाग्रत हो जाओ। मोहनिद्राको दूर करो। इन्द्रियोंरूपी शत्रुओंको शत्रु समझकर उन्हें पराजित करो।

ज्ञान, ध्यान आत्मा है। विचार, ध्यान आत्मा है। सत्संगमें बोध श्रवण होता है, वहाँ जो लाभ होता है वह दिखायी नहीं देता। अभी हजार-दो हजार रुपयोंका लाभ हो तो वह दिखायी देता है। ऐसे लाभके लिये जीव दौड़कर जाता है। पर यहाँ कर्म नष्ट हो जायें, भव कट जायें, ऐसी कमाई है वह दिखायी नहीं देती। इसलिये जीवको सत्संगके प्रति विश्वास, प्रेम, उल्लास, अलौकिक भाव नहीं आता।

संकल्प-विकल्पने बुरा किया है। मन थोड़ी देर भी बेकार नहीं रहता। कर्मके ढेर बाँधता रहता है। कोई व्यापारी हो वह पत्र लिखे कि पचास मटके गुड़ भेजना, दोसौ-पाँचसौका अमुक माल भेजना। यों पूरा पत्र अमुक अमुक वस्तुएँ भेजनेके विषयमें भरा हो, किन्तु अंतिम पंक्तिमें लिख दे कि उपरोक्त कोई भी वस्तु मत भेजना, तो? पूरा लिखा हुआ पत्र बेकार हो गया। वैसे ही यह जीव संकल्प-विकल्पसे कर्मके ढेर बाँधता रहता है कि ऐसा करूँ और वैसा करूँ। ऐसेमें सत्संगमें सुना हुआ एक वचन यदि याद आ जाये तो मन वैसी कल्पनाएँ करनेमें मंद पड़ जाता है या उदासीन हो जाता है। वहाँ आत्मभावकी ओर मुड़े तो आस्रवमें संवर होता है। कमाईका ढेर लग जाता है। यों सत्संगमें सुना हुआ बोध जीवका अपूर्व हित करनेवाला है।

***

ता. १०-६-३४

उपयोग आत्मा है। अतः उसे पहचानो। सहज सुख आत्मामें है। उपयोगको आत्माकी ओर मोड़ने पर सहज सुख प्रकट होता है। अभी वह उपयोग शुभ या अशुभ है, शुद्ध नहीं है। जगतमें जहाँ-तहाँ परपदार्थोंमें, इन्द्रियविषयोंमें भटकता है, जिससे बंधन हुए हैं, भवभ्रमण हुए हैं। मन, वृत्ति जहाँ-तहाँ भटकती है। अतः मनको जीतो, वृत्तियोंको रोको। जगतके पदार्थोंमेंसे उपयोगको आत्मामें लाओ। 'सहु साधन बंधन थयां।'

आत्मा देखो। हड्डी-चमड़ी लेकर सब घूम रहे हो; अतः हड्डी-चमड़ी आदि बाह्य पदार्थ न देखकर उन सबको देखनेवाले और जाननेवाले आत्माको देखेंगे तो लाभके ढेर लग जायेंगे, रागद्वेष नहीं होंगे।

मुमुक्षु—उपयोगको आत्मामें कैसे लाया जायें? आत्माको तो जाना नहीं है। तब सबसे उठाकर उसे कहाँ लगायें?

प्रभुश्री—उपयोगको आत्मामें लगायें—जब तक आत्माको नहीं जाना है तब तक जिसने आत्माको जाना है ऐसे ज्ञानीमें विश्वास रखें—और फिर वैसे भेदी बतायें वहाँ (उपयोगको लगायें।)

पर कमी किसकी है? वैराग्यकी, बोधकी। प्रमाद, आलस्य और वृत्तियाँ भटकती है उन्हें रोकें। 'कर विचार तो पाम।' 'जब जागेंगे आतमा, तब लागेंगे रंग।' मोहनिद्रामें सो रहा है, उसे जाग्रत करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपयोग शुभ-अशुभ होता है तो क्या शुद्ध नहीं हो सकता? अवश्य होगा। सर्व आत्मा सिद्ध समान हैं। पुरुषार्थ करो, सत्पुरुषार्थ करो। भवस्थिति आदि तूफानको जाने दो, सत्पुरुषार्थ करो।

★★★

दीपोत्सव, सं.१९९०

हम अपने हृदयकी बात बताते हैं। हमें तो रोम-रोममें एक यही प्रिय है। परमकृपालुदेव ही हमारी जीवनडोर हैं। जहाँ उनके गुणगान होते हों वहाँ हमें उल्लास आता है। हमारा तो सर्वस्व वे ही हैं। हमें तो वे ही मान्य हैं।

आपको ऐसी मान्यता करना यह आपका अधिकार है। जिसका महाभाग्य होगा उसे यह मान्यता होगी। सरलतासे बता रहे हैं कि जिसे यह मान्यता होगी उसका कल्याण हो जायेगा। भोले-भालोंका काम होगा। श्रद्धा, विश्वास, प्रतीति होंगे उनका भवभ्रमण मिट जायेगा।

ऐसा दृढ़ करें कि मैंने तो आत्माको जाना नहीं है, परंतु ज्ञानी परमकृपालुदेव और अनंत ज्ञानियोंने उसे यथातथ्य जाना है, वैसा ही मेरा आत्मा है। परमकृपालुदेवने जिस आत्माको देखा है, वही मुझे मान्य है, उसे प्राप्त करनेके लिये मुझे उन्हींकी शरण ग्रहण करनी है। इतने शेष भवमें अब तो मुझे यही करना है, यही मानना है कि परमकृपालुदेवने जिस आत्माको जाना, देखा, अनुभव किया, वैसा ही मेरा आत्मा शुद्ध, सिद्ध समान है। अतः अब मुझे मान्यता, विश्वास, श्रद्धा, प्रतीति रोमरोममें यही करनी है। इतने भवमें यदि इतनी श्रद्धा तो गयी तो मेरा अहोभाग्य! फिर चाहे तो दुःख आये, रोग आये, चाहे तो देह छूट जाय, पर मेरी यह श्रद्धा अचल रहे।

"समकित साथे सगाई कीधी, सपरिवारशुं गाढी;
मिथ्यामति अपराधण जाणी, घरथी बाहेर काढी."

चाहे तो अभी नरकमें जाना पड़े, पर मेरी श्रद्धा अन्य नहीं होगी।

व्रत नियम करना यह आपके हाथमें है। यह कर्मकी प्रकृति है। आत्मा नहीं। 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'– आत्मा सत् और जगत मिथ्या। ज्ञानी आत्मा हैं, उनकी श्रद्धा समकित है, यह एक ही सत्य है। दिनको यदि ज्ञानी रात कहें तो तदनुसार अपने विकल्पोंको छोड़कर रात कहें। ऐसी श्रद्धावाले जीव कृपालुदेवके समयमें थे। ऐसी श्रद्धा चाहिये।

जिन जीवोंको परमकृपालुदेवकी श्रद्धा हुई है, उनके प्रति हमें पूज्यभाव होता है, क्योंकि वे सत्यसे चिपके हैं, जिससे उनका कल्याण होनेवाला है।

★★★

ता. १०-११-३४

[1]"अंतरंग गुण गोठडी रे, जनरंजनो रे लाल;
निश्चय समकित तेह रे, दुःखभंजनो रे लाल."

'अंतरंग गुण गोठडी' से क्या तात्पर्य है?

---

१. भावार्थ–जहाँ अंतरंग गुणोंके साथ मैत्री यानि प्रेम-प्रीति है, आत्मामें ही रमणता है, वहीं निश्चय समकित है। (श्री यशोविजयजी कृत चंद्रबाहु स्तवन।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]"बहिरातम तजी अंतर आतमा-रूप थई थिर भाव, सुज्ञानी,
परमातमनुं हो आतम भाववुं, आतम अर्पण दाव, सुज्ञानी.
सुमतिचरणकज आतम अरपणा."

परमात्मा क्या परदेश गया है? सबके पास है। चमत्कार है, चेत जायें। जिसको श्रद्धा प्राप्त हो गयी उसको अधिकसे अधिक अर्धपुद्गल परावर्तनमें मोक्ष होगा ही। अतः श्रद्धा अचल करें।

मुमुक्षु–यहाँ जो हैं उन सबको श्रद्धा तो है।

प्रभुश्री–यदि सबको श्रद्धा है तो सभीका मोक्ष भी निश्चित है। श्रद्धा सच्ची होनी चाहिये।

मुमुक्षु–सच्ची श्रद्धा किसे कही जाये?

प्रभुश्री–ज्ञानीने आत्माको जैसा जाना है, वैसा मेरा आत्मा है, वही मुझे मान्य है और मैं तो ज्ञानीका दास हूँ, ऐसी सच्चे ज्ञानीकी जिसको श्रद्धा होगी उसका मोक्ष होगा ही। अनेक जीवोंका उद्धार हो जायेगा।

अभी तक एक भी नमस्कार नहीं किया है। एक बार भी दर्शन नहीं किये हैं। बोध सुनकर भी अभी तक सुना नहीं। योग्यताकी कमी है। योग्यता आने पर ज्ञानी बुलाकर दे देंगे। आत्मा तो ज्ञानी ही देंगे।

दृष्टि बदले तो कुछ दूसरा ही दीखता है। जगत आत्मारूप दिखायी देता है। चर्मचक्षुसे जो दिखायी देता है वह पर्यायदृष्टि है। ज्ञानचक्षु प्राप्त होनेपर आत्मा दिखायी देगा।

'समयं गोयम मा पमाए' समय मात्रका भी प्रमाद न करें। उपयोग आत्मामें लगे, स्मरणकी ओर लगे तो कोटि कर्म क्षय हो जाते हैं। अतः समय मात्र भी उपयोग अन्य स्थान पर न भटके, इसके लिये पुरुषार्थ करें। बीत रहे अमूल्य समयको उपयोगमें लेनेके लिये जाग्रत हो जाये। यह कोटि कर्म क्षय करनेका अवसर है।

★★★

ता. १३-११-३४

यह जीव सत्पुरुषका, ज्ञानीपुरुषका प्रकट चोर है ऐसा कहा जाता है, आपको यह बात कैसी लगती है?

(चर्चा होनेके बाद उपदेश)

शुद्ध आत्मस्वरूप हमारा है। उसे ज्ञानीने जाना है, उसे छोड़कर मेरा हाथ, मेरा पाँव, मेरा शरीर आदि परवस्तु और परभावका ग्रहण चोरी है। अपनी वस्तुको छोड़कर परायीको ग्रहण करना चोरी है। शुभ-अशुभ भाव चोरी है। मात्र शुद्ध भाव अपना है।

पूरा जगत मोहनिद्रामें सो रहा है, ऊँघ रहा है। सत्पुरुषके वचन उसे ऊँघमेंसे जागृत करनेवाले हैं। सत्संगमें वे वचन-बोध श्रवण करनेसे कोटि भव नष्ट होते हैं। पापके दल संक्रमण कर पुण्यरूप हो जाते हैं। 'चमकमें मोती पिरो ले, नहीं तो घोर अंधकार है।' अतः सावधान हो

---

१. हे सुज्ञानी! बहिरात्मभाव छोड़कर अंतरात्मारूप स्थिरभाव करके परमात्मपदमय आत्मभावका चिंतन करो। आत्मा परमात्माको समर्पित करनेका अवसर आया है। हे सुमतिनाथ प्रभु! मैं आपके चरणकमलमें आत्मा अर्पण करता हूँ। (देखें–श्री आनंदघनजी कृत सुमति जिन-स्तवन)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाये। ज्ञानीको तो अब आपको जगाना है, सोने नहीं देना है। अतः जाग्रत हो जायें, चेत जायें, आत्माको पहचानें।

जन्म, जरा और मृत्यु—जन्म, जरा और मृत्यु, इनके जैसा अन्य कोई दुःख नहीं हे। यह दुःख किसे नहीं है? चक्रवर्ती, इंद्र आदि सभी दुःखी ही हैं। संपूर्ण लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। 'मेरा मेरा' मान रहा है, पर एक समय तो यह सब अवश्य छोड़ना पड़ेगा। सुई भी साथमें नहीं आयेगी। सब काम अधूरे छोड़कर जाना पड़ेगा। किसीके पूरे नहीं हुए हैं। अतः सावधान हो जाओ। काचकी शीशीकी भाँति यह देह फटसे फूट जायेगी। फिर ऐसा योग कहाँसे मिलेगा? मनुष्यभव बहुत दुर्लभ है।

आपके पास क्या है? भाव है, उपयोग है, आत्मा है। यह पूँजी आपकी है, यह मूल पूँजी है। आप सबके पास है। उसकी पहचान करो। उसकी पहचान यहाँ सत्संगमें ही होगी। स्वभावको छोड़कर विभावमें परिणत हुए हैं, शुद्ध उपयोगको छोड़कर अशुद्ध उपयोगमें रमण कर रहे हैं और परमात्मस्वरूपको छोड़कर बहिरात्मतामें रमणता है, यह सब परका ग्रहण अर्थात् चोरी है। सत्संगके प्रति अलौकिक भाव हों तभी आत्माकी पहचान होती है।

एक मात्र आत्मा, आत्मा और आत्माकी ही बात। इतना भव आत्माके लिये ही बितायें। आत्माको सँभालें। सत्पुरुषको ढूँढकर उसके एक भी वचनको ग्रहण करें, पकड़ लें। यही आपके साथ आनेवाला है।

आज्ञासे जो-जो साधन प्राप्त हुए हैं, वे मोक्ष देनेवाले होंगे। सामायिक लौकिक रीतिसे भले ही हजारों करें, पर ज्ञानीकी आज्ञासे पाँच-दस मिनिट भी आत्माके लिये बितायेंगे तो वह [1]दीपक प्रकट करेगी। 'वीतरागका कहा हुआ परम शांत रसमय धर्म पूर्ण सत्य है।' वीतराग अर्थात् कोई मतमतांतर नहीं रहा। यह पाठ चमत्कारी है, नित्य पढ़ने योग्य है।

'मारग साचा मिल गया, छूट गये संदेह।'

इस एक दोहेमें भी चमत्कार है! तोतारटंत, ऊपर ऊपरसे कंठस्थ किया होने पर भी किसी समय सत्पुरुषसे मर्म समझमें आनेपर दीपक प्रकट हो जायेगा। ऐसे चमत्कारिक इस पुरुषके—परमकृपालुदेवके वचन हैं। 'आत्मा है' आदि छह पदका पत्र अपूर्व है! भाव अलौकिक होने चाहिये। 'सम्मद्दिट्ठी न करेइ पावं' ज्ञानी आत्मा हैं। कर्म जड़ हैं। ज्ञानी जड़को पर समझकर ग्रहण नहीं करते।

"जिन सो ही है आतमा, अन्य होई सो कर्म;
कर्म कटे सो जिनबचन, तत्त्वज्ञानीको मर्म."

इस जीवको भेदज्ञानकी आवश्यकता है। वज्रकी भींत पड़े तो यह पानी इस ओर और दूसरा पानी उस ओर, अलगके अलग। बोधकी आवश्यकता है। तब जड़ और चेतन एक नहीं माने जायेंगे, अलग अलग ही लगेंगे।

अंधेरेमें दीपक लायें तो उजाला होते देर नहीं लगेगी। यह मेरा शरीर, यह मेरा घर—सब

---

१. सम्यग्दर्शनरूपी दीपक। प.पू. प्रभुश्रीजीने दीपक शब्दका प्रयोग समकित सूचक अर्थमें किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेरा मेरा करता था वह सब बदल गया। मेरा तो एक मात्र चैतन्य, जड़ कभी मेरा नहीं हो सकता, मैं उससे भिन्न हूँ, अलग हूँ–ऐसा भेदज्ञान होने पर मोक्ष होता है। समझ बदल जानी चाहिये। जहाँ तहाँ बोधकी आवश्यकता है। वह हो तो समझ बदलेगी। समझनेसे ही मुक्ति है। समझे तो सरल है, अन्यथा महा दुष्कर है। सत्संगसे समझ आती है।

अनादिसे संयोगको आत्मा माना है। इस आग्रहको छोड़ना पड़ेगा। मात्र आत्मा, आत्माकी पकड़ करें। आत्माकी कैसी सत्ता है! आत्मा कैसा है! आत्माको जाननेका अवसर आया है।

एक भाई सामायिक लेकर बैठा। सामायिक पूरी होनेपर मित्रके साथ नाटक देखने जायेंगे, इस विकल्पमें सामायिक पूरी हुई। दूसरा भाई व्यावहारिक कामसे स्मशानमें गया, किंतु भाव सामायिकके थे, उसीका विचार था। दूसरे दिन गुरुने कहा, "सामायिक तो स्मशानमें गया, उसे हुई, उसे तप हुआ। दूसरे भाईने तो कर्म बाँधे। निवृत्ति मिली तब सत्यानाश किया!"

★★★

ता. १६-११-३४

'श्रीमद् राजचंद्र'में से वाचन–

"जो जीव मोहनिद्रामें सोये हुए हैं वे अमुनि हैं। निरंतर आत्मविचारपूर्वक मुनि तो जाग्रत रहते हैं। प्रमादीको सर्वथा भय है, अप्रमादीको किसी तरहसे भय नहीं है।"

प्रमत्त किसे कहेंगे? अप्रमत्त किसे कहा जायेगा?

आत्मभावमें रहे वह अप्रमत्त। वस्तुको प्राप्त ऐसे आप्त पुरुषमें वृत्ति, परिणाम ले जाना अप्रमत्त होनेका कारण है। सत्संगमें बोध सुना हो तदनुसार यह मेरा नहीं, यह मेरा नहीं, यों भिन्नता अनुभव करें अर्थात् भेदज्ञान हो तो अप्रमत्त बना जायेगा।

विषय-कषाय बड़े शत्रु हैं। विषयोंके बाह्य त्यागसे भी फल है। पर जब तक अंतरंग त्याग न हो तब तक काम नहीं बनता। वृक्षको ऊपर ऊपरसे काटने पर जब तक मूल रहेगा, तब तक फिरसे उगेगा, नष्ट नहीं होगा; किन्तु मूलमेंसे काट देगें तो ही दुबारा नहीं उगेगा। इसी प्रकार अंतरके विषय-कषायको निर्मूल करें। वृत्तिका क्षय करनेका पुरुषार्थ करें।

"एही नहि है कल्पना, एही नहीं विभंग;
जब जागेंगे आतमा, तब लागेंगे रंग."

दीपकसे दीपक प्रकट होता है। आप्तपुरुष दीपक है। उसमें वृत्ति, परिणाम करनेसे दीपक प्रकट होगा।

आलस्यमें, प्रमादमें, गफलतमें सब जा रहा है। "कदम रखनेमें पाप है, देखनेमें जहर है और सिर पर मौत सवार है, यह विचार करके आजके दिनमें प्रवेश कर।" जो कल करना है उसे आज ही कर लें। कालका विश्वास नहीं है।

आत्माको देखना हो, पर गुरुगमके बिना कैसे देखेंगे? वहाँ तो ताले जड़े हुए हैं। तब चाबीके बिना द्वार कैसे खुलेगा? 'पावे नहि गुरुगम बिना, एही अनादि स्थित।' यह कथन त्रिकालमें भी नहीं बदलेगा। गुरुगम तो चाहिये ही।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १७-११-३४

बड़ेसे बड़े शत्रु पाँच विषय और चार कषाय हैं। उनके प्रति कटाक्ष दृष्टि रखें।

छह खिड़कियोंवाले एक मकानमें खड़े रहकर दिनभर एक खिड़कीको छोड़कर दूसरीसे, दूसरीको छोड़कर तीसरीसे, यों खिड़कियोंसे बाहर ही देखा करे तो मकानके अंदर क्या है उसका पता नहीं लगता। इसी प्रकार पाँच इन्द्रियाँ और मनसे आत्मा बाह्य विषयोंमें ही आसक्त रहे तब अंदर क्या है वह किस प्रकार ज्ञात हो? खड़ा तो अंदर है पर दृष्टि बाहर है। उस दृष्टिको अंदर करना है। आत्माको देखना है। तब अपनी सर्व विभूति ज्ञात होगी।

अपनी वस्तु तो आत्मा है। संकल्प विकल्प आदि अपने नहीं है। आत्माको देखें, अंतरमें देखें। बाहर देखनेसे बंधन हुए हैं। मेहमान है, अतिथि है। 'पवनसे भटकी कोयल।' अकेला है, अकेला जायेगा। अभी भी बंधनमें है, मनुष्यभव महान पुण्यसे मिला है। बंधनसे छूटनेका उपाय सत्संग और सत्पुरुषका बोध है। आत्माकी बात, उस पर विचार मनुष्यभवमें ही हो सकता है। कोटि भव नष्ट होते हैं।

सब कलंक है, संयोग है, नाशवान है। अकेला आया है और अकेला जायेगा। अब आत्मासे सगाई करो, उसे पहचानो। सद्गुरुके बिना ज्ञान नहीं है।

आप सिद्ध समान है, आत्मा है। पुरुष नहीं, स्त्री नहीं। 'पर्याय दृष्टि न दीजिये' जहाँ दृष्टि डाले वहाँ आत्मा देखें। जगत आत्मारूप देखा जाय तो कैसा हो जाय! पर गुरुगम चाहिये। विषय-कषाय सो तू नहीं, तू तो आत्मा है। यह सब तेरा नहीं है, यह तो संबंध है। संबंध तो छूट जाता है। प्रत्येकके पास आत्मा है, भाव है, उपयोग है।

कमी किसकी है? भान नहीं है उसकी। दृष्टि बदलनेसे ही भान होता है। विकारयुक्त दृष्टि हो वहाँ वैराग्ययुक्त दृष्टि करनी चाहिये। यही पुरुषार्थ कर्तव्य है।

★★★

ता. ३०-११-३४

'नहीं, नहीं, नहीं' करते जो शेष रहे वह तू है।

जिसे देखना है उस पर भाव करें तो वैसा परिणमन होता है। उपयोगकी बहुत आवश्यकता है। उपयोग पहचान कराता है। यह जड़ और यह चेतन—ऐसी पहचान नहीं है।

सभी भूलोंमें मूल भूल क्या है? मिथ्यात्व। संसारका मूल मिथ्यात्व है। जड़को अपना मानना ही मिथ्यात्व है। वस्तुकी पहचान नहीं है। जो जैसा हो उसे वैसा न कहा जाय और अन्य कहा जाय यही मूल भूल है, यही अज्ञान है। आत्मा सत् है, उसके स्थान पर मिथ्या जगतको सत् कहता है। आत्माको देखा हो तो ज्ञान कहलाता है। अन्यको अपना मानना और स्वयंको भूल जाना, है कुछ और देखना कुछ, क्या यह भूल नहीं है? आत्माके बिना क्या यह सब देखा जा सकता है? अतः उसे देखें। उस पर भाव हों तो तुरत परिणमन होता ही है। जीवको इसीका ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। इसे सँभालना चाहिये, स्मरणमें याद करना चाहिये, इसीमें ही चित्त लगाना चाहिये। यही कर्तव्य है। सावचेत होने जैसा है, धोखा है। यह सब सत्य नहीं है। मायावी प्रकाश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सच्चा नहीं, बनावटी है, पतंगका रंग है, मजीठका नहीं। जीवको समझ हो तो मजीठका रंग लगता है। यह कर्तव्य है। 'कर विचार तो पाम' यह कथन चमत्कारी है।

आत्मसिद्धिमें बहुत अच्छी बात कही है–

"छूटे देहाध्यास तो, नहि कर्ता तुं कर्म;
नहि भोक्ता तुं तेहनो, अे ज धर्मनो मर्म."

जिनको देहाध्यास छूट गया है, वे करते हुए भी नहीं करते, खाते हुए भी नहीं खाते, बोलते हुए भी नहीं बोलते, भोग भोगते हुए भी नहीं भोगते, यह आश्चर्य तो देखो! तब उन्हें भेदज्ञान हुआ न? हैं तो संसारमें, फिर भी संसारमें नहीं; देहमें होते हुए भी देहमें नहीं है! यह समझमें परिवर्तन हो गया न?

यह तो 'सुख आया, दुःख आ पड़ा, पूजा हुई, सत्कार हुआ, व्याधि आयी, मरण आया' यों मान बैठा वहाँ कर्ता भोक्ता हुआ। स्वयं कैसा है? सिद्धके समान, न छोटा न बड़ा। ऐसी दृष्टि छोड़ेगा? मात्र दृष्टिकी भूल है। यह भूल नहीं निकली है। बालककी भाँति बाहर देखता है, इसे नहीं देखता। पर्याय देखकर उसे आत्मा माना। 'बूढ़ा हूँ, दुःखी हूँ', यह सब मिथ्या माना है। तू मोक्ष-स्वरूप है।

"अे ज धर्मथी मोक्ष छे, तुं छो मोक्षस्वरूप;
अनंत दर्शन ज्ञान तुं, अव्याबाध स्वरूप."

तू ऐसा नहीं है। बाधा-पीड़ा रहित, अनंत ज्ञानदर्शनवाला तू है। विश्वास आयेगा? मिथ्याको सत्य मानना यह कैसी भारी भूल है! मूल वस्तु पर विचार नहीं किया। अजर, अमर, अविनाशी, शाश्वत! न स्त्री, न पुरुष, ऐसा तू आत्मा है। हम कह रहे हैं उसे तू सत्य मान। विचार करेगा तो आनंद ही आनंद हो जायेगा।

"शुद्ध बुद्ध चैतन्यधन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहिये केटलुं? कर विचार तो पाम."

इन तीन गाथाओंमें यों पकड़ा दिया है। मृत्युके समय इन तीन गाथाओंमें उपयोग लग जाय तो काम बन जाय। इसका भेदी मिले, पकड़ हो, विचार करें तो पाये, समाधिमरण हो जाय।

एक दिन यह देह तो छूटेगी, मरण आयेगा तब देख लेना! जीभ सूख जायेगी, कानसे सुनाई नहीं देगा, आँखका सामर्थ्य चला जायेगा। काम अधूरे छोड़कर आया है, अधूरे छोड़कर जायेगा। सब गये छोड़ छोड़कर। काल किसीको छोड़ता है?

मेहमानो! अवसर आया है। यह चमत्कारिक गाथा आत्माको समझनेके लिये है। इसे लौकिक दृष्टिमें निकाल दिया है। अलौकिक दृष्टिसे नहीं देखा है। मृत्युकी वेदनाके समय बोध याद आ जाये तो काम बन जाये। भले ही ऐसा दुःख रहे, पर मेरा तो–शुद्ध बुद्ध, चैतन्यधन, स्वयंज्योति सुखधाम–ऐसा आत्मस्वरूप है। वेदना, रोग, मृत्यु कोई मेरे नहीं हैं। इसे देखनेवाला, जाननेवाला भेदविज्ञान द्वारा भिन्न प्रतीत होता है। 'कर विचार तो पाम।'

ज्ञानी और अज्ञानी दोनोंको रोग तो भोगना ही पड़ता है। परंतु ज्ञानी कहते हैं–"इससे दुगुनी वेदना भले ही आये, मैं तेरे घरमें रहूँगा तब न? क्षमा, सहनशीलता, संतोष, धैर्य, समता–इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुंदर आत्माके घरमें मैं निवास करूँगा। फिर वेदना मेरा क्या बिगाड़ सकती है?" भेदविज्ञान होनेसे ज्ञानी परमें परिणमित नहीं होते परंतु ज्ञाता-द्रष्टा साक्षी रहते हैं, न्यारेके न्यारे रहते हैं।

★★★

ता. २६-१२-३४

आत्मा ही सारे जगतमें सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। आत्मामें जो सुख है वह संसारमें कहीं नहीं है। इन्द्रके, चंद्रके सुख भी नाशवान हैं, माया हैं। सच्चे सुखी एक मात्र ज्ञानी हैं। वे आत्मामें रमण करते हैं। ज्ञानीके पास दिव्य चक्षु होते हैं, जिससे वे आत्माको देखते हैं। अन्य जीव बाह्य दृष्टिसे पर्यायको देखते हैं। चर्मचक्षुसे आत्मा नहीं देखा जा सकता।

आत्माको किस प्रकार देखा जाय?

पूर्वकर्म और पुरुषार्थसे। पूर्वकर्म है तो यह मनुष्यभव मिला है; सत्संग, सत्पुरुषका योग यह सब मिला है। अतः अब अवसर आया है। तैयार हो जायें। पुरुषार्थ करें। सत् और शील पुरुषार्थ है।

शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन, अनंत सुखमय, मोक्षस्वरूप, परमात्मा-सिद्ध-समान सर्व जीव हैं। ज्ञानीकी भक्ति सहित सत्संगमें आत्माकी बात सुनना पुण्यका कारण है--कोटि कर्मका नाश होता है। अतः पुरुषार्थ करें। चमकमें मोती पिरो लें। मृत्यु तो सबको एक दिन आयेगी। उसके पहले चेत जायें। 'समयं गोयम मा पमाए' यह वाक्य चमत्कारी है। समय मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

★★★

ता. २७-१२-३४

कैसे शाश्वत सुख हैं आत्माके! उनका वर्णन नहीं हो सकता! इन्द्र, चक्रवर्ती आदिके सुख, सर्वार्थसिद्धिके सुख भी कुछ गिनतीमें नहीं। सांसारिक सुख सब नाशवान हैं, पराधीन हैं। आत्माका सुख अनंत है, स्वाधीन है। मोहकी प्रबलता इतनी अधिक है कि वह श्रद्धाको अचल होने ही नहीं देता। मनुष्यभव कितना दुर्लभ है? भाव बदले तो केवलज्ञान! यह मनुष्यभवमें ही हो सकता है। अतः इस मनुष्यभवको सफल करनेके लिये जाग्रत हो जाओ, जाग्रत हो जाओ।

यह रोग हुआ है, असाता वेदनीका उदय हुआ है, उस समय यदि ऐसी समझ रहे कि "यह रोग तो शरीरमें होता है, यह तो कर्म है। उसको जानने-देखनेवाला मैं तो आत्मा हूँ। मैं तो रोगादिसे केवल भिन्न हूँ। ये कर्म क्षय हो रहे हैं, तब यह मुझे हो रहा है ऐसा नहीं सोचना चाहिये। ज्ञानीने देखा है, अनुभव किया है, ऐसा आत्मा मेरा है, वह मैं हूँ। वह तो रोग आदिसे कभी विनष्ट नहीं हो सकता।" ऐसी समझ रहें, देहात्मबुद्धि छूटकर स्वयंको ज्ञाताद्रष्टा भाव रहे तो कर्म क्षय होते हैं। किन्तु यदि ऐसा माने कि यह मुझे हो रहा है, हर्ष शोक करें तो उस देहात्मबुद्धिसे नवीन अनंत असाताका बंध कर डालता है। समझ बड़ी बात है। कर्मशत्रुको मारनेके लिये भेदविज्ञान प्रबल असिधारा है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. २५-१-३५

राग, द्वेष और मोहने पूरे जगतको वशमें कर रखा है। जन्म-मरण करानेवाले बड़ेसे बड़े शत्रु ये हैं। किसकी शक्ति है कि इन्हें जीत सके? एक वीतरागने इन अनादिकालके शत्रु राग, द्वेष, मोहकी चोटी पकड़कर खींचा है, चूर चूर कर दिया है। धन्य है उन अरिहंत वीतरागको!

"क्षण क्षण करते अनंतकाल बीत गया, फिर भी सिद्धि नहीं हुई।"

तो अब कर्म न बँधे उसके लिये क्या करें? ज्ञानीसे ऐसी कौनसी चाबी मिली है कि जिससे कर्मबंध न हो? 'सम्मद्दिट्ठी न करेइ पावं'। चिंतामणि जैसी यह मनुष्य देह मिली है, इसमें चाहे जो किया जा सकता है। कोई एक भेदी मिलना चाहिये। उसके द्वारा समझ आनी चाहिये। 'ज्ञानी श्वासोच्छ्वासमें करे कोटि कर्मका छेद।' 'समयं गोयम मा पमाए'–समय मात्रका प्रमाद कर्तव्य नहीं है।

जीव नींदमें है, जिससे कर्म बँधते हैं। जाग जाये तो कर्म नहीं बँधते। "हे जीव! प्रमाद छोड़कर जाग्रत हो, जाग्रत हो, नहीं तो रत्नचिंतामणि जैसी यह मनुष्यदेह निष्फल जायेगी।"

कर्म न बँधे इसका उपाय होगा न? जहाँ 'मैं' और 'मेरा' माना जाता है, वहाँ कर्म बँधते हैं। जिसको 'मैं' और 'मेरा' मिट गया है, उसे कर्मबंध नहीं होता। गुत्थी उलझ गई है उसे सुलझाना होगा। योग्यता नहीं है, अन्यथा आँख बंधकर खोलने जितने समयमें समकित होता है। पर सिंहनीका दूध मिट्टीके बरतनमें नहीं रह सकता, सोनेका पात्र चाहिये। अतः योग्यता प्राप्त करें।

योग्यता अर्थात् सदाचरणमें प्रवृत्ति। सत् शील और आत्मभावना ही सदाचरण है–यही पुरुषार्थ किया करें।

चर्मचक्षुसे देखते हैं। उसे छोड़कर दिव्यचक्षु प्राप्त करें। 'जगत आत्मारूप देखनेमें आये'– आत्मा पहले हो तो जगतमें यह सब देखा-जाना जाता है। आत्मा न हो तो ये सब मुर्दे हैं। उस आत्माको यथार्थमें तो, अनंतज्ञानी जो मोक्ष गये हैं, सिद्ध हुए हैं, उन्होंने जाना है। वैसा ही यथार्थ आत्मा ज्ञानी सद्गुरुने जाना है। वैसा ही सिद्ध समान शुद्ध आत्मा मेरा है, वही मेरा स्वरूप है। इसके सिवाय कुछ भी इस जगतमें मेरा नहीं है। यों 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे।'

वृत्तिको क्षय करें। 'क्षण क्षण बदलती स्वभाववृत्ति नहीं चाहिये।' सबसे श्रेष्ठ उपाय भक्ति है, स्मरण है। श्रवण करना भी भक्ति है। चलते-फिरते, प्रत्येक काम करते स्मरण करना भी भक्ति है, आस्रवमें भी संवर होता है। क्रोधके समय भी आत्मा याद आयें, वादविवाद हो, तकरार हो, बीमार हो, रोग आये–सब समय 'आत्मा है' यों आत्मा देखे तो काम बन जाय। सबको देखने और जाननेवाला, सबसे अलग ही अलग जो है वह आत्मा है। उसे मैंने नहीं जाना है, पर अनंत ज्ञानियोंने और सद्गुरुने जाना है वह मुझे मान्य है, ऐसा दृढ़ निश्चय करना चाहिये।

"होत आसवा परिसवा, नहि इनमें संदेह;
मात्र दृष्टिकी भूल है, भूल गये गत एह."

यों चलते-फिरते आस्रवमें भी आत्माका स्मरण हो तो संवर होता है। ज्ञानीके पास ऐसी चाबी है कि वे प्रत्येक प्रसंगमें–चलते, फिरते, उठते, बैठते, पाँव रखते आत्माको देखते हैं। "जगत आत्मारूप देखनेमें आयें, जो हो उसे योग्य ही माननेमें आये।" रोग आये, मृत्यु आये तो भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानीको महोत्सव है। योग्यता प्राप्त होने पर चाबी मिले तो आत्मा दिखायी देता है। "मात्र दृष्टिकी भूल है।" आत्मा सँभाला जाये, स्मरण, भक्ति, एक शब्द 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे' यों उपयोग स्मरणमें जुड़े तो कोटि कर्म क्षय हो जाते हैं। सत्संगमें एक शब्द सुननेसे दस हजार वर्षका नरकका आयुष्य टूटता है और दस हजार वर्षका देवका आयुष्य बँधता है।

"रचना जिन उपदेशकी, परमोत्तम तीनु काल;
इनमें सब मत रहत है, करते निज संभाल."

परायी पंचायतको छोड़कर जिन अर्थात् आत्माका उपदेश जो तीनों लोकमें उत्तम है उसे सुन और अपनी संभाल कर ले।

"जिन सो ही है आतमा, अन्य होई सो कर्म,
कर्म कटे सो जिनबचन, तत्त्वज्ञानीको मर्म."

जिन ही आत्मा है। अन्य सब जो जगतमें दिखायी देता है वह पुद्गल है, कर्म है। जिनवचन, ज्ञानीके वचन कर्म काटनेमें समर्थ हैं। यह तत्त्वज्ञानीका मर्म है।

"जब जान्यो निजरूपको, तब जान्यो सब लोक;
नहि जान्यो निजरूपको, सब जान्यो सो फोक."

'पूरे गाँवकी बुआ', 'पंचायतियोंके बच्चे भूखों मरते हैं।' यों विकथामें समय बिता देनेमें स्वयंके स्वरूपको नहीं जाना। अतः जो जाना वह सब व्यर्थ हो गया। अब तो अपने आत्माको सँभालो। परवस्तुका संग्रह कर बैठे हो, अतः चोर हो। अपनी वस्तुको सँभालो। सर्व जीवके प्रति मैत्रीभाव, प्रमोदभाव, मध्यस्थभाव, करुणाभाव रखो। चलते-फिरते आत्मा देखो, स्मरण करो।

"एहि दिशाकी मूढ़ता, है नहि जिनपें भाव;
जिनसें भाव बिनु कबू, नहि छूटत दुःखदाव."

भाव संसारमें है उसे उठाकर जिन, शुद्ध आत्मापर करो। जिनेन्द्र पर भाव नहीं है, आत्माको देखनेका लक्ष्य नहीं है, यही दिशाकी मूढ़ता है। आत्माको सँभालो। उस पर भाव हुए बिना दुःख कभी दूर नहीं होगा।

"व्यवहारसें देव जिन, निहचेंसे है आप;
ये हि बचनसे समझ ले, जिन-प्रवचनकी छाप."

व्यवहारसे जिनेन्द्र ही देव हैं। निश्चयसे 'आप'—अपना शुद्ध आत्मा ही देव है। इन वचनोंसे जिन-प्रवचनकी छापको समझ लो।

परमकृपालुदेवके ऐसे छोटे छोटे वाक्योंमें ऐसा-ऐसा मर्म भरा है, पर घोलकर पिया नहीं गया। फिर भी जो विश्वास और प्रतीति रखेंगे उन हजारों जीवोंका भी काम बन जायेगा।

चलते-फिरते, घूमते-भागते, एक पाँव भी बढ़ाते, चाहे तो आस्रवमें भी यदि आत्मा देखोगे तो समाधिमरण होगा। देखने और जाननेवाला आत्मा तो सबसे न्यारा ही न्यारा रहता है, वह अजर है, अमर है, अविनाशी है। ज्ञानीने उसे जाना है, वैसा ही मेरा आत्मा है वह मुझे मान्य है। उसे संभालो।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आबू, ता. २६-३-३५

आत्माका सुख अनंत है। आत्माकी खोज करें। उसका विचार नहीं किया। निवृत्तिमें आत्मविचार और अपूर्व आत्मलाभ हो सकता है। इसलिये ज्ञानी निवृत्तिकी ही इच्छा करते हैं।

★★★

आबू, ता.२९-३-३५, फाल्गुन वदी ९, १९९१

'श्रीमद् राजचंद्र'में से पत्रांक ४३१ का वाचन–

"आत्मारूपसे सर्वथा उजागर अवस्था रहे, अर्थात् आत्मा अपने स्वरूपमें सर्वथा जाग्रत हो तब उसे केवलज्ञान हुआ है, ऐसा कहना योग्य है, ऐसा श्री तीर्थंकरका आशय है।"

उजागर अवस्थासे क्या तात्पर्य है?

सत्पुरुषके एक-एक वाक्यमें अनंत आगम समाये हुए हैं। इस पत्रमें गहन अर्थ समाहित है। सब जीव मोहनिद्रामें ऊँघ रहे हैं। ज्ञानी जाग्रत हुए हैं। ज्ञानियोंने जड़ और चेतन इन दो पदार्थोंको अलग-अलग जाना है।

यह जीव अनादिसे मोहनिद्रामें सो रहा है। जहाँ-जहाँ जन्मा है, वहाँ-वहाँ लवलीन, तदाकार हो गया है। शरीरको अपना मानकर उसके साथ एकाकार होकर प्रवृत्ति करता है। जो संयोग है उसमें मैं और मेरापन जहाँ-तहाँ कर बैठा है। मैं बनिया हूँ, पटेल हूँ, ब्राह्मण हूँ, स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, सुखी हूँ, दुःखी हूँ, दर्जी हूँ, सुतार हूँ यों संयोग और कामको लेकर जो नाम पड़े, उसमें मैं और मेरापन कर बैठा है। क्या यह आत्माका सुख है? आत्माका सुख तो अनंत है, जिसे ज्ञानीने जाना है।

"हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?"

आत्माको कभी नहीं सँभाला। इसका ध्यान नहीं रखा है। अब सावधान होनेका अवसर आया है। मनुष्यभव महादुर्लभ है। आत्माकी पहचानके बिना अनंतभव गये। इस भवमें पहचान कर लेनेका अवसर आया है। शीलव्रत महाव्रत है। संसारसमुद्रके किनारे पहुँचे हुएको ही यह व्रत आता है। 'नीरखीने नवयौवना लेश न विषयनिदान'– यह पद अलौकिक है।

"पात्र विना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान;
पात्र थवा सेवो सदा, ब्रह्मचर्य मतिमान."

योग्यताके बिना रुका हुआ है। सब जीवोंको गुरुगमकी आवश्यकता है। उसके बिना ताले नहीं खुलेंगे। सत्पुरुषकी प्रतीति, श्रद्धा, विश्वासकी कमी है।

"आत्मभ्रांति सम रोग नहि, सद्गुरु वैद्य सुजाण;
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहि, औषध विचार ध्यान."

'आत्मसिद्धि' चमत्कारिक है, लब्धियोंसे परिपूर्ण है। मंत्र समान है। माहात्म्य समझमें नहीं आया है। फिर भी प्रतिदिन पाठ किया जाये तो काम बन सकता है।

केवलज्ञान, परमार्थ सम्यक्त्व, बीजरुचि सम्यक्त्व तो क्या, पर अभी तो मार्गानुसारिता भी नहीं आयी, तब समकितकी तो बात ही क्या? फिर भी समकित सरल है, सुगम है, सुलभ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'सवणे नाणे विन्नाणे' सत्संगमें आत्माकी परोक्ष श्रद्धा होती है। उसमेंसे प्रत्यक्ष होती है। पहले परोक्ष करनेके लिये सत्संग, सद्बोधकी आवश्यकता है।

★★★

आबु, ता. ३१-३-३५

'जो जानता हूँ उसे नहीं जानूँ, जो नहीं जाना उसे जानूँ।'—जानने योग्य एक आत्मा है। अन्य सब छोड़ने योग्य है।

चलते-फिरते, बोलते-चालते, जहाँ दृष्टि पड़े, वहाँ एक आत्मा देखा जाय तो काम बन जाय। परोक्ष भी मान्यता ऐसी रहे कि मैंने नहीं पर मेरे ज्ञानीने तो आत्माको देखा है। बस वैसा ही मुझे मान्य है। आत्माके अतिरिक्त अन्य कुछ भी मेरा नहीं है। यों परोक्ष लक्ष्य रहें तो उसमेंसे प्रत्यक्ष हो जायेगा।

सारा संसार त्रिविध तापसे जल रहा है। उससे बचानेवाला एक मात्र समकित है। उसे प्राप्त करनेके लिये जाग्रत होनेका अवसर आया है। उसकी भावना रखें।

संतसे जो भी समझ प्राप्त हो उसे पकड़कर, तदनुसार प्रवृत्ति करनेका लक्ष्य रखें। बीस दोहे, क्षमापना—इतना भी यदि संतसे मिला हो तो ठेठ क्षायिक समकित प्राप्त करायेगा, क्योंकि आज्ञा है वह ऐसी वैसी नहीं है। जीवको प्रमाद छोड़कर योग्यतानुसार जो जो आज्ञा मिली हो, उसकी आराधनामें लग जाना चाहिये, फिर उसका फल तो मिलेगा ही।

सत् और शील योग्यता लायेंगे। और अंतमें कह दूँ? ये अंतिम दो अक्षर भवसागरमें डूबतेको तारनेवाले हैं। वह क्या है? भक्ति, भक्ति और भक्ति। स्वरूप-भक्तिमें परायण रहें।

★★★

आबू, ता. १-४-३५

जब तक शरीर ठीक है तब तक धर्म कर लें। प्रमाद न करें। मनुष्यभव महा दुर्लभ है। अकेला आया है और अकेला जायेगा। एक धर्म ही साथ चलेगा। अतः चेत जायें। ऐसा योग फिर मिलना दुर्लभ है। यह शरीर अच्छा है तब तक इससे काम करा लें। भक्ति करनेमें इस मनुष्यदेहका उपयोग कर लें। ये हड्डियाँ, चमड़ा, खून क्या ये आत्मा है? आत्मा अपूर्व वस्तु है। उसका सुख अचिंत्य है। खाते-पीते, चलते-फिरते, एक चाबी जिनको प्राप्त हो गयी है, ऐसे ज्ञानी बँधते नहीं।

मोक्षमार्गमें जानेवालेको क्रोध, मान, माया, लोभ छोड़ने पड़ेंगे। लाख वर्षका चारित्र भी क्रोधसे जलकर भस्म हो जाता है और नरकमें ले जाता है, ऐसा महाशत्रु क्रोध है। मान भी बड़ा शत्रु है। विनय धर्मका मूल है। विनय है, लघुता है—छोटे हैं वे बड़े बनेंगे। मायासे मैत्रीका नाश होता है। जो सरल हैं, वे ही धर्मप्राप्तिके उत्तम पात्र हैं। 'लोहो सव्व विणासणो।' लोभसे सब नष्ट होता है। जिसका लोभ छूटा उसे समकित प्राप्तिका हेतु मिल गया। चारों कषायों पर विस्तारसे लिखा जाय तो एक पुस्तक भर जाय। मोक्षमार्गमें आगे बढ़नेवालेको इन सबको छोड़ना है।

हर्ष-शोक नहीं करें। सबको चले जाना है। संयोग है, उसका वियोग तो होगा ही। आत्मा मरता नहीं। पर्यायका नाश होता है। आत्मा अविनाशी है। उसे पहचाननेका यह अवसर आया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। प्रतिदिन नियमित भक्ति करें। बीस दोहे, क्षमापना, छह पदका पत्र, आत्मसिद्धि, स्मरण, 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे' इनका प्रतिदिन पाठ करें। "अनादि स्वप्नदशासे उत्पन्न जीवके अहंभाव ममत्वभावकी निवृत्तिके लिये ज्ञानीपुरुषोंने यह छह पदकी देशना कही है।" इसके अर्थ पर विचार करें। चमत्कारिक है। भक्तिमें लगे रहें।

इस कालमें एक समकित सुलभ है, सरल है। श्रद्धा, प्रतीति, विश्वाससे इसे पकड़ लें। कालका भरोसा नहीं है। पक्षियोंका मेला है। हो सके उतना धर्म कर लें।

★★★

आबू, ता. २-४-३५, रात्रिमें

'आत्मसिद्धि' और 'छ पद'का पत्र चमत्कारी है! लब्धियाँ प्रकट हो ऐसा है। प्रतिदिन पाठ करनेसे भी कोटि कर्म क्षय होते हैं। नौ निधान और अष्टसिद्धि इसमें समाहित है।

'रंकके हाथमें रत्न'–जैसे बालकके हाथमें स्वर्णमोहर और कंकर हो तो उसे दोनों समान है, वैसे ही योग्यताके बिना, अधिकारित्वके बिना जीवोंको उसका माहात्म्य समझमें नहीं आता। अलौकिक भावसे, अलौकिक दृष्टिसे देखना चाहिये, वैसा देखा नहीं जाता। कृपालुदेवने पहले चार व्यक्तियोंको ही आत्मसिद्धि दी थी। अन्य किसीको पढ़ानेकी, सुनानेकी, मौखिक याद करनेकी मनाही थी। मात्र सौभाग्यभाईने इसका महत्त्व समझा था। इसमें आत्मा दिया गया है, ऐसा उनकी समझमें आया था। योग्यताके बिना इसका अलौकिक माहात्म्य नहीं लगता। पाँच-पाँचसौ गाथाओंका स्वाध्याय करनेकी अपेक्षा इसका स्वाध्याय अलौकिक है! जौहरी ही नगीनेका मूल्य जानता है, बालकको उसके मूल्यका पता नहीं।

आज हर किसीको इसे कंठस्थ करनेकी आज्ञा मिली है, क्योंकि काल कठिन है। योग्यता प्राप्त हो तो काम होता है। जिज्ञासा बढ़ायें, कमी दूर करें। जिज्ञासा जैसी चाहिये वैसी नहीं है। इसीकी उत्कंठा हो तो एक गाथामें भी चमत्कार है। उसका माहात्म्य समझमें आयेगा अलौकिक भाव आने पर। ओहो! यह तो मुझे मौखिक याद है, यों सामान्य बनाकर बुरा किया है। यह गहन अर्थसे भरपूर है। इसे कौन जानता है?

"छूटे देहाध्यास तो, नहि कर्ता तुं कर्म;
नहि भोक्ता तुं तेहनो, अे ज धर्मनो मर्म.
अे ज धर्मथी मोक्ष छे, तुं छो मोक्षस्वरूप;
अनंत दर्शन ज्ञान तुं, अव्याबाध स्वरूप."

इस पर विचार ही कहाँ किया है? 'कर विचार तो पाम' यह लब्धिवाक्य है।

'जे लोकोत्तर देव नमुं लौकिकथी' ऐसा हुआ है। अलौकिक भावसे नमस्कार करना चाहिये। अलौकिक भावसे देखना चाहिये। उसे सामान्य बना दिया है। तब अलौकिक फल कैसे प्राप्त होगा?

"अनादि स्वप्नदशासे उत्पन्न जीवके अहंभाव ममत्वभावकी निवृत्तिके लिये ज्ञानीपुरुषोंने यह छह पदोंकी देशना कही है। उस स्वप्नदशासे रहित मात्र अपना स्वरूप है, यदि जीव ऐसे परिणाम करे तो वह सहज मात्रमें जागृत होकर सम्यग्दर्शनको प्राप्त करता है"– यों सम्यग्दर्शन सुलभ है! पर विचार नहीं किया। नित्य पाठ करता है, पर गहरे उतरकर विचार नहीं करता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लाखों करोड़ों रुपये होंगे पर एक पाई भी साथ नहीं ले जायेगा। इसमेंसे कुछ कंठस्थ किया होगा, नित्य पाठ किया होगा तो वह धर्म साथमें ले जायेगा।

★★★

आबू, ता. ४-४-३५

भेदविज्ञानसे शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है। ऐसे शस्त्र हैं, पर उनका उपयोग नहीं किया है। जो यह जानता है कि चावल और छिलके अलग अलग है वह छिलकोंको छोड़कर चावल प्राप्त करता है। वैसे ही आत्मा और कर्म भिन्न भिन्न हैं, ऐसे भेदज्ञानके अभ्याससे शुद्ध आत्माकी प्राप्ति होती है। आत्मा मरता नहीं, जलता नहीं, कटता नहीं, भेदा जाता नहीं। आत्माकी मृत्यु नहीं होती ऐसा निश्चय हो जाय तो कितनी शांति मिले!

ये वचन कानमें पड़ते हैं ये कैसे महाभाग्य हैं! यहाँ कोटि कर्म क्षय होते हैं। यह भक्ति है। भक्ति ही भवसे तारनेवाली है। मनुष्यभव महादुर्लभ इसीलिये कहा गया है। जब तक रोग नहीं लगा, बुढ़ापा नहीं आया तब तक आत्माकी संभाल ले ले। रुपया-पैसा, मान-बड़ाई, मेरा तेरा यह सब धूल है। अपना तो एकमात्र आत्मा है। लाखों रुपये एकत्रित करेंगे तो भी यहीं छोड़कर जाना पड़ेगा, कोई साथ नहीं ले गये, न ले जायेंगे ही।

कमाईका ढेर तो यहाँ सत्संगमें लगता है। वचन सुननेके अनुसार आत्मा परिणमित हो जाय तो कोटि कल्याण हो जाय। अकेला आया है, अकेला जायेगा। लूटमलूट लाभ उठानेका यह अवसर आया है! क्या करें? अधिकारी नहीं है। कमी किस बातकी है? ये सब सो रहे हैं, अभी भी जागते नहीं। मोहनिद्रामें सो रहे हैं यही कमी है। 'जब जागेंगे आतमा, तब लागेंगे रंग।' सब लौकिकभावमें निकाल दिया है, अलौकिक भाव आया ही नहीं। अनादिसे ऊँघ रहा है, अब जागृत हो जायें। लूटमलूट लाभ उठा लें। समय मात्रका भी प्रमाद न करें। 'समयं गोयम मा पमाए'। शीशी फटसे फूट जाती है, वैसे ही देह छूट जायेगी।

'जागे तभी सबेरा' 'भूले वहींसे फिर गिनो' आत्मा तो मरनेवाला नहीं है। अतः अब उसकी सँभाल लो। [1]सब सबकी संभालो, मैं मेरी फोड़ता हूँ।' अपनी–अपने आत्माकी सँभाल इस एक भवमें तो कर लो।

शत्रुंजय पर्वत पर शत्रुओंने पाँडवोंको लोहेके तप्त बख्तर पहनाकर भयंकर उपसर्ग किया। पर पांडव देहाध्यास छोड़कर आत्मध्यानमें तल्लीन रहे, आत्मध्यानमें अचल रहे और शिवपदको प्राप्त हुए। पाँडवोंने क्या किया? "आत्मा अपना है, वह तो अजर, अमर, देहादि कर्म नोकर्मसे भिन्न, ज्ञाताद्रष्टा, ज्ञान-दर्शन-उपयोगमय, शुद्ध, बुद्ध एकस्वभावी है। उपसर्ग आदि शरीरको होते हैं, आत्मा और शरीरमें आकाश-पाताल जितना अंतर है" इस प्रकार भेदज्ञानसे आत्मध्यानमें अचल रहे।

---

१. कुछ पुरबियें नदी किनारे वनभोजनके लिये गये थे। सबने अपना-अपना चौका बनाकर रसोई तैयार की। फिर सब एक साथ नदीमें नहाने गये। नहाकर वापस आने पर एक पुरबियेको शंका हुई कि मेरा चौका कौनसा होगा। यह निश्चित करनेके लिये उसने एक पत्थर उठाकर कहा "सब अपनी सँभालो, मैं अपनी (हंडी) फोड़ता हूँ" अतः सब अपनी अपनी हंडीको सँभाल बैठे। तब उसने पत्थर फेंककर अपना चौका सँभाल लिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम पर भी ऐसे उपसर्ग आयेंगे। मरण तो एक दिन सबको आना है। अतः इसके लिये तैयार हो जाओ। भेदज्ञानका अभ्यास करो।

स्वर्णको चाहे जितना अग्निमें तपायें तब भी वह स्वर्णपना नहीं छोड़ता, वैसे ही ज्ञानीको रोग, दुःख, कष्ट, उपसर्ग, मृत्यु आदिके चाहे जितने ताप आ पड़े–तो भी वे अपने ज्ञानस्वभावको नहीं छोड़ते।

★★★

आबू, ता. ५-४-३५

बोधकी कमी है। सुननेकी आवश्यकता है। सुनते-सुनते कभी वैसा करने भी लग जायेंगे और काम बन जायेगा।

एक राजाकी मृत्यु हो गयी। उसका कुमार छोटी उम्रका था। उसे मारकर राज्य हडप लेनेकी काकाके पुत्रों आदिने योजना बनायी। मंत्रीने रानीको यह बात बता दी। रानी कुमारको लेकर भाग निकली। किसी गाँवमें एक किसानके यहाँ जाकर रह गयी। उसका काम वह कर देती। कुमार किसानके बछड़े चराने जंगलमें गया। बछड़े जंगलमें इधर-उधर चले गये। कुमार उन्हें ढूँढता हुआ एक गुफाके पास आया। वहाँ एक मुनिको देखा। वे मुनि कुछ शिष्योंको बोध दे रहे थे। वह सुननेके लिये कुमार भी बैठ गया। बोध बहुत मधुर लगा। 'ये बहुत अच्छा कह रहे हैं, मुझे भी ऐसा करना चाहिये, मुझे ऐसा ही करना है' ऐसे भावमें उसके परिणाम उत्तम हुए। बछड़े तो वापस घर लौट गये थे। वह गुफासे निकलकर घर आ रहा था। भाव परिणाम बोधमें थे, लेश्या उत्तम थी। वहाँ मार्गमें बाघने पकड़कर मार डाला। उत्तम लेश्याके बलसे मरकर देव बना। वहाँसे आयुष्य पूर्ण होने पर धनाभद्र नामक सुप्रसिद्ध श्रेष्ठीपुत्र हुआ। उसी भवमें चारित्रका पालनकर मोक्ष गया।

एक ही सत्संग हुआ था, परंतु उसी सत्संगमें उत्कृष्ट भाव, परिणाम होनेसे काम बन गया। वैसे ही यहाँ भी सुनते-सुनते भाव, परिणाम तद्रूप हो जाने पर काम बन सकता है। ऐसा महा दुर्लभ सत्संग है। ऐसे भाग्य कहाँ कि ज्ञानीके वचन कानमें पड़े? 'रंकके हाथ रतन!'

★★★

आबू, ता. २४-४-३५

'श्रीमद् राजचंद्र'में से पत्रांक ५७० का वाचन–

"अनित्य पदार्थके प्रति मोहबुद्धि होनेके कारण आत्माका अस्तित्व, नित्यत्व और अव्याबाध समाधिसुख भानमें नहीं आता।"

सहजस्वरूप अपना है। जो दिखायी देता है वह तो अनित्य है, पुद्गल है, जड़ है। तो अब और कोई है? सबको जाननेवाला और देखनेवाला है वह आत्मा है। वह नित्य है। उसका ऐश्वर्य अनंत है। उसे कभी नहीं सँभाला। पूरा संसार उसकी सँभालको छोड़कर परायी पंचायतमें पड़ गया है।

जीव सहजस्वरूपसे रहित नहीं है, पर असहज हो गया है। अनादिकालसे स्वयंको भूल गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। मृत्यु आयेगी। अपना माना हुआ सब छोड़ना पड़ेगा। अपना क्या है? उसे पहचाननेके लिये यह मनुष्यभवका अवसर आया है।

...ठाकुर कल आये थे। ये भी ठाकुर है, ये भी ठाकुर है। सब आत्मा हैं। कोई स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, ठाकुर नहीं; आत्मा हैं। गधेकी पूँछ पकड़ रखी है, उसे कैसे छोड़ा जाय? मति और श्रुत अज्ञान जो नाई जैसे हैं, उनकी सलाह यह जीव लेता है। अपने आग्रहको छोड़ना कठिन है। इनसे आप सब भाग्यशाली हैं कि वस्तु(आत्मा)को प्राप्त किये हुए पुरुषकी शरण पकड़ी है। जहाजके पीछे नौकाको जोड़ दिया जाय तो वह जहाँ जहाज जाये वहाँ चली जाती है। गाड़ीके पीछे डब्बेको जोड़ा, कड़ा फँसाया तो जहाँ गाड़ी जायेगी वहाँ चला जायेगा। इसी प्रकार जिसके हाथमें रस्सी आ गयी है वह संसार कूपमें नहीं डूबेगा, पर बाहर निकल जायेगा। श्रद्धा ही धर्मका मूल है।

★

सारा संसार त्रिविध तापसे जल रहा है। सर्व जीव जन्ममरणादि दुःखमय परिभ्रमणमें भटक रहे हैं। वहाँ अब क्या करें? उससे बचनेके लिये क्या करें?

१. मुमुक्षु—सत्संग।

२. मुमुक्षु—सत्पुरुषकी भक्ति।

३. मुमुक्षु—सत्पुरुषके आश्रयसे वासनाको क्षय करनेका पुरुषार्थ।

४. मुमुक्षु—आत्माका निश्चय कर लें।

५. मुमुक्षु—बाह्य और आंतरिक परिग्रहका त्याग कर ज्ञानीके चरणोंमें निवास।

६. मुमुक्षु—सद्गुरु द्वारा प्रदत्त स्मरणमें आत्माको संलग्न रखना।

प्रभुश्री—अपेक्षासे आप सबका कहना योग्य है। आप सबने जिस प्रकार कहा है उस प्रकार करेंगे तो कल्याण होगा। पर सबसे बड़ी बात एक ही है। अनंत ज्ञानियोंने जो कहा है वही कहेंगे, वह हमें भी मान्य है। 'सद्धा परम दुल्लहा।' सत्पुरुषकी श्रद्धा यह सबसे बड़ीसे बड़ी बात है। यदि यह हो गयी तो जप, तप, भक्ति कुछ न हो तो भी कुछ चिंता नहीं। श्रद्धा महाबलवान है। जहाँ श्रद्धा है वहाँ जप, तप, भक्ति सर्व हैं ही। अतः इस भवमें एक श्रद्धाको अविचल कर लें।

यदि एक मात्र इसको पकड़ लेंगे तो काम बन जायेगा। हजारों भव नष्ट हो जायेंगे। देवगति प्राप्त होगी। अनुक्रमसे मोक्ष प्राप्त होगा।

★

कुलधर्म या कोई भी माना हुआ धर्म मेरा नहीं है। सबके साथ मात्र उदासीन संबंध रखें। मेरा धर्म आत्मा है। सगे, संबंधी, रुपया-पैसा कोई मेरे नहीं है। एक धर्म ही मेरा है। वही मेरे साथ चलेगा। रोग हो, व्याधि हो, तो भी उससे भिन्न, उसे जाननेवाले ऐसे आत्माको सद्गुरुने यथार्थ जाना है वही मैं हूँ, ऐसी आत्मभावना रखें।

आजसे नया अवतार हुआ, ऐसा मानें। जैसे मरकर फिर जन्मे हों। अब फोकटका (रागद्वेष किये बिना) मैं देखता रहूँ। जब कुछ भी मेरा नहीं है, तब उसमें लिप्त क्यों होऊँ? जो आये उसे देखने-जाननेवाला, उससे भिन्न मैं हूँ, ऐसा मानकर फोकटका देखता रहूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्संग और बोध ये दो महान बातें हैं। उसकी इच्छा रखें। इससे समझ आती है, सच्ची पकड़ होती है। समभावसे मोक्ष होता है। सत्संग, बोधसे समभाव आता है।

★★★

आबू, ता. ५-६-३५

जिसने समेट लिया है, उसे देहसे निकलते देर नहीं लगेगी। जिसने जहाँ तहाँ प्रेम, प्रीति, वासनाका विस्तार किया है वह पीड़ित हो होकर देहसे निकलेगा।

योग्यताका वर्णन नहीं हो सकता। सत्पुरुषार्थ करते रहें और धैर्य रखें।

संसारमें दुःख ही दुःख है। आप यह नहीं हैं। आप इन सबसे अलग ज्ञाता-द्रष्टा आत्मा हैं। उसे मानें। इस राखकी पुडिया (देह) पर प्रेम, प्रीति, मोह न करें। प्रेमको जहाँ तहाँ बिखेर रखा है, उसे उन सब स्थानोंसे उठाकर एक मात्र आत्मा पर लावें। आप अकेले ही हैं। सुई भी आपके साथ नहीं आयेगी। अतः परवस्तुओंको पर समझकर उनका मोह मिटायें। विकारके स्थानोंमें वैराग्य हो ऐसी पुरुषार्थदृष्टि करें।

★★★

आबू, ता. ६-६-३५

आत्माको देखना हो तो सबमें आत्मा देख सकते हैं। अन्यथा यह बनिया, ब्राह्मण, पटेल, बूढ़ा, जुवान, सुखी, दुःखी, राजा, रंक, स्त्री, पुरुष, अच्छा, बुरा ऐसा समझा जाय तो कर्म बँधते हैं। आत्माको देखनेकी दृष्टि होनेपर अबंधदशा प्राप्त होती है। 'मात्र दृष्टिकी भूल है।'

यह दृष्टि आये कहाँसे? सत्पुरुषके बोधसे। पुरुषार्थ किये बिना कुछ भी नहीं हो सकता। अतः दृष्टि बदलनेका पुरुषार्थ करें। थोड़ेसे सत्संगका भी माहात्म्य अलौकिक है। सत्संगसे, सद्बोधसे दृष्टि बदलती है; हड्डी, चमड़ी, खून, पीप आदिसे भरे हुए दुर्गंधमय देहादि पर वैराग्य आता है। वैराग्य ही आत्मा है। मुमुक्षुके हृदयमें वैराग्य, उपशम सदैव जागृत रहते हैं।

स्थान-स्थानपर आत्मा देखें। आस्रवके काममें संवर हो, यदि दृष्टि बदल जाय तो।

★★★

आबू, ता. ७-६-३५

दृष्टि बदलनेकी आवश्यकता है। दृष्टि बदले तो तदनुसार परिणमन होता है। 'कथा सुन सुनकर फूटे कान', 'पढ़ा पर गुना नहीं'। बोला पर न बोलने जैसा किया। विचार नहीं किया। कमी है योग्यताकी, भाव बदलनेकी। भाव बदल दे तो कमाईके ढेर लग जाते हैं। कदम आगे बढ़ायें तो लक्ष्य पर पहुँच सकता हैं। बैठा रहे और उस स्थानकी बातें करता रहे तो लक्ष्य पर पहुँचा नहीं जा सकता। चलनेको कदम बढ़ाये तो ठिकाने पर पहुँचता है। 'शक्कर शक्कर' करनेसे स्वाद नहीं आता। मुँहमें रखने पर स्वाद आता है। वैसे ही सिद्ध समान हूँ, अजर हूँ, ऐसा बोलने मात्रसे काम नहीं होगा। स्थान स्थान पर दृष्टि पड़ते ही भेद प्रतीत हो, भेदज्ञान हो तभी परमें परिणमन नहीं होता। भेदज्ञानसे भेद करनेका पुरुषार्थ न करे तब तक आत्मामें परिणमन नहीं हो सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्य दृष्टि चाहिये। चर्म-चक्षुसे मार्ग दिखायी नहीं देता। दिव्यचक्षुसे मार्ग दिखायी देता है, भेदज्ञान होता है। विचार ही वह दिव्यचक्षु है। उसकी आवश्यकता है। सत्पुरुषका बोध प्राप्त होता है, उसका गहन चिंतन करें, विचार करें। भाव बदल डालें। स्थान-स्थान पर भेदज्ञानसे भिन्नताका अनुभव करें। शत्रु, मित्र, स्त्री, पुरुष, सगे, संबंधी, रोग, शोक, क्रोध, मान, संकल्प-विकल्प आदि जो कुछ आते हैं उस सबको जाननेवाले, उनसे भिन्न ऐसे आत्माको ज्ञानी सद्गुरुने जाना है, वैसा ही मैं हूँ। जो आता है वह सब जाता है। रोग आये, वेदना हो, मृत्यु आये तो भी सब जाता है, उसे देखनेवाला मैं अलग हूँ। मात्र उसे देखा करें। संयोग सर्व आते हैं वे जायेंगे। आत्मा कुछ जानेवाला है? वह आत्मा मेरा है। "चंद्र भूमिको प्रकाशित करता है, उसकी किरणोंकी कांतिके प्रभावसे समस्त भूमि श्वेत हो जाती है, पर चंद्र कभी भी भूमिरूप नहीं होता। ऐसे ही, समस्त विश्वको प्रकाशित करनेवाला यह आत्मा, कभी भी विश्वरूप नहीं होता, सदा सर्वदा चैतन्यस्वरूप ही रहता है।"

यों भेदज्ञानरूप दिव्यदृष्टिसे देखने पर कर्म नहीं बँधते और आत्मिक सुख प्राप्त होता है। अतः करने योग्य तो एक ही है। वह क्या? पुरुषार्थ। पुरुषार्थ करते रहो, उद्यम करते रहो, काम होगा ही। भरत भरी हो तो वह जितनी भरी गयी उतना काम तो हुआ ही न? ऐसे ही किया गया पुरुषार्थ व्यर्थ नहीं जायेगा। धैर्य रखनेकी आवश्यकता है। अंतिम बात, केवल पुरुषार्थ ही कर्तव्य है।

समझकर समा जाओ। परायी पंचायतमें समय खोया है। तू अपनी पंचायतमें पड़। मन, वचन, काया तेरे पास है, उनसे जैसा काम कराया जाय वैसा करेंगे।

अब तेरी देरमें देर है, ऐसा ज्ञानी कहते हैं।

एक सत्पुरुषको ढूँढो, उसमें सब आ गया।

जैसे व्यापारी कहते हैं कि माल भरा हुआ है अब उसका भाव आया है तो बेच डालना चाहिये। वैसे ही जैसे भाव होंगे वैसा फल प्राप्त होगा। तीव्र पुरुषार्थकी आवश्यकता है।

***

आबू, ता.८-६-३५

'श्रीमद् राजचंद्र'में से वाचन–

"भाई, इतना तो तुझे अवश्य करने जैसा है।"

आत्माकी बात है। इसके सिवाय अन्य बात नहीं। बाह्यात्मा है, अंतरात्मा है और परमात्मा है। उसकी पहचान करनी चाहिये। आत्माको सावधान किया है। अंतरात्मासे विचार करना है। परमात्माकी भावना करनी है। जड़का भाव चेतन नहीं और चेतनका भाव जड़ नहीं।

संयोग छूटते हैं पर जीवत्व नहीं छूटता। अज्ञान क्या है? अपने शुद्धस्वरूपका भान नहीं है वही अज्ञान है। पर वह भी आत्मा है। अज्ञान भी आत्मा, जीव भी आत्मा, भाव भी आत्मा। पर जड़का भाव आत्मामें है क्या?

"भाई, इतना तो तुझे अवश्य करने जैसा है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह शुद्ध आत्माका कथन है। अन्य सब माया है। मायाको छोड़ना पड़ेगा। मायाको अपना माना है उसे छोड़ना पड़ेगा। संयोग, संबंधको अपना माना है उन्हें छोड़ना पड़ेगा। केवल एक आत्मा है। उसकी सामग्रीको जानना चाहिये। सबको जानता है वह एक आत्मा है। अपना स्वभाव क्या है? जानना। जैसा है वैसा नहीं जाना अर्थात् स्वभावको छोड़कर विभाववाला बना। निर्मल पानी न रहा, मैला हो गया। यहाँ संबंध है सो अनादिकालका मैल है। उससे छूटना है। स्वभावमें आना है। उसके लिये बोध चाहिये, उत्कंठा चाहिये।

जीवको ज्ञान कैसे होता है?

जप तप किये, साधन अनंत किये–

"यम नियम संजम आप कियो, पुनि त्याग बिराग अथाग लह्यो;
वनवास लियो, मुख मौन रह्यो, दृढ आसन पद्म लगाय दियो.
मनपौन निरोध, स्वबोध कियो, हठ जोग प्रयोग सुतार भयो;
जप भेद जपे, तप त्यौंहि तपे, उरसेहि उदासी लही सबपें.
सब शास्त्रनके नय धारी हिये, मत मंडन खंडन भेद लिये;
वह साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो."

इतना अधिक किया! यह मनुष्यभव दुर्लभ है। ऐसे मनुष्यभव भी मिले। तब कमी क्या रह गयी?

"नहि ग्रंथमांही ज्ञान भाख्युं, ज्ञान नहि कविचातुरी,
नहि मंत्रतंत्रो ज्ञान दाख्यां, ज्ञान नहि भाषा ठरी;
नहि अन्य स्थाने ज्ञान भाख्युं, ज्ञान ज्ञानीमां कळो,
जिनवर कहे छे ज्ञान तेने, सर्व भव्यो सांभळो."

ज्ञान तो ज्ञानीमें ही कहा गया है। आत्मा आत्मामें ही है। इस समय तो कर्म, प्रकृति, संबंध, वेद कहलाते हैं। शुद्ध आत्मामें ज्ञान कहा जाता है। वह स्वरूप कैसे ज्ञात हो?

आंखें हों तो दिखायी देता है। अँधेरेमें दीपक हो तो दिखायी देता है। 'पात्र विना वस्तु न रहे।' जैसे सिंहनीका दूध सोनेके पात्रमें रहता है, वैसी ही दृढ़ दशा होनी चाहिये।

आत्मा ज्ञानचक्षुसे देखा जाता है। वे ज्ञानचक्षु कहाँ है? ज्ञानचक्षु आये कैसे? अज्ञानी थे वे ज्ञानी कैसे बन गये? अज्ञान मिटकर ज्ञान होता है, वह कैसे होता है?

"चंद्र भूमिको प्रकाशित करता है। उसकी किरणोंकी कांतिके प्रभावसे समस्त भूमि श्वेत हो जाती है, पर चंद्र कभी भी भूमिरूप नहीं होता। ऐसे ही समस्त विश्वका प्रकाशक यह आत्मा कभी भी विश्वरूप नहीं होता, सदा सर्वदा चैतन्यस्वरूप ही रहता है।"

चेतना आत्मामें है। ये जो संयोग मिले हैं, ये सब किससे देखे जाते हैं? ज्ञानविचारसे। पहले क्या चाहिये? सत्संग और बोध। जो पढ़े हुए हैं वे पढ़ सकते हैं, वैसे ही सत्संग और बोधसे अज्ञानके बादल दूर होकर ज्ञानसूर्य प्रकाशित होता है।

दृष्टि तो बदलनी ही पड़ेगी। योग्यताकी कमी है। योग्यता प्राप्त करनी चाहिये। योग्यता कैसे प्राप्त हो? योग्यता समझके बिना प्राप्त नहीं हो सकती। बोध हो तो समझ आती है, तब योग्यता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आती है। 'सवणे नाणे विन्नाणे' श्रवण करनेसे विज्ञान प्राप्त होता है।

मुमुक्षु—श्रवण कराइए।

प्रभुश्री—ज्ञानी द्वारा कहा हुआ कहता हूँ। हम तो ज्ञानीके दास हैं। 'आत्मसिद्धिशास्त्र' सुननेका अवकाश निकालना चाहिये। अलौकिक दृष्टिसे सुना जाय, सामान्य न हो जाय इसका ध्यान रखना योग्य है।

"जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवंत."

समझकर नमस्कार किया जाय वह अलग ही होता है। 'जे स्वरूप' वह आत्मा है। उसे समझे बिना सब 'आत्मा' कहते हैं वह ओघसंज्ञासे। जो स्वरूपको समझे बिना 'आत्मा आत्मा' कहते हैं उनके भव खड़े होते हैं। ये तो समझकर कहते हैं तो जन्म मरणसे छूटनेका मार्ग है। बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। ये वचन अंतरात्मासे लिखे गये हैं, ये अपूर्व हैं। उन्हें नमस्कार करना चाहिये।

तुम आत्मा पर दृष्टि करना। तुम बुढ्ढा, जवान, छोटा, बड़ा, स्त्री, पुरुष मत देखना, पर आत्माको देखना। ऐसा करोगे तो भाव बदल जायेंगे। भाव बदले कि काम बना।

ध्यान रखें। इस बातको सामान्य न बना दें। जिस स्वरूपको समझे बिना अनंत दुःख पाये हैं, उस स्वरूपको समझानेवालेको नमस्कार हो! जहाँ आत्मा देखा, वहाँ समदृष्टि करनी पड़ी। समझमें कुछ और ही कर लिया। दृष्टि अन्य कर ली। जैसे जैसे आत्माको देखते जायेंगे, वैसे वैसे कर्म नहीं बँधेंगे। अन्यथा रागद्वेष, इष्ट-अनिष्ट होगा, जिससे कर्म बँधेंगे।

बात समझनेकी है। समझमें आये और ध्यानमें रखा जाय तब आत्माकी बात पल्ले पड़ेगी। आत्माको प्रत्यक्ष करना है। ज्ञानीने प्रत्यक्ष किया है।

भावसे ही कल्याण होगा।

"भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान;
भावे भावना भाविये, भावे केवळज्ञान."

भाव बड़ी बात है, 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।'

आत्मा ही गुरु है। निश्चय गुरु अपना आत्मा है। उसकी ओर दृष्टि नहीं गयी है, भाव नहीं आया है; आये तो काम बन जाय।

"ज्यां लगी आतमा तत्त्व चीन्यो नहीं;
त्यां लगी साधना सर्व जूठी."

एक भेदी मिलना चाहिये। वही सद्गुरु भगवान है। शास्त्रमें जो गुरुगम रह गया है, वह गुरुगम यहाँ कहते हैं।

असंग अप्रतिबद्ध एक आत्मा ही बताना है। इस पर भाव जाये इस हेतु इसपर दृष्टि करानी है। अनादिकालसे इसमें फँसा हुआ है। इस गुत्थीमेंसे आत्मा पर दृष्टि करवानी है। दृष्टि बदलनेकी जरूरत है। कभी भी छोड़नी पड़ेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्ति तो चंचल ही है। अब वृत्तिको स्थिर करनी है। बाह्यवृत्तिमें रहनेसे, बाह्य आत्मामें रहनेसे क्या काम बनेगा? आत्मामें वृत्ति मुड़े, अंतर आत्मामें परिणाम हों और उससे सैंकड़ों भव कट जायें ऐसा करनेकी आवश्यकता है। अतः समागम, सत्संग, बोध–इनको प्राप्त करनेकी इच्छा रखें; इनकी भावना रखें। जीव सर्वत्र समय व्यर्थ खो रहा है। कहीं समय गुमाना नहीं चाहिये। एक आत्माको शान्ति देनी है। 'शांति पमाडे तेने संत कहीए।' ढूँढते ढूँढते मिल जायेगा।

समय बीत रहा है। मनुष्यभव दुर्लभ है। अनमोल क्षण बीत रहा है। आत्माको देखा नहीं है। ज्ञानीकी शरणसे भाव अच्छे होते हैं।

★★★

आबू, ता. ९-६-३५

जगतमें मायाका स्वरूप है। उसकी सब बातें कीं पर एक आत्माके विषयमें "मैं कौन हूँ? कहाँसे आया हूँ?" यह बात मिलनी दुर्लभ है। कानमें पड़ते ही पापके दलिक नष्ट होते हैं और पुण्यका बंध होता है।

आत्माकी बात इसमें (आत्मसिद्धिमें) कहते हैं, उसे अब हमें सुननी चाहिये।

इस वर्तमानकालमें मोक्षमार्ग बहुत लोप हो गया है, मोक्षमार्ग बहुत दुर्लभ हो गया है, पर कोई आत्मार्थी, आत्माका इच्छुक हो उसके लिये यहाँ कहते हैं।

जो हम देखते हैं वह सब माया, मोह, कर्म, स्वप्न है। वह आत्मा नहीं है। आत्मा तो अब बताना है। जो विचक्षण होंगे वे ही इसे लक्ष्यमें लेंगे। यहाँ दो घड़ी बैठेंगे उसमें कोटि कर्म क्षय हो जायेंगे। सब छोड़ना है, वह हमारा नहीं है। हमारा तो आत्मा है। आत्माका सुख अनंत है। उसे सद्गुरु बताये तो ज्ञात होता है और जन्ममरणसे मुक्त हुआ जा सकता है। सारा जगत बाह्यमें पड़ा है, आत्मामें कोई नहीं। आत्माकी पहचान करनी है। आत्माके सिवाय पद, अधिकार, मान, बड़ाई कुछ भी अपना नहीं है। यह सब तो छोड़ना पड़ेगा। धोखा है। इस जीवका अनंतकालसे परिभ्रमण हो रहा है। पर ध्यान नहीं दिया। अंतरमें आत्मा है। मनसे विचार करने पर समझमें आयेगा। अंतरमें आत्माका विचार कराना है। नहीं, नहीं, तू यह नहीं है, तू आत्मा है, इन सबसे अलग है। इस पर विचार कर।

कर्म अनंत प्रकारके हैं। उनमें मुख्य आठ हैं और उनमें भी मुख्य मोहनीय है। समस्त विश्वमें उसका राज्य चलता है।

मान-बड़ाई, पूजा-सत्कार यह कुछ भी मेरा नहीं है। मेरा तो एक आत्मा है। जो इच्छुक है वह तो खायेगा भी नहीं, पियेगा भी नहीं। उसका चित्त तो एक मात्र उसमें ही रहेगा। 'प्रीति अनंती पर थकी, जे तोडे ते जोडे अेह।' प्रेमको सब ओर बिखेर दिया है। उसे सब जगहसे समेटकर एक आत्मासे करना है। 'मेरा मेरा' कहता है वह भूल है, माया है, मोह है।

अभी प्राप्त हुआ मनुष्यभव महा दुर्लभ है। अतः जिस स्थान पर आत्माकी पहचान होती हो उस स्थान पर जाकर सावधान हो जाना चाहिये।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आबू, ता.१०-६-३५

ज्ञानीपुरुषका एक वचन भी पकड़ लिया जाय तो ठेठ मोक्ष तक ले जायेगा, समकित हो जायेगा। बहुत बार हमने कहा है, पर किसीने अभी तक पकड़ा नहीं है, विश्वास नहीं किया है, प्रतीति नहीं की है। प्रेम-प्रीति उसीमें करनी चाहिये। परंतु किसीने पकड़ा नहीं है, उपेक्षा की है; अथवा उस समय 'यह अच्छा है' ऐसा कहकर, बादमें चलते-फिरते, खाते-पीते, उठते-बैठते सर्वत्र यही करना है, इस पर ध्यान नहीं दिया है। कहना न कहने जैसा किया है। यह चर्मचक्षु है, उसके स्थान पर दिव्यचक्षु चाहिये। 'मात्र दृष्टिकी भूल है।' ज्ञानी स्पष्ट शब्दोंमें मर्म बताकर चले गये हैं। जो इच्छुक हो वह उसकी पकड़ कर लेता है।

★★★

आबू, ता.११-६-३५

इस स्वप्नको स्वप्न ही समझें। एक आत्माकी बातको लक्ष्यमें रखें। 'आत्मसिद्धि'में विशेष ध्यान, सावचेती रखें। ज्ञानी तो तुम्हें रोम-रोमसे जागृत करना चाहते हैं। मैं राजा, मैं रंक, मैं मनुष्य, मैं सुखी, मैं दुःखी आदि अहं ममत्वसे जी रहे हैं, उसमेंसे एक बार तो मार डालना है। एक बार मारकर ज्ञानी पुनः जीवित करते हैं, उदासीनताकी दृष्टि प्राप्त हो ऐसा जीवन प्रदान करते हैं।

आत्माको देखा नहीं है। आत्माको सबसे सर्वथा भिन्न देखना चाहिये। वह कैसे हो?

भक्तिके 'बीस दोहे', 'यमनियम' 'बहु पुण्यकेरा पुंजथी', 'क्षमापनाका पाठ' आदि नित्य भक्ति की जाय तो कोटि कर्म क्षय होंगे, अच्छी गति मिलेगी। अकेला आया है और अकेला जायेगा। भक्ति की होगी तो वह धर्म साथ जायेगा। आत्माको सुख देना हो तो रुपया पैसा कुछ साथ नहीं चलेगा। एक भजन-भक्ति की होगी वह साथ चलेगी। अनेक भव छूट जायेंगे। अतः यह कर्तव्य है। इससे मनुष्यभव सफल होगा।

सारा लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। सबके सिर पर जन्म-जरा-मरण सवार है। सत्संग और बोधकी आवश्यकता है। यदि सुने तो चेत जाये। एक दिन तो धोखा ही है! उस दिन किसीका कुछ नहीं चलेगा। जीव मात्रको यह ऋण चुकाना है। अतः अभी जब तक सुखशांति है, तब तक कर लेना चाहिये। यह कुछ दूसरेके लिये नहीं है। अपने आत्माके लिये है। अन्यसे भाव हटाकर यह भाव करें। यहाँ सत्संगमें पुण्यबंध होता है, कोटिकर्म क्षय होते हैं, जन्म मरण कम होते हैं। जगतकी मायासे तो भव बढ़ते हैं, दुःख खड़े होते हैं।

एक बीचमें आता है। क्या? प्रमाद। वह निमित्त नहीं बनाने देता। यहाँ यह निमित्त जोड़ा तो यह बात होती है। एक आत्माकी स्मृति दिला दी। इसकी सँभाल लेनी चाहिये। सबसे श्रेष्ठ बोध है। सुनते ही सुनते रहें तो जैसा संग वैसा रंग लगेगा ही।

पर कमी किसकी है? पूर्व कर्म और पुरुषार्थकी।

इतनी बात सुननेको मिलती है, यह कुछ ऐसी-वैसी बात है? कितने पुण्य बढ़े हैं तब ऐसी बात हाथ लगी है! अतः सयाने पुरुषोंको चेत जाना चाहिये। बातको ध्यानमें लेनी चाहिये। भूला तभीसे फिर गिन--जागे तभीसे प्रभात।

सब बातको छोड़कर एक मात्र आत्मा ही आत्माकी भावना करो। 'भरत चेत, काल झपाटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देत।' जब तक साता है तब तक सत्संग, बोध और ऐसी कुछ पकड़, जो ज्ञानीने कही है उसे करके उद्यमशील बन जाओ।

★★★

आबू, ता.१३-६-३५

भक्ति, ध्यान, स्वाध्याय, एक दृष्टि, भाव, आत्मभावना यह अपना धन है। वेदना आती है तब डाकू चोर लूटेरे यह धन लूट लेते हैं। तो ऐसे समयमें अपना धन लुट न जाय इसके लिये क्या करना चाहिये? वेदनी, रोग आते हैं तब भिखारी भीखके टुकड़ेके समान साताकी इच्छा करता है। सामायिक, कायोत्सर्ग, ध्यान, भक्ति, त्याग, वैराग्य, स्वाध्याय नहीं करने देते। वेदना विघ्न डाले तब क्या करना चाहिये?

लूटेरे तो हैं! धनको खुला रखेंगे तो लूटेरोंको लूटते देर नहीं लगेगी, पर किसी तिजोरीमें रखा हो तो नहीं ले जा सकते। तो क्या उपाय करना चाहिये?

तप, जप, क्रियामात्र कर चुका। इस जीवको मात्र एक समकित हो तो सब हो गया। सबका उपाय एक समकित है। समकित आया हो तो कुछ लुटा नहीं जा सकता। बैठे बैठे देखते रहें। अतः जब तक वेदना नहीं आयी है तब तक समकित, धर्म कर लें। धर्म क्या है? जीवने इसे जाना नहीं है।

समता, धैर्य, क्षमा ये अद्‌भुत हैं। वेदना आये तब समता धारण करें; क्षमामें, धैर्यमें रहे।

★★★

आबू, ता.१५-६-३५

वसिष्ठाश्रममें क्या देखा? किसकी इच्छा की? आत्मा देखा? किसीने आत्मा देखा?

जीवका व्यापार ही बाह्य हो गया है। अंतरदृष्टि नहीं हुई है। जीवको रंग नहीं लगा है, प्रेम आया नहीं है। 'पर प्रेम प्रवाह बढ़े प्रभुसे' बोलता है, कहता है, पर सब लूखा, मंदा, भाव-प्रेम रहित होता है। प्रेम अन्यत्र बिखेर दिया है।

भेदज्ञानसे भेद नहीं करता। एक वचन मिला हो उसे सामान्य कर दिया है। अलौकिकता नहीं रखी। 'एक मत आपडी के ऊभे मार्गे तापडी' यों लग नहीं पड़ा है।

दृष्टि बदलनी ही पड़ेगी। इस पर ध्यान नहीं देता। 'सुन सुन फूटे कान' जैसा कर दिया है। चतुरकी दो घड़ी, मूर्खका सारा जीवन।

जहाँ देखो वहाँ तू ही तू ही–बीमार हो, स्वस्थ हो, रोग हो, लड़ाई हो, बोलचाल हो, क्रोध हो, मान हो, राग हो, द्वेष हो वहाँ सबमें 'तू ही तू ही'–यही एक लगन नहीं लगी, श्रद्धा नहीं हुई।

*"मळ्यो छे एक भेदी रे, कहेली गति ते तणी,
मनजी मुसाफर रे चालो निज देश भणी;
मुलक घणा जोया रे मुसाफरी थई छे घणी."

---

* भावार्थ–हमें जो एक भेदी मिला है उसकी गति (दशा) की बात हमने बतायी थी। इसलिये कहते हैं कि हे मनरूपी यात्री! अब निजदेशकी ओर प्रयाण करो। अन्य तो बहुत देश देखे, बहुत यात्रा हो चुकी है, सर्वत्र बहुत भटका है। अब अपने देशकी ओर चलो, जहाँ पूर्ण विश्राम है। (भेदी–ज्ञानीने यही किया है।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर निज देशको कोई छोड़ेगा? यह तो बाहर भटक रहा है। अपने देशको छोड़कर बाहर भटक रहा है, वहाँ बंधन हो रहा है।

★★★

आबू, ता.१७-६-३५

मुख्यतः आत्माके तीन प्रकार हैं—बाह्यात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा। इनमेंसे परमात्मा समझने योग्य है।

'बिना नयन पावे नहीं, बिना नयनकी बात.'

बाह्य वस्तुको देखनेके लिये जैसे चक्षु चाहिये, वैसे ही ज्ञान चक्षुसे आंतरिक वस्तु देखी जा सकती है। ज्ञानचक्षुके बिना आत्मा नहीं देखा जा सकता। आत्मा अरूपी है, वह रूपी तो है नहीं। जैसे अंगारोंको चिमटेसे पकड़ा जा सकता है वैसे आत्मा चर्मचक्षुसे दिखायी नहीं देता। तो इसके लिये चाहिये क्या? दिव्यचक्षु। वह दिव्य चक्षु ज्ञानीके पास है। यह चक्षु लगाये तब आत्मा दिखायी देता है। योग्यता हो तो ज्ञानी मार्गमें जाते हुएको भी बुलाकर दे देते हैं। योग्यता क्या है?

योग्यता अर्थात् भाव, प्रेम। उन्हीं पर भाव, प्रेम आवे तो काम बन जाय। यह पूर्वकृत और पुरुषार्थसे होता है। कारणके बिना कार्य नहीं होता।

★★★

श्री आश्रम, अगास ता.१३-७-३५

स्थान स्थान पर आत्मा देखो। मूर्ख हो वह अन्य देखेगा। काला-गोरा देखने गये तो मारे जाओगे ऐसा समझ लो। यह मेरा साक्षात् आत्मा, यह भी मेरा साक्षात् आत्मा। तू ही, तू ही, एक मात्र यही। आत्मा पर प्रेम, प्रीति, भक्ति नहीं हुई है, वह करनी है। उसीके लिये यह अवसर आया है, अतः चेत जाओ।

इतना निश्चय रखो कि यह मनुष्यभव तो सफल हो गया, कारण, अपूर्व योग मिला है। अब श्रद्धा एक पर ही रखो। जहाँ तहाँ श्रद्धा करोगे तो मारे जाओगे। स्वरूपप्राप्त एक सत्पुरुष परमकृपालु पर श्रद्धा दृढ़ होगी तो जप, तप, क्रियामात्र सफल हो गयी, मनुष्यभव सफल हो गया, दीपक प्रकाशित हुआ, समकित हुआ समझ लो।

तेरी देरीसे देर है। जिसमें एक एक गाथा चमत्कारिक है ऐसी 'आत्मसिद्धि' अपूर्व है! 'छूटे देहाध्यास तो नहि कर्ता तुं कर्म।' विचार कहाँ किया है? "अनादि स्वप्नदशाके कारण उत्पन्न जीवके अहंभाव, ममत्वभाव निवृत्त होनेके लिये ज्ञानीपुरुषोंने यह छह पदोंका उपदेश दिया है।" विचार कहाँ किया है! विचार करे तो अभी प्राप्त हो जाये। 'समयं गोयम मा पमाए' समय मात्रका प्रमाद कर्तव्य नहीं है।

★★★

ता. १४-८-३५, श्रावण सुदी पूर्णिमा

आज यहाँ आये हैं तो कमाईके ढेर लगते हैं। दर्शन होंगे, आत्महितके लिये सत्संगमें, आत्माकी बात सुननेको मिलेगी, ऐसी भावनासे समागमके लिये यहाँ आनेके भाव किये तो पग-पग पर यज्ञका फल कहा है। तीर्थयात्रा बहुत की, पर सच्चा देव कौन है? आत्मा। जिसने उसे जाना है, ऐसे सत्पुरुषकी वाणी सुनते ही कोटिकर्म क्षय हो जाते हैं, पुण्यके ढेर बँध जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव तुम्हारे पास हैं। वे जैसे करो वैसे हो सकते हैं। यह मनुष्यभव महादुर्लभ है। लौकिक कार्योंमें, जगतको अच्छा दिखानेके लिये बहुत किया। अब शेष भव अपने आत्माके लिये बिताया जाय, उसकी पहचान करनेके लिये व्यतीत हो तभी मनुष्यभवकी सफलता है। आत्मा पर भाव करने हैं।

'मात्र दृष्टिकी भूल है'–उलटेको सुलटा नहीं किया, आकृतिको सुलटी नहीं की, अन्यथा विषका अमृत हो जाता है। यह स्त्री, यह पुरुष, यह अच्छा, यह बुरा, यह बनिया, यह ब्राह्मण–यों मायाको देखा। बाह्यदृष्टिसे सत्य नहीं दिखायी दिया। गहरे उतरें तो सत्य दिखायी देगा। सत्य देखना चाहिये। वह क्या? आत्मा।

मुमुक्षु–जाने बिना आत्माको कैसे देखें? उसे तो ज्ञानीने जाना है।

प्रभुश्री–भावना तो कर सकते हैं। ऐसा करते-करते योग्यता आने पर ज्ञानी ललाट पर तिलक लगा देंगे।

स्थान-स्थान पर आत्माको देखेंगे तो विषका अमृत हो जायेगा। ज्ञानीके पास दीपक प्रकाशित है। स्थान-स्थान पर एक ही देखें तो निधान है। दृष्टि तो बदलनी ही पड़ेगी। तेरी देरमें देर है। दृष्टि बदले तो अभी, अन्यथा देर है।

जाग्रत हो जाओ, तैयार हो जाओ, मृत्युकी भी चिंता न करो। दृष्टि बदल डालो। नाशवान जगतकी मायासे प्रीति उठाकर एक आत्मा पर भाव, प्रीति, प्रेम करो।

सारा जगत मोहनिद्रामें सो रहा है। उसमेंसे धक्का मारकर भी ज्ञानी आपको जगाना चाहते है, अब आपको सोने नहीं देना है। आप आत्मा हैं। ज्ञानीने जगह जगह आत्मा देखा है वैसा शुद्ध आत्मा ही मेरा है, मैं वही हूँ, उससे भिन्न मैं नहीं हूँ, उससे भिन्न जो है वह मेरा नहीं है। ऐसा विश्वास बना लो। आत्माका माहात्म्य समझमें नहीं आया, इसीलिये आत्माको देखनेकी दृष्टि नहीं बनती। सत्संगमें जैसे-जैसे बोध सुनते रहेंगे वैसे-वैसे समझ आयेगी। समझ आने पर दृष्टि बदलेगी।

सुननेसे पुण्यबंध होता है। करने लग पड़ें तो काम बन जाय। कानमें पड़ते ही ढेर सारे पुण्यकी कमाई होती है। पर उद्यमशील बन जायें तो काम बन जाय।

दृष्टि तो बदलनी ही पड़ेगी। अनंत ज्ञानियोंने ऐसा ही किया है। वैसा करके ही मोक्ष गये हैं। जगह-जगह विषको अमृत किया है। आपकी देरीसे ही देर है। तैयार हो जायें। दृष्टि बदल जाय तो अभी काम बन जाय, अन्यथा अभी देर है।

'मेरा-मेरा' कर रहे हैं वह किसके लिये? एक सुई भी आपके साथ नहीं जायेगी। साढ़े तीन हाथ स्थानमें जलाकर भस्म कर देंगे। आपका तो आत्मा है, उसे पहचाननेका यह अवसर आया है। अतः चेत जायें। उसे सँभाले। उस पर भाव, प्रेम करें। जहाँ भी दृष्टि पड़े, एक मात्र उसे ही प्रथम देखें। यह देखने-जाननेवाला न हो तो सब मुर्दे हैं।

"चित्रकूटके घाट पर, भयी संतनकी भीड़;
तुलसीदास चंदन घसे, तिलक करे रघुवीर"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुलसीदासजी चंदन घिस रहे हैं। संतोंकी भीड़ लगी हुई है। वहाँ रामको पहचाननेका संकेत किया है कि उन सब भक्तोंको तुलसीदासजी चंदन घिसकर तिलक कर रहे हैं—सबमें आत्मा देखते हैं। अतः जिसे तिलक करते हैं उसे राम समझते हैं। यों आत्माको देखनेकी दृष्टि करें।

भैंसको दानेकी टोकरी रखने कोई स्त्री आती है, तब भैंसकी दृष्टि स्त्री पर नहीं होती। उसने कैसे कपड़े पहने हैं, कैसे गहने पहने हैं, वह युवती है या वृद्धा—भैंस यह सब कुछ नहीं देखती। उसकी दृष्टि तो एक मात्र दानेकी टोकरी पर रहती है। इसी प्रकार दृष्टिको अन्य पदार्थोंसे हटाकर आत्मा पर करनी चाहिये।

[1]"जेवा भाव तेवा प्रभु फळे, भभ्भा भजन थकी भय टळे;
भेख धर्ये जो सिद्धि थाय, भांड भवैया वैकुंठ जाय."

आपके भाव आपके पास है। भाव आत्मा पर हो तो काम बन जाय।

★★★

ता. १५-८-३५

उलटा किया तब जगत दिखायी दिया, सुलटा किया तो आत्मा दिखायी दिया। जो दिखायी देता है वह सब पर है। जो दीखता है उसे माना है यही उलटी दृष्टि है। दृष्टि बदले तो सबका ज्ञाता-द्रष्टा ऐसा जो आत्मा उस पर लक्ष्य जाता है, परपदार्थोंमें मेरापन हो गया है वह दूर होता है।

सब छोड़ना पड़ेगा। जहाँ जहाँ 'मेरा मेरा' किया है, वहाँसे उठ जाना पड़ेगा। मेरा तो एक आत्मा है। इसके सिवाय जगतकी वस्तुओंमेंसे एक परमाणु भी मेरा नहीं।

आत्माका बाल भी बाँका नहीं होगा। मात्र उसका निश्चय नहीं किया, पकड़ नहीं हुई। वह कर लो। यह अन्य सब तो कलंक है। उसे माना है। पुरुषार्थ करो। परदा नहीं पड़ा है। परदा पड़े तो अन्य दिखायी देता है।

"जे जाण्युं ते नवि जाणुं अने नवि जाण्युं ते जाणुं।"

ऐसा तुम्हारा स्वरूप है? कैसा अपूर्व तुम्हारा स्वरूप है! उसे कभी याद नहीं किया। आत्माको सुला दिया है, उसे जगाया नहीं। उस पर भाव, प्रेम, प्रीति करनी है।

यह सब पड़ा रहने दो। जब देखो तब इस कलंकको आगे करते हो। छोड़ो इसे और अब आत्माको आगे करके सब करो। पहले यह न हो तो अन्य कुछ नहीं होता। ऐसा आत्मा! इस पर भाव करो, इसे आगे करो। भाव बदलनेका पुरुषार्थ करना चाहिये।

अपने देश गये बिना छुटकारा नहीं है। यह तुम्हारा देश नहीं है। इस जीवमें बहुत दोष हैं। यह गोरा, यह काला, यह शिक्षित, यह समझदार, यह स्त्री, यह पुरुष—यह देखना छोड़ दो। एक अपने ऊपर आ जाओ। अपनेमें अनंत दोष हैं, इन्हें अब निकालना है। अतः अपने दोष ही ढूँढकर निकालो। पराये दोष देखना छोड़ दो। 'तेरे दोषसे तुझे बंधन है, यह संतकी प्रथम शिक्षा है।'

---

१. अर्थ—जैसे भाव वैसे प्रभु फल देते हैं। प्रीतमदास कहते है कि भजन करनेसे भय दूर होता है। भेख धरने मात्र से अगर सिद्धि होती हो तो भांड वगेरे वेशधारी भी वैकुंठ जाने चाहिये, मगर ऐसा नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खूँटेके साथ बाँधा नहीं है, मनको खूँटेके साथ बाँधना चाहिये। ऐसा योग मिला है तब जीव खूँटेके पास आया है, पर अभी बँधा नहीं है। बँध जाय तो हानि करता रुके और मार खानेसे बच जाय।

आत्मभावका पुरुषार्थ करो। सत् और शीलके भाव रखो। जो बीचमें आता है उसे दूर करो। कुत्ते घुस जाते हैं, उन्हें मारकर बाहर निकाल दो–परभावरूपी कुत्तोंको बोधरूपी लकड़ीसे मार भगाओ।

★★★

ता. २७-८-३५

ज्ञानियोंने बहुत कहा है, पर जीवको उत्सुकता नहीं है। कही गयी बात व्यर्थ ही जाती है। लक्ष्यमें ले लें तो काम बन जाय। अति संक्षेपमें कह दूँ?

आस्रवमें संवर हो, विकारके स्थानोंमें वैराग्य हो, 'सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो' यों सबमें आत्मा देखा जाय; यह तुंबी (देह) है, कर्म है, कलंक है इसे न देखा जाय; स्त्री है वह आत्मा है यों पहले आत्मा देखनेकी मनमें रुचि हो तो काम बन जाय। ऐसा अभ्यास करना चाहिये। एक यही भावना करनी चाहिये।

★★★

ता. ७-९-३५

अपने प्रियसे प्रिय बालकको कोई मार दे तो उस पर अंतरसे कितना रोष आता है? 'इसका कब बुरा करूँ' यों अंतरमें विष ही विष हो जाता है। इसी प्रकार हमें अनंतकालसे दुःख देनेवाले शत्रु कौन हैं? पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय तथा मन ये दस–इन पर अंतरसे शत्रुता होनी चाहिये। दुश्मनको कोई ऐसा कहेगा कि आइये, पधारिये? वीर क्षत्रियके स्वभावसे शत्रुको मार भगानेके लिये तैयार रहना चाहिये और अवसर आने पर मार मारते रहना चाहिये। तभी विजय हो सकती है। एक मनको जीत लेने पर दसों ही शत्रु जीत लिये जाते हैं और आत्मसुख प्राप्त होता है।

विभाव ही शत्रु है। स्वभाव मित्र है। विभावके प्रति रोष होना चाहिये। अनादिसे अहित करनेवालोंको मित्र मान रखा है, यही भूल है। अब यह जानकर कि वे शत्रु हैं, उनके प्रति अंतरसे रोष होना चाहिये।

दृष्टि बदलने योग्य है। कालकूट विषको अनादिसे अमृत माना है। अब अमृतको अमृत मानें और विषको विष मानें तभी कल्याण होगा। दृष्टि बदलेगी तभी विषको छोड़कर अमृत देखेगा। आस्रवमें संवर होगा, शत्रु भाग जायेंगे, बंधन नहीं होगा, दोष मात्र नष्ट होंगे।

आत्मा पर प्रेमभाव बढ़ा देना चाहिये। उसका माहात्म्य नहीं लगा है। समझ बड़ी बात है। समझनेसे ही छुटकारा है। समझ आने पर ज्ञात होता है कि यह विष और यह अमृत है। फिर अमृतको छोड़कर विष कौन ग्रहण करेगा?

यह चेतन और यह जड़ यों ज्ञानीको भेद हो गया है। आत्माकी ऋद्धि, आत्माका सुख कहा नहीं जा सकता।

"समकित साथे सगाई कीधी, सपरिवारशुं गाढी;
मिथ्यामति अपराधण जाणी, घरथी बाहिर काढी."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहिरात्मपनसे प्रवृत्ति की है उसे छोड़ अंतरात्मा बननेका अवसर आया है। निश्चयनयसे जैसा अपना स्वरूप है, वैसा निश्चय नहीं हुआ है। अब उसका निश्चय कर लेना चाहिये।

प्रत्येककी श्रद्धामें भेद है। सबको भावानुसार फल है। भाव उन्नत करें। प्रेम, स्नेह, भाव बढ़ा देवें।

'पावे नहि गुरुगम बिना'। गुरु दीपक है, उन्हींसे दीप प्रकाशित होगा।

★

एक चोरको फाँसीकी सजा हुई। मंत्री विचक्षण था। उसने सूली पर चढ़े मृत्युके सन्मुख चोरसे पूछा, 'तुझे किसीकी शरण है? संसारमें जिनको तुम अपना मानते थे उनमेंसे कोई अभी तुम्हें शरण देनेवाला है?" चोरने कहा, "अभी तो मुझे किसीकी शरण नहीं है" मंत्री बोला, "मैं एक बात कहता हूँ उसे लक्षमें लोगे? लोगे तो तुम्हारा काम हो जायेगा।" चोरने कहा, "अवश्य लक्ष्यमें लूँगा। आप कृपा कर मुझे कहें।" दुःखके समयमें हितशिक्षा बहुत आतुरतासे ग्रहण हो सकती है। अतः मंत्रीने कहा, 'समभाव। चाहे जितना दुःख आये, मृत्यु आये पर मैं उसे समभावसे सहन करूँगा। वह दुःख नष्ट होगा, पर मेरा स्वरूप नष्ट नहीं हो सकता। अतः समभावमें रहना चाहिये।"

चोरने समभावका शरण ग्रहण किया। वह मरकर देवगतिमें गया। मंत्रीने सूली पर चढ़े चोरसे बात की ऐसा जब राजाको ज्ञात हुआ तो उसने मंत्रीको पकड़कर कैद करने और उसका घर लूटनेके लिये सिपाही भेजे।

सिपाही मंत्रीके घर लूटने आये। वहाँ कोई एक अनजान रक्षक खड़ा था। उसने सब सिपाहियोंको मार भगाया। फिर राजा स्वयं आया। उसने देखा कि यह रक्षक मनुष्य नहीं है किन्तु देव है। राजाने पूछा, 'तुम कौन हो?' रक्षकने कहा 'मैं चोर, मरकर देव हुआ हूँ। यह मंत्रीका प्रताप है, इसलिये इसका घर नहीं लूटने दूँगा।" राजा प्रसन्न हुआ। मंत्रीका सन्मान कर उसे सिरोपाव दिया।

यों एक शब्द सुननेसे इतना हित हुआ, तब ज्ञानी पुरुषके शब्द वारंवार सुननेको मिले तो यह कितने महालाभका कारण होगा! अतः इसे सामान्य न जानें। अपूर्व अलौकिक भावसे ज्ञानीके वचनोंका सन्मान कर आत्महित साधनेके लिये जाग्रत हो जायें, चेत जायें।

★
★★

ता. १६-९-३५

मृत्यु अचानक आ पहुँचेगी। मृत्यु आने पर यह सब छोड़कर जाना पड़ेगा। देहादि सर्व परवस्तुओंका स्वामी बना बैठा है, उन्हें छोड़ना पड़ेगा। अतः अभीसे चेत जायें। मनुष्यभव और उसमें भी सत्पुरुषका समागम यह बहुत दुर्लभ योग मिला है। अतः चेत जायें।

एक आत्माको पहचान लें तो फिकरके फाके मारे। जिसने आत्माको पहचान लिया वह तो बोल उठेगा, "अब हम अमर भये, न मरेंगे।" काल तो उसका किंकर हो गया! मृत्यु उसे महोत्सव हो जाता है। उसके घर तो बाजे बज गये। बाकी अन्यको मरण आये तब देख लें!

मृत्यु तो आयेगी ही। अब इस दुःखको दूर करने किसे बुलाया जाय? कौनसे स्थानमें जाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहें कि दुःखमात्र चला जाय? बड़े लोग अच्छे उत्तम स्थानमें रहते हैं, शौचालयमें नहीं रहते। सारा संसार शौचालयमें रहता है, पर ज्ञानी कहाँ रहते हैं? 'समभाव'में। यह उनका स्थान है। इस स्थानका कितना सुख, कितने ठाठ हैं वह कहा नहीं जा सकता। इस स्थान पर जानेसे दुःख मात्र नष्ट हो जाते हैं। चंडाल जैसे नीचके घर, तुच्छ भावमें ज्ञानी नहीं रहते। इसलिये उनके भयमात्र नष्ट हो गये हैं।

"जिसने एक आत्माको जाना, उसने सब जान लिया।" उसकी श्रद्धा, विश्वास, प्रतीति होने पर भी काम बन जायेगा।

'छह पद' का पत्र अमूल्य है। गहरे उतरना चाहिये। पकड़ होनी चाहिये। सबके बीच कहा है, पर 'समभाव'की पकड़ कर लेगा, उसका काम हो जायेगा।

★★★

ता. २७-९-३५

बहुत बात कहनी है, पर कही नहीं जाती। 'सुन सुन फूटे कान', सुना पर न सुननेके समान कर दिया, क्योंकि उपयोग, परिणमन उसमें नहीं हुआ, बाहर ही रहा। परिणमन होना चाहिये।

क्षयोपशम चाहिये। विचारकी कमी है। विचार ध्यान है। अंतर परिणमन विचारसे करना चाहिये। बदल डालना चाहिये।

अब तो आत्माको देखनेका अभ्यास करो। अन्य देखनेका अभ्यास किया उससे लौटकर एक आत्मा देखनेका अभ्यास करो। दृष्टिमें विष है, वह अमृत बन जायें वैसा करो। 'मात्र दृष्टिकी भूल है' ज्ञानियोंने यही किया है, यही देखा है। 'कर विचार तो पाम'। विचार द्वारा दृष्टि बदलकर अंतरदृष्टि करनेकी आवश्यकता है।

★★★

ता. २८-९-३५

"पर्यायदृष्टि न दीजिये, एक ज कनक अभंग रे।" जो महापुरुष मोक्षके लिये उद्यम कर रहे हैं, वे तो सब उलटेको सुलटा ही कर रहे हैं।

आत्मा पर भाव, प्रेम, प्रीति अत्यंत करनी चाहिये। खाते-पीते, बोलते-चालते, बैठते-उठते हर समय उसे याद करना चाहिये। इसका स्वरूप कैसा अद्‌भुत है? इसका सुख अनंत है। इसकी ऋद्धि अनंत है। इसके लिये पागल बन जायें। भले ही संसार पागल कहे, पर एक यही! इसके लिये पागल हो जायें।

सभी ज्ञानीपुरुष एक ही मार्गसे मोक्ष गये हैं!वह मार्ग 'समता' है। बहुत अद्‌भुत है! जहाँ विषमभाव है वहाँ बंधन है। समभाव है वहाँ अबंधता है।

★★★

ता. २९-९-३५

पत्रांक ६७० का वाचन—

ॐ सद्‌गुरुप्रसाद

"ज्ञानीका सर्व व्यवहार परमार्थमूल होता है, तो भी जिस दिन उदय भी आत्माकार रहेगा वह दिन धन्य होगा।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब शास्त्रोंका सार, तत्त्वोंका सार ढूँढकर बता दिया है। इस कालमें कृपालुदेवने बहुत दुर्लभ, काम निकल जाय ऐसा प्रदान किया है। विश्वास हो तो कहूँ।

भक्तिके 'बीस दोहे' मंत्रके समान हैं। सौ बार, हजार बार पाठ करें तो भी कम है। लाभके ढेर हैं। 'क्षमापनाका पाठ', 'छह पद'का पत्र, 'यमनियम', 'आत्मसिद्धि' ये अपूर्व साधन हैं! चमत्कारी है! नित्य पाठ करना आवश्यक है। जीवनपर्यंत इतनी भक्ति नित्य करनी ही चाहिये। 'दर्जीका लड़का जीये तब तक सीये।' यह बात तो झूठी है, पर आप जीवनपर्यंत इतना तो करेंगे ही। इससे समाधिमरण होगा, समकितका तिलक होगा। अधिक क्या कहूँ?

दूसरा एक देववंदन है वह भी अपूर्व है! प्रत्यक्ष देवको बुलाया है, अतः वह भी प्रतिदिन करने योग्य है।

ज्ञानीके सर्व व्यवहार परमार्थमूलक हैं, कैसे? ज्ञानीके पास ऐसा क्या है कि वे जो भी करते हैं, सुल्टा ही होता है? खाते हैं फिर भी नहीं खाते। संसारमें हैं तो भी संसारी नहीं हैं। आस्रवके काममें संवर होता है, ऐसा उन्हें क्या मिला है? उन्हें 'गुरुगम' मिला है, जिससे वे आत्मामें परिणमित हुए हैं। एक आत्माको पहचाननेकी सबको आवश्यकता है, तब तक संसारमें कहीं भी सुख नहीं है। गुरुगम कैसे मिले? आत्माको कैसे पहचाने?

आपकी देरीसे देर है, उसे प्राप्त करनेके भाव रखें। भाव और परिणाम बहुत बड़ी बात है। उस वस्तुको प्राप्त करनेके भावके बिना, उसकी आकांक्षाके बिना किसीने उसको प्राप्त नहीं किया है। यह वस्तु स्वतः आकर मिलनेवाली नहीं है। उसकी प्राप्तिके लिये भाव बढ़ायें। मृत्यु तो सबको एक समय अवश्य आयेगी, किसीको छोड़ेगी नहीं। संयोग जितने भी हैं वे सब छूटेंगे। ऐसी देह, ऐसे संयोग अनंतबार छोड़े हैं, पर एक आत्माको नहीं छोड़ा है। वह मरेगा नहीं। मात्र उसे पहचान लेनेका अवसर आया है। अतः चेत जायें, तैयार हो जायें। एक इसीके लिये जीना है। खाते-पीते, बोलते-चालते, उठते-बैठते प्रत्येक प्रसंगमें एक 'आत्मभावना'। उसके सिवाय अन्य सब विष है, कालकूट विष है। ये बाह्य नेत्र तो फोड़ डालने चाहिये, अंतरकी आँखें खोलनी चाहिये। जहाँ तहाँ एक 'तू ही तू ही'—आत्मा ही देखें।

इस अवसरको ऐसा वैसा नहीं जानें। बात सुनते ही परिणत हो जायें तो कोटि कल्याण है। आत्मा कैसी अपूर्व वस्तु है! उसका माहात्म्य कहा नहीं जा सकता।

"जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां,
कही शक्या नहि पण ते श्री भगवान जो."

इसीकी बात, इसीका विचार, इसी पर प्रेम, प्रीति, भाव होते हैं वहाँ कोटि कर्म क्षय होते हैं।

"पर्याय दृष्टि न दीजीओ, एक ज कनक अभंग रे;
निर्विकल्प रस पीजीओ, शुद्ध निरंजन एक रे."

★★★

आत्मा, चैतन्य, यह कोई ऐसी वैसी बात है! इसका माहात्म्य तो कुछ अलौकिक है! कहा नहीं जा सकता। इसीकी पूजा करनी है, इसीको नमस्कार करना है, यही पूज्य है, इसे सँभालें। इसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार करें। इसीकी भावना भायें। इसी पर प्रेम, प्रीति, भाव करें।

[१]"अहो! अहो! हुं मुजने कहुं, नमो मुज नमो मुज रे;
अमित फळ-दान दातारनी, जेहनी भेट थई तुज रे. शांति०"

आत्माके कारण सब है। वह न हो तो कोई पूजा-सत्कार, मान, बड़ाई नहीं देगा, पर साढे तीन हाथ भूमिमें जलाकर भस्म कर देगा। जिसका ऐसा अचिंत्य तो माहात्म्य है! और जो सबको जाननेमें, माननेमें प्रथम है, ऐसे अपने आत्माको छोड़ दिया, उसे सँभाला नहीं, उस पर भाव, प्रेम, प्रीति नहीं की और मिथ्या मायाके प्रसंगोंमें प्रेम किया।

नव परिणीत वर-वधूके मनमें एक दूसरेके प्रति प्रेम बढ़ता जाता है, प्रेमकी ऊर्मियाँ उभरती हैं। यह तो मायाका स्वरूप है, बंधनका कारण है। पर ऐसा प्रेम, ऐसी रुचि, ऐसी ऊर्मियाँ आत्मा पर नहीं आयीं।

"जैसी प्रीति हरामकी, तैसी हर पर होय;
चल्यो जाय वैकुंठमें, पल्लो न पकड़े कोय."

जहाँ प्रेम प्रीति करनी है उसे छोड़कर मायामें समय खो रहा है। काचकी शीशी फूट जाय, वैसे ही यह तुंबी (देह) फूट जायेगी। आत्माकी पहचानके बिना परिभ्रमणके दुःख मिटेंगे नहीं।

जहाँ भी हो वहाँ आत्मा देखना सीखें तो रागद्वेष कर्म नहीं बँधेंगे। कर्मके कचरेको न देखें। वह आत्मा दिव्य चक्षुसे दीखता है, ज्ञानी दिव्य चक्षुसे देखते हैं।

[२]"प्रवचन-अंजन जो सद्गुरु करे, देखे परम निधान, जिनेश्वर;
हृदयनयन निहाळे जगधणी, महिमा मेरु समान, जिनेश्वर."

हृदयनेत्रसे देखें तो जगह जगह निधान, आत्मा दिखायी देगा। बड़े व्रत प्रत्याख्यान लेकर बैठे हैं, पर ऊर्मि जाग्रत नहीं हुई। उत्कंठा, भाव, प्रेम, रुचि नहीं हुई।

"जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां,
कही शक्या नहि पण ते श्री भगवान जो."

ऐसा परम सुखधाम आत्माका स्वरूप है, तो हमें अब क्या करना चाहिये?

श्रद्धा। 'सद्धा परम दुल्लहा'—भगवानका वचन है। कमर कसकर तैयार हो जाओ, नाच कूदकर भी एक श्रद्धा—पकड़ कर लो। फिर जप, तप, त्याग, वैराग्य सब हो जायेगा। सबसे पहले श्रद्धा करो। यह बहुत बड़ी बात है। जिसका महाभाग्य होगा उसे ही यह प्राप्त होगी।

वर्षा तो बहुत होती है पर मघाका पानी जब बरसता है तब लोग टंकियाँ भरकर रखते हैं कि जिससे वह पानी बारह माह उपयोगमें आ सके। वैसे ही यहाँ भी पात्रानुसार पानी भर लो। जितना पानी भर लोगे उतना ही भविष्यमें बहुत काम आयेगा।

---

१. अमित फल देनेवाले श्री शांतिनाथ भगवान मुझे मिल गये है अतः मैं धन्य हो गया हूँ, कृतकृत्य हो गया हूँ अतः मैं स्वयंको नमस्कार करता हूँ। २. यदि सद्गुरु प्रवचन (आगम) रूपी अंजन मेरी आँखमें लगा दे तो दृष्टिरोग जानेसे मुझे परम निधान दिखाई देगा अर्थात् आत्मज्ञान संप्राप्त होगा और अंतर्दृष्टि खुलनेसे जगनाथ ऐसे प्रभुकी मेरु सम महिमा भासित होगी। जंबूद्वीपके मध्यमें एक लाख योजन ऊँचा मेरु पर्वत है इतनी प्रभुकी महानता श्रद्धानमें आयेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानीपुरुषोंका बोध अद्‌भुत है! मरे हुएको जीवित करता है! सम्यक्त्व उसीसे होता है।

खाना और सोना यह धंधा हो गया है। आलस्य और प्रमादने जीवका बुरा किया है। क्या खाना और सोना आत्माका धर्म है? सब मिथ्या है।

शत्रु पर आत्मामें कितना विष होता है कि कब मार डालूँ, काट डालूँ? तो अनंतकालसे अनंत दुःखके कारण पाँच इन्द्रियाँ, मन और चार कषाय, ये दस शत्रु हैं, ऐसा समझा होता तो उनके प्रति कितना विष होता! विभावोंमें या मायामें जो राग, प्रेम, प्रीति है वह परमनिधान ऐसे आत्मामें राग नहीं होने देते। तो इन शत्रुओं पर अंतरमें कितना विष रहना चाहिये?

आत्माको हितकारी एक सत्संग है, उसकी इच्छा ज्ञानीपुरुषोंने भी की है। क्योंकि उसीमें आत्मा पर भाव, रुचि, प्रीति, भक्ति हो सके ऐसा सुननेको मिलता है। सत्संग चिंतामणिके समान महादुर्लभ है, क्योंकि निमित्तकी प्राप्ति ही बहुत बड़ी बात है।

★

'फिकरका फाका भर्या, ताका नाम फकीर।'

सब फिकरके फाके मारें, एक आत्मभावमें रहें। दुःख आना हो तो आये, रोग आना हो तो आये, धन चला जाता हो तो जाये; अंतमें यह देह भी चली जाना हो तो जाये! इससे मेरा कुछ नहीं जायेगा, मुझे कुछ हानि नहीं है। इनमेंसे कुछ भी मेरा नहीं है। मेरा है वही मेरा है। 'तेरा तेरे पास है, वहाँ दूजेका क्या काम?' अन्य सब तो कर्मकलंक है। जो आता है वह जानेके लिये आता है। उससे भार हलका होता है, ऋण चुकता है।

ज्ञानी महासुखमें रहते हैं, आनंदमें रहते हैं। फिकर मात्रके फाके मारें, एक सत्, शील और भक्तिमें लगे रहें। 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।' आत्मभावनाका पुरुषार्थ करते रहें।

★★★

ता. १७-११-३५

सत् और शील यही कर्तव्य है। शीलव्रत महाव्रत है। संसारके किनारे आ पहुँचनेवालेको ही यह प्राप्त होता है। देह गिर जाय तो भले ही गिरे, देह जाती है तो जाने दें, पर ब्रह्मचर्यका पालन करें। वृद्धावस्थामें भी यह व्रत आये तो महाभाग्य समझें। उसकी अवश्य देवकी गति होती है।

मृत्यु तो सबको अवश्य आयेगी ही। यहाँ इतने लोग बैठे हैं उन सबको उस समय अनेक प्रकारकी वेदनाएँ प्राप्त होगी। सबको एक प्रकारकी नहीं आयेगी। तब इतना लक्ष्य रहे तो काम बन जाय—

वेदनी आती है उससे हजार गुनी आये, जो आती है वह जा रही है, बँधे हुए कर्म उदयमें आकर छूट रहे हैं। उन्हें देखनेवाला मैं आत्मा हूँ। मैंने तो ऐसा निश्चय कर लिया है कि मैं आत्मा कभी मरूँगा नहीं। बँधे हुए सब कर्म आकर जानेवाले हैं, पर देखनेवाला आत्मा है, आत्मा है, आत्मा है; वह नित्य है, नित्य है आदि छह पदका निश्चय किया है। "विशेष रोगके उदयसे अथवा शारीरिक मंदबलसे ज्ञानीका शरीर कंपित हो, निर्बल हो, म्लान हो, मंद हो, रौद्र लगे, उसे भ्रमादिका उदय भी रहे; तथापि जिस प्रकारसे जीवमें बोध और वैराग्यकी वासना हुई होती है, उसी प्रकारसे उस रोगका, जीव उस उस प्रसंगमें प्रायः वेदन करता है।" बोध और वैराग्य आत्मा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्गुरुकी शरण सिरपर है। सद्गुरु अपना आत्मा है जो प्रत्येकके पास है। मैंने आत्माको नहीं जाना है, पर सद्गुरुने आत्माको यथार्थ जाना है, वैसा ही आत्मा मेरा है, उसके सिवाय अन्य कुछ भी मेरा नहीं है। 'सहजात्मस्वरूप' महामंत्र है। भान रहे तब तक उसमें उपयोग रखें, उसका स्मरण करें। भान जानेके बाद चिंता नहीं। पर भान रहे तब तक सद्गुरुकी शरण, उसका ध्यान रखें। यह समकित होनेका कारण है। चलते-फिरते, खाते-पीते, बैठते-उठते जगह जगह आत्मा है।

"जैसी प्रीति हरामकी, तैसी हर पर होय;
चल्यो जाय वैकुंठमें, पल्लो न पकड़े कोय."

आत्मा पर प्रेम, प्रीति भाव नहीं हुआ है, वह कर्तव्य है।

"धरम धरम करतो जग सहु फिरे, धर्म न जाणे हो मर्म जिनेश्वर;
धर्म जिनेश्वर चरण ग्रह्या पछी, कोई न बांधे हो कर्म जिनेश्वर. धर्म जिनेश्वर०"

"समकित साथे सगाई कीधी, सपरिवारशुं गाढी,
मिथ्यामति अपराधण जाणी, घरथी बाहिर काढी."

आत्माकी पहचान कर लें। उसके साथ सगाई कर लें। अन्य सगाई छोड़ दें। जो जड़को छोड़कर आत्माके साथ सगाई करेंगे, उनका काम बन जायेगा।

★★★

ता. १९-११-३५

इन सबको मरण तो एक दिन अवश्य आयेगा। उस समय क्या करना चाहिये वह बताता हूँ। जिसे सुनना हो वह सुने, ग्रहण करना हो वह ग्रहण करे, पकड़ना हो वह पकड़ ले। कहनेवाला कह देता है, जानेवाला चला जाता है।

'प्रीति अनंती परथकी जे तोडे ते जोडे एह।'

सगे-संबंधी, रुपया-पैसा, घरबार, स्त्री बच्चे–इन सबसे प्रीति उठाकर, अहंभाव-ममत्वभाव उठाकर, देह आदि सर्वसे मोह-मूर्छाभाव जलाकर, भस्म कर, स्नानसूतक मनाकर चला जाना है। तो मैं स्त्री हूँ, पुरुष हूँ, छोटा हूँ, बड़ा हूँ–यह सब पर्यायदृष्टि छोड़कर श्री सद्गुरुने जाना है ऐसा एक शुद्ध आत्मा मैं हूँ, ऐसी आत्मभावना रखें। जब तक भान रहे तब तक 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' महामंत्रका स्मरण करें। सबसे उपयोग उठाकर उसमें रखें। इसके समान अन्य कोई शरण नहीं है। तभी कल्याण होगा। सबसे प्रीति उठाकर जितनी प्रीति आत्मा पर की होगी उतना ही कल्याण होगा। सद्गुरुने आत्माको जाना है। अतः सद्गुरुकी शरण, श्रद्धा, उन पर भक्ति, भाव, रुचि, प्रीति बढ़ायी होगी, वही काम करेगी।

★★★

ता. १२-१-३६

मनुष्यभव महा दुर्लभ है। जब तक शरीर व्याधिसे नहीं घिरा है तब तक चेत जायें, धर्म कर लें, पीछे कुछ नहीं होगा। लूटमलूट लाभ लेनेका अवसर आया है।

सयाने न बनें। देखते रहें। अंदर सिर फँसाने न जायें। 'एक मत आपडी के ऊभे मार्गे तापडी।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह अच्छा है यह बुरा है ऐसा कुछ न करें। संकल्प-विकल्पने ही इस जीवका बुरा किया है। इसका इसको भारी है। हमें तो अभी प्रतिबंध कम कर आत्मभाव करने योग्य है। इसमें प्रमाद कर्तव्य नहीं है। समय मात्रका भी प्रमाद कर्तव्य नहीं है। दूसरे करेंगे उसका फल उन्हें मिलेगा। समदृष्टि रखें। मैत्री, प्रमोद, करुणा, माध्यस्थ भावना भायें। ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय आदि अच्छे निमित्त बनायें। आत्मभावना भानेका पुरुषार्थ करें। समयमात्र भी प्रमाद न करें। 'समयं गोयम मा पमाए।'

परोक्षसे प्रत्यक्ष होगा। परोक्षका अभ्यास विशेष होगा तो प्रत्यक्ष होते देर नहीं लगेगी। अतः पुरुषार्थ करें। छोड़ना तो पड़ेगा ही। अन्यभावको छोड़ें, आत्मभावका अभ्यास बढ़ायें।

जे जाणुं ते नवि जाणुं, नवि जाण्युं ते जाणुं।

★★★

ता.१३-१-३६

हजारों जड़ पदार्थ इकट्ठे करें तो भी वे सुन सकेंगे? सुनता है वह एक आत्मा है। कैसा अपूर्व इसका माहात्म्य है! यह न हो तो सब मुर्दे हैं। सबको देखने-जाननेवाला और सर्व अवस्थामें उससे अलग रहनेवाला आत्मा है। उसकी मान्यता नहीं हुई। बात मान्यताकी है। आत्माकी शक्तियाँ अनंत कर्मोंसे आवरित है। उसमें मुख्य आठ कर्म हैं। वे सब एक मोहनीय कर्मके आधारसे टिके हुए हैं। उस मोहनीयके दर्शनमोह और चारित्रमोह ऐसे दो भेद हैं। दर्शनमोह अर्थात् विपरीत मान्यता। वह टले और यथार्थ मान्यता हो जाये तो सर्व कर्म क्षय हुए बिना नहीं रह सकते।

'धिंग धणी माथे किया रे, कुण गंजे नर खेट, विमल०'

धिंग धणी अर्थात् आत्मा, उसे प्राप्त करने, पहचाननेका यह अपूर्व अवसर आया है। परमकृपालुदेवने कहा था कि अब क्या है? तुम्हारी देरीसे देर है। यह सच है। अब तो आपकी देरीसे देर है।

मुमुक्षु—यह सच है कि हमारी देरीसे देर है। पर हमें तैयार होनेके लिये क्या करना चाहिये?

प्रभुश्री—घरसे कपड़े पहनकर तैयार होकर आये हों तो फिर घर जाना नहीं पड़ता। पर गठरी लेने जानेका बाकी हो तो? वैसे ही तैयार होकर आये हों तो देर नहीं है।

सब छोड़े बिना छुटकारा नहीं है। जो अपना है उसे छोड़ना नहीं है। शेष सब देर-सबेर छोड़ना ही है, तो आजसे ही सर्व परभावके प्रति उदासीन होकर अपने स्वरूपकी ओर भाव-प्रेम, प्रीति-भक्ति बढ़ाना उचित है। आत्मभावका पुरुषार्थ निरंतर जाग्रत रखने योग्य है।

★★★

ता. १४-१-३६

कौवे, कुत्ते, ढोर, पशु ये सब आत्मा हैं। पर इनसे अभी कुछ हो सकता है? मनुष्यभवमें समझ हो सकती है। रोग हो जायेगा तब कुछ नहीं हो सकेगा। अभी जागृत होना चाहिये। सत्संग और बोधसे समझ आती है, अतः उसकी आराधना सदैव करें।

ज्ञानीने आत्माको यथार्थ जाना है। वैसा ही आत्मा मेरा है। उसके सिवाय अन्य कुछ भी मेरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। आत्माके प्रति भाव हों, ज्ञानीने आत्मा जाना है वैसा मान्य हो तो काम बनता है। बात मान्यताकी है। स्वयं ही अपने आप मान्यता करेंगे तब होगा। अन्य तो कहकर छूट जायेंगे। करना तो आपके हाथमें है। ज्ञानीकी 'हाँ' में 'हाँ' और 'ना' में 'ना' करनेवालेका काम बनेगा।

मुमुक्षु–'हाँ' में 'हाँ' और 'ना' में 'ना' करनेका ही निश्चय है। अन्य कुछ नहीं करना है। वह करनेके लिये ही बैठे हैं।

प्रभुश्री–ऐसा करनेके लिये बैठे हैं उनका तो भला ही होगा। पर जो ऐसा करने बैठे होंगे वे ऐसे आत्मा देखेंगे? यह स्त्री, यह पुरुष, यह अच्छा, यह बुरा ऐसे देखेंगे? या ज्ञानीने देखा है ऐसे शुद्ध आत्मा सभी हैं ऐसा देखेंगे?

'पर्यायदृष्टि न दीजीये, एक ज कनक अभंग रे।'

★★★

ता. १७-१-३६

लौकिक दृष्टिमें ले लिया है, अलौकिक दृष्टि करनी चाहिये। योगदृष्टि बोलते हैं, उसे अलौकिक दृष्टिसे बोला जाय तो एक एक गाथा बोलते लाभके ढेर लगते हैं। भक्तिके बीस दोहे हैं, एक एक दोहा बोलते कोटि कर्म क्षय हो जाते हैं, पुण्यके ढेर लग जाते हैं। उसमें भाव, भक्ति, प्रेम चाहिये। कोई भी गाथा, कोई भी पद, चाहे एक ही जानते हों, तो एकको ही अलौकिक दृष्टिसे याद करो, गाओ, बोलो।

मनुष्यभव महादुर्लभ है। मेहमान हो। देखते देखते देह छूट जायेगी। अभी अपूर्व कमाई कर लेनेका अवसर बीत रहा है। अतः जागृत हो जाओ, प्रमाद न करो। बुरा किया है तो लौकिक दृष्टिने ही किया है। 'जे लोकोत्तर देव नमुं लौकिकथी।''

केवलज्ञान होगा तो इस दीवारको तो नहीं होगा, जीवको ही होगा। समकित भी जीवको ही होगा। यहाँ बैठे हैं उनमेंसे किसके पास वह नहीं है? सबके पास है। मात्र आवरण है जिससे प्रकट नहीं होता। उस आवरणको दूर करनेके लिये पुरुषार्थ करो। 'धिंग धणी माथे किया रे'। सद्गुरु भगवानने आत्माको जैसा जाना है, देखा है, अनुभव किया है, वैसा शुद्ध चैतन्यस्वरूप अविनाशी मैं आत्मा हूँ, ऐसी श्रद्धा करो। उस शुद्ध स्वरूपको प्राप्त करने तथा आवरणको दूर करनेके लिये ज्ञानी सद्गुरुकी आज्ञानुसार पुरुषार्थ करो। आप ऐसे वैसे नहीं हैं, आत्मा हैं; ऐसे नहीं हैं, ज्ञानियोंने देखा वैसे हैं–ऐसी श्रद्धा करो। भाव और परिणाम ज्ञानीकी आज्ञानुसार करो। 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।' आत्मभावनाका पुरुषार्थ करना चाहिये।

यहाँ बैठे हैं उन सबको सबसे पहले क्या करना चाहिये? शास्त्रमें भी वही करनेको कहा है, वह क्या है? विनय। बुरा किया हो उसका भी भला हो। सभीके प्रति विनय, नम्रता, लघुता रखो। विनय करनेवालेका ही भला होगा। मान न होता तो यहीं मोक्ष होता।

★★★

ता. १८-१-३६

सारा संसार दुःखसे भरा हुआ है। उसे पार करनेके लिये हमें क्या करना चाहिये? उसकी उपेक्षा की है। उसका माहात्म्य नहीं जाना है। पर एक आभूषण समझकर साथ रखने योग्य है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो यह दिखायी देता है, वैसा आत्मा नहीं है। खाना-पीना, बोलना-चालना सब मिथ्या है। यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ। ज्ञानीने जाना है वैसा आत्मा मैं हूँ, वह आत्मस्वरूप मेरा है। अन्य सब क्रियाको देखनेवाला मैं रहूँ, उसमें मिल न जाऊँ, मुफ्तमें देखता रहूँ तो कर्मबंध न होगा।

आत्माको देखनेका लक्ष्य हो, आत्माकी स्मृतिका लक्ष्य हो, आत्मभावनाका पुरुषार्थ हो तो आस्रवमें भी संवर होता है। विषका अमृत होता है, कोटि कर्म क्षय होते हैं। अतः निरंतर पुरुषार्थ कर्तव्य है।

★★★

पौष वदी ०)), १९५२, ता.२४-१-३६

मुमुक्षु—साहब, कोई नया आता है, कोई पाँच वर्षसे आता है, कोई पंद्रह वर्षसे सत्संग करता है, इन सबको आप कहते हैं कि योग्यता नहीं है, योग्यता लायें, तो इसका क्या मतलब?

प्रभुश्री—क्या कहें? दृष्टि बदली नहीं तब तक योग्यता कैसे कही जा सकती है? दृष्टि बदले तभी काम बनता है। छोड़े बिना छुटकारा नहीं है। आपकी देरीसे देर है। छोड़ना तो पड़ेगा ही, ऐसा परमकृपालुदेवने कहा था। ये चर्मचक्षु छोड़ने पड़ेंगे; बाह्यदृष्टि, पर्यायदृष्टि छोड़नी पड़ेगी। दिव्यचक्षु चाहिये। उसे प्राप्त करनेके लिये आवरण हों तब तक योग्यता कैसे कही जा सकती है? एक मरजिया सौको भारी पड़ता है। ऐसे मरनेको तैयार हो जायें तब काम बनता है। समकितके बिना मोक्ष नहीं है। समकित सुलभ है, सरल है। दृष्टि बदलनी ही पड़ेगी।

★★★

ता. ५-२-३६

बुरा हुआ है तो प्रमादसे हुआ है। प्रमाद, आलस्य छोड़कर अब चेत जायें। यह मनुष्यभव रहा है तो अभी इसे चिंतामणि समान मानकर चेत जायें। 'आणाए धम्मो, आणाए तवो' आज्ञाका आराधन ही धर्म है और आज्ञाका आराधन ही तप है। जीवको आत्माकी पहचान नहीं हुई है, लक्ष्य नहीं हुआ है। वह करनेसे ही छुटकारा है।

मुमुक्षु—वह करनेके लिये ही यहाँ बैठे हैं।

प्रभुश्री—वह तो ज्ञानी जानते हैं। वह करनेके लिये ही बैठे हैं, उनका काम तो होगा ही। धीरज रखें, धैर्य रखनेकी जरूरत है। काम हो जायेगा। समझ और पकड़ चाहिये। समर्थ स्वामीकी शरण ली है, सद्गुरु सिर पर है तब चिंता कैसी? यहाँ बोध सुननेसे तो कोटि कर्म क्षय होते हैं, ढेर सारा पुण्य बँधता है और निकट आया जाता है, पासमें आया जाता है।

यह जीव रंक भी हुआ है और राजा भी हुआ है, हाथके दो बेर कोई न ले ऐसा भी हुआ है। अतः अभी जो आये उसे समता रखकर क्षमापूर्वक सहन करना सीखें। जो आता है वह जायेगा। रहनेवाला कहाँ है? तुम्हारा क्या है? सुख दुःख आना हो उतना भले आओ, भेदज्ञानसे झटका मार मारकर काट डालो, उडा दो—भले ही दूर जा पड़े। जो दिखायी देता है, वह पुद्गल है, पर्याय है; उसे अब नहीं देखना है। उसे धक्का मारकर गिरा दो। ज्ञानी तो आत्मा देखते हैं। ऐसे छोटे-बड़े, अच्छे-बुरे नहीं देखते। पुद्गलको पुद्गलरूप, पराया जानते हैं। अपना तो आत्मा है। उसके साथ सगाई संबंध किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"समकित साथे सगाई कीधी, सपरिवारशुं गाढी;
मिथ्यामति अपराधण जाणी, घरथी बाहिर काढी, हो मल्लि जिन०"

★
★★

ता. ६-२-३६

इन सब जीवोंके पास क्या है? 'भाव'! है या नहीं? किसीके पास भाव न हो ऐसा है क्या?

अब क्या करें? यह बात ऐसी वैसी नहीं हैं। चमत्कार है। एक वचनमें मोक्ष होता है। छोटे, बड़े कोई भी कर सकें ऐसा क्या है? भाव। भावसे ही बुरा होता है, भावसे ही भला होता है। जन्म, जरा, मरण हो रहे हैं वे भी भावसे ही हो रहे हैं। तो अब क्या करें?

"भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान;
भावे भावना भाविये, भावे केवळज्ञान."

यह सबका सार है। जप, तप, क्रिया, कमाई, संयम, मानना, न मानना, यह सब भावमें आ गया।

यह जीव अनादिसे भ्रमण कर रहा है। उस पर दया लाकर कृपालुदेवने बुलाकर लिख दिया, 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।'

इतना ही कथन पर्याप्त है। परको अपना माना है तभी दुःख खड़ा हुआ है। 'मेरा सिर दुःख रहा है, बुखार आया है, पेट दुःख रहा है'—यों अंदर तन्मय होकर मानने जाता है! यह 'तेरा सिर' और 'तेरी पीड़ा' ये तेरे हैं क्या? ये तो कर्म हैं। वे बाँधे हुए आये हैं और जा रहे हैं। उनका ज्ञाता-द्रष्टा उनसे भिन्न तू आत्मा है। वह आत्मा तेरा है। उस पर भाव, यही स्थिर शांत होनेका स्थान है। आत्मभाव होने पर चिंता, आकुलता, सब मिट जाती है। कहिये, ऐसा आत्मभाव अब कौन छोड़ेगा? पूरे गाँवका बेटा हो वह आत्मभाव छोड़ेगा, मैं तो नहीं छोड़ूँगा। इतना ही करना है। ऐसा न करना हो तो भटकता रह संसारमें।

"सत्पुरुषके एक एक वाक्यमें, एक एक शब्दमें अनंत आगम समाहित हैं, यह कैसे है?" पता नहीं होनेसे भोला भटक रहा है। मेरा पुत्र, मेरा धन, मेरा घर—'मेरा मेरा' करो और भटको। बाह्य दृष्टिसे देख रहे हो।

'कर विचार तो पाम' विचार नहीं किया है। इसका परिणाम क्या होगा? सुख-दुःख, रुपया-पैसा, पुत्र-पुत्रियाँ, 'मेरा-तेरा' कुछ भी नहीं रहता। सब राख है। गुत्थी सुलझी नहीं है। छोड़ना पड़ेगा। साथमें लिया तो बाधक हुआ। न ले तो होगा क्या? इधर देखें, उधर देखें। जहाँ देखे वहाँ 'तू ही, तू ही'—एक आत्मा ही देखें। यह भी आत्मा, यह भी आत्मा, यों आत्मा देखें तो काम बन जाय। उसकी जगह यह तो बनिया है, यह तो पटेल है, यह अच्छा है, यह बुरा है, यह छोटा है, यह बड़ा है यों देखा तो फोड़ सिर।

आत्मा नहीं देखा। 'जे जाणुं ते नवि जाणुं, नवि जाण्युं ते जाणुं'। यह सब मर्मकी बात है। गुत्थी सुलझ जाय तो सुलटा हो जाय। पीछे लौटना पड़ेगा, छोड़ना पड़ेगा, करना पड़ेगा। आत्मभावना भाने पर परिणाम दूसरा आये तो कहना। शक्कर खाये तो अफीमका फल नहीं मिलेगा, शक्करका ही फल मिलेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब तेरे हाथमें है, तेरी देरमें देर है। चेत, चेत, भरत, चेत। बोध श्रवण नहीं किया—किया हो तो भी तुँबीमें कंकर! बाह्यको मान बैठा है। यह तो अमुक भाई बैठे हैं, यह भ्रान्ति है। यह नहीं देखना है। परदा हटा नहीं है, तब क्या देखेंगे? परदा हटे तब अन्य दिखायी देता है। इन सबमें आत्मा नहीं है क्या? क्या आत्मा ही नहीं है? है, अवश्य है। तब किसे मानना है? अब किसको गिनना है? किसको पहचानना है? अब किसकी पंचायत है? खाना, पीना, बैठना, उठना, यह तो आत्मा नहीं है। मार्ग क्या है? त्याग। नंगी तलवार, स्त्री-बच्चे, धन, हाथ-पाँव—सबका त्याग। तब बचा क्या? सब छोड़ने पर शेष क्या रहा? जो छोड़ा न जा सके ऐसा अपना स्वरूप, वह समझमें नहीं आया है।

★★

ता. ८-२-३६

आत्माको पहचानना है। आत्माको देखनेकी दृष्टि बनानी है। ज्ञानी जगह जगह आत्मा देखते हैं। ज्ञानीके पास ही दिव्य चक्षु हैं। अन्य सब संसारी जीव चर्मचक्षुसे देखते हैं, जिससे कर्मबंध कर रहे हैं। इसीलिये ज्ञानीको सब सुलटा है। ज्ञानीकी सभी प्रवृत्ति सम्यक् होती है। ज्ञानी चाहे जैसे प्रवृत्ति करें फिर भी बँधते नहीं है। उनका प्रत्येक व्यवहार सीधा ही होता है। अज्ञानीका सब व्यवहार उलटा ही है।

तब आत्माको कैसे देखें? इसके लिये क्या करें? सत्संगमें बोध सुना, पर विचार नहीं किया। बातोंसे बड़े नहीं बनते। करना पड़ेगा। आपकी देरीसे ही देर है। तो अब क्या करना है?

इतने लोग यहाँ बैठे हैं, पर किसीने एकांतमें बैठकर कुछ निश्चय किया है? श्रद्धा की है? श्रद्धावाला धनवान है। उसका काम होगा। एक श्रद्धा दृढ़ हो जाय तो सब सीधा हो जाय। आत्माके स्वरूपकी श्रद्धा हो गयी हो तो उसका सभी सुलटा हो जाता है।

★★

ता. २०-२-३६

छोटे, बड़े सब आत्मा हैं। स्थान स्थान पर एक आत्मा ही देखें। अंजन लगना चाहिये। पर सुनता कौन है? कौन ध्यान देता है? किसे कहें?

★★

ता. २८-२-३६

सत् और शील मुख्य हैं।

सत् अर्थात् आत्मा, शील अर्थात् ब्रह्मचर्य।

'हमने व्रत लिया है, ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं।' क्या यह सच है? ब्रह्मचर्यव्रतवाले तो जगतमें बहुत फिरते हैं। क्या उन्हें यथार्थ ब्रह्मचर्य व्रत है? जिसका महाभाग्य होता है वही ज्ञानीसे इस व्रतको प्राप्त करता है। ज्ञानीके वचनके अनुसार मान्यता करे कि यह मैं नहीं, मैं तो इन सबको जानने-देखनेवाला आत्मा हूँ—सद्गुरुने यथार्थ जाना है वैसा आत्मा मैं हूँ। उस आत्माके लिये व्रतका पालन करता हूँ। जगतमें अच्छा, बड़ा कहलाने या पूजा-सत्कार प्राप्त करनेके लिये कुछ व्रत-पालन नहीं करना है। अपने आत्माके हितके लिये, आत्मार्थके लिये करना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोग भोगना, विषयोंमें आसक्त होना यह विष है, कालकूट विष है। 'मैंने खाया, मैंने पिया, मैंने भोग भोगे!'–क्या यह सच है? यह तो बंधन है, यह सब त्याज्य है। जो मेरा है वही (आत्मस्वरूप) मेरा है। अन्य कुछ भी मेरा नहीं। विषका प्याला पी लें, कटार मारकर मर जायें, पर व्रतका भंग न करे।

"नीरखीने नवयौवना, लेश न विषय निदान;
गणे काष्ठनी पूतळी, ते भगवान समान."

नारीको लकड़ीकी पुतलीके समान मानें। सब पुतले ही हैं। आत्मा अलग है। एक विषयको जीतनेसे सारा संसार जीता। मरनेको तत्पर हो जायें। 'एक मरजिया सौको भारी।'

ज्ञान आत्मा है। ध्यान आत्मा है। विषयसे ज्ञान और ध्यानका नाश होता है। जैसे खेतकी रक्षा एक बाडसे होती है, वैसे इस ब्रह्मचर्यरूपी कल्पवृक्षकी रक्षा नौ महाबाडसे होती है। सभी बाड सँभालें। जो मन, वचन, कायासे ब्रह्मचर्यरूपी कल्पवृक्षका सेवन करता है, उसका संसार शीघ्र नष्ट होता है। पात्र बननेके लिये बुद्धिमान पुरुष निरंतर ब्रह्मचर्यका सेवन करते हैं।

ता. २९-२-३६

पत्रांक ५६९ का वाचन–

"सर्व क्लेशसे और सर्व दुःखसे मुक्त होनेका उपाय एक आत्मज्ञान है। विचारके बिना आत्मज्ञान नहीं होता और असत्संग तथा असत्प्रसंगसे जीवका विचारबल प्रवृत्त नहीं होता, इसमें किंचित् मात्र संशय नहीं है।"

सारी संभाल ली है, एक आत्माको नहीं जाना है। अब इस जीवको मनुष्यभव प्राप्त कर दुर्लभसे दुर्लभ योग मिला है। उसमें कर्तव्य एक यह है, आत्मज्ञान। वाकई यह करनेका है।

वासना, रुपया-पैसा, मायाकी सामग्री प्राप्त की हो वह इस जीवके आत्महितमें काम नहीं आती। वह मूर्च्छा है। उससे बंधन होता है। मनुष्यभव प्राप्त कर चेत जाना है। क्या? आत्मभावना। अन्य भावना हुई, पर यह भावना नहीं हुई। 'पक्षियोंका मेला', 'वन वनकी लकड़ी'। प्राण लिये या ले लेगा। मेहमान हो। सब यहीं पड़ा रहेगा। सुई तक भी साथ नहीं जायेगी। साथ जानेवाला क्या है? इसका बुद्धिमान पुरुषोंको विचार करना चाहिये।

'समयं गोयम मा पमाए' यह वीतरागका वचन है। यह मनुष्यभवका योग दुर्लभमें दुर्लभ है। यह अवसर मिला है। इसमें सबसे बड़ी बात, सबसे बलवान हमें तो सत्संग लगता है। जिसको जैसा संग वैसा ही रंग लगेगा। सत्संगकी आवश्यकता है। बोधकी कमी है। मनुष्यभव पाकर क्या करना है?

'सवणे नाणे विन्नाणे, पच्चक्खाणे संयमे'। श्रवण सत्संगमें मिलता है। सत्संगसे कर्म क्षय होकर मोक्ष होता है। 'हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं?"

सिर मुंडन कराया, साधु बना, जप तप किये, उसके फल मिले। क्रिया कुछ बाँझ नहीं होती। मनुष्यभव व्यर्थ जा रहा है, पशुवत् बीत रहा है। सुननेसे विज्ञानता आती है, फिर भावना होती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। भाव आने पर कार्य करने लगता है। जप, तप, सब इसमें समा जाते हैं। कर्मक्षय होनेसे सिद्धि प्राप्त होती है।

ऐसी वस्तु सत्संगमें है। सत्संगमें कुछ अपूर्व बात होती है! भेड़ियाधसान, रूढ़िमार्गसे धर्म कहते हैं, वह धर्म नहीं है। सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र यही आत्माका धर्म है। इस आत्माकी बात सत्संगमें होती है।

बाजारमें सब वस्तुएँ भरी होती हैं। वहाँ स्वयंको जिसकी आवश्यकता हो, वह वस्तु लेते हैं। इसी प्रकार इस मनुष्यभवको प्राप्त कर तेरा क्या है? यह नहीं जाना है। पहले उसे जानकर फिर उसे प्राप्त करना चाहिये।

'समयं गोयम मा पमाए' क्षण क्षण आयुष्य घट रहा है। यहाँ कौन बैठा रहेगा? सबको जाना है। समझदार लोग हंसकी भाँति दूध दूध ग्रहण करते हैं, पानीको छोड़ देते हैं। बनिया है, ब्राह्मण है, छोटा है, बड़ा है ऐसा न देखें। बात सबकी सुनें, पर जो आत्महितकारी हो उसे ग्रहण करें।

'भरत चेत, काल झपाटा देत।' इसका फल आदर्शभवनमें केवलज्ञान! किसने काम किया? भावने—

"भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान;
भावे भावना भाविये, भावे केवळज्ञान."

रुपया-पैसा किसके काम आते हैं? भाव और परिणाम ये दोनों तुम्हारे पास हैं। आशा, तृष्णा, वासना तो माया है। छोड़कर आया है, छोड़कर जाना है। साढ़े तीन हाथ भूमिमें जला डालेंगे। तब क्या करना चाहिये? एक सत्संग। इसमें आत्माकी बात है। सबको सँभाला, पर जिसको सँभालना चाहिये वह रह गया—क्या यह ठीक है? सत्संगसे ही उसे सँभाला जा सकेगा। उसमें समय लगायें। वहाँ सहज ही पापका संक्रमण होकर पुण्य हो जाता है, वृत्ति रुकती है। वृत्तिको रोकना ही है। यदि जीव भावना करेगा तो उसका मीठा फल मिलेगा। जीवको भान नहीं है। ऐसा अवसर चुकने जैसा नहीं है, सावचेत होने जैसा है।

क्रोध, मान, माया, लोभ ये आत्मा नहीं है। पाँच इन्द्रियाँ हमारी नहीं हैं। ये तो बंधन करानेवाले हैं। अतः इनके त्यागका उपदेश दिया है। विषय-कषाय छोड़ने पड़ेंगे। 'हाँ, यह तो मैं जानता हूँ, मैंने सुना है,' ऐसा नहीं करना चाहिये।

सत्संग-समागममें जो वाणी सुनते हैं उससे हित होता है। सत्संगमें आकर कुछ ले जाना चाहिये। क्या? कर्तव्य क्या है? भक्ति। भक्ति जैसा कोई साधन नहीं है। बहुत बड़ी श्रेष्ठ वस्तु है।

मुमुक्षु—भक्ति भी अनेक करते हैं। तो भक्ति कैसी करनी चाहिये?

प्रभुश्री—हृदयमें टेक रखें। भक्तिके बीस दोहे एकांतमें बैठकर पूरे दिनमें एक बार भी बोले। यह मंत्र है, जप है। जैसे साँपका विष मंत्रसे उतरता है, वैसे ही भक्तिसे जीवके कर्मका विष उतरता है। "हे प्रभु! हे प्रभु! शुं कहुं? दीनानाथ दयाळ।" लघुत्व, गरीबी, गुरुवचन ये कहाँसे मिलेंगे!

आत्माका नाश नहीं है। आत्मा है। कैसा है? ज्ञानीने देखा है वैसा। कैसा देखा है? ज्ञान-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनमय, ज्ञानीने कहा वैसा। वह मुझे मान्य है। 'सद्धा परम दुल्लहा'–"वीतरागका कहा हुआ परमशांत रसमय धर्म पूर्ण सत्य है।"

उपयोग ही धर्म है। बात कुछ आश्चर्यजनक है! बात ज्ञानीकी कही हुई है। मीठी कुईका पानी है।

"सबसे ऊँची बात, दो नैननके बीचमें।
चाबी गुरुके हाथ, भेद न पावे वेदमें॥"

किये बिना नहीं होगा। आखिर छोड़ना पड़ेगा। बात आश्चर्यजनक है! "पैर रखते पाप है, दृष्टि डालते विष है और सिर पर मौत सवार है, यह विचार कर आजके दिनमें प्रवेश कर।"

"जगतको आत्मारूप देखा जाय।" यह आश्चर्यजनक वचन पकड़में नहीं आता। 'पावे नहीं गुरुगम बिना।' गुरुगम चाहिये। भेदी मिलना चाहिये ही। बड़े जहाजके साथ साँकल जोड़ दें तो छोटी नौकायें भी साथ साथ चली जाती हैं। ऐसा मार्ग है। खूबी है! बात ऐसी वैसी नहीं है। इस अवसर पर वस्तु लेने योग्य है। देर कितनी है? आपकी देरीसे देर है। श्रवण किये बिना किसीका काम नहीं होगा। श्रवण करेगा तब पता चलेगा।

+"एगो मे सस्सदो अप्पा, णाणदंसण लक्खणो;
सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा."

महापुरुष कह गये हैं सब। पर श्रद्धा, प्रतीति नहीं है। पढ़ा पर गुना नहीं। जो समझा उसका काम होगा। समझनेसे ही छुटकारा है।

"सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिनस्वरूप."

हमारे धन्य भाग्य हैं कि ऐसा योग मिला। मैत्रीभाव, प्रमोदभाव, करुणाभाव, माध्यस्थभाव इन चारोंको हमें नहीं छोड़ना चाहिये। इस भावनासे काम हो जाता है।

★★★

ता. ३१-३-३६

मूलमार्ग वीतराग मार्ग है। कर्म है, आत्मा है। दोनोंको ज्ञानी जानते हैं। ज्ञानीने आत्माको यथातथ्य देखा है, ऐसा कहना चाहिये। बाल-बच्चे, पैसा आदि सब पुद्गल, कर्म हैं। कर्म तो छूटते हैं। अनंतकालसे छूटते आ रहे हैं। किसीके भी छूटे बिना रहे हैं? पर आत्माकी पहचान नहीं हुई है। यह सब व्यवहार कर्म संयोग-संबंधके कारण करना पड़ता है। आत्माकी भावना तो किसी ज्ञानीने भायी, उसका परिचय करना है। ज्ञानी ही उसका परिचय जानते हैं।

नासिककी क्षेत्र-स्पर्शना होनेसे वहाँ जाना पड़ा। कर्म पुद्गल एक न एक दिन तो छोड़ने ही हैं, छूटेंगे। अनंतभवसे छोड़ता आया है। फिर भी आत्मा तो वैसा ही है। उसे कुछ हुआ है? मनुष्यभव दुर्लभ है। उसमें एक सत्संग और सत्पुरुषका बोध, इन दोनोंकी आवश्यकता है। फिर कोई चिंता नहीं। 'फिकरके फाके भरे उसका नाम फकीर।' आत्मा क्या है? आत्मा कैसा है? अब कुछ चिंता

+ मेरा एक शाश्वत, ज्ञानदर्शन लक्षण स्वरूप आत्मा है, शेष सर्व संयोगलक्षणरूप बाह्यभाव हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं। दिन भी हुए। बुढ़ापा भी आया। जन्म-मरणका विकल्प न करें। जन्म-मरण तो व्यवहार है। जन्म-मरण हो तो भी क्या? न हो तो भी क्या? यह तो कर्म है। आत्मासे क्या संबंध? आत्मा तो भिन्न है। निश्चयसे आत्मा जैसा है वैसा है। उसमें कुछ भेद पड़ा है? ऐसा है, फिर क्या बात है? कुछ नहीं।

जो मिले हों वो याद आते हैं। क्षेत्र-स्पर्शना। यह स्थान मिला तो यह, नासिक तो नासिक। हे प्रभो! मुंबईको तो नमस्कार, गजब किया है! न जाने कहाँसे इतने सारे लोग आये होंगे, स्टेशन पर। पर सबको समझ कहाँ है?

समझदार तो जो होते हैं वे ही होते हैं। समझ ही काम करती है। समझ लेना है। हे भगवान! मैं क्या करूँ? मैं तो थक गया, मैं कुछ भी नहीं जानता; गुरुका ही प्रताप है। अतः कदापि दुःख हो तो भी क्या? न हो तो भी क्या? समझ चाहिये। हे भगवान! मैं कुछ भी नहीं जानता। 'एक विट्ठलवरका वरण करें।' बस हो गया। वह जो है सो है।

आत्माके सिवाय अन्यको कुछ कहा जा सकता है? आत्माके सिवाय अन्य कोई उसे मान सकता है? समझ तो जितनी भी हो, आत्माको ही कहा जाता है। दूसरेको कहा जायेगा या वह मान्य करेगा? चाहे जितना क्षयोपशम हो, पर उसमें भी भेद—क्षयोपशमसे क्या पता चलेगा? क्षयोपशम आत्मा नहीं है, उसे आत्मा मान बैठते हैं। वे तो सब संयोग हैं। आत्मा गुड्डे-गुड्डीका खेल नहीं है।

फिर संकल्प-विकल्प क्यों आते हैं? संकल्प-विकल्प तो आते हैं, कर्म हो तब तक आते हैं, वे कर्मके हैं, आत्माके नहीं। कर्म न हो तो कुछ नहीं, कर्म हों तो हों—सबको भोगने ही पड़ेंगे। कर्म जो भी होंगे उन्हें सबको भोगना ही पड़ेगा। जितनी लेन देन शेष हो वह करनी ही पड़ेगी। छप्पन कोटि यादवोंने भी चित्रविचित्र देखा, भोगा! उस ओर देखें ही नहीं। एक आत्मा ही देखें। अन्य तो 'थावुं होय ते थाजो, रूडा राजने भजीओ।'

साता-असाता जो पूर्वबद्ध है, वह जीवको आती रहती है, जैसे दिन और रात आते रहते हैं। जैसे दिन है वह दिन ही है, दिन रात नहीं होता और रात दिन नहीं होती। वैसे ही साता-असाता वह आत्मा नहीं और आत्मा वह साता-असाता नहीं—कर्मका भोग है। जीव उसे अपना मान बैठा है। कोई एक सद्गुरु मिले और बाणसे बींधकर मारे तो अंतरमें आरपार उतर जाय।

"अेगोहं णत्थि मे कोई, नाहं अन्नस्स कस्सइ।
एवं अदीणमणसो अप्पाणमणुसासइ॥
एगो मे सस्सदो अप्पा णाण-दंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥"

आत्मा शाश्वत है, यह कोई इसके नहीं हैं यह निश्चय जानें। इस आत्माको तो सम्यग्दृष्टि समदृष्टि ज्ञानीपुरुषोंने जाना है। उन ज्ञानीपुरुषोंने जो बताया है, दिखाया है, वह सत्य है। जड़ तो जड़ है और चेतन चेतन है। जड़ चेतन नहीं हो सकता और चेतन जड़ नहीं हो सकता। यह निश्चित जानें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी दिन बिताते हैं। इतने वर्ष बीत गये और बीत रहे हैं। आत्मा तो वैसाका वैसा ही है। आत्मामें क्या कम-अधिक हुआ? देर कितनी है? समझ चाहिये।

"सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिन स्वरूप."

समझ तो चाहिये ही। यह हमारा टूटा-फूटा बोलना होता है पर इसमें कुछ फेरफार न समझें। गुरुकृपासे, शरणसे समझमें आता है। आपका प्रश्न–"गुरुगम क्या है?" वह स्मृतिमें आता है। इसका अर्थ समझे बिना क्या पता चलेगा? यह समझ सद्गुरुका बोध सुननेसे आती है। बोध सुने उसे समझ आती है। योग्यतानुसार वह समझ लेता है, योग्यतावालेको समझमें आता है, अन्यको नहीं। जीवकी योग्यता हो उतना समझमें आता है। योग्यता चाहिये।

सबसे बड़ी बात यह है कि सत्संग और बोध–ये दो रखें। चाहे जैसे, चाहे जहाँसे ये दो प्राप्त करें। यही मुख्य काम है। इसीमें सब है, तभी समझमें आयेगा। आत्मा है, आत्माकी सत्ता है तो यह ज्ञात होता है, दिखायी देता है।

दुःख होता है वह कर्म है। कर्म तो चला जाता है, छूट जाता है, वह आत्मा नहीं है। पर समझमें नहीं आता, क्योंकि कमी है। बोध और समझकी जरूरत है। बोध चाहिये।

'एगं जाणइ से सव्वं जाणइ।' सद्गुरुसे एक आत्माको जाना तो बस है, सब जान लिया। आत्माको जान लें।

ये सब तो संयोग हैं, बाँधे हुए हैं। वीतरागमार्ग सबसे बड़ा है। कर्म तो जानेवाले हैं, जा रहे हैं–इनका स्वभाव यही है। आत्मा तो शाश्वत है। वह आत्मा जाता नहीं।

प्रारब्धानुसार इतना बोला गया, बात सुनायी गयी। अशक्ति इतनी है कि बोला नहीं जाता। आयुष्यकी डोरी हो तो बचे। कुछ भी अच्छा नहीं। देह तो छूट जायेगी, आत्मा शाश्वत है। हमें तो एक सद्गुरुकी शरण है, इसलिये आत्माकी बात करते हैं जिसमें कोई परिवर्तन नहीं होगा।

'आणाए धम्मो आणाए तवो'

सद्गुरुके वचन–परमकृपालुदेवके वचनामृतका ही आधार है। वे ही पढ़ें, विचार करें और हृदयमें उतार दें। आत्मा होकर आत्मा बोला, आराधन किया तो बस! किसे कहें? अधिकारीको कहा जाता है। आप दृष्टिवाले हैं तो मानेंगे, मान्य होगा। एक परमकृपालुदेवकी ही श्रद्धा, पकड़ कर लें, यही एक कर्तव्य है। यह न भूलें। यही पकड़ लेना है, सयाने हुए बिना। 'मैं कुछ भी नहीं जानता, मैं कुछ भी नहीं समझता, उन्होंने कहा वह सत्य है।' ऐसी पकड़ कर लें। यह प्राप्त हो और परिणत हो जाय तो काम बन जायेगा। बस यही। परमकृपालुदेवकी श्रद्धा कर लेवें। अन्य न मानें। अन्य तो पर है, कर्म है, पर्याय है, आत्मा नहीं। सब छूट जायेगा, इसे मत छोड़ना। आप सब एकत्रित होकर परमकृपालुदेवके वचनामृत पढ़ें, विचार करें, वह सत्संग है। यही कर्तव्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १०-४-३६

जागृति है। एक, बोला जाय या न बोला जाय तो भी क्या? पुद्गल कर्म है। संयोगके कारण वेदनाकी तीव्रता है। उसका कुछ नहीं। शेष सब जागृति है। कुछ चिंता नहीं है।

★★★

चैत्र वदी ५, रवि, सं.१९९२, ता.१२-४-३६

मुख्यमार्ग भक्ति है। जो करेंगे उन्हें फलीभूत होगी। यह कर्तव्य है। भक्तिका फल मिलेगा। अपना कर्तव्य है, अन्यका कार्य नहीं है। ज्ञानीपुरुषकी पहचान यथातथ्य है, वह मान्य है। मेरी कल्पना झूठी है। मुझे तो, श्री सद्गुरु कृपालुदेवने आत्माको यथातथ्य जाना है वह मान्य है। उन्होंने आत्माको जाना है वह किसीकी कृपादृष्टिसे बताया, उसे जाना तो यथातथ्य है। इसके सिवाय अन्य कुछ नहीं। मूल बात—वस्तु आत्मा, भावना। जैसे भी हो रागद्वेष न करें। जीव सभी अच्छे हैं। पुद्गल आत्मा नहीं हो सकता। आत्मा ही आत्मा है। ज्ञानीने ही आत्माको जाना है। ज्ञानीके सिवाय कोई कहे कि मैंने जाना है तो वह मिथ्या है। याद रखने योग्य है। एक भक्ति मात्र कर्तव्य है। मनुष्यभव दुर्लभ है।

जो आत्मज्ञानी होता है वही आत्मा बताता है। पकड़ने योग्य है। एक विश्वास, प्रतीति हो जाय तो अवश्य कल्याण! सयाने न बनें। भक्तिके बीस दोहे महामंत्र हैं, यमनियम संयम, क्षमापनाका पाठ—तीनोंका स्मरण करें, पाठ करें, ध्यान करें, लक्ष्यमें—ध्यानमें रखने योग्य हैं। आत्मा देखें। आत्मा है। जैसा है वैसा ज्ञानीने जाना है। ज्ञानीने देखा वह आत्मा। प्रत्यक्ष ज्ञानी कृपालुदेवने जिन्हें पदक लगाया है, उनका आत्महित होना ही है। स्मरण करें। आत्मा है। आत्मा है, आत्मा नित्य है, कर्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है, मोक्षका उपाय है—ये सर्व भाव ज्ञानीने जाने वे यथातथ्य सत्य हैं। यह मंत्र बहुत प्रभावशाली है। आत्माका लक्ष्य रखने योग्य है।

डॉक्टर तो निमित्त है। कर्म भड़के हैं, इन्हें कर्म समझें। व्यवहारसे करना है, निश्चयसे नहीं। प्रकृति है। सब साधन बंधन हुए हैं। मनुष्यभव और सत्पुरुषकी श्रद्धा दुर्लभ है। पागल जैसोकी बात है, कहेंगे हाँ हाँ गठीले! पर सत् जो आत्मा है उसे माननेवालेका कल्याण है। मुख्य बात श्रद्धा है। 'सद्धा परम दुल्लहा।'

★★★

चैत्र वदी ६, सोम, सं. १९९२, ता. १३-४-३६

आत्माको मृत्यु महोत्सव है, एक मृत्यु महोत्सव है।

"विश्वभावव्यापी तदपि एक विमल चिद्रूप;
ज्ञानानंद महेश्वरा, जयवंता जिनभूप."

एक आत्मा, अन्य कुछ नहीं। उसका महोत्सव, मृत्यु महोत्सव! आत्मा, धर्म; आज्ञामें धर्म—कृपालुदेवकी आज्ञा। परमकृपालुकी शरण हैं। वह मान्य है। सब एकतासे मिल-जुलकर रहें।

मतमतांतर, भेदाभेद, पक्षपात नहीं है। बात मान्यताकी है। कृपालुदेवने मुझसे कहा है, इसके बिना बात नहीं है। गुरुदेव सहजात्मस्वरूप राजचंद्रजी कृपालुदेव हैं। आत्मा है। जैसे है वैसे है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

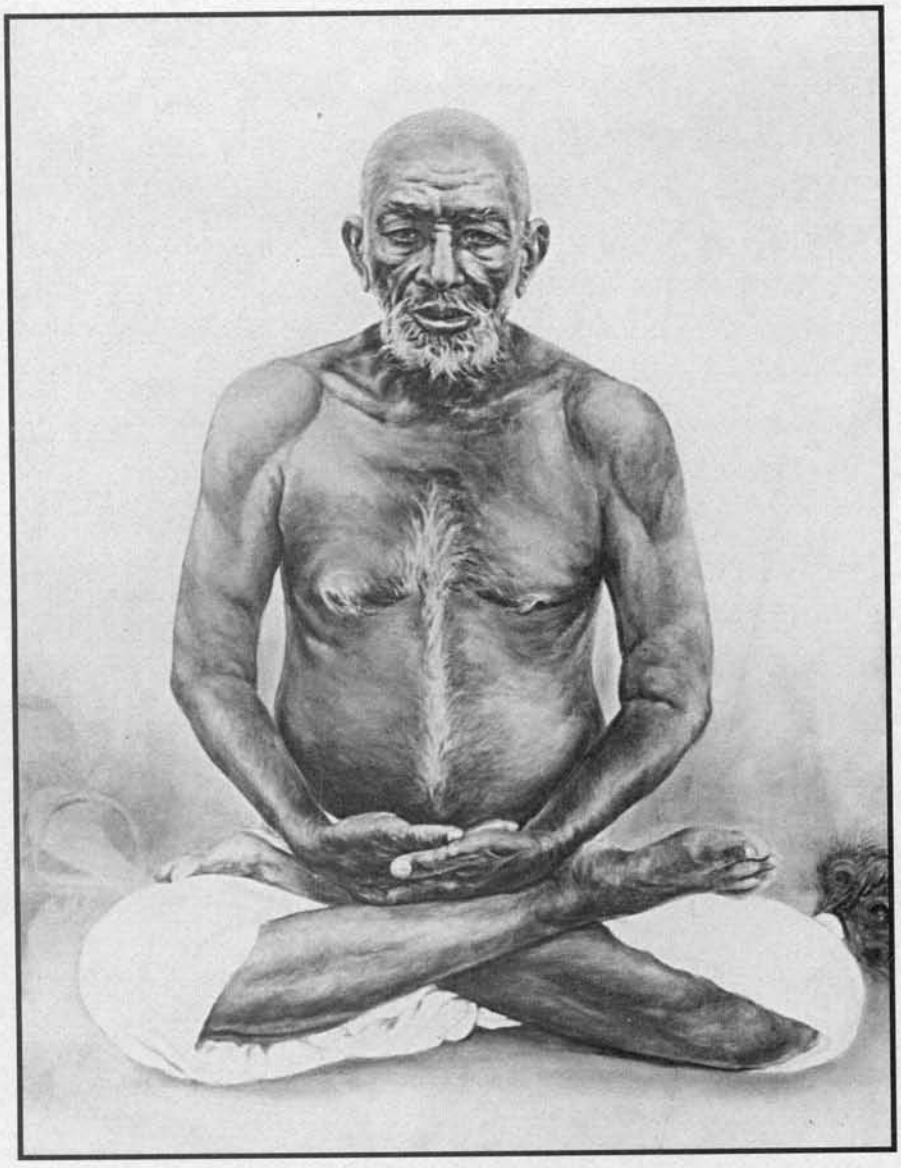

श्रीमद् लघुराज स्वामी

जन्म : वटामण
वि.सं.१९१० आश्विन वद १

प्रव्रज्या : खंभात
वि.सं. १९४०

देहोत्सर्ग : अगास आश्रम
वि.सं.१९९२, वैशाख सुद ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा किसे कहेंगे? ज्ञानीने आत्माको देखा है। उन्होंने जिसे बताया उसे मान्य करें, उसके बिना नहीं। एक मृत्यु महोत्सव है। अन्य किसी स्थान पर नहीं मिलेगा। एक मृत्यु महोत्सव है। अन्य किसी स्थान पर नहीं मिलेगा। एक मृत्यु महोत्सव। 'धिंग धणी माथे किया रे, कुण गंजे नर खेट?' दूसरा अब नहीं है। यह वस्तु जैसी है वैसी ही है। उसे तो वही जानते हैं। उनकी श्रद्धा और प्रतीति, बस! 'आणाए धम्मो, आणाए तवो।' मुख्य यही है, बात यही है। दूसरी बात नहीं ली है। दृष्टिकी भूल नहीं है। जो है वही है। चाहे कुछ भी कहें, एक परमकृपालुदेव। 'थावुं होय तेम थाजो रूडा राजने भजीए'-बस यही।

यह पुद्गल है, आत्मा नहीं; संयोग है, संयोगका नाश है। विराम लेता हूँ, विराम लेता हूँ। सबसे क्षमायाचना करता हूँ। एक आत्माके सिवाय अन्य बात नहीं है। परमकृपालुदेवने कहा था, "मुनियों, इस जीवको (प्रभुश्रीको) सोभागभाई की भाँति समाधिमरण होगा।" सोभागभाईको जो ध्यान था, वही है। अन्य कुछ मान्य नहीं, अन्य कुछ समझते नहीं। पर परमकृपालुदेव मान्य हैं। पुद्गलकी टक्कर, राखकी पुड़िया, फेंक देने योग्य है। सभी परमकृपालुदेवकी दृष्टिवालोंका कल्याण है। भावना है वह बड़ी बात है। 'फूल नहीं तो फूलकी पंखुडी।' कृपालुदेवकी दृष्टि पर सब आते हैं, सबका काम हो जायेगा। अन्य लाखों हों तो भी क्या?

इतनी सामग्री पुद्गलकी है वह आत्मा नहीं। आत्मा तो जो है वही है। आत्मा है, नित्य है, कर्ता है, भोक्ता है, मोक्ष है, मोक्षका उपाय है। चमत्कारी वचन है! दया की है। अनेक जीवोंका हित होगा। अनेकोंके हितके साथ अपना भी हित है। सब अच्छा ही होगा। यह तो माया है, पुद्गल है, वह नहीं। आत्मा है, ज्ञानीने जाना है। ज्ञानीने यथातथ्य जाना है, वह मान्य है। अंतिम बात कही। अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात। ऐसी अन्य कोई नहीं मिलेगी, पता नहीं है। पकड़ है, श्रद्धा है उसका कल्याण है। माया है। पुद्गल है। एक आत्मा है, एक सत्संग है। मैं तो रंकमें रंक, उनके दासका दास हूँ। बहुत अच्छा हुआ। मुझे कुछ लेना देना नहीं, समभाव है। मुझे कुछ नहीं, 'धिंग धणी माथे किया रे, कुण गंजे नर खेट?'

★★★

ता.१३-४-३६, शामको

आत्माके सिवाय अन्य कुछ नहीं देखना है। जो है वह है, निकाला नहीं जा सकता। समताके सिवाय अन्य कोई बात नहीं। वही एकमात्र शस्त्र है। सर्व संघसे क्षमायाचना—वडवामें, खंभातमें। समता एक शस्त्र है। कोई हटा नहीं सकता, हट नहीं सकता, कोई काट नहीं सकता, कोई छेदन नहीं कर सकता। एक परमकृपालुदेवकी श्रद्धा करने योग्य है। समभाव ही स्थान है, अन्य नहीं।

★★★

चैत्र वदी ७, मंगल, सं.१९९२
ता. १४-४-३६, सबेरे

समता है, दुष्कर है, दुष्कर है, दुर्लभ है।
महोत्सव, मृत्यु महोत्सव है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १४-४-३६

(ब्रह्मचारीजीको) भाइयोंको कह दें कि दर्शन करके चले जायें। तुम ध्यान रखना : बीस दोहे, क्षमापनाका पाठ, आठ त्रोटक छंद, स्मरण तुम देना। समता है। आत्मा है। आत्मा देखें, अन्य कुछ न देखें। परमकृपालुदेव मान्य है, वे स्तंभ हैं।

★

शामको

बुढ़ापा आया है। वेदनीय कर्म भोगना पड़ेगा। उदयकाल। शक्रेन्द्रने कहा कि भस्मग्रह है इसलिये 'मात्र दो घड़ीका आयुष्य वीर बढ़ायेंगे रे!' वीरने उत्तरमें कहा, "यह मेरी शक्ति नहीं है, ऐसा कभी हुआ नहीं और होगा भी नहीं।" (सबके सामने अंगुलि करके) सभी भोगेंगे। क्या नहीं भोगेंगे? नहीं भोगेंगे ऐसा हो सकता है?

'कडाणं कम्माणं न मुक्ख अत्थि।'

नरककी वेदना भोगी हैं।

'कडाणं कम्माणं न मुक्ख अत्थि।'

किये हुए कर्म भोगे बिना छुटकारा नहीं है। बाप करेगा तो बाप भोगेगा। बेटा करेगा तो बेटा भोगेगा।

कर्म पुद्गल है, वह आत्मा नहीं है, नहीं है।

★★★

चैत्र वदी ८, सं. १९९२, ता. १५-४-३६

'आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे', वह है। मृत्यु महोत्सव, उत्सव!

पुद्गल बाँधे हैं बोलने जैसे, संबंध है, कर्म है। जो जो पुद्गल-फरसना है वह निश्चय स्पर्शती है। अन्नजल जो बाँधा है वह लिया जाता है। एक समभाव।

"ते ते भोग्य विशेषनां, स्थानक द्रव्य स्वभाव;
गहन वात छे शिष्य आ, कही संक्षेपे साव."

"शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहीओ केटलुं? कर विचार तो पाम."

कर्म भोगे बिना छुटकारा नहीं है। कर्म सबको होते हैं, उन्हें भोगे बिना छुटकारा नहीं है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशसंग्रह–४

☆

ता. २४-५-२८

(मनको) भटकता नहीं रहने दें। रातदिन मंत्रका स्मरण करें और समय मिलने पर वाचन, पठन करें। अमूल्य समयको आलस्यमें या परपरिणतिमें न गुमावें। नित्य छह पदके पत्रका स्मरण करें और मनन करें। बड़ी पुस्तक (श्रीमद् राजचंद्र) मेंसे जो जो पत्र समझमें आयें उनका मनन करें।

अठारह पापस्थानकमें रति-अरति न हो इस पर विशेष ध्यान रखें। अभी तो सब सुख है, पर जब रोग आयेगा तब व्याकुलता होगी, कुछ अच्छा नहीं लगेगा। कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? प्राण निकल जायेंगे? ऐसा सोचेंगे। उस समय श्रद्धा होगी, ज्ञान होगा तो समभावसे रह सकेंगे।

★★★

ता. ३०-१०-२८

अत्यंत दुर्लभ प्रसंग प्राप्त हुआ है। करोडों रुपये देने पर भी ऐसा सत्य नहीं मिल सकेगा। देह, वैभव, मान, बड़ाई सब विनाशी है, क्षणिक है। बुढ़ापा आयेगा, रोग आयेगा और मृत्यु तो आयेगी ही। ऐसे अनेक भव किये। अब चेतें। वाचन, मनन, चिंतन खूब रखें। धर्मकी श्रद्धा दिन प्रतिदिन दृढ़ करें, बढ़ायें। यही साथ चलेगी।

ऐसा योग फिर नहीं मिलेगा, संसारमें पड़नेसे तो अनेक प्रकारकी झंझाल लगेगी।

★★★

ता. ३-११-२९

सावधान हो जाना है। जगत पर्यायरूप और धोखेसे भरा हुआ है।

★★★

ता. १०-१०-३०

यथायोग्य उपयोग ही आत्मा है।

विचार ही जीव है। 'कर विचार तो पाम।'

आत्मा अरूपी है, ज्ञान चक्षुसे ज्ञात होता है।

ज्ञान यथायोग्य आत्मा है।

यथायोग्य देखना दर्शन है।

यथायोग्य स्वरूपमें स्थिर होना चारित्र है।

उपयोग धर्म है। वह आत्मा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान चक्षु है।
उपयोग दर्शन है।
दर्शन ही समकित है।
उपयोग ही आत्मा है।
निजरूप अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र।
'भान नहीं निज रूपनुं, ते निश्चय नहि सार।'

२

तृष्णा, वासना, इच्छा, वांछा ये अज्ञान हैं।
परभावके परिणमनसे अज्ञान होता है।
मोहनीयकर्मसे विकार होता है, संकल्प-विकल्प होते हैं।
परभावमें प्रीति करता है वह मोहसे--अज्ञान-आत्मासे ऐसा होता है।
निजभावमें जाना वह ज्ञान और परभावमें जाना वह अज्ञान।
शुद्धभावमें परिणमन वह ज्ञान है।
अशुद्धभावमें परिणमन वह अज्ञान है।
बाह्यात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा।
परभावमें परिणमन होनेसे बंधन होता है।
स्वभावमें परिणमन हो तो मोक्ष अर्थात् छूटना होता है।
परमें प्रीति नहीं करूँगा।
परभावमें प्रीति नहीं करूँगा।
स्वभावमें प्रीति करूँगा।

***

ता. २३-१०-३०

ब्रह्मचर्यका स्वरूप :-

आत्मस्वरूपमें रहना, ब्रह्ममें स्थिर रहना वह ब्रह्मचर्य। परभावमें जाये उतना ही व्रतभंग।

संकल्प-विकल्प, विषय-कषाय, रागद्वेषमें वृत्ति नहीं जानी चाहिये। इच्छा, आकांक्षा, तृष्णा, किसी भी प्रकारकी हो तो वृत्तिमें अब्रह्मचर्य कहलाता है।

वचन शांत, मधुर, प्रिय और हितकारी बोलें। इसके विपरीत हो तो ब्रह्मचर्यमें दोष लगता है।

पाँच इन्द्रियोंके विषयोंको रोकें। आलस्यका त्याग करें। शरीर आत्मासे भिन्न है। उस पर पूर्ण अधिकार और संयम रखें। वेदनामें उदासीनता, निर्मोहीपन रखें।

*

यह जीव अनादिकालसे भटका है और अब भी नहीं चेतेगा, मायामें लिपटायेगा तो पता लगेगा क्या? ऐसे अनेक वेष किये। भाई, बहन, मित्र, सगे, स्नेही--इनमेंसे कौन सगा होगा?

बहनापा, भाइपा कुछ करनेका प्रयोजन नहीं है। इससे सावधान रहें। यह जीव अनंतकालसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरणरहित दुःखी है। अंतमें किसी अपूर्व पुण्यसे सत्य आश्रय आ मिला है, उसे ही पकड़ लें। उसे घडी भर भी न भूलें। यही पूरे संसारका सार है। ऐसा सत्य त्रिकालमें नहीं मिलेगा। किसी प्रकारकी इच्छा न रखें। एकमात्र जन्ममरणसे मुक्त होना है। उसके लिये त्याग, वैराग्य और तप करें। कोई परिषह करे तो उसका उपकार मानें। इससे कर्म क्षय होते हैं।

वर्तमानकालमें बहुत समझनेका है। ज्ञानकी प्राप्ति दुर्लभ है। प्रत्येक काममें वृत्ति आकर्षित हो जाती है। पूरे दिनके दिन परवृत्तिमें बीत जायें, यह धर्म नहीं है। आत्माका स्मरण, चिंतन, आत्मार्थके लिये किया हुआ वाचन-मनन ही यथार्थ है। अन्य तो मात्र उदयानुसार वचन, कायाकी प्रवृत्ति करें, पर इसमें मनको नहीं पिरोयें। चिंता करना यह धोखा है। जितना समय धर्ममें बितायेंगे उतना ही जीवन है, शेषकाल वृथा जा रहा है वह पछतानेका कारण है। मृत्यु आते देर नहीं लगेगी। यदि ढील करेंगे तो फिर क्या हाथ लगेगा?

यह आत्माकी गुप्त बात है। आत्मस्वरूपका ध्यान। अन्यसे वृत्तिको खींचकर 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे' का जाप चुपचाप करते रहें। अन्य भले ही समझें कि यह कुछ नहीं समझता। पागल और अज्ञानीमें गिने जायें। किसीको कुछ कहने जैसा नहीं है। कोई हमारे लिये अच्छा मत बनाये इसकी भी आवश्यकता नहीं है। प्रारब्धके अनुसार सब मिलता है, यह दृढ़ श्रद्धा रखें। फिर किसी प्रकारकी चिंता इस दुनियाके संबंधमें किसलिये? अंतरसे त्याग करें। बाहरसे भले ही संसारमें रहें, पर अंतरमें एकांत शीतल रहें।

सद्गुरुमें एक सती स्त्रीके समान श्रद्धा रखें। वृत्तिको अन्य किसीमें जरा भी न जाने दें।यह श्रद्धा, यह प्रतीति ही आत्माके परम सुखका कारण है। यह सुख तो अनंत आनंदरूप है। इसके आगे इस दुनियाका, स्वर्गका सुख भी बहुत तुच्छ है। अतः सब प्रकारकी तुच्छ इच्छाओंका त्याग करें। किसी भी प्रकारकी आत्मप्रशंसा सुनकर बहुत सावधान रहें क्योंकि यह महा हानिकारक है।

प्रतिदिन यह हिसाब रखें कि आत्मभावमें और परभावमें कितनी प्रवृत्ति की?

★★★

ता. १८-११-३०

एक जीव था। वह घोड़ेका रक्षक था। अपनेको उसमें ही संपूर्ण कृतकृत्य मानता और प्रमाद करता। फिर वह ऊँट हुआ। इस भवमें भी वह ऐसा ही व्यवहार करता। इस प्रकार प्रत्येक जन्ममें आत्मा प्राप्त हुए शरीरमें तद्रूप होकर रहता है, जिससे ज्ञान प्राप्त करना महा दुर्लभ है। यह भव तो अत्यंत बलपूर्वक सार्थक करना चाहिये, अन्यथा अनंत भव तक पछतावा रहेगा।

अनंतकालसे आत्मा भूलकर भटक रहा है। किसीमें राग या मोह करने जैसा नहीं है। सगे-स्नेही तो क्या, एक सुई भी साथमें नहीं आयेगी। जब आत्मा ही बंधनमें है तब उसके हाथमें क्या है? अतः सुषुप्त न रहकर जाग्रत हो जाना चाहिये। जितने भव किये उन सबमें आत्माने ममत्व किया है। अतः इस भवमें प्रत्येक बाहरकी वस्तुसे ममत्व दूरकर श्री सत्पुरुषकी आज्ञासे प्रवृत्ति करें। सबको रोग आयेगा, व्याधि आयेगी, मनोव्यथा होगी तब आत्मशांति रहेगी तो काम आयेगी। अंतमें आत्मा तो फू करके उड़ जायेगा।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. ३०-१२-३०

जीवको भूख लगी ही नहीं है। योग्यता चाहिये। सत्पुरुषका योग, जिन धर्म आदि दुर्लभ है।

सत्, शील, टेक, ब्रह्मचर्य कुछ भी लोगोंको दिखानेके लिये नहीं करना है। पुरुषार्थबल सतत करें। प्रतिदिन कमसे कम एक घंटा आत्मार्थमें बीते तभी कुछ प्राप्त होगा। 'यह तो ठीक है, नित्य करते ही है न? इसमें क्या है?' यों कहकर टाले नहीं।

जब तक मुमुक्षुता प्रकटी नहीं, भूख लगी नहीं, 'तू ही तू ही' की रट नहीं लगी तब तक सब ऊपर दिखावेका है। शिष्यको दृढ़ मोक्षेच्छा न हो तब तक गुरु क्या कर सकते हैं?

यह जीव अनंतकालसे भटका है। जन्म, मरण, जरा, रोग, भोगविलास, असाता, प्रपंच आदि करता हुआ अनेक संकल्प-विकल्प द्वारा कर्मसे बंधा हुआ है। इसमें बहुत दुःख उठाया है। पर अब ऐसी अद्भुत शरण प्राप्त हुई है मानो किसी दरिद्रीको हीरेकी खान मिल गई हो। ऐसा योग त्रिकालमें दुर्लभ है तो इस दुषमकालमें तो उसका अत्यंत माहात्म्य है।

रागद्वेष, संकल्पविकल्पको रोकें। मनको भक्तिभावमें, कंठस्थ किये हुएके पुनरावर्तनमें लगायें।

पाठशालाकी पढ़ाई सब लौकिक है। यह ज्ञान शाश्वत नहीं है। ऐसी शिक्षा तो अनेक जन्मोंमें ली और भूल गया। अतः इसमें कुछ विशेषता नहीं है। वास्तवमें तो यह ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, उसका लौकिक मूल्य नहीं कराना है, क्योंकि यह आत्महितके लिये है।

योग्यता प्राप्तिके लिये दृढ़ प्रतिज्ञा या सत् अनिवार्य है। आत्मामें सत्, टेक चाहिये कि ऐसा ही व्यवहार करना है, अन्य कदापि नहीं। शीलका दृढ़तासे पालन करें। परमकृपालुदेवने कहा है कि अल्प आहार करना, उपवास करना, एकांतर करना, चाहे विष खाकर मर जाना, पर ब्रह्मचर्यका भंग नहीं करना, क्योंकि शील ही सबका आधार है।

★★★

ता. ३१-१२-३०

जीवका क्या कर्तव्य है? आज्ञापालन, श्रद्धा, समकित। इतना जन्म तो इसीके लिये कायाको गलाना है।

★★★

ता. १-३-३१

उपयोगमें रहें। इसमें बहुत समाया हुआ है!

★★★

ता. ४-३-३१

समझ लो कि आज गला दबाकर मर गये। अब किसी विषयमें वृत्तिको न रोककर वैराग्यभावसे प्रवृत्ति करनी चाहिये। सब क्षणिक हैं, क्षणभंगुर हैं, इसमें प्रीति, हर्षशोक किसलिये? इन सबसे छूटनेका यह अवसर आया है। अतः उद्यममें जुट जाना चाहिये।

बीस दोहें, आत्मसिद्धि, क्षमापना आदिका अत्यंत महत्त्व है! यह तो आत्मस्वरूपप्राप्त, इस कलियुगमें दुर्लभ, ऐसे पुरुषकी वाणी है। इससे यथार्थ समझने पर आत्मस्वभाव प्रकट होता है। देवचंद्रजीके स्तवन भी एक आत्मज्ञकी वाणी है। फिर भी परमकृपालुदेवकी वाणी इससे भी उच्च

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। ऐसे पुरुष बहुत कालके पश्चात् हुए। इनकी दशा बहुत ऊँची थी। इस समयमें इनका होना ही एक चमत्कार है। महा पुण्यसे इनका परोक्ष योग हुआ है, अतः उन्हें गुरु मानकर स्थापित करें, दृढ़ श्रद्धा करें।

किसी भी प्रकारकी सुख, बड़ाई, पद आदिकी इच्छा न करें। 'मुझे ऐसा हो तो अच्छा, या मैं ऐसा करूँ' आदि संकल्प-विकल्पमें मतिको न जाने दें। इससे बंधन होता है। हमें तो मुक्त होना है। जो होना होगा सो होगा। उसमेंसे कोई छुड़ानेवाला नहीं है। बुढ़ापा भी आयेगा। अभी तो आनंदसे उठा-बैठा जाता है। फिर तो जीवन कठिन हो जायेगा। प्राण निकाल डालनेका मन होगा। फिर भी जो काल निर्मित है उसे तो पूरा करना ही पड़ेगा। जो दुःख आये उसे समतासे सहन करें, तभी कर्म निर्जरित होंगे।

'सुख दुःख मनमां न आणीअे, घट साथे रे घडियां।'

सीता जैसी सती पर भी दुःख पड़नेमें क्या कमी रही थी? फिर भी उसने सहन किया, समभाव और श्रद्धा रखी तो देवलोकमें प्रतीन्द्रका पद मिला और मोक्ष जायेगी। अतः मनमें कुछ न लायें। मनको धर्ममें लगायें। ढीला न छोड़े।

★★★

ता. २८-४-३१

बोध-विचार-प्रतीति-समकित-चारित्र-कर्मनिर्जरा-मोक्ष–इस श्रेणीमें काम करना है। आत्म-ज्ञानका भव्य भवन बनाना है। वह कर्मक्षयके बिना कैसे बनेगा? उसके लिये विषय-कषायको जीतें। एकाग्रतासे भक्तिपूर्वक आप्तपुरुषका बोध श्रवण कर, मनन कर, दृढ़ आचरण करें। उपयोग स्थिर करें। दूधका दही जमना चाहिये। संकल्प-विकल्प मिटकर स्थिरता आनी चाहिये।

'समयं गोयम मा पमाए' क्षण क्षण करते आयुष्य बीत रहा है, इसमें अमूल्य समयमात्र भी वृथा जाने देनेसे भव हार जाने जैसा है। अतः उपयोग दृढ़ करें। मंत्रका स्मरण सतत करें।

★★★

ता. ३१-५-३१

अब पकड़ कर लेनी है। दृढ़ता, निश्चय, श्रद्धा, विश्वास ऐसा करें कि किसी भी प्रसंगमें उसका विस्मरण न हो और निःशंकता आवे, जिससे मृत्युके समय निर्भय रहा जायेगा।

★★★

ता. ७-९-३२

प्रत्येक प्रकारका मोह त्याग दें। अन्यथा बंध होगा और वह अनंतकाल तक संसारमें भटकायेगा। प्रतिदिन नियमित धर्मवृद्धि करनेमें समय बितायें। उसके सिवाय जो समय बीत रहा है या बीतेगा वह सब वृथा है। अब तो जन्म-मरणसे छूटना है। उसीके लिये यह भव हाथमें आया है। काल क्षण-क्षण बीत रहा है वह वापस नहीं आयेगा। प्रत्येक क्षण अमूल्य है। उसे अंतरंग चिंतन, मनन तथा सद्गुरुस्मरणमें बितायें।

यह आत्मा अकेला आया है, अकेला जायेगा। अपने बंधन अकेला भोगकर दुःख पायेगा। कोई बचा नहीं सकेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. २३-१०-३२

करना यह है कि सूक्ष्म भी मोह, ममत्व अपनेमें हो तो उस पर विचार कर उसे छोड़ें। एक ज्ञानीकी अखंड शरण लेकर उसीकी आराधना करें। चाहे जैसे प्रतिकूल संजोगोंमें भी छोड़े नहीं।

बहुत सावधान रहें। किसीका प्रतिबंध न करें। यह अच्छा, यह बुरा, ऐसा न करें। किसीके साथ माया, प्रीति, पहचान, मित्रता आदि करेंगे तो बंध होगा। जिससे अनेक जन्मोंमें भटककर मिला हुआ योग व्यर्थ जायेगा। अतः किसीका प्रतिबंध न कर असंगता प्राप्त करें। 'वनसे भटकी कोयल' जैसा है। एकके बाद एक काल पूरा कर चले जानेवाले हैं। कोई फिर मिलेगा या पहचानेगा भी नहीं। तो फिर व्यर्थ प्रतिबंधरूपी अनर्थदंड करनेसे कितना अहित होगा! एक सत्पुरुषका ही सतत ध्यान करें। एक सती स्त्री जैसे एक पतिका ही वरण करती है और उसीका स्मरण करती है, वैसे ही पूरी दुनियाको पर मानकर एक सत्पुरुषमें ही वृत्तिको पिरोयें।

★★

ता. २४-१०-३२

मुमुक्षु—जब सत्पुरुषके समीप हो तब जीवको सद्बुद्धि, विचार स्फुरित होते हैं। पर उसके बाद थोड़ी ही देरमें वापस बहिर्बुद्धि क्यों हो जाती है?

प्रभुश्री—अनादिका अभ्यास है इसलिये वृत्ति उस ओर दौड़ जाती है। परवस्तु पर—बाह्य दीखती अनेक वस्तुओं पर जो प्रीतिभाव होता है, वैसा सत्पुरुषके प्रति यथार्थमें नहीं हुआ है। मनसे मान लेता है कि मैं समझ गया, देह आदि मेरे नहीं है, मैं आत्मा हूँ, देहादिसे भिन्न हूँ; पर वह उसकी मान्यता ही है—अंतरंगसे वैसी परिणति नहीं हुई है, वैसी दशा आयी नहीं है, क्योंकि गहरे उतरकर विचार नहीं किया है। इस पर्यायको माननेका अनादिका अभ्यास है, उसको छोड़नेके लिये निरंतर वैसा अभ्यास चाहिये। सत्पुरुषका बोध बहुत सुनकर गहरा उतारना चाहिये। इसके लिये सत्पुरुष पर अपूर्व प्रीतिभाव प्रकट होना चाहिये। जिस पर प्रेम होता है उसकी तो बार बार स्मृति आती है।

★★

ता. २७-१०-३२

मिथ्यात्वी जीव कुटुंब आदिमें आसक्त होकर उसमें सुख मानता है और उसका वियोग होने पर सिर फोड़ता है। स्त्री, पुत्र आदि हों, उनमेंसे कोई बीमार पड़े या मर जाय, धन चला जाय या ऋण हो जाय, शरीरमें रोग हो, वृद्धावस्था हो तब उसकी चिंता ही चिंतामें अनेक प्रकारसे बंधन करता है। उसे श्रद्धा नहीं है कि यह सब पूर्व कर्मसे मिला है। क्या होगा? कैसे होगा? ऐसी चिंता मिथ्यात्वी करता है। समकिती जानता है कि पूर्वकर्मके अनुसार लिखे हुए लेख भोगने पड़ेंगे और वैसा ही होता है। वह प्रयत्न करता है, व्यवहारमें प्रवृत्ति करता है परंतु उससे अलग रहकर—ज्यों धात्री बालकको खिलाती है—उसमें लीन नहीं होता। लीन तो आत्मामें रहता है।

जो श्रद्धा रखता है कि सब हो जायेगा, उसे किसी प्रकारकी चिंता नहीं रहती। अतः मिथ्यात्वीकी भाँति किसी प्रकारकी चिंता न करें। सब प्रभुको समर्पण कर दें। संयोगके अनुसार सब होता रहता है। भव-भवमें ऐसे ही काल व्यतीत हुआ है और ऐसे ही होता आ रहा है। उससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्ति पाना हो तो ऐसी बुद्धि रखें कि यह पर है। सद्गुरुकी आज्ञाका विचारकर आत्मसाधनका पुरुषार्थ करें।

समकिती समझ सकता है कि आत्माका सुख क्या है? मिथ्यात्वीको उसका लक्ष्य नहीं है। इससे वह समझता है कि साधु-मुनिके पास धन, स्त्री आदि कुछ भी नहीं, फिर उसे क्या सुख है? पर क्या साधु-मुनिको उसकी वासना होती है? उनकी तो उस ओर दृष्टि भी नहीं जाती, वे तो उसे विष्टाके समान त्याज्य समझते हैं। तब उनके पास क्या है? कुछ तो अवश्य होगा ही न? वह है उनमें रही हुई शक्ति–आत्मसुख। जिसने इसका अनुभव किया है वही इसे समझता है और समझकर फिर उसीकी इच्छा करता है। मिथ्यादृष्टि उसे कैसे जान सकता है? वह तो जरा मरण आदि सहित इस संसारके सुखमें लिपटा है। वह सुख तो क्षणिक है, महाबंधनमें और चौरासीके फेरेमें ले जानेवाला है। बड़े बड़े सेठ साहूकार और युरोपके लोग जिस सुखको भोगते हैं, वह पूर्वोपार्जित है। पर उनका मिथ्यात्व गया नहीं है, जिससे वे उस सुखमें मग्न रहकर अनंत भव बढ़ाते हैं। उस सुखसे भिन्न सच्चा आत्मसुख जिसे थोड़ा भी प्राप्त हुआ है वह तो उपरोक्त सुखकी इच्छा ही नहीं करेगा।

चाहे जैसा ज्ञानी हो और वृत्तिका संयम न हो तो वृत्ति बदलते देर नहीं लगती और बात करते निदान हो जाता है। एक *साधुको इल्ली होना पड़ा था। अतः वृत्ति पर लक्ष्य रखकर निदान तो करना ही नहीं चाहिये। संसारमें चाहे जैसा सुख हो पर वह आत्मिक सुख नहीं है, इसलिये वह सच्चा नहीं है और उसे छोड़नेसे ही छुटकारा है।

★★★

ता. २९-१०-३२

आत्मा अपनेको भूल गया है। सगे-संबंधी, माता-पिता उसे अच्छा अच्छा कहकर सराहना करते हैं। स्वयं शरीरको और अपनेको एक समझता है। इस संसारमें जैसे केले, आम, द्राक्ष आदि फल हैं, वैसे ही माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि संयोग भी फल हैं। वे संयोग अमुक समयके लिये होते हैं। ये तेरे नहीं है ऐसा कोई कहे तो भी मान्य नहीं होता। परंतु सत्पुरुष मिलें और समझायें कि तू यह नहीं, तू स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, वृद्ध नहीं, युवक नहीं, बनिया ब्राह्मण नहीं; तू तो सिद्धस्वरूप

---

* एक साधु बहुत पवित्र जीवन बीता रहे थे। उन्हें वचनलब्धि प्राप्त हुई थी जिससे वे जो बोलते वही होता। अंत समयमें उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा कि मेरी मृत्यु होगी तब बाजे बजेंगे और मेरी सद्गति होगी।

मृत्युशैयाके सामने एक बेरी थी जिस पर लगे पके हुए मीठे बेर पर उनकी दृष्टि पड़ी, यह बेर बहुत सुंदर है इस विचारमें ही थे कि आयुष्य पूर्ण हुआ, जिससे उस बेरमें इल्ली बनना पड़ा। मृत्यु हो गयी पर बाजे न बजे तब शिष्योंको शंका हुई कि गुरुकी क्या गति हुई होगी?

उस समय कोई ज्ञानी पुरुष वहाँ आ गये। शिष्योंने अपने गुरुकी प्रशंसा कर उन महात्मासे कहा कि हमारे गुरुके सब वचन सत्य होते थे पर अंतिम बात सत्य नहीं हुई।

महात्माने पूछा कि उन्हें अंत समयमें कहाँ सुलाया था?

शिष्योंने वह स्थान बताया। महात्मा वहाँ सो गये। बेरीकी ओर उनकी दृष्टि जाते ही उन्हें वह पका बेर दिखायी दिया। उस बेरको नीचे गिराया और उसे तोड़ा तो उसमेंसे मोटी इल्ली (लट) नीकली। वह तड़फकर मर गयी तब बाजे बजे और उनकी सद्गति हुई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा है तब मानता है। उनके कथनानुसार समझे तो दृढ़ प्रतीति होती है और यही समकित है जिससे बाह्यात्मा मिटकर अंतरात्मा बनता है और अपनेको सबसे भिन्न जानता है। इस संसारमें मेरा कुछ नहीं है, सब स्वप्नके समान है ऐसा मानता है। एक *ब्राह्मणका पुत्र कोरीके यहाँ पला और अपनेको कोरी (जुलाहा) मानता था; फिर उसके पिताने उसे समझाया तब समझकर साधु बन गया, वैसे ही हमें भी चेत जाता है। ढीला छोड़ा तो सत्यानाश कर देगा। क्षण-क्षण 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु' अर्थात् अपना जो आत्मस्वरूप है, उसे याद करें और परमें जाती हुई वृत्तिको रोकें। नहीं तो दृष्टि पड़ते ही मोह होता है और वह महा बंधनमें ले जाता है।

---

* एक ब्राह्मण था। वह बहुत दरिद्र था। उसे विद्याभ्यास करनेकी इच्छा थी, परंतु पूरे दिन भीख माँगने पर कठिनतासे पति-पत्नीका निर्वाह होता था।

एक रात वह जल्दी उठ गया तब उसे विचार आया कि आधा जीवन तो यों ही बीत गया, कितनी आयु शेष है कुछ पता नहीं। यदि नहीं चेतूँगा तो विद्याभ्यासकी अभिलाषा अधूरी रह जायेगी। अतः घरसे भाग जाना अच्छा है। इस विचारसे उसे नींद नहीं आयी। फिर उसने सोचा कि स्त्रीको कहकर जाऊँ तो ठीक रहेगा। अतः प्रातः उसने अपना विचार अपनी पत्नीसे कहा।वह सुशील थी, इसलिये उसने भी उसके विचारका अनुमोदन किया। पर उसने कहा कि मुझे प्रसव होनेमें दो माह ही शेष हैं, अतः दो माह बाद जाओ तो ठीक रहेगा।

उसकी सहमति मिलनेसे ब्राह्मण प्रसन्न हो गया और दो माह रुकनेका स्वीकार किया। दो माह बाद उसकी पत्नीने पुत्रको जन्म दिया, पर अचानक उसकी पत्नीका देहावसान हो गया। अब बालकके पालनेका काम ब्राह्मणके सिर पर पड़ गया। एक तो वैराग्य था और इस बालकके पालनका कठिन काम सिर पर आ पड़ा जिससे उसका वैराग्य बढ़ गया।

एक दिन वह बालकको खिला रहा था। उस समय छिपकलीके अंडेमेंसे एक बच्चा निकलकर नीचे गिरा। यह देख ब्राह्मणको दया आयी कि इतना छोटा बच्चा क्या खायेगा? इतनेमें बच्चेके मुँह पर एक मक्खी बैठी, जिसे उसने पकड़ ली। यह देख ब्राह्मणको लगा कि मैं व्यर्थ उसकी चिंता करता था। उसे तो उसके भाग्यानुसार खानेको मिल ही गया। तो क्या इस बालकका भाग्य नहीं होगा? मुझे भी इसे इसके भाग्यके भरोसे छोड़कर अपना निश्चय पूरा करने निकल जाना चाहिये। पर अपने गाँवमें बालकको छोड़कर जाना ठीक नहीं। यों सोचकर यात्राके बहाने बालकको लेकर दूसरे गाँव चला गया। वहाँ रातमें एक चबूतरे पर सोया, सबेरे जल्दी उठकर बालकको कपड़ेसे ढँककर स्वयं चला गया।

प्रातःकाल में बालक रोने लगा अतः कोई शौच जानेवाला व्यक्ति वहाँ किसी अन्य आदमीको न देखकर वहाँ खड़ा रहा। थोड़ी देरमें वहाँ बहुतसे लोग इकट्ठे हो गये। बिना माता-पिताके बालकको देखकर उसे किसीको सौंपनेका विचार किया। एक कोरीने उस बालकका पालन स्वीकार किया। उसकी मदद के लिये महाजनने उसे कुछ रकम दी, जिससे वह बालक उस कोरीके यहाँ पलकर बड़ा होने लगा।

ब्राह्मण वहाँसे चलकर काशी गया। वहाँ विद्याभ्यास कर आचार्य बना। विहार करते करते वह फिर उस गाँवमें आया जहाँ बालकको छोड़कर गया था। किसी वृद्धको पूछा कि थोड़े दिन पहले चबूतरे पर एक बिना माता-पिताका बालक था, वह अभी जीवित है क्या? वृद्धने कहा—हाँ, उसे बुलाऊँ क्या? आचार्यके हाँ कहने पर वृद्ध उस बच्चेको बुला लाया। आचार्यने बच्चेको सब बात समझायी कि तू कोरी नहीं, ब्राह्मण है। तब पूर्वसंस्कार जाग्रत होनेसे वह भी आचार्यके साथ साधु बनकर वहाँसे चला गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. ३०-१०-३२

इन्द्रियोंके सुख सच्चे सुख नहीं हैं, पर दुःख हैं। ऐसा क्यों? सुखको दुःख कहा यह तो विरोध हुआ। समाधान यों है कि इन्द्रियविषयोंके परिणाम दुःखरूप हैं। स्वाद रोगका कारण है, इसी प्रकार भोग भी रोगका घर है। प्रत्येक प्रकारके इन्द्रियसुख मृगतृष्णाके पानी जैसे हैं, उनसे संतोष नहीं होता तथा उनका पूर्ण उपभोग भी नहीं हो सकता। आत्मसुख इससे उलटा है, वह आत्माको सच्ची शांति देता है और उसका परिणाम भी अति सुखमय होता है। आत्मा सब पदार्थोंसे भिन्न है, अरूपी है। यह न हो तो सब मुर्दे हैं, अतः यह है। ज्ञानी उसके साक्षी हैं। अतः इसे मानें और इसके सिवाय परमें वृत्तिको न लगायें। ज्ञानीकी आज्ञा है कि गहरे उतरकर विचार कर, मनको विषय-विकारसे दूर खींच ले। इन क्षणिक परद्रव्योंमें तो अनादिकालसे रहा है और दुःख प्राप्त किया है। अब जाग्रत हो जा और अपने सच्चे स्वरूपको समझ, ध्यान कर तो आत्माकी पहचान होगी। पर यह त्याग-वैराग्य आने पर ही संभव है। वह न हो और परमें वृत्ति हो तो आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

संसार अनंत आत्माओंसे भरा हुआ है। वे सब परपरिणतिमें पड़े हुए हैं। उनमेंसे थोड़े ही लोगोंको पूर्व पुण्यसे सत्संगतिका लाभ मिला है। अतः इस दुर्लभ योगको सार्थक कर लें। आत्मा ही सत्य है, अन्य सब तो नाशवान है, समय आने पर नष्ट होते हैं। ज्ञानियोंने आत्माको देखा है। उनकी पहचान द्वारा आत्माको पहचानें।

★★★

ता. ३१-१०-३२

समकिती और मिथ्यात्वी दोनों पंचेन्द्रियके विषयभोग भोगते हों तो ऊपरसे तो समान ही लगते हैं। पर ज्ञानीको भेद दिखायी देता है, अन्यको तो वह भेद दिखायी नहीं देता। पर दोनों समान हो सकते हैं क्या? नहीं हो सकते। समकितीकी समझमें अंतर है। वह वस्तुको वस्तुके रूपमें देखता है। मिठाईकी थाली भरी हो और दोनों भोजन करते हों तो भी दोनोंकी दृष्टिमें अंतर है। फिर उसका वमन हो जाय तो दूसरेको ग्लानि हो आती है, जबकि समकिती दोनों स्थितिमें समभाव रखता है; और इसीलिये भोगते हुए भी नहीं भोगता, अर्थात् उसमें लुब्ध नहीं होता। उसे समभाव है। इसी प्रकार प्रत्येक विषयमें समकितीकी दृष्टि आत्माकी ओर रहती है और अन्यसे वह भिन्न है ऐसा जानता है। वह बंध और मोक्षको समझता है। उदय क्या है, यह जानता है। उसे इच्छा, उपाधि नहीं है। इस प्रकार मिथ्यात्वी और समकितीके परिणाममें बहुत अंतर है। मिथ्यात्वीको मान-अपमान, अच्छा-बुरा, राग-द्वेष, हर्ष-शोक तथा वासना है। समकितीको कोई गाली दे दे तो भी ऐसा समझता है कि आत्माको गाली कहाँ लगती है? ये तो भाषाके पुद्गल हैं। ऐसे ही प्रत्येक प्रसंगमें वह जाग्रत रहता है और यों उसके भाव आत्माकी ओर होनेसे वह कर्मसे मुक्त होता है। जबकि मिथ्यात्वी तप करते हुए भी बँधता है।

★★★

समकिती जीव पश्चात्ताप करता है पर खेद नहीं करता। जो हुआ वह अज्ञानसे हुआ, यों यथातथ्य देखता है और पुनः ऐसा न हो पाये यों सोचता है। जैसे एक व्यक्ति पूरी रात अंधेरेमें भटका हो और सूर्योदय होने पर मार्ग मिल जाय तब सोचता है कि मैं पूरी रात व्यर्थ भटका!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समकित हुआ हो तो समभाव रहता है, किसीके प्रति रागद्वेष नहीं होता; क्योंकि स्वयंको देहसे भिन्न जाना है अर्थात् आत्माको जाना है, वैसा ही दूसरोंको देखता है और परवस्तुसे अलग रहता है। यह अच्छा, यह बुरा, यह अच्छा लगता है, यह अच्छा नहीं लगता ऐसा नहीं होता। उसकी दृष्टि आत्माकी ओर होती है। व्यवहारमें प्रवृत्ति करते हुए भी उससे भिन्न रहता है।

अंतरदृष्टि रखे, स्वयंको देहसे भिन्न ज्ञानीने बताया वैसा माने, स्वयंने आत्माको नहीं देखा है, पर ज्ञानीने कहा उसे सत्य माने और ज्ञानीने कहा कि रागद्वेष न करें तो याद रखकर न करे; अपनी बुद्धिको छोड़कर ज्ञानीकी आज्ञामें चले तभी मार्ग मिल सकता है। स्वच्छंदको रोकना बड़ी बात है। जब तक जीव इसे नहीं रोकता तब तक जीव जिन अनंत दोषोंसे भरा है उन दोषोंका टलना संभव नहीं है। स्वच्छंदका त्यागकर श्रद्धा करनी चाहिये और आज्ञाका पालन करना चाहिये।

★★★

ता. ३-११-३२

सत्पुरुष द्वारा प्रत्याख्यान प्राप्त हुए हों तो महाउपकारी हैं।

परभावमें जानेसे आत्मा बँधता है; पर व्रत लिया अर्थात् 'इसका मेरे त्याग है' ऐसा मनमें होनेसे मैं इससे भिन्न हूँ ऐसा विचार आता है जिससे परभावसे मुक्त होता है।

शीलका माहात्म्य तो अनंत है। स्वयं आत्मा है, शरीरसे भिन्न है। देहका धर्म अपना धर्म नहीं है। स्वयं व्यवहारमें प्रवृत्ति करे, पर अंतरसे अलग रहे। ऐसा आंतरिक त्याग हो, आत्माकी पहचान हो और आत्मभावमें स्थिति हो तब शील पाला कहा जाता है। पर किसी परभावमें अर्थात् रागद्वेष, विषय-कषायमें परिणति कर स्वयंका विस्मरण नहीं होना चाहिये।

आत्माको तो सत्पुरुषके वचनसे मान्य करता है, फिर भी रागद्वेष होता है, इसका कारण क्या है? यहाँ अनादिका अभ्यास इतना है कि देहाध्यास दृढ़ हो गया है। स्वप्नमें भी साँप देखे तो डर लगता है, क्योंकि स्वयंको देहरूप समझा है। जैसे जैसे वह सत्पुरुषका बोध सुनेगा, उस पर विचार करेगा तथा मान्य करेगा, वैसे वैसे देहाध्यास कम होगा और आत्मभाव जाग्रत होगा। पूरा आधार भाव पर है। शुभाशुभ दोनों भाव बंध अथवा पापरूप हैं। शुद्ध अथवा आत्मभाव ही मात्र छूटनेमें सहायक है।

★★★

ता. १०-११-३२

तू आत्मा है, ऐसा समझ और सबमें आत्मा ही देख। इस हड्डी चमड़ेकी देहमें मोहित होकर बंधन मत कर। तू अपनेको बार बार याद कर। ज्ञानीने जो तेरा स्वरूप बताया है उसका साक्षात्कार कर। यह ब्रह्मचर्यव्रत द्रव्य-भावसे ग्रहण हुआ है वह बहुत शुभ हुआ है, वह अवश्य मोक्ष प्राप्त करवायेगा। इसका पालन करनेमें द्रव्यभावसे भी सावधानी रखें। बुरे निमित्त न बनने दें, सावधान रहें। यह देह है तब तक तो प्रतिज्ञा दृढ़ रखें। जो त्याग किया है, वह आत्मभावसे अंतरंगसे होना चाहिये। मनसे मोह, राग न हो इसके लिये उदय आने पर चित्तवृत्तिको वाचन, विचार या आत्मचिंतनमें रोकें। दृढ़तासे व्रत लिया जिससे यह जीव संसारसमुद्रको पार कर किनारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहुँच गया है। अब मात्र एक आत्माको पहचानना है। सच्चा सुख बाहर नहीं, आत्मामें है। अतः उसे प्राप्त करनेके लिये आत्मचिंतन करें। परमेंसे प्रीतिको निकालकर, जिसने आत्माकी पहचान करायी उस परमपुरुषमें जोड़ें।

★★★

ता. ११-११-३२

आत्मा ही परमात्मा है—निश्चयके इस तत्त्ववचनको सुनकर कोई अपनेको परमात्मा मान बैठे तो वह मिथ्या है। जब तक परमात्माके गुण प्रकट न हों तब तक मात्र मुँहसे बोलनेसे कुछ नहीं होता। इसीलिये 'समाधिशतक' जैसा शास्त्र मात्र योग्यतावाले जीवको ही पढ़ना चाहिये। अन्यथा जिस अभिमानको निकालना है वही बढ़ जाता है और तैरनेके बदले डूबना पड़ता है। अतः मात्र गुरुगमसे ही मार्ग कहा गया है। जैसे जैसे आत्माके अनंत गुण प्रकट होते हैं वैसे वैसे अहंकार मिटकर भक्ति, विनयभाव प्रकट होते हैं।

★★★

ता. ४-५-३३

जब अत्यंत दुःखसे पीड़ित हों, कोई उपाय न हो तब शरण किसकी? आत्माकी। अपना आत्मा ही खरा है। यह सब संयोग हैं—सर्व संयोग हैं। वेदना, दुःख चाहे जैसा आवे तब भी यह समझें कि यह मेरा स्वरूप नहीं है, मेरे स्वरूपसे भिन्न है और समय पकने पर चला जायेगा। यह पूर्वकृत कर्मोंका फल है। अब सावधान रहना है। एक आत्माकी उपासना करें। अन्य सब तो ऋण संबंधसे मिले हैं। किसीसे प्रीति, माया न करें, ये विभाव तो नाशवानकी ओर ले जाते हैं। यह देह या कोई भी मेरा स्वरूप नहीं है। मैं भिन्न हूँ। मेरा स्वरूप ज्ञानीने जाना और बताया वैसा है। यह एकमात्र श्रद्धा रखें और इसीमें स्थिर रहें।

संसारके परिचित जीवों—सगे-संबंधियोंको मात्र ऊपरसे मिलें, पर उनमें वृत्तिको जरा भी न रोकें। संसारमें असंख्य लोग हैं। कुछकी पहचान हुई, संयोग हुआ जिससे क्या तन्मय हो जाना? अपने आत्माको भूल जाना? यों तो अनेक उत्तम बड़े लोग हैं, जिन्हें हम पहचानते भी नहीं। इसलिये किसी पर मोह, राग या द्वेष न करें। सब पर समान दृष्टि रखें।

परमज्ञानी कृपालुदेव पर सद्गुरुके रूपमें हृदयपूर्वक जितना हो सके उतना भाव करें। ये ही आत्माके सर्वस्व हैं, ऐसा आजन्म मानें। अन्य अनेक देवोंको छोड़कर एकमात्र इनमें ही सतत वृत्तिको पिरोयें और इनसे ही प्रीति जोड़ें।

★★★

ता. १०-५-३३

समकित प्राप्त करनेके लिये ममता छोड़नी चाहिये। ममता कैसे छूटे? समता भावसे। समता कैसे आये? सत्पुरुषकी यथातथ्य पहचान हो तब समता आती है। फिर अपने आत्माकी पहचान हो तो वह सबसे भिन्न है ऐसा ज्ञात होता है, संयोग आदिकी इच्छा नहीं करता और परभावमें नहीं जाता; इसके लिये सदा जाग्रत रहना चाहिये। वह किस प्रकार रहे? पुरुषार्थ करनेसे। जैसे अनेक काम, धंधेके लिये करते हैं, वैसे ही इस आत्माके लिये उद्यमशील बन जाना चाहिये। देह आदि दूसरोंका काम करता रहता है यह कैसी मूर्खता है! अब अपना करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य सब जो करना पड़े वह ऊपर ऊपरसे करे, पर अंतरसे तो आत्महित करनेकी ओर लक्ष्य रखें। धन, सत्ता, देह आदि किसीकी भी ममता न करें। ममता ही बंधन है और वह आत्माके लिये महा दुःखमय है, अतः क्षण क्षण बहुत ध्यान रखें। सब पर समभाव रखकर सबके पारमार्थिक शुभकी इच्छा करें।

★★★

ता. १२-५-३३

'सद्धा परम दुल्लहा'

अनंतकालसे भ्रमण किया, बोध भी सुना, फिर भी निबेड़ा क्यों नहीं आया? क्या भूल रही? यही कि वासना नहीं गयी। किसकी? मनकी। मन क्या है? आत्मा विचारमें परिणमन करता है वह मन है। उसे वशमें करना चाहिये। वह कैसे वशमें हो? सत्पुरुषके बोधमें श्रद्धा आये और तदनुसार प्रवृत्ति करे, मनको अन्यत्र जाते रोके और आत्मामें स्थिर करे तब। उसके लिये श्रद्धा ही चाहिये, और उसीका रंग लगे तो मन वशमें होता है।

★★★

ता. १३-५-३३

अनंतकालसे जीवने जन्ममरण किये हैं। उसमें हर वक्त सगे-स्नेही, धन-संपत्तिको प्राप्त किया है और उन्हें अपना माना है, उनके लिये दुःख भोगनेमें कुछ कमी नहीं रखी, परंतु कुछ साथ नहीं आया, फिर भी 'मेरा मेरा' कर रहा है। स्वप्नको सच्चा माना है। अपना आत्मा जो अकेला आया है उसकी शोध नहीं की, उसकी कुछ चिंता नहीं की। यह एक जो सच्चा है, उसे छोड़कर अन्यकी पंचायत की है। यह कितनी बड़ी भूल है! और अब भी नहीं चेतता है। चेत जाय तो सबको पर माने, ममत्वको छोड़कर निजस्वरूपका विचार करे; पर आत्माको पहचानना सरल नहीं है। स्वच्छंदसे चाहे जो करे तो भी भ्रांतिमें पड़ता है। सरल होता तो अनेक विद्वान हो गये उनके हाथ लग जाता। परंतु वह यों ही प्राप्त नहीं होता। उसके लिये सब छोड़कर एक ज्ञानीकी शरण लेनी चाहिये।

★★★

ता. १५-५-३३

जीव इस देहमें ममत्व करता है वह महा बंधनरूप है। यह देह सुंदर है, देहको सुखदुःख होता है वह मुझे होता है ऐसा मानना ममता है, इसका त्याग करें।

मुमुक्षु—तो क्या इसको सुखा डालें?

प्रभुश्री—ऐसा नहीं है। इससे आत्माका सार्थक करना है। अतः जब वह स्वस्थ हो तब उसके द्वारा भक्तिभजन करें। जब निर्बल या असातामें हो तब अन्यसे भक्तिभजन सुनें या आत्मचिंतन करें। व्यर्थ सुखा डालनेसे तो यह भक्तिभजन भी नहीं करने देगा। अतः उसे आवश्यक पोषण देकर योग्य संभाल रखें, जैसे बैलको घास डालकर उससे काम लेते हैं वैसे। परंतु उसमें मोह मूर्च्छा तो करें ही नहीं। शरीर अपना है नहीं और होगा भी नहीं, ऐसा निश्चय कर लें। यह सड़ जायेगा, पड़ जायेगा, रोग आयेगा, वृद्ध होगा, कुरूप होगा; पर उससे घबरायें नहीं, क्योंकि हमारा हेतु तो किसी भी प्रकार उससे आत्मार्थ साधनेका है, न कि उसे शाश्वत करनेका। खाना-पीना, पहनना-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओढ़ना आदि मोहसे, स्वादसे, देह पर मूर्च्छा रखकर, स्वयंको देहरूप मानकर करे तो वह विषके समान है। यदि इस प्रकार होता हो तो मर जाना श्रेष्ठ है, कि जिससे नये भव खड़े होते तो अटकें!

इस प्रकार देहको संभालनेमें आत्मार्थ जानें और मूर्च्छाका सर्वथा त्याग करें; कारण, देहको स्वयंरूप जाना उतना आत्माको भुलाया। भेदज्ञान कर लेने पर ही यह बात सुगम है।

★

अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य सबके प्रति माँ-बहनके भावसे देखें। बुरे भावसे किसी पर दृष्टि न करें और संयमपूर्वक व्यवहार करें। सत् और शील महान हैं। जहाँ ये हों वहीं धर्म हो सकता है। अतः पुरुषको परस्त्रीका और स्त्रीको परपुरुषका सर्वथा त्याग रखना चाहिये।

★★★

ता. १६-५-३३

इस जीवने परको अपना मान रखा है। 'मैं स्त्री, मैं बनिया, मैं ब्राह्मण, मैं पुरुष' यों हिंदु, पारसी आदि कहलाता हो तो अपनेको तद्रूप मान बैठा है, पर वह मिथ्या है। ऐसे तो उसने अनेक भव किये हैं और उनका नाश हुआ है, फिर भी भूलता है। सगे आदिको अपना मानता है जिससे दुःखी होकर गाढ़ कर्मबंध करता है, उसके बदले ऐसा समझें कि यह सब अपने स्वरूपसे भिन्न है। मैं तो आत्मा हूँ। इसमेंसे कोई मेरा नहीं। यह देह भी मैं नहीं हूँ। मेरा तो एक आत्मस्वरूप है। ऐसा ज्ञानियोंने कहा है अतः सत्य है। ये सब संयोग हैं वे मोह करवाते हैं; पर मैं उन्हें सच्चे नहीं मानूँगा।

★★★

ता. १७-५-३३

देहसे आत्मा भिन्न है; देह मेरा स्वरूप नहीं है, वह मेरी नहीं है, उसे जो होता है वह मुझे नहीं होता; ऐसा सोचकर इसका सर्व मोह त्याग दें। जड़ और चेतन भिन्न हैं, ऐसी श्रद्धा रखकर आत्माकी पहचान करें। अभी आत्मस्वरूप नहीं जाना है और अनादिका अभ्यास होनेसे अपनेको देहरूप मानता है। पर ज्ञानियोंने कहा है कि तू भिन्न है, तेरा स्वरूप तो और ही है! यह श्रद्धा रखकर, देहाध्यास छोड़कर, अब उस संबंधमें किसी प्रकारका मोह न कर यह भव तो आत्माके लिये ही बितायें।

★★★

ता. १९-५-३३

यह जीव कैसे अनर्थदंड करता है वह भी देखने योग्य है। कोई पुरुष या स्त्री किसीके प्रति कुदृष्टि कर भोग भोगनेका विचार करे, ऐसी इच्छा करे तो उस कुभावनासे वह पाप कर्म बाँधकर कुगतिमें जाता है। वास्तवमें कुछ किया नहीं जाता, भोग भोगे नहीं जाते किन्तु भावसे, विचारमात्रसे कर्म बाँधता है जो अनर्थदंडका एक प्रकार है।

यदि कोई ऐसी भावना करे कि मुझे संयम हो तो कितना अच्छा! ऐसे संयमवाले जीवोंकी ओर दृष्टि रखकर ऐसी भावना करे तो वह पुण्य बाँधकर देवलोकमें जाता है।

एक अशुभ भाव है, दूसरा शुभ भाव है, इन दोके अतिरिक्त तीसरा शुद्ध भाव है। जिसे मोक्षके लिये प्रयत्न करना है उसे तो शुद्ध भावको ही समझना चाहिये और उसके लिये पुरुषार्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना चाहिये। किसीके प्रति इष्ट या अनिष्टभाव न कर, मध्यस्थभाव, समताभावसे रहें। तप, जप आदि मात्र आत्मप्राप्तिके लिये निष्काम भावसे करें। किसी प्रकारकी इच्छा न रखें। सुकृत्य करनेमें भी आत्महितका लक्ष्य रखें। अपने अनंत दोषोंको ढूँढ ढूँढकर दूर करनेका प्रयत्न करें और सद्गुरुके चरणमें सर्व अर्पण कर, उनकी आज्ञाका आराधन करें। समभावमें सर्व समाहित है। प्राप्त हुए प्रसंगोंमें रति अरति न करें। सहनशीलता रखें। सुख और दुःखमें समान रहें। सर्व जीवोंके प्रति छोटे-बड़े, अच्छे-बुरे, प्रिय-अप्रिय, ऊँचनीचके भेद दूर कर मनसे सबके प्रति समदृष्टि रखकर, सबके पारमार्थिक श्रेयकी चिंता करें। देहकी और तत्संबंधी विषयोंकी ममता दूर करें।

★★★

ता. २४-५-३३

अब पकड़ कर लें। आत्मा अनादिकालसे भटका है, पर अभी अंत नहीं आया और न आयेगा, अतः जन्ममरणसे छूटनेकी सतत भावना कर ज्ञानीकी शरणमें रहें।

★★★

ता. २६-५-३३

मन, वचन, कायाके योगसे निवृत्त होकर आत्माको आत्मामें स्थिर करनेको उत्कृष्ट ध्यान कहा है। इस प्रकार अन्य सब ओरसे आत्माके उपयोगको निवृत्त कर आत्माका ध्यान करें। वह कैसे? जैसे सूर्यका प्रकाश सर्वत्र है, वैसे ही यह आत्मा संपूर्ण विश्वका प्रकाशक है। जैसे चंद्र भूमिको प्रकाशित करता है, वैसे ही इस शरीरके अणु अणुमें व्याप्त है ऐसे आत्माका चिंतन करें। 'आत्मसिद्धि'में 'आत्मा है' इस पदकी गाथाओंमें जैसा वर्णन किया गया है, वैसे आत्माका ध्यान करें। तथा—

'छे देहादिथी भिन्न आतमा रे, उपयोगी सदा अविनाश।'

ऐसा ध्यान करें। जब इस स्वरूपमें ही स्थिरता होती है तब चारित्र कहा जाता है, मात्र साधुका वेष अंगीकार करनेसे नहीं।

सर्व जीवोंको सिद्धके समान समझें। छोटा-बड़ा, पढ़-अनपढ़, स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध ये भेद वास्तविक नहीं है। सभी समान हैं और अपने आत्माके समान हैं। अपना आत्मा ही परमात्मा जैसा है, ऐसा समझकर उस परमात्मस्वरूपका ध्यान कर राग-द्वेषमें न पड़ें। किसी पर मोह कर राग न करें और किसीको तुच्छ समझकर द्वेष न करें। इस प्रकार पुरुषार्थ करनेसे वृत्ति परमें जाती रुकती है और ध्यानमें रहा जा सकता है।

★★★

ता. २७-५-३३

चारों गतिमें अनंत दुःख हैं। नरकगति और तिर्यंचगतिमें तो असह्य हैं। मनुष्यगतिमें भी भूख, निर्धनता, मान-अपमान, दरिद्रता, रोग और बुढ़ापे के दुःख हैं। शरीर दिन-दिन क्षीण होता है और विषय-कषायसे तथा पाँच इन्द्रियोंके मृगतृष्णा जैसे सुखकी इच्छासे यह आत्मा अनंत दुःखका भोक्ता होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगतिमें शरीरका सुख है तब मानसिक दुःख अन्य तीन गतियोंसे अधिक है। एक दूसरेके सुखकी ईर्ष्या और अपहरणकी इच्छा रहती है। वहाँका सुख भी कैसा है? वहाँ तुच्छ भोग ही भोगे जाते हैं। वे भी क्षणिक और नाशवान है। कुछ अधिक समय भोग कर उसका भी अंत होता है तथा कषायके कारण देवको फिर नीच गतिमें जाना पड़ता है। जब शरीर त्याग करनेका समय आता है तब उन भोगोंको छोड़ते हुए अत्यंत आर्तध्यान होनेसे तुच्छ गतिमें जा पड़ता है। अतः देवके भोग भी त्याज्य हैं, चाहने योग्य नहीं। ये सुख भी परिणाममें दुःखरूप हैं। मात्र आत्मज्ञानी देवोंको ही किंचित् सच्चा सुख होता है क्योंकि आत्मज्ञानके कारण उन्हें वैसे कषाय नहीं होते और आयुष्य पूर्णकर देर अबेरसे मोक्ष प्राप्त करते हैं।

चारों गति मात्र दुःखरूप है। आत्मा उनमें बँधा है उसे अब छुड़ाना है। इस मनुष्य देहमें ही वह हो सकता है। इस जन्मकी प्रत्येक क्षण महा अमूल्य है। अतः सद्गुरुकी आज्ञाका विचार कर, उनके वचन गाँठमें बाँधकर अपने आत्मामें परिणत करें।

★★★

ता. ३१-५-३३

अन्य सबसे दृष्टि हटाकर एकमात्र स्व-आत्मामें ही रहें। व्यवहारमें बाहरसे प्रवृत्ति करनी पड़े, परंतु अपने आत्माको घड़ी भरके लिये भी न भूलें। उपयोगमें रहें और आत्माको ही सर्वस्व मानकर रागद्वेष न करें। जो कुछ भाव, अनुराग करना हो वह आत्मासे ही करें। इसके कारण ही यह देह, मन आदि तथा संबंधी, संयोग प्राप्त हुए हैं, अतः इसीमें स्थिर रहें।

★★★

ता. ८-५-३४

मुमुक्षु—जीव इतना इतना सुनता है, फिर भी परिणमित क्यों नहीं होता?

प्रभुश्री—एक कानसे सुनकर दूसरे कानसे निकाल देता है।

मुमुक्षु—दो कान हैं इसलिये ऐसा होता है। एक ही कान हो तो सब अंदर ही रहे!

प्रभुश्री—विक्रम राजाने तीन पुतलियोंकी परीक्षा कर देखी। एकके कानमें डाली हुई सलाई दूसरे कानसे आरपार निकल गई। दूसरीके कानमें डाली तो थोड़ी देर रुककर मुँहसे निकल गयी। और तीसरीके कानमें डाली तो निकली ही नहीं। अतः उसका मूल्य एक लाख आंका गया। वैसे ही जो बोध सुने उसे मनमें धारण करे और विचारे तो आत्मामें परिणत होता है। करना यही है कि बाह्यसे निवृत्त होकर आत्मामें परिणत होना है। एक व्यक्ति बहुत शास्त्र पढ़ा हो और सब समझा सकता हो, पर आत्माका अनुभव नहीं हुआ हो तो वह सब व्यर्थ है। शास्त्रज्ञान न हो पर श्रद्धा तथा अनुभव हो तो वह अगले जन्ममें भी साथ जाता है और जीवको मोक्ष प्राप्त कराता है।

★★★

ता. ११-५-३४

योग्यता न होने पर भी अपनेको छठे, सातवें गुणस्थानमें मानकर मान प्राप्त करता है। ध्यान कहाँ है कि समकिती जीवकी कैसी दशा होती है? स्वयं जानता तो कुछ नहीं और उपदेश देने चल पड़ता है, ज्ञानी बन बैठता है। इससे मात्र भवभ्रमण होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"नहि दे तू उपदेशकुं, प्रथम लेहि उपदेश;
सबसे न्यारा अगम है, वो ज्ञानीका देश."

जिस बातका स्वयं अनुभव न किया हो, फिर भी मानो अनुभव किया हो ऐसा बताये वह मिथ्यात्वी कहलाता है। ऐसा करके कितना समय निकालना है? अतः अब अन्य किसी प्रकारकी पंचायत न कर आत्माकी पहचान कर लें और एक आत्मार्थके लिये सब कुछ करें।

आत्मा है वह छोटा, बड़ा, वृद्ध, युवान, स्त्री, पुरुष नहीं है। ये सब तो पर्याय हैं। पर्यायदृष्टिको छोड़कर स्वरूपमें आये तो कर्मबंध रुकता है।

★★★

ता. १५-५-३४

जो बात पूनामें हुई थी, वही सबको मान्य करनी चाहिये। कृपालुदेव पर प्रेम होना चाहिये। अन्यसे प्रीति तोड़े वह यहाँ जोड़े। अतः सभीसे प्रीति समेटकर आत्मार्थके लिये उनमें प्रेम करें। यह प्रेम ही श्रद्धा है और यह श्रद्धा होने पर ज्ञानीका बोध परिणत होता है तथा ज्ञान प्राप्त होता है।

★★★

ता. १३-११-३४

जीवको क्या करना है? भेदज्ञान। वह किस प्रकार होता है? वह यों कि यह शरीर मेरा नहीं है, वचन, मन भी मेरे नहीं हैं। मैं इनसे भिन्न आत्मा हूँ। तो क्या इन्हें नहीं रखना? रखना, पर एकमात्र आत्मार्थके लिये। जो करें वह अनिवार्य समझकर आत्मार्थके लिये करें। खाना, पीना, पहनना, शौच करना, बोलना, हँसना, रोना, चलना, छोड़ना, लेना, देखना आदि सर्व किसके लिये? एक आत्मार्थके लिये करें। मैं इससे भिन्न हूँ, पर उदय आने पर भोगना पड़ता है। मुझे तो एकमात्र आत्मार्थ ही करना है।

आत्मार्थमें लक्ष्य रखें कि जिससे वैसे उदय फिर न आयें। खाये इसलिये कि फिर न खाना पड़े। इसी प्रकार सब कुछ करें फिर न करनेके लिये, छोड़ने और त्यागनेके लिये। एक आत्मा ही मेरा है, उसे ज्ञानीने देखा है, अतः ज्ञानीकी आज्ञाका आराधन करें। जिससे आत्महित हो वही करना यह विवेक है।

रागद्वेष न करें, देहादि परपदार्थमें अहंभाव, ममत्वभाव न करें। अभिमानका त्याग करें। आत्माका कुछ नहीं है, आत्मा सबसे भिन्न है। सबका विनय करें। आत्माको सबसे भिन्न स्पष्ट देखें। जैसे उत्तर और दक्षिण दोनों अलग हैं, अंधकार और प्रकाश जैसे भिन्न हैं वैसे ही आत्मा भिन्न है। उसे प्राप्त करनेके लिये सब कुछ करें।

★★★

ता. १७-११-३४

देहाध्यासको दूर करें। आत्मा इस देहमें पाँवसे सिर तक व्याप्त है, उसमें वृत्तिको पिरोयें। पाँच इन्द्रियाँ और छठा मन ये छह खिड़कियाँ हैं। उनके द्वारा वृत्ति बाहर जाती है, वहाँसे खींचकर आत्मामें लायें। जो दीखता है वह, आत्मा है तो दीखता है। अतः उसे विस्मृत न करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्माके पास भाव और उपयोग है, उन्हें छूटनेके लिये, संसारसे मुक्त होनेके लिये प्रवर्तित करें। प्रेम करें तो सत्पुरुष पर करें। इसी प्रकार अपने आत्माके प्रति भी प्रीति, दया, प्रेमभाव आदि सब करें, क्योंकि अनादिकालसे परभावमें जानेके कारण वह बंधनमें पड़ा है। क्षण क्षण अनंतदुःख भोगता है और अपनी अनंत समृद्धिको भूल गया है। उस पर दया कर कर्मबंधनसे छुड़ानेके लिये आत्मभावमें आयें।

आत्मभाव प्राप्त करनेके लिये गुरुगम चाहिये, क्योंकि जैसे तिजोरी चाबीके बिना नहीं खुलती वैसे ही आत्माकी पहचान सद्गुरु करायें तभी होती है। अतः उनकी आज्ञाको बराबर समझकर दृढ़तासे आराधन करें। भ्राँतिमें न रहें। किसी पर रागद्वेष न करें। सब पर समभाव रखें। मैत्रीभाव सब प्राणी पर समान रखें। चार भावनाएँ भाते हुए व्यवहारमें प्रवृत्ति करें।

★★★

ता. १८-११-३४

[धर्मध्यानकी पृथ्वी आदि पाँच धारणाओंके वाचन पर]

ये कल्पनाएँ चित्तको एकाग्र करनेके लिये कही है कि जिससे जीव वृत्तिको सबसे समेटकर आत्मामें लाये। परंतु ध्यानके लिये तो गुरुगम चाहिये। चाबीके बिना ताला नहीं खुलता। कृपालुदेवने गुरुआज्ञापूर्वक विचार ध्यान करनेको कहा है।

मुख्य बात सत् और शीलका पालन कर श्रद्धाको दृढ़ करें। रस्सी हाथमें आये तो कूएसे बाहर निकला जाय। अतः श्रद्धारूपी जो रस्सी पकड़ी है उसे हाथमेंसे क्षणभर भी छूटने नहीं देना चाहिये–विस्मृति नहीं करनी चाहिये। श्रद्धा किसकी करें? कहाँ करे? घर घरका समकित है वह नहीं, पर सच्चे ज्ञानी बतावें उसीको पकड़ लेवें। तभी इस त्रिविध तापसे छूटा जा सकेगा। 'सद्धा परम दुल्लहा' 'एक पल भी आपके कहे हुए तत्त्वकी शंका न हो' यह लक्ष्यमें रखें और विचारपूर्वक आज्ञाका आराधन करें। सर्वत्र आत्मा देखें। सद्व्यवहारका आचरण करें।

★★★

ता. १८-११-३४

अब दृष्टि बदलनी है। जीव इस ओर जा रहा है वहाँसे लौटकर सामनेकी ओर जाना है। जाना है मोक्षमें और कार्य संसारके करता है–राग-द्वेष-मोह करता है, प्रीति-अप्रीति करता है, अहंभाव-ममत्वभाव करता है–ये बंधन हैं। ज्ञानी व्यवहारमें बच्चोंको खिलाते हैं, प्रवृत्ति करते हैं, किन्तु उनका परिणमन आत्मामें है। उनको सबके प्रति समभाव है। आत्माको देखते हैं और उसके कल्याणकी इच्छा करते हैं। जो विपरीत बुद्धि हो गयी है उसे छोड़नी है। देहसे लेकर सभी परवस्तुमें प्रीति करता है। वहाँसे लौटाकर आत्मामें प्रीति करनी है। इसका सतत अभ्यास करना है। इसीके लिये पढ़ना है, सीखना है। अतः इसका उपयोग रखें। गाड़ी घोड़ा आदि धमाल देखकर सोचें कि वह माया है, नाशवान है। उन्हें देखनेवाला मेरा आत्मा तो अविनाशी है। अतः वही राग करने योग्य है।

सत्पुरुषसे भेद न रखें। मन, वचन, कायासे उनकी आज्ञाका आराधन करें। सत्पुरुष पर श्रद्धा रखें। वे कहें उसे सत्य मानें–रातको दिन कहें तो भी। और सर्व प्रकारके आग्रहका त्याग करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पत्रांक ८१० का वाचन–

"जो अनित्य है, जो असार है और जो अशरणरूप है वह इस जीवको प्रीतिका कारण क्यों होता है यह बात रात-दिन विचार करने योग्य है।"

यदि आत्माको सुखी करना हो, अनंतभवका क्षय करना हो और सच्चा सुख प्राप्त करना हो तो यह मार्ग है। अन्यथा चौरासीके चक्करमें फिरते रहें और मायाके बंधनमें सुख मानें।

★★★

ता. ४-१-३५

बोध सबको एक समान मिलता है, परंतु कोई उसे अंतरमें गहरा उतारकर विचार करता है और कोई उसे ग्रहण तो करता है पर विचार नहीं करता अथवा ग्रहण ही नहीं करता। यों सभी अपनी अपनी योग्यतानुसार लाभ प्राप्त करते हैं। कृपालुदेवने महादुर्लभ बोध दिया है, पर उसे समझना चाहिये।

दो भाई दुकानमेंसे इकट्ठा मिला हुआ अनाज आधा-आधा बाँट लेते। उसमेंसे एककी स्त्री भडीता और रोट बनाती, दूसरेकी स्त्री दाल, भात, साग और रोटी बनाती। "प्रतिदिन भडीता और रोट क्यों बनाती है? भाईके घर तो प्रतिदिन दाल, भात, रोटी बनती है।" ऐसा पतिके उलाहना देने पर उस स्त्रीने पतिसे कहा "उसे आपके भाई सब लाकर देते होंगे।" जाँच करने पर पता लगा कि वह तो परिश्रम कर सब अलग-अलग छाँटकर सुंदर रसोई बनाती थी, जबकि फूहड स्त्री इधर-उधर बातोंमें समय बिता, दलकर राँध देती थी।

यों ज्ञानी जो बोध दें उस पर योग्य विचार करना चाहिये और आत्माको सबसे अलग कर परिणमन करना चाहिये।

पात्रके अनुसार बोध ग्रहण हो सकता है। हाथी दो घड़े पानी पियेगा तो हमसे एक प्याला पिया जायेगा। इसी प्रकार कोई अधिक ग्रहण करता है कोई कम, फिर भी सबको स्वाद तो एक ही आता है।

★★★

ता. ५-१-३५

आत्माका मूल स्वभाव स्थिरता है। पानीका स्वभाव स्थिर रहनेका है, परंतु पवन चलनेसे लहरें उठती हैं और उछलता दिखायी देता है। इसी प्रकार आत्मामें मोहरूपी पवन बहता है तो अस्थिर दिखायी देता है। आत्मा स्वयं वैसा नहीं है, परंतु संयोगके कारण वैसा हो जाता है। कपड़ा स्थिर है, पर पवनसे हिलता है, वैसे ही अज्ञानजनित मोहसे आत्मा अन्यरूपसे परिणमित होता है और स्वयंको तद्रूप मानता है। अज्ञान और मोह मिटे तो आत्मा स्थिर होता है।

★★★

ता. ८-१-३५

देहाभिमान घटायें। जीवने नरक, तिर्यंच आदि अनेक नीच योनियोंमें जन्म लेकर दुःख भोगे हैं, उसे भूल गया है। ज्ञानीके कहने पर भी मानता नहीं! क्योंकि अभिमान बाधक बनता है। इस जन्मकी बाल्यावस्थाकी स्थितिको भी भूल गया है और वर्तमान अवस्थाका अभिमान करता है। यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिमान बहुत दुष्ट है। वह जीवको ज्ञानीसे दूर रखता है। अतः अभिमान छोड़नेका प्रयत्न करें। किसीको अपनेसे छोटा न मानें। मैं अधमाधम हूँ ऐसी समझ रखें। नम्रता, विनय रखें।

★★★

ता. ९-१-३५

समकिती और मिथ्यात्वीमें कैसा भेद है? मिथ्यात्वी दो, चार, छह उपवास करे, रातमें सोये भी नहीं; फिर भी कर्मबंध ही करता है। समकिती खाये, पिये, भोग भोगे, संसारमें रहे, सोये अथवा पागल या उन्मत्त बन जायें, फिर भी कर्मसे छूटता है, क्योंकि उसका लक्ष्य आत्मामें रहता है। अतः लक्ष्य आत्मामें रखना चहिये। आत्माके सिवाय अन्य कार्योंमें शरीरसे और वचनसे प्रवृत्ति करनी चाहिये, परंतु मनसे अर्थात् विचारपूर्वक उसमें आसक्त न होना चाहिये, तो बंध नहीं होता।

मोक्षके मार्गमें काँटे-कंकर, खड्डे-खाई, कूए जैसे अनेक विघ्न हैं। उसमें अंधा मनुष्य चले तो बहुत कष्ट होता है, और मार्गमें चल ही नहीं सकता। अथवा स्वच्छंदसे चलने पर अवश्य पतन होता है। परंतु यदि मार्गदर्शक मिल जाय और उसके आधारसे चले तभी सरलतासे आगे बढ़ा जा सकता है, तथा भयके स्थान भी पार हो जाते हैं। इसी प्रकार समकित अर्थात् श्रद्धा हो तो मार्ग स्पष्ट दिखाई देता है और उसमें आगे बढ़ा जा सकता है। अतः मुमुक्षुको समकितकी आवश्यकता है।

किसी लखपतिके घर खाता खुलवाया हो तो आवश्यकताके समय रकम मिल सकती है, फिर छूटसे लेनदेन की जा सकती है। परंतु खाता न हो तो कुछ भी नहीं हो सकता। अतः खाता खुलवानेका प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि इसमें हमारा स्वार्थ है। थोड़े रुपये भी वहाँ रखने चाहिये। ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। खुशामद भी करनी पड़े, क्योंकि अपना स्वार्थ है। परंतु बादमें बहुत लाभ होगा।

★★★

यह शरीर, हाथ-पाँव, वह मैं नहीं। देहमें व्याधि हो, पीड़ा हो, वह मुझे नहीं होती। इसी प्रकार इस भवके सगे-संबंधी मेरे नहीं। मैं इन सबसे भिन्न आत्मा हूँ, ऐसा समझें। यह ज्ञानीकी आज्ञा है। देहको स्वप्नमें भी अपना स्वरूप न माननेका अभ्यास करना चाहिये। मन भी मैं नहीं हूँ। मैं अरूपी चेतन हूँ और मेरा स्वरूप ज्ञानीने जाना है।

★★★

ता. १०-१-३५

आत्माकी बात कितनी दुर्लभ है? माता या पितासे कभी आत्माकी बात सुनी थी? संसारमें कहीं भी ऐसी बात सुननेको मिलेगी? अतः यह योग महादुर्लभ समझें। इसका माहात्म्य बहुत मानें।

★

पाँच इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्तभाव, विनय तथा सदाचार सहित आत्मचिंतन करनेसे ज्ञान पानेकी योग्यता आती है।

मुमुक्षु—पाँच इन्द्रियोंसे विरक्त होता है तब सदाचार तो होता ही है।

प्रभुश्री—विरक्ति यह बताती है कि क्या नहीं करना और सदाचार यह समझाता है कि क्या करना। जैसे कि सत्संग, भक्ति, शास्त्राध्ययन आदि शुभ प्रवृत्तियोंमें लगना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समता, धैर्य, शांत मनसे वचन बोलना, बुलवाना, सन्मान करना यह विनय है। उसके स्थान पर तुच्छता, उद्धतता, उच्च स्वरसे बोलना योग्य नहीं है। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये। किसीकी भी अविनय नहीं होनी चाहिये। विशेषकर सत्संगमें तो अधिक उपयोग रखना चाहिये। बोलनेमें विनय सीखनेकी बहुत आवश्यकता है। हमें सबसे छोटे, नम्र बन जाना चाहिये और झुककर चलना चाहिये।

★★★

ता. ११-१-३५

सदाचारका सेवन करना, भगवानका नाम लेना, कुसंगसे दूर रहना आदि कुछ बुरा नहीं है।

बीस दोहे, क्षमापना सीखे और नित्य पाठ करे तो बहुत कल्याण होता है। मनमें स्मरण रखें तो कोई मना करनेवाला नहीं है, अतः वह करना चाहिये। इससे भव कम होते हैं और अंतमें जन्म-मरणसे छुटकारा होता है। तब आत्महितका इतना-सा काम क्यों नहीं करें? व्यवहारके काममें कोई ढील नहीं करता, परंतु परमार्थके काममें प्रमाद करता है कि पीछे करूँगा, आज समय नहीं है; परंतु ऐसा न कर उलटा परमार्थका काम तो जैसे भी हो शीघ्रतासे करना चाहिये, क्योंकि मनुष्यभव प्राप्त कर यही करना योग्य है। अन्य कुछ साथ आनेवाला नहीं है। अतः सत्संगमें आत्मार्थकी साधना करनी चाहिये।

★★★

ता. १३-१-३५

अयथार्थ आत्मज्ञ आत्माकी बातें करते हैं, कहते हैं कि इसका छेदन नहीं होता, भेदन नहीं होता, वह बँधता नहीं, भोगता नहीं आदि; फिर भी बँधता है। उसने अंतरसे त्याग नहीं किया इसलिये वह शुष्कज्ञानी है। परंतु यथार्थ ज्ञानी मात्र बात ही नहीं करते पर उन्हें आत्मामें रमण करना प्रिय है। वे आत्माके सुखको जानते हैं और उसमें रमण करते हैं। शुष्कज्ञानीको यह अनुभव नहीं होनेसे अध्यात्ममें कुछ रस नहीं आता, फिर भी अपनेको संसारसुखका त्यागी मानता है। ज्ञानी तो अन्य सबकी अपेक्षा अधिक आनंद भोगता है, जिससे अत्यंत सुखी है।

★★★

ता. १३-१-३५

ज्ञानी और अज्ञानीकी वाणी अलग पड़ती है। मुमुक्षु अर्थात् जिज्ञासु उसकी परीक्षा कर सकता है। सच्ची मुमुक्षुता तो सत्पुरुषके योगसे प्रकट होती है। सत्पुरुषकी प्राप्तिमें पुरुषार्थ और प्रारब्ध दोनों कारण होते हैं। ज्ञानी तो अज्ञानीकी वाणीकी परीक्षा तुरत ही कर लेता है। अज्ञानी ज्ञानीके वचन उद्धृत कर बोलता हो फिर भी उसका आशय तुरत समझमें आ जाता है, क्योंकि ज्ञानीका आशय सदैव आत्मज्ञान होता है। उन्हें आत्माका ज्ञान होनेसे सदैव उसको लक्ष्यमें रखकर ही उनका बोध होता है अतः ज्ञानीकी वाणी पूर्वापर अविरोध कहलाती है। पर अज्ञानी वही बात करता हो फिर भी उसका लक्ष्य निरंतर आत्मा पर नहीं रहता या होता ही नहीं है। वह तो मानादि कषायोंकी पुष्टिके लिये बोलता है, पर ज्ञानी कुछ मानादि कषायके पोषणके लिये नहीं बोलते। ज्ञानी तो उसे एक शब्दमें पहचान लेते हैं। ज्ञानी बोलें नहीं, पर सामनेवालेके परिणाम बदल सकते हैं, यहाँ तक कि ज्ञान प्राप्त करा सकते हैं। कोई ध्यानमें बैठा हो और कोई मात्र देखता हो तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसीको ऐसा लगता है कि ध्यानमें है वह सच्चा योगी है। पर खुली आँखवालेको केवलज्ञान भी प्रकट हो सकता है, क्योंकि उसके वैसे परिणाम प्रवर्तित हो रहे होते हैं। ज्ञानी बोलते हैं वह अनुभवपूर्ण होता है। वे अंतरंग परिणामको पहचानते हैं, मोहादि दूर करनेके उपाय भी जानते हैं। जिससे उनके बोल तलस्पर्शी होते हैं और उसका आश्चर्यजनक प्रभाव होता है! अज्ञानीके वचन वैसा प्रभाव नहीं करते।

★★★

ता. १४-१-३५

मुझे सुख है ऐसा मानता है वहाँ भी वेदनी है। साता और असाता दोनों वेदनी हैं। उन्हें भोगता है और मैंने सुख-दुःख भोगा ऐसा मानता है, परंतु उसका तो नाश है। पर आत्माका नाश किसीने देखा है? प्रत्येक आत्मा अपने गुण अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य सहित अमर है। वह कभी नहीं मरता। उसका जो सुख है उसे तो ज्ञानीने जाना है और जिसने जाना है वही बता सकता है।

अनादिसे जो विपरीत समझ है उसे सीधी करनी है, उससे अनित्य, रूपी पदार्थोंका मोह छूटकर आत्मसुख प्राप्त होगा। फिर तो सिर पर अंगारे डालने पर भी ऐसा लगेगा कि 'मेरा क्या जलता है?' घानीमें पीलने पर भी शांत रहेगा। ऐसी अद्‌भुत दशा हो जाती है। क्योंकि समकित होनेसे उसने अपना स्वरूप देहसे भिन्न अनुभव किया है। उसे कोई गाली दे तो सोचता है कि मुझे कहाँ गाली लगी है? ये तो भाषाके पुद्‌गल थे जो उड़ गये। वह ऐसा समझता है कि यह तो मेरे सिर पर बोझ था वह हलका हुआ। मेरे इतने कर्म क्षय हुए। पर अज्ञानी तो उससे वैर निकालनेके लिये सिर फोड़ डालता है। समकिती या आत्मज्ञानी सीधा विचार करता है, क्योंकि वह सबको अनित्य देखता है। क्षण-क्षण सब नष्ट हो रहा है इसमें मोह क्या करना? अपने आत्माका सुख जो सच्चा है, शाश्वत है उसीका अनुभव करना योग्य है।

★★★

प्रभुश्री–सम अर्थात् क्या?

मुमुक्षु–रागद्वेष अर्थात् चारित्रमोहनीय और अज्ञान अर्थात् दर्शनमोहनीय, इनका अभाव होने पर समभाव प्रकट होता है।

प्रभुश्री–छह द्रव्य हैं, वे प्रत्येक अलग ही हैं। वे एक दूसरेमें परिणत हो ही नहीं सकते। इसलिये जड़ और चेतन भी एक दूसरेमें परिणत नहीं हो सकते। कृपालुदेवने कहा है कि चेतनके परिणाम चेतन और जड़के परिणाम जड़ हैं; एक परमाणु है जिसे कोई देख नहीं सकता, परंतु वह त्रिकाल उसी रूपमें है। उसमें जो पर्यायभेद होता है वह भी जड़ रूप ही होता हे। वैसे ही आत्माके गुण-पर्याय चेतन हैं। कर्मका लेप है उससे उसके गुण-पर्याय कभी नष्ट हुए नहीं और होंगे नहीं। अतः सभी जीव सिद्धस्वरूप हैं ऐसा समझे तो किसीके प्रति रागद्वेष नहीं होते। रागद्वेष और मोह अर्थात् अज्ञानदृष्टि जाय तब अपने स्वरूपमें स्थिर होता है अर्थात् आत्माका जो स्थिर रूप है, उसका अनुभव करता है। इससे सब पर समान दृष्टि अर्थात् समभाव आता है। तभी संपूर्ण जगत आत्मारूप माननेमें आता है। जो हो वह योग्य ही माननेमें आता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[1]"समतारसना प्याला रे, पीवे सो जाणे;
छाक चढ़ी कबहू नहि ऊतरे, तीनभुवन-सुख माणे."

★★★

ता. १७-१-३५

वासना और कामसेवनके अनेक प्रकार हैं। देहमें आत्मबुद्धि करना, अच्छे वस्त्राभूषणोंसे देहका शृंगार करना, अच्छे-अच्छे पौष्टिक पदार्थ देहको पुष्ट करनेके लिये खाना, शरीरको बारंबार निरखना, उसीके विचारमें लिप्त रहना, ये सब कामसेवनके ही प्रकार हैं। परंतु मैं देहसे भिन्न हूँ, देह जन्म-जरा-मरण और वेदनाका कारण है, उसे आत्मार्थके लिये बितानेका कष्ट उठाना और क्षण-क्षण आत्मार्थमें ही वृत्ति रखना ऐसी चर्या ही ब्रह्मचर्य है।

★★★

ता. २३-१-३५

ज्ञानीपुरुषकी पहचान होने पर सब कैसे बदल जाता है? जहाँ अंधकार हो वहाँ दीपक आ जाये तो सब यथातथ्य दिखायी देता है, ऐसे ही ज्ञानीपुरुषके मिलने पर जो देखा जाता है वह सब भिन्न प्रकारसे ही देखा जाता है। ममत्वभाव मिट जाता है, अपनेको भिन्न समझता है, जिससे विषय-कषाय छूट जाते हैं। तब जीव जो पुरुषार्थ पहले पाँच इंद्रियोंके विषयोंके लिये करता था उसके बदले आत्माकी शोध करनेमें लग जाता है। संसारके सुख उसे अग्निकी खाई जैसे लगते हैं, जिससे उस ओर जाता ही नहीं; और मैं कौन हूँ? कहाँसे आया हूँ? मेरा स्वरूप कैसा है? आदि जाननेका प्रयत्न करता है। संक्षेपमें, जीव अनादिसे सो रहा है वह जाग्रत हो जाता है, अभी तक जो जो साधन किये वे सब निष्फल लक्ष्यरहित बाण जैसे लगते हैं। ज्ञानीपुरुषको पहचानने पर यह समझमें आता है कि लक्ष्य कहाँ करना? जिससे उसके सब साधन व्रत, नियम सफल होते हैं। अभी तक तो इस लोकके सुख या परलोकके सुखके लिये साधन किये। अब मात्र आत्माको छुड़ानेके लिये, बंधनसे मुक्त करनेके लिये, ज्ञानीकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति करे तो सर्व साधन सफल होने योग्य हैं।

अनंत ज्ञानी हो गये हैं उन्होंने कहा है और अभी जो ज्ञानी हैं वे भी ऐसा ही कह रहे हैं कि तेरा एक आत्मा ही है। अतः ऐसा मानना चाहिये कि आस्रव, बंध, संयोग-वियोग आते हैं और जाते हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है, उन्हें देखनेवाला मैं हूँ, परंतु तद्रूप मैं नहीं हूँ—यह हृदयमें खोदकर लिख रखें, भूलें नहीं। जो बाँधा है उसे भोगना पड़ता है। पर उसमें तन्मय न होवें। मैं सबसे सर्व प्रकारसे भिन्न हूँ, ऐसा चिंतन कर उसमें इष्ट-अनिष्टपना न करें।

ज्ञानी सबमें आत्मा ही देखते हैं। प्रत्येक वस्तु जो दिखायी देती है, उसे देखनेवाला आत्मा है। वृक्ष, पत्ते, मनुष्य, जंतु आदि जो सर्व दिखाई देते हैं वे तो पुद्गल हैं, कर्म हैं, पर्याय हैं। उनमें जो आत्मा रहा हुआ है उसे ज्ञानी जानते हैं और देखते हैं। अतः मुझे वह मान्य है। मन, वचन, काया और अनेक अच्छे-बुरे भाव जो क्षण-क्षण आते हैं, वे कर्म हैं, पुद्गल हैं।

★★★

---

१. **अर्थ**—समतारूपी रसका प्याला जो पीता है वही उसके आनंदको जानता है। एक बार इसका नशा चढ़ गया, वह कभी नहीं उतरता, वह त्रिलोकके सुखका अनुभव करता है। अर्थात् तीनों लोकमें वही सबसे ज्यादा सुखी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. २४-१-३५

सबको समभावसे देखें। मेरा आत्मा है वैसा ही सबका आत्मा है, ऐसा समझे तो अभिमान नहीं होता। पर्यायदृष्टिका त्याग करें।

घर, पैसा, स्त्री-बच्चे कोई मेरे नहीं है। यह शरीर भी मेरा नहीं है। ऐसे तो कितने ही शरीर धारण किये और छोड़े, पर अभी तक अंत नहीं आया। धन, दौलत, अधिकार, सगे-संबंधी इस रूप मैं नहीं हूँ। मैं इन सबसे भिन्न आत्मा हूँ, ज्ञानीने देखा वैसा ज्ञानमय हूँ और वही मेरा धन-दौलत सर्वस्व है, ऐसी श्रद्धा कर लेवें।

यह शरीर विष्टा, मलमूत्र, हड्डी, माँस, खून, पीपसे भरी चमड़ेकी थैली है। अब मैं उसमें ममत्व नहीं करूँगा। मैं उससे भिन्न ज्ञानमय हूँ। सुंदर भोजन खाते हैं वह भी मलमूत्ररूप बन जाता है, वह इस देहके कारण ही है। ऐसे अशुचि देहको अपना स्वरूप न मानूँ, तथा उसे मेरा भी न मानूँ। जैसे किरायेके मकानका जितना लाभ लिया जा सके उतना लाभ उठाकर छोड़ दिया जाता है, वैसे ही इस देहको आत्मार्थके लिये प्रमादरहित होकर काममें लेकर अंतमें तो छोड़ देना है। मृत्युके बाद उसे जलाये, गाड़े या पानीमें डुबाये, इस प्रकार उसका नाश अवश्य है, अतः उसे मेरा न मानूँ, ऐसा भेदज्ञान कर लेना चाहिये।

ऐसी देह पाँच इन्द्रियोंके विषयभोगके लिये नहीं है, परंतु इस अमूल्य मनुष्यदेहसे तो आत्मार्थकी साधना कर लेनी चाहिये। अन्य भवमें यह संभव नहीं होगा। जिस मनुष्यदेहमें ज्ञानीका बोध प्राप्त किया जा सकता है वह अत्यंत अमूल्य है। थोड़ासा सत्संग हो तो वह उच्च गति प्राप्त करवाकर मोक्ष प्राप्त करवाता है। अतः सत्संगको क्षणभर भी न भूलें। एक गिरगिट* थोड़ेसे सत्संगसे तोता होकर राजकुमार बना था।

वेदना आये तब शरीरकी चिंता न करें कि मेरा क्या होगा? 'वेदना हो रही है, कोई सेवा नहीं करता' आदि आर्तध्यान न करें। इससे गाढ़ कर्मबंध होता है। परंतु उस समय 'पूर्व कर्मका उदय है जिससे देहमें वेदना होती है; पर मैं इससे भिन्न हूँ, जाननेवाला हूँ, वेदना आयी है उसका तो अंत आयेगा, मैं उस रूप नहीं हूँ, मेरा स्वरूप तो ज्ञानीने देखा वैसा है। अतः उन्हें याद करूँ और आत्माकी श्रद्धा रखूँ।'' यों समाधिमें रहे तो देहाध्यास छूटता है। किसीको दोष न दे, पर सहन करके स्मरणमें रहे और दृढ़ता रखे तो छूटता है।

★

* एक बार नारदजी वैकुंठमें गये, उस समय उन्होंने विष्णु भगवानसे पूछा कि सत्संगका माहात्म्य क्या है?

तब भगवानने कहा कि अमुक स्थान पर एक बटकी शाखा पर एक गिरगिट है उसे जाकर पूछो। नारदजी उस वृक्षके पास गये और गिरगिटको देखकर पूछा कि सत्संगका माहात्म्य क्या है? यह सुनते ही गिरगिट मर गया, तब नारदजीने जाकर भगवानसे सब घटना कह सुनाई।

फिर भगवानने कहा कि अमुक वृक्ष पर तोतेका बच्चा है उससे पूछो।

नारदजी उस वृक्षके पास गये और तोतेके बच्चेसे पूछा कि वह भी तुरत तड़फकर मर गया। नारदजीको लगा कि मेरे पूछनेसे सब मर जाते हैं यह पापका कारण है। अतः भगवानके पास जाकर कहा कि मुझे हत्या लगे ऐसा काम आप क्यों बताते हैं? भगवानने कहा कि तुम्हें सत्संगका माहात्म्य समझना है या नहीं? नारदजीने कहा कि समझना तो है। तब भगवानने कहा कि अमुक राजाके यहाँ कुंवरका जन्म हुआ है उसे जाकर पूछो—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवको जो वस्तु अच्छी नहीं लगती उसे त्यागनेको तत्पर होता है। पर अपनेको प्रिय हो वैसी वस्तु प्राप्त होने पर उसे नहीं छोड़ता। अतः वैसे त्यागका फल भी वैसा ही मिलता है। ऐसा त्याग करके वनमें रहे तो भी वासना नहीं छूटती और रागद्वेष चालू रहकर कर्मबंध कराते हैं। परंतु समकितीको घरमें रहते हुए भी प्राप्त भोगोंके प्रति वैराग्य है। वह अपनेको सबसे भिन्न मानता है, जिससे रागद्वेष नहीं करता और छूटता है।

सच्चा त्याग तो समकितीका ही है। फिर भी संसारमें लौकिक त्यागका प्रवाह चल रहा है, वह रुक नहीं सकता। अतः व्यवहारको होने दें और देखते रहें। आत्माका मार्ग लौकिक नहीं, अलौकिक है, अंतरमें है, मात्र बाह्य त्यागसे प्राप्त होनेवाला नहीं है।

★★★

ता. २७-१-३५

यह आश्रम कैसा है! यहाँ तो एकमात्र आत्माकी बात है। अपने आत्माको पहचानें, इसे ही देव मानें। मैं जो कहूँगा वह मानोगे? आत्मा ही सिद्ध है, वही देव है, उसीकी पूजा करनी है। अनंतकालसे जगतको अच्छा दिखानेके लिये परके लिये सब किया है, पर अपने आत्माके लिये कुछ नहीं किया। उसका प्रभाव नहीं बढ़ाया। ज्ञानीको तो प्रथम अपना आत्मा दिखायी देता है। वे जानते हैं कि मुझे घर, मनुष्य, सूर्य, चंद्र आदि जो कुछ दिखायी देता है वह मेरे आत्माके द्वारा दिखायी देता है। यह आत्मा अनंतगुणका स्वामी है, ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय है। परंतु परभावमें रहकर उसके गुणोंको भुला दिया है, जिससे आवरण आ गया है।

सभी धर्म करते हैं। अपने-अपने संप्रदायके अनुसार जप, तप, त्याग, दान आदि करते हैं। परंतु वहाँ आत्माका ज्ञान नहीं है। वह सब पुण्यबंध करवाकर वापस चार गतिमें ही भटकाता है। यहाँ जो करना है वह आत्मार्थके लिये करना है। अनंतकालसे अज्ञानमें भटका है, उस भ्रमणको मिटाकर सत्य सुख, अविनाशी सुख, स्वाधीन सुख प्राप्त करना है। यह समझ प्राप्त करना बहुत दुर्लभ है।

सच्ची समझ तो गहरा पैठकर विचारे और सत्पुरुषके कथनको पहले मान्य करे तभी संभव है। परंतु जीवकी भूल कहाँ होती है? सब लौकिक भावमें निकाल देता है, क्योंकि अनादिका ऐसा ही अभ्यास है।

आत्मा तो अलौकिक, अपूर्व, अरूपी वस्तु है। कोई एक बड़ा महात्मा कहलाता हो और ध्यानमें बैठा हो फिर भी ज्ञानी न हो, दूसरा सब करता हो फिर भी ज्ञानी हो। अतः बाहरका नहीं देखना है। ज्ञानी खाते, पीते, बैठते, सोते—सर्वत्र प्रथम आत्माको देखता है, फिर अन्यको देखता

नारदजी उस राजाके दरबारमें पहुँचे। राजाने सन्मान कर उनसे आनेका कारण पूछा। मुझे कुंवरजीसे मिलना है, ऐसा कहने पर उन्हें अंतःपुरमें ले गये। डरते डरते नारदजीने कुंवरसे पूछा कि सत्संगका माहात्म्य क्या है? कुंवरने कहा कि आप अभी भी नहीं समझे? गिरगिटके भवमें आपके दर्शन हुए और दो शब्द सुने उस पुण्यसे मैं तोता हुआ। वहाँ भी आपके दर्शन हुए जिससे मैं यहाँ राजकुमार हुआ हूँ। आप जैसे महात्माके सत्संगका यह फल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। आत्माके सिवाय किसीमें भी अपनापन नहीं मानता। उसे आत्माका निरंतर ध्यान या अनुभव होता है।

कृपालुदेव संसारमें थे किंतु आत्मज्ञानी थे, जिससे देवोंको भी पूज्य थे। जो देखना है वह ऊपरका रूप या आचरण नहीं, परंतु आत्माकी दशा, और जहाँ वह हो वहाँ फिर श्रद्धा ही करनी है।

इस आश्रममें कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रकी आज्ञा प्रवर्तित है। वे महान अद्‌भुत ज्ञानी है। इस पुण्यभूमिका माहात्म्य ही अलग है। यहाँ रहनेवाले जीव भी पुण्यशाली हैं। पर वह ऊपरसे नहीं दीख सकता, क्योंकि धन, पैसा नहीं है कि लाख-दो लाख दिखायी दें। यहाँ तो आत्माके भाव हैं। आत्माके भाव ही ऊँचीसे ऊँची दशा प्राप्त करा सकते हैं।

अनेक स्थानों पर भाईबंदी, मित्रता, पहचान कर प्रेमको बिखेर दिया है, उन सबसे छूटना पड़ेगा, क्योंकि यह तो वीतराग मार्ग है। व्यवहारमें सब करना पड़े, किन्तु अंतरंगसे सब तोड़ डालें और आत्मार्थके लिये ही जियें। समझ लें कि आज ही मृत्यु हो गयी, तो सब छोड़ना पड़ेगा न? ऐसे ही बिना मृत्युके भी ममत्व छोड़ दें।

धर्मका पालन करनेके लिये चाहे जैसे परिषह भी सहन करने चाहिये। खड़े ही खड़े जल जानेका प्रसंग आ जाय तो भी आत्मभाव न भूलें।

★★★

ता. २७-१-३५

सत्संगका माहात्म्य समझना चाहिये। अपने पास कोई मूल्यवान वस्तु हो, आभूषण हो तो मानता है कि मेरे पास यह है। उसे उसका माहात्म्य लगता है कि मेरे पास यह सुंदर, बहुमूल्य उपयोगी वस्तु है, और उसमें ममत्व करता है। ऐसे ही यह सत्संग आत्माके लिये परम हितकारी है, उसका माहात्म्य समझमें आये तो उसे गलेका हार माने और उसीका माहात्म्य सबसे अधिक लगे, तब दशा प्रकट होती है। मोक्षकी अभिलाषा जाग्रत होने पर ऐसे भाव प्रकट होते हैं। मोक्ष जाना हो, आत्माको दुःखसे मुक्तकर अनंत सुख प्राप्त करना हो, सद्‌गति प्राप्त करनी हो तो सत्संगकी अवश्य इच्छा करे और उसका सन्मान करे।

★★★

ता. २९-१-३५

क्रोध करना तो अपने कर्मशत्रुके प्रति करना। मान सत्पुरुषकी भक्तिके परिणाममें करना। माया परदुःख-निवारणमें करनी। लोभ क्षमा धारण करनेमें करना। राग सत्पुरुषके प्रति या देव-गुरु-धर्मके प्रति करना। द्वेष, अरति विषयोंके प्रति करना। विषयविकारकी बुद्धिके प्रति द्वेषभाव करना। सर्व जीवोंके प्रति समभाव रखनेमें मोह करना। यों इन दोषोंको सुलटा कर गुणोंमें बदल डालें।

समकिती जीवको आत्माके सिवाय अन्य सब पर है, अपनेसे भिन्न है, देह भी अपनी नहीं है, अतः जैसे परायी वस्तु जलती हो तो हमें कोई दुःख नहीं होता, वैसे ही देहका दुःख भी स्वयंको नहीं लगता। उस दुःखके समय उनमें आत्मवीर्य अधिक स्फुरित होता है, जिससे वह दुःख लाभका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण होता है। भेदज्ञानके प्रभावसे दुःखको समभावपूर्वक भोगते हैं, जिससे बँधे हुए कर्मोंसे छूटते हैं और निर्जरा होती है। जो विषमभाव लाते हैं, खेद, मोह और देहबुद्धिमें रहते हैं वे नये कर्म बाँधकर असाता उत्पन्न करते हैं।

★
★★

ता. ३०-१-३५

सारा संसार सुख-दुःखकी कल्पनामें पड़ा है। अनंतकालका परिभ्रमण चालू है। इसमें यह मार्ग हाथ लगना सामान्य बात नहीं है। जिसका महाभाग्य हो उसे ही मिलता है! तब दूसरोंकी पंचायतमें पड़े, दूसरोंको इस धर्मका लाभ दिलानेकी चिंता करे तो अपना भी गुमा बैठे। कूएमें गिरे हुएके हाथमें रस्सी आ जाये, उसे वह जैसे पकड़े रखता है, वैसे ही पकड़ कर लें कि मेरा आत्मा ही सच्चा है। मुझे अन्य किसीसे कोई संबंध नहीं। ऐसे भोगादि अनंतकाल तक भोगे पर तृष्णा, इच्छा घटी नहीं। अतः दूसरोंकी चिंता न कर मुझे जो मिला है वह मेरे लिये वृथा न हो जाय, इसकी अखंड चिंता रखनी चाहिये। यह अच्छा, यह बुरा यों इष्ट-अनिष्टभाव किसी भी जगह नहीं करना चाहिये। उसके बदले स्वयं अनंत दोषोंसे भरा हुआ है ऐसा मानना चाहिये। हे भगवान! मेरे जैसा कोई पापी नहीं, यों अज्ञान दूर करनेके लिये सोचना चाहिये।

★
★★

ता. १-२-३५

ज्ञानीका स्वरूप कैसा है? बाहर दिखायी देता है वैसा नहीं है। परंतु उस स्वरूपकी पहचान तो आत्माको पहचाने तभी होती है। आत्मा ही आत्माको पहचानता है। ज्ञानी कैसे हैं? वे सब कुछ करते हैं, पर उनके वज्रकी भींत पड़ी है। वे चेतन और जड़के बीच स्पष्ट भेद रखते हैं। वे कभी भूलमें नहीं होते, पर अज्ञानीका तो कुछ भी सच्चा नहीं है। ज्ञानीकी शरणमें कैसे जायें? सब छोड़े तब—सिर काटे वह माल निकाले। इतना कर सके तो सरल है, सुगम मार्ग है।

ज्ञानीने आत्माको देखा है। वे यह बात गुप्त रखते हैं। योग्य जीव हो तो बुलाकर भी बता देते हैं।

★

शामको

श्रेणिक राजा शिकार पर गये थे। वहाँ मुनिका समागम होने से ज्ञान प्राप्त हुआ। गजसुकुमारको एक हजार भव जितने कर्म थे वे भगवान नेमिनाथके समागममें प्राप्त आज्ञाकी आराधना करनेसे निर्जरा होकर नाशको प्राप्त हुए और तत्काल मोक्ष गये। अतः मार्ग प्राप्त होनेमें तो जीवकी योग्यता, पुरुषार्थ मुख्य है। वह हो तो पूर्व पुण्यके उदयसे ज्ञानी तो ज्ञान देनेके लिये तैयार है। तेरी देरमें देर है! परंतु पात्रता, भाजनके बिना क्या दें? अपना पहलेसे ग्रहण किया हुआ, माना हुआ जो मिथ्यात्व है उसे छोड़ दे और मैं कुछ भी नहीं जानता ऐसा समझे तो बोधका यथार्थ परिणमन होता है, किन्तु मलिन पात्रमें विपरीत परिणमन होता है।

आत्मा तो सबके पास है परंतु वह बाहर देख रहा है। मैं बनिया, ब्राह्मण, स्त्री आदि हूँ, और धन आदि जो दिखायी देते हैं वे मेरे हैं ऐसा मानकर परिणत हो रहा है। जब अंतरात्मा बने तब बाह्य वस्तुओंसे अपनेको भिन्न माने और देखे। कृपालुदेवने हमें कहा था कि बाहर जो दीखता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ भी आत्मा ही देखें। अर्थात् घर, शरीर, आकाश आदि जो दिखाई देते हैं वे आत्माके ज्ञान गुणके द्वारा दिखाई देते हैं। यदि आत्मा न हो तो हाथ नीचेसे ऊपर नहीं हो सकता। सारी सत्ता आत्माकी ही है। आत्मा तो है ही, पर जो नाशवान है उसमें मैं और मेरापन करता है, उसे छोड़ दें। और मेरा स्वरूप ज्ञानीने देखा वैसा है ऐसी श्रद्धा करें।

★★★

ता. २-२-३५

मुमुक्षुने पहले कुछ ग्रहण कर रखा हो, फिर सत्पुरुष कहें कि यों नहीं पर यों मान। परंतु वह अपना प्रथम माना हुआ—आग्रह न छोड़ें और सत्पुरुषका कहना भी न मानें और कहें कि वे तो ऐसे ही कहते हैं; मैं तो उन्हें ही मानूँगा और उनकी ही भक्ति करूँगा। ऐसा स्वयं भी करे और अन्यको भी वैसा करनेको कहे।

एक महात्मा थे। उनके पास कोई भोजन लेकर आया। महात्माने कहा कि कुत्तोंको डाल दें। उसने कहा कि पहले आप भोजन करिये। तब महात्माने कहा कि चला जा, तेरा काम नहीं है। यों जो आज्ञा आराधनके बदले अपना सयानापन लगाये वह काम नहीं आता।

गौतमस्वामीने पंद्रह सौ तापसोंको ज्ञान प्राप्त करवाया तब वे गौतमस्वामीको गुरु मानने लगे, पर गौतमस्वामी उन्हें महावीर प्रभुके पास ले गये और उन्हें ही माननेको कहा। इस प्रकार जो सत्पुरुष उपकारी हैं, उनके कहनेका आशय समझना चाहिये और उनकी आज्ञाका आराधन करना चाहिये, क्योंकि इस जीवकी समझ अल्प है। अतः अपनी मतिकल्पनाको न दौड़ाकर जो सत्पुरुष सच्चे हैं और जिन पर श्रद्धा है वे कहें वैसा मानना चाहिये और वे कहें वैसा करना चाहिये।

वेदना आने पर घबराना नहीं चाहिये। 'इससे तो देह छूट जाय तो अच्छा' यों आकुल-व्याकुल नहीं होना चाहिये। दुःखमें समता रखकर, सद्गुरु पर श्रद्धा रखकर आत्माका चिंतन दृढ़ करनेका पुरुषार्थ करे तो वैसे हो सकता है। केवल झूठी कल्पनाएँ करनेसे कुछ नहीं होगा। अनेक भवोंमें आधि, व्याधि, उपाधि और जन्म-जरा-मरण इस जीवने भोगे हैं। उन सबसे छूटनेका उपाय समता—समभाव है और ज्ञानीपुरुषकी आज्ञाका आराधन है। जिसे छूटनेकी कामना मुख्य हो, वह दुःखमें समताको नहीं भूलता। मेरा आत्मा शुद्ध ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप है, उसे ज्ञानीने देखा है; वैसा ही आत्मा सब जीवोंका है। पर्याय विनाशी है, द्रव्य अविनाशी है। अतः द्रव्यको लक्ष्यमें रखकर समता धारण करनी चाहिये।

★★★

ता. २-२-३५

बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा—इन तीन प्रकारसे आत्मा परिणमन करता है। आत्मा कहाँ रहता है? निश्चयनयसे वह आत्मामें ही अथवा निर्वाणमें रहता है। व्यवहारसे वह शरीरी कहलाता है, पर निश्चयनयसे वह अशरीरी है, असंग है।

उस आत्माको स्वयंने जाना नहीं है। ज्ञानी द्वारा समझमें आने पर उस रूपमें परिणमन हो सकता है, जैसे दूधमें जामन पड़े तब दही होता है और जम जाता है, वैसे ही जब ज्ञानी ज्ञानरूपी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंजन लगायें तब मुमुक्षुको अपना भान जाग्रत होता है। ज्ञानी जिस रूपमें हैं, उस रूपमें पहचाना जाय तब स्वयं भी तद्रूप बनता है। परंतु उसके लिये धातुमिलापकी जरूरत है, अर्थात् पूर्ण प्रेमसे, एक रससे उसे ही भजे और यथातथ्य देखे तभी काम बन सकता है।

★★★

ता. ३-२-३५

इस संसारपरिभ्रमणका कारण क्या? राग, द्वेष और मोह। जीव इतना इनके वशीभूत हो गया है कि अपना स्वरूप ही भूल गया है। अभी भी वह मामा, काका, भाई इत्यादि मानता रहता है और इस जीवनको ही महत्त्व दे रहा है। पर ऐसे तो कई भव किये और दुःख पाया, अतः इससे छूटनेके भाव जागने चाहिये।

दृष्टि डालते रागद्वेष होते ही रहते हैं। उसे कैसे रोके? मैंने खाया, पिया, यह किया, वह किया ऐसा मानता है, पर उसे वहाँसे पीछे हटनेकी आवश्यकता है। आत्माकी समझ प्राप्त करनेके लिये तो इन सबसे निवृत्त होना पड़ेगा, सब छोड़ना पड़ेगा, कुछ मेरा नहीं है ऐसा मानना पड़ेगा। कर्मके उदयमें मोहादि होते हैं, किंतु उस समय उपयोगको दृढ़ करना चाहिये कि यह मेरा स्वरूप नहीं है। यही पुरुषार्थ करना है। उसके बदले मानो कुछ करनेका ही न हो ऐसे भ्रममें रहता है वह योग्य नहीं है।

★★★

ता. ४-२-३५

जीवको अभी धक्का नहीं लगा है। जीवको जैसी दृढ़ता हुई हो उसके प्रमाणमें बल कर सकता है, अन्यथा उदयकर्म तो किसीको छूटने नहीं देते। उसमें तो अपना बल ही काम लगता है। परमकृपालुदेवके वचन ही जीवको संसारमें धक्का लगा सकते हैं, परन्तु वे लगने चाहिये। विचारमूढ जीव जो अपनी मान्यतानुसार परमार्थ कर रहे हैं, उन्हें ज्ञानीके वचनसे धक्का लगता है और विचार जाग्रत होते हैं। फिर सत्य समझमें आने पर पूर्व (आग्रह)का त्याग कर ज्ञानीका कथन ग्रहण करते हैं।

★★★

ता. ५-२-३५

एक बार भक्तिके पाठ बोले तो दूसरी बार नहीं बोल सकते? हम तो बोल चुके हैं, ऐसा माननेमें क्या लाभ? यह तो कितनी ही बार बोले तो भी लाभ ही है। खानेका प्रसाद मिले तो दिखायी देता है कि मुझे दिया। पर यहाँ भावना करनेसे जो मिलता है वह बहुत अधिक है, फिर भी दिखायी नहीं देता। सारा जगत धन, पैसा, लेन-देन करता है, पुद्गलकी मायामें बह रहा है। उसमें नहीं बहना चाहिये। ज्ञानीने कहा है कि आत्मा तेरा है, वह अजर, अमर, अविनाशी, सबसे भिन्न है; उसे राग, द्वेष, मोह नहीं है ऐसा निश्चयनयसे मान। तब क्या नहीं मानना? उसे याद नहीं करना ? एकमात्र यही सच है, शेष सब मिथ्या है ऐसा माननेको कहा तो मान लेना चाहिये तथा भूलना नहीं चाहिये। आत्माको बंध या मोक्ष कुछ नहीं है इस निश्चयनयको ज्ञानीने जाना है, अतः उसे मान्य करें और उसके सुखको ही सच्चा मानकर उसे याद करें। देहको अपनी मानता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनेको तद्रूप मानता है, जिससे स्त्री, पुरुष, वृद्ध, युवान, काला, गोरारूप देखता है और रागद्वेष करता है। स्वयंने आत्माको नहीं देखा है, परंतु ज्ञानीने निश्चयनयसे कहा वैसा ही है। इसे ही याद करें और मोक्षकी, सिद्धिकी भावना करें। सबसे छूटनेकी भावना करें। ज्ञानी कृपालुदेवकी श्रद्धा कर लें। इस कलियुगमें तारणहार एकमात्र उन्हींकी शरण है, अतः दृढ़तासे पकड़ लें। तिलक लग जाय तो फिर चिंता नहीं। समकित अर्थात् आत्माकी श्रद्धा इतनी दृढ़ करनी चाहिये कि कभी विचलित न हो। मैं आत्मा ही हूँ, यह देहादि कुछ भी मेरा नहीं है, मैं सर्व द्रव्यसे भिन्न हूँ, ऐसी दृढ़ता प्राप्त करनेके लिये सदैव उसी विचारमें और ज्ञानीके स्मरणमें रहना चाहिये।

संसारमें धन, अधिकार, भोगविलास, घूमना-फिरना सुख लगता है पर यह सच्चा सुख नहीं है, आत्माको बंधनमें डालनेवाला है। अपने स्वरूपको भूलाकर परमें रागद्वेष कराकर वह बंध कराता है। जिसे छूटना है, उसके लिये यह मार्ग नहीं है। कर्मोदय होने पर भी उसके प्रति उदासीन रहना तथा आत्माके स्वरूपका विचार करना वही सच्चा सुख है, इस श्रद्धाको न भूलें। यह सब तो विनाशी है। सुखके बाद दुःख, रोग, मृत्यु आदि आयेंगे ही। अतः इसे सच्चा सुख मानना मिथ्यात्व है। समकिती तो आत्माको ही सुखरूप मानता है।

सम्यग्दर्शन आत्मा ही है। एकमात्र उसे ही प्राप्त कर लें। एक आत्मा ही सच्चा है। इसे ही मानें। और जो सत्पुरुष उसे प्राप्त करावें उन्हें ही मानें, अन्यको नहीं।

ब्रह्मचर्यसे पुण्यबंध होता है। अन्य क्रियाके समान इससे भी शुभबंधके द्वारा फलप्राप्ति होती है। पर हमें वह फल नहीं चाहिये। हमें तो मात्र छूटनेके लिये ही सब कुछ करना है। इसका वास्तविक अर्थ तो ब्रह्म अर्थात् आत्मा, उसमें चर्या अर्थात् रहना, और उसे ही ब्रह्मचर्य मानना चाहिये। इसीकी तीव्र इच्छा करें, आत्मामें निवासकी। आत्माकी ओर ही चित्त रखें। कोई मेरा नहीं है। तू मर जायेगा। व्याधि आयेगी उसे स्वयं ही भोगेगा, ऐसा सोचकर उत्कृष्ट भाव, आत्मभाव स्वीकार करनेका पुरुषार्थ करें। उसीका चिंतन मनन करें।

जीवको अपना ही विचार नहीं आता। अन्य सब विचार आते हैं, परंतु आत्मा संबंधी विचार नहीं करता। समकिती तो बाहरसे सब करते हैं, पर उन्हें आत्माका ही उपयोग रहता है, जिससे वे बँधते नहीं। यह आत्मज्ञान ही मुनित्व है। उनका आत्मज्ञान—उपयोग जाग्रत है अतः उनको बंध नहीं है। मात्र पूर्वबद्ध उदयमें आता है जो फल देकर छूट जाता है। क्योंकि वे उनसे अपनेको भिन्न जानते हैं, देखते हैं। पर अज्ञानी जो कुछ करता है उसमें अपनेको तद्रूप मानता है। ज्ञानीके भाव-परिणाम आत्मामें है, आत्माके लिये है। अज्ञानीके भाव-परिणाम परपदार्थमें रहते हैं। जैसे परिणाम होते हैं वैसा ही बंध होता है। ज्ञानी छूटते हैं, अज्ञानी बँधता है।

भव्य और अभव्यसे क्या तात्पर्य है? यह किसी किसीको ही समझमें आता है। जिसके भाव पुण्य और पाप दोनों प्रकारके बंधसे छूटनेके हैं वह प्राणी छूटता है, उसे ही भव्य समझना चाहिये, क्योंकि उसे छूटनेका मार्ग हाथ लग गया है जिससे वह मुक्तिकी ओर प्रयाण करता है, मुक्त होनेवाला है, ऐसा कहा जा सकता है।

एक पंद्रह रुपये वेतन पानेवाला सिपाही सब राजाओंको कँपा देनेवाला महान नेपोलियन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्राट बना। अपनी पहलेकी स्थिति और बादकी महान स्थितिमें वह तो एक ही था। जैसे एक बालक हो, फिर बड़ा हो, फिर वृद्ध हो, यों अवस्था बदलती है, पर वहाँ आत्मा तो वही है। इसी प्रकार जीव समकिती अर्थात् दृढ़ निश्चयवाला बनता है और आत्मजागृति प्राप्त करता है। फिर वह ज्ञान निरंतर बढ़ता है और पन्द्रह भवमें तो वह अवश्य मोक्ष जाता है। ऐसा बननेके लिये पहले विचार, ध्यान चाहिये। पर वहाँ प्रमाद बाधक बनता है। अन्य परिणाममें जितनी तादात्म्यवृत्ति है उतना ही मोक्ष जीवसे दूर है। जब बोध द्वारा भावको बदलकर आत्महितमें लगाये तब सद्विचार जाग्रत होते हैं।

पासमें पैसा हो तो मेवा मिष्टान्न खरीदे जा सकते हैं। दुकानमें तो बहुत माल भरा होता है पर वह मुफ्तमें तो कैसे मिलेगा? इसी प्रकार ज्ञानीके पास भंडार भरा है, पर जीवके भाव जाग्रत होने चाहिये कि मुझे तो संसारमें किसीके साथ कुछ संबंध नहीं है, किसी पदार्थकी इच्छा नहीं है, देह रहे या जाये, चाहे जो हो वह मुझे नहीं होता; पर मेरा आत्मा है उसे ही मुझे प्राप्त करना है, उसे अनंत दुःखसे छुड़ाना है।

★★★

ता. ६-२-३५

प्रभुश्री—नमस्कार किसे करते हो?

१. मुमुक्षु—आत्माको नमस्कार करना है।

२. मुमुक्षु—मैंने आत्माको नहीं जाना है, सत्पुरुषने जाना है इसलिये उनकी विनय करनेके लिये नमस्कार करना चाहिये।

प्रभुश्री—विनय तो अवश्य करनी चाहिये। इसके द्वारा ही धर्मकी प्राप्ति है। अतः सबकी विनय करनी चाहिये। इसीके लिये नमस्कार किया जाता है। पर इसमें समझना यह है कि मेरा आत्मा सिद्धके समान है, उसे याद करके, आगे करके नमस्कार करें। फिर चाहे जिसे नमन करें, परंतु उपयोग अपने शुद्ध आत्माको याद करनेकी ओर होना चाहिये। आत्मा द्वारा आत्माको नमस्कार करना चाहिये। पहले अपने आत्माको याद कर, फिर नमस्कार करें। सिद्ध स्वरूप मेरे आत्माको मैंने जाना नहीं, पर ज्ञानीने कहा वह मुझे मान्य है, ऐसा अवश्य स्मरण करना चाहिये। नमस्कार विधि अपने आत्मस्वरूपको याद करनेके लिये है।

★★★

ता. ६-२-३५

इस संसारमें प्रेम महान वस्तु है। पर वह शुद्ध आत्मा द्वारा आत्माके लिये हो वही उत्तम है। ऐसा प्रेम ज्ञानीको अपने आत्माके प्रति होता है। इसलिये वे आत्माका ध्यान छोड़कर बाहर नहीं जाते। सब पदार्थोंको जाननेके पहले वे आत्माको याद करते हैं। प्रथम आत्मदर्शन, फिर उसके द्वारा पदार्थ देखनेका उनका क्रम होता है। परंतु वह तो यथार्थ दर्शनके प्राप्त होने पर ही संभव है। ज्ञानीको आत्मदर्शन पहले होता है, आगे होता है। इसीलिये वे किसीमें तल्लीन नहीं होते और बँधते नहीं। उनको आत्मा स्पष्ट भिन्न भास्यमान होता है। नींदमें भी उसे नहीं भूलते। ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्ज्ञान उन्हें है और उस ज्ञान सहित चारित्र है। ऐसे ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप सत्पुरुष हैं। अतः उन्हें पहचान कर नमस्कार करना है। अपना आत्मा भी वैसा ही ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप है।

★★★

ता. ७-२-३५

पात्रता चाहिये। बीज हो, उगने योग्य हो, फिर उसे मिट्टी-पानीका संयोग मिले तो अंकुर निकलता है और वृक्ष होता है। दियासलाईको डब्बी पर घिसा जाय तो सुलगती है। कहाँसे घिसना यह पता न हो और उलटी घिसे तो कैसे सुलगे? इसी प्रकार ज्ञानीकी आराधना जैसे करनी चाहिये वैसे ही आज्ञाको समझकर करे तो आत्मज्ञान प्रकट होता है। किन्तु बिना समझे अपनी मान्यतानुसार करता रहे तो फल प्राप्त नहीं होता। बंदूकमें सामग्री मिलने पर धड़ाका होता है। सत्पुरुषके योगसे पात्रता आने पर ही मान्यता और परिणाम होते हैं।

मुमुक्षु–मान्यता और परिणाममें क्या अंतर है?

प्रभुश्री–'साकर, साकर' कहनेसे मुँह मीठा होता है? 'रवि, रवि' करनेसे रातका अंधेरा नष्ट होता है? इसी प्रकार परिणाम है सो अंतरंग अनुभव है, मान्यतामें अनुभव नहीं है। परंतु यथार्थ मान्यता होनेपर उस अनुभवको प्रकट करनेका पुरुषार्थ होता है। अतः वह परिणामका निमित्त हैं।

परिणाम होनेमें बाधक क्या है? ध्यानमें बैठे और एकाग्रता होनेको हो तब संकल्प-विकल्प बाधक होते ही हैं। एक ओरसे निकालो तो दूसरी ओरसे आ जाते हैं, रुकते ही नहीं। लकड़ी लेकर बैठे और कुत्तोंको भगाये फिर भी वापस आ जाते हैं, वैसा ही होता है। पर यदि द्वार बंध कर दिये जायें तो नहीं आते।

मुमुक्षु–साहब, यहाँ तो द्वार ही नहीं है फिर वे कैसे रुकें? नहीं रुकेंगे, चले ही आयेंगे।

प्रभुश्री–ठीक है, द्वार नहीं है; पर आत्माका उपयोग बाहर जाता है उसे वहाँसे हटाकर आत्मामें जोड़े तो, एक समयमें दो उपयोग नहीं होते इससे बाहर जाते रुक जाय। यह उपयोग मन है, उसे आत्मामें लगाना है, बाहरसे हटा लेना है। *'मनडुं किम हि न बाझे'–इस स्तवनमें कहा है कि यह बहुत कठिन है, घोड़े जैसा है। उसे ज्ञानियोंने ज्ञानरूपी लगामसे वशमें किया है। अतः आत्मज्ञान प्रकट होने पर ही मन वशमें होता है। जितनी मात्रामें आत्मज्ञान होता है, उतनी ही मात्रामें उपयोग बाहरसे भीतर आता है। सभी योगियोंको यही साधना करनी होती है। सब तप, जप, क्रिया इसीलिये हैं। जीवसे शिव इसी प्रकार बनता है। जड़को ऐसा नहीं होता। परंतु जीव यदि उपयोग लगाये तो अपनी अनंत सिद्धियोंको प्रकट कर कृतकृत्य हो सकता है। यही साधना है। शेष तो सर्वत्र पुद्गल, पुद्गल और पुद्गलकी ही दृष्टि है! उससे वापस लौटकर यहाँ (आत्मामें) आना है। यह महान गूढ़ बात है।

★★★

ता. ७-२-३५

देव-गुरुकी भक्तिसे पुण्य प्राप्त होता है। पर यदि वह आत्मार्थके लिये हो तो उत्तम है, अन्यथा मिथ्यात्व सहित पुण्य तो भ्रमण कराता है। अतः यदि समकित प्राप्त कर लिया जाय तो

* मन कैसे भी नहीं मानता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्य और पाप दोनों सुलटे पड़ते हैं, छूटनेके लिये हो जाते हैं। देव-गुरुकी अवज्ञा पाप कराती है, नरक-तिर्यंच गति दिलाती है। पुण्य और पाप दोनों हो तो मनुष्यगति होती है। यदि जीव पुण्य और पापमेंसे एकका भी बंध नहीं करता तो उसका मोक्ष होता है। अतः पुण्य और पाप दोनोंको छोड़ना चाहिये और प्रीतिको आत्मामें लगानेके लिये सत्पुरुषमें जोड़ना चाहिये।

स्वभावमें रहनेसे मोक्ष होता है और विभावरूप पुण्य-पापसे संसारमें सुख दुःखकी प्राप्ति होती है। अतः स्वभावको प्राप्त करनेके लिये रागद्वेषको मूलसे निकाल देना चाहिये।

पुण्यबंधसे सुख-सामग्री प्राप्त होती है। फिर उसमें मोह होता है, मोहसे मद होता है और मदसे पापबंध होकर नीच गतिमें जाता है और अनंतकाल भ्रमण करता है। ऐसे पुण्यकी इच्छा करना समकितीका लक्षण नहीं है।

अंतरंग त्याग ही वास्तविक त्याग है। अकेला बाह्य त्याग मोक्षके लिये नहीं होता।

★★★

ता. ११-२-३५

कृपालुदेवकी शक्ति अनंत थी और हम उन्हें पकड़ बैठे थे। परंतु उन्होंने कहा कि स्वयं ही बल करना पड़ेगा। अन्यके आधारसे कुछ नहीं होगा। अपना आत्मा ही आधाररूप है। वही सर्व सुख-दुःख प्राप्त करानेवाला है। अन्य पर आधार रखकर बैठे रहनेसे कुछ नहीं होगा। 'आप समान बल नहीं, मेघ समान जल नहीं।' 'जो इच्छा परमार्थ तो करो सत्य पुरुषार्थ' ऐसा कहा गया है वह बहुत समझने योग्य है। बल, पुरुषार्थ, विचार, समझपूर्वक स्वयं ही स्वयंको छुड़वाना है। संसारके सुख भी, आत्मा कुछ पुरुषार्थ करता है तब प्राप्त होते हैं, किसी अन्यके बल पर नहीं मिलते। ऐसे ही मोक्षके लिये भी स्वयं पुरुषार्थ करना है। कृपालुदेवने स्वयं कैसा पुरुषार्थ किया था! अन्य ज्ञानियोंने भी क्या क्या किया था?

जैसे उन्होंने किया वैसे देहाध्यास छोड़ो। मन, वचन, कायाके योगसे निवृत्त हो जाओ। संकल्प-विकल्प रहित बनो। राग-द्वेष, इष्ट-अनिष्ट छोड़ो।

★★★

ता. १५-२-३५

ज्ञानी मिले और उपदेश भी सुना। फिर भी भटकना पड़ा, क्योंकि वह उपदेश अपने आत्मामें यथार्थ परिणत नहीं हुआ। अर्थात् प्रतिबोध होना चाहिये वह नहीं हुआ। परिणमन हो तब बोध प्राप्त हुआ कहा जा सकता है। यथार्थ ज्ञानीके मिलने पर जीव सन्मुख हो तब यह संभव होता है और मोक्षमार्गमें प्रवेश होता है।

पहले हम संसारमें थे तब उपन्यास, रास आदि पढ़ते थे। फिर दीक्षा ली तब राजाओं आदिकी धार्मिक कथाएँ पढ़नेमें आनंद आता था। कृपालुदेवने उन्हें पढ़नेसे भी मना कर दिया और मात्र आत्मा संबंधी एवं तत्त्व संबंधी पढ़नेको कहा। पहले उसमें रस नहीं आया, पर धीरे धीरे वह समझमें आने पर रस आने लगा। अब तो निरंतर वही अच्छा लगता है, और अन्य सब करते हुए भी आत्मा किसी अपूर्व आनंदमें रमण करता है। यह तो अनुभवसे ही समझमें आता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी जीव अपनी-अपनी समझके अनुसार जो माना है उसे ही पकड़ बैठे हैं। श्वेतांबर, दिगंबर, रामानंदी, ढुंढिया इत्यादि सबको अपने धर्मका आग्रह होता है और उसे ही सत् मानते हैं। परंतु सत्की प्राप्ति तो किसी अपूर्व पुण्यके उदयसे होती है। वह महा दुर्लभ है। वह प्राप्त होने पर जीव अन्य सब छोड़कर एक उसे ही जानने-समझनेका प्रयत्न करता है। इसके लिये सत्संगका दीर्घकाल तक आराधन करे तब कुछ समझमें आता है और समझमें आने पर ही दृढ़ता अथवा सत् श्रद्धा होती है। पर ज्ञानीको यथार्थ पहचाननेसे ही यह समझ आती है। तब जीव समझ पाता है कि गृह कुटुंब मेरा नहीं है। मेरा तो आत्मा है। अतः व्यवहार करूँ किंतु उससे आंतरिक भिन्नता रखूँ। यों जीवको मोक्षकी भावना, छूटनेकी भावना जाग्रत होती है। यही लय निरंतर रहती है जिससे उसे बंध नहीं होता। 'सम्मद्दिट्ठी न करेइ पावं' यों छूटनेकी इच्छावालेको कर्मबंध नहीं होता।

★★★

ता. १०-२-३५

पाँच इन्द्रिय तकके जो जीव हैं तथा अंड़ेमें या गर्भमें हैं, उनमें भी आत्मा तो है ही। जैसे अंड़ेका आत्मा या मूर्छित अवस्थाका आत्मा है, वैसे ही एकेन्द्रियका आत्मा जो वृक्ष-पहाड़ आदिमें है वह वैसी अवस्थामें है, पर है तो अवश्य ही। यह जीव भी एकेन्द्रियसे लेकर सभी भव—नारकी, युगलिया और देवोंके भी—कर चुका है, पर उसे अपना स्वरूप नहीं मानना चाहिये। आत्मा देहसे भिन्न है। अतः पुद्गलरूप जो देह, इन्द्रियाँ और इन्द्रियोंसे दिखायी देनेवाले विषय हैं उनमें अहंभाव या ममत्वभाव नहीं करना चाहिये। रागद्वेष और मोहका सर्वथा त्याग करें। इन्द्रिय और देहके द्वारा जो भोगा जाये उसे मैंने भोगा ऐसा न मानें। उन सबको भूल जाना चाहिये और आत्माके सिवाय अन्य किसीकी इच्छा नहीं करनी चाहिये।

आत्मा तो है, पर उसे प्राप्त कैसे किया जाय? जिसने उसे जाना है, उसकी शरणमें जा। यही सिद्धांत अपना मित्र, बंधु या जो कहें वह है और ऐसा करनेसे ही आत्माका हित है।

★★★

ता. २४-२-३५

विषय-कषायोंको छोड़ें। क्रोध, मान, माया, लोभ न करें। उदयमें आये हुए विषयोंको भोगना पड़े—खाना-पीना पड़े—फिर भी उससे आत्मा भिन्न है ऐसा उपयोग रखें और त्यागका भाव रखें। जिसका त्याग किया है उसकी इच्छा कभी न करें। यों भावपूर्वक त्याग रखें। कोई कहे कि मांस खा, तो क्या खायेगा? ऐसे ही जिसका त्याग किया हो उस पर अभाव ही रखें। उस ओर वृत्ति जाये ही नहीं ऐसा करें।

मुमुक्षु—देह और आत्मा भिन्न हैं तो वे एक किस प्रकार हुए? और अब वे अलग कैसे हों?

प्रभुश्री—भाव और परिणामसे एकरूप हुए लगते हैं। अब विचार करें, उन्हें अलग मानें और उसमें श्रद्धा करें तो भेदज्ञान होता है। कृपालुदेवने तो स्पष्ट समझाया है। छह पदका पत्र और आत्मसिद्धि अति गहन हैं। वे पात्र जीवको ही देते थे। पर अब तो मौखिक कर सामान्य बना दिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। याद होनेका अभिमान करता है और अर्थका विचार नहीं करता, ऐसा हो गया है। उसमें तो कहा है—

"शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहीअे केटलुं? कर विचार तो पाम."

निधान है! उसे खोलनेके लिये उपयोग, विचार वहाँ ले जाना है। परसे, बाह्यसे उपयोगको खींचकर आत्मामें जोड़ना है। वही सच्चा पुरुषार्थ है।

भक्ति दो प्रकारकी है अभेद और भेद। अभेदरूप अर्थात् भक्तिमें परमात्मासे अभिन्नता, जिसकी भक्ति करते हैं उनका और अपना स्वरूप एक है, ऐसी पहचान कर, एक होकर आत्मस्वरूप हो जाये वही सहजात्मस्वरूप है। वही सच्ची भक्ति है। मंत्रका अर्थ यह है कि हे सद्गुरु! आप मेरे सहजात्मस्वरूप हैं। आपमें और मुझमें भिन्नता, भेद नहीं है। यों अभेदरूपसे भक्तिमय रहना चाहिये।

★★

ता. २५-२-३५

जिसे छूटनेकी कामना होती है उसे ही आत्मभावना जागती है। जब तक वासना आत्माके सिवाय अन्यत्र है, तब तक मोक्षकी भावना नहीं जागती। परसे वृत्ति हटे तब स्वमें आती है। फिर उसे मुक्त करनेके साधन भक्ति, विचार, श्रद्धा परिणत होते हैं। अन्यथा मात्र दिखावा ही होता है। आत्मसुखके समझमें आने पर, परसे निवृत्त होकर आत्माके लिये पुरुषार्थ करता है। अतः वासनाका त्याग करें।

आत्मा और कर्म भिन्न हैं। व्याधि हो, उसे भोगना पडे, पर वह मैं नहीं हूँ। आत्मा इससे भिन्न है, वह देहरूप नहीं है। देहरूपी घरमें है, चौखट पर खड़ा है पर उससे भिन्न है। दुःख, व्याधि, साता मेरा स्वरूप नहीं। यह जड़ है और जानेवाला है, साथ रहनेवाला नहीं है। उसे निजरूप न माने तो कर्मबंध नहीं होता। यहाँ आत्मजागृतिकी, बोधबलकी आवश्यकता है।

आत्मा इन्द्रियरूप नहीं है, किन्तु आत्माको प्रत्येक इन्द्रियका ज्ञान होता है। आत्मा तो ज्ञानरूप ही है। आँख, कान आदि जो दिखायी देता है उसे आत्मा न मानें। उसे पुद्गल मानें और जो पुद्गल है उसमें रागद्वेष कर बँधना नहीं चाहिये।

★★

ता. २६-२-३५

मुमुक्षु—अनंतकालसे अनेक प्रकारके पाप दोष तो किये हैं, उन्हें नष्ट करनेका मुख्य उपाय क्या है?

प्रभुश्री—भक्ति, स्मरण, पश्चात्तापके भाव करे तो सर्व पापका निवारण होता है। उपवास आदि तप तो किसीसे नहीं भी हो सकते। कदाचित् कष्टदायक भी होते हैं। परंतु स्मरण-भक्ति प्रेमपूर्वक करें और भगवानका रटन करे, सद्गुरु-मंत्रमें रहे तो कोटिकर्म क्षय हो जाते हैं। ऐसी इस भक्तिकी महिमा है।

विकार आदि जो सत्तामें हैं वे उदयमें आये तब स्मरणमें लग जायें और इस प्रकार उनका क्षय करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्पुरुष कृपालुदेव जो सच्चे हैं उनसे प्रीति जोड़ें। आत्माको देहसे भिन्न जानें। मैंने उसे देखा नहीं पर ज्ञानीने देखा है, वही एकमात्र मेरा है, अतः उसके लिये पुरुषार्थ करें। खाना, पीना इत्यादि मैं नहीं। मैं तो उससे भिन्न अनाहारी आत्मा हूँ, ऐसा सोचे तो उपवाससे भी अधिक फल मिलता है। उपवास करे और चित्त खानेमें रहे तो भाव जैसा फल मिलता है।

ज्ञानीने रागद्वेष इत्यादि न करनेकी आज्ञा दी हो तो आत्मार्थी तो उसका उपयोग रखकर वैसा करे ही नहीं। इसी प्रकार भक्ति, स्मरण आदि करनेको कहा हो उसका लक्ष्य न चूके और बोधका विचार करे। यों निरंतर आज्ञामें रहे तो मार्गमें टिक सकता है। ज्ञानीका योग कुछ निरंतर नहीं रहता। परंतु उन्होंने जो करनेको कहा है वह करना चाहिये। उन्हींका रटन करे तो वियोगमें भी भक्ति, प्रेम दुगुने हो जाते हैं और अपने आत्माका हित समझमें आता है।

जीवको भक्ति करनी चाहिये। सभी धर्मोंमें भक्तिको प्रधानता दी गयी है। वैष्णव हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, कोई भी भक्तिमें न मानते हों ऐसा नहीं है। इससे पापका नाश होता है। पापीको आर्तभक्ति करनेका अधिकार है। वैसे भक्तिके अनेक प्रकार हैं। उपदेश सुनना, वाचन, विचार, सद्गुरुमें प्रेम, भाव–ऐसी भक्ति उत्तम है।

★★★

ता. २७-२-३५

परमकृपालुदेव परमात्माके प्रति अखंड प्रेम, एकरस-तन्मयता चाहते थे। ऐसी एकरस भक्ति ही मार्ग है। अपने आत्माको जानना है, इसके लिये जिसने आत्माको जाना है उसके स्मरणमें एकरस होना है। परमज्ञानी कृपालुदेव एक ही गाथाको घंटों तक एक धुनसे बोलते थे। कोई बैठा हो उसे सुनना हो तो सुने, पर अन्य बात नहीं करते थे। यों एक लयसे स्वरूपका रटन करते कि उनके बोलका प्रतिघोष होता। हमारी भी जब वह उम्र थी तब आवेशपूर्वक अखंड ध्यान करते और अपूर्व भक्ति होती। वनमें अकेले जाकर चित्रपटकी भक्ति करते। ऐसी इस भक्तिकी लय थी। अब तो वृद्धावस्थाके कारण नमस्कार भी नहीं हो पाते, थक जाते हैं! तुम्हारी तो अभी युवावस्था है, अतः जितनी हो सके उतनी भक्ति, भक्ति और भक्ति कर लो। यहाँ तो लूटालूट करनी है! जो भाव करे वे उसके अपने हैं। अभी प्लेग चल रहा है जिससे लोग मृत्युके भयके कारण गाँवके बाहर तंबू लगाकर रहते हैं, पर भक्ति नहीं करते!

बीमा करा लें तो फिर चिंता नहीं रहेगी। परमकृपालुदेव सच्चे हैं। जैसे अनंत ज्ञानी हो चुके हैं वैसे ही यथार्थ ज्ञानी वे भी थे। वे यथार्थ बोध दे गये हैं ऐसा मानकर उनकी शरण लें और उन्हें ही अपना सर्वस्व मानें। अपने स्वामी भी वे ही हैं। शेष सबके प्रति आत्मदृष्टि रखे कि मेरे कोई नहीं हैं। सभी आत्मा हैं, वे सब समान हैं। किसी पर रागद्वेष न करे। यों समभावपूर्वक व्यवहार किया जाय तो वह बीमा कर लिया माना जाता है। बीमा करने पर प्रति माह या प्रति वर्ष अमुक रकम भरनी पड़ती है, वैसे ही यहाँ पर प्रतिदिन या सारे समय जितनी भक्ति, वाचन, चिंतन, आत्म-पहचान सद्गुरु साक्षीसे होती है वह हिसाबमें गिनी जाती है। जो जितना अधिक करेगा उसका उतनी ही बड़ी रकमका बीमा होगा।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. ४-९-३५

धर्मवृद्धि करें। वाचन, चिंतन, बीस दोहा, क्षमापना, आत्मसिद्धि, छह पदका पत्र, आलोचनाका नित्य पाठ करें। जितना समय मिले उतना इसीमें बितायें। यही साथ चलेगा। शेष सब तो संसारके लिये है। जो भोग शरीरसे भोगे जाते हैं, उन्हें आत्मा न समझें।

★★★

कार्तिक सुदी ६, सं. १९९२

श्रद्धा ऐसी दृढ़ करें कि अब मैं किसी अन्यको नहीं मानूँगा। मेरा आत्मा भी ज्ञानीने देखा वैसा ही है। मैंने नहीं देखा है, पर ज्ञानीने देखा है। उनकी आज्ञासे मुझे त्रिकाल मान्य है। ऐसे ज्ञानी परमकृपालु सद्गुरु श्रीमद् राजचंद्र प्रभु है; वे मुझे सदाकाल मान्य हों। अब उन्हें ही अपना सर्वस्व मानूँ, उनके अतिरिक्त सब पर मानूँ।

★★★

ता. २३-२-३६

सत्संग मुख्य है, वह अवश्य करना चाहिये। सत्संगको ही आत्मा जानें। आत्माका संग ही सत्संग है। यह जीव अनादिकालसे भटक रहा है, पर यह (सत्संग) नहीं मिला। अन्य सब जो भी करता है व्यर्थ है, नाशवान है। ऐसा अनंत बार किया है। इस जन्ममें महा दुर्लभ योग मिला है। अतः सत्संग कर लें।

अंतिम शिक्षा है। जैसे चुटकी भरते हैं वैसे चुटकी भर कर हृदयमें मान्यता कर लें कि मैं आत्मा हूँ, अन्य कुछ नहीं। देहविकार, विषयभोग मैं नहीं, मैं तो आत्मा हूँ—यह निश्चय चाहे जैसे करना है। इसके लिये सुबह, शाम, दोपहर जब भी हो सके मौखिक किये हुएका परावर्तन करें और उसे ही रटते रहें।

क्या मृत्युसे भय लगता है? मृत्युको तो प्रतिक्षण याद करें।

★★★

हमें यह विशेष ध्यान रखना चाहिये कि कोई भी काम करते हुए यह ऐसा हो या वैसा हो, इसका अच्छा हो या बुरा हो, इसका यह फल मिले, इसका अमुक फल प्राप्त हो, ऐसा मनमें, परिणाममें, किसी भी प्रकारकी राग या द्वेष संबंधी व्यक्त या अव्यक्त भावना न आने पाये। लक्ष्य और उपयोग ऐसा रखें कि संतसमागममें मुझे ज्ञानी पुरुष द्वारा कही गयी आत्मोपयोगमें रहनेकी आज्ञा मिली है, वह सत्य है। क्योंकि संतको अन्यथा कहनेका कोई प्रयोजन नहीं है। वे जो कहते हैं वह मेरे लिये हितकारी है, ऐसा मुझे मानना चाहिये। निरंतर ऐसा लक्ष्यमें रखें कि श्री संतसमागममें मिला हुआ मंत्र 'सहजात्मस्वरूप' यह आत्मा ही है, और यही मैं हूँ। अन्य कुछ मेरा नहीं। मुझे उस विषयमें कुछ भी ज्ञान या पता नहीं है। यों सतत उपयोग रखें। वृत्ति क्षण क्षण बदलती है, अस्थिर है। अतः यह उपयोग रखनेका निरंतर लक्ष्य प्रेरित करें और यह कभी भूला न जाय वैसा करें।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशसंग्रह—५

☆

मुनि मो०—ज्ञानीको देहके संबंधमें कैसे भाव होते हैं यह ज्ञानीके घरकी बात है, हमें तुलना नहीं करनी चाहिये।

प्रभुश्री—ऐसा नहीं। जो कहने योग्य हो उसे कहा जा सकता है, उसे कहना चाहिये। जो कहने योग्य नहीं है, उसे नहीं कहा जा सकता।

भाव और श्रद्धा ये दो मुख्य हैं। लड्डु बनानेके लिये सभी सामग्री हो, पर अग्नि न हो तो काम नहीं बनता, वैसे ही सब कारण होने चाहिये। रस्सी बाँधकर कोई कूएमें गिरे और तैरना न जानता हो तो भी डूबे नहीं। इस प्रकार श्रद्धासे तैरा जा सकता है। एक व्यक्ति युवान हो और उसके पास तीक्ष्ण कुल्हाड़ा हो तो उसे गाँठ (लकड़ीका कुंदा) काटनेमें देर नहीं लगती। पर कोई वृद्ध हो, कुल्हाड़ा भोथरा हो और गाँठ कठोर हो तो चाहे जितनी चोटें करे, पर कुछ नहीं हो पाता। वैसे ही शरीर अच्छा हो, क्षयोपशम अच्छा हो, इन्द्रियाँ काम करती हों, ऐसे समयमें आत्मसाधन कर लेना चाहिये। वृद्धावस्थामें कठिनता होगी।

समकितीका लक्षण यही कि उलटेका सुलटा करे।

★★★

नवसारी, ता. १५-५-३३

प्रभुश्री—एकमें सब आ जाता है ऐसा क्या है?

मुमुक्षु—*समभाव। दो व्यक्ति लड़ रहे हों तब उन्हें शांत करनेके लिये कहा जाता है न कि* 'भाई, समता रखो'।

प्रभुश्री—समभावका स्वरूप बहुत गहन है। सच्चा समभाव तो गजसुकुमार जैसोंका कहा जा सकता है। देवको* ढोलकी चिपकी थी, वैसे ही कर्म हैं वे छूटते नहीं। तुम देहको देखते हो, पर ज्ञानी आत्माको देखते हैं—ऐसा भेद पड़ना चाहिये। जब तक भेद न पड़े तब तक विश्वास रखना चाहिये। व्यवहारमें आत्माको जड़ भी कहा जाता है, चेतन भी कहा जाता है, पर निश्चयको लक्ष्यमें

---

* एक सुनारके पाँचसौ स्त्रियाँ थी, फिर भी उसकी विषयासक्ति कम नहीं होती थी। हासा, प्रहासा नामक दो देवियोंके देवका च्यवन होनेसे भविष्यमें उनके पति बननेवाले सुनारको उन देवियोंने दर्शन दिये। उन्हें देखकर सुनारको मोह हुआ। अतः उन्हें प्राप्त करनेके लिये उनके कथनानुसार लकड़ियोंमें जल मरा और अकाम निर्जरासे देव बनकर उन देवियोंका पति बना।

एक बार उस देवको इन्द्रकी सभामें बाजा बजाने जाना था। अतः उसके गलेमें विक्रियासे ढोलकी लग गयी। वह उसे लेकर इन्द्रकी सभामें गया। वहाँ उसने अपने पूर्व भवके श्रावकमित्रको महर्द्धिक देवके रूपमें देखा, जिससे उसे ढोलकीसे शर्म आने लगी। उसने ढोलकीको गलेसे निकालनेका प्रयत्न किया, पर वह तो वापस गलेमें पड़ जाती। तब उस महर्द्धिक देवने कहा कि अब पूर्वकर्मको भोगो। पहले तुमने वीतराग मार्गकी आराधना करनेकी हमारी सीखको नहीं माना, जिससे तुच्छ देव बने हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखना चाहिये। मैं देह नहीं हूँ, इतना बोलनेमें तो अनंत समय बीत जाते हैं, पर समझ तो एक समयमें बदलती है। इस जीवके पास सब है, मात्र भाव बदलना है। वह बदलने पर इस संसारकी ओर दृष्टि करे तो वैराग्य आयेगा ही। ज्ञानीने देखा है कि संसार जल रहा है। क्या यह झूठ है? पर अज्ञानीको देखना नहीं आता। भाव करना तो तेरे अपने हाथमें है। जहाँ भाव वहाँ परिणाम।

जन्मसे ही यह जीव कषायकी प्रकृति लेकर आता है। 'मैं समझता हूँ' यह मूलसे ही होता है। स्वच्छंदका त्याग करना चाहिये। इस संसारमें विषय और कषाय ये दो मुख्य हैं। यह जीव आत्माको नहीं संभालता, लज्जाहीन है, नकटा है—शत्रुको अपने घर बुलाता है, उसीकी सेवा करता है—फिर उसका भला कैसे हो? पुकार-पुकार कर कहते हैं कि मनुष्यभव अमूल्य है, चिंतामणि है। उसे कौड़ीके मोल बेच दिया है।

समकित सरल भी है और कठिन भी है। मान्यता इस शरीरकी और उसके संबंधियोंकी है। इस मान्यताको बदल डाल। समझको बदल दे। जैसे भाव करेगा वैसा फल मिलेगा। भाव बदल डाल। इसने मुझे गाली दी, एक तो यह भाव और इसने मुझे गाली दी पर मेरे तो कुछ लगी नहीं, दूसरा यह भाव। जैसा भाव करना हो वैसा हो सकता है। पर इन दोनों भावोंमें कितना अंतर है?

अभ्यास बना डालें। विद्यार्थी नींदमें भी पाठ बोलते हैं, व्यापारीको व्यापार याद आता है, वैसे ही जैसे भाव करेंगे वैसे बनेंगे। सब संबंध झंखाड जैसे है। झंखाड उलझा है। बाधक बने उसे दूर हटायें। ज्ञानियोंको अनंत दया होती है।

समझ कर लें। भाव करें, पहचान करें। किसीको कहना नहीं है कि तू ऐसा कर और ऐसा न कर। मात्र समझ कर लें।

यह जीव रोगग्रस्त होता है तब रोगको याद करता है। इसी प्रकार यह संयोगोंको ही याद करता है। आत्माको याद नहीं करता। यह तो ऐसा जीवन बना डालता है कि मानो वह स्वयं तो है ही नहीं। नहीं तो आत्मा तो प्रत्यक्ष (हाजिर) है। उपयोग है तो आत्मा है। परमकृपालुदेव सच्चे हैं, वे आत्मा हैं। अन्यत्र दृष्टि न डालें। ऐसा हो जाय तो अन्य सब इन्द्रजाल जैसा लगता है। विश्वास जमा डालें। मन, वचन, कायाके योग तो मुनीम हैं, पर वे सेठ बन गये हैं।

विकार ज्ञानीके समक्ष आनेका साहस नहीं करते। किन्तु मिथ्यात्वीके यहाँ तो सेठ बने बैठे रहते हैं, क्योंकि वहाँ उन्हें आदर मिलता है।

★★★

मुमुक्षु—क्या मैं उपवास तप करूँ?

प्रभुश्री—हाँ भी नहीं कह सकते, ना भी नहीं कह सकते। स्याद्वाद है। 'ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहाँ समजवुं तेह।' यदि कोई बड़ा सेठ पावभर खिचड़ीका दान करनेके लिये पूछने आये तो उसे हाँ भी क्या कहें और ना भी कैसे कहें? वैसे ही यहाँ यमनियमको गौण बनाकर आत्माको पहचाननेका पुरुषार्थ करना चाहिये। जिसे यहाँ आना हो उसे लौकिकभाव बाहर, द्वारके बाहर ही छोड़कर आना चाहिये। यहाँ आत्माका योगबल प्रवर्तमान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्-शीलको सँभालना है। किसीके साथ हँसकर बात न करें, उसकी अपेक्षा भजनमें समय बितायें। हमने एकके लिये सब छोड़ा है। अर्थात् आत्माके सिवाय हमें कुछ अच्छा नहीं लगता। विषय-कषायके हम शत्रु हैं। विषय-कषाय जायें नहीं तो भी उन्हें दूर रखनेका भाव करना चाहिये। आत्मा कभी मरता नहीं, पर यह जीव विषय-कषायके भावसे भव खड़े करता है। सबसे कहना है कि यदि यहाँ आकर कोई आत्महितके सिवाय अन्य कुछ करे तो संघ उसे बाहर निकाल दे।

जीव विषय-कषायमें कब पड़ता है? जब आत्माको भूलता है तब। हमें आत्मा पर लक्ष्य कराना है। आत्मा ही परमात्मा है। वही यहाँ है। अब अन्य सब जाने दो। हमारा तो लक्ष्य यही है इसलिये कोई अन्य कार्य करे तो वह हमें अच्छा नहीं लगता। हमें आत्माको भूलने नहीं देना है। हँसनेकी बातमें वह भुला दिया जाता है, भव खड़े होते हैं। यही आत्माका घात है।

आपको पता नहीं है, पर सबका कल्याण होगा। श्रद्धा रखें। जगतको आत्मभावसे देखें। आत्मा अरूपी है, जिससे वह दिखायी नहीं देता, किन्तु भाव वैसा रखें। कितने ही लोगोंका यहाँ उद्धार हुआ है। कितने ही लोगोंकी गति बदल गई है, परंतु वह सब बताया नहीं जा सकता।

भाव तो होते रहते हैं, पर बुरे भाव न करें, अच्छे भाव करें। वह आपके हाथमें है। यही गुप्त तप है। इसमें किसीकी आवश्यकता नहीं। निर्धन धनवान सबके पास भाव हैं। एक प्रकारका भाव करे तो नरकगतिका बंध होता है, दूसरे प्रकारका करे तो देवगतिका बंध होता है। अतः अब इतना भव सर्वत्र आत्माको देखना आरंभ कर दे। सर्वत्र अपना आत्मा देखेगा तो फिर बुरा नहीं लगेगा। तेरा कुछ नहीं बिगड़ता। जनकविदेहीको यह बात तुरत समझमें आ गयी थी कि आत्मा सत्, जगत मिथ्या। ऐसा होनेके बाद उसे लगता था कि उसका न कुछ जाता है न कुछ आता है। यह सब 'पुद्गलका इन्द्रजालिक तमासा' है जिसे देखा कर।

'आत्मा है' ऐसा भाव लाये वह आर्य, अन्य भाव लाये वह अनार्य। हम आपको नित्य कहते हैं कि बहुत पुण्यबंध कर रहे हो। यह बात माननेमें नहीं आती। ज्ञानी श्वासोच्छ्वासमें कोटिकर्म क्षय करता है। उसे श्रद्धा है, विश्वास है कि आत्मा है। यह बात आप भी मान्य करें तो पुण्य होगा। उपयोग ही बड़ीसे बड़ी तलवार है। मर मिटनेको तैयार हो जा।

ज्ञानीने आत्मा देखा है। इधरसे उधर घुमाना है। समकितीकी पुद्गलरूप विष्टामें दृष्टि नहीं जाती। वह देवलोकके सुख पौद्गलिक मानता है। आत्माका आनंद है। बात मान्यताकी है। श्रवण कर, समझ आयेगी।

कोई मर गया हो और वह तेरा सगा न हो तो तू कहता है कि मुझे स्नानसूतक नहीं लगता, ऐसा ही सब जगह कर डाल। आत्मा मरता नहीं है। ज्ञानी आत्मा है। यह भी ज्ञानी, यह भी ज्ञानी ऐसा मत मान बैठ। समझ ला, विश्वास ला, अभी कर ले, फिर नहीं हो पायेगा।

उपयोग, भाव तेरे पास है। यह बात मान्य नहीं होती। सत्-शील, त्याग-वैराग्य आदि हों तब उस द्वारसे बात प्रवेश कर जाती है। वे द्वार हैं।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १८-२-३४

मनुष्यभव दुर्लभ है। यह शरीर तो संबंध है। आत्मा है, उसकी मान्यता कर लेनी है। श्रद्धाका काम है।

मुमुक्षु—आत्मा कहाँ रहता होगा?

प्रभुश्री—किसीने गाली दी। एक कहता है कि मुझे गाली नहीं लगती और दूसरा कहता है कि मुझे गाली लगी और उसने मारपीट की। गाली तो कहाँ लगनेवाली थी? एकने अज्ञानभाव किया इसलिये अज्ञानी कहलाया, दूसरेने ज्ञानभाव किया इसलिये ज्ञानी कहलाया। बदलना क्या है? समझ। एकने देहको अपनी मानी, घर कुटुंबको अपना माना। 'मेरा' कहने पर भी उसका हुआ नहीं, होता नहीं, मात्र माना है इसलिये अज्ञानी कहलाया। जिसे ऐसी मान्यता नहीं होती वह ज्ञानी कहलाता है। दोनों ही आत्मा हैं। एकको ज्ञानी कहा, एकको अज्ञानी कहा। सोचिये, आत्मा कहाँ रहा हुआ है? मान्यता बदलनी है, श्रद्धा करनी है। करोडों रुपयोंकी प्राप्तिसे भी समझ अधिक मूल्यवान है। सत्संगसे समझ बदलती है। उसका मूल्य नहीं आँका जा सकता। रुपये मिले हो वे तो साथ नहीं चलेंगे, पर समझ साथ चलेगी। उसका मूल्य अपार है। वही कर लेनी है।

स्टेशन जाना हो तो क्या करेंगे? चलना पड़ेगा, पुरुषार्थ करना पड़ेगा। तब स्टेशन आयेगा। पहले क्या चाहिये? सत् और शील। सत् अर्थात् आत्मा, शील अर्थात् ब्रह्मचर्य। सच्चा ब्रह्मचर्य तो ज्ञानीसे प्राप्त होगा। विषयकषायसे छूटेंगे तो ब्रह्मचर्य आयेगा। यह सब क्या है? पाँच विषय हैं और इन्द्रियाँ हैं, उन्हें छोड़ना है! देर अबेर छोड़ना तो पड़ेगा ही, तो अभीसे छोड़ दे। न हो सके तो भावना रखे। "जगतको अच्छा दिखानेका अनंत बार प्रयत्न किया।" इस जीवको झुरना चाहिये, किसके लिये? परिभ्रमणसे छूटनेके लिये। जीव क्या भूल गया है? अपने आपको ही भूल गया है। जीव आगे कब बढ़ेगा?

मुमुक्षु—जिज्ञासा हो तब।

प्रभुश्री—जिज्ञासा कब होगी? पूर्वकृत और पुरुषार्थकी आवश्यकता है।

यह सब सुनकर कोई ऐसा सोचे कि इसमें क्या है? ऐसा तो मैंने अनेक बार सुना है। पर यों सामान्य नहीं बना डालना चाहिये। ज्ञानीकी वाणी है। 'आत्मसिद्धि' ऐसी वैसी नहीं है। सामान्य नहीं बनाना चाहिये। सत्संग-समागम करें, जिससे भावना होगी। भावना होगी तो तद्रूप हुआ जायेगा।

★★★

ता. २५-२-३४

श्रद्धा करो। घरकी—बाहरकी जो श्रद्धा है, उसे छोड़कर एक आत्माकी श्रद्धा करो। वह तो हो सकती है। ज्ञानी समझ करा कर चले जाते हैं। जीवको समझको पकड़ लेना चाहिये, यह उसके हाथमें है। किसीने थप्पड़ मारा हो तो नित्य याद आता है या नहीं? वैसे ही आत्माको याद करो। साँपने डस लिया हो, विष चढ़ गया हो, मर रहा हो और वह स्वस्थ हो जाये ऐसी यह बात है। कहाँ-कहाँसे इस मनुष्य भवमें आया है? जो कर्तव्य है उसे कर लेना चाहिये। नींदमें शक्कर खायी हो तो भी मीठी लगती है। बात श्रद्धाकी है। गुरु है सो आत्मा है, पर भेदी (भेदको जाननेवाला)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये। एककी श्रद्धा कर लो। डाका पड़नेका डर हो तब जैसे कोई रत्नको भूगर्भमें छिपाकर रखता है, वैसे ही जब चारों ओर भय है तब क्या करेंगे? क्या मार्ग निकालेंगे? कहाँ जायेंगे? श्रद्धा। सब वचन समान नहीं होते। कोई कहे कि क्रोध नहीं करना और ज्ञानी कहे कि क्रोध नहीं करना तो उसमें आकाश-पातालका अंतर है।

★★

ता. २६-२-३४

भीख माँगनेका समय आ जाय तो भी घबराना नहीं। आत्मा कहाँ भिखारी है? यह व्यक्ति पहले छोटा था, युवान हुआ, आज वृद्ध है तो इससे क्या वह बदल गया? वह तो जो है वही है, शरीर वृद्ध हुआ; ऐसे ही सब बदलता है तो इससे क्या आत्मा भी बदल जाता है?

(दवाई पीते पीते) इस जीवको यह भोगना पड़ता है। क्या तुम्हें यह दवाई पीनी पड़ती है? सभीको अपने अपने बँधे हुए कर्म भोगने पड़ते हैं। प्रत्येकके कर्म भिन्न भिन्न हैं। इसीलिये कहा है कि उसके सामने नहीं देखें, समकित कर लें। समकित अर्थात् आत्मा है। अन्य सब भूल जायें। क्षमा धारण करें। आया है वह तो जा रहा है।

व्यासजीने शुकदेवजीको उपदेश दिया। शुकदेवजीने कहा—यह तो मैं जानता हूँ। तब व्यासजीने कहा, "अधिक जानना हो तो जनक विदेहीके पास जाओ।" अतः वे वहाँ गये। जनकने आठ दिन तक खूब आदर-सत्कार कराया, पर मिले नहीं। फिर मिले, पूजा कर उपदेश दिया, ज्ञान कराया। शुकदेवजीने कहा, "यह तो व्यासजीने मुझे कहा था।" तब जनकने कहा, "मैंने व्यासजीसे जो जाना है वही तुम्हें बताया है। अब आप स्वयं अपने गुरु हुए।"

पूजा किसकी की थी? आत्माकी। ज्ञानी सबके पाँवों पड़ते हैं। क्या वे देहके पाँवों पड़ते हैं? समझनेकी बात है। पूरी पुस्तक पढ़ ले पर गुरुगम न हो तो कुछ भी समझमें नहीं आयेगा। शुकदेवजीको वैराग्य था, जिससे तुरत समझमें आ गया। सब ग्रहण किससे होता है? मनसे। मनसे ही बँधता है और मनसे ही मुक्त होता है। हमें सब छुड़वाना है और आत्माकी मान्यता करवानी है।

★★

ता. २७-२-३४

लौकिक दृष्टिसे यह सब मायाका स्वरूप दिखायी देता है। यह तो एक भवका संबंध है। ऐसे कितने ही भव बीत गये और बीत जायेंगे, यह सब सत्य है क्या? सब इन्द्रजाल है। अतः आत्माको पहचानें। लोगोंमें कहा जाता है कि मेरी अमुक सेठसे पहचान है, जब चाहिये तब उससे पैसे ला सकता हूँ। ऐसे ही आत्माकी पहचान हो गयी हो तो फिर सब मिल सकता है।

★★

ता. २८-२-३४

प्रत्यक्ष दिखायी देता है कि शरीर हड्डी, माँस और चमड़ेका है। इसमें कुछ भी साररूप नहीं है, फिर भी विकल्प करके 'मेरा' मानता है। यह शरीर तीस बरसका था, आज वृद्ध हो गया है। क्या आत्मा वृद्ध हो गया है? इसी प्रकार हम सब यहाँ मेहमान हैं। ऋण संबंधसे आकर मिल गये हैं। किसीने निमंत्रण नहीं दिया है—आप मेरे माता-पिता बनना या पुत्र बनना ऐसा किसीने निमंत्रण नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया है। ऐसा है, फिर भी अहंभाव-ममत्वभाव होनेसे अंत समयमें रोता-चिल्लाता है, 'मेरा' मान कर दुःखी होता है। ज्ञानी अहंभाव छोड़नेके लिये कहते हैं उस पर विश्वास रख। व्यवहारमें बनिया, माँ-बाप मान, किन्तु मनमें निश्चय कर ले कि यह स्वप्न है, सत्य नहीं। ऐसा माननेसे तुम्हें कोई रोक सकता है? हमें मनमेंसे यह मान्यता निकलवा देनी है। स्वप्न है—देखता रह, नहीं तो भटकता रह। जो आया है वह जायेगा ही, उसकी चिंता क्या? देखनेवाला और जाननेवाला तो अलग है। उसे ज्ञानीने जाना है, उसे मान और अन्य सबकी होली जला दे।

★
★★

ता. २९-२-३४

स्वरूपकी श्रद्धा कर डालो। अन्य सब विकल्प जाने दो। कुछ नहीं है। ज्ञानीने जाना वह मुझे मान्य है, ऐसी मान्यता रखो। 'मैं जानता हूँ' ऐसा न होने दो। सब झूठ है। ये यात्रा कर आये और मानते हैं कि पुण्य किया, यह सब धूल है। उपरोक्त मान्यता हो जाय तो सब निधि आ मिली। अब कुछ नहीं चाहिये ऐसा भाव हो जाना चाहिये। देवलोक आदि कुछ भी नहीं चाहिये। मान्यताका काम है। पंडित रह जाय और कोई दूर बैठा हो और सच्ची मान्यता कर ले तो पा जाये। शक्कर जो खायेगा उसे मीठी लगेगी।

सोभागभाई, अंबालालभाई आदिकी मान्यता भिन्न थी। वैसा ही होना चाहिये। ग्रहण करनेवाले मुमुक्षु कहाँ है? वैसे हों तो बात करें। *बड़ा जैसे चारों ओरसे तेल चूस लेता है वैसे आतुरतासे बोध ग्रहण करनेवालेसे समागम हो तो बात निकलती है। मनुष्यभव चिंतामणि है। मान्यता हुई, प्रतीति हुई कि काम बना। सच मानें, मान्यता हुई ही नहीं है, दृष्टि बदली ही नहीं है। मान्यता हो जाय तो यह सब जंजाल छूट जाय। फिर गाली लगे ही कैसे? शरीरत्यागसे दुःख क्यों हो? रोगमें चिल्लाये फिर भी दृष्टि दूसरी है। सबका कल्याण होगा। सत्पुरुष भले ही न बोलते हों, पर उनके दर्शन भी कहाँ मिलते है? उसे ऐसा-वैसा न समझें। ऐसा निश्चय हो जाना चाहिये कि अब तो मुझे कुछ नहीं चाहिये। 'आत्मसिद्धि' मिल गयी तो सब मिल गया, कुछ शेष नहीं रहा।

"सद्गुरुना उपदेशथी, आव्युं अपूर्व भान;
निजपद निजमांही लह्युं, दूर थयुं अज्ञान.
भास्युं निज स्वरूप ते, शुद्ध चेतनारूप;
अजर अमर अविनाशी ने, देहातीत स्वरूप."

अहा! कैसा चमत्कार है! मनुष्यभव चिंतामणि है। सावधान हो जाना चाहिये। काल सिर पर मँडरा रहा है। मान्यता, मान्यता कहनेसे मान्यता नहीं होती। दृढ़तासे ग्रहण होना चाहिये। दृष्टि बदलनी चाहिये।

★
★★

ता. ४-३-३४

शोध किसकी करें? आत्माकी। पर उसमें भी मार्गदर्शक (भूमिया) चाहिये। भयानक वनमें जाना हो और मार्गदर्शक हो तो कठिनाई नहीं होती। उसकी पहचान कैसे हो? मुझे सच्चा मार्गदर्शक मिले ऐसा भाव रखेंगे तो मिल जायेगा। सत्संगमें आत्माकी बात होती है। जानकार

* मूँग या उडदकी दालका बड़ा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होनेके बाद फँसता नहीं है। अन्यथा गली कूँचेमें घुस जाता है। कहते हैं कि कोई मार्गका जानकार हो तो सीधा पहुँचा जा सकता है। करना क्या है? जगत मिथ्या, आत्मा सत्। मिथ्याको छोड़ना है। जानकार होनेके बाद सब छूट जाता है।

सद्गुरुको अर्पण करनेसे क्या तात्पर्य है? मिथ्या क्या है, यह समझमें आ जाये तो ममत्व छूट जाता है। फिर आत्माकी श्रद्धा होती है, वही अर्पण है। अतः श्रद्धा करनी चाहिये कि जिससे मायाके स्वरूपमें लिपटा न रहे। मनुष्यभव कैसे सफल हो? सत्की श्रद्धा हो तो। इससे असत्की श्रद्धा छूट जायेगी। विपरीत श्रद्धा हो गयी है वह छूट जायेगी। यह सब किसके द्वारा माननेमें आ रहा है? मनके द्वारा। भगवान कहीं दूर नहीं है। प्रार्थना तो उन्हें बुलानेरूप है। अभी जो 'मेरा मेरा' माना जा रहा है, वह फिर नहीं रहेगा। इसीके लिये प्रार्थना आदि हैं। पुरुषार्थ करना चाहिये—सत्पुरुषार्थ। यह वचनामृत है, वह अमृत है। परंतु गुरुगम मिले तो सब ताले खुल जाते हैं। अभिमन्यु छ चक्र जानकारीसे जीत गया, पर अंतिम चक्रकी जानकारी न होनेसे चक्रव्यूहमें फँस गया। सत्संगसे जानकारी होती है।

★★★

ता. ६-३-३४

प्रभुश्री—गुत्थी उलझी हुई है वह सुलझे तो सुगम है।

मुमुक्षु—गुत्थी कैसे सुलझे?

प्रभुश्री—जीवकी प्रवृत्ति ऐसी है कि जिससे गुत्थी उलझे, इसीसे बंध होता है। उलटेकी अपेक्षा सीधे बल पड़ें तो गुत्थी सुलझ जाती है। विकार और कषायसे बल चढ़ते हैं। शरीरको अच्छा बुरा दिखानेमें रहे तो विपरीत बल चढ़ते हैं, किन्तु विचार कर शरीरको माँस, हड्डी, चमड़ेकी थैलीके रूपमें देखे तो गुत्थी सुलझ जाती है। वह अधिक समय नहीं टिकता। थोड़ा विचार आये, फिर वापस बल उलटा चढ़ने लगता है, अतः पुरुषार्थ करना चाहिये। उलटे पुरुषार्थसे विकार होता है, सुलटे पुरुषार्थसे बल निकल जाते हैं। वह चालू नहीं रहता, अन्यथा बहुत सरल है। अनादिके अभ्यासको छोड़ना चाहिये और सुलटा पुरुषार्थ करना चाहिये।

धर्मके नाम पर उलटी पकड़ हो गयी है, और ऐसा समझ लिया है कि मैं धर्म करता हूँ। हँसिये निगल लिये हैं वे निकलने मुश्किल हैं। धर्मके नाम पर जो उलटी पकड़ हो गयी है, वही अनंतानुबंधी कषाय है।

हमें भी सच्ची मान्यता हुई जिससे सब सुलटा हो गया। हमारा सात पीढ़ीका ढुँढियाका धर्म, उसकी पकड़ थी, पर सच्ची मान्यता होनेके बाद वह पकड़ छूट गयी। आत्माको धर्म माना।

★★★

ता. ९-३-३४

प्रभुश्री—ज्ञानीके कथनको मान्य करे तभी मार्ग प्राप्त होता है।

मुमुक्षु—सब ज्ञानी करेंगे।

प्रभुश्री—हम भी परमकृपालुदेवको ऐसा ही कहते थे। तब उन्होंने कहा कि पुरुषार्थ करना पड़ेगा, अपनी मान्यता छोड़नी पड़ेगी। अकेली समझ किस कामकी? परिणमन होना चाहिये। असार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुओंके पीछे लगनेवाली दौड़ छोड़नी पड़ेगी। दो द्रव्य अलग-अलग हैं। झूठी मान्यतासे ही फँस गया है, अंदर धँसता जा रहा है।

★★★

ता. १०-३-३४

ज्ञानीको भेदज्ञान है। उन्हें भी रागद्वेष हो जाता है पर इससे वे वहाँ एकरूप नहीं हो जाते। उनकी वैसी मान्यता मिट गयी है। पाप और पुण्यको दियासलाई लगाकर सुलगा दें। अच्छा लगता है इसलिये जीव अपनेको सुखी मानता है, पर वह कहाँ रहनेवाला है? फिर उसमें क्यों मग्न होता है? ऐसा करनेसे आशामें बह जाता है। ज्ञानीको आशा नहीं होती। सुख-दुःखके समय भेदज्ञानकी स्मृति होनी चाहिये। युद्धमें शस्त्रप्रयोग याद रहे तो जीत हो जाय। इसी प्रकार आत्माकी स्मृति होनी चाहिये। समझ ही समकित है। समझ बोधसे प्राप्त होती है।

कोई कहेंगे कि नित्य एक ही बात करते हैं। हाँ, ऐसा ही है। हमें तो सत्की पकड़ करवानी है, उससे चिपकाना है। अनादिका अभ्यास है जिससे विस्मृत हो जाता है, पर समझ दूसरी हुई हो तो काम हो जाय।

मुमुक्षु—वैसी समझकी स्मृति नहीं रहती।

प्रभुश्री—बोध चाहिये। बोध होगा तो शस्त्र मूठ परसे पकड़ना आयेगा, अन्यथा हाथ कट जायेगा। संवरसे आस्रव रुकता है। संवर ही आत्मा है। परायी पंचायतमें पड़ेंगे तो भूखों मरेंगे। अतः परायी पंचायतमें न पड़े। श्रद्धा होनी चाहिये। प्रतीति आनी चाहिये। 'आत्मा सत्, जगत मिथ्या'। जहाँ आत्माकी यथार्थ बात होती हो वहाँ कैसे भी करके जाना चाहिये। कौड़ीके लिये रतनको नहीं खोना चाहिये।

★★★

ता. १२-३-३४

भेदज्ञान होनेके बाद आनंदघनजीकी भाँति कहा जा सकता है कि 'अब हम अमर भये, न मरेंगे' इसमें ज्ञानीका स्वरूप वर्णित है। ज्ञानीने शरीर, रोग आदिको अपना नहीं माना है, तब काल किसको पकड़ेगा? काल भाग जाता है। जो ज्ञानी जगतको आत्मारूप मानते हैं, उनका काल क्या कर सकता है? कृपालुदेवने हमारे हाथमें लिखकर बताया था कि यह भ्रम और यह ब्रह्म। भेदज्ञान हुआ, फिर रागद्वेष कैसे होंगे? जड़को चेतन कैसे माना जायेगा? मान्यता बदल गयी। बनिया, ब्राह्मण, कुछ नहीं, आत्मा है। उसे ही मानना है।

★★★

पहचान करनेके लिये सुनना चाहिये। पहचानके बिना पता नहीं लगेगा। जड़-चेतनकी बात की, उससे कोई लाभ नहीं है, पर पहचान होनी चाहिये। एक व्यक्तिने दूधमें नीलम (रत्न) देख लिया। उसके संयोगसे दूधका रंग नीला दिखायी देता है, फिर भी दूधको नीला नहीं मानता। इसी प्रकार जिसे आत्माकी मान्यता हो गयी है वह फिर रोगको, देहको अपना नहीं मानता। भेदके भेदको समझना चाहिये।

"सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिनस्वरूप."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसकी यह मान्यता हो कि वह आत्मा है फिर वह अपनेको वृद्ध मानेगा?

★

अवस्थामें परिवर्तन हुआ। बालक था, युवान हुआ, वृद्ध हुआ, पर जाननेवाला तो वही रहा। इस जीवको पता नहीं है, इसलिये घबरा जाता है; पर श्रद्धा है तो सब कुछ है, श्रद्धा है तो तप है, श्रद्धा है तो संयम है। आत्मा अरूपी है अतः दिखायी नहीं देता, पर है तो अवश्य। मेरा स्वरूप ऐसा नहीं है। मेरा स्वरूप ज्ञानीने देखा वैसा है, ऐसी श्रद्धा रखें। जीवको पता नहीं है। रोगसे बहुत निर्जरा होती है। पर श्रद्धाके भाव नहीं बदलने चाहिये। ये तो सब अवस्थाएँ हैं। एक समय शरीर कैसा हृष्टपुष्ट था? अब कैसा क्षीण हो गया है? अवस्था तो बदलती ही रहती है, पर जाननेवाला तो वहीका वही रहता है। 'शरीर रहे' अथवा 'चला जाय' ऐसी इच्छा न करें। मनुष्यभव दुर्लभ है। वह होगा तो भाव हो सकेंगे, फिर कुछ नहीं होगा। अतः जब तक रोग नहीं आया तब तक जो करना है उसे कर लेना चाहिये।

★★★

ता. २९-५-३४

सत्पुरुषको ढूँढो, इसका क्या अर्थ है? सत् अर्थात् आत्मा, उसकी भावना करें। आत्माको देखें। मायाका स्वरूप न देखें।

अनधिकारीपन क्या है? वासना अन्य हो रही है, यही अन्-अधिकारीपन है। आत्मामें भाव होंगे तो अधिकारीपन आयेगा, तब तक उसकी भावना रखें। जिसका अभ्यास हो गया होता है वह नींदमें भी याद आता है, अतः अभ्यास कर डालें।

समझमें नहीं आता इसका क्या कारण? मन भटक रहा है जिससे समझमें नहीं आता। अभ्यास होगा तब समझमें आयेगा। मनको वशमें करनेसे परिणमन होगा। परिणमन होने पर समझमें आयेगा।

इस जीवको सत्संग और बोधकी आवश्यकता है। अन्यत्र आत्माकी बात सुननेको नहीं मिलेगी। उसे सुननेसे मन अन्यत्र भटकते रुक जाता है, पापका संक्रमण होकर पुण्य हो जाता है। इन सबका कारण भावोंका परिवर्तन है। मन अन्यत्र भटकते रुक जाता है अर्थात् हजारों भव अटक जाते हैं।

तन, मन, धन अर्पण करना अर्थात् उन्हें अपना नहीं मानना। गुरुके स्वरूपको समझना चाहिये। गुरु कुछ लेते नहीं, पर उसमेंसे अपनापन छुड़वाते हैं।

'वीतरागका कहा हुआ परम शांत रसमय धर्म पूर्ण सत्य है।' जो वीतरागने कहा उसमें किसी प्रकारका विरोध नहीं आ सकता। राग नहीं करना, द्वेष नहीं करना, यह सबको मान्य है, तब अन्य वैर-विरोध कहाँ रहा? धर्मके नाम पर जो लड़ते हैं, वह धर्म नहीं है। धर्म तो राग-द्वेषसे रहित होना है। हमें कंठी नहीं बँधवानी है, न अन्य कुछ मनवाना है, आत्माको ही मनवाना है। उदयानुसार यह सब आ मिला है, वह कुछ छूटे ऐसा नहीं है, पर 'मेरेपन'की मान्यता छुड़वानी है। आत्मा अरूपी है, वह दिखायी नहीं देता, पर ज्ञानीके कहनेसे यह बात मान्य है, यही मान्यता करवानी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्वास हो तभी आज्ञाका पालन होता है। बड़ा गाँव हो तो भी किस कामका? किन्तु गाँवमें किसी एकसे पहचान हो तो खाना-पीना मिल सकता है। वनमें मार्ग बतानेवाला भील साथमें हो तो वह लुट नहीं सकता। इसी प्रकार सत्पुरुषमें विश्वास हो तो धर्मके नाम पर ठगा नहीं जा सकता। उपयोग तो है ही। जहाँ उपयोग है वहाँ आत्मा है। श्रद्धा हो तो इधरका इधर हो जाता है, पश्चिमके बदले पूर्व दिखायी देता है। इसी प्रकार विश्वास हो तो जड़के स्थान पर आत्मा दिखायी दे। यह चमत्कार है, पर श्रद्धा, विश्वास नहीं है।

★★

ता. ९-६-३४

गाड़ी अँकुडेसे इंजनसे जोड़ी जाती है, बड़े जहाजसे जुड़कर छोटी नौका चलती है; त्यों सद्गुरुके अवलंबनसे ही मोक्षमार्ग पर चला जा सकता है। अवलंबन ही अँकुडा है। सद्गुरु क्या देते हैं ? समझ। समझ बदलती है, भान बदलता है यही बड़ीसे बड़ी कमाई है। बदलता है, पर उसका पता नहीं लगता। अतः विश्वास चाहिये। विश्वास, श्रद्धा, प्रतीति, रुचि यह क्रम है।

बच्चा छोटा हो और पिताका कहना माने तो सब सरल हो जाता है, ऐसे ही सद्गुरुके वचन मान्य रखनेमें लाभ है। आत्माकी बात तो बहुत करते हैं, पर सद्गुरु तो दृढ़ता करवाते हैं। अन्य प्रकारसे दृढ़ता नहीं हो पाती।

ईश्वर कौन? आत्मा। उससे बड़ा कोई ईश्वर नहीं। भींत पर घोड़ेका आकार बनाया हो तो घोड़ा लगने लगता है, ऐसे ही 'सहजात्मस्वरूप'का स्मरण करनेसे कालक्रमसे तद्रूप बना जा सकता है। वैसे भाव होते ही अन्य सबमेंसे रुचि हट जाती है।

कुछ भी बात सुनने पर जैसे 'हाँ, हाँ' कर देते हैं वैसे ही सत्संगमें आत्माकी बात सुनकर उसमें परिणमन होता है। अनेक प्रसंगोंमें ऐसा भी कह देते हैं कि 'अब नहीं भूलूँगा, कभी नहीं भूलूँगा,' ऐसा ही आत्माकी बातके संबंधमें भी होना चाहिये। श्रेणिक राजाको अनाथी मुनिका उपदेश सुनकर ऐसे ही समकित हुआ था। श्रद्धा, सत् श्रद्धा, आत्माकी श्रद्धा करनी चाहिये। यही करना है।

ज्ञानी मिले, उनके वचन भी सुने, सब किया, फिर भी कोरा रह गया, कारण? श्रद्धाकी कमी। 'आत्मसिद्धि'में सब है। किसीको कुछ पूछने जाना नहीं पड़ेगा।

शुभ, अशुभ और शुद्ध ये तीन प्रकारके भाव हैं। घरमें घुसने वाले कुत्तोंको जैसे भगा देते हैं वैसे ही अशुभ भावोंको निकाल देना चाहिये। अच्छे लोगोंको जैसे आने देते हैं वैसे ही शुभ भावोंको आने देना चाहिये। परंतु यदि घरको बंध कर देंगे तो कोई नहीं आयेगा, वैसे ही शुभ-अशुभ भाव आने बंद होंगे तब शुद्ध भाव होगा। घर कहीं चला नहीं जाता। सूरज है, बादल आते जाते हैं। वैसे ही सूरज शुद्धभाव है, बादल शुभ-अशुभ भाव हैं। आत्माका वीर्य जाग्रत होता है तो बादल चले जाते हैं। बादल हों तब भी सूरज कहीं चला नहीं जाता।

★★

ता. २७-८-३४

सब विनाशी है। सब ममत्व कर करके चले गये हैं। अतः अब चेत जाना चाहिये। आत्माकी श्रद्धा कर लें। वज्रकी भींतके समान अडिग श्रद्धा करें। अन्य(पर)को आत्मा न मानें और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्माको अन्य कुछ नहीं मानें। अन्यत्र परिणत हो गया है, आत्मामें परिणत होना है। अनंतानुबंधी चले जाने पर पता लगता है, सब मंद हो जाता है। करता सब है पर उसमें रस नहीं आता। भावना करनी है। लोग श्रावण मासमें कथा पढ़वाते हैं, पर यहाँ तो नित्य ही श्रावण मास है। आत्मा कब नहीं है? इसीकी बात करनी है।

मुमुक्षु–खंभातमें सुना था कि आपकी संगति नहीं करनी चाहिये।

प्रभुश्री–बात सच है। हम तो स्पष्ट कह देते हैं। सच्चाई ग्रहण हो जाय तो फिर बदल नहीं सकती। ये सब अब जान गये हैं कि यहाँ आत्माकी ही बात है, तभी तो बैठे हैं। किन्तु जब तक सुना न हो तब तक भागदौड़ करते हैं, ऐसा ही सबका होता है। बात तो एक ही है : 'आत्मा'। पर इतना कहने मात्रसे रस नहीं आता, इसलिये विस्तारसे बात करनी पड़ती है जिससे रस आता है। परदा पड़ा हो और अंदर सब जाते आते हों तो कुछ रस नहीं आता। परदा उठने पर जब सब अभिनय करते हैं तब रस आता है, पर आँख चाहिये। आँख ही न हो तो क्या दिखायी देगा? एक अंधा था उसका मन नाटक देखनेका हुआ। सबसे कहता कि मुझे भी ले चलो। सब कहते कि तुम क्या देखोगे? अंधेने कहा–तुम धक्का मारना, तब मैं हँसूँगा। नाटक हुआ, सब हँसे, पर धक्का नहीं लगनेसे वह हँसा नहीं। फिर एक व्यक्तिने धक्का मारा तब वह अकेला हँसने लगा। ऐसा न हो इसलिये आँख चाहिये।

★★★

ता. २९-८-३४

देवगतिमें मानसिक दुःख बहुत हैं, ऐसा विचार समकितीको ही होता है। समकिती आत्मा पर लक्ष्य रखता है। आत्मा है, ऐसा अवश्य मानो। आत्मा है?

मुमुक्षु–हाँ, ज्ञानीने देखा है।

प्रभुश्री–ज्ञानीने तो आत्मा देखा है, पर यह प्रतीति आती है कि आत्मा न हो तो यह सुने कौन? उसे भूलना नहीं है। मिथ्यादृष्टि देहको ही देखता है। उसे भूल जाओ। आत्माकी पहचान रखो।

★★★

ता. ३०-८-३४

सम्यग्दृष्टि आत्माके सिवाय अन्य किसीको अपना नहीं मानता। गजसुकुमारने क्या किया? धैर्य रखा। गाँठसे बाँध लें–धैर्य, क्षमा, समता। वेदनाके समय सोचें कि मेरा है वह जायेगा नहीं और जो जा रहा है वह धूप-छायाके समान है, पर उसे मैं अपना मानूँगा ही नहीं। गजसुकुमारको ज्ञानी मिले थे। उन्होंने जो मान्य करवाया था उसे ही अपना माना, अन्य सबको पर जाना। सभी जानेवाले हैं–पर्यायको अपना कैसे मानूँ?

ज्ञानीने क्या किया है? राग, द्वेष और मोहको निकाल दिया है। इस जीवका कौन बुरा करता है? पूजाकी इच्छा, पुद्गलकी, परकी इच्छा क्या रखनी? अब मोह किससे करें? मोह किया कि फँस गये। नारकीको दुःख भोगते समय कौन बचाने आता है? कोई किसीका नहीं है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १-९-३४

सबकी सावधानी रखी है, सबको सँभाला है, सबकी चिंता की है, पर आत्माकी सावधानी नहीं रखी, चिंता, संभाल नहीं की। चारों गतिमें सब ओर दुःख ही दुःख है। ऋषभदेव भगवानके पास अट्ठानवें पुत्र गये थे, उन्होंने पूछा उसके उत्तरमें एक ही बात कही--

"संबुज्झहा जंतवो माणुसत्तं, दट्ठुं भयं बालिसेणं अलंभो।
एगंतदुःक्खे जरि एव लोए, सक्कम्मणा विप्परियासु वेई ॥"

एक ही कार्य करना है--समकित, श्रद्धा। वह हो जाय, तो काम बन जाय। रुपये हों तो दिखाये जा सकते हैं, पर यह दिखाया जाय ऐसा नहीं है। धर्म, आत्मा यहाँ है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र धर्म नहीं है। धर्मके नाम पर भले ही गंगा नहाये, कथाएँ पढ़े, पर धर्म तो आत्मा है।

हम जो कहते हैं उसे हाँ, हाँ तो कहते हैं, पर गले नहीं उतरता (मान्य नहीं होता)। तब सुना न सुना बराबर हैं। तूँबीमें कंकर--स्पष्ट नहीं कहा जाता। 'चाबी गुरुके हाथ।'

मुमुक्षु--आप माननेको कहते हैं, पर सभी महावीरको मानते ही हैं।

प्रभुश्री--कहाँ माना है? साथमें पंद्रह सौ जंजाल लगा रखे हैं। यदि एकको मानें तो काम बन जाता है, पर यहाँ तो अन्य कुछ माना है जिससे झगड़े, विरोध, गच्छ खड़े हुए हैं। यदि संसारको आत्माके रूपमें देखा जाय तो सबको नमस्कार किये जा सकते हैं या नहीं? पर लोग तो नमस्कार करनेमें ही भड़क उठते हैं! कहाँ एकको माना है? एकको माने तो कुछ भी करना शेष नहीं रहता। देखो, दृष्टिमें अंतर है या नहीं? एक मनुष्य स्त्रीको हाड-माँसके रूपमें देखता है और एक ऊपरकी चमड़ीको देखता है। दोनोंकी दृष्टिमें कितना अंतर है? एक नरक गतिमें जाये ऐसा विकार करता है और दूसरा पुण्योपार्जन करता है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टिसे महावीरको माने तो काम बन जाय। दृष्टिमें अंतर है।

यह जीव मायाके स्वरूपमें किस प्रकार फँस रहा है! मायाके स्वरूपसे वापस लौट। सबका विचार किया किन्तु मृत्यु कब आयेगी इसका विचार किया है? यह जीव घड़ी भर भी बेकार नहीं बैठता है। संकल्प-विकल्पमेंसे अवकाश ही नहीं मिलता। आत्माको सँभालता ही नहीं। सर्वत्र आत्मा ही आत्मा है। आत्मा दिखायी नहीं देता, किन्तु भावना कर। उसमें कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता। उसे ढूँढना प्रारंभ कर। उसीकी श्रद्धा करनी है। सत् और शील : सत् अर्थात् आत्मा, शील अर्थात् त्याग। सब छोड़कर अब यह लक्ष्य रखो। मायाके स्वरूपमें उलझनेसे क्या होता है यह देखा? यह मनुष्यभव बीत जायेगा, फिर क्या करोगे? अब अन्य सब छोड़ दो। इसका विचार करो। राजा मरकर कीड़ा बनता है, कीड़ा इन्द्र बनता है, इन्द्र वनस्पतिमें भी उत्पन्न होता है। सब दुःख ही दुःख है। आत्माकी मान्यता करनेमें कुछ देना नहीं पड़ता। अब भी चेत जाओ, जाग्रत हो जाओ। कहनेमें कमी नहीं है, सावधान किया है। जो बुद्धिमान होंगे वे चेत जायेंगे।

★
★★

ता. २-९-३४

प्रभुश्री--पापक्रिया मोहसे चली आ रही है, पर मोह कैसे जाये?

मुमुक्षु--ज्ञानसे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभुश्री–ज्ञान कैसे हो?

मुमुक्षु–सत्पुरुषकी कृपासे।

प्रभुश्री–केवलीके पास भी कोरा कैसे रहा गया?

मुमुक्षु–दर्पण उलटा रखा, जिससे सन्मुखदृष्टि नहीं हुई।

प्रभुश्री–दृष्टि बदली नहीं। दृष्टि बदली हो तो स्वांग भरनेवालेका वेष समझमें आ जाये, फिर स्वयं नाटकमें सम्मिलित नहीं होगा। आत्मा दिखाई दे तो मोह नहीं रहेगा। बोध सुनकर भाव करे तब परिणमन कुछ भिन्न ही होता है। आत्मा भले ही दिखायी न दे, पर माने कि ज्ञानीने आत्माको देखा है, वैसा ही है यों श्रद्धा रखे। वेष उतार डालना सरल है। मेरे बापके बाप भी थे या नहीं? पर अभी क्या मान्य हुआ है? जो दिखायी देता है वही मान्य हुआ है। वृक्षके नीचे विश्राम करने बैठा तो वृक्षको ही अपना मान लिया।

मुमुक्षु–मिथ्या क्या है? जड़ और चेतन दोनों भिन्न हैं, दोनों सत् है, फिर मिथ्या कैसे कहा?

प्रभुश्री–जैसा है वैसा समझना पड़ेगा। ज्ञानीने कहा है–

"जड़ ने चैतन्य बन्ने द्रव्यनो स्वभाव भिन्न;
सुप्रतीतपणे बन्ने जेने समजाय छे."

सुप्रतीतिसे समझमें आना चाहिये। समझमें आने पर परिणमन होता है। समकित कर लेना है। आत्मा दिखायी न देता हो पर उसकी श्रद्धाको समकित कहा है। आत्माकी श्रद्धा होनेके बाद आत्मा दिखायी देगा। परोक्षसे ही प्रत्यक्ष होता है।

★★★

ता. ३-९-३४

प्रभुश्री–'आणाए धम्मो, आणाए तवो।' आज्ञा दो प्रकारकी है। निश्चयसे आत्मा ही गुरु है, किन्तु व्यवहारमें भी गुरु बनाना चाहिये। व्यवहारको हटा देनेसे काम नहीं चलेगा। मान्यता, श्रद्धा किसकी करे? कौन करता है? जड़ तो कुछ मान्यता कर नहीं सकता। श्रेणिकने क्या किया? 'चमकमें मोती पिरो ले।' इसका क्या अर्थ है?

१. मुमुक्षु–अनादिकालसे जीव अंधकारमें ही चल रहा है। अब मनुष्यभव आदि सामग्री मिली है वह बिजलीकी कौंध (चमक) जैसी है, इसमें यदि मोती पिरो लिया गया तो गुमेगा नहीं।

२. मुमुक्षु–मोती क्या? सुई क्या? चमक क्या?

१. मुमुक्षु–सत्पुरुषका योग चमक है, भाव ही मोती है। तैयार होकर रहना चाहिये।

प्रभुश्री–भाव करने हैं। जड़ भाव नहीं कर सकता। ज्ञानी तो सागरके समान गंभीर हैं। उन्होंने तो सर्वत्र आत्मा बताया है। क्रोध आत्मा, मान आत्मा, कषाय आत्मा, अज्ञान आत्मा। दुर्लभ सामग्री है। सावधान होने जैसा है।

★★★

ता. १३-११-३४

जैसे दाल और चावल अलग हैं, वैसे ही हमें आत्माको अलग दिखाना है। आत्मा है तो यह सब कुछ है। यह ऐसा शरीर दिखायी देता है वह भी आत्माके कारण ही है, अन्यथा लोग जलाकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राख कर देंगे। व्याधि हो तब सोचें कि दुःख देहको होता है, उसको जाननेवाला ही मैं हूँ, किंतु मुझे उसका पता नहीं है। ज्ञानीने आत्मा देखा है, वैसा मेरा आत्मा है, मुझे वह मान्य है। चाहे जैसा दुःख आये तो भी श्रद्धा रखें कि जाननेवाला तो भिन्न ही है। दुःख तो शरीरको होता है। पृथ्वी पर सूर्यका प्रकाश पड़ता है, प्रकाश सूर्य नहीं है, सूर्य भिन्न है। 'बात माननेकी है।' श्री वीतराग भगवानने कहा है, 'सद्धा परम दुल्लहा'। श्रद्धा रखनी है।

आपसे हमें कुछ लेना नहीं है, हमारे बनाना नहीं है, कंठी बाँधनी नहीं है या अन्य धर्म मनवाना नहीं है। जो आपका है वही आपको मानना है। विश्वास है इसलिये कह रहे हैं। विश्वास न हो तो सामान्य हो जाता है—ऐसा होता है कि इसमें क्या कहा? ऐसा तो अनेक बार सुना है, ऐसा न करें। यहाँ आत्माकी बात है। यह बात भिन्न ही है। जिसका चिंतन किया हो वही दिखायी देता है। आत्माका जैसा चिंतन किया हो वैसा दिखायी देता है। किन्तु वह अरूपी है, आँखसे दिखायी नहीं दे सकता। ज्ञानदृष्टिसे ही दिखायी देता है। वह प्राप्त न हो तब तक श्रद्धा रखनी चाहिये कि मुझे मेरा आत्मा दिखायी नहीं देता है, पर वह है; ज्ञानीने देखा वैसा मेरा आत्मा है।

"दर्शनमोह व्यतीत थई ऊपज्यो बोध जे।"

'अपूर्व अवसर'में अपूर्व बात है! उसमें बताया है वैसी भावना करनी है। देखते ही रूप दिखाई देता है; पर आत्मा है तो आँखें देख सकती हैं, अतः पहले आत्मा देखें। दिखाई देता है, वह तो जड़ है, आत्मा नहीं है।

"जगत आत्मारूप देखा जाय।" वह कैसे देखें? क्या बदलना है? समझ। जनकविदेहीने क्या बदला था? समझ। झोंपड़े जलते देखकर सभी संन्यासी* तूंबी आदि लेने दौड़े, पर जनक विदेहीने सोचा कि नगर जलनेसे मेरा कुछ नहीं जलता। "दर्शनमोह व्यतीत थई ऊपज्यो बोध जे।" समझ बदलनेकी आवश्यकता है। अन्य सब यहीं पड़ा रहेगा।

श्रेणिक राजाको अनाथी मुनिसे बोध हुआ, समझ बदली। जो 'मेरा' माना जाता था वह 'मेरापन' मिट गया। शेष सब राजपाट, वैभव, स्त्री आदि जो प्रारब्धानुसार विद्यमान था वह वैसा ही रहा।

पहले विश्वास चाहिये, प्रतीति चाहिये। सभी मंत्र ले जाते हैं वह पुण्यका कारण है, किन्तु कल्याण होनेके लिये सच्चे बननेकी भावना होनी चाहिये।

अकाल पड़ा हो तब दयालु सेठ गरीबोंको भोजन देनेका प्रबंध करते हैं। वैसे ही यह काल कलियुग है। परमार्थका दुष्काल जैसा है। ऐसे कालमें ज्ञानीपुरुषोंका बोध सदाव्रत समान है। वही

---

* जनकविदेहीके गुरु जनकके राज्यसभामें आने पर व्याख्यान प्रारंभ करते थे। श्रोताओंमें अनेक संन्यासी भी थे। वे नदी किनारे झोंपड़े बनाकर रहते थे। उन्हें ईर्ष्या हुई, कि हम त्यागी हैं और यह जनकराजा तो गृहस्थ है, फिर भी गुरु इनका सन्मान क्यों करते हैं?

यह बात गुरुने जानी, तब उन्हें समझानेके लिये एक दिन गुरुने ऐसा चमत्कार दिखाया कि मानो नदी किनारेके झोंपड़े जल रहे हों। यह देखकर सब संन्यासी अपनी तूंबियाँ, कपड़े, माला, आसन आदि लेने दौड़ पड़े। दूसरे दिन जनकराजा सभामें आये तब मिथिलानगरी जलती दिखायी, पर जनक राजाने कहा कि मेरा कुछ नहीं जल रहा है। ऐसा कहकर वे व्याख्यानमें शांतिसे बैठे रहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधार है ऐसा दृढ़ होना चाहिये। ज्ञानीपुरुषके वचनामृत किस आशयसे लिखे गये हैं उसका तो दशा आने पर पता लगता है। उसकी तुलना करनेका हमारा सामर्थ्य नहीं है। आत्माके अतिरिक्त उसमें अन्य कुछ नहीं है, यह लक्ष्यमें रखने योग्य है। परमार्थ समझमें न आये और मतिकल्पनासे अर्थ करे तो वह महा भयंकर है। समझनेकी भावना रखनी चाहिये, पर मतिकल्पनाके काँटेसे ज्ञानीपुरुषके वचनकी तुलना नहीं करनी चाहिये। परमकृपालुदेवने ईडरमें कहा था कि हम पहाड़ पर बैठे हैं वहाँ क्या है यह नीचेवाला मनुष्य नहीं जान सकता। ऊपर चढ़कर देखे तो पता लगता है। परंतु ऊपरवाला मनुष्य नीचे क्या हो रहा है उसे देख सकता है। इसी प्रकार ऊँची दशावाले ज्ञानी सब जान सकते हैं, पर नीची दशावालेको ज्ञानीका आशय समझमें नहीं आता। अतः समझनेकी भावना रखनी चाहिये।

★★★

ता. २७-३-३५

मनुष्यभव चिंतामणि है। जैसा चिंतन करे वैसा मिलता है। मनसे जैसा भाव किया हो वैसा फल मिलता है। तब चिंतामणि कहना चाहिये या नहीं? जीवके पास मन, वचन, काया है जो रूपी है, पर आत्मा न हो तो मुर्दा है। देखो, आत्मा अरूपी है। कैसा गुप्त रहा हुआ है! जीवके साथ क्या आता है? धर्म। धर्म कहाँ रहता है? सबके पास क्या है? भाव। भावसे परिणमन होता है। कानमें जो शब्द पड़ता है वह परिणमित होता है। उसका फल प्राप्त होता है।

★★★

ता. २९-३-३५

आत्मा अरूपी है। दीखता है या नहीं? आत्मासे आत्मा दिखायी देता है। पहले अभ्यास करें तब पढ़ना आता है। पहले परोक्ष होना चाहिये। फिर प्रत्यक्ष होता है।

जीव सो रहा है। परमें ममत्व है। जाग्रत नहीं है। घरमें जाये तो बैठनेको मिलता है, तब तक भटकना ही है। यह जीव संकल्प-विकल्प, वासनासे भटकता है। इसका उपाय क्या है? समकित। जैसा धंधा हो वैसा कहा जाता है। दरजीका हो तो दरजी कहलता है। एक आँख फूटी हो तो काना कहलाता है। पर आत्मा वैसा है क्या? संयोग है।

★★★

ता. ३०-३-३५

शांति, समता, क्षमा कहाँ होती है? जहाँ धर्म होता है वहाँ। धर्म कहाँ होता है? अभी कहेंगे, आपको पता है, सामान्य कर दिया है। "उपयोग ही धर्म है।" विचार किसको आता है? जड़को नहीं आता। उपयोग रखनेमें परिश्रम करना पड़ता है, क्योंकि कर्म है, आवरण है, विघ्न है।

समयमात्रका प्रमाद न कर। समय ही आत्मा है। प्रमादमें विषयकषाय हैं, ममत्वभाव है। भाव बदल जाते हैं, उन्हें बदलने नहीं देना चाहिये। सभी कठिनाइयोंका सीधासे सीधा, सरलसे सरल उपाय भक्ति है। पुण्य सूर्यके समान है, वह अस्त हुआ कि अंधकार। जब तक पुण्य है तब तक कर लेना चाहिये। आत्मा सबमें है। कौवे, कुत्तेमें भी आत्मा है, पर उन्हें समझा नहीं सकते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यभव दुर्लभ है, इसमें कुछ कर लेना चाहिये। जो समकिती है वह विश्राम लेता है, पर उसे मार्गका पता है, जिससे वह घरके समक्ष पहुँच ही जायेगा। क्षायिक समकित करना है।

★★★

ता. ४-४-३५

रंकके हाथमें रत्न आया है। उसका मूल्य नहीं है। अन्यथा 'आत्मसिद्धि'के वचन लब्धिरूप हैं! कैसा धन! कितनी कमाई! कुछ चिंता नहीं। आत्मा आत्मामें है, कर्म कर्ममें है। पानी मैला हुआ किन्तु पानी और मैल एक नहीं है। सोनेको चाहे जितना तपाया जाय वह सोना ही रहेगा। चाहे जितने कर्मके उपसर्ग आयें पर आत्मा तो आत्मा ही है। संबंधके कारण वेदना लगती है, पर संबंध तो संबंध ही है।

जो कहा वह ध्यानमें है? उसीका विचार रखें। आत्मा ही देखें। अन्य देखेंगे तो आस्रव होगा, आत्मा देखेंगे तो संवर होगा। यही आस्रवमें संवर होना कहा जाता है। आप यहाँ बैठे हैं तो यहाँ का दृश्य दिखायी देता है। मुंबई जायेंगे तब मुंबई दिखायी देगी, इसी प्रकार ये संबंध मिल गये हैं, जिससे यह दिखायी देता है, पर वह भिन्न है।

★★★

ता. १२-४-३५

मुमुक्षु—मोक्ष कैसे प्राप्त हो?

प्रभुश्री—आत्मा अरूपी है। उसे पहचानना चाहिये, उसकी जानकारी होनी चाहिये। अभ्यास करने पर पढ़ना आता है, ऐसे ही भेदी मिलने पर समझमें आता है।

★★★

ता. १४-४-३५

जहाँ भाव है वहाँ भगवान है। आप भक्ति करेंगे वहाँ भगवान हाजिर हैं। भाव रखनेका है, अन्य सब बादमें।

'मूळ मारग सांभळो जिननो रे' मूल मार्ग क्या? आत्मा। जन अर्थात् लोग और जिन अर्थात् आत्मा। वृत्ति चारों ओर भटक रही है, उसे रोककर अब सुनें। ज्ञानी कहते हैं कि हमें कुछ पूजाकी इच्छा नहीं है, हमें भवका दुःख अच्छा नहीं लगता, हमें प्रतिबंधमें नहीं पड़ना है। आप जानते हों तो सिद्धांतसे इस वचनकी तुलना कर देखें। अब सब भेद खोलकर बात की है।

'ज्ञान', 'दर्शन', 'चारित्र' नाम रखे हैं, पर वास्तवमें वस्तु एक ही है। आत्माके सिवाय देखने-जाननेवाला कौन है? संसारमें स्थिर रहनेवाला कौन है? आत्मा ऐसा है कि न मरता है न वृद्ध होता है। लोग कहते हैं, 'यह मर गया' पर आत्मा नहीं मरता, शरीर गिर जाता है।

★★★

ता. १६-८-३५

एक ही काम करना है—समकित। सब छोड़ना पड़ेगा। सबको पकड़ रखा है उसे छोड़े बिना छुटकारा नहीं है। जड़ कभी चेतन नहीं होता, मात्र मान्यता हो गयी है। अहंभाव, ममत्वभाव छोड़ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही पड़ेंगे। इसकी याद दिलानेके लिये नियुक्त व्यक्ति रोज सबेरे भरत चक्रवर्तीसे कहता, "भरत चेत! काल झपाटा देत!" इसका क्या मतलब? सब सामग्री संयोग मात्र है। रानियाँ, वैभव सब पर है, इसकी याद दिलाता था वह व्यक्ति! नाटकमें पुरुष स्त्रीका वेष धारण कर आता है, पर दर्शक जानता है कि वह स्त्री नहीं है। इसी प्रकार यह सब वेष है। आत्मा तद्रूप नहीं होता। आत्मा रोगी, वृद्ध, पुरुष नहीं होता। यह मनुष्यभव है। चेत जायें। पशु भी आत्मा है, पर उसके पास सामग्री नहीं है। मनुष्यभवमें समझ हो सकती है। समझ कर लेनी चाहिये। समझा कि काम बना।

"जड़ ने चैतन्य बन्ने द्रव्यनो स्वभाव भिन्न;
सुप्रतीतपणे बन्ने जेने समजाय छे."

विश्वास करें। बोध सुननेसे चाबी घूमती है। मान हो तो छूट जाता है। उलटेको सुलटा करना है। ज्ञानी यही करते हैं। ज्ञानी खाते हुए भी नहीं खाते, सोते हुए भी नहीं सोते।

आपको जो कहा जा रहा है, वह एक प्रकारकी मार है। भैंसा बैठा हो उसे उठानेके लिये सोटीसे मारा जाय तो नहीं उठता, ऐसा हो रहा है। डंडा मारा हो तो तुरत उठ जाय। बालकको फटकारेंगे तो वह रोने लगेगा, किन्तु उसे कहा जाय कि यह तुझे नहीं किसी अन्यको कहा गया है तो वह हँस पड़ेगा। यह सब तो आपको कहा जा रहा है। भरत चेत गया उससे आपको क्या लाभ? आपको चेतानेके लिये यह बात है। कोई कहते हैं, 'आप कहें वैसा करेंगे।' देवकरणजी महाराज भी यही कहते थे कि "मर्ममें क्यों कहते होंगे? स्पष्ट कह दें तो कैसा!" ज्ञानी तो सागर समान गंभीर होते हैं। योग्यता आने पर कहते हैं। उनको भी यह बात बहुत वर्षों बाद समझमें आयी। नदीमें बाढ़ आती है, समुद्रमें हाथीके समान ऊँची लहरें उठती हैं, किन्तु यह सब वेग है। इसी प्रकार कर्म हैं वे आत्मा नहीं है, पर वेग है। वह तो न्यूनाधिक होता ही है। पर आत्माको देखें। 'जो जानता हूँ उसे नहीं जानूँ, जिसे नहीं जाना है उसे जानूँ।' ऐसा मान लेना चाहिये।

किसीके बाप बनकर उसका धन नहीं लिया जा सकता। बेटा बने तो धन मिलता है। ज्ञान माँगनेकी भी रीत है। 'बापकी बहू, पानी दे' यों कोई लड़का कहे तो पानी नहीं मिलेगा। 'माताजी, पानी दीजिये' यों कहे तो पानी मिलेगा। यही करना चाहिये। मान बड़ा शत्रु है। "मान न होता तो यहीं मोक्ष होता।" इसका प्रतिपक्षी लघुता-विनय है।

किसीको रत्नकी परीक्षा न हो तो मार्गमें पड़ा हुआ रत्न भी उसके लिये बेकार है। बालक उठा ले तो उससे खेलने लग जाय, फिर दूसरा कंकर मिल जाय और उसे अच्छा लगे तो रत्नको छोड़कर उस कंकरको उठा ले। अंधा हो तो उसे रत्न दीखे ही नहीं। रत्न क्या है? आत्मा। उसकी प्राप्ति मनुष्यभवमें हो सकती है। विषय-कषाय कंकर है। पहचानें। खिचड़ी बनी हो तो उसमें रंग हल्दीका है, खारापन नमकका है। यह दाल है, यह चावल है, यों पहचान हो तो भिन्नता समझमें आती है। चखने पर नमकके स्वादका पता लगता है। इसी प्रकार पहचान तो करनी पड़ेगी। किसी दूसरेकी वस्तु हो और यह ज्ञात हो जाय कि यह मेरी वस्तु नहीं है, तो तुरत उसे छोड़ देंगे। इसी प्रकार पहचान हो जाने पर जो आपका नहीं है उसे आप तुरत छोड़ देंगे।

जीवके पास क्या है? भाव, परिणाम। जैसे भाव करता है वैसा ही परिणमन होता है। भाव सबके पास हैं। बच्चेके पास लकड़ी हो और वह उसे पसंद हो, तब उसे रत्न देने पर भी नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेगा। ऐसे ही सबके भाव होते हैं। जिसे जैसी पकड़ होती है उसे वैसे ही भाव होते हैं। बात सुनते ही भाव होते हैं। अतः आत्माकी बात सुननी चाहिये। अन्य बातोंमें आत्मा नहीं है। ज्ञानीकी वाणी ही अलग होती है। सुननेसे भाव होते हैं। फिर श्रद्धा होने पर परिणमन होता है। कहा है—

"आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे।"

★★★

ता. २८-८-३५

मानो आत्मा है ही नहीं, इस प्रकार उसे भुला दिया गया है। सच मानें, आत्मा है। वह न हो तो ये सब मुर्दे हैं। उसीको याद करें। लोग कहते हैं न कि यह मनुष्य मर गया, पर हमारा उससे कोई संबंध नहीं, हमें स्नानसूतक नहीं लगता। ऐसा ही परभावके लिये हो जाना चाहिये। देहको कुछ भी हो उससे मुझे क्या है? यह तो संयोग है, संबंध है। वह आत्मा नहीं है।

★★★

ता. ३१-८-३५

त्याग, तप ही भक्ति है। अनादिकालसे क्या बाधक है? विषय, और उसके कारण कषाय। सत् और शील—सत् अर्थात् आत्मभावना, शील अर्थात् त्याग। त्यागकी आवश्यकता है, वह भक्ति है।

★★★

ता. ४-९-३५

आत्मा है। आत्माकी रिद्धिका वर्णन नहीं हो सकता। बात अपूर्व है! उसीके गीत गाने हैं। चलते-फिरते, उठते-बैठते उसीका भाव करना है। उसके सुखका वर्णन नहीं हो सकता। जिसने उसे जान लिया है उसकी हमें प्रतीति हो जाय, उसकी मान्यताके अनुसार हमारी मान्यता हो जाय तो दीपक प्रज्वलित हो जायेगा। इसमें भी ब्रह्मचर्य तो बहुत पात्रता प्रदायक साधन है, इससे देवगति प्राप्त होती है। सत् श्रद्धा करना ही मुख्य बात है। ऐसी आस्था ही हितकारी है। अन्य वस्तुओं पर जो प्रेम है उसे वहाँसे हटाकर एक आत्मा पर प्रेम लावें तो कल्याण होता है। इस पर लक्ष्य देने जैसा है। यह अपूर्व अवसर आया है। आत्मा है, यही भावना करनी है। अनेक जीवोंके कल्याणका कारण होगा। त्यागकी बलिहारी है! यथाशक्ति त्याग करना चाहिये। जीवके अनंत दोष हैं। जितना त्याग किया जाय उतना ही हितकारी है। द्रव्य प्रत्याख्यान, भाव प्रत्याख्यान, आत्माके लिये करनेसे विशेष हितकारी हैं। भावके अनुसार फल प्राप्त होता है, भगवानके इस वचनको सब ध्यानमें रखें।

अनेकोंका कल्याण होगा, काम बन जायेगा। आत्माके लिये सब करना चाहिये। विकल्पका त्याग ही अमृत है, आत्माका हित है। भोलेभाले जीव बहुतसे आये हैं, अनेकोंको लाभ हुआ है। कहनेका तात्पर्य यह है कि आत्मार्थके लिये करना चाहिये, देहके लिये नहीं। तीन योग बंधन हैं। ज्ञानीने जाना है वह आत्मा मान्य हो जाय तो कल्याण है। योग्यताकी कमी है। जीवको करना चाहिये। किये बिना छुटकारा नहीं है। स्वभावको बदलना चाहिये। हँसीको बढ़ानेसे बढ़ती है और घटानेसे घटती है। जीवको सत्पुरुषार्थ करना पड़ेगा। पकाना तो पड़ेगा। पूर्वकृत कुछ चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रद्धा दुर्लभ है। प्रमाद, आलस्यके वश जीव कुछ कर नहीं सकता। जो काम दिनमें करना है उसे अंधेरेमें करे तो कुछ होनेवाला नहीं। मनुष्यभवमें सब समझमें आता है। जीवको जाग्रत होना चाहिये। जीवको बदलना तो पड़ेगा ही। 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे.' प्रमाद और आलस्यने बुरा किया है।

★★★

ता. १२-९-३५

प्रमादसे और वैराग्यके बिना रुका हुआ है। करना बहुत सरल है, और बहुत कठिन भी है। मानना, देखना–इतना ही करना है। जड़ और चेतन, दोनोंको जानना है। इतनी पहचान होनी चाहिये, फिर चिंता नहीं।

आप सब बराबर बोल गये, इसमें ना नहीं कहा जा सकता। पर सब टेढ़ा। करना क्या है? समकित। लोग मथ-मथकर मर गये तो भी हाथ नहीं लगा। समकित हुआ कि सब हो गया। दीपकके बिना अंधेरा कैसे जाये? दीपकके आते ही साँप, बिच्छु सब दिखायी देता है। ढँक दिया है। दीपक कहाँ नहीं है? प्रमाद, आलस्य और संकल्प-विकल्पमें समय बिगाड़ा। 'आत्मसिद्धि' चिंतामणि है। अहा! ज्ञानी कैसा कह गये हैं! 'जगतको, जगतकी लीलाको बैठे बैठे मुफ्तमें देख रहे हैं।' भूल मिटानी पड़ेगी। दरवाजा, दरवाजा कहनेसे दरवाजा पास नहीं आयेगा, चलना पड़ेगा। हठी बैल जैसा बनकर बैठ गया है। मार्ग कैसे कटेगा? मार-कूटकर उठाना पड़ेगा। कैसे घूँसे मारे है! यह सब जो दिखायी देता है वह मिथ्या है, कल्पना है। आत्माको पहचानो।

★★★

ता. १८-९-३५

इस जीवने सब मिश्रण कर दिया है। शरीर अलग है आत्मा अलग है। आत्मा राजा है, पर मानो वह है ही नहीं ऐसा कर डाला है। उसको संभालना है, पर कोई नहीं संभालता। सब कहते हैं, मेरे सिरमें दर्द है, मुझे रोग हो गया है, यह बात बिलकुल सत्य लगती है; पर ध्यानसे देखें तो बिलकुल झूठी है। देह और आत्माका कोई संबंध नहीं है, पर जीव मान रहा है, मुझे हुआ यों कहता है। वह जानता है कि मरनेके बाद मेरा कुछ रहने वाला नहीं है, फिर भी मेरेपनकी मान्यता नहीं छूटती। उसको निश्चय नहीं हुआ है। परिणमन अन्य हो रहा है। जो बात मुँहसे कहता है उसका निषेध तो कैसे कर सकते हैं? पर वह बिलकुल झूठी है। आपके पास उपयोग है। जहाँ उपयोग है, वहाँ आत्मा है।

एक बार सबका स्नानसूतक कर डालें। फिर किसीके लिये स्नान करनेका नहीं रहेगा। यह जीव अकेला है, पर इसने मेरा यह नहीं किया, वह नहीं किया, यों बोलता रहता है और कहता है कि मैं अकेला पड़ गया हूँ। ये सब तो संयोग हैं। सब छूटनेवाले हैं। आत्मा कभी छूटा है? कर्मका दोष निकालता है, पर वे सब तो छूटनेके लिये आते हैं। कर्मका उदय सबको है। जीव उसमें परिणत हो जाता है। मोहनीय कर्म दुर्दशा करता है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १९-९-३५

बीस दोहे चिंतामणि हैं। जैसे व्यवहारमें प्रसादी बाँटी जाती है, वैसे ही यह प्रसादी है। उसमें स्पष्टरूपसे बताया है। कोई कोई ऐसी औषधि भी होती है कि जिसे रोगी खाये तो भी गुण करती है और स्वस्थ व्यक्ति खाये तो भी गुण करती है। वैसी ही यह उद्धारकी औषधि हैं। दवाईके लिये दूध पानीकी आवश्यकता होती है, वैसे ही इसके लिये क्या आवश्यक है?

[चर्चा होनेके पश्चात्]

सबकी बात सच्ची है। पर किसीने गाली दी हो तो वह बार बार याद आती है; वैसे ही आप सब जानते हैं फिर भी जोर देकर कहते हैं कि 'भाव' चाहिये। इसे विशेष ध्यानमें रखें। सामायिक तो सभी करते हैं, पर पूणिया श्रावककी सामायिककी ही प्रशंसा हुई। इसी प्रकार भाव भावमें अंतर है। 'साधुको सदैव समता होती है' इसीको चारित्र-समभाव कहते हैं। साधु सबमें आत्मा देखते हैं, सबको सिद्धके समान देखते हैं। इतना समझमें आ गया तो काम बन गया!

'भक्तामर' आदि स्तोत्र हैं, पर बीस दोहे सबका सार है। देनेवाला कौन है?

★★★

ता. २५-९-३५

परमकृपालुदेवने हमसे कहा था, आत्मा देखो। हमने मान लिया और काम हो गया।

दृष्टिमें विष है जिससे अन्य दिखायी देता है। 'वह सत् है,' 'वह परमानंदरूप ही है,' ऐसा निश्चय हो जाय तो शेष क्या रहे? यह तो सब साता वेदनी है, सुख नहीं है। सुख तो आत्माका है, वही सच्चा है। तुम सबको भाव, परिणाम करवाने हैं। चुटकी भरकर जगाना है। अभी मनुष्यभव है, यहाँ समकित हो सकता है। फिर कहाँसे लायेंगे? पशु, ढोरके भवमें क्या करोगे? जैसे लोग धन छिपाकर रखते हैं, वैसे ही समभावरूपी धनको इकट्ठा कर रखो। उसमेंसे सब मिल जायेगा।

समकित है, तिलक है, प्रमाद न करो, इसे प्राप्त कर लो। जागे तभीसे सबेरा, समझे तभीसे सबेरा। अतः भूलमें न जाने दो। पदार्थका निर्णय होनेमें जितनी कचास उतनी कमी। मान्य कर लो। निश्चय कर लो।

प्रमाद बुरा करता है। शूरवीर तलवार लेकर शत्रुको मारनेकी दृष्टि रखते हैं, ऐसा ही करना है। मेहमान हो, पक्षियोंका मेला है। अकेले जाओगे। मै कौन हूँ? इसका कभी विचार ही नहीं किया। यह सब रिद्धि सिद्धि उसीकी है और उसे ही भुला दिया है।

अब करना क्या है? कौन सुनता है? एक आत्मभावनामें रहो। शेष सब माथापच्ची है। कुछ देखने जैसा नहीं है। परमकृपालुदेवने कहा था 'भूल जाओ'। जो समझ गये वे समा गये। चारों ओर आग है, वहाँ अब क्या देखना है? स्त्री, पुरुषके वेष भूल जाओ। अंधेरेमें दीपक जलाओ। समभाव रखो। आस्रवमें संवर करो। द्वारका जल गयी, सब नष्ट हो गया, तब बलदेव पूछते हैं कि "कहाँ जायेंगे? पाँडवोंके पास? उनका भी तो हमने बिगाड़ किया है!" कहनेका तात्पर्य यह कि समभावको समझना है। सब ओर आग लग रही है। सब भावोंकी अपेक्षा समभावको बुलाओ। शांति प्राप्त करो।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. २८-९-३५

अकेला हो वहाँ भी आत्मा है। आत्मा न हो तो अन्य क्या है? पर जीवको पता नहीं है। इसीलिये ज्ञानियोंने कहा है कि पहचान करो, शेष तो—

"सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिनरूप;
समज्या वण उपकार शो? समज्ये जिन स्वरूप."

यह कथन एकदम स्पष्ट कर दिया है।

नींबूका पानी सबमें मिल जाता है ऐसे ही जैसी बात निकली हो उसमें मिलकर जीव वैसा ही हो जाता है। सत्संगकी बातमें भी तद्रूप हो जाता है। चाहे समझमें न आये, फिर भी पर्याय पड़ते हैं।

कौन काम करता है? श्रद्धा। इसीलिये कहा है कि आत्माका कल्याण आत्मा करता है। जीवको पता नहीं है, अन्यथा यह सब क्या है? कर्म है, कचरा है।

एक मनुष्यको वेष पहनाकर बिठा दिया हो, साधु जैसा वेष हो, तो क्या उसे ज्ञानी कहेंगे? ऐसा ही ००००००००००के संबंधमें सुन रहे हैं, पर बावरों जैसी बात लगती है। हमारे पास काँटा है। सब पर समदृष्टि है। किसीको छोटा बड़ा कहना नहीं है, ऐसा मनमें होता भी नहीं है; किन्तु जहाँ सत् न हो, वहाँ सत् कैसे कहा जा सकता है?

सब स्थानों पर जानेके मार्ग होते हैं, वैसे ही आत्मामें जानेका मार्ग समभाव है। उसके बिना नहीं जा सकते, यह समझना है। हमें तो किसीको छोड़ा-बड़ा नहीं कहना है। कर्म नहीं देखने हैं। 'पर्यायदृष्टि न दीजीअे, एक ज कनक अभंग रे।'

"यह जीव जहाँ जहाँ जन्मा है, भवके प्रकार धारण किये हैं, वहाँ वहाँ उस उस प्रकारके अभिमानसे प्रवृत्ति की है। जिस अभिमानको निवृत्त किये बिना उस उस देहका और देहके संबंधमें आनेवाले पदार्थोंका इस जीवने त्याग किया है, अर्थात् अभी तक उसने ज्ञानविचारसे उस भावको नहीं गलाया है और वे वे पूर्वसंज्ञाएँ अभी तक यों की यों इस जीवके अभिमानमें विद्यमान है, इसे ही संपूर्ण लोककी अधिकरणक्रियाका हेतु कहा है"—इतनी ही गुत्थीको सुलझाना है।

★★

ता. २९-९-३५

ज्ञानीकी बात अपूर्व है! जीव कैसा है? सरल परिणामी है या नहीं, समकिती है या नहीं, यह ज्ञानी देखकर बता सकते हैं।

समझमें आना चाहिये। समझमें आया हो तो पता लगता है और काम बनता है।

शरीर स्वामी बन बैठा है। उसकी सार संभाल होती है। वास्तवमें तो वह शत्रु है, यह समझना चाहिये। लूटालूट करनेका समय आ गया है। इसका अर्थ यह है कि भाव करें, आत्माके भाव करें। 'शरीर मेरा नहीं है' ऐसा निश्चय होना चाहिये। उसे विषरूप समझे बिना अन्य कोई उपाय नहीं है। सभी ज्ञानियोंने ऐसा ही किया है। यह तो चमत्कार है, चमत्कार! सबसे हटाकर आत्मामें भाव करवाया है।

जो 'मेरा' नहीं है, उसे 'मेरा' बनानेका प्रयत्न न करें। वह 'मेरा' होनेवाला नहीं है। जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना है उसे आज बताये देता हूँ : समझ। अधिक कहूँ तो—भाव। दृढ़ता होनी चाहिये। परिणाम, भाव करते करते सफलता प्राप्त होगी। यह संबंध है तो क्या वह नहीं है? है ही।

जो हमें मिला है, वही दे रहे हैं : बीस दोहे, क्षमापनाका पाठ, आठ त्रोटक छंद, छह पदका पत्र, आत्मसिद्धि। किसी भी दिन इनको नहीं भूलियेगा। क्या प्राप्त करना है? समकित। समकित समाधिमरणका कारण है। कुछ न कर सकें तो भाव अवश्य रखें। भावसे श्रद्धा होगी। मान्य हो तभी भाव होते हैं। "वह आत्मज्ञान होने तक जीवको 'मूर्तिमान आत्मज्ञानस्वरूप' ऐसे सद्गुरुदेवका निरंतर आश्रय अवश्य करने योग्य है, इसमें संशय नहीं है।"

ज्ञानी क्या करते हैं कि जिससे उन्हें बंध नहीं होता? किसीको ज्ञात हो तो कहें।

[चर्चा होनेके पश्चात्]

यह सब तो सुना हुआ कह रहे हैं; पर कहने जैसा नहीं है। परमकृपालुदेवने कहा था, किसीको कहना मत। अंतमें समझेगा कौन? आत्मा।

★★★

ता. १-१०-३५

बीस दोहे यह सब करायेंगे। वह मंत्र है। बड़ी कठिनतासे जो कभी कभी ज्ञानीके पाससे सुननेको मिलता, उसे हम स्पष्टरूपसे कह रहे हैं। पता नहीं लगता पर ज्ञानी तो सब कह देते हैं। यह सब क्या है? कर्म फूट निकले हैं। कर्म उदयमें आते हैं, संकल्प-विकल्प आते हैं वे सब ज्ञात होते हैं। जैसा खाना खाया हो वैसी ही डकार आती है। बीस दोहे मंत्र है, जिससे तद्रूप बना जा सकेगा। गंभीरता, धीरज रखें। कोई व्यक्ति रोगी हो, पागल हुआ हो और रोगके कारण बकबक करे वैसा ही इस जीवका व्यवहार है। आत्मको देखें तो सभी समान हैं, उसमें भेद नहीं है।

'हे भगवान! मैं आत्मार्थके लिये कर रहा हूँ' ऐसी भावना रखें। हम तो आत्मकल्याणके सिवाय अन्य कोई साधन नहीं बताते, उसके सिवाय हमारी अन्य कोई आज्ञा हो नहीं सकती।

★★★

ता. २-१०-३५

जैसे स्त्रीको पतिकी वारंवार स्मृति होती है वैसे आत्माकी स्मृति होनी चाहिये। यह तो उसे भूल ही गया है! उसीके कारण यह सब है, वह न हो तो कुछ भी नहीं है, फिर भी उसे याद भी नहीं करता। सब जानेवाले हैं, मेहमान हैं। ये सब बुलाते हैं वह भी किसके कारण? उसके (आत्माके) कारण। सब शास्त्र हैं, फिर भी इसका वाचन क्यों होता है? जो हृदयमें होता है वही होठ पर आता है। उदय है। सबको उदय है, पर उसकी ओर न देखें।

★★★

ता. ३-१०-३५

पत्रांक ४३० का वाचन—

"कल्याण जिस मार्गसे होता है उस मार्गके दो मुख्य कारण देखनेमें आते हैं। एक तो जिस संप्रदायमें आत्मार्थके लिये सभी असंगतावाली क्रियाएँ हों, अन्य किसी भी अर्थ—प्रयोजनकी इच्छासे न हों, और निरंतर ज्ञानदशा पर जीवोंका चित्त हो, उसमें अवश्य कल्याणके उत्पन्न होनेका योग मानते हैं।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतना गले उतर जाये तो बस है। असंगतावाली क्रिया क्या है? इसका उत्तर दिया नहीं जा सकता। यह सब नहीं देखना है। हमें तो आत्माकी बात प्रिय है। अन्य कुछ अच्छा नहीं लगता। यह सब कचरा है। सब मर जानेवाले हैं, फिर किसीका कुछ पता नहीं लगेगा। इसमें क्या देखना? कितने ही मनुष्य थे, वे सब कहाँ गये? यह सब देखना अच्छा नहीं लगता। मात्र आत्माकी बात सुननेसे आनंद आता है।

★★★

ता. ७-१०-३५

कैसे भाव करेंगे? क्या पुरुषार्थ करेंगे? सब चाहिये। सामग्री चाहिये। चूल्हेमें लकड़ी जलायी हों, पर भगोनेमें पानी ही न हो तो गर्म क्या होगा? इसी प्रकार भावरूपी पानी चाहिये, तब सामग्री काम आयेगी। यहाँकी बात अलग है। यहाँ तो आस्रवमें संवर होता है। बोध हो तो तदनुसार भाव होते हैं। उस भावके साथ पुरुषार्थ करेंगे तो परिणमन होगा। वैसे अकेला पुरुषार्थ व्यर्थ है। सत्पुरुषार्थ करें। निमित्त चाहिये। बोधके अनुसार भाव होते हैं।

मर जाये पर डिगे नहीं, ऐसी श्रद्धा होने पर भी उदय होता है। यह सब दिखाई देता है वह कचरेके समान लगता है, विषके समान लगता है। मुमुक्षु कहाँ चले गये? सब मर गये। ये हैं वे भी जायेंगे। किसीको कुछ कहना नहीं हैं। बात करनेका स्थान नहीं है। कहने जायेंगे तो कुछका कुछ पकड़ लेंगे।

"तारुं तारी पास छे, त्यां बीजानुं शुं काम?
दाणे दाणा उपरे, खानारानुं नाम."

★★★

ता. ९-१०-३५

पत्रांक ३७१ का वाचन :–

करना क्या है? समझ। काममें क्या आयेगी? समझ। शरीर तो वृद्ध हो जायेगा। हमारा शरीर देखें–कान, आँख अब काम नहीं करते। पर इससे क्या? पूँजी हो तो काममें आती है। पूँजी एकत्रित कर लेनी चाहिये, समझ ही पूँजी है। शरीर तो चला जायगा, पर समझ नहीं जायेगी। भावको हटाकर जहाँ करना चाहिये वहाँ करें। समझके अनुसार भाव होंगे। इस पत्रमें सब स्पष्टीकरण है, कुछ बाकी नहीं रखा है।

लघुता अर्थात् पर्यायदृष्टि न करना। जब तक पर्यायदृष्टि रहेगी, तब तक लघुता नहीं आयेगी। पर्यायदृष्टिके होते हुए आत्मभावना करना अभिमान मात्र है। यह जीव जिस-जिसका अभिमान करता है, वह पुद्गल है। उसमें आत्मा कहाँ है? फिर उसका अभिमान किस कामका? 'पर्यायदृष्टि न दीजिये'।

स्वधाम जाते समय रामने कहा था कि सब विमानमें बैठ जायें, वैसा ही समय आया है। समझ प्राप्त कर लें। फिर भय किसका? भय होता हो तो समझें कि बुरी गति होनेवाली है। पुद्गल तो जानेवाला है। पूँजी इकट्ठी की हो तो काममें आती है। पूँजी क्या? समझ। सब जानेवाला है। भाव ज्ञानीके प्रति मोड़ें। जिसमें भाव जायेंगे वैसा होगा। भाव बदलना अपने हाथमें है। पुद्गलको रखनेसे भी नहीं रहेगा। सत्साधनको समझनेके पश्चात् बंधन कैसे हो सकता है? पुद्गल ग्रहण न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किये हों तो दुःख आयेगा क्या? भले ही मन वचन कायाके योग रहें, पर जीव उन्हें ग्रहण ही न करे तो वे क्या करेंगे? बंधन किस प्रकार होगा? जहाँ दीपक हो वहाँ अँधेरा कैसे रह सकता है? आपने आत्माको देखा नहीं है। पर भेदीने देखा है—भेदका भेद। भाव उसी पर करें। 'धिंग धणी माथे किया' फिर भय किसका? परमकृपालुदेवने 'समाधिशतक' दिया, उसमें अपने हाथसे लिख दिया था—

'आतमभावना भावतां जीव लहे केवळज्ञान रे।'

इतना मिल गया तो सब मिल गया—भाव कहाँ रखना चाहिये वह मिल गया।

इस पत्रमें, देने योग्य सब दे दिया है, गुप्त धन दे दिया है।

★★★

ता. १०-१०-३५

सब माया है। अनेक गये। सब जानेवाले हैं, सचेत हो जाना है। मायासे छूटनेका प्रयत्न करें, बँधनेका न करें। सब शोकरूप है। "इन तत्त्ववेत्ताओंने संसारसुखकी प्रत्येक सामग्रीको शोकरूप बताया है।" मनुष्यभव दुर्लभ है। तैयार हो जायें। यह नहीं, दृष्टि बदलें। वैराग्यकी बलिहारी है, अमृत है! सत्संगसे सुख है। ये सब संग हैं, आत्मा असंग है।

★★★

ता. १४-१०-३५

कर्म तो छूट ही रहे हैं। विकल्प द्वारा जीव अन्य नये कर्म बाँधता है, अन्यथा मुक्त ही हो जाता है। कर्मके कारण ही रोग और मरण है। 'आओ' कहनेसे कर्म बढ़ते नहीं और 'जाओ' कहनेसे जाते नहीं। छूटनेका उपाय 'समभाव' है। कर्मकी गठरियाँ हैं उन्हें जीव 'मेरा मेरा' कहकर पकड़े रखता है। इसीलिये कहा है कि 'तेरी देरीसे देर है।' तू 'मेरा' मानना छोड़ देगा तो कर्म पीछे पड़कर नहीं चिपकेंगे। तू ही उन्हें इकट्ठे करनेके लिये दौड़ता है।

'फिकरके फाके भरे, उसका नाम फकीर।' सब जानेवाला है। 'मेरा' मानेगा तो भी जायेगा, रहेगा नहीं। किसीको कहना नहीं है, पर भाव करने हैं। जो होना हो सो हो। पैसेका मद होता है, सुननेके बाद समझनेका मद होता है, वह नहीं करना चाहिये। जो है सो है। किसीको कहे कि जीवको मार डालो, कोई मार सकेगा क्या? उसे दबा दो तो दबेगा क्या? फिर चिंता किस बातकी? मायाकी गठरी इकट्ठी करता है, फिर 'मेरा मेरा' कर उसमें (मोहाग्निमें) जलता रहता है।

★★★

ता.१६-१०-३५

सब मिथ्या है। उसे 'मेरा मेरा' मानकर क्यों रोता है? जो दुःखरूप है उसमें सुख कैसे हो सकता है? आत्मामें दुःख है? फिर क्यों डरता है? वेदना आयी हो उसे देखता रह। समकिती तो उसे साता मानता है। वह क्या करता है? मात्र देखा करता है। उसमें क्या आ गया? समझ। समझनेसे ही छुटकारा है। +'ज्ञानीकी सभी प्रवृत्ति सम्यक् होती है' ऐसा क्यों? ज्ञानी जैसा है वैसा ही देखता है। स्त्रियाँ अन्यके घरका विलाप अपने घर लाती हैं और रोती हैं, ऐसे ही सब संसार

+ मूल गुजराती पाठ 'ज्ञानीना गम्मा, जेम नाखे तेम सम्मा।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है। अन्यके घर मरण, उसमें मुझे क्या? जिसकी गिनती करनी चाहिये उसकी गिनती तो करता नहीं और दूसरोंके लिये रोता है। बच्चा हुआ उसे खिलानेमें सुख मानता है! यदि कोई उसे कहे कि यह तो तेरा वैरी है तो हाँ कहकर पुनः उसे खिलाने लगता है। इसी प्रकार जीव कहता तो है, पर मानता नहीं। समझकर समा जाना है। किसीको कुछ कहना नहीं है।

वेदनाको दो मिनिट रुकनेके लिये कहा हो तो वह नहीं रुकेगी। पैसेको दो मिनिट रहनेको कहा हो तो वह नहीं रहेगा। जो जानेके लिये ही आया है उसके लिये तू क्यों व्यर्थ माथापच्ची करता है? समझ प्राप्त करनी है। समझसे ही छुटकारा है, अन्य कोई उपाय नहीं। अनेक मर गये, तुझे भी मरना है। पर आत्मा मरा क्या? नहीं। तो फिर तू किसके लिये रोता है? किसके लिये विलाप करता है? यही भूल है। भूल तो निकालनी ही पड़ेगी। 'धिंग धणी माथे किया।' वह कर ले।

"नहि बनवानुं नहि बने, बनवुं व्यर्थ न थाय;
कां ए औषध न पीजिये, जेथी चिंता जाय."

यह औषधि पी ले। अमुक भाई नहीं आये तो इसकी चिंता क्यों करता है? किसलिये विलाप करता है? सब मानना छोड़ दे, आत्माको मान। कुछ रहनेवाला नहीं है, तब फिर वह तेरा कैसे होगा?

★★★

ता. १७-१२-३५

मुमुक्षु—जड़ और चेतन ये दो वस्तु हैं ऐसा सुनते हैं, फिर भी देहाध्यासके कारण आत्माकी ओर लक्ष्य नहीं रहता। तब देहाध्यास कम कैसे हो?

प्रभुश्री—अनादिकालसे जीवने देहको ही सँभाला है, आत्माको नहीं सँभाला। वह तो मानो है ही नहीं ऐसा समझ लिया है। वास्तवमें यदि वह न हो तो सब मुर्दे हैं। भाव करें। जैसे कोई महामंत्र हो वैसे ही 'बीस दोहे' विष उतारनेके लिये महामंत्र है। यह अमृत है। विश्वास और प्रतीति चाहिये।

★★★

ता. २७-१२-३५

भ्रांतिसे आत्मा परभावका कर्ता है, यह ज्ञानी पुरुषका वचन है। मिथ्यात्व और मोहके कारण अज्ञान है। इन्हें हटानेसे ज्ञान होता है। पर उसे हटानेके लिये ज्ञानीपुरुष, सत्पुरुषकी आज्ञा, सद्बोध निमित्तकारण हैं। औषध तो ले किन्तु पथ्यका पालन न करे तो रोग नहीं मिटता। यद्यपि औषधि विक्रिया नहीं करती, पर रोग नहीं मिटता। इसी प्रकार मंत्रके साथ सत् शीलके व्यवहाररूप पथ्यका पालन न करे तो कर्मरूप रोग मिटता नहीं। इच्छाका निरोध करें। विषय, कषाय अर्थात् क्रोधादि, रागद्वेष कम करनेकी प्रवृत्ति न हो तो मंत्ररूपी औषधिसे अन्य विक्रिया तो नहीं होती, पर कर्मरूपी रोग नहीं मिटता।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अषाढ सुदी ४, बुध, १९९१

आत्मा असंग है, अप्रतिबंध है, अजर है, अमर है, अविनाशी है। ऐसे शरीर तो अनेक धारण किये, उन सबका नाश हुआ। अतः देह पर मोह न करें। एक आत्मा पर लक्ष्य रखें। यह महामंत्र है।

★★★

ता. २३-१-३६

सत्संगका माहात्म्य अथाह है। सत्संगमें क्या होता है? आत्माकी श्रद्धा होती है, परिणमन होता है।

★★★

ता. ३-२-३६

मनुष्यभव दुर्लभ है। मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, मध्यस्थ भावना करनी चाहिये। बड़ीसे बड़ी बात सत्संग है। सत्संगमें बोध अमृतके समान है। वहाँ समागममें कोई वचन सुननेमें आये तो सहज ही पुण्यबंध होता है। ज्ञानीपुरुषकी वाणी सुनायी दे और क्वचित् न भी सुनायी दे तो भी पुण्यबंध होता है। मेहमान है, मनुष्यभव दुर्लभ है। "हे जीवों! तुम समझो, सम्यक् प्रकारसे समझो, मनुष्यभव मिलना बहुत दुर्लभ है और चारों गतियोंमें भय है, ऐसा जानो। अज्ञानसे सद्विवेक पाना दुर्लभ है, ऐसा समझो। सारा लोक एकांत दुःखसे जल रहा है, ऐसा जानो और 'सब जीव' अपने अपने कर्मोंके कारण विपर्यासताका अनुभव करते हैं, इसका विचार करो।" यह मेरा पुत्र, यह मेरी स्त्री, यह मेरा घर—ये सब बंधन हैं।

"सहु साधन बंधन थयां, रह्यो न कोई उपाय;
सत्साधन समज्यो नहीं, त्यां बंधन शुं जाय?"

कुछ नहीं तो 'बीस दोहे' ही नित्य चंडीपाठकी तरह बोले तो भी काम बन जायेगा। संग बलवान है।

सारा लोक एकांत दुःखसे जल रहा है। जन्म जरा मरण जैसा कोई बुरा नहीं। मार्गमें जैसे लोग इकट्ठे हो जाते हैं, वैसे ही यह एक मेला है। इसमें प्रसन्न क्यों होता है? सुख और दुःख क्यों मानता है? यह तेरा धर्म नहीं है। अनंत भव बीत गये तो भी तूने आत्माको नहीं पहचाना, तो अब कब पहचानेगा? अतः सत्संग और त्याग-वैराग्य कर। पहले सत्संग बहुत कठिन लगेगा, पर अंतमें यही सुख देगा। संसारसे कर्मबंध होता है, वैराग्यसे हित होता है। यह अवसर आया है। सब जीव अपने कर्मोंसे विपर्यास भोगते हैं। मनुष्यभव दुर्लभ है। चारों गति अति दुःखदायी हैं। जन्म, जरा, मरण ये सब दुःखदायी हैं। 'मैं' और 'मेरा' सब बंधन है। मारा जायेगा। यह तेरा नहीं है। यह योग कुछ ऐसा वैसा है? अब कब देखेगा? जिसे बंधनमुक्त होना है उसे आत्माकी गवेषणा करनी चाहिये। बनिया है, ब्राह्मण है, पटेल है—यह कुछ नहीं।

"ज्यां लगी आतमा तत्त्व चीन्यो नहीं;
त्यां लगी साधना सर्व जूठी."

कुछ नहीं। मनको घूमता, भटकता हुआ रखता है। पटक सिर, फोड़ दे पत्थरसे। जैसे कोल्हूका बैल घूमता रहता है वैसे परिभ्रमण करता है। तेरा कोई नहीं है। न तेरा पुत्र है, न तेरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पैसा, न तेरा घर। तू तो मेहमान है। सुख दुःख भोगकर चला जा।

[1]"सुखदुःख मनमां न आणिये, घट साथे रे घडियां;
टाळ्यां ते कोईनां नव टळे, रघुनाथनां जडियां."

सारा जगत कर्माधीन है। दुःख, महाभयंकर दुःख है। लक्ष्य रखें। 'आत्मसिद्धि' क्या ऐसी वैसी है? एक एक गाथा पर विचार करे तो काम बन जाय, इसका भान भी नहीं है। मैंने कंठस्थ कर ली है, मुझे आती है, ज्ञात है, यों सामान्य कर डालता है। सामान्य कर देता है यही दुःख और व्याधि है।

आत्माका स्मरण किये जा। भगवानने कहा है कि सुख दुःख आयेंगे ही, यह सत्य है। कियेका फल है। कहा जाय ऐसा नहीं है। "जिसे आत्माकी गवेषणा करनी हो उसे यमनियमादि सर्व साधनोंके आग्रहको गौण कर सत्संगकी गवेषणा करनी चाहिये और उपासना करनी चाहिये। जिसे सत्संगकी उपासना करनी हो उसे संसारकी उपासना करनेका आत्मभाव सर्वथा त्यागना चाहिये।"

चाहे जितने रुपये खर्च करने पर भी कोई तुझे इतनी शिक्षा देगा? स्थिरता धारण कर। बहुत भूल है। व्यर्थ बीत रहा है (जीवन)। एक सत्संगकी आज्ञाकी उपासना करनी चाहिये।

"प्रारब्ध पहले बन्या, पीछे बना शरीर;
तुलसी अचरज अे बड़ी, मन न बांधे धीर."

अतः सचेत हो जा। यह बात कहीं नहीं मिलेगी। मृत्यु अवश्य आयेगी। फिर भी यह जीव बारंबार भूल जाता है। यह बात कोई नहीं सुनेंगे क्या? तौबा! तौबा! सारा लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। 'पद है, पैसा है, घर है, मकान है, गाड़ी है, घोड़ा है–सब सुख है, मुझे क्या कमी है?' ऐसा मानकर मग्न रहता है। किन्तु पराधीन है। राजा और रंक सबकी मृत्यु है। क्षमा करना, समता रखना और भगवानका नाम नहीं छोड़ना। जो आया है वह जायेगा। श्रद्धा, लक्ष्य और प्रतीति हो तो वह चिंतामणि है। सामान्य न बनायें। मैं तो जानता हूँ, ऐसा कहता है। कर्म फूटा तेरा! बहुत भूल हो रही है! चेतने जैसा है। यह जीवनडोरी है वह काम आयेगी। संभाल और समझ रखे तो यह अनंतगुनी कमाई है। बीस दोहोंका चंडीपाठके समान नित्य पाठ करे तो यह चिंतामणि है। यहाँ तो धर्म है और वही कर्तव्य है। जब तक शरीर है तब तक बोलूँगा। कठिनतासे बोल रहा हूँ। शक्ति नहीं है, फिर भी परमार्थ समझकर बोल रहा हूँ।

★★★

हम ढूंढिया थे, बड़े साधु थे, किन्तु परमकृपालुदेवके समागमसे समझ गये कि एक आत्मा ही मेरा है, अन्य सब मेहमान हैं। कल सब चले जायेंगे। अतः यही करना है।

"आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं, ते साचा गुरु होय;
बाकी कुळगुरु कल्पना, आत्मार्थी नहि जोय."

आत्मज्ञान ही सत् है। किसीको दिखानेके लिये कुछ नहीं कहना है। सद्गुरुकी प्राप्तिसे कुछ

१. सुख दुःखको मनमें नहीं लाना चाहिये, क्योंकि उनका तो शरीरके साथ निर्माण हो चुका है। (रघुनाथ=राम=प्रारब्ध) कर्मानुसार उनकी प्राप्ति होनी ही है, वे किसीके टालनेसे टल नहीं सकते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अलग ही लहर और प्रसन्नता आती है। 'आप समान बल नहीं और मेघ समान जल नहीं।' अतः स्वयं ही करना पड़ेगा, इस बातको पकड़ा तो पकड़ ही लिया, वह अब किसी प्रकार छूटनेवाला नहीं है। आत्मज्ञान पर जायेंगे तो काम बन जायेगा और पासे सीधे पड़ेंगे। "विचारकी निर्मलता द्वारा यदि यह जीव अन्य परिचयसे पीछे हटे तो सहजमें अभी ही उसे आत्मयोग प्रकट हो।" आश्चर्यजनक बात! एकदम हितकी शिक्षा। मात्र हृदयमें आत्माके लिये रोयें। तैयार हो जायें। अमृत है, किन्तु बाहरकी विकृतदृष्टि निकालनी पड़ेगी, दृष्टि बदलनी पड़ेगी। आत्मार्थ देखेंगे तो आत्माका हित होगा। वाणी अपूर्व है। जितना न हो उतना थोड़ा। कर्तव्य है। जो किया सो सही। लक्ष्य लेना जरूरी है।

★★

ता. ५-२-३६

बुरे भाव करनेसे अच्छा होगा? अच्छे भाव करेंगे तो बुरा होगा?

"भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान;
भावे भावना भाविये, भावे केवलज्ञान."

इससे कोई संक्षिप्तमार्ग बतायेंगे? मार्ग तो यही है, पता नहीं लगा। इसी कारण दुःख, फिकर, चिंता है। और कहाँ जाये? आत्मभाव रखें। घूमने निकला है तो घूम, अन्यथा ठिकाने बैठ जा।

'कर विचार तो पाम' इसका क्या परिणाम आता है, वह देख लेना। सुख दुःख, रुपया-पैसा, मेरा तेरा सब राख है। आत्माके सिवाय अन्य कोई भी वस्तु वास्तवमें अच्छी लग सकती है क्या? गुत्थी पड़ी है, वह सुलझ नहीं रही है। हमने क्या किया है? छोड़ना पड़ा है। ज्ञानीने कहा है, सब छोड़ना पड़ेगा। कुछ है नहीं, किन्तु यदि साथमें लिया तो अड़चन करेगा। नहीं लेगा तो अड़चन करेगा? अतः छोड़ना पड़ेगा। छोड़ दिया तो अड़चन नहीं होगी।

आत्मा, आत्मा—सर्वत्र आत्मा देखो। अन्य कुछ नहीं। आत्माको देखा नहीं और नहीं जाननेका जान लिया। जो देखना है उसे नहीं देखा और नहीं देखना है उसे देखा। कोई कहेगा कि हाथी, घोड़े, स्त्री दिखायी देते हैं, यह झूठ है क्या? यही देखना हो तो चौरासीके चक्करमें घूम आ। यह सब मर्मकी बात है। कोई समझता नहीं। सब उलझन है। वापस लौटना पड़ेगा, छोड़ना पड़ेगा, करना पड़ेगा, अन्यथा कुछ होनेवाला नहीं। यही बात है। यह भाव करते हुए अन्य कुछ हो तो कहना। शक्कर खानेसे शक्करका फल, विष खानेसे विषका फल। तेरे हाथमें है। तेरी ओरसे देरी है। भरत चेत! भरत चेत! बस इतना ही है। जाना नहीं है। बोध सुना नहीं है। तूँबीमें कंकर। तेरा रोना, तेरा दुःख—परवस्तु ही देखनी है? भ्रम है। परदा नहीं हटा जिससे देखा नहीं है। तो अब क्या कहना? इन सबमें ढूँढो। आत्मा कहीं नहीं है। तो अब किसको मानना है? किसको पहचानना है? पंचायत किसकी है? खाने—पीनेकी? वास्तविक पंचायत तो यही हो रही है—किन्तु मार्ग तो अलग ही है, गहन है—त्यागका मार्ग है।

स्त्री, बच्चे, हाथ, पाँव सबका त्याग। फिर क्या बचा? आत्मा। अभी समझमें नहीं आया है।

★★

ता. ६-२-३६

आप सबके पास क्या है? भाव। आत्मा है तो भाव है। बात किसके हाथमें है? जीव अच्छे भाव करे तो अच्छा फल मिलता है, बुरे भाव करे तो बुरा फल मिलता है। आत्मा कहाँ नहीं है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वत्र है। जैसा देखना हो वैसा दिखायी देता है। हाथी देखना होगा तो हाथी दिखायी देगा, आत्मा देखेंगे तो आत्मा दिखायी देगा और बनिया, पटेल देखेंगे तो वैसा दिखायी देगा।

जीवकी गिननेमें भूल हो रही है। आत्माकी गिनती नहीं की, और शरीरकी गिनती करता है। आत्माकी गिनती करे नहीं और रोगकी गिनती करे तो रोग है। इस भटकते जीवको परमकृपालुदेवने बुला कर लिख दिया : "आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।"

मुमुक्षु–यह तो बहुत सुगम मार्ग है।

प्रभुश्री–बात सत्य है, पर उस भावमें रहा नहीं जाता। भटकना है तो जा, चक्कर लगाकर आ–भटककर आ। सब हाथमें है। ज्ञानीके एक वचनमें अनंत आगम हैं।

क्या करना है? निश्चय करना है। कहा तो सब है, पर बात तो यही है। सबके पास भाव है या नहीं? किसीके पास नहीं है क्या? अब क्या करें? यह ऐसी वैसी बात नहीं है, चमत्कार है! एक वचनमें मोक्ष है! कहते सभी हैं, पर कोई करता है और कोई नहीं करता; जैसा करेंगे वैसा होगा। भावने बुरा किया है, जन्म, जरा, मरण और भव खड़े कर दिये हैं। शुद्धभाव हो तो भटकना नहीं पड़ता।

"भावे जिनवर पूजिये, भावे दीजे दान;
भावे भावना भाविये, भावे केवलज्ञान."

★
★★

ता. ८-२-३६

यह जगत आत्मा नहीं है। आत्माकी पहचान करें। आत्माकी, सत्संगकी भावना रखें। आत्मा हैं उसकी गिनती रखें। वह सुख दुःखको जाननेवाला हैं। सुख जिससे आता है उसका भान नहीं है। जीव मात्रकी इच्छा आरंभ परिग्रहकी है, वह माया है। वह छोड़ने योग्य है। ज्ञानीको आसक्ति नहीं है। ढोर, पशु, पक्षीको कुछ पता लगता है? मनुष्यभव है तो पता लगता है। सब माया है। मेरा भाई, मेरा बाप, यह सब कुछ नहीं है। एक आत्माको जानो। जितनी तृष्णा अधिक उतने जन्म अधिक। बुरेसे बुरी है तृष्णा। तृष्णाने ही बुरा किया है।

"क्या इच्छत? खोवत सबै, है इच्छा दुःखमूल;
जब इच्छाका नाश तब, मिटे अनादि भूल."

इच्छा बुरी है। ऐसा तो भवभवमें किया है। यह सब समझनेसे छुटकारा होगा। समझे तो भव कट जाते हैं और न समझे तो भव खड़े हो जाते हैं। भागदौड़ कर रहा है। जानेवाला है, इसमें शंका नहीं है।

अभी तक जीवने चमड़ेका व्यापार किया है, आत्माका नहीं किया। 'मेरा, मेरा' कर रहा है। उसीकी भावना करता है। महापुरुषके वचन हैं, "जहाँ कलपना-जलपना तहाँ मानूँ दुःख छाँई।" जो अपना नहीं है उसे प्राप्त करनेकी भावना करता है। इस संसारमें किसीका इच्छारूपी रोग मिटा है क्या? इच्छा, इच्छा और इच्छा। काम कहाँ होता है? विचार करनेसे इच्छाका नाश होता है।

ये सब बैठे हैं पर किसीने आत्मा देखा? चमत्कार है! आत्मा देखो। यह कूँची है। किसीको पता नहीं लगा। किसीने जाना है? किसीने माना है? किसीने स्वीकार किया है? किसीको मिला है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मात्र यह बनिया, यह छोटा, यह बड़ा ऐसी बात हुई है और होती है। 'आत्मा है, आत्मा है' ऐसा निश्चय नहीं हुआ है। "सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो, आ वचनने हृदये लखो।" कौन बुरा करता है? राग और द्वेष। सारा जगत इसीसे दुःख सहन करता है। समभाव करके देखो! देखो तो सही! अब इस पर थोड़ा विचार करो। समभावसे क्या हुआ? आश्चर्यजनक हुआ! हजारों भव टल गये। केवलज्ञान हुआ। समभाव कर मोक्ष गये। यह तो ताली पर ताली! कुछ आश्चर्यजनक है! चमत्कार है! भेदी नहीं मिले। "सुनते सुनते फूटे कान, तो भी न आया ब्रह्मज्ञान।" जिसे गिनना है उसे ही छोड़ दिया है। पढ़ा है पर गुना नहीं। ठीक बात की। सम क्या वस्तु है? इसे किसमें लोगे? यह किसमें रहती है? जरा विचार तो करो, तूँबीमें कंकर! विचार नहीं किया, समझा नहीं। उपालंभ देने जैसी बात कर रहा हूँ, पर सत्य है। 'समता रसका प्याला रे, पीवे सो जाने।'—ऐसे गायेंगे, बातें करेंगे, पर बातोंसे काम होगा? मनुष्यभव चमत्कार है, महान कमाई है। पैसे मिले दो-चारसौ रुपये, उससे क्या हुआ? साढ़े तीन हाथकी भूमि पर जला देंगे। क्षमा क्या है? मात्र बोलना आया है, उसका नाम लेना आया है, पर उसका भान नहीं है।

★★

ता. १६-२-३६

मनुष्यभव दुर्लभ है। महान पुण्यसे यह प्राप्त हुआ है। संबंधसे सब मिल गया है—शरीर, पैसा, सुख आदि। हमारा कथन कुछ भिन्न ही है। यह सिर कट जाय, शरीर रहे या न रहे, पर अन्य मेरा नहीं। हमें तो आत्माकी ही बात कहनी है। कोई शिक्षा देंगे तो एक आत्माकी ही, अन्य नहीं।

अभी जो बात हो रही है वह केवल आत्माकी है। आपको उसकी कुछ पहचान नहीं है। यह मेरा हाथ, पाँव, मुँह; मुझे दुःख हुआ, सुख हुआ ऐसा मानता है, पर यह तो सब जड़ है, आत्मा नहीं। यह बात आत्माके हितकी है। कौवे, कुत्ते सुनेंगे?

घूँट भरकर उतार दें। अनंत भव किये और भटका। पर वहाँ सुख नहीं है। मात्र एक बात है—'सत् और शील'। सत् अर्थात् आत्मा। शील अर्थात् ब्रह्मचर्य। मेरा आत्मा ही मेरा गुरु है। उसे ज्ञानीने जाना है, वही सत्य है। जिसने जाना है, वे मेरे गुरु हैं और उनके द्वारा दी गयी भक्ति—छह पदका पत्र, बीस दोहे आदिको चिंतामणि मानकर संग्रह कर रखें। अन्य सब चला जानेवाला है, वह मेरा नहीं है। मेरा तो आत्मा है। उन्होंने जो कहा है वह करें। जीवनपर्यंत, साता हो, भान हो तब तक करना चाहिये। फिर कुछ नहीं हो सकेगा। यह बात सुनायी दे रही है? झटके देकर बात कर रहा हूँ सो क्षमा करियेगा। मेरा तो आत्मा है। आत्माका यह निश्चय और यही मेरा गुरु और यही मुझे मान्य। दबाकर कह रहा हूँ। ब्राह्मण, बनिया, पटेलका भेद न रखें। आत्मभावना करनेसे जन्ममरणका चक्कर छूट जाता है। मैं बनिया, मैं स्त्री, मैं पुरुष, नाक, हाथ आदिमें 'मेरा मेरा' मानता है, पर कुछ तेरा नहीं है। तू तो एक मात्र आत्मा और उसे तो ज्ञानीने देखा है,वही मान्य कर। इसकी पकड़ रख। यह तो मेरा आत्मा ही है। कमी बोधकी है। उसे सुने तो दृढ़ता होती है। अनजान और अंधा बराबर। समझकी आवश्यकता है।

★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. २०-२-३६

एक आत्मा है, शेष सब नाशवान है। संबंध हैं—आते हैं, जाते हैं, सुख है, दुःख है। पर एक आत्मा। आत्माके बिना कौन देख सकता है? जो सबसे पहले है उसे छोड़ दिया है। यह भूल है। एक आत्मा ही है। इस देहको मानना है क्या? यह मनुष्यभव है तो काम बन जायगा। पशु, पक्षी, कौवे, कुत्ते कुछ समझेंगे?

ढूँढिया या तपागच्छ यह कोई धर्म नहीं है। धर्म तो एक आत्माका है। यह तो स्त्री है, पुरुष है, वृद्ध है, युवान है यह सब मिथ्या है। एक आत्मा है। कोई भेदी पुरुष मिल जाय तो मनुष्यभव सार्थक हो जाय। अनंत भव बीत गये हैं, पर सिद्धि नहीं हुई। सब प्रमादमें जा रहा है।

सब उपचार करते हैं, रोग मिटाते हैं, स्वस्थ भी होते हैं, शिथिल भी होते हैं। अंतमें सब मर भी गये। माता-पिता, स्त्री-बच्चे मर गये, आत्मा नहीं मरा। इसका पता नहीं है। इसका पता करना है। हजार रुपये मिलते हों तो दौड़ता जाता है, वहाँ समय बिगाड़ता है। एक आत्माकी ही पहचान करनी है। विश्वास नहीं है, प्रतीति नहीं है। यह तो मैं जानता हूँ, मुझे पता है, यों मानता है। बीमार हो जाय तो घरमें पड़ा रहता है, पर आत्माके कामके लिये एक घड़ी भी नहीं रुक सकता। दृढ़ताकी आवश्यकता है। उसकी चिंता नहीं की। निश्चय करनेसे काम बन जाता है। आत्माको नहीं संभाला है। स्थान-स्थान पर यह सब तो झूठा लगता है। आत्माके लिये करें। 'यह मेरी स्त्री', 'यह मेरी माँ'—सब अंधेरा! अंतमें एक आत्मा है, वही कामका है। कर्मके कारण यह 'मेरा-तेरा' होता है। समय प्रमादमें बीत रहा है, भ्रममें बीत रहा है। पता नहीं है, पर कुछ है अवश्य। एकका नहीं, सबका यही हाल है। सचेत होने जैसा है। जो यह मार्ग ढूँढेगा उसका काम हो जायेगा। कानमें दो बोल पड़े यह अच्छा हुआ और वह उपयोगी है। जाग्रत हो जायेंगे तो कामका। बीमार हो, काम हो तो समय मिलता है, पर एक आत्माके लिये कुछ नहीं। कोई चीर डाले तो भी एक आत्माका ही काम करना चाहिये। विवाहके लिये, अच्छा दिखानेके लिये समय मिल जाता है। ब्याह कराने जाना हो तो नौकरीसे छुट्टी लेकर भी जाते हैं, पर आत्माके लिये समय नहीं मिलता। उसके लिये थोड़ी भी चिंता नहीं है। यह बहुत समझने जैसी बात है।

★★★

ता. ११-३-३६

आत्माके लिये तो करें ही। आत्माका ही व्यापार—सत्संग करें। इस संसारके समान मिथ्या कोई नहीं है। सारा लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। सुख कहाँ है? सब तूफान है, महादुःखरूप है। हमें तो अन्य कुछ कहना नहीं है। आत्माकी अधिक संभाल रखें। आत्माका ध्यान, समागम, परिचय करें। 'छह पद'का पत्र, बीस दोहें आदिका पाठ करें। कोई साथमें नहीं आयेगा। मेरा आत्मा ही कामका, वह अकेला ही कामका है। आत्माके लिये किया वह कल्याणके लिये किया, और वही सफल है। अतः आत्माका सत्संग करना योग्य है।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ता. १२-३-३६

"आजनो लहावो लीजिये रे, काल कोणे दीठी छे?"

ज्ञानीकी बात ज्ञानी जानें। बात समझनेकी है। बात दशाकी है।

मुमुक्षु—किसका लाभ लेना है?

प्रभुश्री—अति शीघ्रतासे।

मुमुक्षु—वह क्या?

प्रभुश्री—अपने आत्माका कुछ साधन कर लेना चाहिये, बस यही। जहाँ बैठे वहाँ आत्मा, आत्मा और आत्मा—एक आत्मा ही। बात थी स्वयं एक आत्माको समझनेकी। यही—आत्मा। "सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो" "आजनो ला'वो लीजिये रे काल कोणे दीठी छे?" चिंतामणि है, हाँ, अन्य सब माया है। 'धिंगधणी माथे किया।' एक स्वामी किया। अन्य कुछ नहीं। माया, संबंध, रुपया पैसा, शरीर आदि मिलना सब कर्माधीन है। जीव वस्तु आत्मा है, उसका नाश नहीं है। स्वामीकी आज्ञा स्वीकार की अतः सब हो गया। मूल वस्तु तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र वही आत्मा है। वही स्वामी है। उसे मान लेवें। यह मिल गया और विश्वास तथा प्रतीति हो गयी तो सब मिल गया। वह इतना मनुष्यभव है वह चिंतामणि है। धर्मका सच्चा लाभ लेनेका है। कुछ नहीं, मात्र एक आत्माकी पहचान, अन्य नहीं समझें। एक आत्माकी पहचान हो गयी तो बस। अंधा और अनजान बराबर। भेदी ही स्पष्टरूपसे बतायेगा कि दाँये हाथ जाना, ऐसा भेदी हाथ आ जाय तो काम बन गया। आजका अवसर कोटि कर्म क्षय कर सकता है। स्वाभाविक मार्ग ऐसा है!

आत्मा है। उसकी एकमात्र पहचान करें, निश्चय करें। कर्तव्य है, मान्य है, श्रद्धा है, प्रतीति है। खाना-पीना सभी संबंध है—और कुछ नहीं, उसकी बात नहीं है। ये सब अब पर है। यही है बाप। इसे जाननेकी आवश्यकता है। केवल यही कर्त्तव्य है। पर विश्वास कहाँ है? प्रतीति कहाँ है? उस पहचानका ठिकाना कहाँ है? पहचान कहाँ है? अनादिकालकी भ्रांति है। हमने तो एक मानने योग्यको माना है, जड़को इष्ट नहीं मानते।

★
★★

ता. १९-३-३६

इस जीवकी कुछ भूल है, गुत्थी उलझी है उसे सुलझाना है। भूल है, पर किसी पढ़े हुए को पूछे तो तुरत निकाल देता है। जीवको ऐसा लगता है कि 'वाह! बात बहुत अच्छी कही।' वहाँ क्या आया? आत्महित। 'मैं कुछ नहीं जानता, इस बातको तो ज्ञानी जानते हैं', ऐसा जहाँ होता है वहाँ द्वार खुलते हैं और मान्यता होती है। पर वहीं उलझन पड़ी है। धन्य भाग्य कि इस कालमें, इस मार्गमें, इस देशमें यह योग मिल गया है! वह किसी विरल पुरुषके लिये है। पूर्वकृत तो चाहिये। वह न हो तो कैसे सुनेगा? इस समय सभी अनुकूलता प्राप्त हो गयी है। जीव अन्य सब स्थानों पर दौड़ेगा, पर अभी कहाँ पता है कि उसे कुछ सुनना भी चाहिये? जहाँ स्वयंका पंजीकरण कराना हो वहाँ मान्यता हो गयी तो काम बन गया। कृपालुने मुझे कहा था कि 'तुम्हें कहीं जाना नहीं पड़ेगा।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'बात तो मान्यताकी है।' 'सद्धा परम दुल्लहा।' यह मनुष्यभव न हो तो कौवे-कुत्तेके भवमें कुछ हो सकता है? यह सब तो महा पुण्यके योगसे प्राप्त होता है। मगर यह तो उलझानेवाली भारी गुत्थी है।

"जहाँ कलपना जलपना, तहाँ मानुं दुःख छांई;
मिटे कलपना जलपना, तब वस्तू तिन पाई."

★
★★

ता. १९-३-३६

साता है, पूर्वबद्ध कर्मोंको भोगना है। अब बुढ़ापा आ गया है। कुछ अच्छा नहीं लगता। एक आत्मा है। हमारे तो एक ही है–समभाव, मैत्रीभाव। यह सब छोड़कर चले जाना है, कल सब चले जायेंगे। आप सब बहुत अच्छे हैं, उत्तम हैं। आपके प्रति एक आत्मभाव है। चमत्कार है! क्या? एक कर्तव्य है, कि जीवने जिस वस्तुको जाना नहीं है, वह एक ही है। क्या नहीं जाना? इस पर विचार कर्तव्य है। यथातथ्य पहचान नहीं हुई है। 'मेरे-तेरे'के मतभेदको छोड़ना पड़ेगा। यदि स्वास्थ्य ठीक हो तो बात इतने विस्तारसे करनी है कि इस जीवका सबके साथ मिलाप और 'सर्वात्ममें समदृष्टि' हो जाय। 'यह तो मेरा और यह तो तेरा', 'अच्छा और बुरा' हो रहा है, पर गुरु या शिष्य सबमें यथार्थ वस्तु तो आत्मभावना है। 'आतम भावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे.' यह एक मंत्र हाथ लग जाय तो जीवनडोरके समान है। तब क्या हाथ नहीं लगेगा? एक आत्मभाव करना और परभावको छोड़ना। परभावसे अनंत बंध और भव करने पड़ते हैं। भाव और परिणाम मुख्य बात है। जैसे भाव करेंगे वैसा फल प्राप्त होगा। भेदीके मिलने पर सिद्धि होती है। प्रसन्नचंद्र राजर्षिको अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान हो गया। एक पहचान नहीं है, उसकी आवश्यकता है। एक बड़ी भूल है, सत्संग, बोध और श्रद्धा नहीं है। लींबड़ी और अमुक संघाडा मेरा है यों मानता है। उसका वैसा ही फल होता है। यह सब संबंध है। पहली वस्तु समकित है। उसके बिना 'रुला चतुर्गति मांहि'। ये तो ज्ञानीपुरुषके वचन हैं। सब मेहमान हैं। आत्माको जानें। 'पावे नहि गुरुगम बिना'। 'गुरुगम' कहा, यह तो चमत्कार है! जाने दे, जाने दे, जाने दे, पता नहीं है। मेहमान है। पवनसे भटकी कोयल है, लूटालूट, पकड़ करनी है। "उपयोग ही धर्म है, परिणाम ही बंध है।" यह सारे धर्मका सार है। सत्संग चाहिये या नहीं? गच्छ, मत, पुस्तक, शिष्य ये सब मिल जायेंगे, पर यह नहीं मिलेगा। एक गुरुगम, उसके बिना कुछ नहीं। विचार तो सही। पता नहीं है। गुरुगम क्या है, उसे जाननेकी आवश्यकता है। जाने बिना छुटकारा नहीं है। 'सद्धा परम दुल्लहा'। सत्संग और बोध चाहिये या नहीं? गच्छ मत कुछ नहीं है। ज्ञानीने 'गुरुगम' बताया, क्या उसका यथार्थ निश्चय करनेकी आवश्यकता नहीं? कमी योग्यताकी है, सब सुन रहे हैं। योग्यता प्राप्त किये बिना काम नहीं होगा। आत्माके समागममें रहियेगा। आप सब जीव उत्तम हैं।

आत्माको जाननेकी आवश्यकता है। किसी भी प्रकारसे आत्माको जानना है। भावना–बारह भावना कर्तव्य है। अब तो दिन निकट हैं। बहुत जीवोंसे मिलकर देखा हैं। कुछ साथ आयेगा? रुपये-पैसे साथ नहीं आयेंगे। आत्मा असंग-अप्रतिबद्ध है। इसकी रिद्धि क्या? अनंतचतुष्टय–अनंत दर्शन-ज्ञान-वीर्य-सुख, इसकी रिद्धि है। चाहे जिससे पूछें, सबसे बड़ी वस्तु तो आत्मज्ञान है–उससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्धार होगा। वह क्या है? आत्माको जानना है। अनंत लोग मोक्ष गये वे प्रथम समकितके बिना नहीं गये। समकित जैसी कोई वस्तु नहीं है। समकितके पाँच लक्षणोंमें 'शम' कहा है, इसमें कैसा सुख होगा? भगवान भी वाणीमें कह नहीं सके ऐसा सुख है। 'शम' आते ही समकित। ज्ञान-दर्शन कल्याणरूप है। ज्ञानीने जैसा देखा वैसा आत्मा है। चेत जायें। एक आत्माको पहचानें। काम बन जायेगा।

★★★

नासिक, ता. २९-३-३६

संकल्प-विकल्प, कल्पनासे परे अबाध्य अनुभव है।

"जो जो पुद्गल-फरसना, निश्चे फरसे सोय;
ममता-समता भावसे, कर्म बंध-क्षय होय."

"जब जाकौ जैसौ उदै, तब सोहे तिहि थान;
शक्ति मरोरैं जीवकी, उदै महा बलवान."

(समयसार नाटक : बंधद्वार, ७)

यह स्त्री है, यह पुरुष है, अच्छा है, बुरा है, यह सब संबंध है। आत्मा तो है वैसा है—ज्ञानीने देखा वैसा है। पुद्गलका नाश है। आत्माका नाश नहीं है।

ऐसा समझ लो कि बीस दोहे महामंत्र है, चमत्कार है! ये सब पुद्गल नाशवान हैं, उसमें मोह है। परंतु एक मात्र मोक्षकी इच्छा रखनी चाहिये। शरीर मेरा नहीं है। 'आत्मसिद्धि' और 'छह पद'के पत्रका मनन करते रहो। खूब विचारपूर्वक उसीका ध्यान रखो। सद्गुरुके कहनेसे बस इतना ही करोगे और यही मान्यता रहेगी तो सब मिलेगा। एक मात्र वीतरागका मार्ग ग्रहण करो, अन्य नहीं। जो जो मैंने किया है उसके लिये क्षमायाचना करता हूँ, परंतु छूटनेके लिये और परमार्थके लिये।

करनेकी बात एक ही है, धर्म। गुरुगम है, चाबी हाथमें है, पर उनकी कृपा होनी चाहिये। कृपा हुई तो वही होगा, इनकी कृपा हो जाय तो बस, फिर कुछ नहीं चाहिये। कृपालुकी कृपा है, उसके लिये तैयार हुए बिना छुटकारा कहाँ है? तैयार न होना है तो जायें। यदि तैयार हो गये तो काम बन गया।

यह जीवनडोर है। इस कलियुगमें विश्वास और प्रतीति रखें। पता नहीं है। चमत्कार है! ज्ञानीने कहा सो आत्मा मुझे मान्य है। यह बात मिथ्या नहीं है। मात्र एक स्वामी, एक गुरुको सिर पर रखें, फिर कौन कहनेवाला या भुलानेवाला है? बस इतनेमें समझ जाये तो बहुत हुआ।

मेरा तो वही गुरु है। अन्य सब तो व्यर्थ है। एक आत्मा ही मेरा है। एक आत्माका निश्चय कराना है। मान्यताकी बात है। न मानें तो कुछ नहीं। समय प्रमादमें बीत रहा है। यह बात चमत्कार है! हमने तो पकड़ कर ली है—अन्य स्वामी नहीं, गुरु नहीं। स्वामी तो वह एक ही है। गुरुने बतायी वह एक पकड़ रखनी चाहिये। जो पकड़ेगा उसका काम बनेगा। पकड़ा कि काम हुआ। वज्रलेप है। जिसने पकड़ी उसके बापकी—लाखों-करोडों रुपयोंकी बात है। ऐसी-वैसी नहीं। प्रमादमें न बीतने दें। सतत स्मरण रखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक आत्मा सत् है। चिंतामणि समान मनुष्यभव प्राप्त किया है। हड्डी-चमड़ी आत्मा नहीं है। ज्ञानीने आत्मा देखा है। अन्य सब चला जायेगा। अभी कोई उपाय नहीं है। एक भाव है। पुत्र, माता, पिता, स्त्री, पैसा आदि सब मिट्टीके ढेले और राखकी पुड़िया हैं। कोई साथ ले गया है? मात्र आत्मा ही है। वह न तो स्त्री है और न ही पुरुष है। इन सबको दियासलाई दिखा दे। एक आत्मा जो ज्ञानीने देखा है वह मुझे मान्य है। 'सद्धा परम दुल्लहा'। एक ही वचन मानना है, लक्ष्यमें लेना है। तूने जो मान रखा है उसे अमान्य करना है। मेरा तो एक आत्मा ही है ऐसा मानना है।

पर बोध नहीं है, गुरुगमकी चाबी नहीं है। किसको पूछे? ताऊको? प्रतीति नहीं, विश्वास नहीं, पकड़ नहीं है। मात्र एक काम करने योग्य है वह यह कि "दूसरा कुछ मत खोज। मात्र एक सत्पुरुषको खोजकर उनके चरणकमलमें सर्वभाव अर्पण करके प्रवृत्ति किये जा। फिर यदि मोक्ष न मिले तो मुझसे लेना।"

ये चर्मचक्षु हैं। भवोभव बीत गये पर इन चक्षुओंने सत्यानाश ही किया है।

"सेवे सद्गुरु चरणने, त्यागी दई निजपक्ष;
पामे ते परमार्थने, निजपदनो ले लक्ष."

यह पढ़कर कहेगा, "मुझे आता है।" आत्माका भाव करना है। पहचान करनी है, इसका पता नहीं है। भाव तो आत्माका। मुख्य बात आत्माकी। भाव तो कहाँ नहीं है? 'छह पद'का पत्र चिंतामणि है। साथमें आये ऐसा है, बहुत उत्तम है।

देह है वह कुछ आत्मा है? देह तो निश्चय ही नाशवान है, संबंध है। शरीरको टिकाये रखनेके लिये आवश्यक हो उतना करना चाहिये।

देहमें जो वेदना है वह तो कर्म है। गुरुके प्रतापसे आत्माको जाना, अतः हमें तो कुछ लगता नहीं। आत्माके साथ देह या वेदनाका कुछ लेना-देना नहीं है। वह तो जानेके लिये है। शरीर तो सबका जायेगा ही। किसीका रहेगा? कितनी ही बार शरीर धारण किये और कितनी ही बार छोड़े। सुख दुःख सब कल्पना है। जन्म, जरा, मरण चलते आ रहे हैं। हड्डी, चमड़ी, मांस, लहू, पीपके बने इस शरीरमें 'यह मेरा हाथ, यह मेरा पाँव, यह मेरा मुँह' यों 'मेरा मेरा' कर बैठा है और मोहनिद्रामें पड़ा है।

मुमुक्षु–'छह पद'के पत्रमें मोक्षका उपाय 'समाधि' बताया गया है, वह कैसे प्राप्त होगी?

प्रभुश्री–सद्गुरुका लक्ष्य रखें और उनका जो लक्ष्य है उस पर लक्ष्य रखें। 'आतमभावना भावतां जीव लहे केवलज्ञान रे।' यह भावना रखनेसे समाधि होगी।

एक मुल्ला एक व्यक्तिको नित्य कुरान सुनाने जाता था। पर उसको समय न होनेसे वह नित्य उसे वापस लौटा देता था। फिर वह व्यक्ति मर गया तब कब्रमें दफनाते समय मुल्ला कुरान सुनाने लगा। सब लोग पूछने लगे, "ऐसा क्यों कर रहे हैं?" उत्तरमें मुल्ला बोला–"आज तक इसको समय नहीं था इसलिये अब सुनाता हूँ।" सब बोले "अब तो वह मर गया है।" मुल्लाने कहा, "वह तो मर गया है, पर आप तो सुन रहे हैं न?"

प्रभुश्री–(सबसे) मृत्यु आये तब क्या करना चाहिये?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. मुमुक्षु—पहलेसे तैयारी रखनी चाहिये। थोड़ा-थोड़ा सहनशीलताका अभ्यास करना चाहिये।

२. मुमुक्षु—योद्धाने शस्त्रप्रयोग सीखा हो तो युद्धके समय काम आता है।

प्रभुश्री—यह बात बहुत गहन है। यह जीव क्षण क्षण मर रहा है। अतः क्षण-क्षण जागृति रखनी चाहिये। समय मात्रका भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। नित्य मृत्युको याद रखना चाहिये, जिससे ममत्वभाव नहीं रहेगा। जीव घिर जायेगा तब तो कुछ नहीं हो सकेगा।

जैसा भाव, शुभ किया तो तदनुसार और शुद्ध किया तो तदनुसार फल मिलेगा। तात्पर्य यह कि सबसे लघु बन जायें, विनय करें। विनय संक्षिप्त मार्ग है। विनयमें सब समाहित है। झुकनेवाला परमेश्वरको भी अच्छा लगता है। सहनशीलता और क्षमा बड़ेसे बड़ा उपाय है। चाहे जो हो जाये तो भी क्षमाका भाव रखें।

समकितीका लक्षण क्या? उलटेको सीधा करे। 'मेरा-तेरा' छोड़े तो समकित आता है। सन्मुखदृष्टि होनी चाहिये। समकितीके पास रागद्वेष आते ही नहीं। उसकी समझ बदल गयी है। उसे पहचान (आत्माकी) हो गयी है। बीचमें वज्रकी दीवार खड़ी हो गयी है। समकिती बारंबार अपने दोष देखता है। वह सोचता है कि वह जो कुछ करता है वह बाह्य है, वहाँ आत्मा नहीं है। और अन्य तो जो कुछ करते हैं, उसमें अहंभाव रखते हैं। कितना अंतर है? भाव, उपयोग न हो तो मुर्दे हैं। भाव है या नहीं? कहाँ दूर लेने जाना है?

रोग आये, पैसा चला जाये, क्रोध आये तब उपाय क्या? समभाव। सदाचारमें प्रथम समभाव। उसके पहले विनय, श्रद्धा, प्रतीति आनी चाहिये। रुचि होनी चाहिये। रुचि हो तो झटपट खाना खा लेता है।

आत्मा है, पहचान होनी चाहिये। उसे पकड़ना आना चाहिये।

काल कहता है कि मैं सब जगह जाता हूँ, इन्द्रलोकमें भी जाता हूँ, किन्तु समभावके आगे मेरा कुछ नहीं चलता।

★

प्रतिबंध कर बैठता है, पुद्गलमें आसक्त हो जाता है। दृष्टिमें विष है। ज्ञान हो तो विषयकषाय हो सकते हैं? कषायसे तो वह भिन्न है। कषाय तो कर्म हैं, वे तो पड़े हैं। उससे आत्माको क्या? ज्ञानको क्या? बहुत पढ़ा हो, पूर्वका ज्ञान भी हो, पर समकित न भी हो।

ध्यानमें रखो कि अब कुछ अपूर्व करना है। वह यह कि शरीर है इसीलिये यह सब हुआ है, देह ही शत्रु है, अतः सबसे प्रेमको खींचकर आत्मासे जोड़ देना है।

देखो, समभाव, सामायिक ग्रहण करो। केवलज्ञान तक उसमें समाहित है। क्षमा और आज्ञा भी चाहिये।

★
★ ★

+'रत्नकरंड श्रावकाचार'मेंसे समकितके आठ अंग, बारह भावना, संलेखना आदि छपाने

+ 'समाधिसोपान'में, प्रभुश्रीकी विद्यमानतामें ही ये प्रकाशित हो चुके हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य है। आजकल लोगोंकी मति अल्प है, इसलिये थोड़ेमें समझमें आये वैसा इसमें है। इसमें मर्मकी बात भी है। पढ़ा हो, पर्याय पड़े हो तो याद आती है। रोगके समय वृत्ति मंद न हो ऐसे आधार भी उसमें रखे हैं। आधार हो तो गिर न पड़े। [1]'समयसार'का भी अनुवाद होना चाहिये। हमने जितनी पुस्तकें पढ़ी है, उनमेंसे ये दो ठीक लगी है।

★★★

हम तो सबको आत्मा देखते हैं। सात व्यसनका त्याग करना चाहिये। क्षमापना, बीस दोहे, आत्मसिद्धि, छह पदका नित्य पाठ करें, चिंतन करें। प्रार्थना बोलते समय ऐसा न मानें कि भगवान दूर है, पर यहीं पास ही है ऐसा मनमें सोचकर बोलें। विश्वास रखना है। विश्वास होगा तो काम बन जायेगा। यह सच्ची हुँडी है, ऐसी-वैसी नहीं है। बाह्य वेष न देखें। व्यवहारमें भी ऐसा होता है कि किसीके साथ आपकी जान-पहचान हो तो उसके साथ लेन-देन आरंभ हो जाता है। फिर अधिक पहचान हो जाने पर उसके साथ व्यवहार करनेमें कोई डर नहीं लगता। इसी प्रकार इस जीवने अभी तक आत्माका व्यवहार प्रारंभ नहीं किया है। व्यवहार करने लगे तो विश्वास जम जाता है और पहचान होती है। पहचान होनेके पश्चात् श्रद्धा होती है, जिससे किसी प्रकारकी चिंता नहीं रहती। अभी तो यह जीव मिथ्यात्वमें परिणत हो रहा है, मिथ्यात्वके कारण सुख दुःखकी मान्यता हो रही है, पर वास्तवमें सुखदुःख मिथ्या हैं। एक बार श्रद्धा हो जाय तो सब बोझ उतर जाता है। अत्यंत धूप पड़ रही हो, सिर पर बोझ लदा हो, थककर चूर हो रहा हो, ऐसे व्यक्तिका बोझ उतर जाय और ठंडी छायामें आनंदसे बैठनेका स्थान मिल जाय तो कितनी शान्ति मिलती है? वैसे ही आनंदमय आत्माकी श्रद्धा होनेसे सुख-दुःखका बोझ उतरकर शांति प्राप्त होती है।

द्रव्य दो हैं–जड़ और चेतन। किन्तु मिथ्यात्वके कारण यह जीव जड़को जड़रूपसे नहीं पहचानता और चेतनको चेतनरूपसे नहीं जानता। अंधा और अनजान बराबर हैं, ऐसा हो गया है। जो जो वस्तु देखता है, उसे जड़रूपसे नहीं मानता। उसकी पर्यायबुद्धि है, इसलिये पर्याय देखता है और उसके निमित्तसे राग-द्वेष हो जाते हैं।

★★★

१. 'समयसार' का गुजराती अनुवाद भी आश्रमकी ओरसे प्रकाशित हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशसंग्रह–६

☆

जेठ वदी ३, सं. १९७९

हमें तो सत्य कहना है। अपनी मतिसे शास्त्र पढ़कर, मेरी बुद्धिमें तो ऐसा आता है और वैसा आता है मानकर बुरा कर रहे हैं। ज्ञानीपुरुषकी दृष्टिसे रहना चाहिये। हमें तो एक ही दृष्टि रखनी है, रखवानी है, उससे किंचित् भी अलग नहीं पड़ना है। सब छोड़कर एक मंत्रका स्मरण करें और शास्त्र भी यही दृष्टि बढ़ानेके लिये पढ़ें। ज्ञानीपुरुषके सिवाय अन्यके मुखसे धर्मकी बात न सुनें। जीव प्रेमको चारों ओर बिखेर देता है उसके बदले सारा प्रेम एक पर ही कर देना चाहिये।

★★★

पूना, ता. २-९-२४

अन्य किसीके दोष न देखें और मात्र अपने ही दोष देखनेकी दृष्टि रखें। किसी भी व्यक्तिके गुप्त दोष, छिद्र प्रकट न करें। इसमें बड़ा खतरा है।

किसी आचार्यका एक शिष्य एक स्त्रीके संपर्कमें आया। स्वयंको विकार होनेसे उस स्त्रीने शिष्यको अपने साथ संबंध करनेकी माँग की। परंतु शिष्य अडिग रहा, तब स्त्रीको अपनी बेइज्जतीका डर लगा, जिससे उसने शिष्यको छुरीसे मार दिया और गुप्त रीतिसे जमीनमें गाड़ दिया। आचार्यको किसी प्रकार शिष्यका पता नहीं लगा। बादमें स्त्रीको अपने कार्यके लिये पश्चात्ताप हुआ, अतः आचार्यके पास प्रायश्चित्त लेने गयी। आचार्यने उस स्त्रीको दूसरे दिन आनेको कहा।

शिष्यका पता लगनेका अवसर आया है ऐसा कहते हुए आचार्यने दूसरे दिन स्त्रीके आनेके समय संघवीको आनेके लिये कहा। दूसरे दिन संघवी आया तब आचार्यने उसे पेटी(संदूक)में बंदकर पेटी अपने पाटके पास रख दी। फिर स्त्री आयी। प्रायश्चित्त लेनेके लिये स्त्रीने शिष्यको मारनेका अपराध स्वीकार किया। आचार्यने तुरंत पेटी (संदूक) पर हाथ मारकर संघवीको सुननेका संकेत किया। स्त्रीको संदेह हो गया कि संघवी–उसका श्वसुर वहाँ है, इसलिये वह लज्जित होकर चली गयी। उस स्त्रीने आत्महत्या कर ली। अपयशके डरसे उसके सास, ससुर और पतिने भी आत्महत्या कर ली। यों सबकी आत्महत्याका पाप आचार्यके सिर पर आ पड़ा। फिर आचार्यने भी आत्महत्या कर ली।

इस प्रकार अन्यके गुप्त दोष प्रकट करनेमें बड़ा खतरा है।

★★★

पूना, ता. २-९-२४

परमकृपालुदेव द्वारा प्ररूपित सनातन जैन वीतरागमार्गकी पुष्टिके लिये ही यह आश्रम है। आश्रमके निकट रहनेवाले समझदार मुमुक्षुओंको साथ रखकर ट्रस्टियोंको यह देखना चाहिये कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्रममें पवित्र सनातन जैन मार्गको आँच न आये। आश्रममें रहनेवालोंको ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य करना चाहिये। स्त्रियोंको अकेले नहीं रहना चाहिये। व्यवहारशुद्धि बराबर रखनी चाहिये।

कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रकी सेवा-पूजा करें। हमको तो कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्र प्रत्यक्ष ही हैं। उन श्री कृपालुदेवके सिवाय हमें कुछ भी नहीं हैं। रोम रोममें वे ही हैं। मात्र उनकी ओर ही सबको ले जा रहे हैं।

इस आश्रमके प्रारंभमें हमारी सेवापूजा हुई, पुष्प भी चढ़ाये गये। उस समय भी हमें वह विष समान ही लगता था। परमार्थ हेतुसे उसे चलने दिया गया। समय आनेपर अवसरका लाभ लेनेका ध्यानमें था। संघ हमारे माँ-बाप हैं। अतः उनके समक्ष आज यह प्रकट कर हम अब मुक्त होते हैं।

कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रके वचनानुसार इस आश्रममें एक मात्र सनातन जैनधर्मकी पुष्टि होनी चाहिये। कृपालुदेवकी आज्ञासे सदाचरणपूर्वक व्यवहार न करना हो तो फिर आप स्वच्छंदसे आश्रममें चाहे जैसा व्यवहार कर सकते हैं। आश्रम ट्रस्टियोंको सौंपकर हम तो मुक्त हो गये हैं। सनातन जैनमार्गकी पुष्टिके लिये ट्रस्टियोंको निर्भयतापूर्वक व्यवहार करना चाहिये। किसीके भी असत् व्यवहारको चलने नहीं देना चाहिये। साधुको भी स्त्रीके परिचयमें देखा जाय तो आश्रममें स्थान नहीं देना चाहिये।

संघको हमारे दोष भी हमें बताने चाहिये। युवावस्थामें हमने यथाशक्य उत्कृष्ट त्यागका सेवन किया है। वृद्धावस्थाके कारण कुछ अपवाद स्वीकार किये हैं, पर उसके लिये भी हमें पश्चात्ताप ही है।

यह व्यवस्था कर अब हम एकांतका सेवन करना चाहते हैं। श्री संघसे विनति है कि हमारी आज्ञाके बिना कोई हमारे समागममें न आये। आश्रममें किस प्रकारकी प्रवृत्ति चलती है, इसका पता हमें जहाँ हम होंगे वहाँ चल जायेगा। आने जैसा लगेगा तो वैसी भावना रहेगी।

*
* *

फाल्गुन सुदी पूर्णिमा, सं. १९८६

आज किसी आंतरिक स्फुरणासे, पुराणपुरुषकी कृपासे, हमने आपको अपना अंतःकरण खोलकर बात करनेके लिये बुलाया है। वह बात संसारकी, स्वार्थकी या व्यापारकी नहीं है, पर मात्र आत्महितकी, परमार्थकी है। इस देहका क्या भरोसा! बुढ़ापा आ गया है इसलिये हम अंतःकरण खोलकर यह स्पष्ट बात आपको बता रहे हैं। अभी तक यह बात हमने किसीसे नहीं कही है। ये शब्द तो पहले भी कहे गये होंगे परंतु जिस-तिस अवसरकी प्रेरणाशक्ति और उसका योगबल तो नया है। आपको कहने योग्य समझकर कहनेकी प्रेरणा होनेसे चार-पाँच दिनसे आपको बुलानेका विचार हो रहा था। आज अवकाश मिलने पर बुलाया है। हम जो कह रहे हैं उसे बराबर लक्ष्यमें रखियेगा। दिन-प्रतिदिन, प्रतिसमय ध्यानमें रखियेगा। यही करना है। यह सब आज समझमें न आये, फिर भी श्रद्धासे मान्य रखना है। वह भविष्यमें अवसर आने पर समझमें आयेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री महावीरस्वामीने गौतमस्वामीको आज्ञा दी थी कि जाओ, अमुक व्यक्तिको यह संदेश दे दो। परमकृपालुदेवने सौभाग्यभाईको कहकर भेजा कि तुम मुनिको इस प्रकार कहना। पर परमकृपालुदेवने यों हमसे नहीं कहा कि तुम इस प्रकार कहना। (यह व्यक्तिगत बात है। कृपालुश्रीने पत्रोंमें तो सामान्यतः 'आत्मार्थीको ऐसा कहें, इस प्रकार उपदेश दें' आदि बताया है जो 'श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथ देखनेसे समझमें आयेगा।) परंतु आज्ञा किसी जीवात्माको प्रत्यक्ष पुरुषके स्वमुखसे प्राप्त हुई होती है, किसीको प्रत्यक्ष पुरुषके कहनेसे कोई अन्य जीवात्मा आज्ञा देता है और कोई जीव प्रत्यक्ष पुरुषसे प्राप्त आज्ञाका आराधन करते जीवात्माको देखकर 'यह आराधक सच्चे पुरुषकी आज्ञाका सच्चे प्रकारसे पालन कर रहा है' ऐसे विश्वाससे उस प्रकारसे उस प्रत्यक्ष पुरुषकी आज्ञा-आराधकको प्राप्त आज्ञाको आत्महितकारी जानते हुए उस आराधकसे जानकर, समझकर उपासना करता है, जैसे कि वणागनटवरको प्रत्यक्ष पुरुषसे आज्ञा प्राप्त हुई और उसकी उपासनाको देखकर, वणागनटवर सच्चे पुरुषकी आज्ञा सत्य प्रकारसे पालन कर रहा है ऐसी श्रद्धासे, उसका दास 'यह वणागनटवर जो और जिस प्रकारसे उपासना कर रहा है, वही मुझे भी हो! मैं कुछ समझता नहीं' ऐसा विचार करते हुए आज्ञा-आराधक बनकर कल्याणको प्राप्त हुआ। इसी प्रकार हमें परमकृपालुदेवने जो आज्ञा दी है, जिसकी आराधना हम कर रहे हैं, जिस पर हमें दृढ़ श्रद्धा है वह हम आज आपको स्पष्ट अंतःकरणसे खुले शब्दोंमें कहते हैं, क्योंकि हमारे वचन पर आपको विश्वास है, श्रद्धा है कि ये जो स्वयं आराधन करते हैं वही कहते हैं। परमकृपालुदेवकी आज्ञाकी परिणामपूर्वक दृढ़ श्रद्धासे उपासना करेंगे तो कल्याण ही है। वह आज्ञा 'सहजात्मस्वरूप' ही है, और यही आत्मा है, ऐसी दृढ़ श्रद्धा रखें। यह तो सुना हुआ है, इसमें अन्य नया क्या है? इस प्रकारके विकल्पसे सामान्य रूपमें न निकाल दें। इसमें कुछ अलौकिकता समायी हुई है, ऐसा मानकर दृढ़ श्रद्धासे आराधन करें।

मरण तो सबको है ही; शरीर धारण किया तभीसे मरण है और मरणसमयकी वेदना भी असह्य होती है। अच्छे-अच्छे लोग भान भूल जाते हैं। उस समय कुछ भी याद नहीं आ सकता। अतः अभीसे उसकी तैयारी कर रखनी चाहिये जिससे कि समाधिमरण हो सके। 'मृत्युके समय मुझे अन्य कुछ न हो, यही आज्ञा मान्य हो! मैं कुछ भी नहीं जानता, परंतु ये जो कहते हैं वही सत्य है और वही आज्ञा मान्य हो!' यों तैयारी करके रखें। जीव प्रतिसमय मर रहा है। अतः समयमात्रका भी प्रमाद नहीं करना चाहिये। 'समयं गोयम मा पमायए' इस वाक्यको याद करके समय-समय आज्ञामें परिणाम रखना चाहिये। मेरा तो इन पुराणपुरुष परमकृपालुदेवने जो कहा है वह एकमात्र 'सहजात्मस्वरूप' ही है। अन्य कुछ मेरा नहीं। अंतरात्मासे परमात्माको भजना है। अतः अंतरंगसे (अंतरात्मा होकर परमात्मामें जिसे दृढ़, सत्य श्रद्धा है वह अंतरात्मा है) दृढ़ श्रद्धा रखकर आज्ञाकी उपासना करनी चाहिये। ये संयोग-संबंध—स्त्री, पुत्र, माता, पिता, भाई आदि सब पर्याय हैं (कर्मजन्य पौद्गलिक और वैभाविक पर्याय हैं) और नाशवान हैं। अतः वे कोई भी मेरे नहीं हैं। मेरे तो एक सत्स्वरूपी परमकृपालुदेव हैं और उन्होंने जो आज्ञा दी है और कहा है वैसा सहजात्मस्वरूपी एक आत्मा ही है। वह सहजात्मस्वरूप—आत्मा है, नित्य है आदि छह पद जो परमकृपालुदेवने कहे हैं, उस स्वरूपवाला है। वही मेरा है ऐसा मानें। अभीसे तैयारी करके रखें कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृत्युके समय यह आज्ञा ही मानूँगा, अन्य कुछ नहीं मानूँगा। यह माननेसे ही, यह मान्यता रहनेसे ही उसके साथ जो मरण है वह समाधिमरण है। ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय सहजात्मस्वरूप आत्मा ही अपना है, ऐसा मानें। जीव स्वेच्छासे श्रद्धा, भावना करे उसकी अपेक्षा यह तो साक्षी हुई, हमारी साक्षीयुक्त हुआ।

एक चक्रवर्ती राजा हो तो उसे जीत सकना कठिन है, तब ये तो चार चक्रवर्ती–क्रोध, मान, माया, लोभरूप–राज चला रहे हैं। उन कषाय और विषयरूपी कर्मराजाकी अनीतिके विरुद्ध सही सत्याग्रह करना है। उस विषय-कषायसे भिन्न मेरा स्वरूप तो परमकृपालुदेवने जो आज्ञा दी है उस सहजात्मस्वरूप ही है। यों प्रतिसमय दृढ़ श्रद्धापूर्वक व्यवहार करें और वैसा करते हुए जो भी आये उसे सहन करें। सहनशीलताका मार्ग है और इस प्रकारका सत्याग्रह ही सही सत्याग्रह है और यही करना है। अपनेको इस सत्याग्रहमें स्वयंसेवकके रूपमें नाम लिखवाना है। वास्तविक आत्म-कल्याणरूप यह सत्याग्रह करें। परमकृपालुदेव द्वारा प्रबोधित आज्ञा सहजात्मस्वरूप ही आत्मा है और वही मेरा है, यों भावना, दृढ़ श्रद्धा, परिणाम करें।

पाँच [+]समवाय कारण मिले तब कार्यनिष्पत्ति होती है और उसमें पुरुषार्थ श्रेष्ठ है। अतः पुरुषार्थ ही कर्तव्यरूप है। आज्ञाकी उपासना करें और ऐसा करते हुए सदा आनंदमें रहें। मेरा स्वरूप तो ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय आत्मा ही है। उससे अन्य जो कुछ है वह विनाशी है, फिर उसका खेद क्यों? अतः खेद न करते हुए सदैव आज्ञामें लक्ष्य-उपयोग रखकर प्रवृत्ति करते हुए आनंदमें रहें। यही करना है, ऐसा निश्चय करें और यही सच्चा व्रत है। आज्ञामें उपयोग, उसकी उपासना यही आराधन करने योग्य सच्चा व्रत है। अनंतज्ञानी जो हो गये हैं उन सबका यही मार्ग है, यही आज्ञा है, और यही प्रत्यक्षरूपमें परमकृपालुदेवने बतायी है। अतः परमकृपालुदेवकी आज्ञाका आराधन करनेमें सर्व ज्ञानियोंकी उपासना आ जाती है।

यह बराबर स्मरणमें रखें, उपयोगमें रखें और इसी मान्यताको ऐसा दृढ़ करना है कि मृत्युके समय वही हमको हो! यही लक्ष्य रखें। इसे नित्य स्मरण करें, विचार करें। हमारी यही आपको सूचना है और यही करना है। यह किसी पुराणपुरुषकी अत्यंत कृपा है।

श्रावण सुदी १४, सं. १९८८, सायं साढ़े सात बजे
(मुनिश्री मोहनलालजीकी बीमारीके समय)

'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'
'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'
'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'

आत्मा है, भिन्न है, टंकोत्कीर्ण है, असंग है। जड़ जड़ है, चेतन चेतन है।

+"काल स्वभाव उद्यम नसीब, तथा भावि बलवान;
पांचों कारण जब मिले, तब कार्यसिद्धि निदान."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"जडभावे जड परिणमे, चेतन चेतन भाव;
कोई कोई पलटे नहीं, छोडी आप स्वभाव."

अपने स्वभावको छोड़कर कोई कभी नहीं बदलता। वेदनी वेदनीके कालमें क्षय होती है। मोक्ष है। निर्जरा ही हो रही है। आत्मा शाश्वत है, त्रिकाल ही रहेगा।

'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'
'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'
'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'

★★★

रातको साढ़े दस बजे

प्रभुश्री—सुनायी दे रहा है या नहीं?

मुमुक्षु—सुन सकते हैं, बहुत भान है।

प्रभुश्री— 'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'
'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'
'सहजात्मस्वरूप परमगुरु'

उपयोग ही आत्मा है। विचार ही आत्मा है। उपयोग है, विचार है वह आत्मा है। उपयोग, विचार यदि निश्चयनयसे आत्मा पर जाय तो कोटि कर्म क्षय हो जाते हैं। अतः इस पर लक्ष्य रखें। अथवा सत्पुरुष मिले हों, बोध हुआ हो, भान हुआ हो तो उसे कुछ अड़चन नहीं है। वेदना, जन्मजरामरणका महा दुःख है। वेदनाको अधिक आनेके लिये कहें तो नहीं आयेगी और कम हो जाओ कहें तो कम नहीं होगी। अतः रागद्वेष नहीं करना चाहिये। वह तो भिन्न ही है। सत्पुरुषका बोध, उनकी आज्ञामें रहना चाहिये। पालन न हो सके तो मेरे कर्मका दोष है, पर सत्पुरुषने जाना है वैसा ही मेरा आत्मा है। यों श्रद्धा, मान्यता होगी तो भी उसका वणागनटवरके दासकी तरह काम बन जायेगा। यह स्थान ही अलग है। अनेकोंका काम बन जायेगा। बाकी संसारमें तो 'आप जाओ, हम आ रहे हैं,' 'खड़ा है वह गिरेगा'। तात्पर्य, मरण तो सबको है ही। अतः पर्यायदृष्टि नहीं रखनी चाहिये। यह सब पर्याय ही हैं। प्रकृति—स्वभाव है, उसे न देखें। उपयोगपूर्वक, विचारपूर्वक देखें। वैसे वास्तविक तो ज्ञानी ही जानते हैं और वे ही कह सकते हैं। 'आत्मा है', ऐसा जाने बिना हमसे नहीं कहा जा सकता। पर ज्ञानीने जाना है, इस श्रद्धासे कहे तो आपत्ति नहीं है। ब्रह्माग्निमें सब जल जाता है; कर्म नष्ट होते हैं। यदि उपयोग, विचार आत्मा पर गया तो करोडों कर्म नष्ट हो जायेंगे। इन मुनिने तो सब कर लिया है। सब जीवोंसे क्षमायाचना भी कर ली है। अच्छे समयमें कर लेना चाहिये। परवशतामें कुछ नहीं हो सकेगा।

★★★

श्रावण वदी ३०, सं. १९८८

तीन लोकमें सार वस्तु आत्मा है। आत्मा किसके द्वारा ग्रहण होता है? उपयोगके द्वारा ग्रहण होता है। ज्ञानीने आत्माको जाना वह मुझे मान्य है। इस श्रवण, बोधके प्रति जिसकी अविचल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रद्धा रहेगी उसका कल्याण होगा।

पर्यायदृष्टि अर्थात् शरीर, मन, वचन और उनके द्वारा ग्रहीत पौद्गलिक भाव, वह मैं नहीं। पर्यायदृष्टिको छोड़नी चाहिये।

जिस समय पर्यायदृष्टिमें उपयोग जुड़ता हो उस समय देहत्याग कर मरना अच्छा है और उपयोग आत्मदृष्टि पर जाता हो तो शरीरको रत्नकरंडके समान मानकर उसकी सँभाल लेना योग्य है।

घरमें आग लगने पर विचक्षण पुरुष सारभूत वस्तुओंको बाहर निकालकर, जिन्हें न बचा सके उन्हें जलने देता है; जबकि नासमझ व्यक्ति व्यर्थ वस्तुओंको निकालनेका, बचानेका प्रयत्न करता है। इसी दृष्टांतसे यह मनुष्यशरीर जो क्रोधादि भावसे जल रहा है और क्षणभंगुर है उसमेंसे रत्नत्रयरूप आत्माके तीन रत्नोंको सिद्ध (प्राप्त) कर लेना चाहिये।

कुछ समझमें न आये तो मेरे गुरुने कहा है, वह मुझे मान्य है, यों उपयोग रखें। अंजन आदि महापाप करनेवाले चोरोंका भी ऐसी श्रद्धासे उद्धार हुआ था। अतः वचनके प्रति अविचल प्रतीति रखनी चाहिये।

नवसारी, मई, सं. १९९३

आस्रवमें भी संवर हो ऐसी कोई युक्ति ज्ञानीपुरुषके पास है। वे जो जो देखते हैं, जो जो करते हैं, वहाँ पहले आत्मा देखते हैं। उसके बिना तिनकेके दो टुकड़े भी नहीं हो सकते। परमकृपालुदेवने कहा है कि आत्माको छोड़कर कुछ नहीं हो सकता। मार डालो आत्माको, वह मर सकेगा? मात्र पहचान नहीं है। जौहरीको हीरेकी पहचान है, अतः वह उसका मूल्य आँक सकता है। लकड़हारेके हाथ रत्नचिंतामणि आ जाये तो वह उसे कंकर समझकर फेंक देगा। यह मनुष्यभव रत्नचिंतामणि है। ऐसा योग पुण्यका ही फल है, वह भी चाहिये। पुण्यका योग है तो अभी इस निवृत्तियोगमें आत्माकी बात कानमें पड़ रही है और परिणमित हो रही है। परिणाम परिणाममें भी बहुत भेद है। भाव और परिणाम बार बार कहते हैं वह विचारणीय है। 'आत्मसिद्धिशास्त्र' बहुत अमूल्य है, रिद्धि-सिद्धियाँ और चमत्कारोंसे भरा हुआ है! पर समझमें किसे आता है? जिसे समझमें आता है उसे रिद्धि-सिद्धिकी आवश्यकता ही नहीं है। परंतु वे अपूर्व वचन हैं, विश्वास करने योग्य हैं। भले ही मुझे समझमें न आते हों, पर परमकृपालुदेवको तो समझमें आया है न? इतना विश्वास तो अवश्य कर्तव्य है। 'कर विचार तो पाम' इसमें सर्व क्रिया-ज्ञानमात्र आ जाते हैं। पर उसका माहात्म्य लगना चाहिये। विचार होना चाहिये। क्या कहें? योग्यताकी कमी है, फिर भी उस पुरुषने तो कहनेमें कुछ कमी नहीं रखी है।

"छूटे देहाध्यास तो, नहि कर्ता तुं कर्म;
नहि भोक्ता तुं तेहनो, ए ज धर्मनो मर्म."

आत्माका सुख अनंत है। 'जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ज्ञानमां,'–इस सुखका स्वाद आना चाहिये। इस विषयमें पहले सत्पुरुष द्वारा सुना जा सके तो भी महाभाग्य समझना चाहिये। यह बात अन्यत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहाँ मिलेगी? सत्संगमें ही आत्माकी बात होती है। रुपये-पैसेकी भांति इस बोधका लाभ दिखायी नहीं देता, ज्ञात नहीं होता, पर ज्ञानी तो जान रहे हैं। रुपया तो मिट्टी है। यहीं पड़े रहेंगे। पर आत्माका धर्म आत्माके साथ जायेगा, अतः उसे बहुत सावधानीपूर्वक सुनते रहना चाहिये। सुनते सुनते आत्मस्वरूपका भान होगा। कुछ घबराने जैसा नहीं है। 'कुछ अच्छा नहीं लगता। चलो, उठ चलें, जाये यहाँसे।' ऐसा करना योग्य नहीं है। चाहे जितने कष्ट पड़ें तो भी तत्संबंधी बात सुननी चाहिये। साता असाता तो कर्म है, इसने बिलकुल घबराना नहीं चाहिये। यह तो अपना है ही नहीं, सब जानेवाला है, आत्माका कभी नाश नहीं होगा। उसकी पहचान कर लेनी चाहिये, वह सत्संगमें होती है।

"सहज मिला सो दूध बराबर, माँग लिया सो पानी;
खींच लिया सो रक्त बराबर, गोरख बोले वाणी."

★★★

आबू रोड, सं. १९३५

अब योग आया है। अतः आत्माका विचार करें। मैं आत्मा हूँ। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, यह सब आत्मामें है। आत्मा अजर, अमर, अविनाशी, शाश्वत है। आत्मा स्त्री, पुरुष, नपुंसक कोई नहीं, इनसे भिन्न है। ऐसा योग मिलना दुर्लभ है। यदि जीव चेतें और चाहें तो आत्माको भी प्राप्त कर सकता है। बहुत पुण्यके पुंजसे यह मनुष्यदेह मिली है। जन्म, जरा और मरण, जन्म जरा मरणरूप संसार है। इसमें राग-द्वेष होता रहता है। धन, रुपया, स्त्री, कोई रहनेवाले नहीं है।

इस भवचक्रका चक्कर कैसे मिटे? आशा-तृष्णा मिटे या नहीं? इस मनुष्यभवमें जन्ममरण बढ़ानेसे बढ़ेंगे और घटानेसे घटेंगे। कैसे? भावसे। जैसे भाव वैसा फल मिलता है। किसी बातसे घबराना नहीं चाहिये। समझकी आवश्यकता है। अपूर्व सामग्री मिली है। अतः लाभ उठा लें, चूकें नहीं। सारा लोक त्रिविध तापसे जल रहा है। उससे बचना हो तो सत्संग और सद्बोध चाहिये। अधिकारीत्व (योग्यता) हो और भेदी मिल जाये तो मार्ग बता देते हैं।

"जाण आगळ अजाण थईअे, तत्त्व लईअे ताणी;
आगलो थाय आग, तो आपणे थइअे पाणी."

आत्माकी बात चलायी हो तो वह निकलती है और अन्य बात करनी हो तो वह निकलती है। अतः जितनी चिंता संसारकी रखता है उतनी चिन्ता आत्माकी रखे तो जन्ममरण टल जाते हैं।

★★★

आबू, ता. ४-६-३५

कर्मरूपी बादल जब तक घनघोर छाये हुए हैं, तब तक अंधेरा है, पर बादल हट गये तो प्रकाश। सत्समागम होने पर कर्मरूपी बादल हट जाते हैं और प्रकाश होता है। ज्ञानीपुरुष कहते हैं कि आत्मा सबसे मुक्त है, बँधा हुआ नहीं है। पर जैसा अन्न वैसी डकार आती है। ठाली बैठे बैठे कल्पना करता रहता है। कल्पनाका कोथला है। सब मिथ्या है, वह मान्य करने योग्य नहीं है। ज्ञानी जो कहते हैं वह मान्य, प्रमाण है। जो मिला उससे संतोष रखें। शरीरका नाश होगा पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्माका नाश नहीं है। अतः आत्माकी पहचान करें। अन्य सब तो अनंत बार देखा है। सारमें सार क्या है? राजा हो या रंक हो, पर सारमें सार भक्ति है। यही साथ जायेगी। अन्य सब तो पक्षियोंके मेले जैसा है। अतः अन्यको न देखें। जब तक आत्माको नहीं जाना तब तक सब साधना झूठी है। लाखों करोडों रुपये मिलेंगे, पर यह नहीं मिलेगा। राजा हो या रंक हो, पर सब आत्मा समान हैं। अंतमें सबको शरीर छोड़ना पड़ेगा, किसीका नहीं रहा। अतः ज्ञानीका एक वचन भी पकड़ लेंगे तो काम बन जायेगा। वृद्ध, युवान, छोटा, बड़ा यह सब तो पर्याय है। मोह और अज्ञान दुःख देते हैं। वही मेरा धन, मेरी स्त्री, माँ, घर आदि ममत्वभाव कराता है। यह तो माया है, इससे सावचेत रहें। अवसर आया है। जो पकड़ेगा उसके बापका है। जो हृदयमें होगा वही होठों पर आयेगा। अतः आत्माकी भावना रखेंगे तो कोटि कर्म क्षय हो जायेंगे। ये ज्ञानीके वचन हैं। ज्ञानी ऐसी इच्छा नहीं करते कि इसका भला हो, उसका बुरा हो, वे तो सबका भला ही चाहते हैं।

आबू, ता. ५-६-३५

जीवको दुःख, दुःख और दुःख है। सुख कहीं नहीं है। पाँव रखते पाप है, देखते विष है, सब टेढ़ामेढ़ा है, कुछ भी सीधा नहीं, विघ्न बहुत हैं। विश्वामित्रने यज्ञ किया तब राक्षसोंने बारबार विघ्न कर यज्ञ निष्फल किया। पर जब राम आये तब सब सफल हो गया। यही राम है। जब तक दिन नहीं निकलता तब तक अँधेरा ही रहेगा। जब दिन निकलेगा तब उजाला होगा। जीवको स्त्री-पुत्र, धन-संपत्ति, कुटुंब-परिवार मिले जिससे उन्हें सुख मान बैठा कि बस, सब मिल गया। पर यह तो दुःख, दुःख और दुःख ही है। श्रेणिक राजा घोड़े पर बैठकर जंगलमें घूमने गये। वहाँ एक मुनिके वचन सुने जिससे सब कुछ बदल गया। दिनका उदय हुआ, अँधेरा मिटकर उजाला हो गया, समकित हो गया। किसे कहें? और किसे सुनायें?

'आत्मसिद्धि' भक्ति-भजन तो किये पर क्यारीमें पानी नहीं गया, बाहर चला गया। यह अब कैसे कहें? कानेको काना कहे तो बुरा लगता है। श्रद्धा, प्रतीति करनी चाहिये। इसी मार्गसे सबका कल्याण है। भिखारीकी भाँति ठीकरा (टूटा मिट्टीका बर्तन) लेकर घूम रहा है। पर इसे फेंक देना पड़ेगा। अच्छा पात्र हो तो उसमें अच्छी वस्तु रहती है। बुरे पात्रमें अच्छी वस्तु डाले तो वह भी खराब हो जाती है। अतः पात्र अच्छा रखें। बालकके हाथमें हीरेका हार आ जाये तो वह उसे मसलेगा, तोड़ेगा, खेलेगा, क्योंकि उसकी दृष्टिमें उसका कोई मूल्य नहीं है। वैसे ही 'आत्मसिद्धि'में महान चमत्कार है, पर जीवने उसे सामान्य बना दिया है। पढ़े न हों तो पढ़ना तो पड़ेगा ही। स्वच्छंदसे जो हुआ है वही जीवको बंधन है; उसे छोड़ना पड़ेगा; सत्पुरुषार्थ करना पड़ेगा। जब दाल गलती नहीं, तब उसमें कुछ डाले तो दाल गल जाती है, वैसे ही अंदर कुछ डालना होगा। करनेसे होगा। खायेगा तभी पेट भरेगा, न खाये तो कैसे भरेगा? 'भक्ति भक्ति' करता है, पर उसमें अंतर है। समझकर भक्ति करनी चाहिये। अपनी समझसे करेंगे तो कुछ लाभ नहीं, अतः सत्पुरुषकी समझसे करेंगे तो अवश्य फल मिलेगा। अन्य सब बंधन है, माया है, यह करने योग्य नहीं है। यह कुछ पोपा बाईका राज्य नहीं है।+

+ यहाँ अंधेरखाता नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"अेनुं स्वप्ने जो दर्शन पामे रे, तेनुं मन न चढे बीजे भामे रे;
थाये सद्गुरुनो लेश प्रसंग रे, तेने न गमे संसारीनो संग रे."

सब धोखा है। अतः आत्माके बन जायें। एक सुई भी साथमें नहीं जायेगी। हरिण शिकारीके वाद्यमें लीन हो जाते हैं, तब शिकारी उन्हें तीरसे मार देता है। ऐसे ही यह जीव संसारमें लीन होकर मरणको प्राप्त होता है।

★★★

आबू, ता.१०-६-३५

परदेश जाता है तब साथमें पाथेय हो तो खा सकता है, नहीं तो क्या खायेगा? ऐसे ही मनुष्यभव प्राप्त कर पूर्व जन्मका पाथेय खा रहा है। वह समाप्त हो जायेगा तब क्या खायेगा? अतः कुछ कर लेना चाहिये। किया हुआ व्यर्थ नहीं जायेगा। अवसर आया है। प्रतिसमय मर रहा है। मात्र अज्ञानकी भूलको निकालना है। क्षण क्षण जाग्रत रहनेकी आवश्यकता है।

सत्संगमें भक्तिमें कोई भोला-भाला व्यक्ति ज्ञानीके वचन बोलता हो या पत्र परावर्तन करता हो तो उसे कान देकर सुनना चाहिये। ऐसे धन्यभाग्य कहाँ है कि उनके वचन हमारे कानमें पड़ें? वह सुनना महालाभका कारण है। पर यह जीव अन्य बाहरकी बातें कान देकर सुनता है तथा रागद्वेष कर कषायके निमित्त खड़े कर पाप बाँधता है।

स्त्रियाँ पानी भरने जाती हैं, तब सिर पर घड़े रखकर अन्य बातोंमें एक घंटा निकाल देती हैं, किन्तु सत्संगमें आये तो बैठना अच्छा नहीं लगता और अरुचि होने लगती है। पढ़नेमें, सीखनेमें आलस्य, प्रमाद आये या व्याकुलता हो, उस समय कैसे भी प्रमाद, आलस्य नहीं होने देना चाहिये। मनुष्यभवका एक क्षण भी रत्नचिंतामणिसे अधिक मूल्यवान है।

ज्ञानीपुरुषसे जो कुछ स्मरण या साधन थोड़ा भी मिला हो, उतना श्रद्धापूर्वक किया करे तो उसका फल कुछ और ही आयेगा, वह अंत तक ले जायेगा। 'बहु पुण्यकेरा पुंजथी' इस पद पर जीवको विचार करना चाहिये।

ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया तो मनुष्यभव सफल है। यह व्रत लेकर किसीके साथ प्रतिबंध, दृष्टिराग या प्रसंग नहीं करना चाहिये, जाग्रत रहना चाहिये। यदि कभी इस व्रतको भंग करनेका प्रसंग आ जाये तो पेटमें छुरी भोंककर या विषका प्याला पीकर मर जायें, पर व्रत भंग नहीं करे—इतनी दृढ़ता रखें। व्रत लेकर भंग करनेसे नरकगति होती है। इस व्रतका पालन करनेसे पात्रता, समकित आदि प्राप्त होंगे; क्योंकि आपको पता नहीं है पर जिसकी साक्षीसे व्रत लिया है वह पुरुष सच्चा है, अतः दुष्प्रत्याख्यान नहीं है, किन्तु सुप्रत्याख्यान है, समझकर दिया गया है। लक्ष्य मात्र एक आत्मार्थका रखना चाहिये।

कृपालुदेवका वचन है कि जीवको सत्संग ही मोक्षका परम साधन है। उपदेश, सत्संगके समान संसारसे पार उतरनेका अन्य कोई साधन नहीं। सत्संगके योगसे तिर्यंचगतिके जीव भी सत्पुरुषके बोध द्वारा देवगति प्राप्त कर, समकित प्राप्त कर मोक्ष गये हैं, ऐसी शास्त्रमें कथाएँ हैं। अतः जीवको सत्संग ही करना चाहिये। इससे समकित आता है और मोक्ष भी प्राप्त होता है। सत्संग प्राप्त होने पर भी जीवको उस सत्संगकी पहचान नहीं हुई है। जीवने इस पर विचार नहीं किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। विचारपूर्वक निश्चय नहीं किया है कि यही आत्मा है। जीवने सुनकर उन वचनोंको परिणमित नहीं किया है, अन्यथा फल प्राप्त हुए बिना नहीं रहता। योग्यताकी कमी है।

★★★

ता. ९-२-३६

आत्माका घात करनेवाले आरंभ और परिग्रह हैं। इस जगतमें कुछ नहीं है। एक आत्माकी पहचान करनी है। बच्चे न हो तो उनकी इच्छा, धन न हो तो उसकी इच्छा, पति न हो तो पतिकी इच्छा रखते हैं। सुख दुःखको जाननेवाला आत्मा है। बंध और मोक्ष भी उसीसे होता है। आरंभ और परिग्रहसे जीवका बुरा हुआ है। जीव मात्र इसीसे रुका हुआ है। इसकी इच्छा है, माया (प्रेम) है वह त्याज्य है। वह बहुत हानिकारक है। जिसे आरंभ और परिग्रह पर ममता और मूर्छा है, वह बहुत दुःखी है। इस मनुष्यभवमें सावधान हो जाना चाहिये। पवनसे भटकी कोयल है। पक्षियोंका मेला है। 'मेरे पिता, मेरी माँ, मेरा धन, मेरा कुटुंब' यह माया है। बुरीसे बुरी तृष्णा है।

"क्या इच्छत? खोवत सबै, है इच्छा दुःखमूल;
जब इच्छाका नाश तब, मिटे अनादि भूल."

इच्छाका नाश करना है। समझ हो तो भवका नाश होता है। इसका भान नहीं है। जिसके लिये स्वयं मोह-मूर्छा कर दौड़भाग कर रहा है वह तो जानेवाला है, इसका भान नहीं है। यह सब बात ना-समझीकी है। जन्म-जरा-मरणके दुःख अधिक हैं। सारा जगत त्रिविध तापसे जल रहा है। जो दूसरोंसे लेना चाहता है वह भिखारी है। एक संतने राजासे कहा कि तू भिखारी है। अपने राज्यको छोड़कर दूसरेका राज्य लेने जा रहा है इसलिये भिखारी है। ऐसे ही इस जीवको भी इच्छा, इच्छा और इच्छा ही है। आत्माका व्यापार किया होता तो लाभ होता, पर चमड़ेका व्यापार किया है। 'यह मेरी नाक है, मेरे हाथ है' ऐसी भावना करता है। जो अपना नहीं है उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करता है।

"जहाँ कलपना-जलपना, तहाँ मानूं दुःख छांई;
मिटे कलपना-जलपना, तब वस्तू तिन पाई."

ऐसा कृपालुदेवने पुकार-पुकार कर कहा है। इस संसारमें किसीकी इच्छाकी भूख मिटी है? यह किसीके हाथमें है? इच्छाके विषयमें गहन चिंतन करना चाहिये, अंदर कुछ नहीं है। विचार करे तो उसका–इच्छाका, तृष्णाका–नाश होता है।

ये सब बैठे हैं, पर किसीने आत्माको देखा है? इसका किसीको पता है? किसीको इसका भेदी मिला है? यह बनिया, ब्राह्मण, बड़ा, छोटा, रोगी है? यह भी आत्मा है, यह भी आत्मा है। 'सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो, आ वचनने हृदये लखो।' कौन बुरा करता है? संपूर्ण जगत राग और द्वेषको घरमें निमंत्रण देता है, यदि समभावको निमंत्रण दे तो? इस पर विचार करें। क्या हुआ? आश्चर्यजनक हुआ! हजारों भवका नाश हो गया। समभावके आते ही कुछ और हो गया। भेदी मिलना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

+"कथा सुणी सुणी फूट्या कान, तो य न आव्युं ब्रह्मज्ञान।"
"तिलक करतां त्रेपन वह्यां, जपमाळानां नाकां गयां."

यों इस जीवने कुछ भी लक्ष्यमें नहीं लिया है। जिसका अध्ययन करना है उसे तो छोड़ दिया है। 'पढ़ा पर गुना नहीं।' समभाव क्या वस्तु है? वह कहाँ रहती है? थोड़ा विचार तो करें। तूँबीमें कंकर भरे हैं। यह सर्वनाश कर दिया। बातें करते हैं कि–

"समता रसना प्याला रे, पीवे सो जाणे;
छाक चढ़ी कबहु न उतरे, तीन भुवन सुख माणे."

पीये सो जाने। तूँबीमें कंकर भरे हैं। बातें करें, बातोंसे काम होता है? कुछ कहा नहीं जा सकता। अजब है! चमत्कार है! इस मनुष्यभवमें हजारों भव काटे जा सकते हैं।

कोई साथ नहीं आयेगा। अकेला आया है, अकेला जायेगा। साढ़े तीन हाथकी भूमिमें जलाकर राख कर देंगे। समता, क्षमा क्या है? बोलना आया है, पर इसका भान नहीं है। यह बनिया, ब्राह्मण, पटेल, छोटा, बड़ा, युवान, वृद्ध–सब है, पर आत्मा है या नहीं? आत्माको देखा नहीं है, उसका पता नहीं है। कैसा मार्ग है? गुरुगमका ज्ञान नहीं है। ज्ञानीका बोलना-चलना, खाना-पीना सब सुलटा है, जबकि अज्ञानी जो कुछ करता है वह सब बंधनरूप है, विषरूप है। यह क्या है? कुछ कहो तो सही। इस जीवको मनुष्यभव प्राप्त है इसलिये सुन रहा है, कौवे कुत्ते कुछ सुनेंगे? सत्संग नहीं किया है, बोध नहीं सुना है। इसीकी कमी है। इस जीवने जो करना चाहिये वह नहीं किया है। क्या करना है? आत्माको पहचानना है। उसे नहीं जाना है। हम बहुत बार कहते हैं। इस स्थान पर बैठे हैं तो इतना देखते हैं। यहाँसे सातवें खंड पर हो उसे देख सकते हैं क्या? दशामें वृद्धि हो तो विशेष दिखायी देता है। एक ही करना है, समता और क्षमा। मुँहमें शक्कर डाली हो तो मुँह मीठा होता है, पर विष डाला हो तो? कितनी देर है? तेरी देरमें देर है। तैयार हो जा। अंतर्मुहूर्तमें समकित, अंतर्मुहूर्तमें केवलज्ञान होता है या नहीं? पहचान नहीं है। 'भान नहीं निजरूपनुं ते निश्चय नहि सार।' *"ज्ञानीके सभी पासे सीधे पड़ते हैं' यों डाले या त्यों–ज्ञानीका सब सीधा है क्योंकि दृष्टि बदल गयी है। यह कैसी खूबी है! कुछ अंतर तो है न? इन चक्षुओंसे देखनेमें और अंतर्चक्षुसे देखनेमें अंतर तो है न? अवश्य है। हो जाओ तैयार, सावधान! जाग्रत हो जाओ। जो खाया वह अपना। बातोंसे काम नहीं होगा, करना पड़ेगा।

ये सब बातें ऊपर ऊपरसे कही। इनमें कुछ सार है या नहीं? इन सब जीवोंका कल्याण होगा, लाभ उठाना आना चाहिये। जिसको श्रद्धा होगी उसका काम बनेगा। बड़ीसे बड़ी बात है–एक श्रद्धा। इतना निश्चय कर लेना है। यह नहीं किया है। एक ही वचन है–श्रद्धा। वह जप, तप, सब है। इस भवमें अब अवसर आया है, इसे भूले नहीं। श्रद्धा अवश्य कर लेनी चाहिये। सत्संग और सत्पुरुषार्थ करें।

★★

+ कथा (उपदेश) सुन-सुनकर कान फूट गये तो भी ब्रह्म(आत्म)ज्ञान नहीं हुआ। (कारण, परिणमन नहीं हुआ) तिलक करते करते तिरेपन (५३) वर्ष चले गये अर्थात् बूढ़े हो गये और माला गिनते गिनते मालाके मनके घिस गये, तो भी अंतर्भेद हुए बिना कोई लाभ नहीं हुआ। * ज्ञानीकी सभी प्रवृत्ति सम्यक् होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ स्फुट वचन+

१. इस जगतमें अनेक जीव ऐसे हैं जो धर्म, पुण्य, पाप, व्यवहार, विवेक कुछ नहीं समझते। उन्हें पशु समान जानना।

२. धर्मको नहीं समझा, पहचान नहीं हुई तो वह मनुष्य होकर भी पशु समान है।

३. ओहो! लौकिकमें निकाल दिया है। मनुष्यभव फिर कहाँ मिलेगा?

४. मेहमान हैं, परदेशी हैं। पक्षियोंका मेला है। पवनसे भटकी कोयल जैसा है अतः कुछ कर लेना।

५. जगत अंधा है, बहरा है; जगत देखता है वह मिथ्या है, सुनता है वह भी मिथ्या है।

६. जगतमें गुरु अनेक हैं, साधु अनेक हैं, पर चाबी तो सद्गुरुके हाथमें है।

७. जिसको सत्पुरुषका बोध सुननेको मिला उसे नौ निधान मिल गये।

८. ज्ञानीको क्या कमी है? समकित देते हैं, मोक्ष देते हैं पर जीवका ही दोष है।

९. जीव चार प्रकारसे धर्म प्राप्त करता है : नमस्कारसे, विनयसे, दानसे और बोधसे।

१०. सत्पुरुषका बोध सुने पर समझे नहीं, तो भी अनंत भवका क्षय करता है। पापके दल नष्ट होते हैं और पुण्यका बंध होता है।

११. पतिव्रता स्त्री अपने पतिमें चित्त लगाती है, इसी प्रकार मुमुक्षु सत्पुरुषमें, उनके बोधमें चित्त लगाये तो दालके साथ ढोकली सीझती है, गाड़ेके पीछे गाड़ी जाती है।

१२. आत्मा कैसा होगा? वह कैसे ज्ञात हो? गुरुगमसे।

मैं कुछ नहीं समझता, पर ज्ञानीने जिसे जाना है वह मुझे मान्य है ऐसा रहे तो वह तिलक हुआ।

१३. दो अक्षरमें मार्ग निहित है, वह क्या? ज्ञान। ज्ञान अर्थात् ज्ञानीने ज्ञानमें जैसा देखा हो वह मुझे मान्य है।

१४. मनको बाहर पाप बाँधनेमें जोड़ रखा है, पर उसे आत्मामें जोड़े तो देर क्या लगेगी?

१५. आत्माको पहचाननेसे ही छुटकारा है। मुझे या आपको पहचान हुए बिना मुक्ति नहीं है।

१६. आत्मा पर दृष्टि करते ही समकित, समकितके बाद केवलज्ञान है।

+ एक मुमुक्षु द्वारा स्मृतिके अनुसार नोंधमें लिये गये स्फुट वचनोंमेंसे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. आत्मासे आत्माको पहचानना है। जैसा सिद्धका आत्मा है वैसा ही मेरा है।

१८. 'सहजात्मस्वरूप' यह तो चौदह पूर्वका सार है।

१९. जगतमें क्या है? जड़ और चेतन दो हैं। इनमें जड़ नहीं जानता। जानता है वह चेतन।

२०. जड़ कभी चेतन बनेगा? चेतन कभी जड़ बनेगा? ये दोनों भिन्न हैं या नहीं? तब फिर अब अधिक क्या कहें?

२१. मेरे पड़ौसमें कौन है? शरीर है। उसका और मेरा कोई संबंध नहीं है। वह मुझसे भिन्न है।

२२. नामसे आत्मा नहीं पहचाना जायेगा। अंतर्दृष्टि करें। चर्मचक्षुसे तो आत्मा नहीं दीखेगा।

२३. 'अंतर्वृत्ति रखनेसे अक्षयपद प्राप्त होता है।'

२४. भाव ही आत्मा है, परिणाम ही आत्मा है।

२५. जीव नरकमें जानेवाला हो पर थोड़ासा भाव कर ले तो देवगतिमें चला जाये। (श्री पार्श्वनाथने जलते हुए साँपको बचाकर धरणेन्द्र बनाया।)

२६. मन अनावश्यक विकल्प करता हो तो उसे झूठ समझकर निकाल फैंके।

२७. शरीर मेरा, भाई मेरा, बाप मेरा, चाचा मेरा, घर मेरा—ऐसा कहनेसे, माननेसे गलेमें फाँसी लगेगी।

२८. मोक्ष क्या है? सबसे मुक्त होना मोक्ष है। छोड़नेवाला कितना भाग्यशाली है!

२९. सबका स्नानसूतक कर, क्रियाकर्म निपटाकर चले जायें, मर मिटनेको तैयार हो जायें।

३०. 'तलवारकी धार पर चलना है, सत् संग्राममें लड़ना है।'

श्रीमद् लघुराजस्वामी-प्रभुश्री

उपदेशामृत

समाप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट १

पत्रोंके बारेमें विशेष जानकारी

पत्रावलि - १

आंक	किसके प्रति	कहाँसे	किस स्थान पर		मिती/तारीख
१	श्रीमद् राजचंद्र	(सुरत)?	मुंबई	१९५१	चै.सु.६
२	श्रीमद् राजचंद्र	सुरत	मुंबई	१९५२	का.सु.५
३	श्रीमद् राजचंद्र	खेडा	मुंबई	१९५३	श्रा.व.५
४	मुनिश्री लक्ष्मीचंदजी आदि मुनिवरो	करमाळा	अमदावाद	१९५८	(चातुर्मास)
५	(मुनिश्री मोहनलालजी महाराज?)	—	—	१९५८	भा.व.७
६	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	नडियाद	डीसा टाउन	१९७०	अ.सु.६
७	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	नडियाद	डीसा केम्प	१९७०	अ.व.११ ता.१९-७-१४
८	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	उमरेठ	डीसा टाउन	१९७१	मागशर
९	मुनिश्री मोहनलालजी महाराज तथा मुनि पद्मविजयजी	चकलासी	वडाली	१९७१	मा.व.२
१०	रणछोडभाई लखाभाई पटेल	नडियाद	(नार?)	१९७१	ई.स.१९१५
११	मणिलालभाई कल्याणजीभाई शेठ	नडियाद	मुंबई	१९७१	ता.१०-३-१९१५
१२	रणछोडभाई तथा छोटालालभाई	नडियाद	नार	१९७१	जे.व.१२
१३	मुनिश्री लक्ष्मीचंदजी महाराज	नडियाद	सुणाव	१९७१	अ.व.९
१४	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	नडियाद	वीरक्षेत्र (वडोदरा)	१९७१	आ.सु.८
१५	वैद्य हीमचंद मोहनलाल शाह	नडियाद	डभोई	१९७१	ता.९-८-१९१५
१६	रणछोडभाई लखाभाई पटेल	काणीसा	—	१९७२	चै.सु.४
१७	मणिलालभाई कल्याणजीभाई शेठ	नार	मुंबई	१९७२	ता.७-५-१९१६
१८	आशाभाई कल्याणभाई	जूनागढ	काविठा	१९७२	जे.सु.७
१९	कल्याणजीभाई मूलजीभाई तथा आशाभाई	"	काविठा	१९७२	अ.सु.५
२०	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	जूनागढ	उमरदशी	१९७२	अ.व.८
२१	आशाभाई कल्याणभाई	जूनागढ	काविठा	१९७२	अ.व.१०
२२	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	जूनागढ	उमरदशी	१९७२	श्रा.सु.९
२३	गिरधरभाई वेणीराम आदि	जूनागढ	सरडोई	१९७२	श्रा.व.२
२४	रणछोडभाई तथा छोटालालभाई	जूनागढ	(नार?)	१९७२	
२५	कल्याणजीभाई मूलजीभाई	जूनागढ	काविठा	१९७२	
२६	रणछोडभाई तथा छोटालालभाई	जूनागढ	(नार?)	१९७२	श्रा.व.१५
२७	मनसुखभाई तथा झवेरभाई	जूनागढ	काविठा	१९७२	भा.व.७
२८	रणछोडभाई लखाभाई पटेल	जूनागढ	नार	१९७२	भा.व.८
२९	रणछोडभाई लखाभाई पटेल	जूनागढ	(नार?)	१९७२	आ.व.८
३०	रणछोडभाई लखाभाई पटेल	जूनागढ	(नार?)	१९७२	आ.व.११
३१	रणछोडभाई लखाभाई पटेल	जूनागढ	नार	१९७२	आ.व.११
३२	कल्याणजीभाई कुंवरजी शेठ	जूनागढ	बगसरा	१९७३	का.सु.७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंक	किसके प्रति	कहाँसे	किस स्थान पर		मिती/तारीख
३३	माधवजीभाई रेवाजीभाई शेठ	बगसरा	वडाली	१९७३	फा.सु.८
३४	रणछोडभाई लखाभाई पटेल	बगसरा	गरडेसर	१९७३	फा.सु.१३
३५	छोटालालभाई धोरीभाई	बगसरा	मुंबई	१९७३	फा.सु.१३
३६	सोमाभाई चतुरभाई	नार	डभोई	१९७५	ता.३०-६-१९१८
३७	हरखचंदभाई करमचंदभाई	सीमरडा	जूनागढ	१९७५	ता.२१-९-१९१९
३८	मणिलालभाई कल्याणजीभाई शेठ	सीमरडा	मुंबई	१९७५	ता.१-१०-१९१९
३९	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	सनावद	डीसा टाउन	१९७६	वै.व.१४
४०	हरखचंदभाई करमचंदभाई	सनावद	जूनागढ	१९७६	ई.स.१९२०
४१	मुनिश्री मोहनलालजी महाराज	सनावद	राजनगर (अमदावाद)		ता.१-६-१९२०
४२	वैद्य हीमचंद मोहनलाल शाह	सनावद	डभोई	१९७६	ता.२६-७-१९२०
४३	मणिभाई तथा अन्य मुमुक्षु	सनावद	सीमरडा	१९७६	अ.सु.१०
४४	हरखचंद करमचंद तथा ताराचंद लक्ष्मीचंद आदि	सनावद	जूनागढ	१९७६	अधिक श्रा.सु.१३
४५	मणिलालभाई कल्याणजीभाई सेठ	सनावद	मुंबई	१९७६	अधिक श्रा.सु.१४
४६	भाउलालभाई पुनशी भाटे	सनावद	मुंबई	१९७६	अधिक श्रा.सु.३
४७	चतुरभाई हाथीभाई	सनावद	संदेशर	१९७६	अधिक श्रा.सु.१०
४८	परसोत्तमभाई झवेरभाई	सनावद	मुंबई	१९७६	ता.३-९-१९२०
४९	परसोत्तमभाई झवेरभाई	सनावद	मुंबई	१९७६	
५०	रणछोडभाई लखाभाई पटेल	सनावद	नार	१९७६	ता.६-१०-१९२०
५१	झवेरबेन	सनावद	—	१९७६	ता.२०-१०-१९२०
५२	कल्याणभाई तथा आशाभाई आदि	सनावद	काविठा	१९७६	
५३	गिरधरभाई वेणीराम	मंडाळा	सरडोई	१९७६	
५४	दलपतभाई तथा अंबालालभाई आदि	सनावद	काविठा	१९७६	
५५	कालीदासभाई जीजीभाई	सनावद	संदेशर	१९७६	
५६	चतुरभाई हाथीभाई	सनावद	अगास आश्रम	१९७६	
५७	—	अगास आश्रम	—	१९७६	धनतेरश, ता.५-११-२०
५८	जेसंगभाई उजमशीभाई सेठ	सनावद	अमदावाद	१९७७	का.सु.१०
५९	मणिलालभाई लालाजी	मंडाळा	धर्मज		ता.१-३-१९२१
६०	जेसंगभाई उजमशीभाई सेठ	मंडाळा	अमदावाद	१९७७	चै.सु.६
६१	वैद्य हीमचंदभाई मोहनलाल शाह आदि	अगास आश्रम	सुरत	१९७७	ता.३०-५-१९२१
६२	वैद्य हीमचंदभाई मोहनलाल शाह आदि	राजनगर (अमदावाद)	सुरत		ता.१५-१-१९२२
६३	चुनीलालभाई धरमचंदभाई शाह आदि	राजनगर (अमदावाद)	—	१९७८	पो.व.७
६४	मणिलालभाई कल्याणजीभाई सेठ तथा कुटुंबीजन	अगास आश्रम	मुंबई		ता.२-५-१९२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंक	किसके प्रति	कहाँसे	किस स्थान पर		मिती/तारीख
६५	चुनीलालभाई धरमचंदभाई शाह तथा कुटुंबीजन	अगास आश्रम	मीआंगाम		ता.४-७-१९२२
६६	मणिलालभाई कल्याणजीभाई सेठ तथा कुटुंबीजन	अगास आश्रम	मुंबई	१९७८	अ.सु.१०
६७	भाईलालभाई लक्ष्मीदासभाई सुणाववाला	अगास आश्रम	इन्दोर	१९७८	भा.सु.३
६८	बहन वीजीबा	अगास आश्रम	सुरत	१९७८	भा.व.८
६९	रवजीभाई देवकरण	अगास आश्रम	मुंबई	१९७८	भा.व.१४
७०	मणिलालभाई कल्याणजी सेठ तथा कुटुंबीजन	अगास आश्रम	(मुंबई?)		ता.६-१२-१९२२
७१	मेघजीभाई थोभण	अगास आश्रम	मुंबई	१९७९	पो.व.७
७२	जेचंदभाई आशाराम	अगास आश्रम	अमदावाद	१९७९	जे.व.१३
७३	मुनिश्री चतुरलालजी महाराज	अगास आश्रम	—	१९७९	अ.व.३
७४	मगनभाई लल्लुभाई (तारमास्तर,आणंद)	पूना	आणंद	१९८०	भा.व.७
७५	चुनीलालभाई धरमचंदभाई शाह आदि	पूना	अगास आश्रम	१९८०	भा.व.७
७६	कालीदासभाई जीजीभाई, मगनभाई आदि	पूना	संदेशर	१९८०	आ.सु.४ ता.१-१०-२४
७७	वनराजभाई आदि	पूना	जूनागढ	१९८०	आ.सु.७
७८	गिरधरभाई मथुरभाई	पूना	कविठा	१९८०	आ.सु.८
७९	छगनभाई बाबरभाई	पूना	बांधणी	१९८१	का.सु.१४
८०	सोमचंदभाई कल्याणजीभाई सेठ	पूना	सनावद	१९८१	मा.व.९
८१	सोमचंदभाई कल्याणजीभाई सेठ आदि	पूना	(सनावद?)		ता.११-१२-१९२४
८२	मणिभाई कल्याणजीभाई सेठ आदि	पेथापुर	(मुंबई?)	१९८१	मा.सु.१५ ता.८-२-२५
८३	त्रिकमभाई रणछोडभाई	पूना	—	१९८१	
८४	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	पेथापुर	सिद्धपुर	१९८१	फा.व.६
८५	—	अगास आश्रम	—		ता.२३-५-१९२५
८६	रणछोडभाई लखाभाई पटेल	अगास आश्रम	नार		ता.१-८-१९२५
८७	—	अगास आश्रम	मुंबई		ता.६-१२-१९२५
८८	रावजीभाई छगनभाई देसाई	अगास आश्रम	कम्पाला (इ.आफ्रिका)		ता.२४-४-१९२६
८९	रणछोडभाई लखाभाई पटेल	अगास आश्रम	(नार?)	१९८२	
९०	हरिलालभाई कल्याणजीभाई सेठ	अगास आश्रम	(मुंबई)	१९८२	चै.व.१२
९१	वैद्य हीमचंदभाई मोहनलाल शाह	अगास आश्रम	डभोई	१९८२	श्रा.सु.८
९२	हीरालालभाई	अगास आश्रम	(मुंबई?)	१९८२?	
९३	मणिभाई कल्याणजीभाई सेठ	अगास आश्रम	(मुंबई?)	१९८२	आ.व.११
९४	मणिभाई कल्याणजीभाई सेठ आदि	अगास आश्रम	(मुंबई?)	१९८३	का.व.११
९५	माधवजीभाई रेवाभाई, नानचंदभाई आदि	अगास आश्रम	वडाली	१९८३	चै.सु.७
९६	रावजीभाई छगनभाई देसाई, जेठाभाई आदि	अगास आश्रम	कम्पाला(इ.आफ्रिका)		ता.५-६-१९२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंक	किसके प्रति	कहाँसे	किस स्थान पर		मिती/तारीख
९७	मनसुखभाई देवसी	अगास आश्रम	लीमडी	१९८३	जे.सु.८
९८	हीरालालभाई आदि	अगास आश्रम	मुंबई	१९८३	भा.व.३
९९	रुकमणीबा जेसंगभाई शेठ	अगास आश्रम	(अमदावाद?)		ता.२०-१०-१९२७
१००	माधवजीभाई रेवाभाई	अगास आश्रम	वडाली	१९८३	
१०१	मणीभाई	अगास आश्रम	—	१९८४	श्रा.सु.३
१०२	मोहनलालभाई आदि	अगास आश्रम	वटामण	१९८४	भा.सु.७ ता. २१-९-२८
१०३	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९८४	भा.व.५
१०४	चुनीलालभाई वीरचंदभाई, मोहनभाई आदि	—	मुंबई	१९८४	
१०५	चुनीलालभाई धरमचंदभाई शाह	भादरण	अगास आश्रम	१९८५	मा.सु. ३
१०६	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	भादरण	सिद्धपुर	१९८५	फा.व.११
१०७	नगीनभाई दलपतभाई आदि	अगास आश्रम	अेडन	१९८५	जे.सु.१५
१०८	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९८५	जे.व.३
१०९	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९८५	अ.सु.१४
११०	माणेकजीभाई, जेठाभाई, वर्धमानभाई आदि	अगास आश्रम	मुंबई	१९८५	भा.व.२
१११	रणछोडभाई लखाभाई पटेल	अगास आश्रम	नार	१९८५	भा.व.३
११२	जेसंगभाई ऊजमशीभाई सेठ आदि	अगास आश्रम	अमदावाद	१९८६	ता.७-१२-१९२९
११३	नगीनभाई दलपतभाई आदि	अगास आश्रम	अेडन	१९८६	का.सु.५ (ज्ञानपंचमी)
११४	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९८६	का.व.५
११५	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९८६	का.व.ता.२९-११-२९
११६	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९८६	पो.सु.६
११७	माणेकजीभाई वर्धमान सेठ	अगास आश्रम	इन्दोर	१९८६	माह व.८
११८	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९८६	फा.व.८
११९	रतनबेन पुनशीभाई	अगास आश्रम	अंधेरी (मुंबई)	१९८६	वै.सु.७
१२०	—	अगास आश्रम	—	१९८६	—
१२१	भोगीलालभाई गुलाबचंद शाह	अगास आश्रम	मुंबई		ता.७-७-१९३०
१२२	त्रिभोवनभाई धरमचंदभाई शाह	अगास आश्रम	—		ता.२२-८-१९३०
१२३	भाईलालभाई लक्ष्मीदासभाई	अगास आश्रम	धूळिया	१९८६	ता.२६-८-१९३०
१२४	हरिलालभाई कल्याणजीभाई सेठ	अगास आश्रम	मुंबई	१९८६	श्रा.सु.४ ता.८-८-१९३०
१२५	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९८६	भा.व.१
१२६	रावजीभाई छगनभाई देसाई, रामभाई आदि मुमुक्षुभाई	अगास आश्रम	कम्पाला (इ.आफ्रिका)		ता.२९-९-१९३०
१२७	रावजीभाई छगनभाई देसाई, जेठाभाई आदि	अगास आश्रम	कम्पाला (इ.आफ्रिका)	१९८७	पो.सु.४
१२८	सोमाभाई, प्रभुदासभाई, तथा सनाभाई आदि	अगास आश्रम	इन्दोर	१९८७	पो.सु.८
१२९	भाउलाल पुनशी भाटे तथा कुंवरबा	अगास आश्रम	जखौ (कच्छ)	१९८७	पो.व.११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंक	किसके प्रति	कहाँसे	किस स्थान पर		मिती/तारीख
१३०	वैद्य हीमचंदभाई, नगीनभाई आदि	अगास आश्रम	सुरत		ता.२५-२-१९३१
१३१	वैद्य हीमचंदभाई मोहनलाल शाह आदि	अगास आश्रम	सुरत	१९८७	चै.सु.११ ता.३०-३-३१
१३२	सौभाग्यभाई चुनीलालभाई आदि	अगास आश्रम	मीआंगाम	१९८७	चै.व.१५
१३३	सौभाग्यभाई चुनीलालभाई आदि	अंधेरी	मीआंगाम	१९८७	जे.सु.२ ता. १९-५-३१
१३४	जेसंगभाई उजमशी, मणिलालभाई कल्याणजीभाई आदि	अगास आश्रम	अंधेरी	१९८७	अ. सु.२ ता.१८-६-१९३१
१३५	रावजीभाई छगनभाई देसाई, जेठाभाई आदि	अगास आश्रम	कम्पाला (इ. आफ्रिका)	१९८७	श्रा. ता.२१-८-१९३१
१३६	मोहनलालभाई लल्लुभाई	—	वटामण	—	—
१३७	रावजीभाई छगनभाई देसाई	अंधेरी	कम्पाला (इ. आफ्रिका)	१९८७	वै.सु.१५
१३८	मुनिश्री चतुरलालजी महाराज	—	नडियाद	१९८७	भाद्रपद
१३९	माणेकलालभाई कुंवरजी (बगसरावाळा)	—	मुंबई	१९८७	
१४०	मणिलालभाई कल्याणजीभाई सेठ	अगास आश्रम	मुंबई	१९८७	
१४१	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९८८	का.सु.१४
१४२	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९८८	वैशाखपूर्णिमा
१४३	भाउलालभाई पुनशी भाटे तथा कुंवरबेन आदि	अगास आश्रम	जखौ (कच्छ)	१९८८	अ.व.८
१४४	भाउलालभाई पुनशी भाटे तथा कुंवरबेन आदि	अगास आश्रम	जखौ (कच्छ)	१९८८	
१४५	नारायणभाई लक्ष्मीदासभाई	नवसारी	धूळिया	१९८८	
१४६	नारायणभाई लक्ष्मीदासभाई	नवसारी	धूळिया		ता.२२-५-१९३३
१४७	मणिभाई वाघजी	नवसारी	नार	१९८९	वै.व.१२
१४८	नारायणभाई, भाईलालभाई, डाह्याभाई आदि	अगास आश्रम	धूळिया	१९८९	भा.सु.७
१४९	वैद्य हीमचंद मोहनलाल शाह	अगास आश्रम	सुरत		ता.१४-११-१९३३
१५०	गुलाबचंदभाई मोहनलाल	अगास आश्रम	वटामण	१९९०	फा.सु.८ ता.२१-२-३४
१५१	शांतिलालभाई मोहनलाल	अगास आश्रम	(भावनगर?)	१९९०	प्र.वै.सु.१५
१५२	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९९०	अ.वै.व.८
१५३	शांतिलालभाई मोहनलाल	अगास आश्रम	भावनगर		ता.८-५-१९३४
१५४	जेसंगभाई उजमशीभाई सेठ	सुरत	अमदावाद		ता.९-६-१९३४
१५५	मुनिश्री चतुरलालजी महाराज	—	(नडियाद?)	१९९०	
१५६	वासुदेवभाई तथा शांतिलालभाई मोहनलाल	अगास आश्रम	भावनगर	१९९०	अ.सु.७ ता. ८-७-३४
१५७	सूरजबेन	अगास आश्रम	मुंबई	१९९०	अ.सु.१४ ता.१५-७-३४
१५८	वासुदेवभाई तथा शांतिलालभाई मोहनलाल	अगास आश्रम	भावनगर		ता.१७-७-१९३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंक	किसके प्रति	कहाँसे	किस स्थान पर		मिती/तारीख
१५९	जेसंगभाई उजमशीभाई सेठ	अगास आश्रम	वढवाण केम्प		ता.१९-७-१९३४
१६०	शांतिलालभाई मोहनलाल	अगास आश्रम	—	१९९०	श्रा.सु.४ ता.१४-८-३४
१६१	प्रेमचंदभाई रवजीभाई कोठारी	अगास आश्रम	—		ता.१८-८-१९३४
१६२	शांतिलालभाई मोहनलाल	अगास आश्रम	भावनगर		ता.२७-९-१९३४
१६३	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९९०	भा.सु.५
१६४	गुलाबचंदभाई आदि	अगास आश्रम	वटामण		ता.२-१०-१९३४
१६५	मुनिश्री रत्नराजस्वामी	अगास आश्रम	सिद्धपुर	१९९०	आ.व.२
१६६	जेसंगभाई उजमशीभाई सेठ	अगास आश्रम	—		ता.१०-११-१९३४
१६७	साकरबेन	अगास आश्रम	मुंबई		ता.२९-११-१९३४
१६८	शांतिलालभाई मोहनलाल	अगास आश्रम	भावनगर		ता.३-२-१९३५
१६९	गुलाबचंदभाई मोहनलाल	अगास आश्रम	—	१९९१	फा.सु.१० ता.१४-३-३५
१७०	मनसुखभाई देवसीभाई	अगास आश्रम	लीमडी		ता.२२-३-१९३५
१७१	वैद्य हीमचंद मोहनलाल शाह	अगास आश्रम	सुरत	१९९१	श्रा.सु.१५
१७२	गोकुळभाई तथा नरसिंहभाई आदि	अगास आश्रम	आसुंदर		ता.१३-११-१९३५
१७३	जेसंगभाई सेठ तथा सौभाग्यभाई आदि	नासिक	अगास आश्रम	१९९२	चै.सु.७
१७४*		—	—	—	—
१७५	छोटालाल मलुकचंद शाह	अगास आश्रम	वटवा (अमदावाद)		—
१७६	केसरबेन मणिलालभाई सेठ	—	मुंबई	—	—
१७७	त्रिभुवनभाई धरमचंदभाई	अगास आश्रम	नासिक	—	—

*****

परिशिष्ट २

पत्रोंके बारेमें विशेष जानकारी

पत्रावलि-२

आंक	किसके प्रति	कहाँसे	किस स्थान पर		मिती/तारीख
१	वैद्य हीमचंद मोहनलाल शाह आदि	अगास आश्रम	डभोई		ता. २४-१-१९२६
२	माधवजीभाई रेवाभाई, तथा मणीभाई आदि	अगास आश्रम	वडाली		ता.४-२-१९२७
३	नरसिंहभाई तथा मगनभाई आदि	अगास आश्रम	भादरण	१९८३	चै.सु.९ ता.१०-४-२७
४	मणिलालभाई कल्याणजीभाई तथा सेठ केशवजी माणेकजी	अगास आश्रम	मुंबई	१९८७	आ.व.८
५	फूलचंदभाई तथा कुंवरजीभाई आदि	अगास आश्रम	वटामण	१९८८	का.व.१
६	मणिलालभाई कल्याणजीभाई तथा कसुंबाबेन आदि	अगास आश्रम	मुंबई	१९८८	जे.सु.१४
७	—	अगास आश्रम	—		

* यह पत्र भादरणके चुनीभाईको मिला था, प्रभुश्रीके हस्ताक्षरमें हैं, ऊपर तारीख नहीं है। वैद्यराज ऊपर लिखा हुआ प्रतीत होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आंक	किसके प्रति	कहाँसे	किस स्थान पर	मिती/तारीख
८	—	अगास आश्रम	—	ता.३-११-१९३२
९	—	अगास आश्रम	—	१९८९ पो.व.७
१०	मुनिश्री नेमसागरजी महाराज	अगास आश्रम	जखौ (कच्छ)	१९८९ माह सु. ११
११	—	नवसारी	अगास आश्रम	१९८९ जे.सु.२
१२	डाह्याभाई भगाभाई	अगास आश्रम	केप टाउन (द.आफ्रिका)	ता.८-६-१९३३
१३	डाह्याभाई नाथुभाई पटेल	अगास आश्रम	वलसाड	ता.१९-६-१९३३
१४	डाह्याभाई भगाभाई आदि	अगास आश्रम	केप टाउन (द. आफ्रिका)	ता.२३-६-१९३३
१५	भोगीलालभाई गुलाबचंदभाई शाह	अगास आश्रम	मुंबई	१९८९ अ.व.३
१६	गिरधरलालभाई रायचंदभाई दफ्तरी	अगास आश्रम	मुंबई	१९९० का.व.२ ता.४-११-३३
१७	अगास आश्रमस्थित मुनिगण तथा मुमुक्षु भाई बहेन	माउन्ट आबु	अगास आश्रम	ता.२६-३-१९३५
१८	वैद्य हीमचंद मोहनलाल शाह आदि	अगास आश्रम	—	ता.१९-३-१९३५
१९	सौभाग्यभाई आदि	माउन्ट आबु	अगास आश्रम	१९९१ चै.व.४
२०	सौभाग्यभाई आदि मुमुक्षु मंडल	माउन्ट आबु	अगास आश्रम	ता.२-४-१९३५
२१	—	तीर्थक्षेत्र आबु	—	ता.२-६-१९३५
२२	वैद्य हीमचंद मोहनलाल शाह	अगास आश्रम	सुरत	ता.२०-१०-१९३५
२३	सोमाभाई प्रभुदासभाई, अंबालालभाई तथा जेसंगभाई आदि	अगास आश्रम	इन्दोर	ता.३१-१०-१९३५
२४	तलकचंदभाई तथा मणिभाई आदि	अगास आश्रम	वडाली	१९९२ मागसर ता.१४-११-१९३५
२५	मणिभाई आदि	अगास आश्रम	वडाली	१९९२ मागसर ता.१४-११-१९३५
२६	वीरचंदभाई आदि	अगास आश्रम	बोटाद	१९९२ का.सु.७
२७	वनेचंदभाई देवजीभाई	अगास आश्रम	वांकानेर	ता.२६-१-१९३६
२८	चुनीलालभाई वीरचंद	अगास आश्रम	नांदेड	ता.२८-२-१९३६
२९	मंगळभाई, मणिभाई तथा कुटुंबीजन	शाहीबागका बंगला (अमदावाद)	—	१९९१ मागशर सुद
३०	मुनिश्री चतुरलालजी महाराज	अगास आश्रम	नडियाद	— —

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ३
अवतरण-अर्थ-सूची

[इस ग्रंथमें कई गुजराती तथा हिंदी काव्य उद्धृत है। गुजराती काव्योंके अर्थ पादटिप्पणमें दिये हैं। जिन काव्योंके अर्थ 'श्रीमद् राजचंद्र' ग्रंथ तथा 'नित्यनियमादिपाठ' के हिंदी अनुवादमें आ चुके हैं उनका यहाँ पृष्ठनिर्देश किया गया है। जो काव्य इसी ग्रंथमें एकसे अधिक बार आये हैं उनका अर्थ एक ही जगह पादटिप्पणमें दिया है और इसका पृष्ठ-निर्देश इस सूचीमें है। इस ग्रंथमें जो विशिष्ट गुजराती कहावतें या शब्दप्रयोग किये गये हैं उनका अर्थ भी एक बार पादटिप्पणमें दिया गया है। इन वाक्यांशोंको यहाँ टेढे (Italic) अक्षरोंमें दर्शाया गया है।

श्री. रा. = श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथ, नि.पा. = नित्य नियमादि पाठ (भावार्थ सहित)]

अमे सदा तमारा छईए	(६४)	एक वार प्रभु वंदना रे	३२
अदेखो अवगुण करे	१६	ए संकळना सिद्धिनी	३८
अहो! अहो! श्री सद्गुरु	नि.पा.२३८	एगोहं नत्थि मे कोइ	१६३
अस्तिस्वभाव रुचि थई रे	४३	एगो मे सस्सदो अप्पा	१६३
अहो जीव! चाहे परम पद	७६	ए ज धर्मथी मोक्ष छे	नि.पा.२३१
अधमाधम अधिको पतित	नि.पा.२९	एनुं स्वप्ने जो दर्शन पामे रे	३४८
अरिहंतो मह देवो	१६३	कक्का कर सद्गुरुनो संग	११
अप्पा कत्ता विकत्ता य	१६९	कहना जैसी बात नहीं	१५
अथवा निश्चयनय ग्रहे	नि.पा.१५९	कम्म दव्वे हिं सम्मं	१८
अनंतकाल हुं आथड्यो	२२९	कहां जाये कहां उपने?	७६
अहो! अहो! हुं मुजने कहुं	३७९	कषायनी उपशांतता	नि.पा.२२२
अंतरंग गुण गोठडी रे	३५०	कर्म मोहनीय भेद बे	नि.पा.२१६
आजनो लहावो लीजिये रे	२१८	कथा सुणी सुणी फूटयां कान	४७७
आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं	नि.पा.१६२	काचो पारो खावुं अन्न	२९७
आत्मभ्रांति सम रोग नहि	नि.पा.२४७	कोटि वर्षनुं स्वप्न पण	नि.पा.२२८
आवे ज्यां एवी दशा	नि.पा.१६८	कोण पति पत्नी पुत्रो तुज?	९०
आत्मज्ञान समदर्शिता	नि.पा.१४५	कोई माधव ल्यो, हारे कोई	(८४)
आ देहादि आजथी	नि.पा.२४३	क्षमा शूर अर्हत् प्रभु	२९,३९
आशा औरनकी क्या कीजे?	(८७)	खपी जवुं प्रेममां तारा (पूरा काव्य)	३६
इणविध परखी मन विसरामी	३८	*खाजांनी भूकरी*	१४९
इस भवको सब दुःखनको	६६	खामे मि सव्व जीवा	२९
इक्को वि नमुक्कारो	१८०	खोळ्ये खोटुं सर्वे पडे	१०
ईत चिंतामणि महत	५५	गई वस्तु शोचे नहीं	३५
उत्कृष्टे वीर्यनिवेसे	२७	गच्छ मतनी जे कल्पना	नि.पा.२५५
उष्ण उदक जेवो रे	५८	गुरु दीवो गुरु देवता	नि.पा.३५५
उपर वेश अच्छो बन्यो	३४२	गुरु समो दाता नहीं	१५
ऊपजे मोहविकल्पथी	श्री रा. ६७२	गुरुको माने मानवी	११
ऋण संबंधे आवी मळ्या	१०	गुण अनंत प्रभु ताहरा ए	१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणीना गुण ग्रहण करो	१५
ग्रहे अरूपी रूपीने	श्री.रा.३०१
ग्रीष्म तणी गरमी घणी	(५५)
चिंतवियो धरियो रहे	२५
चेतन जो निजभानमां	नि.पा.१९६
छूटे देहाध्यास तो	नि.पा.२२८
छे देहादिथी भिन्न आतमा रे	नि.पा.९९
जड ते जड त्रण काळमां	श्री.रा.३०१
जड ने चैतन्य बन्ने	श्री.रा.६५३
जडभावे जड परिणमे	श्री.रा.३०१
जन्म कृतारथ तेहनो रे	३२
जाति वेषनो भेद नहीं	नि.पा.२२१
जाण्युं तो तेनुं खरुं	६६
जाण आगळ अजाण थईए	१०६
जिहां लगे आतमद्रव्यनुं	२१५
जिण वयणे अनुरत्ता	५७
जिनस्वरूप थई जिन आराधे	३८
जीवता नर भद्र पामशे	१५
जीव तुं शीद शोचना धरे	६६
जेम आवी प्रतीति जीवनी रे	नि.पा.१०१
जे ज्ञाने करीने जाणियुं रे	नि.पा.१००
जे लोकोत्तर देव नमुं लौकिकथी	१५९
जेवा भाव तेवा प्रभु फळे	१५०, २३७, ३७४
जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं	नि.पा.९४
जे द्रष्टा छे दृष्टिनो	नि.पा.१७५
जेम जेम मति अल्पता	श्री.रा. १९७
जेने सद्गुरु पदशुं राग	२५
जेम निर्मळता रे रत्न स्फटिक	२२
जे स्वरूप समज्या विना	नि.पा.१३७
जे सद्गुरु स्वरूपना रागी	(६६)
जो मति पीछे ऊपजै	४४
जैनधर्म शुद्ध पायके	७६
जो इच्छो परमार्थ तो	नि.पा.२४९
जं किंचि वि चिंतंतो	(२६)
ज्ञानी के अज्ञानी जन	श्री.रा.३३
ज्ञान ध्यान वैराग्यमय	श्री.रा.५८
ज्ञानीकुं विस्मय नहीं	७६
ज्ञानीना गम्मा जेम नाखे तेम सम्मा	१७१, ४५४
ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे	नि.पा.१४३
डगमग ठाली शाने करे	१०
ढांकी इक्षु परालशुं जी	(२९)
तनकर मनकर वचनकर	नि.पा.३५६
तनधर सुखिया कोई न देखिया	८३
तारा दर्शनथी जिनराज रे	१११
तारुं तारी पास छे	३३९
ताहरी गति तुं जाणे हो देव!	७७
ताहरा शुद्ध स्वभावने जी	३७
तांबुं जे रसवेधियुं	३०
तीन भुवन चूडा रतन	नि.पा.३४४
तुम प्रभु तुम तारक विभुजी	३७
तूंबीमें कंकर	१७४
ते ते भोग्य विशेषना	नि.पा.२०१
तेणे मुज आतम तुज थकी नीपजे	४३
थावुं होय तेम थाजो, रूडा राजने	(८६)
दर्शन षटे समाय छे	नि.पा.२४६
दशा न एवी ज्यां सुधी	नि.पा.१६७
दिलमां कीजे दीवो मेरे प्यारे	७७
दरखतसे फल गिर पडा	नि.पा.३५६
दुर्गति दुःख अनेके कूट्यो	९०
देह छतां जेनी दशा	नि.पा.२७३
धन्य ते नगरी धन्य वेला घडी	(७२)
धरम धरम करतो जग सहु फिरे	१७२
धर्म रंग जीरण नहीं	२९
धार तरवारनी सोहली दोहली	२४२
धीरे धीरे रावतां	३९
धींग धणी माथे किया रे	(८६), २२०
नहि ग्रंथमांही ज्ञान भाख्युं	नि.पा.१०५
नथी धर्यो देह विषय वधारवा	श्री.रा.३३
नहि बनवानुं नहि बने	४७
निज पण जे भूले नहीं	३८
निश्चय एथी आवियो	श्री.रा.२३५
निश्चे जाणो रहेवुं नथी	१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निज धाम चंचळ, चित्त चंचळ	९९
निर्दोष सुख निर्दोष आनंद	नि.पा.१२९
निश्चय वाणी सांभळी	नि.पा.२५२
नीरखीने नवयौवना (पूरा काव्य)	श्री.रा.८४
पक्षपातो न मे वीरे	१८९
परप्रेम प्रवाह बढे प्रभुसे	नि.पा.३९
पर्यायदृष्टि न दीजिये	७
परमेश्वर परमातमा	१६
परम पुरुष प्रभु सद्गुरु	नि.पा.३०२
पडी पडी तुज पद पंकजे	नि.पा.३०
पाघडीने छेडे कसब	८९
पात्र विना वस्तु न रहे	श्री.रा.८४
पंडित सरखी गोठडी	२३
प्रीति अनंती परथकी	६
पुद्गल खाणो पुद्गल पीणो	२००
पूजक परिषह दई रह्या	(५५)
पूर्व पुण्यना उदयथी	श्री.रा.२३५
पुद्गल खलसंगी परे	८३
प्रथम देहदृष्टि हती	श्री.रा.३०१
प्रवचन अंजन जो सद्गुरु करे	३७९
प्रसूतानी पीडा रे वंध्या	(५४)
प्रभुपद दृढ मन राखीने	२५, ९८
प्रभु सर्व व्यापी रह्या	२५, ३९
प्रगटे अध्यातम दशा रे लाल	३०
प्रभुपणे प्रभु ओळखी रे	३२
प्रभु प्रभुता संभारता	३६
प्रगट तत्त्वता ध्यावता	३७
प्रथम आत्मसिद्धि थवा	श्री.रा.१९९
प्रभु प्रभु लय लागी नहीं	नि.पा.२७
फोगट फंद संसारनो	१०
बलिहारी पंडित तणी	२३
बहु पुण्यकेरा पुंजथी	नि.पा.१२६
बंदाके मन ओर है	२५
बहिरातम तजी अंतर आतमा	३५१
भक्तिभाव भाद्रव नदी	(६७)
भले दुश्मन बने दुनिया (पूरा काव्य)	३६
भव तरवा इच्छे जो भाई	९०
भारी पीलो चीकणो एक ज कनक	२०३
मन वचन शरीरे	(१३)
मन-मंजूसमें गुण-रत्न	२३
मने घडी नथी वीसरता राज	३४
महादेव्याः कुक्षिरत्नं	नि.पा.३४२
मनचिंत्युं तो इम ही ज रहे	६७
मने मळ्या गुरुवर ज्ञानी रे (पूरा काव्य)	२३६
मळ्यो छे एक भेदी रे	३७१
मारुं गायुं गाशे	श्री.रा.६७९
मंद विषय ने सरळता	श्री.रा.६७१
मा कर यौवन धन गृह गर्व	९०
मारी नाड तमारे हाथे (पूरा काव्य)	३४
मा चिट्ठह मा जंपह	(२६)
मा मुज्झह मा रज्झह	(२६)
मोटुं कष्ट गरथ मेळतां	६७
यय्या ओळखाण नहि जेहने	११
योगी एकिला रे (पूरा काव्य)	१२
यौवननी शी करवी माया	९०
रंगरसिया रंगरस बन्यो	२०४
राजा राणा चक्रधर	७६
रुचि अनुयायी वीर्य	२३७
रे आत्म तारो! आत्म तारो!	नि.पा.१३१
लाख मत लबडी	३११
लह्युं स्वरूप न वृत्तिनुं	नि.पा. १५८
लेणा देणा जगतमें	२५
लोभी गुरु तारे नहीं	१६
वचनामृत वीतरागनां	श्री. रा. ३३
वर्तमान आ काळमां	नि.पा.१३८
वानी मारी कोयल	३०
विषय-विकार सहित जे	श्री. रा. ६७१
विद्युत लक्ष्मी प्रभुता पतंग	श्री. रा.३७
विषयभूतनो मोह मूकी दे	९०
वीतरागता कारणे	२९
विश्वभाव व्यापी तदपि	नि.पा ३४३
वीती ताहि विसार दे	७६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्रत नहीं पच्चखाण नहि नि.पा.१०८
शास्त्र घणा मति थोडली २१३
शुं प्रभु चरण कने धरुं? नि.पा.२४१
शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन नि.पा.२३२
षट्स्थानक समजावीने नि.पा.२४५
सद्गुरुना उपदेशथी नि.पा.२३५
सद्गुरुना उपदेश वण नि.पा.१४७
समकित साथे सगाई कीधी १७२
सज्जन सज्जन सौ कहे २३
सज्जनशुं जे प्रीतडीजी (२९)
सद्गुरुचरण जहां धरे २५
सद्गुरु पद उपकारने ४४
सद्गुरु सम संसारमां ११
समभावे उदय सहे ४४
समकिती रोगी भलो ७६
समतारसना प्याला रे पीवे ४१६
सर्व जीव छे सिद्ध सम नि.पा.२५८
सर्वज्ञनो धर्म सुशर्ण जाणी श्री.रा.३९
सहु साधन बंधन थया नि.पा.२६
संजोगमूला जीवेण १६३
संजोगा विप्पमुक्कस्स १५५
संग परिहारथी स्वामी निजपद ११३
संतचरण आश्रय विना नि.पा.२६
संशय तेने शानो रह्यो १०
संसारीनुं सगपण छोडी (६४)
साचे मन सेवा करे २५, ३९
सुख दुःख मनमां न आणीए ४५७
सेवे सद्गुरु चरणने नि.पा.१४४
सेवाथी सद्गुरुकृपा ३८
सेवाबुद्धिथी सेवना २५
हांरे दिलडुं डोले नहि (पूरा काव्य) १२
हांरे प्रभु! दुर्जननो भंभेर्यो २५६
हुं मारुं हृदयेथी टाळ १३१, २०४
हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? नि.पा.१३०
होय न चेतन प्रेरणा नि.पा.१९३
होवानुं जे जरूर ते ६७

परिशिष्ट ४

दृष्टांत तथा प्रसंग सूची

(विषयके सामने दर्शाये हुए अंक पृष्ठ संख्या सूचित करते हैं)

अदत्ताका फल—लकडहारेकी कथा ३०९
अभिमन्युकुमार—गोबर-मिट्टीका कोठा २३३,४३७, (२२८)
अंबालालभाई (खंभात) २७३,३१२
आचार्यका दृष्टांत—गुप्त दोष प्रकट करने पर ४६८
आनंदघनजी और अग्रणी सेठ ३१५
आनंदघनजी-पिंजियारेका दृष्टांत ३१५
एक गिरगिटका बच्चा कुचला गया २९०
एक मत आपडी के ऊभे मार्गे तापडी १७५, ३१०
ऐसेको मिला तैसा...तूती बजाई २६६
कुगुरु कुत्ता और कीड़ोंकी कथा २८७, २९१
कूवा लाँघनेकी शर्त—हिंमतके बल पर दृष्टांत २०५
कौडीके लिये रत्न खोया २४
खाजाका चूरा १९०
गणिकाकी कथा-ऐसेको मिला तैसा... ३२५
गौतमस्वामी और पंद्रह सौ तापस—आज्ञा-आराधन पर दृष्टांत ४२१
चक्रवर्ती राजा और कामधेनु गायके दूधकी खीर २७०
चमरेंद्र और शक्रेंद्रकी कथा ३१४
चित्रपट और तत्त्वज्ञान खो जानेके प्रसंग पर एक आर्याकी बात २९६
चोर और विचक्षण मंत्री—समभावकी शरण ३७६
चूड़ियोंका व्यापारी—माँजी चलो २८६
छोटालालभाई (फेणाव) २२३,२८०,२८९
जनकविदेही और शुकदेवजी—स्वच्छ होकर आ २२९
जनकविदेही और संन्यासी—मिथिलामें मेरा कुछ जलता नहीं ४४४
जिनरक्षित, जिनपालित और रयणादेवी १९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टोलस्टोय और लेनिन—बाहरसे चमत्कार किन्तु ज्ञानीकी दृष्टिसे सत्य हो वही सत्य—उस पर एक त्यागीका दृष्टांत २७८
ढोलकी वाला देव—विषयासक्त सोनीकी कथा ४३१
तीन पूतलियाँ—बोध मनमें धारण करनेपर ४०९
दंतालीवाले त्रिकमभाई १०३
देवकीर्णजी मुनि ४-५,१७२,२०४,२१२,४४७
दो बोकडे बचानेका प्रसंग २५९
दो भाइओंकी स्त्रियोंका दृष्टांत—योग्यतानुसार लाभ ४१२
धनाभद्र—पूर्वभवकी कथा ३१८,३६३
धर्मराजा और अन्य पांडव हिमालय गये २६०
धारशीभाई ३१२
नथु बावा और नथु दरजी २७३
नारणजीभाई (पूना) ३०३
परिग्रह पर सोनामोहरवाले महाराजकी कथा २५७
पंथकजी विनीत—विनय न छोड़ने पर ५६
पन्ना फिरे और सोना झरे २२४
पूरबियोंकी बात—मैं मेरी फोड़ता हूँ ३६२
पूनाका प्रसंग—संतके कहनेसे कृपालुदेवकी आज्ञा मान्य है २६५
पेथापुरका कारभारी ३०४
'प्रभु प्रभु' बोलनेकी टेव २८६
प्रसन्नचंद्र राजर्षि १४७,३२९,४६३
बाटीके लिये खेत खोया २४
बाहुबलजी—वीरा मारा गजथकी ऊतरो २०४
बालकृष्ण नामक जैनमुनि २५९
बिल्लीके बच्चे घानीमें पिल गये ३४३
ब्रह्मचारीजी—बीस दोहें, क्षमापनाका पाठ, आठ त्रोटक छंद, स्मरणकी आज्ञा ३९४
ब्राह्मण और बाघ—वचनका घाव २८३
ब्राह्मणका बेटा कोरीके यहाँ बडा हुआ ४०२
भगतको आया प्रेम तो मेरे क्या नेम? २०५
भगत चक्रवर्तीकी अन्यत्व भावना ३०४
भरत चक्रवर्ती-संग्राममें कैसे भाव? ३१६
भरत चक्रवर्तीका जीव सिंह था तब—सत्पुरुषके योगबलका माहात्म्य ३२८
भरत चेत! २२६,३०४
भाव जैसा फल—दो भाइओंकी सामायिक ३५३
भावनगरके दानवीर राजाकी बात ३०३
भैंसके सींग २१०
मघाका पानी—टंके भर लेने चाहिये १७८,३३४
मरीचिके भवकी बात २५९
महावीर स्वामीको सिंहके भवमें सम्यक्त्व ३२८
माणेक माँजी ३१८
माणेकजी सेठ ३०३
माधवजी सेठ ३२६
मुनि मोहनलालजी—कृपालुदेव पर श्रद्धा कैसे हुई? २६३
रणछोडभाई २६८
रयणादेवी १९५
रंकके हाथमें रत्न १५४
वणागनटवर राजाके दासकी कथा ४७०
विद्याधरकी कथा—मरते समय किसमें उपयोग जोडे? ३२८
विनय पर गुरु-शिष्यका दृष्टांत २९९
व्यासजी और शुकदेवजी ४३५
शक्रेंद्र और महावीर स्वामी ३९४
शीतलदास बावाजी २७८
शुक्रका तारा—दो ब्राह्मण भाइयोंकी कथा ३०५
श्रीकृष्ण और दुर्गंधित कुत्ता २५४
श्रीकृष्ण और जराकुमार ३२९
श्रीरामका वैराग्य ३३६,३४०
श्रेणिक राजा ३३३,४२०,४४४
सत्संगका माहात्म्य—नारदजी और गिरगिटकी कथा ४१७
सिर काटे उसे माल मिले १५४
समकितीकी पुण्यक्रिया पर राजाके दंडका दृष्टांत ३२९
साधुको बेरमें इल्ली होना पडा ४०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ५
वचनामृत-विवेचन

वचनामृत पत्र संख्या	विवेचनका विषय	उपदेशामृत पृष्ठ संख्या
२/७	भक्तिकर्तव्य और धर्मकर्तव्यमें भेद	२५८
१७/३४	'नीरखीने नवयौवना' काव्यका अर्थ	२४१
१७/६७	'बहु पुण्यकेरा पुंजथी'	२२२
१७/१००	'लक्ष्यकी विशालता'—एक भी उत्तम नियम साध्य न करना	२८०
२१/१	यह तो अखंड सिद्धांत मानना कि...	२६१
२१/९१	अभिनिवेशके उदयमें उत्सूत्रप्ररूपणा न हो...	२५९
३७		२१४
४०	विशालबुद्धि, मध्यस्थता, सरलता, जितेंद्रियता	११७
७६	सत्पुरुष यही कि निशदिन जिसे आत्माका उपयोग हो...	१९९
११७	इस पावन आत्माके गुणोंका क्या स्मरण करें?	२७६
१६६	किसी भी प्रकारसे सद्गुरुकी खोज करें...	१६७
१६६	अनादिकालके परिभ्रमणमें अनंतबार शास्त्रश्रवण...	१६९, १७४
२००	शास्त्रमें कही हुई आज्ञाएँ परोक्ष है...	२७२
२६५	'मुख आगल है कह बात कहे'	१८८
२८३	भगवान मुक्ति देनेमें कृपण है...	२५९
३२१	अत्यंत उदास परिणाममें रहे हुए चैतन्यको...	२१२
३७३	मनके कारण यह सब है...	२७५
४३०	कोई भी जीव परमार्थको मात्र अंशरूपसे...	१७६-१७७
४३२	आत्माको विभावसे अवकाशित करनेके लिये...	१७९
५३९	सब जीव आत्मारूपसे समस्वभावी है...	१५३
५६८	विशेष रोगके उदयसे अथवा शारीरिक मंद बलसे...	१७२, १७३
६७०	ज्ञानीका सर्व व्यवहार परमार्थमूल होता है...	३७७
७१८	गाथा ११५-६-७ का अर्थ तथा माहात्म्य	३५५
७१८	गाथा १३० 'करो सत्य पुरुषार्थ'	१८७
७५३	जो स्वरूपजिज्ञासु पुरुष है...	१८१
७६७		२७७
७८३	सत्पुरुषका योग मिलना तो सब कालमें...	२०६
८१०	जो अनित्य है, जो असार है और...	४१२
८१९	ॐ खेद न करते हुए शूरवीरता ग्रहण करके...	२२१
८४३	श्रीमद् वीतराग भगवान द्वारा निश्चितार्थ किया हुआ...	२१७
९३५	चक्रवर्तीकी समस्त संपत्तिकी अपेक्षा...	२०९
उपदेशछाया	वेदांतमें इस कालमें चरमशरीरी	२२६
उपदेशछाया	छ खंडके भोक्ता भी राज छोड़कर चले गये...	२४४
९६०/१४	'होत आसवा परिसवा' काव्यका अर्थ	३५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट ६
विषय-सूची

(विषयके सामने दर्शाये हुए अंक पृष्ठ संख्या सूचित करते हैं)

अनर्थदंड ४०७
अनंतानुबंधी कषाय ४३७
अनुप्रेक्षा ४०
अप्पा कत्ता विकत्ता य १६९
अरिहंतो महदेवो १६३
अहमिक्को खलु शुद्धो ११४
आज्ञा ४५, ५१, ३३१, ३६०, ०के प्रकार ४७०
आत्मसिद्धिशास्त्र १०१, १३०, १३३, ३५९, ३६१, ४७३
आत्मा—०भावना २८, ३३, ०विचारणा १४२; ०ही सर्वस्व ९१; ०की अधमदशा विचारणीय ११८, ०देखो अर्थात् क्या? १८३ ०शुद्ध सिद्ध समान ३४७, ३५०; ०ज्ञानीपुरुषका प्रकट चोर ३५१; ०का माहात्म्य ३७८, ३८२; ०का ध्यान ४०८; ०के लिये सब करें ४१०, ०प्रथम ४२४; ०कैसे प्राप्त हो? ४२७; ०कहाँ रहता है? ४३४; ०की प्रतीति ४४१
आलोचना ३०१
आवश्यक ३०६
आश्रम—०आशातना अशुचिसे बचे २६२; ०का माहात्म्य २६५, ४१८-९; ०वीतरागमार्गकी पुष्टिके लिये ४६८
आसिका ३०७
इक्को वि नमुक्कारो १८०
उत्सूत्र प्ररूपणा २५९
उदासीनता और उपेक्षा २७४
उदीरणा २९०
एक परमकृपालुदेव ५८, ६९, ८५, ८९, ९६, १२७, १३१, १३४, २९५, ४०५
एगो मे सस्सदो अप्पा १६३
एगोहं नत्थि मे कोइ १६३
कल्याण १६, ०कैसे हो? २९०
कषाय २७८, ३६०; ०सुलटे करे ४१९
कांक्षा २८३
क्षमा २२४ ०भोग लेना ३१
खामेमि सव्व जीवे ११४
गुरुगम १४७, ४११
चमकमें मोती पीरो लें ४४३
चत्तारि परमंगाणि ११४
चार गति दुःखमय ४०८
चित्तप्रसन्नता २१
चोर ३५१
छत्तीस मालाका क्रम ३२९
छ पदका पत्र १९१, २७२, ३६१
जिणवयणे अणुरत्ता ५७, ५९
जितेन्द्रियता ११७
जुगार १०९
ज्ञानी ०का स्वरूप ४२०, ०और अज्ञानीकी वाणीमें भेद ४१४
झाइ झाइ परमप्पा ११४
तीन पाठ ३०४, ३७०, ३९२
तीन शल्य ३४२
दान ३२५
दीवालीका बोध ३५०
'दुनिया' का अर्थ ३५
'दुर्जननो भंभेर्यो मारो नाथ जो' २५६
देवता २५७
देववंदन १८४, १८९, ३७८
देह—०मूर्छा अकर्तव्य ४०६, ४१७, ०में सार क्या? ४७२
द्रष्टाभाव ६, ३३, ४६
'धन्य ते नगरी धन्य वेळा घडी' २६६
नमस्कार ४२४
नासिकका बोध ३८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निषिद्यका ३०७
पतिके प्रति कर्तव्य ७५
पद्मासन ३०६
परमकृपालुदेवका माहात्म्य ११८, १२२, ३९८, ४२९
पर्युषण पर्व—तीनों कर्तव्य २९
पुरुषार्थ और कर्म १६५-६६
पूर्वभवके ज्ञानसे आनंद १७
पूनाका बोध २६५
'बहु पुण्यकेरा' काव्य २२२
ब्रह्मचर्य ७८, ७९, १७२, २३४, २३५, २४१, ३२४, ३३३, ३३७, ३४१, ३४७, ३८०, ३८६, ३९६, ३९८, ४०४, ४१६, ४२३, ४३४, ४७६
बीस दोहे १८५, ३७८, ३८८, ४५०, ४५२, ४५५
भक्ति १५३, २०७, ३६०, ३६२, ३८८, ४२९, ४४८; ०कर्तव्य और धर्मकर्तव्य २५८, ०के दो भेद ४२८
भव्य ४२३
भाव १६४
भावदर्शन १७, ५१
भावमरण ११७
मन वश कैसे हो? १३१
मा चिट्ठह ११४, २१९
मा मुज्झह ११४
मुमुक्षुके प्रति दासभाव २६
मृत्यु—०के समय कर्तव्य ३८१, ०आये तब क्या करें? ४६५, ०महोत्सव ६२
मोक्ष—शीघ्र कैसे हो? २५०; ०कैसे मिले? ४४६
वटामणका पत्र ९५
विचिकित्सा २८३, २८५
विनय १०५, २८९; ०पर गुरु शिष्यका दृष्टांत २९९
व्रत ४०४
शरणका बल ४, ३१४; ०पर चोरकी कथा ३७६
शंका २८३
शील देखें ब्रह्मचर्य
श्रद्धा १०८, ३५१, ३६४, ३७९, ३८६, ४११, ४३१, ४३९, ०के प्रकार ३३८; ०से उद्धार ४७३
श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथ—०का माहात्म्य १९, २३३; ०कैसे पढ़े? ५२; ०प्रस्तावना संबंधी ३१६
श्रीमद् लघुराजस्वामी—०उदासीनदशा २७, ५५; ०यात्रावृत्ति संकोच ४१, ०को कृपालुदेवका समागम १९४, ३२०; ०राजपर मंदिरका प्रसंग २०४, ०मंत्रका जाप—क्यों कुछ दीखता नहीं है? २५६, ०मैंने सब त्यागा है २५८; ०बालकृष्ण मुनि-तुझे ज्ञान होगा २५९; ० बकरेको बचानेका प्रसंग २५९; प्रभु प्रभु बोलनेकी टेव २८६, ०मरण समयमें कमरा मंत्रसे भरे ३२३, ०मृत्युमहोत्सव ३९२; ०ब्रह्मचारीजीको धर्मकी जिम्मेदारी ३९४; ०छास-बाकुला जैसी बात ४५१
'श्री सद्गुरु प्रसाद' ८८
सत्संग (सत्समागम) ९२, ४३०, ४७६ ०पर गिरगिटका दृष्टांत ४१७
सद्गुरु—०के स्मरणसे शांत दशा ४३; ०का माहात्म्य २५७; ०पर श्रद्धा कब कही जायेगी? २६१; ०की कैसे पहचान हो? २६३
समभाव ३५, ४७, ६५, ८९, ९४, १४०, १८९, ३७७, ४६६; ०की शरणसे देव ३७६; ०कैसे आयें? ४१५
समाधिमार्ग २६०
सम्यक्त्व ४५, १०८, २१६; ०पानेके साधन २६०, ०का माहात्म्य ३१६; ०कैसे सुलभ हो? ३६१; ०प्राप्तकी दशा ४०३
संकल्पविकल्प कैसे दूर हो १२८, ३३२, ३३५
संजोगमूला जीवेण १६३
स्थितिकरण २८५
स्मरणमंत्र ३३२, ३४३, ४७१
स्वच्छंद १२४
स्वदया ७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री उपदेशामृतके प्रकाशनमें प्राप्त हुआ दान

नाम	गॉव	रुपिया
श्रीमती जयाबेन वसनजी मारु	मुंबई	२५५५
श्रीमती मीराबेन महेता	मुंबई	२५००
श्रीमती स्मिताबेन वसंतभाई शाह	बोरीवली	१५११
श्री एक मुमुक्षुभाई	मीरारोड	११११
श्रीमती सुखीबाई चंपालालजी लुंकड	सिवाणा	१००१
श्री चंद्रवदनभाई डाह्याभाई परीख	मुंबई	१०००
श्री नमिता विक्रमजी फिरोदिया	अहमदनगर	१०००
श्री जितेंद्रभाई अमृतलाल शाह	आश्रम	६०१
श्रीमती कोकिलाबेन जितेंद्रभाई शाह	आश्रम	६०१
श्री सी.एल.कोठारी तथा सजनबेन कोठारी	अजमेर	५०१
श्रीमती सुवादेवी सोहनराज संकलेचा	पछपदरा	५०१
श्री उत्तमचंद तथा श्रीमती सरसबेन गुंदेचा	वरोरा	५०१
श्री किशोरभाई तथा दीपकभाई नीतिनभाई गुंदेचा	वरोरा	५०१
श्री मोहनलाल चुनीलाल मुनोत	अमरावती	५०१
श्री मगनभाई जेसंगभाई पटेल	आश्रम	५०१
कुमारी भाग्यश्री अशोक लालजी गांधी तथा प्रतिभा एवं सुयोग परिवार	सेवगाँव	५०१
श्री छगनराजजी समरथमलजी	बेंगलोर	५०१
श्रीमती दिवालीबेन लेखराजजी सोलंकी परिवार	आहोर	५०१
स्व० रूपलबेन यतीनकुमार महेता	मुंबई	५०१
श्री भँवरलाल नारंगीबेन भंडारी	भिवंडी	५०१
श्रीमती पुष्पादेवी जयंतिलाल धोका	बलारी	५००
श्रीमती चंचलदेवी सुरेशकुमार अेन. जैन	हुबली	५००
श्रीमती झवेरबेन टोकरशी शाह परिवार	आश्रम	५००
श्रीमती हेमलताबेन नेमचंद छेडा	अमेरिका	५००
श्री मिलापचंद अतुलकुमार जैन	अजमेर	५००
श्री सुभाषभाई धनराजजी मुथा	नागपुर	५००
श्री श्वेताकुमारी जयंतिलाल	बलारी	५००
श्री सुमेरमल जैन	जोधपुर	५००
श्री डुंगरचंद विकासकुमार हुंडिया	इंदौर	५००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org